प्रौढ-रचनानुवादकौमुदी

डॉ० कपिलदेव द्विवेदी

प्रौढ-रचनानुवादकौमुदी

नवीनतम वैज्ञानिक पद्धति से लिखी गयी संस्कृत-व्याकरण, अनुवाद और निबन्ध की पुस्तक

लेखक

पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी आचार्य

एम०ए० (संस्कृत, हिन्दी), एम०ओ०एल०, डी० फिल्०,
पी० ई० एस० (अ० प्रा०), विद्याभास्कर, साहित्यरत्न, व्याकरणाचार्य

निदेशक

विश्वभारती अनुसंधान परिषद्

ज्ञानपुर (वाराणसी)

प्रणेता—'अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन', 'संस्कृत-व्याकरण',
'संस्कृत निबन्ध-शतकम्' (तीनों उ० प्र० शासन द्वारा सम्मानित),
'भाषा-विज्ञान एवं भाषा-शास्त्र', 'राष्ट्र-गीताञ्जलिः' आदि।

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

PRAUḌHA RACHANĀNUVĀDA KAUMUDĪ

[*Category* : Sanskrit Grammar/Language]

by

Dr. Kapil Deva Dvivedi

ISBN : 978-93-5146-108-1

द्वाविंशतितमः (बाइसवाँ) संस्करण : 2015 ई०

[22nd Edition : 2015]

Publisher | **प्रकाशक**

VISHWAVIDYALAYA PRAKASHAN
Post Box No. 1149,
Vishalakshi Building (Basement), Chowk,
Varanasi - 221001 [U.P. INDIA]

विश्वविद्यालय प्रकाशन
पोस्ट बॉक्स नं० 1149,
विशालाक्षी भवन (भूगर्भ तल), चौक,
वाराणसी-221 001 [उत्तर प्रदेश, भारत]

Phone & Fax : (0542) 2413741, 2413082
E-mail : vvpbooks@gmail.com • sales@vvpbooks.com
Website : www.vvpbooks.com

मुद्रक

वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०

चौक, वाराणसी-221 001

समर्पण

इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः
पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ।
(ऋग्वेद १०.१४.१५)

संस्कृत भाषा के प्रचार और प्रसार
में संलग्न
संस्कृत-प्रेमी जनता की
सेवा में
सस्नेह समर्पित।

कपिलदेव द्विवेदी आचार्य

विषय-सूची

विवरण

अभ्यास	शब्द	धातु	कारकादि	समासादि	शब्दवर्ग	पृष्ठ
१.	राम	भू, हस्	प्र०, द्वितीया	लट् (पर०)	—	२
२.	गृह	पठ्, रक्ष्	,,	लोट् ,,	—	४
३.	रमा	गम्, वद्	तृतीया	लङ् ,,	—	६
४.	हरि, भूपति	चर्, दृश्	,,	विधिलिङ् ,,	—	८
५.	गुरु	सद्, पा	चतुर्थी	लृट् ,,	—	१०
६.	९ सर्वनाम पुं०	सेव्, वृत्	,,	लट् (आ०)	—	१२
७.	,, ,, नपुं०	वृध्, ईक्ष्	पंचमी	लोट् ,,	—	१४
८.	,, ,, स्त्री०	मन्त्र्, रम्	,,	लङ् ,,	—	१६
९.	इदम्	लभ्, स्था	षष्ठी	विधिलिङ् ,,	—	१८
१०.	अदस्	मुद्, सह्	,,	लृट् ,,	—	२०
११.	युष्मद्	पत्, पच्, नम्	सप्तमी	—	—	२२
१२.	अस्मद्	तॄ, स्मृ, जि	,,	—	—	२४
१३.	एक	घ्रा	स्वर-संधि	लिट्	देववर्ग	२६
१४.	द्वि	कृष्, वस्	,, ,,	,,	विद्यालयवर्ग	२८
१५.	त्रि	त्यज्	व्यंजन ,,	लुङ्	लेखनसामग्री	३०
१६.	चतुर्	याच्	,, ,,	,,	दिक्कालवर्ग	३२
१७.	संख्या ५-१०	वह्	विसर्ग ,,	लुट्	व्योमवर्ग	३४
१८.	,, ११-१००	नी	,, ,,	आ० लिङ् लृङ्	संबन्धिवर्ग	३६
१९.	सखि	हृ	—	अव्ययीभाव	क्रीडासनवर्ग	३८
२०.	पति	श्रु	—	तत्पुरुष	ब्राह्मणवर्ग	४०
२१.	सुधी, स्वभू	कृ (पर०)	—	कर्म०, द्विगु	क्षत्रियवर्ग	४२
२२.	कर्तृ	कृ (आ०)	—	बहुव्रीहि	आयुधवर्ग	४४
२३.	पितृ, नृ	अद्, शास्	—	,,	सैन्यवर्ग	४६
२४.	गो	अस्	—	द्वन्द्व	वैश्यवर्ग	४८
२५.	प्राञ्च्, उदञ्च्	ब्रू	—	एकशेष, अलुक्	व्यापारवर्ग	५०
२६.	पयोमुच्, वणिज्	या, पा	—	समासान्त प्र०	अन्नवर्ग	५२
२७.	भूभृत्	दुह्, लिह्	—	स्त्रीप्रत्यय	भक्ष्यवर्ग	५४
२८.	भगवत्, धीमत्	रुद्-स्वप्	पदक्रम	कर्तृवाच्य	मिष्टान्नवर्ग	५६
२९.	महत्, भवत्	हन्, स्तु	—	आत्मनेपद	पानादिवर्ग	५८
३०.	पठत्, यावत्	इ, विद्	आत्मनेपद	परस्मैपद	पात्रवर्ग	६०

अभ्यास	शब्द	धातु	कारकादि	प्रत्यय	शब्दवर्ग	पृष्ठ
३१.	बुध्	आस्	—	कर्म-भाववाच्य	शूद्रवर्ग	६२
३२.	आत्मन्, राजन्	शी, अधि+इ	—	,, ,,	शिल्पिवर्ग	६४
३३.	श्वन्, युवन्	हु, भी	—	णिच्	,,	६६
३४.	वृत्रहन्, मघवन्	हा, ह्री	—	,,	शाकादिवर्ग	६८
३५.	करिन्, पथिन्	भृ, मा	—	सन्	,,	७०
३६.	तादृश्, चन्द्रमस्	दा	—	यङ् नामधातु	कृषिवर्ग	७२
३७.	विद्वस्, पुंस्	धा	—	क्त	विशेषणवर्ग	७४
३८.	श्रेयस्, अनडुह्	दिव्, नृत्	—	,,	,,	७६
३९.	मति	नश्, भ्रम्	—	क्तवतु	शैलवर्ग	७८
४०.	नदी, लक्ष्मी	श्रम्, सिव्	द्वितीया	शतृ	वनवर्ग	८०
४१.	स्त्री, श्री	सो, शो	,,	शतृ, शानच्	वृक्षवर्ग	८२
४२.	धेनु, वधू	कुप्, पद्	तृतीया	तुमुन्	पुष्पवर्ग	८४
४३.	स्वसृ, मातृ	युध्, जन्	,,	क्त्वा	फलवर्ग	८६
४४.	नौ, वाच्	आप्, शक्	चतुर्थी	ल्यप्; णमुल्	,,	८८
४५.	स्रज्, सरित्	चि, अश्	,,	तव्य, अनीय	पशुवर्ग	९०
४६.	समिध्, अप्	सु	पंचमी	यत्, ण्यत्, क्यप्	पक्षिवर्ग	९२
४७.	गिर्, पुर्	इष्, प्रच्छ्	,,	घञ्	वारिवर्ग	९४
४८.	दिश्, उपानह्	लिख्, स्पृश्	षष्ठी	तृच्, अच्, अप्	शरीरवर्ग	९६
४९.	वारि, दधि	कृ, गृ	,,	ल्युट्, ण्वुल्, ट	,,	९८
५०.	अक्षि, अस्थि	क्षिप्, मृ	सप्तमी	क, खल्, णिनि	वस्त्रादिवर्ग	१००
५१.	मधु, कर्तृ	तुद्, मुच्	,,	क्तिन्, अण्, क्विप्	आभूषणवर्ग	१०२
५२.	जगत्	छिद्, भिद्	—	इष्णु, खश् आदि	प्रसाधनवर्ग	१०४
५३.	नामन्, शर्मन्	हिंस्, भञ्ज्	तद्धित	अपत्यार्थक	पुरवर्ग	१०६
५४.	ब्रह्मन्, अहन्	रुध्, भुज्	,,	चातुरर्थिक	,,	१०८
५५.	हविष्, धनुष्	युज्, तन्	,,	शैषिक	गृहवर्ग	११०
५६.	पयस्, मनस्	ज्ञा	,,	मत्वर्थक	अव्ययवर्ग	११२
५७.	पाद, दन्त	बन्ध्, मन्थ्	,,	विभक्त्यर्थक	क्रियावर्ग	११४
५८.	गोपा, विश्वपा	क्री, ग्रह्	,,	भावार्थक	धातुवर्ग	११६
५९.	कति	चुर्, चिन्त्	,,	तुलनार्थक	नाट्यवर्ग	११८
६०.	उभ	कथ्, भक्ष्	,,	विविध तद्धित	रोगवर्ग	१२०

परिशिष्ट

व्याकरण पृष्ठ

(१) शब्दरूप-संग्रह १२२-१४०

१. राम, २. पाद, ३. गोपा, ४. हरि, ५. सखि, ६. पति, ७. भूपति, ८. सुधी, ९. गुरु, १०. स्वभू, ११. कर्तृ, १२. पितृ, १३. नृ, १४. गो, १५. पयोमुच्, १६. प्राञ्च्, १७. उदञ्च्, १८. वणिज्, १९. भूभृत्, २०. भगवत्, २१. धीमत्, २२. महत्, २३. भवत्, २४. पठत्, २५. यावत्, २६. बुध्, २७. आत्मन्, २८. राजन्, २९. श्वन्, ३०. युवन्, ३१. वृत्रहन्, ३२. मघवन्, ३३. करिन्, ३४. पथिन्, ३५. तादृश्, ३६. विद्वस्, ३७. पुंस्, ३८. चन्द्रमस्, ३९. श्रेयस्, ४०. अनडुह्, ४१. रमा, ४२. मति, ४३. नदी, ४४. लक्ष्मी, ४५. स्त्री, ४६. श्री, ४७. धेनु, ४८. वधू, ४९. स्वसृ, ५०. मातृ, ५१. नौ, ५२. वाच्, ५३. स्रज्, ५४. सरित्, ५५. समिध्, ५६. अप्, ५७. गिर्, ५८. पुर्, ५९. दिश्, ६०. उपानह्, ६१. गृह, ६२. वारि, ६३. दधि, ६४. अक्षि, ६५. अस्थि, ६६. मधु, ६७. कर्तृ, ६८. जगत्, ६९. नामन्, ७०. शर्मन्, ७१. ब्रह्मन्, ७२. अहन्, ७३. हविष्, ७४. धनुष्, ७५. पयस्, ७६. मनस्, ७७. सर्व, ७८. विश्व, ७९. पूर्व, ८०. अन्य, ८१. तत्, ८२. यत्, ८३. एतत्, ८४. किम्, ८५. युष्मद्, ८६. अस्मद्, ८७. इदम्, ८८. अदस्, ८९. एक, ९०. द्वि, ९१. त्रि, ९२. चतुर्, ९३. पञ्चन्, ९४. षष्, ९५. सप्तन्, ९६. अष्टन्, ९७. नवन्, ९८. दशन्, ९९. कति, १००. उभ।

(२) संख्याएँ १४१-१४२

गिनती—१ से १०० तक।
संख्याएँ—सहस्र से महाशंख तक।

(३) धातुरूप-संग्रह (दसों लकारों के रूप) १४३-२२०

(१) भ्वादिगण—१. भू, २. हस्, ३. पठ्, ४. रक्ष्, ५. वद्, ६. गम्, ७. दृश्, ८. पा, ९. स्था, १०. घ्रा, ११. सद्, १२. पच्, १३. नम्, १४. स्मृ, १५. जि, १६. श्रु। १७. कृष्, १८. वस्, १९. त्यज्, २०. सेव्, २१. लभ्, २२. वृध्, २३. मुद्, २४. सह्, २५. वृत्, २६. ईक्ष्, २७. नी, २८. हृ २९. याच्, ३०. वह्।

(२) अदादिगण—३१. अद्, ३२. अस्, ३३. इ, ३४. रुद्, ३५. स्वप्, ३६. दुह्, ३७. लिह्, ३८. हन्, ३९. स्तु, ४०. या, ४१. पा, ४२. शास्, ४३. विद्, ४४. आस्, ४५. शी, ४६. अधि+इ, ४७. ब्रू।

(३) जुहोत्यादिगण—४८. हु, ४९. भी, ५०. हा, ५१. ह्री, ५२. भृ, ५३. मा, ५४. दा, ५५. धा।

(४) दिवादिगण—५६. दिव्, ५७. नृत्, ५८. नश्, ५९. भ्रम्, ६०. श्रम्, ६१. सिव्, ६२. सो, ६३. शो, ६४. कुप्, ६५. पद्, ६६. युध्, ६७. जन्।

(५) स्वादिगण—६८. आप्, ६९. शक्, ७०. चि, ७१. अश्, ७२. सु।

(६) तुदादिगण—७३. इष्, ७४. प्रच्छ्, ७५. लिख्, ७६. स्पृश्, ७७. कृ, ७८. गृ, ७९. क्षिप्, ८०. मृ, ८१. तुद्, ८२. मुच्।

(७) रुधादिगण—८३. छिद्, ८४. भिद्, ८५. हिंस्, ८६. भञ्ज्, ८७. रुध्, ८८. भुज्, ८९. युज्।

(८) तनादिगण—९०. तन्, ९१. कृ।

(९) क्र्यादिगण—९२. बन्ध्, ९३. मन्थ्, ९४. क्री, ९५. ग्रह्, ९६. ज्ञा।

(१०) चुरादिगण—९७. चुर्, ९८. चिन्त्, ९९. कथ्, १००. भक्ष्।

(४) धातुरूपकोश — २२१-२५४

अकारादिक्रम से ४६५ धातुओं के दसों लकारों में रूप।

(१) अकर्मक धातुएँ। (२) अनिट् धातुओं का संग्रह।

(५) प्रत्यय-विचार — २५५-२६८

निम्नलिखित प्रत्ययों के सभी उपयोगी रूपों का संग्रह :—

१. क्त, २. क्तवतु, ३. शतृ, ४. शानच्, ५. तुमुन्, ६. तव्यत्, ७. तृच्, ८. क्त्वा, ९. ल्यप्, १०. ल्युट्, ११. अनीयर्, १२. घञ्, १३. ण्वुल्, १४. क्तिन्, १५. यत्।

(६) सन्धि-विचार — २६९-२७८

७५ उपयोगी सन्धि-नियमों का सोदाहरण विवेचन।

(७) प्रत्यय-परिचय — २७९-२८५

१०० धातुओं के क्त आदि प्रत्ययों से बने रूपों की सारणी (चार्ट)

(८) वाक्यार्थक-शब्द — २८६-२९०

वाक्यों का पूरा अर्थ बतानेवाले शब्दों का संग्रह

(९) पत्रादि-लेखन-प्रकार — २९१-२९५

(१०) निबन्ध-माला (२० निबन्ध) २९६-३५०

१. वेदानां महत्त्वम्।
२. वेदाङ्गानि, तेषां वेदार्थबोधोपयोगिता:।
३. सर्वोपनिषदो गावो दुग्धं गीतामृतं महत्।
४. भासनाटकचक्रम्।
५. कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञानशाकुन्तलम्।
६. उपमा कालिदासस्य।
७. भारवेरर्थगौरवम्।
८. दण्डिनः पदलालित्यम्।
९. माघे सन्ति त्रयो गुणाः।
१०. बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्।
११. कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते।
१२. नैषधं विद्वदौषधम्।
१३. भारतीया संस्कृतिः।
१४. संस्कृतस्य रक्षार्थं प्रसारार्थं चोपायाः।
१५. कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा।
१६. नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे।
१७. सहसा विदधीत न क्रियाम्।
१८. ज्वलितं न हिरण्यरेतसं, चयमास्कन्दति भस्मनां जनः।
१९. आशा बलवती राजन्, शल्यो जेष्यति पाण्डवान्।
२०. स्त्रीशिक्षाया आवश्यकतोपयोगिता च।

(११) अनुवादार्थ-गद्य-संग्रह ३५१-३७०

(१२) सुभाषित-मुक्तावली ३७१-४०२

प्रमुख १७ शीर्षक :—१. भारतप्रशंसा, २. अध्यात्म, ३. अर्थ, ४. काम, ५. जगत्-स्वरूप, ६. चातुर्वर्ण्य, ७. जीवन, ८. आरोग्य, ९. राजधर्मादि, १०. आचार, ११. विद्या, १२. विचारात्मक, १३. मनोभाव, १४. व्यवहार, १५. पुरुष-स्त्री-स्वभावादि, १६. कवि, काव्य, कविता, १७. विविध।

(१३) पारिभाषिक-शब्दकोश ४०३-४१४

व्याकरण के अत्युपयोगी १६५ पारिभाषिक शब्दों का विवरण।

(१४) हिन्दी-संस्कृत-शब्दकोश ४१४-४३८

(१५) विषयानुक्रमणिका ४३९-४४०

भूमिका

डॉ० कपिलदेव द्विवेदी ने प्रौढ-रचनानुवादकौमुदी का निर्माण करके उस काम की पूर्ति की है जो रचनानुवादकौमुदी से आरम्भ हुआ था। मैं स्वयं संस्कृत व्याकरण और साहित्य का इतना ज्ञान नहीं रखता कि पुस्तक के गुण-दोषों की यथार्थ समीक्षा कर सकूँ। परन्तु उसका स्वरूप ऐसा है जिससे मुझको यह प्रतीत होता है कि वह उन लोगों को निश्चय ही उपयोगी प्रतीत होगी जिनके लिए उसकी रचना हुई है। मैं संस्कृत ग्रन्थों को पढ़ता रहता हूँ। कभी-कभी संस्कृत में कुछ लिखने का भी प्रयास करता हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि इस पुस्तक से मेरे जैसे व्यक्ति को सहायता मिलेगी और कई भद्दी भूलों से त्राण हो जायेगा। यों तो संस्कृत के प्रामाणिक व्याकरणों का स्थान दूसरी पुस्तकें नहीं ले सकतीं, फिर भी जिन लोगों को किन्हीं कारणों से उनके अध्ययन का अवसर नहीं मिला है, उनके लिए प्रौढ-रचनानुवादकौमुदी जैसी पुस्तकें वस्तुतः बहुमूल्य हैं।-

नैनीताल,
जुलाई, ७, १९६०

(डॉ०) सम्पूर्णानन्द
मुख्यमन्त्री,
उत्तर प्रदेश

आत्म-निवेदन

(१) पुस्तक-लेखन का उद्देश्य—यह पुस्तक कतिपय विशेष उद्देश्यों को लक्ष्य में रखकर लिखी गयी है। उनमें से विशेष उल्लेखनीय ये हैं—(क) संस्कृत के प्रौढ विद्यार्थियों को प्रौढ संस्कृत सिखाना। (ख) अति सरल और सुबोध ढंग से अनुवाद और निबन्ध सिखाना। (ग) २ वर्ष में प्रौढ संस्कृत लिखने और बोलने का अभ्यास कराना। (घ) अनुवाद के द्वारा सम्पूर्ण व्याकरण सिखाना। (ङ) संस्कृत के मुहावरों का वाक्य-रचना के द्वारा प्रयोग सिखाना। (च) प्रौढ संस्कृत-रचना के लिए उपयोगी समस्त व्याकरण का अभ्यास कराना। (छ) इस पुस्तक के प्रथम दो भाग प्रारम्भिक छात्रों के लिए हैं, यह प्रौढ विद्यार्थियों के लिए है। अतः यह उचित है कि इस पुस्तक का अभ्यास करने से पूर्व छात्र 'रचनानुवादकौमुदी' का अभ्यास अवश्य कर लें।

(२) पुस्थक की शैली—यह पुस्तक कतिपय नवीनतम विशेषताओं के साथ प्रस्तुत की गयी है। (क) इंग्लिश, जर्मन, फ्रेंच और रूसी आदि भाषाओं में अपनायी गयी वैज्ञानिक पद्धति इस पुस्तक में अपनायी गयी है। (ख) प्रत्येक अभ्यास में २५ नए शब्द तथा कुछ व्याकरण के नियम दिए गए हैं। (ग) शब्दकोश और व्याकरण से सम्बद्ध सभी मुहावरे प्रत्येक अभ्यास में सिखाए गए हैं।

(३) अभ्यास—इस पुस्तक में ६० अभ्यास हैं। प्रत्येक अभ्यास दो पृष्ठों में हैं। बाईं ओर शब्दकोश और व्याकरण हैं, दाईं ओर संस्कृत में अनुवादार्थ गद्य तथा संकेत हैं।

(४) शब्दकोश—(क) प्रत्येक अभ्यास में २५ नये शब्द हैं। शब्दकोश में ४८ वर्ग भी दिए गए हैं। प्रयत्न किया गया है कि सभी उपयोगी शब्दों का संग्रह हो। अमरकोश के प्रायः सभी उपयोगी शब्द विभिन्न वर्गों में दिए गए हैं। यह भी ध्यान रखा गया है कि प्रौढ रचना को ध्यान में में रखते हुए उच्च संस्कृत-साहित्य में प्रयुक्त शब्दों को विशेष रूप से अपनाया जाए। प्रत्येक वर्ग में उस वर्ग से सम्बद्ध सभी उपयोगी शब्द दिए गए हैं। (ख) यह भी प्रयत्न किया गया है कि आधुनिक प्रचलित शब्दों और भावों के लिए भी उपयोगी संस्कृत शब्द दिए जाएँ। इसके लिए दो बातें मुख्यतया ध्यान में रखी गयी हैं—१. जिन भावों के लिए प्राचीन संस्कृत-ग्रन्थों में कोई शब्द मिल सकता है, वहाँ उन संस्कृत-शब्दों को अपनाया गया है। जो प्राचीन संस्कृत शब्द नवीन अर्थों का बोध करा सकते हैं, उनका नवीन अर्थों में प्रयोग किया गया है। २. जिन शब्दों के लिए संस्कृत में प्राचीन शब्द नहीं हैं, उनके लिए नए शब्द बनाए गए हैं। कहीं पर ध्वन्यनुकरण के आधार पर और कहीं पर भावानुकरण के आधार पर। जैसे—मिष्टान्नवर्ग और पानादिवर्ग में सभी मिठाइयों, चाय, टोस्ट और पेस्ट्री आदि के लिए शब्द हैं। नवशब्द-निर्माण वाले स्थलों पर अपने विवेक के अनुसार कार्य किया गया है। ऐसे स्थलों पर मतभेद सम्भव है। जो विद्वान् नवीन भावों के लिए अधिक उपयुक्त शब्दों का सुझाव देंगे, उनके सुझावों पर विशेष ध्यान दिया जायगा। (ग) शब्दकोश को चार भागों में विभक्त

किया गया है। इसके लिए इन संकेतों की स्मरण कर लें। शब्दकोश में (क) का अर्थ है—संज्ञा या सर्वनाम शब्द। (ख) का अर्थ है—धातु या क्रिया-शब्द। (ग) =अव्यय। (घ) =विशेषण। (क) भाग में दिए अधिकांश शब्द राम, रमा या गृह के तुल्य चलते हैं। शब्दों के स्वरूप से इस बात का बोध हो जाता है। जहाँ पर सन्देह हो, वहाँ पर पुस्तक के अन्त में दिए हिन्दी-संस्कृत शब्दकोश से सहायता लें। वहाँ पर लिंग-निर्देश विशेष रूप से किया गया है। (ख) भाग में दी गयी धातुओं के गण और पद के विषय में जहाँ पर सन्देह हो, वहाँ पर धातुरूप-कोश में दिए हुए धातु के विवरण से सन्देह का निराकरण करें। (ग) भाग में दिए हुए शब्द अव्यय हैं, इनके रूप नहीं चलते हैं। (घ) भाग में दिए शब्द विशेषण हैं, इनके लिंग आदि विशेष्य के तुल्य होंगे। विशेषण-शब्द तीनों लिंगों में आते हैं। (घ) शब्दकोश में यह भी ध्यान रखा गया है कि जिस शब्द या धातु का प्रयोग उस अभ्यास में सिखाया गया है, उस प्रकार के अन्य शब्दों या धातुओं का भी अभ्यास उसी पाठ में कराया जाए। इसके लिए दो प्रकार अपनाए गए हैं। १. उस प्रकार के शब्द या धातुएँ शब्दकोश में दी गयी हैं। २. उस प्रकार के शब्दों या धातुओं का प्रयोग उसी पाठ के 'संस्कृत बनाओ' वाले अंश में सिखाया गया है। कोष्ठ में ऐसे शब्दों का संकेत कर दिया गया है। (ङ) शब्दकोश के विषय में इन संकेतों का उपयोग किया गया है—१. 'वत्' अर्थात् इसके तुल्य रूप चलेंगे। जैसे—रामवत्, राम के तुल्य रूप चलेंगे। भवतिवत्, भू धातु के तुल्य रूप चलेंगे। २. — डैश, यहाँ से लेकर यहाँ तक के शब्द या धातु। ३. > अर्थात् 'का रूप बनता है'। भू > भवति, अर्थात् भू का भवति रूप बनता है। (च) शब्दकोश में शब्द विविध वर्गों के अनुसार रखे गए हैं। प्रयत्न किया गया है कि उस वर्ग से सम्बद्ध शब्द उसी अभ्यास में दिए जायँ। अतः प्रत्येक वर्ग से सम्बद्ध शब्दों को उसी अभ्यास में देखें। प्रत्येक अभ्यास के शब्दकोश में (क) (ख) आदि के बाद निर्देश कर दिया गया है कि (क) या (ख) आदि में कितने शब्द दिए गए हैं। (छ) प्रत्येक अभ्यास में २५ नए शब्द हैं। प्रत्येक अभ्यास के प्रारम्भ में निर्देश किया गया है कि अबतक कितने शब्द पढ़ चुके हैं। ६० अभ्यासों में १५०० शब्दों का अभ्यास कराया गया है। लगभग इतने ही नए शब्दों और मुहावरों का प्रयोग 'संकेत' में सिखाया गया है। इस प्रकार लगभग ३ हजार शब्दों का ज्ञान विद्यार्थी को हो जाता है। शब्दकोश के शब्दों का वर्गीकरण इस प्रकार से है—

(क) अर्थात् संज्ञा या सर्वनाम शब्द	**११३४**
(ख) अर्थात् धातु या क्रिया शब्द	**२१५**
(ग) अर्थात् अव्यय शब्द	**६९**
(घ) अर्थात् विशेषण	**८२**
पठित एवं अभ्यस्त शब्दों का योग	**१५०० (शब्दकोश)**

(५) व्याकरण—(क) प्रत्येक अभ्यास में कुछ शब्दों और धातुओं का प्रयोग सिखाया गया है। अतः आवश्यक है कि उन शब्दों और धातुओं को प्रत्येक अभ्यास में अवश्य स्मरण कर लें। **(ख)** सम्पूर्ण संस्कृत व्याकरण को केवल ३०० नियमों में समाप्त किया गया है। इन ३०० नियमों को विषयों के अनुसार ६० अभ्यासों में बाँटा गया है। प्रत्येक

अभ्यास में कुछ नियमों का अभ्यास कराया गया है। इन नियमों को ठीक स्मरण कर लें। इनको ठीक स्मरण कर लेने पर ही संस्कृत में अनुवाद शुद्ध एवं सरलता से हो सकेगा। (ग) नियमों के साथ पाणिनि के प्रामाणिक सूत्र भी कोष्ठ में दिए गए हैं। (घ) यह भी प्रयत्न किया गया है कि ह्विटनी, काले, आप्टे आदि विद्वानों के द्वारा निर्दिष्ट नियम या विवरण भी न छूटने पावें। ऐसे नियमों या विवरणों के साथ पाणिनि के नियमों का भी संकेत कर दिया गया है। (ङ) इस पुस्तक में यह भी प्रयत्न किया गया है कि संस्कृत-व्याकरण के सभी उपयोगी एवं प्रचलित नियमों का संग्रह हो। जो नियम अप्रचलित एवं विशेष उपयोगी नहीं हैं, वे छोड़ दिए गए हैं।

(६) अनुवाद—(क) शब्दकोश में दिए शब्दों और व्याकरण के नियमों से सम्बद्ध वाक्य अनुवादार्थ दिए गए हैं। (ख) प्रत्येक पाठ में जिन शब्दों और धातुओं का अभ्यास कराया गया है, उनसे संबद्ध वाक्य तथा उनसे संबद्ध मुहावरे भी उसी अभ्यास में दिए गए हैं। (ग) कठिन वाक्य और मुहावरे वाले वाक्य काले टाइप में छपे हैं। उनकी संस्कृत नीचे 'संकेत' वाले अंश में दी गयी है। वहाँ देखें। कुछ विशेष मुहावरे सिखाने के लिए कतिपय सरल वाक्य भी काले टाइप में दिए गए हैं। उन सभी मुहावरों को सावधानी से स्मरण कर लें। (घ) व्याकरण के नियमों के जो उदाहरण संस्कृत में दिए हैं, उनका हिन्दी-रूप अनुवादार्थ दिया गया है। ऐसे वाक्यों की संस्कृत दिए गए नियमों के उदाहरणों में देखें। इनकी संस्कृत 'संकेत' में नहीं दी है। (ङ) प्रत्येक अभ्यास में प्रयुक्त शब्दों और धातुओं के तुल्य जिन शब्दों और धातुओं के रूप चलते हैं, उनका भी उसी पाठ में अभ्यास कराया गया है। ऐसे शब्द या धातुएँ उन अभ्यासों में कोष्ठ में दी गयी हैं।

(७) संकेत—(क) 'संस्कृत बनाओ' वाले अंश में जितना अंश काले टाइप में छपा है, उसकी संस्कृत 'संकेत' में उसी क्रम और उन्हीं वाक्य-संख्याओं के साथ दी गयी है। (ख) संस्कृत में प्रचलित मुहावरे इस अंश में विशेष रूप से दिए गए हैं। (ग) कठिन शब्दों की संस्कृत, सूक्तियाँ, व्याकरण के विशिष्ट प्रयोग तथा अन्य उपयोगी संकेत इस अंश में दिए गए हैं।

(८) परिशिष्ट—पुस्तक के अन्त में अत्यन्त उपयोगी १५ परिशिष्ट दिए गए हैं। इनका विशेष विवरण विषय-सूची तथा विषयानुक्रमणिका में देखें। यहाँ पर कुछ विशेष उल्लेखनीय बातों का ही निर्देश किया गया है।

(९) शब्दरूप-संग्रह—संस्कृत में विशेष प्रचलित सभी शब्दों के रूप इस परिशिष्ट में दिए गए हैं। पुंलिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग के शब्द प्रत्येक लिंग में अन्त्याक्षर के क्रम से दिए गए हैं। अन्य शब्दों के रूप लिंग तथा अन्त्याक्षर को देखकर इन शब्दों के तुल्य चलावें।

(१०) संख्याएँ—संस्कृत में १ से १०० तक गिनती तथा महाशंख तक संख्याएँ इस परिशिष्ट में दी गयी हैं।

(११) धातुरूप-संग्रह—संस्कृत में अधिक प्रयुक्त १०० धातुओं के दसों लकारों के रूप इस परिशिष्ट में दिए गए हैं। अन्य धातुओं के रूप गण तथा पद को देखकर इनके तुल्य चलावें।

(१२) धातुरूप-कोश—इस परिशिष्ट में संस्कृत में विशेष रूप से प्रयुक्त ४६५ धातुओं के दसों लकारों के प्रारम्भिक रूप दिए गए हैं। साथ में उनके अर्थ, गण और पद का भी निर्देश है। सभी धातुँ अकारादि-क्रम से दी गयी हैं।

(१३) प्रत्यय-विचार—१५ मुख्य कृत्-प्रत्ययों से बनने वाले सभी विशेष रूप इस परिशिष्ट में अकारादि-क्रम से दिए गए हैं।

(१४) सन्धि-विचार—इस परिशिष्ट में प्रयोग में आने वाले सभी सन्धिनियम ७५ नियमों में दिए गए हैं।

(१५) पत्रादि-लेखन-प्रकार—इस परिशिष्ट में संस्कृत में पत्र लिखना, प्रार्थना-पत्र देना, निमन्त्रण देना, परिषत्-सूचना और पुरस्कार-वितरण आदि का प्रकार बताया गया है।

(१६) निबन्ध-माला—इसमें उदाहरण के रूप में २० अत्युपयोगी विषयों पर संस्कृत में निबन्ध दिए गए हैं। इसमें प्रयत्न किया गया है कि भाषा न अति कठिन हो और न अति सरल। भाषा में प्रौढता के साथ ही प्रवाह और मुहावरे आदि भी हों। शास्त्रीय और साहित्यिक विषयों पर उद्धरणों की संख्या अधिक दी गयी है। इसका कारण यह है कि छात्र स्वयोग्यतानुसार उन उद्धरणों की व्याख्या आदि करें। छात्र इन निबन्धों के आधार पर संस्कृत में अन्य निबन्ध स्वयं लिखने का अभ्यास करें।

(१७) अनुवादार्थ गद्य-संग्रह—इस परिशिष्ट में ४० सन्दर्भ अनुवादार्थ दिए गए हैं। इनमें से अधिकांश प्रौढ संस्कृत-ग्रन्थों से लिए गए हैं और उनका हिन्दी-रूपान्तर अनुवादार्थ दिया गया है। 'संकेत' में मुहावरे आदि भी मूल रूप से दिए गए हैं। ऐसे सन्दर्भ भी अनुवादार्थ दिए गए हैं, जिनके अभ्यास से संस्कृत साहित्य और नाट्यशास्त्र आदि का ज्ञान प्राप्त हो सके।

(१८) सुभाषित-मुक्तावली—इसमें १४६७ सुभाषित १७ प्रमुख शीर्षकों तथा ८४ उपशीर्षकों में दिए गए हैं। सुभाषित अकारादि-क्रम से दिए गए हैं। यथासम्भव उनके मूल आकार-ग्रन्थों का भी संकेत किया गया है। ये सुभाषित निबन्ध, व्याख्यान आदि के लिए अत्युपयोगी हैं।

(१९) पारिभाषिक शब्दकोश—इसमें १६५ व्याकरण के पारिभाषिक शब्द अकारादि-क्रम से पूर्ण विवरण के साथ दिए हैं। साथ में पाणिनि के सूत्रादि भी दिए गए हैं। व्याकरण ठीक समझने के लिए इनका ज्ञान अनिवार्य है।

(२०) हिन्दी-संस्कृत-शब्दकोश—इस पुस्तक में प्रयुक्त सभी शब्दों का इसमें संग्रह किया गया है। अकारादि-क्रम से हिन्दी-शब्द दिए गए हैं। इनके आगे उनकी संस्कृत दी गयी है। शब्दों के आगे लिंग-निर्देश आदि भी किया गया है।

(२१) **विषयानुक्रमणिका**—पुस्तक में वर्णित सभी विषयों का इस परिशिष्ट में अकारादि-क्रम से उल्लेख है। प्रत्येक विषय के आगे पृष्ठ-संख्या के द्वारा निर्देश किया गया है कि वह विषय अमुक पृष्ठ पर मिलेगा।

(२२) **मुद्रण**—मुद्रण में ह्रस्व और दीर्घ ऋ में यह अन्तर रखा गया है। इसे स्मरण रखें। ऋ = ह्रस्व ऋ। ॠ = दीर्घ ॠ।

पुस्तक की विशेषताएँ

(१) इंग्लिश, जर्मन, फ्रेंच और रूसी भाषाओं में अपनायी गयी नवीनतम वैज्ञानिक पद्धति इस पुस्तक में अपनायी गयी है।

(२) प्रौढ संस्कृत-ज्ञान के लिए उपयुक्त समस्त व्याकरण अनुवाद और प्रौढ वाक्य-रचना के द्वारा अति सरल और सुबोध रूप में समझाया गया है।

(३) केवल ६० अभ्यासों में ३०० नियमों के द्वारा समस्त आवश्यक व्याकरण समाप्त किया गया है। नियमों के साथ पाणिनि के सूत्र भी दिए गए हैं।

(४) ४८ वर्गों और १२ विशिष्ट शब्द-संग्रहों के द्वारा सभी उपयोगी और आवश्यक शब्दों का संग्रह किया गया है। प्रत्येक अभ्यास में २५ नए शब्द हैं। १५०० उपयोगी शब्दों और धातुओं का प्रयोग सिखाया गया है।

(५) लगभग एक सहस्र संस्कृत की लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग अनुवाद के द्वारा सिखाया गया है।

(६) परिशिष्ट में लगभग १५०० सुभाषितों की 'सुभाषित-मुक्तावली' विभिन्न ८८ विषयों पर अकारादि-क्रम से दी गयी है।

(७) संस्कृत साहित्य के उच्च कोटि के अन्य ग्रन्थों से अनुवादार्थ सन्दर्भों का संचयन किया गया है। इनके लिए उपयुक्त संकेत भी दिए गए हैं।

(८) सभी प्रचलित शब्दों के रूपों का संग्रह किया गया है।

(९) १०० विशेष प्रचलित धातुओं के दसों लकारों के रूपों का संकलन 'धातुरूप-संग्रह' में किया गया है। 'धातुरूप-कोष' में अत्युपयोगी ४६५ धातुओं के दसों लकारों के प्रारम्भिक रूप दिए गए हैं। साथ में उनके अर्थ, गण और पद का भी निर्देश है। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गयी हैं।

(१०) सभी उपयोगी व्याकरण की बातों का संग्रह किया गया है। जैसे सन्धि-विचार, कारक-विचार, समास विचार, क्रिया-विचार, कृत्प्रत्यय-विचार, तद्धित-प्रत्यय-विचार, स्त्री-प्रत्यय-विचार आदि।

(११) व्याकरण-ज्ञान के लिए अनिवार्य १३५ पारिभाषिक शब्दों का एक 'पारिभाषिक-शब्दकोश' अकारादि-क्रम से परिशिष्ट में दिया गया है।

(१२) अत्युपयोगी २० विषयों पर प्रौढ संस्कृत में निबन्ध दिए गए हैं।

(१३) प्रत्येक अभ्यास में व्याकरण के कुछ विशेष नियमों का अभ्यास कराया गया है और अनुवादार्थ अत्युपयोगी संकेत दिए गए हैं।

(१४) परिशिष्ट के अन्त में बृहत् हिन्दी-संस्कृत-शब्दकोश भी दिया गया है।

कृतज्ञता-प्रकाशन

इस पुस्तक के लेखन में मुझे जिन महानुभावों से विशेष आवश्यक परामर्श, प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला है, उनमें विशेष उल्लेखनीय ये हैं। मैं इनका कृतज्ञ हूँ।

सर्वश्री राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, डॉ० सम्पूर्णानन्द, डॉ० ज० कि० बलवीर (पेरिस), पं० छेदीप्रसाद व्याकरणाचार्य (गुरुकुल म० वि० ज्वालापुर), स्वामी अमृतानन्द सरस्वती (रामगढ़, नैनीताल), डॉ० हरिदत्त शास्त्री सप्ततीर्थ (कानपुर), श्रीमती ओम्शान्ति द्विवेदी, श्री पुरुषोत्तमदास मोदी।

अन्त में विद्वज्जन से निवेदन है कि वे पुस्तक के विषय में जो भी संशोधन, परिवर्तन, परिवर्धन आदि का विचार भेजेंगे, वह बहुत कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया जायगा।

कपिलदेव द्विवेदी

गर्वनमेण्ट कॉलेज, नैनीताल

ता० १-६-६० ई०

परिवर्धित एवं परिष्कृत संस्करण की भूमिका

संस्कृत-प्रेमी शिक्षकों और छात्रों ने इस पुस्तक का जो हार्दिक स्वागत किया है, तदर्थ उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। उत्तर भारत के प्राय: सभी विश्वविद्यालयों ने इसको अपने पाठ्यक्रम में स्थान दिया है, तदर्थ उनका अनुगृहीत हूँ। जिन विद्वानों ने आवश्यक संशोधनादि के विचार भेजे हैं, उनको विशेष धन्यवाद देता हूँ। उनके संशोधनादि के विचारों का यथासम्भव पूर्ण पालन किया गया है। पुस्तक को विशेष उपयोगी बनाने के लिए इस संस्करण में ३२ पृष्ठ और बढ़ाए गए हैं। १०० धातुओं के क्त आदि प्रत्ययों से बने रूपों की सारणी दी गयी है। वाक्यार्थ में प्रयुक्त होनेवाले शब्दों का एक संग्रह दिया गया है। १० निबन्धों को विस्तृत करके समस्त उद्धरणों को पूर्ण किया गया है तथा परिवर्धित रूप में लिखा गया है। यथास्थान आवश्यक सभी परिवर्तन, परिवर्धन और संशोधनादि किए गए हैं।

इस संस्करण को कम्प्यूटर द्वारा कम्पोज़ कराकर नया परिष्कृत रूप दिया गया है। प्रयत्न किया गया है कि ग्रन्थ पूर्ण रूप से शुद्ध हो। आशा है प्रस्तुत संस्करण छात्रों के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होगा।

—कपिलदेव द्विवेदी

शान्तिनिकेतन,
ज्ञानपुर (भदोही)
स्वतन्त्रता-दिवस
दिनांक १५-८-२००२ ई०

आवश्यक निर्देश

१. 'संस्कृत' शब्द का अर्थ है—शुद्ध, परिमार्जित, परिष्कृत। अतः संस्कृत भाषा का अर्थ है—शुद्ध एवं परिमार्जित भाषा।

२. निम्नलिखित १४ माहेश्वर सूत्र हैं। इनमें पूरी वर्णमाला इस प्रकार दी हुई है—क्रमशः स्वर, अन्तःस्थ, वर्ग के पंचम, चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय, प्रथम वर्ण, ऊष्म।

१. अइउण्। २. ऋऌक्। ३. एओङ्। ४. ऐऔच्। ५. हयवरट्। ६. लण्। ७. ञमङणनम्। ८. झभञ्। ९. घढधष्। १०. जबगडदश्। ११. खफछठथचटतव्। १२. कपय्। १३. शषसर्। १४. हल्।

३. पाणिनि के सूत्रों में प्रत्याहारों का प्रयोग है। प्रत्याहार का अर्थ है संक्षेप में कहना। उपर्युक्त सूत्रों से प्रत्याहार बनाने के लिए ये नियम हैं—(क) प्रत्याहार बनाने के लिए पहला अक्षर सूत्र में जहाँ हो, वहाँ से लें और दूसरा अक्षर सूत्रों के अन्तिम अक्षरों में ढूँढ़ें। (ख) सूत्रों के अन्तिम अक्षर (ण्, क् आदि) प्रत्याहार में नहीं गिने जाते हैं। वे प्रत्याहार बनाने के साधन हैं। जैसे—अल् प्रत्याहार—प्रथम अ से लेकर हल् के ल् तक। इक्—इ उ ऋ ऌ। अच्—अ से औ तक पूरे स्वर। हल्—सारे व्यंजन।

४. संस्कृत में ३ वचन होते हैं—एकवचन (एक०), द्विवचन (द्वि०), बहुवचन (बहु०)। तीन पुरुष होते हैं—प्रथम या अन्य पुरुष (प्र० पु० या प्र०) मध्यम पुरुष (म० पु० या म०), उत्तम पुरुष (उ० पु० या उ०)। कारक ६ हैं। षष्ठी और संबोधन को लेकर आठ कारक (विभक्तियाँ) होते हैं। इनके नाम और चिह्न ये हैं :—

विभक्ति	कारक	चिह्न	विभक्ति	कारक	चिह्न
(१) प्रथमा (प्र०)	कर्ता	—, ने	(५) पंचमी (पं०)	अपादान	से
(२) द्वितीया (द्वि०)	कर्म	को	(६) षष्ठी (ष०)	सम्बन्ध	का, के, की
(३) तृतीया (तृ०)	करण	ने, से, द्वारा	(७) सप्तमी (स०)	अधिकरण	में, पर
(४) चतुर्थी (च०)	संप्रदान	के लिए	(८) संबोधन (सं०)	संबोधन	हे, अये, भोः

कर्ता कर्म च करणं संप्रदानं तथैव च।
अपादानाधिकरणमित्याहुः कारकाणि षट्॥

५. संस्कृत में क्रिया के १० लकार (वृत्तियाँ) होते हैं। इनके नाम तथा अर्थ ये हैं—(१) लट् (वर्तमान काल), (२) लोट् (आज्ञा अर्थ), (३) लङ् (अनद्यतन भूतकाल), (४) विधिलिङ् (आज्ञा या चाहिए अर्थ), (५) लृट् (भविष्यत् काल), (६) लिट् (अनद्यतन परोक्ष भूत), (७) लुट् (अनद्यतन भविष्यत्), (८) आशीर्लिङ् (आशीर्वाद), (९) लुङ् (सामान्य भूत) (१०) लृङ् (हेतुहेतुमद् भूत या भविष्यत्)।

६. धातुएँ तीन प्रकार की हैं, अतः धातुओं के रूप तीन प्रकार से चलते हैं। परस्मैपदी (प०; ति तः अन्ति आदि अन्त में)। आत्मनेपदी (आ०; ते एते अन्ते आदि अन्त में)। उभयपदी (उ०, दोनों प्रकार के रूप)।

७. संस्कृत में १० गण (धातुओं के विभाग) होते हैं। प्रत्येक धातु किसी एक गण में आती है। इनके लिए कोष्ठगत संकेत हैं। भ्वादिगण (१), अदादि० (२), जुहोत्यादि० (३), दिवादि० (४), स्वादि० (५), तुदादि० (६), रुधादि० (७), तनादि० (८), क्र्यादि० (९), चुरादि० (१०)। ११वाँ गण कण्वादिगण है।

८. शब्दकोष में इन संकेतों का प्रयोग किया गया है। इन्हें स्मरण रखें।
(क) = संज्ञा या सर्वनाम शब्द। (ख) = धातु या क्रिया शब्द।
(ग) = अव्यय या क्रिया-विशेषण। (घ) = विशेषण शब्द।

शब्दकोष—२५] **अभ्यास १** (व्याकरण)

(क) रामः (राम), पातोत्पातः (उत्थान-पतन), सद्वृत्तः (सदाचारी), दुराचारः (दुराचारी), वैधेयः (मूर्ख), बुभुक्षितः (भूखा), मल्लः (पहलवान)। (७)। (ख) भू (होना), अनुभू (अनुभव करना), प्रभू (१. प्रकट होना, २. समर्थ होना, ३. अधिकार होना, ४. बराबर होना, ५. समाना), पराभू (हराना), परिभू (तिरस्कृत करना), अभिभू (हराना, दबाना), सम्भू (उत्पन्न होना), उद्भू (पैदा होना), आविर्भू (प्रकट होना), तिरोभू (छिप जाना), प्रादुर्भू (जन्म लेना), अर्ह् (योग्य होना), परिहस् (हँसी करना), प्रलप् (बकवाद करना)। (१४)। (ग) परमार्थतः (सत्य, ठीक), नाम (निश्चय से)। (२)। (घ) मधुरम् (मीठा), तीव्रम् (तेज)। (२)

व्याकरण (राम, लट्, प्रथमा, द्वितीया)

१. राम शब्द के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्दरूप संख्या १)

२. भू तथा हस् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातुरूप संख्या १, २)

३. भू धातु के उपसर्ग लगाने से हुए विशेष अर्थों को स्मरण करो और उनका प्रयोग करो।

नियम १—कर्तृवाच्य में कर्ता (व्यक्तिनाम, वस्तुनाम आदि) में प्रथमा होती है और कर्मवाच्य में कर्म में प्रथमा होती है। जैसे—रामः पठति। अश्वो धावति। रामेण पाठः पठ्यते।

नियम २—किसीके अभिमुखीकरण तथा संमुखीकरण में (सम्बोधन करने में) सम्बोधन विभक्ति होती है। जैसे—हे राम, हे कृष्ण।

नियम ३—(कर्तुरीप्सिततमं कर्म) कर्ता जिसको (व्यक्ति, वस्तु या क्रिया को) विशेष रूप से चाहता है, उसे कर्म कहते हैं।

नियम ४—(कर्मणि द्वितीया) कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे—स पुस्तकं पठति। स रामं पश्यति। ते प्रश्नं पृच्छन्ति।

नियम ५—(अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि) अभितः, परितः, समया, निकषा, हा और प्रति के साथ द्वितीया होती है। जैसे—नृपम् अभितः परितः वा। ग्रामं समया निकषा वा (गाँव के समीप)। बुभुक्षितं न प्रतिभाति किंचित्।

नियम ६—(उभसर्वतसोः कार्या०) उभयतः, सर्वतः, धिक् उपर्युपरि, अधोऽधः अध्यधि के साथ द्वितीया होती है। जैसे—कृष्णमुभयतो गोपाः। नृपं सर्वतो जनाः। धिक् नास्तिकम्।

नियम ७—गति (चलना, हिलना, जाना) अर्थ की धातुओं के साथ द्वितीया होती है। गत्यर्थ का आलंकारिक प्रयोग होगा तो भी द्वितीया होगी। जैसे—गृहं गच्छति। वनं विचरति। तृप्तिं ययौ। मम स्मृतिं यातः। उमाख्यां जगाम। निद्रां ययौ।

नियम ८—अकर्मक धातुएँ उपसर्ग पहले लगने से प्रायः अर्थानुसार सकर्मक हो जाती हैं, उनके साथ द्वितीया होगी। जैसे—हर्षमनुभवति। स खलम् अभिभवति। स शत्रुं परिभवति पराभवति वा। वृक्षमारोहति। दिवमुत्पतति। स्वामिचित्तमनुवर्तते।

नियम ९—स्मृ धातु के साथ साधारण स्मरण में द्वितीया होती है। खेदपूर्वक स्मरण में षष्ठी होती है। जैसे—स पाठं स्मरति (वह पाठ याद करता है)। बालः मातुः स्मरति। (बालक खेद के साथ माता को स्मरण करता है।)

अभ्यास १

१. संस्कृत बनाओ—(क) (रामं, लट्) १. राम मीठे स्वर से पढ़ता है। २. देवता तेरा चरित लिख रहे हैं। ३. होनहार होकर ही रहती है। ४. जीवन में उत्थान और पतन सबके ही होते हैं। ५. वह तिल का ताड़ बनाता है। ६. उसे पुरस्कार मिलना चाहिए। ७. वह सदाचारी है, अतः उसका सर्वत्र सम्मान होना चाहिए। ८. वह दुराचारी है, अतः आदर के योग्य नहीं है। ९. दुष्ट व्यक्ति दूसरों के सरसों के बराबर भी छोटे दोषों को देखता है और अपने बड़े दोषों को देखता हुआ भी नहीं देखता है। १०. मैं तुमसे हँसी नहीं कर रहा हूँ, ठीक कह रहा हूँ। ११. मनुष्य का भाग्य रथ-चक्र के सदृश कभी नीचे जाता है और कभी ऊपर। १२. यह मूर्ख बकवाद करता है। **(ख) (भू धातु)** १. क्रोध से मोह होता है (भू)। २. भाग्य से ही धन मिलता है और नष्ट होता है। ३. ऐसा कैसे हो सकता है? ४. चाहे जो हो, मैं यह काम अवश्य करूँगा। ५. उस बालक का क्या हाल हुआ? ६. यदि तुम्हें सन्देह हो तो पिता से पूछना। ७. दुष्ट, यदि प्रहार करेगा तो जीवित नहीं बचेगा। ८. यह जल आपके पैर धोने का काम देगा। ९. जो विद्या पढ़ता है, वह हर्ष का अनुभव करता है। १०. सज्जन सुख का अनुभव करता है। ११. वृक्ष अपने ऊपर तीक्ष्ण गर्मी सहन करता है। १२. तुम अपने किए हुए पुण्य कर्मों का फल भोग रहे हो (अनुभू)। १३. लोभ से क्रोध होता है (प्रभू)। १४. गंगा हिमालय से निकलती है (प्रभू)। १५. भाग्य बलवान् है। १६. आग के अतिरिक्त और कौन जला सकता है? **(ग) (द्वितीया)** १. उसने प्रश्न पूछा। २. नदी के दोनों ओर खेत (क्षेत्राणि) हैं। ३. नगर के चारों ओर वन है। ४. नगर के पास ही एक सुन्दर उपवन है। ५. भूखे को कुछ अच्छा नहीं लगता है। ६. संसार के ऊपर, अन्दर और नीचे ईश्वर है। ७. सिंह वन में घूमता है (विचर्)। ८. यह बात मेरी समझ में आई। ९. वह पेड़ पर चढ़ता है। १०. छात्र पाठ याद कर रहा है। ११. उसका नाम राम रखा गया। १२. उसे नींद आ गई।

संकेत—(क) १. मधुरम्। २. त्वच्चरितम्। ३. भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र। ४. पातोत्पाताः। ५. तिले तालं पश्यति। ६. पुरस्कारमर्हति। ७. सम्मानमर्हति। ८. समादरं नार्हति। ९. खलः सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति। आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति। १०. नाहं परिहसामि, परमार्थतः। ११. नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण। १२. प्रलपत्येष वैधेयः **(ख)** २. भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति। ३. कथमेवं भवेन्नाम। ४. यद्भावि तद्भवतु। ५. किमभवत्। ६. यदि ते संशयो भवेत्। ७. प्रहरिष्यसि—न भविष्यसि। ८. इदं ते पादोदकं भविष्यति। ९. हर्षमनुभवति। ११. अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णम्। १५. प्रभवति विधिः। १६. कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति।

शब्दकोष—२५+२५=५०] **अभ्यास २** (व्याकरण)

(क) गृहम् (घर), नियोग: (आज्ञा, निर्धारित कार्य), शिलापट्टः (शिला), अर्थप्रतिपत्तिः (स्त्री०, अर्थज्ञान)। (४)। **(ख)** अनुष्ठा (करना), अधिवस् (रहना), उपवस् (उपवास करना, रहना), दण्डि (दण्ड देना), अवचि (चुनना), मुष् (चुराना)। (६)। **(ग)** तावत् (तो, जरा), मुहूर्तम् (थोड़ी देर), जोषम् (चुप), अन्तरा (बीच में), अन्तरेण (बिना, बारे में), किं नु (क्या), अनु (बाद में, घटिया, किनारे), उप (समीप, घटिया), अति (बढ़कर), अभि (समीप), दिवा (दिन में), नक्तम् (रात में)। (१२)। **(घ)** वाचंयमः (मौन), अब्रह्मण्यम् (अनर्थ), सकुसुमास्तरणम् (फूल के बिस्तर से युक्त)। (३)।

व्याकरण (गृह, लोट्, द्वितीया)

१. गृह शब्द के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्दरूप संख्या ६१)

२. पठ् तथा रक्ष् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ३, ४)

नियम १०—(अन्तरान्तरेणयुक्ते) अन्तरा और अन्तरेण के साथ द्वितीया होती है। विना के साथ भी द्वितीया होती है। गङ्गां यमुनां चान्तरा प्रयागः। ज्ञानमन्तरेण न सुखम्। भवन्तमन्तरेण (आपके बारे में) कीदृशोऽस्या अनुरागः। श्रमं विना न सिद्धिः।

नियम ११—(अधिशीङ्स्थासां कर्म) अधिशी, अधिस्था और अध्यास् धातु के साथ आधार में द्वितीया होती है। जैसे—आसनमधिशेते, अधितिष्ठति, अध्यास्ते वा।

नियम १२—(अभिनिविशश्च) अभि+नि+विश् धातु के साथ आधार में द्वितीया होती है। जैसे—अभिनिविशते सन्मार्गम् (सन्मार्ग पर चलता है)। परन्तु पापेऽभिनिवेशः भी रूप बनता है।

नियम १३—(उपान्वध्याङ्वसः) उप, अनु, अधि और आ उपसर्ग के साथ वस् धातु होगी तो उसके आधार में द्वितीया होगी, किन्तु उपवास करना अर्थ में सप्तमी होगी। जैसे— हरिः वैकुण्ठम् उपवसति अनुवसति अधिवसति आवसति वा (रहता है)। वने उपवसति (वन में उपवास करता है)-उपवास अर्थ के कारण सप्तमी होगी।

नियम १४—(कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे) समय और मार्ग के दूरीवाची शब्दों में द्वितीया होती है, जब कार्य निरन्तर हुआ हो। मासं पठति। क्रोशं गच्छति। क्रोशं कुटिला नदी (नदी एक कोस तक टेढ़ी है)।

नियम १५—इन उपसर्गों के साथ इन अर्थों में द्वितीया होती है—अनु (बाद में, घटिया, किनारे), उप (समीप, घटिया), अति (बढ़कर), अभि (समीप)। क्रमशः उदाहरण हैं :—जपमनु प्रावर्षत्। अनु हरिं सुराः। नदीमनु सेना। उप हरिं सुराः। अति देवान् कृष्णः। भक्तो हरिमभि वर्तते।

नियम १६—(दुह्याच्पच्दण्ड्०) ये धातुएँ द्विकर्मक हैं। इन अर्थोंवाली अन्य धातुएँ भी द्विकर्मक हैं। इनके साथ दो कर्म होते हैं—दुह्, याच्, पच्, दण्ड्, रुध्, प्रच्छ्, चि, ब्रू, शास्, जि, मथ्, मुष्, नी, हृ, कृष्, वह्। जैसे—गां दोग्धि पयः। बलिं याचते वसुधाम्। तण्डुलान् ओदनं पचति। गर्गान् शतं दण्डयति। व्रजमवरुणद्धि गाम्। माणवकं पन्थानं पृच्छति। वृक्षमवचिनोति फलानि। माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा। शतं जयति देवदत्तम्। सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति। देवदत्तं शतं मुष्णाति। अजां ग्रामं नयति, हरति, कर्षति, वहति वा।

अभ्यास २

संस्कृत बनाओ—(क) (गृह, लोट्) १. जरा रुकिये। २. जरा यह बात बन्द कीजिये। ३. चुप रहो। ४. उस मूर्ख को बकवाद करने दो, तुम सज्जन हो अतः मौन रहो। ५. अपना काम करो। ६. अपने काम पर जाओ। ७. आगे कहिये, वहाँ क्या अनर्थ हो गया? ८. भला या बुरा चाहे जो हो, मैं अपने वचन का पालन करूँगा। (ख) (भू) १. मैं कठिन परिश्रम के बिना (विना, अन्तरेण) सफलता नहीं प्राप्त कर सकता हूँ। २. आपका छात्रों पर अधिकार है। ३. यदि अपने-आपको सँभाल सकी तो यहाँ से जाऊँगी। ४. यह पहलवान उस पहलवान से लड़ सकता है। ५. वह अति प्रसन्नता से फूला नहीं समाया। ६. बाँधें या छोड़ें, यह आपका अधिकार है। ७. राजा शत्रु को हराता है (पराभू)। ८. भरत सिंह-शावक को तिरस्कृत कर रहा है। (परिभू)। ९. तुझे कौन दबा सकता है (अभिभू)? १०. आप जैसे विरले ही संसार में जन्म लेते हैं (सम्भू)। ११. दरिद्रता से दुःख उत्पन्न होते हैं (उद्भू)। १२. रात्रि में चन्द्रमा निकलता है (आविर्भू)। १३. सुख में सुख उत्पन्न होते हैं (प्रादुर्भू) और दुःख में दुःख। १४. दिन में तारे छिप जाते हैं (तिरोभू) और रात में निकलते हैं (प्रादुर्भू)। १५. यह विचार मेरे मन में आया (प्रादुर्भू)। (ग) (द्वितीया) १. दूधयुक्त भोजन अमृत है, प्रिय का मिलन अमृत है, राजसम्मान अमृत है, जाड़े में आग अमृत है। २. द्युलोक और पृथ्वी के बीच में अन्तरिक्ष है। ३. परिश्रम के बिना सुख नहीं है। ४. अर्थ जाने बिना प्रवृत्ति की योग्यता नहीं होती। ५. मैं आज विद्यालय नहीं गया, आचार्य मेरे बारे में क्या सोचेंगे, यह चिन्ता मुझे व्याकुल कर रही है। ६. शकुन्तला फूलों के बिस्तरवाली शिला पर लेटी है। ७. राम दुर्गम वन में रहे। ८. बालक पलँग पर बैठा है (अध्यास्)। ९. राम सन्मार्ग पर चलता है (अभिनिविश्)। १०. उसकी पाप में प्रवृत्ति है। ११. राम पंचवटी में बहुत दिन रहे (अधिवस्)। १२. गांधीजी ने अपने आश्रम में २१ दिन का उपवास किया। १३. वह बारह वर्ष गुरुकुल में पढ़ा। १४. वह प्रातः कोसभर घूमने जाता है। १५. यज्ञ के बाद वर्षा हुई। १६. सब कवि कालिदास से घटिया हैं। १७. गंगा के किनारे हरिद्वार है। १८. सब राजा राम से घटिया हैं। १९. कपिल सब मुनियों से बढ़कर हैं। २०. राम के पास भक्त हैं। २१. वह गाय का दूध दुहता है। २२. वह राजा से धन माँगता है। २३. वह चावलों से भात पकावे। २४. राजा ने अपराधी पर सौ रुपया जुर्माना किया। २५. वह बकरी को बाड़े में बन्द करता है।

संकेत—(क) १. तिष्ठतु तावत्। २. मुहूर्तं तदास्ताम्। ३. आस्स्व। ५. अनुतिष्ठात्मनो नियोगम्। ६. स्वनियोगमशून्यं कुरु। ७. ततः परं कथय। ८. शुभं वाऽशुभं वा। (ख) १. साफल्यं लब्धुं न प्रभवामि। २. प्रभवति भवान् छात्राणाम्। ३. यद्यात्मनः प्रभविष्यामि। ४. प्रभवति मल्लो मल्लाय। ५. गुरुः प्रहर्षः प्रबभूव नात्मनि। ६. प्रभवति भवान् बन्धे मोक्षे च। १०. भवादृशा विरला एव। ११. दारिद्र्यात्। (ग) १. अमृतं क्षीरभोजनम्, शिशिरे। ५. मामन्तरेण, मां बाधते। ७. अध्यास्त। ८. पल्यङ्कम्। ११. अध्युवास। १२. उपावसत्। १४. भ्रमति। १५. अनु। १६. अनु। १७. गङ्गामनु। १८. उप। १९. अति मुनीन्। २०. अभि।

शब्दकोष—५०+२५=७५] **अभ्यास ३** (व्याकरण)

(क) शिखा (चोटी), संचिका (कापी), लेखनी (स्त्री०, होल्डर), कौमुदी (स्त्री०, चाँदनी), प्राघुणिकः (अतिथि, पाहुन), आतिथेयः (अतिथि-सत्कारकर्ता), कूर्चम् (दाढ़ी)। (७)। (ख) गम् (जाना, बीतना, प्राप्त होना), आगम् (आना), अनुगम् (पीछे जाना), अवगम् (जानना), अधिगम् (प्राप्त करना, जानना), अभ्युपगम् (स्वीकार करना), अभ्यागम् (आना), प्रत्यागम् (लौटकर आना), निर्गम् (निकलना), संगम् (मिलना), उद्गम् (निकलना, उड़ना), अपगम् (नष्ट होना), उपगम् (पास जाना), परागम् (लौटना), प्रत्युद्गम् (स्वागतार्थ जाना), समधिगम् (पाना, जानना), ताडि (मारना)। (१७)। (घ) असंस्तुतम् (अपरिचित)। (१)

व्याकरण (रमा, मति, नदी, लङ् तृतीया)

१. रमा, मति, नदी के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ४१, ४२, ४३)

२. भू तथा अन्य तत्सम धातुओं के लङ् के रूप स्मरण करो।

३. गम् और वद् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ५, ६)

नियम १७—(साधकतमं करणम्) क्रिया की सिद्धि में सहायक को करण कहते हैं।

नियम १८—(कर्तृकरणयोस्तृतीया) करण में तृतीया होती है और कर्मवाच्य या भाववाच्य में कर्ता में। तृतीया मुख्यतः दो अर्थों को बताती है—(१) कर्ता, (२) साधन। जैसे—कन्दुकेन क्रीडति, दण्डेन चलति, बाणेन हन्ति। रामेण गृहं गम्यते। रामेण पाठः पठितः।

नियम १९—(प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्) प्रकृति आदि शब्दों में तृतीया होती है। ये शब्द साधारणतया क्रियाविशेषण या क्रिया-विशेषण-वाक्यांश होते हैं। जैसे—प्रकृत्या साधुः। सुखेन जीवति। दुःखेन जीवति। नाम्ना रामोऽयम्। गोत्रेण काश्यपः। समेनैति। विषमेणैति।

नियम २०—(अपवर्गे तृतीया) समय और मार्ग के दूरीवाची शब्दों में तृतीया होती है, यदि कार्य की सफलता बताई जाए। मासेन ग्रन्थोऽधीतः। क्रोशेन पाठोऽधीतः। दशभिर्दिनैरारोग्यं लब्धवान् (दस दिन में नीरोग हुआ)।

नियम २१—(सहयुक्तेऽप्रधाने) सह, साकम्, सार्धम्, समम् आदि के साथ तृतीया होती है, साथ अर्थ हो तो। पित्रा सह साकं सार्धं समं वा गृहं गच्छति। मृगा मृगैः सङ्गमनुव्रजन्ति (मृग मृगों के साथ चलते हैं।)

नियम २२—(येनाङ्गविकारः) जिस अंग में विकार से शरीर विकृत दिखाई पड़े अर्थात् शरीर ही विकृत माना जाय, उसमें तृतीया होती है। नेत्रेण काणः। पादेन खञ्जः। कर्णेन बधिरः। शिरसा खल्वाटः।

नियम २३—(इत्थंभूतलक्षणे) जिस चिह्न से किसी व्यक्ति या वस्तु का बोध होता है, उसमें तृतीया होती है। जटाभिस्तापसः। कूर्चेन यवनः। शिखया हिन्दुः।

नियम २४—(हेतौ) कारण-बोधक शब्दों में तृतीया होती है। अध्ययनेन वसति। पुण्येन दृष्टो हरिः। श्रमेण धनं विद्या वा भवति। विद्यया यशो लभते।

नियम २५—लङ् लुङ् और लृङ् में अ या आ शुद्ध धातु से पहले ही लगेगा, उपसर्ग से पूर्व नहीं। अतः उपसर्गयुक्त धातुओं में लङ् आदि में धातु से पहले अ या आ लगाकर उपसर्ग मिलावें। (सन्धिकार्य भी करें)। जैसे—अनुगम् > अन्वगच्छत्, उद्गम् > उदगच्छत्।

अभ्यास ३

संस्कृत बनाओ—(क) (रमा, लङ्) १. सुशीला सवेरे उठी, उसने माता और पिता को प्रणाम किया, पाठ पढ़ा, लेख लिखा, व्याकरण याद किया, खाना खाया और विद्यालय गई। २. पार्वती उपवन में गई, उसने फल देखे, फूल सूँघे, पेड़ पर चढ़ी, लता से फूल चुने और फूलों को घर लाई। ३. न इधर का रहा, न उधर का रहा। ४. लड़की पराई सम्पत्ति है। (ख) (गम् धातु) १. मेरा शरीर आगे जा रहा है और मन अपरिचित-सा होकर पीछे की ओर दौड़ता है। २. बुद्धिमानों का समय काव्य-शास्त्र के विनोद में बीतता है। ३. निरर्थक बकवाद से विद्वानों में मेरी हँसी हो जाएगी। ४. न चले तो गरुड भी एक पैर नहीं सरक सकता। ५. उस बालिका का नाम भारती रखा गया। ६. जलाशय तक प्रिय व्यक्ति को पहुँचाने जाना चाहिए। ७. राजा दिलीप छाया की तरह उस गाय के पीछे चला। ८. सुदक्षिणा इस प्रकार गाय के मार्ग पर चली, जैसे श्रुति के अर्थ के पीछे स्मृति चलती है। ९. मैं आपकी बात नहीं समझा। १०. आगे की बात तो समझ में आ गई। ११. मैं अपने-आपको अपराधी-सा समझ रहा हूँ। १२. मेरी बुद्धि कुछ निश्चय नहीं कर पा रही है। १३. अगस्त्य आदि ऋषियों से वेदान्त पढ़ने के लिए मैं वाल्मीकि के पास से यहाँ आई हूँ। १४. हम आपकी यह बात स्वीकार करते हैं। १५. मेरे घर पाहुन (अतिथि) आए हैं, १६. सज्जन सज्जनों के घर आते हैं। १७. कमला विद्यालय से घर लौटकर आई (प्रत्यागम्)। १८. ऋषि दयानन्द घर से निकलकर वन में गए। १९. प्रयाग में गंगा और यमुना मिलती हैं। २०. मिलकर चलो, मिलकर बोलो। २१. चन्द्रमा निकलता है, अन्धकार दूर होता है। २२. पक्षी आकाश में उड़कर जाते हैं। २३. शिष्य गुरु के पास गया। २४. मेघरहित चन्द्रमा को चाँदनी प्राप्त हुई। (ग) (तृतीया) १. कमला ने होल्डर से कॉपी पर लेख लिखा। २. उमा ने डंडे से बन्दर को मारा। ३. बालक गेंद से खेला। ४. धनहीन दुःख से जीते हैं। ५. शान्ति ने सरलता से पुस्तक पढ़ ली। ६. उसका नाम कृष्ण है। ७. उसका गोत्र भारद्वाज है। ८. वह सममार्ग से आता है। ९. उसने एक वर्ष में गीता पढ़ी। १०. वह सात दिन में नीरोग हुआ। ११. वह धर्म से बढ़ता है।

संकेत—(क) १. उदतिष्ठत्, पितरौ। २. आरोहत्, अचिनोत्, आनयत्। ३. इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः। ४. अर्थो हि कन्या परकीय एव। (ख) १. धावति पश्चादसंस्तुतं चेतः। २. कालो गच्छति धीमताम्। ३. अनर्गलप्रलापेन विदुषां मध्ये गमिष्याम्युपहास्यताम्। ४. अगच्छन् वैनतेयोऽपि। ५. भारत्याख्यां जगाम। ६. ओदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्यः। ७. छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत्। ८. श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्। ९. न खल्ववगच्छामि। १०. परस्तादवगम्यत एव। ११. कृतापराधमिवात्मानमवगच्छामि। १२. न मे बुद्धिर्निश्चयमधिगच्छति। १३. तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्याम्। १४. अभ्युपगतं तावदस्माभिरेवम्। १५. अभ्यागतः। १८. गृहान्निर्गत्य। १९. संगच्छेते (सम्+गम् आत्मनेपदी है)। २०. संगच्छध्वं संवदध्वम्। २१. उद्गच्छति, तिमिरमपगच्छति। २२. खगाः खमुद्गच्छन्ति। २३. उपागच्छत्। २४. शशिनमुपगतेयं कौमुदी मेघमुक्तम्। (ग) ५. सरलतया। ६. नाम्ना कृष्णः। ९. वर्षेणैकेन। १०. सप्तभिर्दिनैः।

शब्दकोष—७५+२५=१००] **अभ्यास ४** (व्याकरण)

(क) गिरिः (पु०, पर्वत), पदातिः (पुं०, पैदल चलनेवाला), भूपतिः (पुं०, राजा), पविः (पुं०, वज्र), निर्बन्धः (आग्रह, ज़िद), परिदेवनम् (रोना), वाष्पम् (भाप), कल्याणाभिनिवेशिन् (कल्याण का इच्छुक)।(८)।(ख) चर् (घूमना, करना, चरना), आचर् (व्यवहार करना), अनुचर् (पीछे चलना), संचर् (घूमना), विचर् (विचरण करना), उच्चर् (उठना, उल्लंघन करना), उपचर् (सेवा करना), प्रचर् (प्रचार होना), अनुहृ (सदृश होना), संवद् (संवाद करना, सदृश होना), शप् (शपथ लेना), योजि (मिलाना)।(१२)।(ग) अलम् (बस), कृतम् (बस), किम् (क्या, क्या लाभ)। (३)। (घ) नष्टाशङ्कः (निर्भय), मुग्धा (भोली-भाली)।(२)।

व्याकरण (हरि, विधिलिङ्, तृतीया)

१. हरि और भूपति शब्दों के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० सं० ४, ७)

२. भू तथा अन्य तत्सम धातुओं के विधिलिङ् के रूप स्मरण करो।

३. दृश् धातु के रूप स्मरण करो (देखो धातु० ७)। चर्, पठ् के तुल्य।

नियम २६—(गम्यमानापि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका) अलम् और कृतम् के साथ तृतीया होती है, यदि बस या मत अर्थ हो तो। जैसे—अलं श्रमेण। कृतम् अत्यादरेण। अलम् के साथ इस अर्थ में क्त्वा (ल्यप्) प्रत्यय भी होता है। अलमन्यथा सम्भाव्य (उलटा न समझें)।

नियम २७—किम्, कार्यम्, अर्थः, प्रयोजनम्, गुणः के साथ तथा किं+कृ धातु के साथ तृतीया होती है, यदि प्रयोजन या लाभ अर्थ हो तो। जैसे—मूर्ख पुत्र से क्या लाभ—मूर्खेण पुत्रेण किम्, किं कार्यम्, कोऽर्थः, किं प्रयोजनम्, को गुणः, किं क्रियते वा।

नियम २८—(पृथग्विना०, तुल्यार्थैरतुलो०) पृथक्, विना और तुल्यार्थक शब्दों के साथ तृतीया भी होती है। रामेण पृथक्। प्रियया वियोगः। ज्ञानेन विना। कृष्णेन तुल्यः। पक्ष में पृथक्, विना के साथ द्वितीया और पंचमी भी होती हैं।

नियम २९—(कर्तृकरणयोस्तृतीया) करणत्व या क्रिया-विशेषणत्व के कारण इन स्थानों पर तृतीया होती है।(क) कार्य करने के ढंग में। जैसे—विधिना यजते।(ख) जिस मूल्य से कोई वस्तु खरीदी जाए। जैसे—कियता मूल्येन क्रीतं पुस्तकम्? शतेन०।(ग) यात्रा के साधन में। जैसे—रथेन चरति। विमानेन विगाहमानः।(घ) वहनार्थक धातु के साथ ढोने के साधन में। जैसे—स्कन्धेन शत्रुं वहति। भर्तुराज्ञां मूर्ध्ना आदाय।(ङ) शपथ अर्थ में शपथ की वस्तु में। जैसे—जीवितेन शपामि। आत्मना शपे। (च) युक्त और हीन अर्थ में। जैसे—समायुक्तोऽप्यर्थैः अर्थेन हीनः।

नियम ३०—(हेतौ) हेत्वर्थ के कारण इन अर्थों की धातुओं के साथ तृतीया होती है। (१) सन्तुष्ट या प्रसन्न होना, (२) आश्चर्ययुक्त होना, (३) लज्जित होना।(१) कापुरुषः स्वल्पेनापि तुष्यति। (२) तव प्रावीण्येन विस्मितोऽस्मि। (३) अनेन प्रागल्भ्येन लज्जे।

नियम ३१—(हेतौ) उत्कर्ष और सादृश्य अर्थ की धातुओं के साथ गुणबोधक शब्द में तृतीया होती है। त्वं श्रद्धया पूर्वान् अतिशेषे (पूर्वजों से बढ़कर हो)। स्वरेण रामभद्रमनुहरति (आवाज में राम से मिलता है)। अस्य मुखं मातुः मुखेन संवदति।

अभ्यास ४

संस्कृत बनाओ—(क) (विधिलिङ्) १. हरि भोजन खावे, विद्यालय जावे, आसन पर बैठे और पाठ पढ़े। २. वह उपवन में जावे, फूल सूँघे, फलों को देखे, वृक्ष पर चढ़े। ३. भूपति तलवार से और इन्द्र वज्र से शत्रुओं को नष्ट करें। ४. मैं समझता हूँ कि यह बात उसको स्वीकार होगी। ५. इष्ट को धर्म से मिला दे। ६. अति का सर्वत्र त्याग करे। ७. कौन क्षत्रिय होकर अधर्मयुद्ध से जय चाहेगा। (ख) १. धर्म करो। २. मृगशिशु निःशंक हो धीरे-धीरे घूम रहे हैं। ३. वह पहाड़ पर तप कर रहा है। ४. बैल खेत में घास चरता है। ५. जो दुष्ट का सत्कार करता है, वह जल में लकीर खींचता है। ६. तुमने उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। ७. सोलह वर्ष के पुत्र के साथ मित्रवत् व्यवहार करे। ८. यह कौन भोली-भाली तपस्वि-कन्याओं के साथ अशिष्टता कर रहा है? ९. विद्वान् व्यक्ति जानते हुए भी जड़ के तुल्य लोक में व्यवहार करे। १०. गुरु शिष्य से पुत्रवत् व्यवहार करे। ११. चन्द्रमा के राहु से ग्रस्त होने पर भी रोहिणी उसके पीछे चलती है। १२. कल्याण का इच्छुक सन्मार्ग पर चले। १३. वह रथ में घूमता है। १४. इस रास्ते से पैदल चलनेवाले जाते हैं। १५. गिरि पर यति घूमते हैं। १६. राम वन में घूमे। १७. भाप उठी। १८. कोलाहल की ध्वनि उठी। १९. वह धर्म का उल्लंघन करता है। २०. तुम सबकी समानरूप से सेवा करो। २१. उसने भोजनादि से मेरी सेवा की। २२. रोगी की सावधानी से सेवा करो। २३. रामायण की कथा का संसार में प्रचार होगा। (ग) (तृतीया) १. हठ मत करो। २. श्रम से यह काम सिद्ध नहीं होगा। ३. विवाद मत करो, मत हँसो, मत रोओ। ४. हँसी मत करो। ५. बात बहुत मत बढ़ाओ। ६. इस बात से क्या लाभ, बस करो। ७. पुरुषार्थ के बिना भाग्य नहीं बनता। ८. इसकी आवाज कृष्ण से मिलती है। ९. इसका मुँह पिता के मुँह से मिलता है। १०. वह विधिपूर्वक पढ़ता है। ११. तुमने यह साड़ी कितने मूल्य में खरीदी? सौ रुपए में। १२. विमान से आकाश में घूमता है। १३. धन से युक्त मनुष्य आदृत होता है, धन से हीन तिरस्कृत होता है। १४. दुर्जन थोड़े से प्रसन्न होता है। १५. उसकी विद्वत्ता से विस्मित हूँ। १६. मैं असत्य-भाषण से लज्जित हूँ।

संकेत—(क) ३. नाशयेताम्। ४. यथाहं पश्यामि, तथा तस्यानुमतं भवेत्। ५. योजयेत्। ६. वर्जयेत्। ७. को हि क्षत्रियो भवन्.... इच्छेत् (ख) १. धर्मं चर। २. चरन्ति। ३. तपश्चरति। ४. शस्यं चरति। ५. रचयति रेखाः सलिले यस्तु खले चरति सत्कारम्। ६. तस्मिन् त्वं साधु नाचरः। ७. प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रम्.... आचरेत्। ८. मुग्धासु.... आचरत्यविनयम्। ९. जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत्। १०. शिष्यं.... आचरेत्। ११. अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा। १२. सन्मार्गमनुचरेत्। १३. रथेन संचरते (तृ० के साथ आत्मने० है) १६. विचचार दावम्। १७. उदचरत्। १९. धर्ममुच्चरते (सकर्मक आत्मने० है)। २०. सममुपचर। २१. मामुपाचरत्। २२. यत्नादुपचर्यतां रुग्णः। २३. लोकेषु प्रचरिष्यति। (ग) १. अलं निर्बन्धेन। २. अलं श्रमेण। ३. अलं परिदेवनेन। ४. अलमुपहासेन। ५. अलमतिविस्तरेण। ६. किमनेन, आस्तां तावत्। ७. सिध्यति। ११. शाटिका क्रीता.... शतकेन। १२. दिवं विगाहते। १३. आद्रियते, तिरस्क्रियते।

शब्दकोष—१००+२५=१२५] **अभ्यास ५** (व्याकरण)

(क) साधुः (पुं०, सज्जन), मृत्युः (पुं०, मृत्यु), पांसुः (पुं०, धूल), असुः (पुं०, प्राण), सानुः (पुं०, शिखर)। (६)। **(ख)** सद् (बैठना, खिन्न होना), प्रसद् (प्रसन्न होना, स्वच्छ होना, सफल होना), विषद् (दुःखित होना), आसद् (पहुँचना), प्रत्यासद् (समीप आना), निषद् (बैठना), अवसद् (नष्ट होना), उत्सद् (नष्ट होना), उपसद् (पास जाना), स्वद् (अच्छा लगना), प्रतिश्रु (प्रतिज्ञा करना), अवहननम् (कूटना)। (१२)। **(ग)** कृते (लिए)। (१)। **(घ)** प्रांशुः (ऊँचा), आगन्तुः (आगन्तुक), प्रभविष्णुः (समर्थ, स्वामी), स्पृहयालुः (इच्छुक), द्वित्राः (दो-तीन), पञ्चषाः (पाँच-छः)। (६)। पांसु और असु शब्द नित्यबहुवचन हैं।

व्याकरण (गुरु, लृट्, चतुर्थी)

१. गुरु शब्द के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० सं० ९)

२. सद् और पा धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ८, ११)

नियम ३२—(कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्, क्रियया यमभिप्रैति०) दान आदि कार्य या कोई क्रिया जिसके लिए की जाती है, उसे संप्रदान कहते हैं।

नियम ३३—(चतुर्थी सम्प्रदाने) संप्रदान में चतुर्थी होती है। जैसे—विप्राय गां ददाति युद्धाय संनह्यते (तैयारी करता है)। विद्यायै यतते। पुत्राय धनं प्रार्थयते।

नियम ३४—(रुच्यर्थानां प्रीयमाणः) रुच् (अच्छा लगना) अर्थ की धातुओं के साथ चतुर्थी होती है। हरये रोचते भक्तिः। यद् भवते रोचते। बालकाय मोदकं रोचते (बालक को लड्डू अच्छा लगता है)।

नियम ३५—(धारेरुत्तमर्णः) धारि धातु (ऋण लेना) के साथ ऋणदाता में चतुर्थी होती है। देवदत्तो रामाय शतं धारयति (राम का सौ रुपये ऋणी है)।

नियम ३६—(स्पृहेरीप्सितः) स्पृह् धातु तथा उससे बने शब्दों के साथ इष्ट वस्तु में चतुर्थी होती है। पुष्पेभ्यः स्पृहयति (फूलों को चाहता है)। भोगेभ्यः स्पृहयालवः।

नियम ३७—(क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः) क्रुध्, द्रुह्, ईर्ष्य्, असूय अर्थ की धातुओं के साथ जिस पर क्रोध किया जाए, उसमें चतुर्थी होती है। रामः मूर्खाय (मूर्ख पर) क्रुध्यति, द्रुह्यति, ईर्ष्यति, असूयति। सीतायै नाक्रुध्यन्नाप्यसूयत। यदि क्रुध् और द्रुह् से पूर्व उपसर्ग होगा तो द्वितीया होगी। क्रूरम् अभिक्रुध्यति, अभिद्रुह्यति।

नियम ३८—(प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः०) प्रतिश्रु और आश्रु धातु के साथ प्रतिज्ञा करने के अर्थ में चतुर्थी होती है। विप्राय गां प्रतिशृणोति (गाय देने की प्रतिज्ञा करता है)।

नियम ३९—(तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या) जिस प्रयोजन के लिए जो वस्तु या क्रिया होती है, उसमें चतुर्थी होती है। मोक्षाय हरिं भजति। यूपाय दारु। काव्यं यशसे।

नियम ४०—चतुर्थी के अर्थ में 'अर्थम्' और 'कृते' अव्ययों का प्रयोग होता है। अर्थम् के साथ समास होगा और कृते के साथ षष्ठी। भोजनार्थम्, भोजनस्य कृते।

अभ्यास ५

संस्कृत बनाओ—(क) (गुरु, लृट्) १. जो जन्म लेगा, उसकी मृत्यु अवश्य होगी और जो मरेगा, उसका जन्म अवश्य होगा। २. राम लम्बा है, पर उसका छोटा भाई भरत नाटा है। ३. छोटे बच्चे धूल में खेलते हैं। ४. शिशु के प्राण बचाने हैं। ५. ऋषि पर्वतों के शिखर पर रहते हैं। ६. भानु उदय होता है ओर विधु अस्त होता है। ७. अनुचरों को चाहिए कि स्वामी को धोखा न दें। ८. हाथी और गीदड़ की मित्रता नहीं होती। ९. दो-तीन आगन्तुक कल मेरे घर आएँगे और मेरे यहाँ रहेंगे। १०. हम पाँच-छः दिन में बनारस जाएँगे। ११. जाड़े में पहाड़ की चोटियों पर बर्फ गिरेगी और वे सफेद हो जाएँगी। १२. बड़े आदमी हँसी उड़ाएँगे। १३. गुरुओं की आज्ञा पर तर्क-वितर्क नहीं करना चाहिए। १४. तरु फल आने पर झुक जाते हैं। १५. ऐसा करूँगा तो मेरी हँसी होगी। १६. मरना अच्छा है, अपमान सहना अच्छा नहीं। १७. ढीठ स्त्री शत्रुतुल्य है। **(ख) (सद् धातु)** १. मैं यहीं बैठा हूँ, आप शीघ्र आवें। २. मेरा हृदय खिन्न हो रहा है। ३. मेरे अंग व्याकुल हो रहे हैं। ४. नीति की व्यवस्था ठीक न होने पर सारा संसार विवश हो दुःखित होता है। ५. जगदाधार भगवन्! मुझसे प्रसन्न हों। ६. माता-पिता पुत्र की नम्रता से प्रसन्न होते हैं (प्र+सद्)। ७. जो किसी कारण से क्रुद्ध होता है, वह उस कारण के समाप्त होने पर प्रसन्न हो जाता है। (प्र+सद्)। ८. दिशाएँ स्वच्छ हो गईं (प्र+सद्)। ९. उचित पात्र में रखी हुई क्रिया शोभित होती है। १०. धीर पुरुष सुख में प्रसन्न नहीं होते और दुःख में दुःखी नहीं होते (न, विषद्)। ११. दुःखित न होइये। १२. वह ज्योंही घर पहुँचे, त्यों ही मेरे पास भेजना। १३. कुत्ता नदी पर पहुँचा। १४. घर जाने का समय हो रहा है, जल्दी करो। १५. तुम इधर बैठो। १६. आप बैठिये, मैं भी सुख से बैठता हूँ। १७. हल्की चीज तैरती है, भारी चीज नीचे बैठ जाती है। १८. उद्यम के तुल्य कोई बन्धु नहीं है, जिसे करके कोई दुःखित नहीं होता। १९. मेरे प्राण नष्ट हो रहे हैं (अवसद्)। २०. यदि मैं काम नहीं करूँगा तो ये लोग नष्ट हो जाएँगे।

संकेत—(क) १. जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च। २. वामनः, खर्वः, पृश्निः। ३. पांसुषु। ४. असवो रक्षणीयाः। ५. उदेति·····अस्तमेति। ७. न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः। ८. भवन्ति गोमायुसखा न दन्तिनः। ९. निवत्स्यन्ति। १०. पञ्चषैर्दिवसैः। १२. महाजनः स्मेरमुखो भविष्यति। १३. आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया। १४. भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैः। १५. गमिष्याम्युपहास्यताम्। १६. वरं मृत्युर्न पुनरपमानः। १७. अविनीता रिपुर्भार्या। **(ख)** १. सीदामि। २. सीदति। ३. सीदन्ति गात्राणि। ४. विपन्नायां नीतौ सकलमवशं सीदति जगत्। ५. प्रसीद मे। ७. निमित्तमुद्दिश्य·····तस्यापगमे। ८. दिशः प्रसेदुः। ९. क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति। ११. मा विषीदत। १२. यदैव आसीदति-तदैव मां प्रति प्रेषय। १३. आससाद। १४. प्रत्यासीदति गृहगमनकालः, त्वर्यताम्। १५. इतः। १६. सुखासीनो भवामि। १७. यल्लघु तदुत्प्लवते, यद् गुरु तन्निषीदति। १८. यं कृत्वा नावसीदति। १९. उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।

शब्दकोष—१२५+२५=१५०] **अभ्यास ६** (व्याकरण)

(**क**) क्रमेलकः (ऊँट), निसर्गः (स्वभाव), प्रवृत्तिः (स्त्री०, समाचार), विसृष्टिः (स्त्री०, छुट्टी), कुलक्रमम् (कुल-परम्परा), शासनम् (आज्ञा), धामन् (नपुं०, स्थान)। (७)। (**ख**) वृत् (होना, बर्ताव करना), प्रवृत् (लगना, चलना), अनुवृत् (पीछे चलना), निवृत् (लौटना), अभिवृत् (पास आना), अतिवृत् (१. उल्लंघन करना, २. बीतना), आवृत् (लौटकर आना), आवर्ति (फेरना, दुहराना), परिवृत् (चक्कर खाना), आशङ्क् (आशंका करना), विप्रलभ् (ठगना), आशंस् (आशा करना), स्पन्द् (फड़कना), घट् (घटना होना), परिणम् (बदलना)। १५। (**ग**) उभयथा (दोनों प्रकार से), वृथा (व्यर्थ ही), अद्यत्वे (आजकल)। (३)।

व्याकरण (९ सर्वनाम पुंलिंग, लट् आत्मनेपदी, चतुर्थी)

१. सर्व शब्द के पुंलिंग के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ७७)

२. सेव् और वृत् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० २०, २५)

नियम ४१—(**क**) (क्लृपि संपद्यमाने च) क्लृप्, संपद्, जन्, भू, अस् (२ प०) आदि धातुओं के साथ समर्थ होना या होना अर्थ में चतुर्थी होती है। विद्या ज्ञानाय कल्पते संपद्यते जायते वा। कल्पसे रक्षणाय। भू या अस् के प्रयोग के बिना भी चतुर्थी होती है। काव्यं यशसे। (**ख**) (उत्पातेन०) कोई उत्पात किसी अशुभ घटना का संकेत करे तो चतुर्थी होगी। वाताय कपिला विद्युत्। (**ग**) हित और सुख के साथ चतुर्थी होती है। ब्राह्मणाय हितं सुखं वा।

नियम ४२—(क्रियार्थोपपदस्य च०) यदि तुमुन्-प्रत्ययान्त धातु का अर्थ गुप्त हो तो कर्म में चतुर्थी होती है। फलेभ्यो याति। (फल लाने के लिए०)। वनाय गां मुमोच (वन जाने के लिए०)। (तुमर्थाच्च०) यदि तुमुन् के अर्थ में घञ् प्रत्यय होगा तो भी चतुर्थी होगी। यागाय याति (यष्टुं यातीत्यर्थः, यज्ञ करने के लिए जाता है)।

नियम ४३—(नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च) नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् (तथा पर्याप्त अर्थवाले अन्य शब्द), वषट् के साथ चतुर्थी होती है। गुरवे नमः। पुत्राय स्वस्ति। अग्नये स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। इन्द्राय वषट्। हरिः दैत्येभ्यः अलम्, प्रभुः, समर्थः, शक्तः वा। (**क**) नमस्कृ के साथ साधारणतया द्वितीया होती है। नमस्करोति देवान्। मुनित्रयं नमस्कृत्य। (**ख**) प्रणाम करना अर्थवाली प्रणम्, प्रणिपत् आदि धातुओं तथा इनके संज्ञाशब्दों के साथ द्वितीया और चतुर्थी दोनों होती हैं। जैसे—न प्रणमन्ति देवताभ्यः। तां प्रणनाम। प्रणिपत्य सुरास्तस्मै। धातारं प्रणिपत्य। अस्मै प्रणाममकरवम्। (**ग**) आशीर्वादार्थक स्वागतम्, कुशलम् आदि के साथ चतुर्थी और षष्ठी दोनों होती हैं। (**घ**) अलम्, प्रभुः आदि तथा प्र+भू धातु के साथ चतुर्थी होती है। प्रभुर्मल्लो मल्लाय। प्रभवति मल्लाय।

नियम ४४—(क्रियया यमभिप्रैति०) 'कहना' अर्थ की धातुओं कथ्, ख्या, शंस्, चक्ष् और निवेदि आदि के साथ तथा 'भेजना' अर्थ की धातुओं प्र+हि, वि+सृज् आदि के साथ चतुर्थी होती है। मैथिलाय कथयांबभूव सः। आख्याहि मे को भवानुग्ररूपः। होमवेलां गुरवे निवेदयामि। भोजेन दूतो रघवे विसृष्टः।

नियम ४५—(मन्यकर्मण्यनादरे०) अनादर अर्थ में मन् धातु के साथ द्वितीया और चतुर्थी होती है। न त्वां तृणं मन्ये तृणाय वा।

नियम ४६—(गत्यर्थकर्मणि द्वितीया०) गत्यर्थक धातु के साथ कर्म में द्वितीया और चतुर्थी होती हैं, यदि चेष्टा हो तो। अन्यत्र द्वितीया ही होगी। ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति। मनसा हरिं व्रजति। पन्थानं गच्छति।

अभ्यास ६

संस्कृत बनाओ—(क) (सर्वनाम, लट् आ०) १. तू जिसको अग्नि समझता है, वह स्पर्श के योग्य रत्न है। २. क्यों मुझे धोखा देते हो ? ३. मैं मनोरथ की आशा नहीं करता, हे भुजा, तू क्यों व्यर्थ फड़क रही है ? ४. दूध दही के रूप में परिणत होता है। ५. क्या सोचकर आप यह कह रहे हैं ? ६. यह बात दोनों तरह से हो सकती है। ७. ऊँट क्रीडोद्यान में जाकर भी काँटे ही ढूँढ़ता है। ८. अर्जुन, भाग्य से ही ऐसा युद्ध क्षत्रियों को मिलता है। (ख) (वृत्, सेव् धातु) १. ऐसा मेरे मन में है। २. इस विषय में हमारी बड़ी उत्सुकता है। ३. आप ही बताओ, इस दुष्ट के साथ कैसा बर्ताव करें। ४. वह आजकल परेशानी में है। ५. अब प्रातःकाल है, तुम सब पढ़ाई में लगो। ६. सीता देवी का क्या हुआ, क्या कुछ समाचार है ? ७. यज्ञ ठीक चल रहा है। ८. मेरी जीवन-यात्रा सुख से चल रही है। (वृत्)। ९. परीक्षा सिर पर है, वह अध्ययन में लगा हुआ है। (वृत्)। १०. माता स्वाभाविक स्नेह से सन्तान से व्यवहार करती है। (वृत्)। ११. ऐसे पुत्र से क्या लाभ, जो पिता को दुःख दे। १२. क्या शक्तिभर पढ़ाई में लगे हो (प्रवृत्) ? १३. राजा प्रजा के हित में लगे। १४. सहसा उसकी आँसू की धार बह चली। १५. बड़ा आदमी जैसा करता है, लोग उसका ही अनुसरण करते हैं। (अनुवृत्)। १६. लोग मालिक की इच्छा के अनुसार चलते हैं। १७. लौकिक सज्जनों की वाणी अर्थ के पीछे चलती है। १८. सत्पुत्र कुल-परम्परा का अनुसरण करता है (अनुवृत्)। १९. जहाँ जाकर नहीं लौटते, वह मेरा परम धाम है। २०. सज्जन पाप से निवृत्त होता है (निवृत्)। २१. मांसभक्षण से रुके (निवृत्)। २२. कन्याएँ पौधों को जल देने के लिए इधर ही आ रही हैं। २३. भौंरा मेरे मुँह की ओर आ रहा है। २४. जो पिता की आज्ञा का उल्लंघन करता है, वह दुःख पाता है। २५. माता-पिता की सेवा करो। (ग) (चतुर्थी) १. धन दान के लिए होता है (क्लृप्)। २. तुम रक्षा में समर्थ हो। ३. काव्य यश के लिए, धन के लिए, व्यवहारज्ञान के लिए और अशिवक्षति के लिए होता है। ४. शिष्यों का हित और सुख हो। ५. फूलों के लिए उद्यान में जाता है। ६. हवन करने के लिए जाता है। ७. पिताजी को नमस्कार, शिष्यों को आशीर्वाद। ८. इन्द्र के लिए स्वाहा। ९. यह योद्धा उस योद्धा से लड़ने में समर्थ है। १०. राजा शत्रुओं के लिए समर्थ है, पर्याप्त है।

संकेत—(क) १. आशङ्कसे यदग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम्। २. किं मां विप्रलभसे। ३. मनोरथाय नाशंसे, स्पन्दसे। ४. दधिभावेन परिणमते। ५. किमुद्दिश्य भवान् भाषते। ६. इदमुभयथाऽपि घटते। ७. निरीक्षते केलिवनं प्रविष्टः क्रमेलकः कण्टकजालमेव। ८. सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्। (ख) १. इदं मे मनसि वर्तते। २. महत् कुतूहलं वर्तते। ३. दुर्जने कथं वर्तताम्। ४. दुःखे। ५. प्रवर्तध्वम्। ६. वृत्तम्, अस्ति काचित् प्रवृत्तिः। ७. सर्वथा प्रवर्तते। ९. प्रत्यासीदति। १०. निसर्गस्नेहेनापत्येषु। ११. पुत्रेण किम्, यः पितृदुःखाय वर्तते। १२. अपि स्वशक्त्या। १३. प्रवर्तताां प्रकृतिहिताय पार्थिवः। १४. प्रावर्तताश्रुधारा। १५. यद्यदाचरति श्रेष्ठो लोकस्तदनुवर्तते। १६. प्रभुचित्तमेव हि जनोऽनुवर्तते। १७. लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते। १८. कुलक्रमम्। १९. यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परमं मम। २२. बालपादपेभ्यः, इत एवाभिवर्तन्ते। २३. वदनमभिवर्तते। २४. पितुः शासनमतिवर्तते। (ग) २. कल्पसे रक्षणाय। ३. काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये। ४. भूयात्। ९. प्रभवति मल्लो मल्लाय।

शब्दकोष—१५०+२५=१७५] **अभ्यास ७** (व्याकरण)

(क) लोकापवाद: (अफवाह), अभिजन: (कुलीन), अङ्गुलीयकम् (अँगूठी), वचनीयम् (निन्दा), संगतम् (मित्रता), गोमयम् (गोबर), वयस् (नपुं०, आयु)। (७)। (ख) ईक्ष् (१. देखना, २. परवाह करना), अपेक्ष् (१. प्रतीक्षा करना, २. ध्यान रखना), अवेक्ष् (१. देखना, २. सोचना, ३. रक्षा करना), उपेक्ष् (उपेक्षा करना), निरीक्ष् (१. ध्यान से देखना, २. ढूँढ़ना), परीक्ष् (परीक्षा करना), प्रतीक्ष् (प्रतीक्षा करना), प्रेक्ष् (देखना), समीक्ष् (१. देखना, २. समीक्षा करना), भ्रंश् (गिरना), पराजि (हारना), त्रै (रक्षा करना)। (१२)। (ग) रह: (एकान्त में), सदसत् (उचित-अनुचित)। (२)। (घ) सज्ज: (तैयार), तीक्ष्णम् (तीव्र, उग्र), योत्स्यमान: (लड़ने का इच्छुक), कामवृत्ति: (पुं०, स्वेच्छाचारी)। (४)।

व्याकरण (९ सर्वनाम नपुं०, लोट् आत्मने०, पंचमी)

१. सर्व शब्द के नपुंसक० के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ७७)

२. वृध् और ईक्ष् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० २२, २६)

नियम ४७—(ध्रुवमपायेऽपादानम्) जिससे कोई वस्तु आदि अलग हो, उसे अपादान कहते हैं।

नियम ४८—(अपादाने पञ्चमी) अपादान में पंचमी होती है। ग्रामादायाति। वृक्षात् पत्रं पतति।

नियम ४९—(जुगुप्साविरामप्रमादार्थानाम्०) जुगुप्सा (घृणा), विराम (रुकना) और प्रमाद अर्थ की धातुओं और शब्दों के साथ पंचमी होती है। पापात् जुगुप्सते, विरमति। धर्मात् प्रमाद्यति।

नियम ५०—(भीत्रार्थानां भयहेतु:) भय और रक्षा अर्थ की धातुओं के साथ भय के कारण में पंचमी होती है। चोराद् बिभेति। चोरात् त्रायते। न भीतो मरणादस्मि।

नियम ५१—(पराजेरसोढ:) परा+जि के साथ असह्य अर्थ में पंचमी होती है। अध्ययनात् पराजयते (पढ़ाई से हार मानता है)। परन्तु शत्रून् पराजयते (शत्रुओं को हराता है) में द्वितीया होगी।

नियम ५२—(वारणार्थानामीप्सित:) जिस वस्तु से किसी को हटाया जाए, उसमें पंचमी होती है। यवेभ्यो गां वारयति। पापात् निवारयति (पाप से हटाता है)।

नियम ५३—(अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति) जिससे छिपना चाहता है, उसमें पंचमी होती है। मातुर्निलीयते कृष्ण: (कृष्ण माता से छिपता है)।

नियम ५४—(आख्यातोपयोगे) जिससे नियमपूर्वक विद्या आदि पढ़ी जाए, उसमें पञ्चमी होती है। उपाध्यायादधीते। मया तीर्थात् (गुरु से) अभिनयविद्या शिक्षिता। तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्याम् (उनसे वेदान्त पढ़ने को)।

नियम ५५—(जनिकर्तु: प्रकृति:, भुव: प्रभव:) उत्पन्न या प्रकट होना अर्थवाली जन् और भू आदि धातुओं के साथ पञ्चमी होती है। ब्रह्मण: प्रजा: प्रजायन्ते। हिमवतो गङ्गा प्रभवति, उद्भवति, उद्गच्छति। परन्तु पुत्रादि के जन्म में स्त्री में सप्तमी होगी—मेनकायामुत्पन्नां गौरीम् (मेनका से उत्पन्न पार्वती को)।

नियम ५६—(ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च) क्त्वा या ल्यप् का अर्थ गुप्त होगा तो कर्म और अधिकरण में पंचमी होगी। प्रासादात् प्रेक्षते। आसनात् प्रेक्षते। श्वशुरात् जिह्रेति।

नियम ५७—(गम्यमानापि क्रिया०) प्रश्न और उत्तर आदि में गुप्त क्रिया के आधार पर पंचमी होती है। कस्मात् त्वम्? नद्या: (कहाँ से आए? नदी से)। कुतो भवान्? पाटलिपुत्रात् (आप कहाँ से आए? पटना से)।

अभ्यास ७

संस्कृत बनाओ—(क) (ईक्ष्, वृध् धातु, लोट् आ०) १. माता पुत्र को देखे। २. स्वेच्छाचारी व्यक्ति निन्दा की चिन्ता नहीं करता (ईक्ष्)। (३) स्नेह समय की अपेक्षा नहीं करता। ४. रथ तैयार है, महाराज के विजय-प्रस्थान की प्रतीक्षा कर रहा है। ५. भाग्य भी पुरुषार्थ की अपेक्षा करता है। ६. विद्वान् भाग्य और पुरुषार्थ दोनों की आवश्यकता मानता है। ७. मैं लड़ने के इच्छुकों को देखता हूँ (अवेक्ष्)। ८. कुछ बात सोचकर वह मौन हो गया। ९. अपने कर्तव्य की क्षणभर भी उपेक्षा न करे (उपेक्ष्)। १०. अच्छी तरह परीक्षा करके ही गुप्त-प्रेम करना चाहिए। ११. भले और बुरे की परीक्षा करके विद्वान् एक को अपनाते हैं। १२. तेजस्वियों की आयु नहीं देखी जाती। १३. धर्मवृद्धों की आयु नहीं देखी जाती। १४. धन कम होने पर भूख अधिक लगती है। १५. पुत्र-मुख-दर्शन के लिए आपको बधाई। (ख) (पंचमी) १. वृक्ष से पुराने पत्ते गिरे। २. वह दौड़ते हुए घोड़े से गिरा। ३. वह सदाचार से हीन हो रहा है। ४. वह असत्य-भाषण से घृणा करता है। ५. धीर लोग अपने निश्चय से नहीं हटते हैं। ६. मेरी उँगलियों से अँगूठी गिर गई। ७. मेनका पार्वती को कठोर मुनिव्रत से रोकती हुई बोली। ८. बालक महल से गिर पड़ा (पत्)। ९. पुत्र, इस काम से रुको। १०. वह अपने कर्तव्य को भूल गया था। ११. सब प्राणि-हिंसा से बचें (निवृत्)। १२. सभी प्रकार के मांस-भक्षण से बचें। १३. मैं मृत्यु से नहीं डरता। १४. धर्म का थोड़ा अंश भी उसे बड़े भय से बचाता है। १५. लोग उग्र पुरुष से डरते हैं। १६. मुझे लोक-निन्दा से भय है। १७. वह पढ़ाई से हार मानता है। १८. वह दुर्जनों को हराता है। १९. वह बकरी को खेत से हटाता है। २०. चोर सिपाही से छिपता है। २१. मैंने गुरु से अभिनय की विद्या सीखी है। २२. अगस्त्य मुनि से वेदान्त पढ़ने के लिए यहाँ आया हूँ। २३. हिमालय से गंगा निकलती है। २४. काम से क्रोध होता है। २५. गोबर से बिच्छू होता है। २६. लोभ से क्रोध होता है। २७. शुकनास को मनोरमा से एक पुत्र हुआ। २८. ब्रह्मा के मुख से अग्नि उत्पन्न हुई और मन से चन्द्रमा।

संकेत—(क) २. न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते। ३. न कालमपेक्षते स्नेहः। ४. प्रस्थानमपेक्षते। ५. दैवमपि पुरुषार्थमपेक्षते। ६. द्वयं विद्वानपेक्षते। ७. योत्स्यमानानवेक्षेऽहम्। ८. किमपि निमित्तमवेक्ष्य। ९. नोपेक्षेत क्षणमपि। १०. अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् सङ्गतं रहः। ११. सदसत्, सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते। १२. तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते। १३. न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते। १४. धनक्षये वर्धते जाठराग्निः। १५. दिष्ट्या पुत्रमुखदर्शनेन वर्धते भवान्। (ख) १. जीर्णानि। २. धावतः। ३. भ्रंशते। ५. न निश्चितार्थाद् विरमन्ति धीराः। ६. अग्रहस्तात् प्रभ्रष्टम्। ७. निवारयन्ती महतो मुनिव्रतात्। ९. एतस्माद् विरम। १०. स्वाधिकारात् प्रमत्तः। ११. निवर्तेरन्। १२. निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात्। १४. स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्। १५. तीक्ष्णादुद्विजते लोकः। १६. लोकापवादाद् भयं मे। १९. क्षेत्रात्। २०. रक्षिणः। २२. निगमान्तविद्यामधिगन्तुम्। २४. अभिजायते। २५. गोमयाद् वृश्चिको जायते। २६. प्रभवति। २७. मनोरमायां तनयो जातः। २८. मुखादग्निरजायत, चन्द्रमा मनसो जातः।

शब्दकोष—१७५+२५=२००] **अभ्यास ८** (व्याकरण)

(क) हुतवह: (आग), मराल: (हंस), अवकर: (कूड़ा), मानसम् (१. मन, २. मानसरोवर), जाड्यम् (मूर्खता), अकिंचित्करत्वम् (तुच्छता), संनिधानम् (समीपता), अवज्ञा (तिरस्कार), अनुपलब्धि: (स्त्री०, अप्राप्ति)। (९)। (ख) मन्त्र् (१. मन्त्रणा करना, २. कहना), आमन्त्र् (१. विदाई लेना, २. बुलाना), निमन्त्र् (न्योता देना), रम् (१. मन लगाना, २. क्रीडा करना), विरम् (१. हटना, २. रुकना, ३. समाप्त होना), उपरम् (१. रुकना, २. मरना), स्यन्द् (बहना), दह् (जलाना), आरभ् (प्रारम्भ करना)। (९)। (ग) आरात् (१. दूर, २. समीप), ऋते (बिना), नाना (बिना), प्राक् (पूर्व की ओर), प्रत्यक् (पश्चिम की ओर), उदक् (उत्तर की ओर), दक्षिणा (दक्षिण की ओर)। (७)।

व्याकरण (९ सर्वनाम स्त्री०, लङ् आत्मने०, पंचमी)

१. सर्व शब्द के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ७७)

२. मन्त्र् और रम् धातु के रूप स्मरण करो। मन्त्रयते, रमते (सेव् के तुल्य)।

नियम ५८—(अन्यारादितरर्ते०) अन्य, आरात्, इतर (तथा अन्य अर्थवाले और भी शब्द) ऋते, पूर्व आदि दिशावाची शब्द (इनका देश, काल अर्थ हो तो भी), प्राक् आदि शब्दों के साथ पंचमी होती है। कृष्णात् अन्यो भिन्न इतरो वा। आराद् वनात्। ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः। ग्रामात् पूर्व:, उत्तरो वा। चैत्रात् पूर्व: फाल्गुन:। ग्रामात् प्राक् प्रत्यक् वा।

नियम ५९—(प्रभृत्यर्थयोगे बहिर्योगे च पञ्चमी) बहि: तथा 'बाद में' 'तब से लेकर' अर्थ के बोधक प्रभृति, आरभ्य, अनन्तरम्, परम्, ऊर्ध्वम् आदि शब्दों के साथ पंचमी होती है। शैशवात् प्रभृति। तद्दिनादारभ्य। विवाहविधेरनन्तरम्। अस्मात्परम् (इसके बाद)। वर्षाद् ऊर्ध्वम् (एक वर्ष बाद)। ग्रामाद् बहि:।

नियम ६०—(अपपरी वर्जने, आङ् मर्यादा०, प्रति: प्रतिनिधि०) ये उपसर्ग इन अर्थों में हों तो इनके साथ पंचमी होती है :—अप (छोड़कर), परि (छोड़कर), आ (तक), प्रति (१. प्रतिनिधि, २. बदलना)। अप हरे:, परि हरे: संसार। आ मुक्ते: संसार:। आ सकलाद् ब्रह्म। प्रद्युम्न: कृष्णात् प्रति। तिलेभ्य: प्रतियच्छति माषान्।

नियम ६१—(अकर्तर्यृणे०, विभाषा गुणे०) हेतुबोधक ऋण या गुणवाची शब्दों में पंचमी होती है। ऋणाद् बद्ध:, जाड्याद् बद्ध:। मौनान्मूर्ख:। वाद-विवाद में युक्ति देने या उत्तर देने में भी पंचमी होती है। पर्वतो वह्निमान् धूमात्। नास्ति घटोऽनुपलब्धे: (घड़ा नहीं है, क्योंकि अविद्यमान है)।

नियम ६२—(पृथग्विनानानाभि:०) पृथक्, विना और नाना के साथ पंचमी, द्वितीया और तृतीया होती हैं। रामात् रामं रामेण विना पृथक् वा।

नियम ६३—(दूरान्तिकार्थेभ्यो०) दूर और समीपवाची शब्दों में पंचमी, द्वितीया और तृतीया तीनों होती हैं। ग्रामस्य दूरात् दूरेण दूरं वा।

नियम ६४—(पञ्चमी विभक्ते) तुलना में जिससे तुलना की जाती है, उसमें पंचमी होती है। रामात् कृष्ण: पटुतर:। अणोरणीयान् महतो महीयान्। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी (जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से बढ़कर हैं)।

नियम ६५—(यतश्चाध्वकालनिर्माणं०) स्थान और समय की दूरी नापने में पंचमी होती है। दूरीवाचक शब्द में प्रथमा और सप्तमी होती हैं, समयवाचक में सप्तमी। वनाद् ग्रामो योजनं योजने वा। कार्तिक्या आग्रहायणी मासे।

अभ्यास ८

संस्कृत बनाओ— (क) (मन्त्र, रम्, धातु, लङ् आ०) १. राजा सचिवों के साथ मन्त्रणा करे। २. तुम कुछ मन में रखकर कह रहे हो (मन्त्र)। ३. तुम अकेले क्या गुनगुना रहे हो? ४. चकवी, अपने साथी से विदाई ले। ५. यज्ञों में ब्राह्मणों को आमन्त्रित करो (आमन्त्र)। ६. राजा ने विद्वानों को निमन्त्रण दिया। ७. उसका एकान्त में मन लगता है। ८. हंस का मन मानसरोवर के बिना नहीं लगता। ९. पत्नी पति के साथ क्रीड़ा करती है (रम्)। १०. मेरा चित्त विषयों से हटता है। ११. रात्रि इस प्रकार बीत गयी। १२. यह कहकर शेर चुप हो गया। १३. राम के वियोग से उत्पन्न शोक से दशरथ का स्वर्गवास हो गया। (ख) (पंचमी) १. आपका शुभागमन कहाँ से हुआ? प्रयाग से। २. मकान पर चढ़कर उसने बरात देखी। ३. वह आसन पर बैठकर चित्र देखता है। ४. बहू श्वशुर से शर्माती है। ५. आग के अतिरिक्त और कौन जला सकता है? ६. गाँव से दूर (आरात्) नदी है। ७. घर के पास (आरात्) उद्यान है। ८. श्रम के बिना (ऋते) धन नहीं। ९. गाँव के पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण की ओर अनाज से हरे-भरे खेत हैं। १०. वह बचपन से ही व्यायाम का प्रेमी है। ११. उसी दिन से दोनों की मित्रता हो गई। १२. इसके बाद क्या करना चाहिये? १३. गाँव के बाहर उसकी कुटी है। १४. जन्म से लेकर आज तक इसने शठता नहीं सीखी है। १५. उड़द से जौ को बदलता है। १६. चोर ऋण के कारण पकड़ा गया। १७. मूर्खता के कारण अनादृत हुआ। १८. अति परिचय से अपमान होता है और किसीके यहाँ अधिक जाने से अनादर होता है। १९. दो हृदयों की एकता से प्रेम होता है, समीप रहने मात्र से कुछ नहीं होता। २०. मैं निन्दा से मुक्त हो गया हूँ। २१. पहाड़ में आग है, चूँकि धुआँ दीखता है। २२. यहाँ पुस्तक नहीं है, चूँकि दिखाई नहीं देती है। २३. चाँदनी चन्द्रमा के बिना नहीं रह सकती। २४. कूड़ा घर से दूर फेंकना चाहिए (प्रक्षिप्)। २५. ईश्वर छोटे-से-छोटा और बड़े-से-बड़ा है। २६. कृष्ण राम से अधिक चतुर है। २७. प्रयाग नगर से गंगा-यमुना का संगम कोस भर पर है। २८. माता और मातृभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर हैं। २९. भक्तिमार्ग से ज्ञानमार्ग अच्छा है। ३०. कार्तिक से अगहन एक महीने बाद होता है।

संकेत— (क) १. मन्त्रयेत। २. किमपि हृदये कृत्वा। ३. किमेकाकी मन्त्रयसे। ४. चक्रवाकवधुके, आमन्त्रयस्व सहचरम्। ६. न्यमन्त्रयत। ७. स रहसि रमते। ८. रमते न मरालस्य मानसं मानसं विना। १०. विरमति। ११. रात्रिरेवं व्यरंसीत्। १२. उपरराम। १३. दाशरथिवियोगजन्मना शोकेन, उपरतः। (ख) १. कुतो भवान्, प्रयागात्। २. प्रासादात् वरयात्रां प्रैक्षत। ३. आसनात्। ४. श्वशुरात् जिह्रेति। ५. कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति। ७. निष्कुटः। ९. शस्यश्यामानि क्षेत्राणि। १०. व्यायामप्रियः। ११. तद्दिनादारभ्य। १२. अस्मात् परम्। १४. आ जन्मनः शाठ्यमशिक्षितोऽयम्। १६. बद्धः। १७. जाड्यात्। १८. अतिपरिचयादवज्ञा, सन्ततगमनादनादरो भवति। १९. हृदौरैक्यात् स्नेहः संजायते, संनिधानस्याकिंचित्करत्वात्। २०. वचनीयात्। २१. पर्वतो वह्निमान्, धूमात्। २२. अनुपलब्धेः। २३. न स्थातुं शक्नोति। २४. अवकरनिकरः। २७. क्रोशः क्रोशे वा। २९. श्रेयान्। ३०. मासे।

शब्दकोष—२००+२५=२२५] **अभ्यास ९** (व्याकरण)

(क) उद्गीथ: (ओम्, ब्रह्म), विश्रम: (विश्राम), नियोग: (आज्ञा), विनियोग: (उपयोग, खर्च); विदग्ध: (विद्वान्, चतुर), कालहरणम् (देर करना), कैतवम् (धोखा), कार्यकालम् (मौका), साक्षिन् (पुं०, साक्षी)। (९)। (ख) स्था (१. रुकना, २. रहना), उत्था (१. उठना, २. यत्न करना), उपस्था (१. पूजा करना, २. मिलना आदि), प्रस्था (प्रस्थान करना), अवस्था (१. रुकना, २. रहना), अनुष्ठा (१. करना, २. मानना), आस्था (मानना), संशी (संशय करना), अधि+इ (पर०, स्मरण करना), दय् (दया करना)। (१०)। (ग) कृते (लिए), अन्तरे (अन्दर, बीच में), शतम् (सौ रुपये)। (३)। (घ) अक्षम: (असमर्थ), अभिज्ञ: (जाननेवाला), अव्याजमनोहरम् (स्वभाव से ही सुन्दर)। (३)।

व्याकरण (इदम्, विधिलिङ् आत्मने०, षष्ठी)

१. इदम् शब्द के तीनों लिंगों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ८७)

२. लभ् और स्था धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ९, २१)

नियम ६६—(षष्ठी शेषे) सम्बन्ध का बोध कराने के लिए षष्ठी विभक्ति होती है। राज्ञ: पुरुष:। रामस्य पुस्तकम्। गङ्गाया जलम्। देवदत्तस्य धनम्।

नियम ६७—(षष्ठी हेतुप्रयोगे) हेतु शब्द के साथ षष्ठी होती है। अन्नस्य हेतोर्वसति (अन्न के लिए रहता है)।

नियम ६८—(निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम्) निमित्त अर्थवाले शब्दों (निमित्त, हेतु, कारण, प्रयोजन) के साथ प्राय: सभी विभक्तियाँ होती हैं। किं निमित्तं वसति, केन निमित्तेन, कस्मै निमित्ताय। कस्य हेतो:। कस्मात् कारणात्। केन प्रयोजनेन।

नियम ६९—(षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन) उपरि, उपरिष्टात्, पुर:, पुरस्तात्, अध:, अधस्तात्, पश्चात्, अग्रे, दक्षिणत:, उत्तरत: आदि दिशावाची शब्दों के साथ षष्ठी होती है। गृहस्योपरि पुर: पश्चात् अग्रे वा। ग्रामस्य दक्षिणत: उत्तरतो वा। तरोरध:।

नियम ७०—(षष्ठी शेषे) कृते, समक्षम्, मध्ये, अन्त:, अन्तरे, पारे, आदौ आदि के साथ षष्ठी होती है। धनस्य कृते। गुरो: समक्षम्। छात्राणां मध्ये। गृहस्य अन्त: अन्तरे वा। गङ्गाया: पारे। रामायणस्यादौ।

नियम ७१—(एनपा द्वितीया) 'एन' प्रत्ययान्त दिशावाची दक्षिणेन उत्तरेण आदि के साथ षष्ठी और द्वितीया होती हैं। दक्षिणेन ग्रामं ग्रामस्य वा। दक्षिणेन वृक्षवाटिकाम् (वृक्ष-वाटिका के दाहिनी ओर)।

नियम ७२—(दूरान्तिकार्थै: षष्ठी०) दूर और समीपवाची शब्दों के साथ षष्ठी और पंचमी दोनों होती हैं। ग्रामस्य ग्रामाद् वा दूरं समीपं निकटं पार्श्वं सकाशं वा।

नियम ७३—(अधीगर्थदयेशां कर्मणि) स्मरण करना, दया करना और स्वामी होना, इन अर्थवाली धातुओं के साथ कर्म में षष्ठी होती है। मातु: स्मरति। रामस्य दयमान:। अयं गात्राणामीष्टे (यह अपने अंगों का स्वामी है)।

नियम ७४—(यतश्च निर्धारणम्) बहुतों में से एक को छाँटने में, जिसमें से छाँटा जाए, उसमें षष्ठी और सप्तमी दोनों होती हैं। कवीनां कविषु वा कालिदास: श्रेष्ठ:।

अभ्यास ९

संस्कृत बनाओ—(क) (इदम्, विधिलिङ् आ०) १. इसमें जरा भी देरी न करो। २. बिना कृत्रिमता के भी यह शरीर सुन्दर है। ३. यह कथा मुझे ही लक्ष्य करती है। ४. इस वन में अगस्त्य आदि ब्रह्मवेत्ता रहते हैं। ५. न यह मिला, न वह मिला। ६. इसने धूर्तता नहीं सीखी है। ७. भला इस तरह भी चैन मिले। ८. युद्ध में जाकर पीठ न दिखावे। ९. सदा गुरु की सेवा करे, कष्टों को सहन करे, उन्नति के लिए यत्न करे, ज्ञान से बढ़े, प्रसन्न हो और सुख पावे। (ख) (स्था धातु) १. वह घर में रहता है (स्था)। २. बुद्धिमान् आदमी एक पैर से चलता है और एक पैर से रुका रहता है। ३. पति के कहने में रहना। ४. दुर्योधन सन्देह होने पर कर्ण आदि के पास निर्णयार्थ जाता था। ५. मुनि लोग मुक्ति के लिए यत्न करते हैं (उत्था, आ०)। ६. वह आसन से उठता है (उत्था, पर०)। ७. इस गाँव से सौ रुपए लगान मिलता है। (उत्था, पर०)। ८. वह सूर्य की पूजा करता है (उपस्था, आ०)। ९. प्रयाग में यमुना गंगा से मिलती है। १०. वह रथिकों से मित्रता करता है। ११. यह मार्ग वाराणसी को जाता है और यह प्रयाग को। १२. भिक्षुक धनी के पास जाता है (उपस्था, आ०)। १३. वह खाने के समय आ जाता है (उपस्था, आ०), पर काम पड़ने पर दिखाई भी नहीं देता। १४. मैं वाराणसी चार दिन रुकूँगा (अवस्था, आ०), फिर प्रयाग चला जाऊँगा (प्रस्था, आ०)। १५. कृष्ण दिल्ली के लिए चल पड़े (प्रस्था, आ०)। १६. गुरु का वचन मानो (अनुष्ठा, पर०)। १७. भगवान् मारीच क्या कर रहे हैं (अनुष्ठा, पर०)? १८. आप आज्ञा दें, क्या काम करें? १९. वैयाकरण शब्द को नित्य मानते हैं (आस्था, आ०)। (ग) (षष्ठी) १. यह किस छात्र की पुस्तक है? २. राजा का आदमी किसलिए यहाँ आया है? ३. हरिद्वार में गंगा का जल शीतल, स्वच्छ और मधुर होता है। ४. वह अध्ययन के लिए छात्रावास में रहता है। ५. पेड़ के ऊपर और नीचे बन्दर कूद रहे हैं। ६. बच्चे मकान के आगे-पीछे, दक्षिण और उत्तर की ओर गेंद खेल रहे हैं। ७. याचक धन के लिए (कृते) धनी के सामने हाथ फैलाता है (प्रसारि)। ८. ईश्वर प्राणियों के बाहर और अन्दर है। ९. हे अग्नि, तुम सब प्राणियों के अन्दर साक्षिरूप में हो। १०. पता नहीं, मरूँगा कि जीऊँगा। ११. गंगा के पार मुनि लोग रहते हैं। १२. महाभारत के आदि में यह श्लोक है। १३. गाँव के दक्षिण की ओर वन है। १४. वाटिका के उत्तर की ओर कुछ बातचीत-सी सुनाई देती है। १५. पिता के पास से यहाँ आया हूँ। १६. शिशु माता को स्मरण करता है।

संकेत—(क) १. अक्षमोऽयं कालहरणस्य। २. इदं किलाव्याजमनोहरं वपुः। ३. लक्ष्यीकरोति। ४. प्रभृतयः, उद्‌गीथविदः। ५. इदं च नास्ति, न परं च लभ्यते। ६. अनभिज्ञोऽयं जनः कैतवस्य। ७. यद्येवमपि नाम विश्रमं लभेय। ८. न निवर्तेत। (ख) २. चलत्येकेन पादेन, तिष्ठति। ३. शासने तिष्ठ भर्तुः। ४. संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः। (आत्मनेपद के नियमों के लिए देखें अभ्यास २९, ३०)। ५. मुक्तावुत्तिष्ठन्ते। ६. उत्तिष्ठति। ७. ग्रामाच्छतमुत्तिष्ठति। ८. आदित्यमुपतिष्ठते। ९. गङ्गामुपतिष्ठते। १०. रथिकानुपतिष्ठते। ११. वाराणसीमुपतिष्ठते। १३. भोजनकाले उपतिष्ठते, कार्यकाले तु न लभ्यते। १४. अवस्थास्ये, प्रयागं प्रस्थास्ये। १५. हरिर्हरिप्रस्थमथ प्रतस्थे। १७. किमनुतिष्ठति १८. आज्ञापयतु, को नियोगोऽनुष्ठीयताम्। १९. शब्दं नित्यमातिष्ठन्ते। (ग) ८. बहिरन्तश्च भूतानाम्। ९. त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरसि साक्षिवत्। १०. मरणजीवितयोरन्तरे वर्ते। १४. आलाप इव श्रूयते।

शब्दकोष—२२५+२५=२५०] **अभ्यास १०** (व्याकरण)

(क) रथ्य: (घोड़ा), वेला (१. समय, २. किनारा), रसना (जीभ)। (३)। (ख) मुद् (प्रसन्न होना), सह् (सहना), यत् (यत्न करना), वन्द् (प्रणाम करना), भाष् (कहना), कूर्द् (कूदना), शिक्ष् (सीखना), कम्प् (काँपना), ईह् (चाहना), शुभ् (शोभित होना), स्पर्ध् (स्पर्धा करना), चेष्ट् (चेष्टा करना), परा+अय्, पलाय् (भागना), द्युत् (चमकना), वेप् (काँपना), त्रप् (लज्जित होना), भास् (चमकना), दीक्ष् (दीक्षा देना), स्रंस् (गिरना), ध्वंस् (नष्ट होना), अव+लम्ब् (१. सहारा देना, २. सहारा लेना), व्यथ् (दुःखित होना)। (२२)।

व्याकरण (अदस्, लृट् आत्मने०, षष्ठी)

१. अदस् शब्द के तीनों लिगों के रूप स्मरण करो (देखो शब्द० ८८)

२. मुद् और सह् धातुओं के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० २३, २४)

नियम ७५—(कर्तृकर्मणोः कृति) कृदन्त शब्दों के कर्ता और कर्म में षष्ठी होती है। जिनके अन्त में कृत् प्रत्यय अर्थात् तृच् (तृ), क्तिन् (ति), अच् (अ), घञ् (अ), ल्युट् (अन), ण्वुल् (अक) आदि हों, उन्हें कृदन्त कहते हैं। जैसे—शिशोः शयनम्। पुस्तकस्य पाठः। शास्त्राणां परिचयः। दुःखस्य नाशः। ग्रन्थस्य प्रणेता। कवेः कृतिः। जनानां पालकः (लोगों का पालक)।

नियम ७६—(उभयप्राप्तौ कर्मणि) कृदन्त के साथ जहाँ कर्ता और कर्म दोनों हों, वहाँ कर्म में षष्ठी होती है। आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन। शब्दानामनुशासनमाचार्येण आचार्यस्य वा (आचार्य के द्वारा शब्दों का शिक्षण)।

नियम ७७—(क्तस्य च वर्तमाने, अधिकरणवाचिनश्च) वर्तमानार्थक और भावार्थक क्तप्रत्ययान्त के साथ षष्ठी होती है। राज्ञां मतः, सतां मतः। मयूरस्य नृत्तम्। छात्रस्य हसितम् (छात्र का हँसना)।

नियम ७८—(न लोकाव्यय०) इन प्रत्ययों से बने हुए कृदन्त शब्दों के साथ षष्ठी नहीं होती :—शतृ, शानच्, उ, उक, क्त्वा, तुमुन्, क्त, क्तवतु, खल्, तृन्। जैसे—कर्म कुर्वन् कुर्वाणो वा। हरिं दिदृक्षुः। दैत्यान् घातुको हरिः। जगत् सृष्ट्वा। सुखं कर्तुम्। विष्णुना हता दैत्याः। हरिणा ईषत्करः प्रपञ्चः। कामुकः और द्विषत् के साथ षष्ठी होगी। लक्ष्म्याः कामुक। मुरस्य मुरं वा द्विषन्।

नियम ७९—(कृत्यानां कर्तरि वा) कृत्य प्रत्ययों (तव्य, अनीय, यत्, ण्यत् आदि) के साथ कर्ता में तृतीया और षष्ठी होती हैं। मया मम वा सेव्यो हरिः। न वयमनुग्राह्याः प्रायो देवतानाम्। न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः।

नियम ८०—(तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां०) तुल्य अर्थवाले शब्दों के साथ तृतीया और षष्ठी होती हैं। तुला और उपमा के साथ षष्ठी ही होगी। कृष्णस्य कृष्णेन वा तुल्यः सदृशः समो वा (कृष्ण के सदृश)।

नियम ८१—(चतुर्थी चाशिष्यायुष्य०) आशीर्वाद देने में आयुष्यम्, भद्रम्, कुशलम्, सुखम्, हितम् आदि के साथ चतुर्थी और षष्ठी होती हैं। कृष्णस्य कृष्णाय वा कुशलं भद्रं वा भूयात् (कृष्ण का भला हो)।

नियम ८२— (व्यवहृपणोः०, दिवस्तदर्थस्य, कृत्वोऽर्थ०) इन स्थानों पर षष्ठी होती है :—व्यवहृ, पण् और दिव् धातु जब जुआ खेलने या क्रय-विक्रय अर्थ में हों और कृत्व प्रत्यय के साथ। शतस्य व्यवहरणं पणनं वा। शतस्य दीव्यति। पञ्चकृत्वोऽह्नो भोजनम्।

अभ्यास १०

संस्कृत बनाओ—(क) (अदस्, लृट् आ०) १. सामने इस देवदार के पेड़ को देख रहे हो, इसे शिव ने पुत्रवत् माना है। २. ये घोड़े मृग के वेग को सहन न करते हुए दौड़ रहे हैं। ३. इसकी विद्या जिह्वाग्र पर रहती है। ४. इनकी पढ़ने में प्रवृत्ति है। ५. मैं स्वामी की चित्तवृत्ति का अनुसरण करूँगा। ६. तुम थोड़ी देर में अपने घर पहुँच लोगे। ७. पिता इस समाचार को सुनकर न जाने क्या विचारेंगे? ८. जो दुःख सहेगा, यत्न करेगा, गुरु की सेवा करेगा, सत्य बोलेगा, वह सदा सुख पायेगा। ९. जो माता-पिता की वन्दना करेगा, समयानुसार खेलेगा, कूदेगा, वेद को सीखेगा, सबका हित चाहेगा, ज्ञानोपार्जन में स्पर्धा करेगा, सत्कर्म में चेष्टा करेगा, अध्ययन से नहीं घबड़ाएगा, दुष्कर्म से लज्जित होगा, धर्म की दीक्षा लेगा, वह कभी भी न च्युत होगा, न नष्ट होगा और न दुःखी होगा। (ख) (षष्ठी) १. यह कालिदास की कृति है। २. शास्त्रों का परिचय बुद्धि को बढ़ाता है। ३. मित्रों का दर्शन अब राम के लिए दुःखद हो गया है। ४. पाणिनि की अष्टाध्यायी की रचना सुन्दर है। ५. त्रुटि करना मनुष्यों का स्वभाव है। ६. इन दोनों पुस्तकों में से एक ले लो। ७. इन बालकों में से एक यहाँ आवे। ८. उसका स्वर्गवास हुए आज दसवाँ महीना है। ९. उसको तप करते हुए कई वर्ष हो गए। १०. स्वभाव से ही सीता राम को प्रिय थी, इसी प्रकार राम सीता को प्राणों से भी प्रिय थे। ११. वह सत्कार मेरे मनोरथ से भी परे की चीज थी। १२. थोड़े के लिए बहुत छोड़ने के इच्छुक तुम मुझे मूर्ख प्रतीत होते हो। १३. ग्वाले के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति का गाय को दुहना आश्चर्य की बात है। १४. अनुचरों को चाहिये कि वे स्वामी को धोखा न दें। १५. हम लोग देवताओं के अनुग्रह के योग्य नहीं हैं। १६. मोर का नाचना मन को हरता है। १७. कोयल की आवाज कानों को सुखद होती है। १८. परिश्रम करता हुआ व्यक्ति सुखी रहता है। १९. राम को देखने का इच्छुक यहाँ आया। २०. रावण से द्वेष करनेवाले राम की विजय हो। २१. शिष्य का शुभ हो। २२. राजा मुझे ही मानता है। २३. मनोरथों के लिए कुछ भी अगम्य नहीं है। २४. यह आपके योग्य नहीं है। २५. यह स्नेह के योग्य ही है। २६. वह सौ रुपए की लेन-देन करता है। २७. वह हिमालय की शोभा का अनुकरण करता था। २८. आपको न दीखे हुए बहुत दिन हो गए।

संकेत—(क) १. अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं, पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन। २. धावन्त्यमी मृगजवाक्षमयेव रथ्याः। ३. अमुष्य विद्या रसनाग्रनर्तकी। ५. चित्तवृत्तिमनुवर्तिष्ये। ६. क्षणात् स्वगृहे वर्तिष्यसे। ७. न जाने किं प्रतिपत्स्यते। ८. लप्स्यते। ९. वन्दिष्यते, कूर्दिष्यते, शिक्षिष्यते, ईहिष्यते, स्पर्धिष्यते, सत्कर्मणि चेष्टिष्यते, पलायिष्यते, त्रपिष्यते, दीक्षिष्यते, स्रंसिष्यते, ध्वंसिष्यते, व्यथिष्यते। **(ख)** २. वर्धयति। ३. रामस्य दुःखाय। ४. शोभना कृतिः। ५. स्खलनं, धर्मः। ६. गृह्यतामनयोरन्यतरत्। ७. अन्यतमः। ८. अद्य दशमो मासस्तस्योपरतस्य। ९. कतिपये संवत्सरास्तस्य तपस्तप्यमानस्य। १०. प्रिया तु सीता रामस्य, तथैव रामः सीतायाः प्राणेभ्योऽपि प्रियोऽभवत्। ११. मनोरथानामप्यभूमिः। १२. अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्, विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम्। १७. कोकिलस्य व्याहृतं कर्णौ सुखयति। २२. अहमेव मतो महीपतेः। २३. मनोरथानामगतिर्न विद्यते। २४. नैतदनुरूपं भवतः। २५. सदृशमेवैतत् स्नेहस्य। २६. शतस्य व्यवहरति। २७. लक्ष्मीमनुचकार। २८. कापि महती वेला तवादृष्टस्य।

शब्दकोष—२५०+२५=२७५] **अभ्यास ११** (व्याकरण)

(क) कन्दुकः (गेंद), मयूखः (किरण), व्यसनम् (विपत्ति), स्यन्दनम् (रथ), क्षतम् (चोट)। (५)। (ख) पत् (१. गिरना, २. पड़ना), आपत् (१. आ पड़ना, २. प्रतीत होना), अनुपत् (पीछा करना), उत्पत् (१. उड़ना, २. उठना), निपत् (१. गिरना, २. पड़ना) प्रणिपत् (प्रणाम करना)। नम् (१. प्रणाम करना, २. झुकना), उन्नम् (उठना), अवनम् (झुकना), अवनमय (झुकाना), प्रणम् (प्रणाम करना)। पच् (पकाना), परिपच् (परिपक्व होना), विपच् (फलित होना)। आस् (बैठना)। (१५)। (ग) सद्यः (शीघ्र), मुहुः (बार-बार), अभीक्ष्णम् (१. बार-बार, २. निरन्तर)। (३)। (घ) अधीतिन् (विद्वान्), गृहीतिन् (सीखनेवाला)। (२)

व्याकरण (युष्मद्, सप्तमी)

१. युष्मद् के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ८५)

२. पत्, नम्, पच् सोपसर्ग के अर्थों तथा रूपों को स्मरण करो। (देखो धातु० १२, १३)

नियम ८३—(आधारोऽधिकरणम्) किसी क्रिया के आधार को अधिकरण कहते हैं, जहाँ पर या जिसमें वह कार्य किया जाता है। आधार तीन प्रकार का है—१. औपश्लेषिक (संयोग-सम्बन्धवाला), २. वैषयिक (विषय में), ३. अभिव्यापक (व्यापक होकर रहना)।

नियम ८४—(सप्तम्यधिकरणे च) तीनों प्रकार के आधार या अधिकरण में सप्तमी होती है। १. आसने उपविशति, स्थाल्यां पचति। २. मोक्षे इच्छाऽस्ति। ३. सर्वस्मिन्नात्माऽस्ति (सबमें आत्मा है)।

नियम ८५—(वैषयिकाधारे सप्तमी) 'विषय में, बारे में' तथा समय-बोधक शब्दों में सप्तमी होती है। मोक्षे इच्छाऽस्ति। प्रातःकाले मध्याह्ने सायंकाले दिवसे रात्रौ वा कार्यं करोति। शैशवे, यौवने, वार्धके (बाल्य, यौवन, वृद्धत्वकाल में)। आषाढस्य प्रथमदिवसे।

नियम ८६—(क) (क्तस्येन्विषयस्य०) क्त-प्रत्ययान्त के अन्त में इन् प्रत्यय होगा तो उसके कर्म में सप्तमी होगी। अधीती व्याकरणे। गृहीती षट्स्वङ्गेषु। (ख) (साध्वसाधुप्रयोगे च) साधु और असाधु के साथ सप्तमी। साधुः कृष्णो मातरि, असाधुर्मातुले। (ग) (निमित्तात् कर्मयोगे) जिस फल के लिए कोई काम किया जाता है, उसमें सप्तमी होगी। चर्मणि द्वीपिनं हन्ति, दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्। केशेषु चमरीं हन्ति।

नियम ८७—(आयुक्तकुशलाभ्याम्०, साधुनिपुणाभ्याम्०) संलग्न अर्थवाले शब्दों (व्यापृतः, आयुक्तः, लग्नः, आसक्तः, युक्तः, व्यग्रः, तत्परः आदि) तथा चतुर अर्थवाले शब्दों (कुशलः, निपुणः, साधुः, पटुः, प्रवीणः, दक्षः, चतुरः आदि) के साथ सप्तमी होती है। गृहकर्मणि लग्नः, व्यापृतः, व्यग्रो वा। शास्त्रेषु निपुणः प्रवीणः दक्षो वा।

नियम ८८—(यतश्च निर्धारणम्) बहुतों में से एक के छाँटने में, जिसमें से छाँटा जाय, उसमें षष्ठी और सप्तमी होती हैं। छात्राणां छात्रेषु वा रामः श्रेष्ठः पटुतमो वा।

नियम ८९—(सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये) समय और मार्ग का अन्तर बतानेवाले शब्दों में पंचमी और सप्तमी होती हैं। अद्य भुक्त्वाऽयं द्व्यहे द्व्यहाद् वा भोक्ता। क्रोशे क्रोशाद् वा लक्ष्यं विध्येत् (कोसभर के लक्ष्य को बींध देगा)।

नियम ९०—(वैषयिकाधारे सप्तमी) प्रेम, आसक्ति और आदर-सूचक धातुओं और शब्दों (स्निह्, अभिलष्, अनुरञ्ज्, आदृ, रम्, रतिः, स्नेहः, आसक्तः, अनुरक्तः आदि) के साथ सप्तमी होती है। पिता पुत्रे स्निह्यति। रहसि रमते। श्रेयसि रतः। दण्डनीत्यां नात्यादृतोऽभूत्।

अभ्यास ११

संस्कृत बनाओ—(क) (पत्, नम्, पच्) १. आश्रम के वृक्षों पर धूल गिर रही है (पत्)। २. चन्द्रमा थोड़ी सी किरणों के साथ आकाश से नीचे आ रहा है। ३. परधर्म को अपनाकर जीवित रहनेवाला शीघ्र ही जाति से पतित हो जाता है। ४. श्रेष्ठ आदमी पतित होता हुआ भी गेंद की तरह उठ जाता है। ५. यह बात आपके कानों में पड़ी ही होगी। ६. ओह, बड़ी विपत्ति आ पड़ी है। ७. ओह, यह अच्छा नहीं हुआ। ८. संसार में जन्म लेनेवालों पर ऐसी घटनाएँ आती ही हैं। ९. नवयौवन से कसैले मनवालों को वे ही विषय मधुरतर प्रतीत होते हैं, जिनका वे आस्वादन कर चुके हैं (आपत्)। १०. मृग पीछा करते हुए रथ को बार-बार देखता था। ११. पक्षी आकाश में उड़ते हैं (उत्पत्)। १२. हाथ से पटकी हुई भी गेंद उछलती है। १३. शेर छोटा होने पर भी हाथियों पर टूटता है (निपत्)। १४. वृक्ष से फल भूमि पर गिर रहे हैं (निपत्)। १५. पुत्र पिता को प्रणाम करता है (प्रणिपत्)। १६. ईश्वर को प्रणाम करके कार्य को प्रारम्भ करता हूँ (प्रारभ्)। १७. चोट पर ही चोट बार-बार लगती है। १८. आप सबको नमस्कार करता हूँ (नम्)। १९. बादल कभी झुकता है, कभी उठता है। २०. कमजोर व्यक्ति सन्धि का इच्छुक होने पर झुके। २१. बादल जल लेने के लिए झुकता है। २२. शत्रुओं का शिर झुका देना। २३. वे देवताओं को प्रणाम करते हैं। २४. चावलों से भात पकाता है। २५. वह विद्वान् परिपक्व-बुद्धि है। २६. उसकी सारी योजनाएँ फलित हुईं। **(ख) (सप्तमी)** १. वे चटाई पर बैठते हैं। २. वे पतीली में भोजन पकाते हैं। ३. सबमें ब्रह्म है। ४. बचपन में विद्याभ्यास करनेवाले, यौवन में विषयों के इच्छुक, वृद्धावस्था में मुनिवृत्तिवाले और अन्त में योग से शरीर छोड़नेवाले रघुवंशियों का वर्णन करूँगा। ५. फाल्गुन शुक्ला पंचमी को वसन्त-पंचमी का पर्व होता है। ६. उसने दर्शन पढ़ रखे हैं। ७. उसने वेद के छहों अंग सीख लिये हैं। ८. इन्द्र देवों पर सज्जन है और असुरों पर क्रूर। ९. चर्म के लिए मृग को मारता है, दाँतों के लिए हाथी को मारता है। १०. वह अध्ययन में लगा हुआ है। ११. कृष्ण व्याकरण और साहित्य में निपुण है। १२. मनुष्यों में बुद्धिमान् श्रेष्ठ हैं। १३. आज खाना खाकर यह दो दिन बाद खायेगा। १४. यहाँ बैठकर वह कोसभर दूर निशाना मार सकता है। १५. उसका एकान्त में मन लगता है। १६. उसका दण्डनीति में विश्वास है।

संकेत—(क) १. रेणुः। २. अल्पशेषैर्मयूखैः। ३. परधर्मेण जीवन् हि सद्यः पतति जातितः। ४. प्रायः कन्दुकपातेनोत्पतत्यार्यः पतन्नपि। ५. एतद् भवतः श्रुतिविषयमापतितमेव। ६. अहो, महद् व्यसनमापतितम्। ७. अहो, न शोभनमापतितम्। ८. आपतन्ति हि संसारपथमवतीर्णानामेते विषयाः। ९. नवयौवनकषायितात्मनश्च तान्येव विषयस्वरूपाण्यास्वाद्यमानानि मधुरतराण्यापतन्ति मनसः। १०. मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्तदृष्टिः। १२. पातितोऽपि कराघातैरुत्पतत्येव कन्दुकः। १३. सिंहः शिशुरपि निपतति गजेषु। १५. पितरं प्रणिपतति। १६. प्रणिपत्य। १७. क्षते प्रहारा निपतन्त्यभीक्ष्णम्। १९. उन्नमति नमति च। २०. अशक्तः सन्धिमान् नमेत्। २१. जलमादातुमवनमति। २२. अवनमय द्विषतां शिरांसि। २३. प्रणमन्ति देवताभ्यः। २४. तण्डुलान्। २६. विपेचिरे। **(ख)** १. कटे आसते। ४. अभ्यस्तविद्यानाम्, विषयैषिणाम्, मुनिवृत्तीनाम्, तनुत्यजाम्, रघूणामन्वयं वक्ष्ये। ५. पञ्चम्याम्। ६. अधीती दर्शने। ७. गृहीती षट्स्वङ्गेषु। ९. चर्मणि। १४. इहस्थः।

शब्दकोष—२७५+२५=३००] **अभ्यास १२** (व्याकरण)

(क) सांयात्रिक: (समुद्री व्यापारी), पोत: (पानी का जहाज), उडुप: (छोटी नौका), रक्षिन् (सिपाही), सचेतस् (विद्वान्), अनागस् (निरपराध)। (६)। (ख) तॄ (१. तैरना, २. पार करना), अवतॄ (उतरना), उत्तॄ (१. पार करना, २. उत्तीर्ण होना), वितॄ (देना), निस्तॄ (पार करना), संतॄ (तैरना), स्मृ (याद करना), संस्मृ (याद करना), विस्मृ (भूलना), जि (जीतना), विजि (जीतना), पराजि (१. हराना, २. हारना), स्निह् (प्रेम करना), विश्वस् (विश्वास करना), आक्षिप् (टोकना, बात काटना), गण् (गिनना), मुच् (छोड़ना), श्रद्धा (श्रद्धा करना), उपपद् (ठीक घटना)। (१९)।

व्याकरण (अस्मद्, सप्तमी विभक्ति)

१. अस्मद् शब्द के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ८६)

२. तॄ, स्मृ और जि के विशेष अर्थों को स्मरण करो। (देखो धातु० १४, १५)

नियम ९१—(आधारे सप्तमी) इन स्थानों पर सप्तमी होती है—(क) फेंकना अर्थ की धातुओं क्षिप्, मुच्, अस् आदि के साथ। मृगे बाणं क्षिपति, मुञ्चति, अस्यति वा। (ख) विश्वास और श्रद्धा अर्थवाली धातुओं और शब्दों (विश्वसिति, विश्वास:, श्रद्धा, निष्ठा, आस्था आदि) के साथ व्यक्ति में। न विश्वसेदविश्वस्ते। ब्रह्मणि श्रद्दधाति, श्रद्धा निष्ठा वा वर्तते। (ग) 'व्यवहार करना' अर्थ में वृत् और व्यवहृ आदि के साथ। गुरुषु विनयेन वर्तते। कुरु सखीवृत्तिं सपत्नीजने। विश्वस् के साथ द्वितीया भी।

नियम ९२—(आधारे सप्तमी) इन स्थानों पर सप्तमी होती है :—(क) युज् धातु तथा उससे बने शब्दों के साथ। इमामाश्रमधर्मे नियुङ्क्ते। (ख) 'योग्य' और 'उपयुक्त' आदि अर्थों में व्यक्ति में। युक्तरूपमिदं त्वयि। त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्वं तस्मिन् युज्यते। एते गुणा ब्रह्मण्युपपद्यन्ते। (ग) ग्रहण और प्रहार अर्थवाली धातुओं के साथ। केशेषु गृहीत्वा। न प्रहर्तुमनागसि। (घ) रखना अर्थ में। मन्त्रिणि राज्यभारमारोप्य। सचिवे भारो न्यस्त:। (ङ) अपराध् के साथ षष्ठी और सप्तमी होती हैं। कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शकुन्तला। सुभगमपराद्धं युवतिषु। अपराद्धोऽस्मि तत्रभवत: कण्वस्य।

नियम ९३—(षष्ठी चानादरे) अनादर अर्थ में षष्ठी और सप्तमी दोनों होती हैं। रुदति रुदतो वा प्राव्राजीत् (रोते हुए पुत्रादि को छोड़कर उसने संन्यास ले लिया)।

नियम ९४—(यस्य च भावेन भावलक्षणम्) एक क्रिया के बाद दूसरी क्रिया होने पर पहली क्रिया में सप्तमी होती है। कर्तृवाच्य में कर्ता और कृदन्त में सप्तमी होगी। कर्मवाच्य में कर्म और कृदन्त में सप्तमी होगी, कर्ता में तृतीया। प्रथम क्रिया में कृदन्त का प्रयोग होना चाहिए। गोषु दुह्यमानासु गत:। रामे वनं गते दशरथो दिवंगत:।

नियम ९५—(यस्य च भावेन०) (क) 'ज्योंही, इतने ही में, उसी क्षण' इन अर्थों में सप्तमी होती है। ऐसे स्थलों पर मात्र या एव का प्रयोग होता है। अनवसितवचने एव मयि (मेरी बात पूरी न हो पाई थी, उसी समय)। प्रविष्टमात्रे एव तत्रभवति (ज्योंही आप आए, त्योंही)। (ख) 'जब' अर्थ में षष्ठी और सप्तमी होती हैं। एवं तयो: परस्परं वदतो: (जब वे दोनों बात कर रहे थे)। (ग) 'रहते हुए' अर्थ में सप्तमी। कुतो धर्मक्रियाविघ्न: सतां रक्षितरि त्वयि (तेरे रक्षक रहते हुए)। (घ) 'होने पर' या 'करने पर' अर्थ में सप्तमी। एवं गते, तथाऽनुष्ठिते। (ङ) प्रधान और उपप्रधान वाक्यों में कर्ता या कर्म एक ही हो तो उसे एक वाक्य के तुल्य मानना चाहिए, बीच में भावे सप्तमी नहीं करनी चाहिए। जैसे—'आगतेषु विप्रेषु तेभ्यो दक्षिणां देहि' न कहकर 'आगतेभ्यो विप्रेभ्यो दक्षिणां देहि' कहना चाहिए।

अभ्यास १२

संस्कृत बनाओ—(क) (अस्मद् शब्द) १. वह मुझ पर स्नेह करता है और विश्वास करता है। २. मेरी बात झूठी नहीं हो सकती है। ३. मेरी बात काटकर उसने कहना शुरू किया। ४. यह मुझे कुछ नहीं समझता। (ख) (तॄ, स्मृ, जि धातु) १. वह छोटी नौका से नदी पार करता है (तॄ)। २. छात्र नदी में तैर रहे हैं। ३. जल में पत्ता तैर सकता है, न कि पत्थर। ४. धीर आपत्ति को पार करते हैं (तॄ)। ५. समुद्र में जहाज के टूटने पर भी समुद्री व्यापारी तैरकर उसे पार करना चाहता है। ६. वह रथ से उतरा (अवतॄ)। ७. कृष्ण ने आकाश से उतरते हुए नारद को देखा। ८. समुद्र को छोड़कर महानदी और कहाँ उतरती है? ९. राम परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ (उत्तॄ)। १०. वह गंगा पार करके प्रयाग गया। ११. गुरु जिस प्रकार चतुर को विद्या पढ़ाता है, उसी प्रकार मूर्ख को। १२. भगवान् मारीच तुम्हें दर्शन देते हैं। १३. धन से मनुष्य आपत्ति को पार करते हैं (निस्तॄ)। १४. मैंने प्रतिज्ञारूपी नदी पार कर ली। १५. ग्रीष्म ऋतु में लोग नदी में तैरते हैं। १६. क्या तुम्हें मधुर जलवाली गोदावरी की याद है? १७. क्या तुम्हें पति की याद आती है ? १८. उसकी याद करके मुझे शान्ति नहीं है। १९. हे भौंरे, तुम उसको कैसे भूल गए? २०. महाराज की जय हो। २१. आपकी विजय हो। २२. उसने षड्वर्ग को जीत लिया। २३. उसकी आँख कमल को भी जीतती है। २४. वह शत्रुओं को हराता है (पराजि)। २५. वह पढ़ाई से हार मानता है (पराजि)। (ग) (सप्तमी)। १. इस मृग पर बाण न छोड़ना। २. वह मृगों पर बाण छोड़ता है। ३. अविश्वासी पर विश्वास न करे और विश्वासी पर भी अधिक विश्वास न करे। ४. गुरुओं के साथ विनयपूर्वक व्यवहार करे (वृत्)। ५. तू सपत्नियों के साथ प्रियसखी का व्यवहार करना। ६. राजा ने इसको रक्षा के काम में लगाया है। ७. विचित्रता के रहस्य के लोभी सहृदय इस काव्य में श्रद्धा करेंगे। ८. सज्जन विद्वानों के गुणों की श्रद्धा करते हैं। ९. यह तुम्हारे योग्य नहीं है। १०. ये गुण ईश्वर में ठीक घटते हैं। ११. सिपाही ने चोर को बाल पकड़कर पटक दिया। १२. निरपराधी पर क्यों प्रहार कर रहे हो? १३. पुत्र पर कुटुम्ब का भार रखकर वह विदेश गया। १४. मैंने गुरु के प्रति अपराध किया है। १५. मेरे घर आने पर नौकर अपने घर गया। १६. रोते हुए पुत्रों को छोड़कर वह संन्यासी हो गया। १७. जब वह पढ़ रहा था, उसी समय उसके पिता यहाँ आए।

संकेत—(क) १. स्निह्यति, विश्वसिति। २. न मे वचनमन्यथाभवितुमर्हति। ३. वचनमाक्षिप्य। ४. न मामयं गणयति। (ख) १. नदीं तरति। २. नद्याम्। ३. पर्णं तरिष्यति। ५. याते समुद्रेऽपि च पोतभङ्गे, सांयात्रिको वाञ्छति तर्तुमेव। ६. अवततार। ७. अवतरन्तमम्बरात्। ८. सागरं वर्जयित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति। ९. परीक्षामुदतरत्। १०. उत्तीर्य। ११. वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे। १२. ते दर्शनं वितरति। १३. निस्तरन्ति। १४. निस्तीर्णा प्रतिज्ञासरित्। १५. निदाघे। १६. स्मरसि सरसनीरां तत्र गोदावरीं वा। १७. कच्चिद् भर्तुः स्मरसि। १८. तं संस्मृत्य न मे शान्तिरस्ति। १९. विस्मृतोऽस्येनां कथम्। २१. विजयते भवान्। २२. व्यजेष्ट। २३. विजयते। (ग) १. न संनिपात्यः। २. मुञ्चति। ३. विश्वस्ते नाति विश्वसेत्। ४. गुरुषु। ६. रक्षणे। ७. वैचित्र्यरहस्यलुब्धाः श्रद्धां विधास्यन्ति सचेतसोऽत्र। ८. विद्वत्सु गुणान् श्रद्दधति। ११. केशेषु गृहीत्वाऽपातयत्। १२. अनागसि। १३. न्यस्य। १४. अपराद्धोऽस्मि गुरोः। १७. पठति तस्मिन्।

शब्दकोष—३००+२५=३२५] **अभ्यास १३** (व्याकरण)

(क) नाकः (स्वर्ग), सुरः (देवता), असुरः (राक्षस), अच्युतः (विष्णु), त्र्यम्बकः (शिव), कृतान्तः (यम), शतक्रतुः (पुं० इन्द्र), कृशानुः (पुं०, अग्नि), पुष्पधन्वन् (कामदेव), मातरिश्वन् (वायु), मनुष्यधर्मन् (कुबेर), वेधस् (ब्रह्मा), प्रचेतस् (वरुण), सेनानीः (पुं०, कार्तिकेय), लक्ष्मीः (स्त्री०, लक्ष्मी), शर्वाणी (स्त्री० पार्वती), पौलोमी (स्त्री०, इन्द्राणी), पविः (पुं०, वज्र), पीयूषम् (अमृत), एकवाक्यम् (एक बात)। (२०)। (ग) एकतः (एक ओर से), एकधा (एक प्रकार से), एकैकशः (एक-एक करके), एकान्ततः (सर्वथा)। (४)। (घ) एकमतिः (एक रायवाले)। (१)

व्याकरण (एक शब्द, एकवचनान्त शब्द, घ्रा, लिट्, स्वरसन्धि)

१. एक शब्द के तीनों लिंगों में रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० सं० ८९)

२. घ्रा धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० सं० १०)

नियम ९६—पात्र, आस्पद, स्थान, पद, भाजन, प्रमाण शब्द जब विधेय के रूप में प्रयुक्त होंगे तो इनमें नपुंसक लिंग एकवचन ही रहेगा। उद्देश्यरूप में होंगे तो अन्य वचन भी होंगे। जैसे—गुणाः पूजास्थानं सन्ति। यूयं मम कृपापात्रं स्थ।

नियम ९७—(संख्याया विधार्थे धा) सभी संख्यावाचक शब्दों से 'प्रकार से' अर्थ में 'धा' लगता है। 'प्रकार का' अर्थ में 'विध', 'गुना' अर्थ में 'गुण' तथा 'बार' अर्थ में 'वारम्' लगता है। जैसे—एकधा, एकविधः, एकगुणः, एकवारम्। द्विधा, द्विविधः, द्विगुणः।

नियम ९८—(इको यणचि) इ ई को य्, उ ऊ को व्, ऋ ॠ को र्, ऌ को ल् हो जाता है, यदि बाद में कोई स्वर हो तो। सवर्ण (वैसा ही) स्वर हो तो नहीं। जैसे—इति+अत्र=इत्यत्र। मधु+अरिः=मध्वरिः। धातृ+अंशः=धात्रंशः। ऌ+आकृतिः=लाकृति।

नियम ९९—(एचोऽयवायावः) ए को अय्, ओ को अव्, ऐ को आय्, औ को आव् हो जाता है, बाद में कोई स्वर हो तो। (पदान्त ए या ओ के बाद अ होता तो नहीं)। जैसे—हरे+ए=हरये। विष्णो+ए=विष्णवे। नै+अकः=नायकः। पौ+अकः=पावकः। परन्तु रामो+अयम्=रामोऽयम्।

नियम १००—(वान्तो यि प्रत्यये) ओ को अव्, औ को आव् हो जाता है, बाद में यकारादि प्रत्यय हो तो। जैसे—गो+यम्=गव्यम्। नौ+यम्=नाव्यम्। यूति बाद में होने पर गो के ओ को अव् होता है। गो+यूतिः=गव्यूतिः।

नियम १०१—(आद्गुणः) अ या आ के बाद (१) इ या ई को ए, (२) उ या ऊ को ओ, (३) ऋ या ॠ को अर्, (४) ऌ को अल् होता है। जैसे—रमा+ईशः=रमेशः। पर+उपकारः=परोपकारः। महा+ऋषिः=महर्षिः। तव+ऌकारः=तवल्कारः। सूचना—दोनों वर्णों के स्थान पर एक आदेश को एकादेश कहते हैं।

नियम १०२—(वृद्धिरेचि) अ या आ के बाद (१) ए या ऐ को ऐ, (२) ओ या औ को औ होता है। तदा+एकः=तदैकः। राज+ऐश्वर्यम्=राजैश्वर्यम्। जल+ओघः=जलौघः। देव+औदार्यम्=देवौदार्यम्। यह भी एकादेश है।

नियम १०३—(एङः पदान्तादति) पद के अन्तिम ए या ओ के बाद अ हो तो उसे पूर्वरूप (ए या ओ) हो जाता है। हरे+अव=हरेऽव। विष्णो+अव=विष्णोऽव।

अभ्यास १३

संस्कृत बनाओ—(क) (एक शब्द) १. राजा या संन्यासी एक को मित्र बनावे। २. एक निवासस्थान बनावे, नगर या वन में। ३. बाह्यविषयों से निवृत्त और एकाग्र-चित्त मनुष्य तत्त्व को देख पाता है। ४. दो चित्तों के एक होने पर क्या असम्भव हो सकता है? ५. गुण-समूह में एक दोष उसी प्रकार छिप जाता है, जैसे चन्द्रमा की किरणों में उसका कलंक। (ख) (एक, एकवचनान्त शब्द) १. एक वन में एक शेर रहता था। २. इस स्त्री के दो बच्चे हैं, एक लड़का और एक लड़की। ३. एक पढ़ने में चतुर है, दूसरी गाने में दक्ष है। ४. एक बालक को पुस्तक दो और एक लड़की को फूल दो। ५. एक बालक एक बालिका से बात कर रहा है। ६. युद्धभूमि में एक ओर से एक सेना आई और दूसरी ओर से दूसरी सेना आई। ७. कक्षा से एक-एक करके सब छात्र चले गये। ८. मैं इस प्रश्न को एक प्रकार से हल कर सकता हूँ, परन्तु अध्यापक इसे दो प्रकार से हल कर सकता है। ९. जनता की एक राय थी, उन्होंने राजा के सम्मुख एक बात कही। १०. किसको सदा सुख मिला है और किसको सदा दुःख? ११. कुछ लोग ऐसा मानते हैं। १२. गुण पूजा के स्थान हैं। १३. तुम कृपा के पात्र हो। १४. आप इस विषय में प्रमाण हैं। (ग) (देववर्ग) १. देवता स्वर्ग में रहते हैं। २. देवों और असुरों का युद्ध हुआ। ३. इन्द्र ने वज्र से असुरों को नष्ट किया। ४. देवता अमृत पीकर अमर हो गये। ५. इन्द्र ने इन्द्राणी को, शिव ने पार्वती को और विष्णु ने लक्ष्मी को पत्नी के रूप में स्वीकार किया। ६. कुबेर धनाधिपति हैं, उसकी नगरी अलका है और उसका विमान पुष्पक है। ७. विष्णु का शंख पांचजन्य, चक्र सुदर्शन, गदा कौमोदकी, खड्ग नन्दक और मणि कौस्तुभ हैं। ८. इन्द्र की नगरी अमरावती, घोड़ा उच्चैःश्रवाः, हाथी ऐरावत, सारथि मातलि, उपवन नन्दन और पुत्र जयन्त हैं। ९. ब्रह्मा सृष्टि-कर्ता है। १०. वरुण जलपति है। ११. यम जीवों के प्राणों को हरता है। १२. अग्नि वन को जलाती है। १३. वायु अग्नि का मित्र होकर उसे बढ़ाता है। १४. कामदेव दम्पती में स्नेह का संचार करता है। १५. बालकों ने फूल सूँघा। १६. मैं फल सूँघूँगा। (घ) (लिट् का प्रयोग करो) १. सभासद् अपने स्थानों को गये। २. वह कहानी समाप्त हुई। ३. राम के सारे प्रयत्न सफल हुए और देवदत्त के विफल। ४. उसकी लड़की का नाम उमा पड़ा। ५. वसुदेव का पुत्र कृष्ण नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ। ६. पार्वती हिमालय की चोटी पर गई। ७. स्वायम्भुव मरीचि से कश्यप हुए। ८. पार्वती ने हृदय से अपने रूप की निन्दा की, क्योंकि मदन के दाह के कारण वह रूप से शिव को नहीं जीत सकती थी।

संकेत—(क) १. एकं मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा। २. एको वासः पत्तने वा वने वा। ३. एकाग्रो हि बहिर्वृत्तिनिवृत्तस्तत्त्वमीक्षते। ४. एकचित्ते द्वयोरेव किमसाध्यं भवेदिह। ५. एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः। (ख) २. अपत्यद्वयम्। ३. गाने। ६. अपरतः। ८. साधयितुं शक्नोमि। ९. एकवाक्यं विवव्रुः। १०. कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा। ११. एके एवं मन्यन्ते। (ग) २. युयुधिरे। ३. जघान। ४. बभूवुः। ५. स्वीचक्रुः। (घ) १. प्रतिजग्मुः। २. विच्छेदमाप स कथाप्रबन्धः। ३. सफलतां ययुः। ४. उमाख्यां जगाम। ५. भुवि पप्रथे। ६. शिखरं जगाम। ७. प्रबभूव। ८. रूपं निनिन्द, न जेतुं शशाक।

शब्दकोष—३२५+२५=३५०] **अभ्यास १४** (व्याकरण)

(क) पाठशाला (पाठशाला), विद्यालयः (स्कूल), महाविद्यालयः (कॉलेज), विश्वविद्यालयः (यूनिवर्सिटी), अध्यापकः (अध्यापक), प्राध्यापकः (प्रोफेसर), आचार्यः (प्रिन्सिपल), कुलपतिः (पुं०, वाइस-चान्सलर), कुलाधिपतिः (पुं०, चान्सलर), प्रस्तोतृ (रजिस्ट्रार), अन्तेवासिन् (शिष्य), अध्येतृ (छात्र), अध्येत्री (स्त्री०, छात्रा), सतीर्थ्यः (सहाध्यायी, कक्षा का साथी), विद्यालय-निरीक्षकः (स्कूल-इन्स्पेक्टर), उप-शिक्षासंचालकः (एडिशनल डाइरेक्टर, A.D.E.), शिक्षा-निदेशकः (डाइरेक्टर, D.E.), करणिकः (क्लर्क), प्रधानकरणिकः (हेड क्लर्क), द्विजातिः (पुं०, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य), द्विजिह्वः (१. साँप, २. चुग़लखोर), द्विपाद् (मनुष्य)। (२३)। **(ग)** द्विधा (दो प्रकार से) (१)। **(घ)** द्वित्राः (दो तीन)। (१)।

व्याकरण (द्वि शब्द, द्विवचनान्त शब्द, कृष्, वस्, लिट्, स्वरसन्धि)

१. द्वि शब्द के तीनों लिंगों में रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० सं० ९०)

२. कृष् और वस् धातु के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० १७, १८)

नियम १०४—द्वि और उभ शब्द सदा द्विवचन में ही आते हैं। उभय (दोनों) शब्द तीनों वचनों में आता है। (उभ और उभय के रूप तीनों लिंगों में सर्ववत् होंगे)।

नियम १०५—**(क)** दम्पती, पितरौ, अश्विनौ, इनके रूप द्विवचन में ही चलते हैं। इनके साथ क्रिया द्विवचन में आती है। दम्पती, पितरौ, अश्विनौ वा गच्छतः। **(ख)** द्वय, युगल, युग, द्वन्द्व, ये चारों 'दो' अर्थ के बोधक हैं। ये शब्द के अन्त में जुड़ते हैं और नपुंसक लिंग एकवचन होते हैं। इनके साथ क्रिया एक० में रहती है। जैसे—छात्रद्वयं, छात्रयुगलं, छात्रयुगं (छात्रद्वयी वा) पुस्तकानि पठति। **(ग)** हस्तौ, नेत्रे, पादौ, कर्णौ आदि द्विवचन में ही प्रयुक्त होते हैं।

नियम १०६—(एत्येधत्यूठ्सु) अ के बाद एकारादि इ और एध् धातु या ऊठ् (ऊ) हो तो दोनों की वृद्धि होती है। अ+ए=ऐ, अ+ऊ=औ। उप+एति=उपैति। उप+एधते=उपैधते। विश्व+ऊहः=विश्वौहः।

नियम १०७—(एङि पररूपम्) उपसर्ग के अ के बाद धातु का ए या ओ हो तो वहाँ ए या ओ ही रहता है। प्र+एजते=प्रेजते। उप+ओषति=उपोषति।

नियम १०८—(शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्) शकन्धु आदि में टि (अन्तिम स्वरसहित अंश) को पररूप होता है। शक+अन्धुः=शकन्धुः। मनस्+ईषा=मनीषा।

नियम १०९—(ओमाङोश्च) अ के बाद ओम् या आङ् (आ) हो तो पररूप अर्थात् ओम् या आ रहता है। शिवाय+ओं नमः=शिवायों नमः। शिव+एहि=शिवेहि।

नियम ११०—(अकः सवर्णे दीर्घः) (१) अ या आ+अ या आ=आ, (२) इ या ई+इ या ई=ई, (३) उ या ऊ+उ या ऊ=ऊ, (४) ऋ + ऋ =ॠ। विद्या+आलयः=विद्यालयः। गिरि+ईशः=गिरीशः। गुरु+उपदेशः=गुरूपदेशः। होतृ+ऋकारः=होतॄकारः।

नियम १११—(इदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्) द्विवचन के ई, ऊ और ए के साथ कोई सन्धि नहीं होती। हरी+एतौ=हरी एतौ। विष्णू इमौ। गङ्गे अमू। पचेते इमौ।

नियम ११२—(अदसो मात्) अदस् के म् के बाद ई या ऊ होंगे तो उनके साथ कोई सन्धि नहीं होगी। अमी+ईशाः=अमी ईशाः। अमू आसाते।

अभ्यास १४

संस्कृत बनाओ——(क) (द्वि शब्द) १. फूल के गुच्छे की तरह मनस्वियों की दो गति होती हैं, या तो सबके सिर पर रहेंगे या वन में ही झड़ जायँगे। २. व्यास का कथन है कि इन दो को गले में भारी शिला बाँधकर जल में फेंक देना चाहिए, धनी जो दान न दे और निर्धन जो तपस्वी न हो। ३. ये दोनों पुरुष शिर-दर्द करनेवाले होते हैं, गृहस्थी निकम्मा हो और संन्यासी सपत्नीक हो। ४. ये दोनों कभी सुखी नहीं होते, निर्धन महत्त्वाकांक्षी और दरिद्र होकर क्रोधी। ५. शत्रु मिलने पर जलाता है, मित्र वियोग के समय। दोनों ही दुःखदायी हैं, शत्रु-मित्र में क्या अन्तर है ? ६. शिव से मिलने की इच्छा से दो चीजें शोक-योग्य हो गई हैं, चन्द्रमा की कान्तिमयी कला और संसार के नेत्र की कौमुदी पार्वती। ७. राम एक बार ही कहता है, दुबारा नहीं। ८. मैं जगत् के माता-पिता शिव-पार्वती को नमस्कार करता हूँ। ९. दम्पती सुख से बढ़ रहे हैं। १०. अश्विनीकुमार ध्यान दें। ११. अपने हाथ, पैर, मुँह, आँख, कान धोओ। १२. दो ब्राह्मण दो प्रकार से दो मन्त्रों को पढ़ते हैं। १३. दो-तीन चुग़लखोर इस कक्षा में हैं। **(ख) (कृष्, वस्)** १. कृषक हल से खेत जोतता है। २. शेर ने बलात् गाय को खींच लिया। ३. सीधे जुते खेत को उल्टा जोतता है। ४. बलवान् इन्द्रिय-समूह विद्वान् को भी अपनी ओर खींच लेता है। ५. वह दो वर्ष वन में रहा। ६. सम्पत्ति और कीर्ति चतुर में रहती हैं, आलसी में नहीं। ७. गुण प्रेम में रहते हैं, वस्तु में नहीं। **(ग) (लिट् का प्रयोग करो)** १. पार्वती मन की बात न कह सकी। २. पार्वती न चल सकी, न रुक सकी। ३. शिव ने उसको सहारा दिया। ४. रानी ने आँखें बन्द कर लीं। ५. वह इस नाम से प्रसिद्ध हुआ। ६. पार्वती ने वल्कल बाँधा। ७. मृग उस पर विश्वास करते थे। ८. वह वन पवित्र हो गया। ९. उसने कठोर तप करना प्रारम्भ किया। १०. वह गेंद खेलने से थक जाती थी। ११. उसके मुख ने कमल की शोभा धारण की। १२. एक तपस्वी तपोवन में आया। १३. उसने कहना शुरू किया। १४. जल की बूँद भूमि पर पहुँचीं। **(घ) (विद्यालयवर्ग)** १. अध्यापक, प्रोफेसर और आचार्य अपने शिष्यों और शिष्याओं को प्रेम से पढ़ाते हैं। २. कुछ छात्र और छात्राएँ पाठशाला में पढ़ते हैं, कुछ स्कूल में, कुछ कॉलेज में और कुछ यूनिवर्सिटी में। ३. रजिस्ट्रार परीक्षाओं का टाइम-टेबुल बनाता है और परीक्षाओं का फल घोषित करता है। ४. इन्स्पेक्टर स्कूलों और कॉलेजों का निरीक्षण करते हैं। ५. हेडक्लर्क टाइप-राइटर से टाइप कर रहा है।

संकेत—(क) १. कुसुमस्तबकस्येव···द्वे गती···विशीर्यन्ते। २. दृढां···बद्ध्वा···क्षेप्यौ, धनिनं चाप्रदातारम्। ३. शिरःशूलकरौ, निरारम्भः, सपरिग्रहः। ४. यश्चाधनः कामयते, यश्च कुप्यत्यनीश्वरः। ५. संयोगे। ६. समागमप्रार्थनया द्वयं शोचनीयतां गतम्। नेत्रकौमुदी। ७. द्विर्नाभिभाषते। ८. पितरौ, वन्दे। ९. सुखमेधेते। १०. दत्ताम्। ११. हस्तौ, प्रक्षालय। १२. द्विजातिद्वयम्। **(ख)** १. क्षेत्रं कर्षति। २. प्रसह्य गां चकर्ष। ३. अनुलोमकृष्टं···प्रतिलोमं०। ४. कर्षति। ५. वनमध्युवास। ६. नालसे। ७. प्रेम्णि। **(ग)** १. मनोगतं सा न शशाक शंसितुम्। २. न ययौ न तस्थौ। ३. समाललम्बे। ४. निमिमील। ५. पप्रथे। ६. बबन्ध। ७. विशश्वसुः। ८. बभूव। ९. तपश्चरितुं प्रचक्रमे। १०. क्लमं ययौ। ११. कमलश्रियं दधौ। १२. तपोवनं विवेश। १३. वक्तुं प्रचक्रमे। १४. भुवं प्रपेदिरे। **(घ)** १. अध्यापयन्ति। २. कतिपये। ३. समय-सारणीम्। ५. टंकणयन्त्रेण टंकयति।

शब्दकोष—३५०+२५=३७५]　　**अभ्यास १५**　　(व्याकरण)

(**क**) कलमः (कलम), लेखनी (होल्डर), धारालेखनी (स्त्री०, फाउण्टेन पेन), तूलिका (पेन्सिल), मसीतूलिका (डॉट पेन), कठिनी (स्त्री०, चाक), लेखनीमुखम् (निब), पट्टिका (पट्टी), अश्मपट्टिका (स्लेट), कागदः (कागज), कागद-दस्तकः (दस्ता), कागद-रीमकः (कागज का रीम), संचिका (कॉपी), पञ्जिका (रजिस्टर), पत्रसंचयनी (स्त्री०, फाइल), प्रावरणम् (जिल्द), वेष्टनम् (बस्ता), श्यामफलकः (ब्लैकबोर्ड), मार्जकः (डस्टर), मसीशोषः (ब्लाटिंग पेपर), घर्षकः (रबड़), पाठ्यपुस्तकम् (पाठ्यपुस्तक)। (२२)। (**ख**) साध् (हल करना)। (१)। (**ग**) कति (कितने), रुचिरम् (सुन्दर)। (२)

व्याकरण (त्रिशब्द, नित्य बहु० शब्द, त्यज्, लुङ् व्यंजन सन्धि)

१. त्रि शब्द के तीनों लिंगों में रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० सं० ९१)

२. त्यज् धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० १९)

नियम ११३— (**क**) दार, अक्षत, लाज (लाजा), असु, प्राण, इनके रूप पुंलिंग में और बहुवचन में ही चलते हैं। (**ख**) अप्, अप्सरस्, वर्षा, सिकता, समा, सुमनस्, इनके रूप स्त्रीलिंग में और बहुवचन में ही चलते हैं। (अप्सरस्, वर्षा, समा, सुमनस् इनका कहीं-कहीं एकवचन में भी प्रयोग मिलता है)। दाराः (स्त्री), अक्षताः (अक्षत चावल), लाजाः (खील), असवः (प्राण), प्राणाः (प्राण), आपः (जल), अप्सरसः (अप्सरा), वर्षाः, सिकताः (रेत), समाः (वर्ष), सुमनसः (फूल)।

नियम ११४—त्रि से अष्टादशन् (३ से १८) तक सारे शब्द तथा कति शब्द सदा बहुवचन में ही आते हैं। एक०=एकवचन, द्वि०=द्विवचन, बहु०=बहुवचन।

नियम ११५—(**क**) (**आदरार्थे बहुवचनम्**) आदर प्रकट करने में एक के लिए भी बहु० हो जाता है। गुरवः पूज्याः। (**ख**) (**अस्मदो द्वयोश्च**) अस्मद् शब्द के एक० और द्वि० (अहम्, आवाम्) के स्थान पर बहुवचन (वयम्) का प्रयोग होता है, यदि वक्ता विशिष्ट व्यक्ति हो तो। वयं ब्रूमः। (**ग**) (**जात्याख्यायाम्०**) जातिवाचक शब्दों में एक० और बहु० दोनों होते हैं। ब्राह्मणः पूज्यः, ब्राह्मणाः पूज्याः। (**घ**) देशवाचक शब्दों में बहु० का प्रयोग होता है। 'नगर' या 'देश' अन्त में होने पर एक० होगा। अहम् अङ्गान् बङ्गान् कलिङ्गान् विदर्भान् गौडान् वा अगच्छम्। पाटलिपुत्रम् अङ्गदेशं वा अगच्छम्। (**ङ**) वंश का बोध कराने में बहु०। कुरूणाम्, रघूणाम्।

नियम ११६—(**स्तोः श्चुना श्चुः**) स् या तवर्ग से पहले या बाद में श् या चवर्ग कोई भी हो तो स् और तवर्ग को क्रमशः श् और चवर्ग हो जाता है। स् को श्, त् को च्, द् को ज्, न् को ञ् होगा। रामश्च। सच्चित्। सज्जनः।

नियम ११७—(**ष्टुना ष्टुः**) स् या तवर्ग से पहले या बाद में ष् या टवर्ग कोई भी हो तो स् और तवर्ग को क्रमशः ष् और टवर्ग होता है। स् को ष्, त् को ट्, द् को ड्, न् को ण् होगा। इष्+तः=इष्टः। उड्डीनः। विष्णुः।

नियम ११८—(**झलां जशोऽन्ते**) झल् (वर्ग के १, २, ३, ४, ऊष्म) को जश् (३ अर्थात् अपने वर्ग का तृतीय अक्षर) होता है, झल् पद के अन्तिम अक्षर हों तो। जगत्+ईशः=जगदीशः। उद्देश्यम्। अच्+अन्तः=अजन्तः।

नियम ११९—(**झलां जश् झशि**) झल् को जश् होता है, बाद में झश् (वर्ग के ३, ४) हों तो। बुध्+धिः=बुद्धिः। क्षुभ्+धः=क्षुब्धः। दघ्+धः=दग्धः। वृद्धिः। शुद्धिः। सिद्धिः।

अभ्यास १५

संस्कृत बनाओ :—(क) (त्रिशब्द, बहुवचनान्त शब्द) १. दान, भोग और नाश ये धन की तीन गतियाँ होती हैं, जो न देता है और न भोगता है, उसकी तीसरी गति होती है। २. तीन अग्नियाँ हैं, तीन वेद हैं, तीन देव हैं, तीन गुण हैं। तीन दण्डी के ग्रन्थ हैं और वे तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं। ३. त्रैलोक्य में धर्म दीपक के तुल्य है। ४. तीन प्रकार के पुरुष हैं, उत्तम, मध्यम और अधम। उनको उसी प्रकार तीन प्रकार के कामों में लगावे। ५. वृक्ष और पर्वत में क्या अन्तर रहेगा, यदि वायु चलने पर दोनों ही चञ्चल हो जाएँ? ६. तीन ही लोक हैं, तीन ही आश्रम हैं। ७. तीन प्रियाओं से वह राजा शोभित हुआ। ८. तीन दिन मेरे आने की प्रतीक्षा करना। ९. सीता राम की स्त्री थीं। १०. परस्त्री को न देखे। ११. अक्षत और खील यहाँ लाओ। १२. वर्षा में रेत पर जल शोभित होता है। १३. इन फूलों को देखो। दशरथ ने प्राणों को छोड़ा। १५. गुरुजी मेरे घर पधारे। १६. हम कहते हैं कि सत्यभाषण से ही तुम्हारा उद्धार होगा। १७. मैं कुरुवंशियों और रघुवंशियों के वंश का वर्णन करूँगा। १८. वह भारत-दर्शन के लिए अंग, बंग, कलिंग, विदर्भ और पांचाल को गया। १९. इस कक्षा में कितने विद्यार्थी हैं? २०. इस कक्षा में सोलह छात्र हैं। (त्यज् धातु) २१. यति गृह को छोड़ता है। २२. घोड़े के मार्ग को छोड़ दो। २३. राम ने सीता को छोड़ दिया। २४. ऋषि लोग योग से शरीर को छोड़ेंगे। २५. राम ने रावण पर बाण छोड़ा। २६. धर्म की मर्यादा को क्लेश की दशा में होकर भी न छोड़े। २७. मानी लोग हर्ष से अपने प्राण और सुख छोड़ देते हैं, पर न माँगने के व्रत को नहीं छोड़ते। (ख) (लुङ् लकार) १. दुःख मत करो। २. कुत्ते से मत डरो। ३. शोक न करो। ४. कुकर्म मत करो। ५. स्वार्थपरायण मत हो। ६. अपना उत्साह मत छोड़ो। ७. माँ ने बच्चे को एक स्लेट, एक पेन्सिल, एक कॉपी और एक चाक दी। ८. बच्चे ने स्लेट पर चाक से लेख लिखा, पाठ पढ़ा और होल्डर से कॉपी पर सुलेख लिखा। ९. राम ने अपना फाउण्टेन पेन पाँच रुपये में मुझे बेचा और मैंने उससे खरीदा। (ग) (लेखनसामग्री) १. डॉट पेन में स्याही भरने की आवश्यकता नहीं होती। २. मैं दुकान से एक रीम और चार दस्ते कागज लाया। उसके साथ ही एक रजिस्टर, एक फाइल, एक निब और एक रबड़ लाया। ३. यदि कॉपी पर स्याही गिर जाए तो ब्लाटिंग पेपर या चाक से सुखा लो। ४. वह अपनी पाठ्यपुस्तक पढ़ता है और गणित के प्रश्नों को हल करता है। ५. डस्टर से ब्लैकबोर्ड को पोंछो।

संकेत—(क) १. तिस्रो गतयः, भुङ्क्ते, तृतीया। २. दण्डिप्रबन्धाः, विश्रुताः। ३. दीपको धर्मः। ४. त्रिविधाः, त्रिविधेषु, नियोजयेत्। ५. द्रुमसानुमतोः·····यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चलाः। ७. तिसृभिः, बभौ। ८. प्रतीक्षेथाः। ९. दाराः। १०. परदारान्। ११. अक्षतान्, लाजान्। १२. सिकतासु, आपः। १३. इमाः सुमनसः। १४. असून्, प्राणान् तत्याज। १७. त्यजन्त्यसून् शर्म च मानिनो वरं, त्यजन्ति न त्वेकमयाचितव्रतम्। (ख) १. विषादं मा गाः। २. शुनो मा भैषीः। ३. शुचो वशं मा गमः। ४. मा कार्षीः। ५. मा भूः। ६. उत्साहभङ्गं मा कृथाः। ७. अदात्। ८. अलेखीत्, अपठीत्। ९. मह्यं रूप्यकपञ्चकेन व्यक्रेष्ट, अक्रैषम्। (ग) १. मसीपूरणस्य। २. आपणात्, तत्सार्धमेव। ३. पतति चेत्, शोषय। ४. साधयति। ५. मार्जय।

शब्दकोष—३७५+२५=४००] **अभ्यास १६** (व्याकरण)

(क) काष्ठा (दिशा), प्राची (स्त्री०, पूर्व), प्रतीची (स्त्री०, पश्चिम), उदीची (स्त्री०, उत्तर), दक्षिणा (दक्षिण), घटिका (घड़ी), वेला (समय), होरा (घण्टा), कला (मिनट), विकला (सेकण्ड), वादनम् (बजे), पूर्वाह्णः (दोपहर से पहले का समय, a.m.) पराह्णः (तीसरा पहर), प्रदोषः (सूर्यास्त समय), दिवसः (दिन), विभावरी (स्त्री०, रात), निशीथः (आधीरात), निदाघः (ग्रीष्म ऋतु), प्रावृष् (वर्षाकाल)। (२२)। (ग) दिवा (दिन में), नक्तम् (रात में), रात्रिन्दिवम् (दिन-रात)। (३)

व्याकरण (चतुर् शब्द, याच्, लुङ् व्यञ्जन सन्धि)

१. चतुर् शब्द के तीनों लिंगों में रूप स्मरण करो। (देखो शब्द सं० ९२)

२. याच् धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० २९)

नियम १२०—(यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा) पदान्त यर् (ह् के अतिरिक्त सभी व्यञ्जन) के बाद अनुनासिक (वर्ग का पंचम अक्षर) हो तो यर् को अपने वर्ग का पंचम अक्षर हो जायगा। यह नियम ऐच्छिक है। तत्+न=तन्न। तद्+मयम्=तन्मयम्। वाक्+मयम्=वाङ्मयम्। सद्+मतिः=सन्मतिः।

नियम १२१—(तोर्लि) तवर्ग के बाद ल हो तो तवर्ग को भी ल् हो जाता है। अर्थात् (१) त् या द्+ल=ल्ल, (२) न्+ल=ल्ँल। तत्+लीनः=तल्लीनः। विद्वान्+लिखति=विद्वाँल्लिखति।

नियम १२२—(उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य) उद् के बाद स्था या स्तम्भ् धातु हो तो उसे पूर्वसवर्ण होता है। उद्+स्थानम्=उत्थानम्। उद्+स्तम्भनम्=उत्तम्भनम्।

नियम १२३—(झयो होऽन्यतरस्याम्) झय् (वर्ग के १, २, ३, ४) के बाद ह हो तो उसे विकल्प से पूर्वसवर्ण होता है। वाग्+हरिः=वाग्घरिः। तद्+हितः=तद्धितः।

नियम १२४—(शश्छोऽटि) पदान्त झय् (वर्ग के १, २, ३, ४) के बाद श् हो तो उसे छ् हो जाता है, यदि उस श् के बाद अट् (स्वर, ह, य, व, र) हो तो। नियम ११६ से छ के पूर्ववर्ती त् को च्। तत्+शिवः=तच्छिवः। सत्+शीलः=सच्छीलः।

नियम १२५—(खरि च) झलों (१, २, ३, ४) को चर् (१, उसी वर्ग के प्रथम अक्षर) होते हैं, बाद में खर् (१, २, श ष स) हों तो। सद्+कारः=सत्कारः। तद्+परः=तत्परः। सद्+पुत्रः=सत्पुत्रः।

नियम १२६—(मोऽनुस्वारः) पदान्त म् के बाद हल् (व्यञ्जन) हो तो म् को अनुस्वार (ं) हो जाता है, बाद से स्वर हो तो नहीं। कार्यम्+कुरु=कार्यं कुरु। सत्यं वद। धर्मं चर।

नियम १२७—(नश्चापदान्तस्य झलि) अपदान्त न् म् को अनुस्वार हो जाता है, बाद में झल् (१, २, ३, ४, ऊष्म) हो तो। यशान्+सि=यशांसि। पुम्+सु=पुंसु।

नियम १२८—(अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः) अनुस्वार के बाद यय् (ऊष्म को छोड़कर सभी व्यञ्जन) हो तो उसे परसवर्ण (अगले वर्ण का पंचम अक्षर) होता है। शां+तः=शान्तः। अं+कः=अङ्कः।

नियम १२९—(ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्) ह्रस्व स्वर के बाद ङ् ण् न् हों और बाद में कोई स्वर हो तो बीच में एक ङ् ण् न् और लग जाता है। प्रत्यङ्ङात्मा। सुगण्णीशः। सन्+अच्युतः=सन्नच्युतः।

अभ्यास १६

संस्कृत बनाओ :—(क) (चतुर् शब्द) १. हम चार भाई ऋत्विज् हैं, युधिष्ठिर यजमान हैं और भगवान् कृष्ण कर्मोपदेष्टा हैं। २. चार अवस्थाएँ हैं—बाल्य, कौमार, यौवन और वार्धक। ३. ब्रह्मरूपी वृषभ के चार सींग और तीन पैर हैं। ४. शेष चार महीने जैसे भी हो आँख बन्द करके बिताओ। ५. आय के चौथे अंश से खर्च चलावे। अधिक तेलवाला दीपक चिरकाल तक सुख देखता है। ६. गुरु-सेवा से विद्या मिलती है अथवा प्रचुर धन से या विद्या से विद्या प्राप्त होती है, अन्य चौथे किसी उपाय से नहीं। ७. हे युधिष्ठिर, मेरे चार प्रश्नों को बता। (याच् धातु) ८. राजा से धन माँगता है। ९. बलि से भूमि माँगता है। १०. पार्वती ने पिता से तपःसमाधि के लिए अरण्य-निवास की माँग की। ११. उसने पिता से माँग की कि उसे न छोड़ें। १२. तिनके से भी हलकी रूई होती है और रूई से भी हलका माँगनेवाला होता है। (ख) (लुङ् का प्रयोग करो) १. मैं सुख से सोया। २. उसने कहा कि बहुत दिन मेरी यहाँ रहने की इच्छा है। ३. वह बोली—मैं तुम्हारे कहने में हूँ। ४. वह तपस्या के लिए वन में गया। ५. वह घर से निकल पड़ा। ६. उसने चपरासी को अन्दर आता हुआ देखा। ७. उसने सामने से आते हुए एक शिष्य को देखा और पूछा तुम्हारे गुरु कहाँ हैं? ८. वह सबेरे ही महल से निकल पड़ा और ढाई घण्टे घूमने के लिए गया। ९. उसने जागते हुए ही सारी रात बिताई। १०. हर्ष ने आँसू भरी दृष्टि से माँ से कहा—तुम मुझे क्यों छोड़ रही हो? ११. यशोवती आँचल से मुँह ढककर साधारण स्त्री के तुल्य बहुत देर तक रोई। १२. वह उसके पास ही चुप बैठा रहा। (ग) (दिक्कालवर्ग) १. चार दिशाएँ हैं, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण। २. इस समय तुम्हारी घड़ी में क्या बजा है? ३. एक घण्टे में साठ मिनट होते हैं और एक मिनट में साठ सेकण्ड। ४. इस स्टेशन पर एक डाक-गाड़ी सबेरे सवा दस बजे आती है और दूसरी शाम को पौने सात बजे। ५. राम सबेरे उठता है, दोपहर को खाना खाता है, तीसरे पहर फलाहार करता है, शाम को खेलता है, रात में सोता है और आधी रात में नहीं जागता। ६. आजकल परीक्षा के दिन हैं, वह दिन-रात पढ़ाई में लगा रहता है।

संकेत—(क) १. ऋत्विजः। २. चतस्रः, बाल्यम् (बाल्य आदि चारों नपुं० हैं)। ३. चत्वारि शृङ्गा(णि) त्रयोऽस्य पादाः। ४. मासान्, गमय लोचने मीलयित्वा। ५. आयाच्चतुर्थभागेन व्ययकर्म प्रवर्तयेत्। प्रभूततैलदीपो हि। ६. गुरुशुश्रूषया, पुष्कलेन, विद्यया, चतुर्थान्नोपलभ्यते। ७. ब्रूहि मे चतुरः प्रश्नान्। ८. राजानम्। ९. बलिम्। १०. पितरम्, निवासम्। ११. पितरम्, अपरित्यागमयाचतात्मनः। १२. तृणादपि लघुस्तूलस्तूलादपि च याचकः। (ख) १. सुखमस्वाप्सम्। २. अवादीत्, भूयसो दिवसान् स्थातुमभिलषति मे हृदयम्। ३. अवोचत्, एषास्मि ते वचसि स्थिता। ४. वनमगात्। ५. निरगात्। ६. लेखहारकं प्रविशन्तमद्राक्षीत्। ७. अभिमुखम् आपतन्तम्, अद्राक्षीत्, क्वास्ते। ८. निरयासीत्, सार्धहोराद्वयम्, अयासीत्। ९. जाग्रदेव, अनैषीत्। १०. बाष्पायमाणदृष्टिर्मातरम् अभ्यधात्। ११. पटान्तेन, आच्छाद्य, प्राकृतप्रमदेवातिचिरम् अरोदीत्। १२. तूष्णीं समवास्थित। (ग) २. का वेला। ३. एकस्यां होरायां षष्टिः। ४. यानावतारे, द्राक्यानम्, पूर्वाह्ने, सपाददशवादने, पराह्ने, पादोन०। ५. जागर्ति। ६. अद्यत्वे।

शब्दकोष—४००+२५=४२५] **अभ्यास १७** (व्याकरण)

(क) सप्तसप्तिः (पुं०, सूर्य), सुधांशुः (पुं०, चन्द्रमा), गभस्तिः (पुं०, स्त्री०, किरण), आतपः (धूप), ज्योत्स्ना (चाँदनी), नक्षत्रम् (नक्षत्र), नवग्रहाः (नवग्रह), द्वादश राशयः (१२ राशियाँ), सप्ताहः (सप्ताह), राका (पूर्णिमा), दर्शः (अमावस्या), जीमूतः (मेघ), सौदामिनी (स्त्री०, विद्युत्), करकाः (ओले), वृष्टिः (स्त्री०, वर्षा), आसारः (मूसलाधार वर्षा), अवग्रहः (अवृष्टि), इन्द्रायुधम् (इन्द्रधनुष), उत्तरायणम् (उत्तरायण), दक्षिणायनम् (दक्षिणायन), शीकरः (जल-कण), अवश्यायः (हिम, बर्फ), लक्ष्मन् (नपुं०, चिह्न), वियत् (नपुं०, आकाश), स्तनितम् (गर्जन)। (२५)

व्याकरण (पञ्चन् से दशन्, वह्, लुद्, हल् और विसर्ग-सन्धि)

१. पञ्चन् से दशन् तक के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० सं० ९३ से ९८)। त्रि से अष्टादशन् (३ से १८) तक के रूप केवल बहुवचन में ही चलते हैं। तीनों लिंगों में वही रूप होंगे। एक से दश तक की संख्याओं के संख्येय (व्यक्ति या वस्तुबोधक क्रमवाचक विशेषण) शब्द क्रमशः ये हैं:—प्रथमः, द्वितीयः, तृतीयः, चतुर्थः, पञ्चमः, षष्ठः, सप्तमः, अष्टमः, नवमः, दशमः। इनके रूप पुं० में रामवत्, स्त्री० में रमा या नदीवत्, नपुं० में गृहवत् चलेंगे।

२. वह् धातु के पूरे रूप स्मरण करो (देखो धातु० ३०)।

नियम १३०—(नश्छव्यप्रशान्) पदान्त न् को रु (:, स्) होता है, यदि छव् (च्, छ्, ट्, ठ्, त्, थ्) बाद में हो और छव् के बाद अम् (स्वर, ह, अन्तःस्थ, वर्ग का पंचम अक्षर) हो तो। प्रशान् शब्द में नियम नहीं लगेगा। इसके साथ कुछ अन्य नियम भी लगते हैं, अतः इस नियम का रूप होगा—न्+छव्=स्+छव् या ँस्+छव्। श्चुत्व नियम यदि प्राप्त होगा तो लगेगा। कस्मिन्+चित्=कस्मिंश्चित्। अस्मिंस्तरौ। तस्मिन्+तथा=तस्मिंस्तथा।

नियम १३१—(छे च, पदान्ताद्वा) ह्रस्व स्वर के बाद छ होगा तो छ से पूर्व त् (च्) लगेगा, किन्तु पदान्त दीर्घ स्वर के बाद छ से पूर्व त् विकल्प से लगेगा। शिव+छाया=शिवच्छाया। वृक्षच्छाया। लताच्छविः। लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मीछाया।

नियम १३२—(विसर्जनीयस्य सः) विसर्ग को स् होता है, खर् (वर्ग के १, २, श, ष, स) बाद में हो तो। (श्चुत्वसन्धि भी होगी)। हरिः+त्रायते=हरिस्त्रायते। कः+चित्=कश्चित्। रामः+तिष्ठति=रामस्तिष्ठति।

नियम १३३—(वा शरि) विसर्ग के बाद (श, ष, स) हो तो विसर्ग को विसर्ग और स् दोनों होते हैं। नियम ११६, ११७ भी लगेंगे। हरिश्शेते। रामष्षष्ठः।

नियम १३४—(ससजुषो रुः) पद के अन्तिम स् को रु (र् या :) होता है, सजुष् को भी। जहाँ रु को उ या य् नहीं होगा, वहाँ र् शेष रहेगा। अ या आ के अतिरिक्त अन्य स्वरों के बाद र् शेष रहेगा, बाद में कोई स्वर या व्यंजन (३, ४, ५) हो तो। हरिः+अवदत्=हरिरवदत्। पितुः+इच्छा=पितुरिच्छा। लक्ष्मीरियम्।

नियम १३५—(अतो रोरप्लुतादप्लुते) ह्रस्व अ के बाद रु (: या र्) को उ होता है, बाद में ह्रस्व अ हो तो। नियम १०१ से गुण और १०३ से पूर्वरूप। अतः अः+अ=ओऽ। कः+अपि=कोऽपि। कोऽयम्। रामोऽवदत्।

अभ्यास १७

संस्कृत बनाओ—(क) (संख्याएँ) १. देवों, माता-पिता, मनुष्यों, भिक्षुकों और अतिथियों, इन पाँचों की ही पूजा करता हुआ मनुष्य यश पाता है। २. मित्र, अमित्र, मध्यस्थ, आश्रित और आश्रयदाता, ये पाँचों जहाँ कहीं भी जाओगे, वहाँ तुम्हारे साथ जाएँगे। ३. ऐश्वर्य के चाहनेवाले मनुष्य को ये ६ दोष छोड़ देने चाहिएं—निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता। ४. ये ६ गुण मनुष्य को कभी नहीं छोड़ने चाहिएं—सत्य, दान, अनालस्य, अनसूया, क्षमा और धृति। ५. श्लोक में पंचम अक्षर सदा लघु होता है, द्वितीय और चतुर्थ चरण में सप्तम लघु। षष्ठ सदा गुरु होता है। ६. जो पाँचवें या छठे दिन अपने घर साग पकाकर खा लेता है, परन्तु ऋणी और प्रवासी नहीं है तो वह सुखी रहता है। ७. ये आठ गुण मनुष्य को चमकाते हैं—बुद्धि, कुलीनता, जितेन्द्रियता, अध्ययन, पराक्रम, कम बोलना, यथाशक्ति दान और कृतज्ञता। ८. नित्य स्नान करनेवाले को दस गुण प्राप्त होते हैं—बल, रूप, स्वरशुद्धि, वर्णशुद्धि, सुस्पर्श, सुगन्ध, विशुद्धता, शोभा, सुकुमारता और सुन्दर प्रमदाएँ। **(ख) (वह् धातु)** १. नदियाँ परोपकार के लिए बहती हैं। २. हवा मन्द-मन्द बह रही है (वह्)। ३. ग्वाला बकरी को गाँव में ले जा रहा है। ४. गधे घोड़े की धुरा को नहीं ढो सकते। ५. राम ने सीता से विवाह किया। (उद्वह्)। ६. इतनी आय से मेरा काम नहीं चल सकता है (निर्वह्)। ७. धैर्य धारण करो (आवह्)। ८. इतना वैभव मुझे सुख नहीं देता (आवह्)। ९. वह जैसे-तैसे दिन बिता रहा है। १०. यमुना प्रयाग के समीप बहती है (प्रवह्)। **(ग) (लुट्)** १. मैं कल सबेरे जैसी स्थिति होगी वैसा बताऊँगा। २. जब तुम्हारी बुद्धि मोह के दलदल को पार कर लेगी, तब तुम्हें वैराग्य प्राप्त होगा। ३. मैं परसों घर जाऊँगा। ४. मैं कल प्रयाग से प्रस्थान करूँगा और परसों वाराणसी पहुँचूँगा और वहाँ से एक मास बाद पटना चला जाऊँगा। **(घ) (व्योमवर्ग)** १. सूर्य उदय हो रहा है और चन्द्रमा अस्त हो रहा है। २. विविध अर्थों को लेकर सूर्य के नाम हैं—दिवाकर, विवस्वान्, हरिदश्व, उष्णरश्मि, तिग्मदीधिति, द्युमणि, तरणि, विभावसु, भानुमान्, सहस्रांशु। ३. चन्द्रमा के भी अर्थानुसार अनेक नाम हैं—इन्दु, सुधांशु, ओषधीश, निशाकर, कलानिधि, शीतगु, शशांक। ४. अब आकाश में बादल आ गए, बिजली चमकने लगी, बादलों का गरजना आरम्भ हुआ, ओले पड़ने लगे और फिर मूसलाधार वर्षा होने लगी। ५. इधर इन्द्रधनुष दिखाई पड़ रहा है। ६. उत्तरायण में दिन बड़ा हो जाता है और दक्षिणायन में छोटा। ७. बारह राशियाँ हैं—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु (धन्वी), मकर, कुम्भ, मीन। ८. नव ग्रह हैं—रवि, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु। ९. एक सप्ताह में सात दिन होते हैं। १०. गर्मी में धूप कड़ी होती है और शरद् में चाँदनी शीतल।

संकेत—(क) १. देवान्, पितॄन्, पूजयन्। २. मित्राणि, उपजीव्योपजीविनः, पञ्च त्वाऽनुगमिष्यन्ति। ३. भूतिमिच्छता, हातव्याः। ४. पुंसा। ५. पञ्चमं लघु, द्विचतुर्थयोः। ६. पञ्चमेऽहनि षष्ठे वा शाकं पचति, अनृणी चाप्रवासी च, मोदते। ७. दीपयन्ति, कौल्यं, दमः, श्रुतम्, अबहुभाषिता। **(ख)** ३. अजां ग्रामं वहति। ४. न वाजिधुरं वहन्ति। ५. जानकीमुदवहत्। ६. एतावता, न मे कार्यं निर्वहति। ७. धृतिमावह। ८. एतावान् विभवो, न मे सुखमावहति। ९. कथमपि दिनान्यतिवाहयति। **(ग)** १. यथावस्थितम् आवेदयितास्मि। २. मोहकलिलम्, व्यतितरिष्यति, निर्वेदं गन्तासि। ३. गन्तास्मि। ४. प्रस्थाता, आसादयितास्मि, मासात्परेण, पाटलिपुत्रं यातास्मि।

शब्दकोष—४२५+२५=४५०] **अभ्यास १८** (व्याकरण)

(क) स्वसृ (स्त्री०, बहिन), आत्मजः (पुत्र), अग्रजः (बड़ा भाई), अनुजः (छोटा भाई), पितृव्यः (चाचा), मातुलः (मामा), पितृष्वसृ (स्त्री०, फूआ), मातृष्वसृ (स्त्री०, मौसी), भ्रात्रीयः (भतीजा), स्वस्रीयः (भानजा), आवुत्तः (जीजा), भ्रातृजाया (भाई की स्त्री, भाभी), स्नुषा (पुत्रवधू), पितृव्यपुत्रः (चचेरा भाई), पैतृष्वस्रीयः (फुफेरा भाई), मातुष्वस्रीयः (मौसेरा भाई), जामातृ (पु०, जँवाई), पौत्रः (पोता), नप्तृ (पुं०. नाती), देवरः (देवर), ज्ञातिः (पुं०, सम्बन्धी), सम्बन्धिन् (समधी), सम्बन्धिनी (स्त्री०, समधिन), योषित् (स्त्री०, स्त्री), पुरन्ध्रिः (स्त्री०, सधवा स्त्री)। (२५)

व्याकरण (संख्या ११ से १००, नी, आशीर्लिङ् लृङ् विसर्गसन्धि)

१. नी धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु २७)

नियम १३६—(क) विंशतिः (२०) के बाद के सभी संख्यावाची शब्द केवल एकवचन में आते हैं:—'विंशत्याद्याः सदैकत्वे सर्वाः संख्येयसंख्ययोः।' (ख) एकादशन् से अष्टादशन् (११ से १८) तक के रूप दशन् के तुल्य बहु० में ही चलेंगे। (ग) एकोनविंशतिः (१९) से नवनवतिः (९९) तक सारे शब्दों के रूप स्त्रीलिंग एक० में ही चलते हैं। इकारान्त विंशति, षष्टि आदि के रूप मति (शब्द सं० ४२) के तुल्य और तकारान्त त्रिंशत् आदि के रूप सरित् (शब्द सं० ५४) के तुल्य चलेंगे। (घ) संख्येय (क्रमवाचक विशेषण) बनाने के नियम ये हैं—(१) एक से दश तक के संख्येय प्रथम, द्वितीय आदि हैं। (२) ११ से १८ तक के संख्येय शब्दों के अन्त में 'अ' लग जाता है। एकादशः (११वाँ), द्वादशः (१२वाँ) आदि। (३) १९ के आगे संख्येय शब्दों के अन्त में 'तम' लगता है। विंशतितमः (२०वाँ) आदि। (४) संख्येय शब्दों के रूप तीनों लिंगों में चलेंगे। पुं० में रामवत्, स्त्री० में रमा या नदीवत्, नपुं० में गृहवत्।

नियम १३७—(हशि च) ह्रस्व अ के बाद रु (र् या :) को उ हो जाता है, बाद में हश् (३, ४, ५, ह, य, व, र, ल) हो तो। अः+हश्=ओ+हश्। शिवः+वन्द्यः=शिवो वन्द्यः। रामो गच्छति। बालको हसति।

नियम १३८—(भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि) भोः, भगोः, अघोः और अ या आ के बाद (र् या :) को य् होता है, बाद में अश् (स्वर, ह, अन्तःस्थ, ३, ४, ५) हो तो।

नियम १३९—(हलि सर्वेषाम्, लोपः शाकल्यस्य) (१) नियम १३८ से हुए य् के बाद कोई व्यंजन होगा तो उसका लोप अवश्य होगा। (२) यदि बाद में स्वर होगा तो य् का लोप ऐच्छिक है। लोप होने पर संधि नहीं होगी। देवा गच्छन्ति। नरा हसन्ति। देवा इह, देवायिह।

नियम १४०—(रोऽसुपि) अहन् के न् को र् होता है, विभक्ति (सुप्) बाद में हो तो नहीं। अहन्+अहः=अहरहः। अहन्+गणः=अहर्गणः।

नियम १४१—(रो रि) र् के बाद र हो तो पहले र् का लोप हो जाता है।

नियम १४२—(ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः) ढ् या र् का लोप होने पर उससे पूर्ववर्ती अ, इ, उ को दीर्घ होता है। पुनर्+रमते=पुना रमते। हरी रम्यः।

नियम १४३—(एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि) सः और एषः के विसर्ग का लोप होता है, बाद में व्यंजन हो तो। सः+पठति=स पठति। एष वदति।

अभ्यास १८

संस्कृत बनाओ—(क) (संख्याएँ) १. इस कॉलेज में बी०ए० प्रथम वर्ष में ९०, द्वितीय वर्ष में ८०, एम०ए० प्रथम वर्ष में ७० और द्वितीय वर्ष में ५० विद्यार्थी हैं। २. इस सभा में १०० आदमी हैं। ३. उस जुलूस में एक हजार आदमी हैं। ४. वहाँ भीड़ में ५० आदमी घायल हुए और १५ मर गए। घायल और मृतों की संख्या ६५ है। (ख) (नी धातु) १. वह गाय को गाँव में ले जाता है। २. राम, तुम मुझे निःसंकोच अपने साथ वन में ले चलो। ३. उसने जागते हुए ही रात बिताई। ४. उसने उसके साथ दिन बिताया। ५. उसने अपने सच्चरित्र से लोगों को अपने वश में कर लिया। ६. तुम अपने बच्चों, स्त्री, बहिनों और भाइयों को मेरे घर लाना (आ+नी)। ७. उसने गुरु को मनाया (अनु+नी)। ८. ईश्वर तुम्हारी तामसी वृत्ति को दूर करे। ९. मैं तुम्हारे घमण्ड को दूर कर दूँगा। १०. उसने दोनों हाथ जोड़कर गुरु को प्रणाम किया। ११. पुत्रवधू श्वशुर के सामने अपना मुँह फेर लेती है। (वि+नी)। १२. गुरु शिष्य का उपनयन-संस्कार करता है। १३. राम ने सीता से विवाह किया (परि+नी)। १४. सुनने का अभिनय करके। १५. आप लोग ऋषियों के लिए फूल और फल लाकर दें। १६. न्यायाधीश विवाद का निर्णय करेगा (निर्णी)। १७. विद्वान् पुस्तक लिखेगा (प्रणी)। १८. दिलीप ने अपना शरीर शेर को समर्पण किया। १९. इसकी हँसी का अभिप्राय समझा जा सकता है। २०. तुम अपने चरित्र से देश की कीर्ति को ऊँचा उठाओ। (ग) (आशीर्लिङ्, लृङ्) १. वीर सन्तानवाली हो। २. देव परिणाम को शुभ बनावें। ३. तुम इन्द्राणी और सावित्री के तुल्य हो। ४. तुम्हारा मार्ग शुभ हो। ५. यदि अच्छी वर्षा होती तो सुभिक्ष हुआ होता। ६. क्या अरुण अन्धकार को दूर कर सकता था, यदि उसे सूर्य अपनी धुरा में न बैठाता? ७. यदि परमात्मा इस जोड़े को परस्पर न मिलाता तो उसका रूप-निर्माण का यत्न विफल होता। (घ) (सम्बन्धिवर्ग) १. मेरे घर में मेरे माता-पिता, चाचा-चाची, दादा-दादी, पुत्र-पुत्रियाँ और चचेरे-फुफेरे तथा मौसेरे भाई हैं। २. भानजे, पोते, पोतियों, नाती और नातिनों से प्रेम का व्यवहार करो। ३. मेरी बहिन के विवाह में मामा-मामी, नाना-नानी, जीजा और अन्य सम्बन्धी आए थे। ४. सधवा स्त्रियों का चित्त फूल के तुल्य सुकुमार होता है। ५. समधी से समधी और समधिन से समधिन प्रेम से मिले।

संकेत—(क) १. नवतिः, अशीतिः, सप्ततिः, पञ्चाशत्। २. शतं जनाः सन्ति। ३. जनयात्रायां सहस्रं जनाः सन्ति। ४. जनौघे, आहताः, हताः। हताहतानाम्, पञ्चषष्टिः। (ख) १. गां ग्रामम्। २. विस्रब्धम्। ३. निशामनैषीत्। ४. वासरं निनाय। ५. आत्मवशम् अनयत्। ६. जायाम्, स्वसॄः, भ्रातॄन्। ७. अन्वनैषीत्। ८. व्यपनयतु। ९. व्यपनेष्यामि ते गर्वम्। १०. हस्तौ समानीय। ११. विनयति, अपनयति। १२. उपनयते। १३. सीतां परिणिनाय। १४. श्रुतिमभिनीय। १५. ऋषिभ्यः, उपनयन्तु। १६. विवादं निर्णेष्यति। १७. प्रणेष्यति। १८. हरये उपानयत्। १९. परिहासस्य, उन्नेतुं शक्यते। २०. उन्नय। (ग) १. वीरप्रसविनी भूयाः। २. देवाः परिणतिं परमरमणीयां विधेयासुः। ३. सावित्रीसमा भूयाः। ४. शिवो भूयात्। ५. सुवृष्टिश्चेदभविष्यत् सुभिक्षमभविष्यत्। ६. किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता, तं चेत् सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत्। ७. द्वन्द्वं, न अयोजयिष्यत्, विफलोऽभविष्यत्। (घ) १. पितृव्या, पितामही। २. पौत्रीषु, नप्तृषु, नप्त्रीषु स्नेहेन वर्तेत। ३. मातुलः, मातुलानी, मातामहः, मातामही, ज्ञातयश्च। ४. पुरन्ध्रीणां चित्तम्।

शब्दकोष—४५०+२५=४७५] **अभ्यास १९** (व्याकरण)

(क) कन्दुक: (गेंद), पादकन्दुक: (फुटबॉल), यष्टिक्रीडा (हॉकी का खेल), क्षेप-कन्दुक: (वॉलीबॉल), पत्रिक्रीडा (बैडमिण्टन), पत्रिन् (चिड़िया), प्रक्षिप्त-कन्दुक-क्रीडा (टेनिस का खेल), जालम् (नेट), काष्ठपरिष्कर: (रैकेट), क्रीडाप्रतियोगिता (मैच), निर्णायक: (रेफरी), उपस्कर: (फर्नीचर), आसन्दिका (कुर्सी), फलकम् (मेज), लेखनपीठम् (डेस्क), काष्ठासनम् (बेंच), काष्ठमञ्जूषा (अलमारी), मञ्जूषा (सन्दूक), संवेश: (स्टूल), खट्वा (खाट), प्रल्यङ्क: (पलंग), पर्यङ्क: (सोफा), निवार: (निवाड़), पुस्तकाधानम् (बुक रैक), पर्प: (चारों ओर मुड़नेवाली कुर्सी)। (२५)

व्याकरण (सखि, हृ धातु, अव्ययीभाव समास)

१. सखि शब्द के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० सं० ५)

२. हृ धातु के दोनों पदों के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० २८)

नियम १४४—(समास) (१) एक या अधिक शब्दों के मिलाने या जोड़ने को समास कहते हैं। समास का अर्थ है संक्षेप। समास करने पर समास हुए शब्दों के बीच की विभक्ति (कारक) नहीं रहती। समस्त (समासयुक्त) शब्द एक शब्द हो जाता है, अत: अन्त में विभक्ति लगती है। समास के तोड़ने को 'विग्रह' कहते हैं। जैसे—राज्ञ: पुरुष (राजा का पुरुष) विग्रह है, राजपुरुष: समस्त पद है। बीच की षष्ठी का लोप है। (२) समास के ६ भेद हैं—१. अव्ययीभाव, २. तत्पुरुष, ३. कर्मधारय, ४. द्विगु, ५. बहुव्रीहि, ६. द्वन्द्व।

नियम १४५—(अव्ययीभाव) (अव्ययं विभक्ति०) अव्ययीभाव समास की पहचान यह है कि इसमें पहला शब्द अव्यय (उपसर्ग या निपात) होगा और दूसरा संज्ञाशब्द। अव्ययीभाव समासवाले अकारान्त शब्द नपुं० एक० में ही रहते हैं। अ-भिन्न स्वर अन्तवाले अव्ययीभाव अव्यय हो जाते हैं, अत: उनके रूप नहीं चलते। इन अर्थों में अव्ययीभाव समास होता है और ये अव्यय इन अर्थों में आते हैं—१. विभक्ति। सप्तमी के अर्थ में 'अधि'—हरौ > अधिहरि। २. समीप अर्थ में 'उप'—कृष्णस्य समीपे > उपकृष्णम्। इसी प्रकार उपगङ्गम्, उपयमुनम्। ३. समृद्धि अर्थ में 'सु'— मद्राणां समृद्धि: > सुमद्रम्। ४. व्यृद्धि (क्षय) अर्थ में 'दुर्'—यवनानां व्यृद्धि: > दुर्यवनम्। ५. अभाव अर्थ में 'निर्'—मक्षिकाणाम् अभाव: > निर्मक्षिकम्। इसी प्रकार निर्जनम्, निर्विघ्नम्, निर्द्वन्द्वम्। ६. अत्यय (नाश) अर्थ में 'अति'—हिमस्यात्यय: > अतिहिमम्। ७. असंप्रति (अनुचित) अर्थ में 'अति'—अतिनिद्रम्। ८. शब्द-प्रादुर्भाव (शब्द का प्रकाश) अर्थ में 'इति'—हरिशब्दस्य प्रकाश: > इतिहरि। ९. पश्चात् (पीछे) अर्थ में 'अनु'—रथस्य पश्चात् > अनुरथम्। अनुहरि, अनुविष्णु। १०. यथा (योग्यता, प्रत्येक, अनुसार) के अर्थ में। अनु—रूपस्य योग्यम् > अनुरूपम्। प्रति—गृहं गृहं प्रति > प्रतिगृहम्। यथा—शक्तिमनतिक्रम्य > यथाशक्ति। ११. आनुपूर्व्य अर्थ में अनु—अनुज्येष्ठम्। १२. यौगपद्य अर्थ में सह (स)—चक्रेण सह > सचक्रम्। १३. सादृश्य अर्थ में सह (स)——सदृश: सख्या > ससखि। १४. संपत्ति अर्थ में सह (स)—सक्षत्रम्। १५. साकल्य (सहित) अर्थ में सह (स)—सतृणम्। १६. अन्त अर्थ में सह (स)—साग्नि (अग्नि ग्रन्थ तक)। १७. तक अर्थ में आ—आसमुद्रम्, आबालवृद्धम्। १८. बाहर अर्थ में बहि:—बहिर्वनम्। १९. समीप अर्थ में अनु—अनुगङ्गं वाराणसी।

अभ्यास १९

संस्कृत बनाओ—(क) (सखि शब्द) १. तुम मेरे मित्र हो, जो चीज मेरी है, वह तुम्हारी हो गई। २. वह निकृष्ट मित्र है, जो राजा को ठीक शिक्षा नहीं देता। ३. वह नौकरों को प्रिय मित्रों के तुल्य मानता है। ४. मित्र वह है जो विपत्ति में साथ नहीं छोड़ता। (ख) (हृ धातु) १. वह गाँव में बकरी को ले जाता है। २. तुम मेरे सन्देश को ले जाओ (हृ)। ३. बादल लोगों के ताप को हरता है (हृ)। ४. मैं तुम्हारे मनोहर गीत के राग से बहुत आकृष्ट हो गया हूँ। ५. हथिनी की गति किसके मन को नहीं हरती। ६. विधि कृश पर ही प्रहार करता है (प्र+हृ)। ७. वन से समिधाएँ लाओ (आ+हृ)। ८. अर्जुन ने कौरवों की बड़ी सेना का संहार किया (सं+हृ)। ९. चन्द्रमा चाण्डाल के घर से अपनी चाँदनी को नहीं हटाता (सं+हृ)। १०. ये बालक आवाज में माता से मिलते-जुलते हैं (अनु+हृ)। ११. घोड़े पिता की चाल से चलते हैं और गाय माँ की चाल से (अनु+हृ, आ०)। १२. वह प्रातः उद्यान में घूमता है (वि+हृ)। १३. चोर धन चुराता है (अप+हृ)। १४. अपने-आप अपना उद्धार करो (उद्+हृ)। १५. उसने बात कही (उदाहृ)। १६. वह भात खाता है (अभ्यवहृ)। १७. वह लड़की को पुस्तक भेंट में देता है (उपहृ)। १८. राम ने रावण के शिर पर प्रहार किया (प्रहृ)। (ग) (अव्ययीभाव) १. तुम प्रतिदिन कृश-शरीर हो रहे हो। २. प्रत्येक पात्र की देख-भाल करो। ३. इसकी उत्कण्ठा बहुत बढ़ गई है। ४. सुविधानुसार यह काम करना। ५. मैं पीछे-पीछे आ रहा हूँ। ६. अपनी इच्छानुसार करना। ७. आपने यहाँ से सबको भगा दिया। ८. महात्माओं के लिए क्या परोक्ष है? (घ) (क्रीडासनवर्ग) १. अंग्रेजी खेलों में हॉकी, फुटबॉल, वॉलीबॉल, बैडमिण्टन और टेनिस के खेल अधिक प्रचलित और प्रसिद्ध हैं। २. हॉकी गेंद से, बैडमिण्टन चिड़िया से और टेनिस गेंद से खेले जाते हैं। ३. बैडमिण्टन का रैकेट हल्का और टेनिस का रैकेट भारी होता है। ४. खेल के मैदान में फुटबॉल का मैच हो रहा है। ५. कॉलेज की कक्षाओं में प्रायः यह फर्नीचर होता है, मेज, कुर्सियाँ, डेस्क और बेंच। ६. घरेलू फर्नीचर में खाट, पलंग, सोफा, तिपाई, अलमारी, बुक रैक, डाइनिंग टेबुल, पढ़ाई की मेज, कुर्सी, आराम कुर्सी आदि होते हैं। ७. कुछ कार्यालयों में मुड़नेवाली कुर्सी और सेफ भी होते हैं। ८. पलंग निवाड़ से बुनी जाती है।

संकेत—(क) १. यन्मम, तत्तवैव। २. किंसखा, साधु न शास्ति। ३. सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविनो दर्शयते। (ख) १. ग्रामम्, हरति। ३. लोकानाम्। ४. मनोहारिणा, प्रसभं हृतः। ८. कुरूणां महतीं चमूं समहार्षीत्। ९. नहि संहरते। १०. स्वरेण मातरमनुहरन्ति। ११. पैतृकमश्वा अनुहरन्ते, मातृकं गावः। १४. उद्धरेदात्मनात्मानम्। १५. वचनमुदाजहार। १६. भक्तमभ्यवहरति। (ग) १. अनुदिवसं परिहीयसेऽङ्गैः। २. प्रतिपात्रमाधीयतां यत्नः। ३. अतिभूमिं गतोऽस्या रणरणकः। ४. यथावकाशम्। ५. अनुपदमागत एव। ६. यथाभिलाषम्। ७. कृतं भवता निर्मक्षिकम्। ८. किमीश्वराणां परोक्षम्। (घ) १. आंग्लक्रीडासु। ३. लघुः, गुरुः। ४. क्रीडाक्षेत्रे। ६. गृहोपस्करेषु, त्रिपादिका, भोजनफलकम्, लेखनफलकम्, सुखासन्दिका। ७. लौहमञ्जूषा। ८. ऊयते।

शब्दकोष—४७५+२५=५००]	**अभ्यास २०**	(व्याकरण)

(क) अग्रजन्मन् (ब्राह्मण), अन्ववायः (वंश), चातुर्वर्ण्यम् (चारों वर्ण), विपश्चित् (विद्वान्), श्रोत्रियः (वेदपाठी), अनूचानः (सांगवेदज्ञ), समावृत्तः (स्नातक), यज्वन् (यज्ञकर्ता), अन्तेवासिन् (शिष्य), सतीर्थ्यः (सहपाठी), अध्वरः (यज्ञ), समिति (स्त्री०, सभा), संसद् (स्त्री०, लोकसभा), आस्थानम् (सभागृह, असेम्बली हॉल), सभासद् (सदस्य), स्थण्डिलम् (चबूतरा), विश्राणनम् (देना), प्राघुणः (पाहुन, अतिथि), सपर्या (पूजा), वाचंयमः (मुनि), इष्टापूर्तम् (धर्मार्थ यज्ञादि), मस्करिन् (संन्यासी), यमः (यम), नियमः (नियम), पौर्णमासः (पूर्णिमा का यज्ञ)। (२५)

व्याकरण (पति, श्रु धातु, तत्पुरुष समास)

१. पति शब्द के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० सं० ६)

२. श्रु धातु के दसों लकारों के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० सं० १६)

नियम १४६—(तत्पुरुष) तत्पुरुष समास उसे कहते हैं, जहाँ पर दो या अधिक शब्दों के बीच में से द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी या सप्तमी विभक्ति का लोप होता है। समास होने पर बीच की विभक्ति का लोप हो जाएगा। जिस विभक्ति का लोप होगा, उसी विभक्ति के नाम से वह तत्पुरुष कहा जायगा। जैसे—द्वितीया तत्पुरुष, षष्ठी तत्पुरुष आदि। (उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः) इसमें बादवाले पद का अर्थ मुख्य होता है। (१) **द्वितीया**—(द्वितीया श्रितातीतपतित०)—कृष्णं श्रितः > कृष्णाश्रितः। दुःखमतीतः > दुःखातीतः। दुःखं पतितः > दुःखपतितः। शोकं गतः > शोकगतः। मेघम् अत्यस्तः > मेघात्यस्तः। भयं प्राप्तः > भयप्राप्तः। जीविकाम् आपन्नः > जीविकापन्नः। (२) **तृतीया**—(तृतीया तत्कृतार्थेन०) शङ्कुलया खण्डः > शङ्कुलाखण्डः। (कर्तृकरणे कृता०) बाणेन आहतः > बाणाहतः। खड्गेन हतः > खड्गहतः। नखैर्भिन्नः > नखभिन्नः। हरिणा त्रातः > हरित्रातः। विद्यया हीनः > विद्याहीनः। (पूर्वसदृश०) मासेन पूर्वः > मासपूर्वः। मात्रा सदृशः > मातृसदृशः। पितृसमः। माषोनम्। वाक्कलहः। आचारनिपुणः। गुडमिश्रः। ज्ञानशून्यः। पितृतुल्यः। एकोनम्। (३) **चतुर्थी**—(चतुर्थी तदर्थार्थ०) यूपाय दारु > यूपदारु। द्विजाय इदम् > द्विजार्थम्। स्नानाय इदम् > स्नानार्थम्। भोजनार्थम्। भूताय बलिः > भूतबलिः। गवे हितम् > गोहितम्। गवे सुखम् > गोसुखम्। गोरक्षितम्। (४) **पंचमी**—(पंचमी भयेन) चोराद् भयम् > चोरभयम्। शत्रुभयम्। राजभयम्। वृकभीतिः। (अपेतापोढ०) सुखाद् अपेतः > सुखापेतः। कल्पनापोढः। रोगाद् मुक्तः > रोगमुक्तः। पापात् मुक्तः > पापमुक्तः। प्रासादात् पतितः > प्रासादपतितः। वृक्षपतितः। अश्वपतितः। (५) **षष्ठी**—(षष्ठी) राज्ञः पुरुषः—राजपुरुषः। ईश्वरस्य भक्तः > ईश्वरभक्तः। शिवभक्तः। विष्णुभक्तः। देवपूजकः। मूर्त्याः पूजा > मूर्तिपूजा। देवपूजा। विद्यालयः। देवालयः। देवमन्दिरम्। सुवर्णकुण्डलम्। (६) **सप्तमी**—(सप्तमी शौण्डैः) शास्त्रे निपुणः > शास्त्रनिपुणः। विद्यानिपुणः। युद्धनिपुणः। कार्यदक्षः। कार्यचतुरः। जले लीनः > जललीनः। जलमग्नः। (सिद्धशुष्क०) आतपे शुष्कः > आतपशुष्कः। स्थालीपक्वः। चक्रबन्धः।

अभ्यास २०

संस्कृत बनाओ—(क) (पति शब्द) १. स्त्री के लिए पति ही एक गति है। २. स्त्री का पति ही देवता है। ३. पति के साथ बैठकर यज्ञ करने के कारण स्त्री को पत्नी कहा जाता है। ४. चन्द्रमा के साथ चाँदनी चली जाती है, मेघ के साथ विद्युत् अदृष्ट हो जाती है। स्त्रियाँ पति के मार्ग पर चलती हैं, यह अचेतनों ने भी स्वीकार किया है।(ख) (श्रु धातु) १. जो बड़ों की निन्दा करता है, वही पापी नहीं होता, अपितु जो उसे सुनता है, वह भी पापी होता है। २. मेरी अधूरी बात को सुनो। ३. मित्र, सुनो, मेरी बात ठीक है या नहीं। ४. हे बादल, तुम बाद में मेरा सन्देश सुनोगे। ५. बारह वर्ष में व्याकरण पढ़ा जाता है। ६. मैंने भ्रमरों का गुंजन सुना। ७. अपने से बड़ों की सेवा करो। ८. निर्धन की पत्नी भी सेवा नहीं करती। ९. जो हित की बात नहीं सुनता वह नीच स्वामी है। १०. वह कहना नहीं सुनता। ११. वह विप्र को गाय देने की प्रतिज्ञा करता है।(ग) (तत्पुरुष०) १. समय पता चलाने के लिए मुझसे कहा गया है। २. यह माला देर तक रुकनेवाली है। ३. इस पात्र को हाथ में लो। ४. यह चबूतरा अभी धुलने से शोभित है। ५. मेरे कुछ कहने की गुंजाइश नहीं है। ६. मेनका के कारण शकुन्तला मेरे देह के तुल्य है। ७. भरत मेरे वंश की प्रतिष्ठा है। ८. सांसारिक विषय ऊपर से सुन्दर लगते हैं, पर अन्त में दुःखद होते हैं। ९. इस मृग को मैंने बहुत प्रयत्न से पाला-पोसा है। १०. वह मेरा विश्वासपात्र है। ११. इस प्रकार काम करे कि अपना स्वार्थ भी नष्ट न हो। १२. सब कुछ भाग्य के अधीन है।(घ) (ब्राह्मणवर्ग) १. ब्राह्मण, मुनि और संन्यासी ये पापों से मुक्त, रोगों से मुक्त, शास्त्र में निपुण, कार्य में चतुर और ब्रह्म में लीन होते हैं। २. विद्वान् ईश्वर के भक्त, देवों के पूजक, विद्या से युक्त और आचार में निपुण होते हैं। ३. अध्यापन, अध्ययन, यजन, याजन, दान देना और लेना, ये ब्राह्मणों के स्वाभाविक कर्म हैं। ४. लोकसभा के हॉल में विद्वान् संस्कृत के प्रचार और प्रसार के लिए भाषण देते हैं। ५. अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये यम हैं। ६. शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्राणिधान ये नियम हैं। ७. मनु का कथन है कि यमों का अवश्य पालन करे, केवल नियमों का नहीं। ८. वेदज्ञ, वेदपाठी, स्नातक होता, अध्वर्यु और उद्गाता यज्ञ में ऋग्, यजुः और साम के मन्त्रों का सस्वर उच्चारण कर रहे हैं।

संकेत——(क) १. स्त्रियाः। २. दैवतम्। ३. अभिधीयते, निगद्यते। ४. शशिना सह याति कौमुदी, सह मेघेन तडित् प्रलीयते। प्रमदाः पतिमार्गगा इति प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि।(ख) १. न केवलं यो महतोऽपभाषते, शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक्। २. शृणु मे सावशेषं वचः। ३. मद्वचनं संगतार्थं न वेति। ४. तदनु। ५. द्वादशभिर्वर्षैः, श्रूयते। ६. अश्रौषम्। ७. शुश्रूषस्व गुरून्। ८. न शुश्रूषते। ९. हितान्न यः संशृणुते स किंप्रभुः। १०. संशृणोति न चोक्तानि। ११. विप्राय गां प्रतिशृणोति, आशृणोति।(ग) १. वेलोपलक्षणार्थमादिष्टोऽस्मि। २. कालान्तरक्षमा। ३. हस्तसंनिहितं कुरु। ४. अभिनवमार्जनसश्रीकोऽलिन्दः। ५. न मे वचनावसरोऽस्ति। ६. मेनकासंबन्धेन शरीरभूता मे शकुन्तला। ७. वंशप्रतिष्ठा। ८. आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः। ९. प्रयत्नसंवर्धित एषः। १०. विश्वासभूमिः, विश्रम्भभूमिः। ११. स्वार्थाविरोधेन वर्तेत। १२. सर्वं दैवायत्तम्।(घ) ३. दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्रह्मकर्म स्वभावजम्। ७. यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः।

शब्दकोष—५००+२५=५२५] **अभ्यास २१** (व्याकरण)

(क) अवनिपतिः (पुं०, राजा), अमात्यः (मन्त्री), प्रधानमन्त्रिन् (प्राइम मिनिस्टर), मुख्यमन्त्रिन् (चीफ मिनिस्टर), मन्त्रिपरिषद् (केबिनेट), सचिवः (सेक्रेटरी), शिक्षासचिवः (एजुकेशन सेक्रेटरी), प्राड्विवाकः (वकील), मुद्रा (सिक्का), टङ्कनम् (सिक्का ढालना), टङ्कशाला (टकसाल), नैष्किकः (टकसालाध्यक्ष), रक्षिन् (सिपाही), योधः (योद्धा), सेनापतिः (पुं०, सेनापति), चमूः (स्त्री०, सेना), प्रतीहारः (द्वारपाल, अर्दली), अरातिः (पुं०, शत्रु), करः (टैक्स), शुल्कः (फीस, चुंगी), शुल्कशाला (चुंगीघर), शौल्किकः (चुंगी का अध्यक्ष), चारः (दूत), राजदूतः (राजदूत), आतपत्रम् (छत्र)। (२५)

व्याकरण (सुधी, स्वभू, कृ पर०, कर्मधारय, द्विगु समास)

१. सुधी और स्वभू शब्दों के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० सं० ८, १०)

२. कृ धातु परस्मैपदी के दसों लकारों के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ९१)

नियम १४७—(तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः) तत्पुरुष के दोनों पदों में जब एक ही विभक्ति रहती है, तब उसे कर्मधारय कहते हैं। इसमें साधारणतया प्रथम पद विशेषण और दूसरा पद विशेष्य होता है। इसके मुख्य नियम ये हैं—(१) विशेषण-पूर्वपद कर्मधारय—(क) (विशेषणं विशेष्येण बहुलम्) विशेषण-विशेष्य-समास—नीलम् उत्पलम् > नीलोत्पलम्। कृष्णः सर्पः > कृष्णसर्पः। इसी प्रकार नीलकमलम्, रक्तोत्पलम्। (ख) (किं क्षेपे) निन्दा अर्थ में किम्—कुत्सितः राजा > किंराजा। कुत्सितः सखा > किंसखा। (ग) (कुगतिप्रादयः) सुन्दर अर्थ में 'सु' और कुत्सित अर्थ में 'कु'—सुन्दरः पुरुषः > सुपुरुषः। सुपुत्रः, सुदेशः, सुदिनम्। कुत्सितः पुरुषः—कुपुरुषः। कुपुत्रः, कुदेशः, कुदिनम्, कुनारी। (घ) (सन्महत्परमो०) सत्, महत्, परम आदि—सन् चासौ जनः > सज्जनः। महान् चासौ आत्मा > महात्मा। महादेवः (ङ) (दिक्संख्ये संज्ञायाम्) दिशा और संख्या संज्ञावाची हों तो—सप्त च ते ऋषयः > सप्तर्षयः (२) उपमानपूर्वपद कर्मधारय—(उपमानानि सामान्यवचनैः) उपमान शब्द का गुणबोधक सामान्यधर्म के साथ—घन इव श्यामः > घनश्यामः। (३) उपमानोत्तरपद कर्मधारय—(उपमितं व्याघ्रादिभिः०) उपमेय का उपमान के साथ समास—पुरुषः व्याघ्र इव > पुरुषव्याघ्रः। मुखं कमलम् इव > मुखकमलम्। यह 'एव' लगाकर भी हो सकता है—मुखमेव कमलम् > मुखकमलम्। नरसिंहः, नृसिंहः, करकमलम्, पादपद्मम्, पुरुषर्षभः। (४) विशेषणोभयपद कर्मधारय—(क) (वर्णो वर्णेन) दोनों रंगवाची हों—कृष्णश्चासौ श्वेतः > कृष्णश्वेतः। श्वेतरक्तम्, कृष्णसारङ्गः। (ख) (क्तेन नञ्०) कृतं च तत् अकृतं च > कृताकृतम्। (पूर्वकालैक०) स्नातश्च अनुलिप्तश्च > स्नातानुलिप्तः। (५) उत्तरपदलोपी समास—(शाकपार्थिवादीनां सिद्धये०) शाकप्रियः पार्थिवः > शाकपार्थिवः। चन्द्रसदृशं मुखम् > चन्द्रमुखम्।

नियम १४८— (संख्यापूर्वो द्विगुः) जब कर्मधारय समास में प्रथम शब्द संख्यावाचक होता है तो वह द्विगु समास होता है। अधिकतर यह समाहार (समूह) अर्थ में होता है और नपुं० या स्त्री० एक० होता है। (१) समाहार अर्थ में—पञ्चानां गवां समाहारः > पञ्चगवम्। इसी प्रकार त्रिलोकी, त्रिभुवनम्, चतुर्युगम्, दशाब्दी, शताब्दी। (२) तद्धितार्थ में—षण्णां मातॄणाम् अपत्यम् > षाण्मातुरः। पञ्चकपालः। (३) उत्तरपद में—पञ्च गावो धनं यस्य सः > पञ्चगवधनः।

अभ्यास २१

संस्कृत बनाओ—(क) (सुधी, स्वभू) १. विद्वान् विद्वानों के साथ चलते हैं, मूर्ख मूर्खों के साथ। समान शील और व्यसनवालों में मित्रता होती है। २. विद्वान् सर्वत्र आदर पाते हैं। ३. विद्वानों के संग से मूर्ख भी चतुर हो जाता है। ४. ब्रह्मा (स्वभू) से जगत् उत्पन्न होता है। ५. प्रलय के समय संसार ब्रह्म में ही लीन हो जाता है। (ख) (कृ धातु) १. क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, बड़ी विपत्ति में पड़ा हूँ। २. हंसपदिका संगीत का अक्षराभ्यास कर रही है। ३. तुम अपनी ड्यूटी पर जाओ। ४. पिता, मैं क्या करूँ? ५. राजा ने पुत्र को युवराज बनाया। ६. कुम्हार घड़ा बनाता है, शूद्र चटाई बनाता है। ७. घर बनाओ, सभा करो। ८. भिक्षा के लिए अंजलि करता है। ९. मैं तुम्हारा कहना मानूँगा। १०. वह रात्रि में स्त्री का रूप बनाकर घूमा। ११. उसने गले में हार डाल लिया। १२. राजा उन-उन कार्यों में अध्यक्षों को लगावे। १३. धनुष को हाथ में ले लो। १४. उसने नगर में जाने की इच्छा की। १५. इसने मेरे साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। (ग) (तत्पुरुष, कर्म०, द्विगु) १. यह मुझसे अपृथक् है। २. मैं तुम्हारे अधीन हूँ। ३. यह मामला आपके हाथ में है। ४. दिन लगभग ढल गया है। ५. बार-बार आग्रहपूर्वक पूछे जाने पर और जिद करने पर उसने सारी बात बताई। ६. इसके कथन से ही ऊँच-नीच का पता लग जायगा। ७. यदि आपको कोई विघ्न न हो तो मेरे साथ घूमने चलिए। ८. मित्र, मजाक की बात को सच न समझ लेना। ९. उसको अपने पद से हटा दिया गया है। १०. सज्जन महात्मा करकमल में रक्त कमल को लेकर सप्तर्षियों की अर्चना करता है। ११. कुपुत्र, कुपुरुष और कुनारी सुपुत्र, सुपुरुष और सुनारी की निन्दा करते हैं। १२. दुष्टों के संहारक घनश्याम का यश त्रिभुवन और चतुर्युगी में व्याप्त है। (घ) (क्षत्रियवर्ग) १. प्रधानमन्त्री श्री नेहरूजी मन्त्रिपरिषद् से मन्त्रणा करके संसद् में नवीन योजनाओं को स्तुत करते थे। २. प्रान्तों में मुख्यमन्त्री मन्त्रियों की सम्मति से कार्य करते हैं। ३. शिक्षामन्त्री शिक्षा-सचिव के पास अपने आदेशों को भेजता है। ४. टकसाल का अध्यक्ष टकसाल में सोने और चाँदी के सिक्के ढलवाता है। ५. चुंगी का अध्यक्ष चुंगी के अधिकारी को चुंगी की आय का हिसाब प्रस्तुत करने का आदेश देता है।

संकेत—(क) १. सुधियः सुधीभिः, समानशीलव्यसनेषु सख्यम्। ३. प्रवीणतां याति। ५. प्रलये प्रलीयते। (ख) १. किं करोमि क्व गच्छामि, पतितो दुःखसागरे। २. वर्णपरिचयं करोति। ३. स्वनियोगमशून्यं कुरु। ४. किं करवाणि? ५. युवराजः कृतः। ६. कुम्भकारो घटं करोति, कटम्। ७. कुरु। ८. करोति। ९. करिष्यामि वचस्तव। १०. स्त्रीरूपं कृत्वा। ११. कण्ठे हारमकरोत्। १२. तेषु तेषु, कुर्यात्। १३. हस्ते कुरु। १४. गमनाय मतिमकरोत्। १५. अनेन मयि नोचितं कृतम्। (ग) १. अव्यतिरिक्तोऽयमस्मच्छरीरात्। २. त्वदधीनः। ३. अयमर्थस्त्वदायत्तः। ४. परिणतप्रायमहः। ५. निर्बन्धपृष्टः पुनः पुनश्चानुबध्यमानः। ६. अधरोत्तरव्यक्तिर्भविष्यति। ७. न चेदन्यकार्यातिपातः। ८. परिहासविजल्पितं सखे परमार्थेन न गृह्यतां वचः। ९. च्युताधिकारः कृतोऽसौ। (घ) १. प्रास्तौत्। ३. प्रेषयति। ४. रजतस्य, टङ्कयति। ५. शुल्कग्राहिणम्, आयविवरणं प्रस्तोतुमादिशति।

शब्दकोष—५२५+२५=५५०] **अभ्यास २२** (व्याकरण)

(क) आहवः (युद्ध), प्रहरणम् (शस्त्र), आयुधम् (शस्त्रास्त्र), आयुधागारम् (शस्त्रागार), वर्मन् (नपुं०, कवच), कार्मुकम् (धनुष), निस्त्रिंशः (खड्ग), कौक्षेयकः (कृपाण), विशिखः (बाण), तूणीरः (तूणीर), करवालिका (गुप्ती, कृपाण), शल्यम् (बर्छी), प्रासः (भाला), तोमरः (गँड़ासा), गदा (गदा), छुरिका (चाकू), धन्विन् (धनुर्धर), शरव्यम् (लक्ष्य), सांयुगीनः (रणकुशल), जिष्णुः (पुं०, विजयी), कबन्धः (धड़), कारा (जेल), हस्तिपकः (हाथीवान), सादिन् (घुड़सवार), वैजयन्ती (स्त्री०, पताका)। (२५)

व्याकरण (कर्तृ०, कृ आत्मने०, बहुव्रीहि समास)

१. कर्तृ शब्द के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० सं० ११)

२. कृ धातु आत्मनेपदी के दसों लकारों के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ९१)

नियम १४९—(अनेकमन्यपदार्थे) (अन्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिः) जिस समास में अन्य पद के अर्थ की प्रधानता होती है, उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं। बहुव्रीहि समास होने पर समस्त पद स्वतन्त्र रूप से अपना अर्थ नहीं बताते, अपितु वे विशेषण के रूप में काम करते हैं और अन्य वस्तु का बोध विशेष्य के रूप में कराते हैं। बहुव्रीहि की पहचान है कि अर्थ करने पर जहाँ जिसको, जिसने, जिसका, जिसमें आदि अर्थ निकलें। बहुव्रीहि के पाँच भेद हैं— (१) समानाधिकरण, (२) व्यधिकरण, (३) सहार्थक, (४) कर्मव्यतिहार, (५) नञ् और उपसर्ग के साथ। **(१) समानाधिकरण बहुव्रीहि**—दोनों पदों में प्रथमा विभक्ति रहती है। अन्य पदार्थ कर्ता को छोड़कर कर्म, करण आदि कोई भी हो सकता है। जैसे—**(क) कर्म**—प्राप्तमुदकं यं सः > प्राप्तोदकः। **(ख) करण**—ऊढः रथः येन सः > ऊढरथः (बैल)। हतशत्रुः (राजा), उत्तीर्णपरीक्षः (छात्र), कृतकृत्यः (मनुष्य), जितेन्द्रियः (पुरुष), दत्तचित्तः (पुरुष)। **(ग) सम्प्रदान**—दत्तं भोजनं यस्मै सः > दत्तभोजनः (भिक्षुक)। उपहृतपशुः (रुद्र), दत्तधनः (पुरुष)। **(घ) अपादान**—उद्धृतम् ओदनं यस्मात् सा > उद्धृतौदना (स्थाली), पतितं पर्णं यस्मात् सः > पतितपर्णः (वृक्ष)। निर्गतं भयं यस्मात् सः > निर्भयः (पुरुष)। निर्बलः। **(ङ) सम्बन्ध**—पीतम् अम्बरं यस्य सः > पीताम्बरः (कृष्ण)। इसी प्रकार दशाननः (रावण), चतुराननः (ब्रह्मा), चतुर्मुखः, पद्मयोनिः, महाशयः, महाबाहुः, लम्बकर्णः, चित्रगुः। **(च) अधिकरण**—वीराः पुरुषा यस्मिन् सः > वीरपुरुषः (ग्राम)। **(२) व्यधिकरण बहुव्रीहि**—इसमें दोनों पदों में विभक्तियाँ विभिन्न होती हैं। धनुः पाणौ यस्य सः > धनुष्पाणिः। चक्रपाणिः, कण्ठेकालः, चन्द्रशेखरः। **(३) सहार्थक**—(तेन सहेति तुल्ययोगे) साथ अर्थ से बहुव्रीहि। सह को स। पुत्रेण सहितः > सपुत्रः। इसी प्रकार साग्रजः, सानुजः, सबान्धवः, सविनयम्, सादरम्। **(४) कर्मव्यतिहार**— (तत्र तेनेदमिति सरूपे) तृतीयान्त या सप्तम्यन्त का युद्ध होना अर्थ में समास। पूर्वपद को दीर्घ, अन्त में इ लगेगा और अव्यय होगा। केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तम् > केशाकेशि। दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्य० > दण्डादण्डि। मुष्टीमुष्टि। **(५) नञादि**—अविद्यमानः पुत्रः यस्य सः > अपुत्रः। प्रपतितपर्णः > प्रपर्णः। अस्तिक्षीरा गौः।

अभ्यास २२

संस्कृत बनाओ—(क) (कर्तृ शब्द) १. दिलीप ने वशिष्ठ से वंश के चलानेवाले पुत्र को सुदक्षिणा में माँगा। २. पाणिनि अष्टाध्यायी का, पतंजलि महाभाष्य का और कालिदास रघुवंश का कर्ता है। ३. ऋण का करनेवाला पिता शत्रु है। ४. वक्ता श्रोता को धर्म सिखा रहा है। ५. जगत् का कर्ता, धर्ता, भर्ता और हर्ता ईश्वर है। ६. विश्वनियन्ता पर श्रद्धा करो। (ख) (कृ धातु) १. उसने मन में यह सोचा। २. आप अपनी थकान दूर कीजिये। ३. मैं तुम्हारा और अधिक क्या उपकार करूँ? ४. ग्रीष्म समय के बारे में गाइए। ५. विदेशियों के वेष का अनुकरण मत करो (अनु+कृ)। ६. सत्संगति पाप को दूर करती है (अपाकृ)। ७. देशभक्त नेता लोग लोगों का उपकार करते हैं (उपकृ)। ८. सौ रुपये धर्मार्थ लगाता है। ९. वह गीता की कथा करता है (प्रकृ)। १०. वह शत्रु को हराता है (अधिकृ)। ११. मैं मुनित्रय को नमस्कार करता हूँ (नमस्कृ)। १२. कामभाव चित्त को विकृत करता है (विकृ)। १३. बुद्धिमान् का अपकार न करे (अपकृ)। १४. सज्जन मेरे घर को अलंकृत करें (अलंकृ)। १५. रूस देश ने चन्द्रमा तक जानेवाले विमानों का आविष्कार किया है (आविष्कृ)। १६. यदि वह चोरी नहीं छोड़ता है तो बिरादरी से निकाल दिया जायगा (निराकृ) १७. वेदाध्ययन मन को पवित्र करता है (संस्कृ)। १८. योद्धा धनुष, खड्ग और कृपाण को स्वीकार करता है (स्वीकृ)। १९. स्त्रियाँ अपने घरों को सजाती हैं (परिष्कृ)। २०. निर्धन का तिरस्कार न करे (तिरस्कृ)। (ग) (बहुव्रीहि) १. राजाओं को उत्सव प्रिय होता है, वीरों को युद्ध और बालकों को मनोरंजन। २. सूर्य ने एक बार ही अपने घोड़ों को जोता है, शेषनाग सदा भूमि का भार ढोता है, षष्ठांशवृत्ति राजा का भी यही धर्म है। ३. शकुन्तला बाएँ हाथ पर मुँह रखे हुए बैठी है। ४. अच्छे प्रकार से धनुष पर चढ़ाए हुए बाण को उतार लीजिये। (घ) (आयुधवर्ग)। १. उर्वशी इन्द्र का कोमल हथियार है। २. तुम्हारे अतिरिक्त और किसीने मेरे शस्त्र को नहीं सहा है। ३. रणकुशल विजयी वीर कवच पहनकर हाथों में धनुष, तलवार, बर्छी, भाले लेकर शत्रुओं को परास्त करते हैं और अपनी विजय-वैजयन्ती को फहराते हैं। ४. प्राचीन समय में कुछ लोग घोड़ों पर, कुछ हाथियों पर और कुछ रथों पर बैठकर युद्ध करते थे।

संकेत—(क) १. वशिष्ठं वंशस्य कर्तारं तनयं सुदक्षिणायां ययाचे। ४. श्रोतारं शास्ति। (ख) १. एवमकरोत्। २. परिश्रमविनोदं करोत्वार्यः। ३. किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि। ४. समयमधिकृत्य गीयताम्। ५. वेषं वेषस्य वा अनुकुर्याः। ६. अपाकरोति। ७. लोकानामुपकुर्वते। ८. शतं प्रकुरुते। ९. गीतां प्रकुरुते। १०. अधिकुरुते। ११. मुनित्रयम्। १२. विकरोति (पर०)। १३. बुद्धिमतः। १५. विधुगामीनि विमानानि। १६. स्तेयम्, जात्या निराकरिष्यते। १७. संस्करोति। १८. स्वीकरोति। १९. परिष्कुर्वन्ति। २०. निर्धनम्। (ग) १. उत्सवप्रिया राजानः, युद्धप्रिया वीराः, आमोदप्रिया बालाः। २. भानुः सकृद्युक्ततुरंग एव, शेषः सदैवाहितभूमिभारः, षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः। ३. वामहस्तोपहितवदना तिष्ठति। ४. तत्साधुकृतसन्धानं प्रतिसंहर। (घ) १. सुकुमारं प्रहरणम्। २. न मे त्वदन्येन विसोढमायुधम्। ३. परिधाय, अभिभवन्ति, उत्तोलयन्ति। ४. रथान् आरुह्य, अधिष्ठाय वा।

शब्दकोष—५५०+२५=५७५] **अभ्यास २३** (व्याकरण)

(क) भुशुण्डि: (स्त्री०, बन्दूक), लघुभुशुण्डि: (स्त्री०, पिस्तौल), शतघ्नी (स्त्री०, तोप), गुलिका (गोली), अग्निचूर्णम् (बारूद), आग्नेयास्त्रम् (बम), आग्नेयास्त्रक्षेप: (बम फेंकना), परमाण्वस्त्रम् (एटम बम), जलपरमाण्वस्त्रम् (हाइड्रोजन बम), धूमास्त्रम् (टीयर गैस), विमानम् (विमान), युद्धविमानम् (लड़ाई का विमान), पोत: (पानी का जहाज), युद्धपोत: (लड़ाई का जहाज), जलान्तरितपोत: (पनडुब्बी), एकपरिधानम्, एकवेष: (यूनिफॉर्म), सैन्यवेष: (वर्दी), रक्षिन् (सिपाही), सैनिक: (फौजी आदमी), भूसेनाध्यक्ष: (भू-सेनापति), वायुसेनाध्यक्ष: (वायु-सेनापति), नौसेनाध्यक्ष: (जलसेनापति), शिरस्त्रम् (लोहे का टोप), पदाति: (पुं०, पैदल-सेना)। (२४)। **(ख)** परिखया परिवेष्टय (मोरचा बाँधना)। (१)

व्याकरण (पितृ, नृ, अद् और शास् धातु, बहुव्रीहि समास)

१. पितृ और नृ शब्दों के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० सं० १२, १३)

२. अद् और शास् धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ३१, ४२)

नियम १५०—(स्त्रिया: पुंवद्भाषित०) बहुव्रीहि समास में यदि पुंलिंग शब्द से बना हुआ स्त्रीलिंग शब्द प्रथम पद हो तो उसे पुंलिंग हो जाता है, ऊ को नहीं। (गोस्त्रियो:०) अन्तिम पद में गो को गु, आ को अ, ई को इ हो जाता है। रूपवती भार्या यस्य स: > रूपवद्भार्य:। चित्रा गावो यस्य स: > चित्रगु:। वामोरूभार्य: ही होगा।

नियम १५१—बहुव्रीहि समास करने पर इन स्थानों पर अन्तिम पद में कुछ समासान्त प्रत्यय या परिवर्तन होते हैं—(१) (जायाया निङ्) जाया को जानि हो जाता है। युवति: जाया यस्य स: > युवजानि:। भूजानि:, महीजानि:। (२) (धनुषश्च) धनुष् को धन्वन् हो जाता है। पुष्पाणि धनु: यस्य स: > पुष्पधन्वा (कामदेव)। शार्ङ्गधन्वा, शतधन्वा। (३) (गन्धस्येदुत्०) उत्, पूति, सु, सुरभि के बाद गन्ध को गन्धि होता है। शोभन: गन्धो यस्य स: > सुगन्धि:। सुरभिगन्धि:। (४) (पादस्य लोपो०) पाद को पाद् हो जाता है, कोई उपमान शब्द पहले हो तो, हस्ति आदि को छोड़कर। (संख्यासुपूर्वस्य) कोई संख्या या सु पहले हो तो पाद को पाद्। व्याघ्रपात्। द्विपात्। सुपात्। स्त्री० में पाद् को पद्। द्विपदी। सप्तपदी। (५) (प्रसंभ्यां जानुनो ज्ञु:) प्र, सम् और ऊर्ध्व के बाद जानु को ज्ञु होता है। प्रज्ञु:, संज्ञु:, ऊर्ध्वज्ञु: (६) (इच् कर्मव्यतिहारे) कर्मव्यतिहार में अन्त में इ लग जायगा। केशाकेशि, दण्डादण्डि, बाहूबाहवि। (७) (धर्मादनिच्०) धर्म शब्द को धर्मन् हो जाता है। कल्याणधर्मा, समानधर्मा। (८) (नित्यमसिच् प्रजामेधयो:) नञ्, दु:, सु के बाद प्रजा और मेधा में अस् लग जाता है। अप्रजा:, सुप्रजा:। अमेधा:, दुर्मेधा:। (९) (उपसर्गाच्च) उपसर्ग के बाद नासिका को नस। प्रणस:, उन्नस:। (१०) (द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्न:) द्वि, त्रि के बाद मूर्धन् को मूर्ध। द्विमूर्ध:, त्रिमूर्ध:। (११) (अङ्गुलेर्दारुणि) लकड़ी अर्थ के अङ्गुलि को अङ्गुल। पञ्चाङ्गुलं दारु। (१२) (बहुव्रीहौ०) अक्षि को अक्ष। जलजाक्ष:, कमलाक्षी। (१३) (बहुव्रीहौ संख्येये०) त्रि को त्र, विंशति को विंश, दशन् को दश। द्वित्रा:, द्विदशा:, आसन्नविंशा:।

नियम १५२—इन स्थानों पर अन्त में क लगता है—(१) (उर:प्रभृतिभ्य:०) उरस् आदि के बाद। व्यूढोरस्क:, प्रियसर्पिष्क:। (२) (इन: स्त्रियाम्) इन्-प्रत्ययान्त के बाद। बहुदण्डिका नगरी। (३) (नद्यृतश्च) ई, ऊ, ऋ के बाद। सुश्रीक:, सुवधूक:, सुमातृक:। (४) (शेषाद् विभाषा) अन्यत्र विकल्प से। महायशस्क:, महायशा:।

अभ्यास २३

संस्कृत बनाओ—(क) (पितृ, नृ) १. इससे बढ़कर और कोई धर्माचरण नहीं है, जितना पिता की सेवा और उनका कहना मानना। २. मैं जगत् के माता-पिता पार्वतीपरमेश्वर की वन्दना करता हूँ। ३. पार्वती ने पिता से अरण्य में निवास की माँग की। ४. पिता सौ आचार्यों से बढ़कर है और माता सौ पिताओं से। ५. मनुष्यों में तुम ही एक धन्य हो। ६. भगवन्, दीन मनुष्यों की रक्षा करो। (ख) (अद्, शास्) १. मैं जिस जीव का मांस यहाँ खाता हूँ, वह परलोक में मुझे खाएगा। यह मांस का मांसत्व है (मां+स=मांस)। २. फल खाओ, साग खाओ और दूध-घी खाओ। ३. वह बालक को धर्म सिखाता है। ४. मैं तुम्हारा शिष्य हूँ, तुम्हारी शरण में आया हूँ, तुम मुझे शिक्षा दो। ५. अद्वितीय शासनवाली पृथ्वी का उसने शासन किया। ६. शिष्य को वेद-ज्ञान दिया। ७. धार्मिक राजा चोरों को दण्ड दे। (ग) (बहुव्रीहि) १. कृष्ण की भार्या रूपवती है और उसकी गायें चितकबरी हैं। २. अद्भुत गुणों से युक्त नल पृथ्वी का पति था। ३. दुष्टों में परस्पर बाल खींचकर, डण्डे मारकर, हाथापाई करके झगड़ा हुआ। ४. कामदेव का धनुष फूलों का है। (घ) (सैन्यवर्ग) १. डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद भारत के प्रथम राष्ट्रपति थे और डॉ० राधाकृष्णन् भी राष्ट्रपति हुए। २. भू, वायु और जल-सेना के कमाण्डर-इन-चीफों की एक बैठक सुरक्षामन्त्री के नेतृत्व में दिल्ली में हुई, जिसमें भारत की सुरक्षा के विषय में विचार-विनिमय हुआ। ३. सिपाही वर्दी पहने पहरा दे रहे हैं। ४. फौजी लोगों ने विद्रोहियों को दबाने के लिए पहले टीयर गैस छोड़ी और बाद में बन्दूक, पिस्तौल और तोपों का प्रयोग करके उनको भस्मसात् कर दिया। ५. गत महायुद्ध में अंग्रेजों का जंगी बेड़ा बहुत प्रसिद्ध था। ६. आजकल रूस और अमेरिका के पास एटम बम, हाइड्रोजन बम और युद्ध के विमान सबसे अधिक हैं। ७. आजकल के युद्धों में परमाणु बमों और युद्ध-विमानों का महत्त्व बढ़ गया है। ८. परमाणु बम फेंककर हजारों लोगों का संहार किया जा सकता है। ९. बारूद से मकानों को उड़ाया जा सकता है। १०. नगर की सुरक्षा का भार एस०पी० और डी०एस०पी० पर मुख्यतः होता है। ११. प्रत्येक प्रान्त में पुलिस के उच्च अधिकारी आई०जी० और डी०आई०जी० होते हैं। १२. लड़ाई में मोर्चाबन्दी की जाती है और उसमें लड़ाई के विमान, पोत, पनडुब्बियों आदि का उपयोग होता है।

संकेत—(क) १. अतो महत्तरम्। पितरि शुश्रूषा, वचनक्रिया। २. पितरौ, वन्दे। ३. पितरम् अरण्यनिवासम् अयाचत। ४. आचार्याणां शतं पिता, पितॄणां शतं माता, गौरवेणातिरिच्यते। ५. नृणाम्। ६. नॄन् पाहि। (ख) १. मां स भक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम्। एतन्मांसस्य मांसत्वम्। ३. शास्ति। ४. शिष्यस्तेऽहं, शाधि मां त्वां प्रपन्नम्। ५. अनन्यशासनामुर्वीं शशास। ६. शिष्यायाशिषद् वेदम्। ७. चौरान् दण्डेन शिष्यात्। (ग) १. रूपवद्भार्यः, चित्रगुश्च कृष्णः। २. नलः स भूजानिरभूद् गुणाद्भुतः। ३. केशाकेशि, दण्डादण्डि, बाहूबाहवि युद्धं प्रवृत्तम्। ४. पुष्पधन्वा कामः। (घ) २. समितिरेका। ३. परिधाय पर्यटति। ४. विद्रोहिणां प्रशमनार्थम्, प्रहृतम्, प्रयुज्य। ५. नौसेना, विश्रुता। ६. रूसदेशस्य। ७. आधुनिकेषु। ८. प्रक्षिप्य। ९. विध्वंसयितुं शक्यन्ते। १०. कोटपाले, उपकोटपाले। ११. रक्षिणाम्, प्रधान-रक्षिनिरीक्षकाः, उपप्रधान-रक्षि-निरीक्षकाः। १२. परिखया परिवेष्टनं क्रियते।

शब्दकोष—५७५+२५=६००] **अभ्यास २४** (व्याकरण)

(क) वणिज् (वैश्य), वृत्तिः (स्त्री०, जीविका), वाणिज्यम् (व्यापार), ऋणम् (कर्ज), उत्तमर्णः (कर्ज देनेवाला), अधमर्णः (कर्ज लेनेवाला), कुसीदम् (सूद), कुसीदिकः (साहूकार), कुसीदवृत्तिः (स्त्री०, बैंकिंग, साहूकारा), पण्यम् (सामान, सौदा), विपणिः (स्त्री०, बाजार), आपणः (दूकान), आपणिकः (दूकानदार), विक्रेतृ (पुं०, बेचनेवाला), ग्राहकः (गाहक, लेनेवाला), विक्रयः (बिक्री), वणिक्पञ्जिका (बही), दैनिकपञ्जिका (रोजनामचा, रोकड़), नामानुक्रमपञ्जिका (लेखा बही), आये (सप्तमी, आयमध्ये), नाम्नि (सप्तमी, उधारखाते), संख्यानम् (हिसाब), लेखकः (मुनीम), राशिः (पुं०, स्त्री०, धन, रकम)। (२४)। (ख) पण् (खरीदना)। (१)।

व्याकरण (गो, अस् धातु, द्वन्द्व समास)

१. गो शब्द के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० सं० १४)

२. अस् धातु के दसों लकारों के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ३२)

नियम १५३—(चार्थे द्वन्द्वः) (उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः) जहाँ पर दो या अधिक शब्दों का इस प्रकार समास हो कि उसमें च (और) अर्थ छिपा हुआ हो तो वह द्वन्द्व समास होता है। द्वन्द्व समास में दोनों पदों का अर्थ मुख्य होता है। द्वन्द्व समास की पहचान है कि जहाँ अर्थ करने पर बीच में 'और' अर्थ निकले। द्वन्द्व समास तीन प्रकार का होता है:—१. इतरेतर, २. समाहार, ३. एकशेष। (१) **इतरेतर**—जहाँ पर बीच में 'और' का अर्थ होता है तथा शब्दों की संख्या के अनुसार अन्त में वचन होता है अर्थात् दो वस्तुएँ हों तो द्विवचन, बहुत हों तो बहुवचन। प्रत्येक शब्द के बाद विग्रह में च लगेगा। रामश्च कृष्णश्च > रामकृष्णौ। इसी प्रकार सीतारामौ, उमाशंकरौ, रामलक्ष्मणौ, भीमार्जुनौ। पत्रं च पुष्पं च फलं च > पत्रपुष्पफलानि। रामलक्ष्मणभरताः। (परवल्लिङ्गं द्वन्द्व०) द्वन्द्व में अन्तिम शब्द के लिंग के अनुसार पूरे समास का लिंग होगा। मयूरी च कुक्कुटश्च > मयूरीकुक्कुटौ। कुक्कुटश्च मयूरी च > कुक्कुटमयूर्यौ। पहले में पुं० है, दूसरे में स्त्री०। (२) **समाहार**—जहाँ पर कई शब्द अपना अर्थ बताते हुए समाहार (समूह) का अर्थ बताते हैं। इस समास में अन्त में नपुं० एक० ही रहता है। यह समास मुख्यतः इन स्थानों पर होता है:— (क) (द्वन्द्वश्च प्राणितूर्य०) मनुष्य के अंग, वाद्य के अंग, सेना के अंग में—पाणी च पादौ च > पाणिपादम् (हाथ-पैर)। मार्दङ्गिकपाणविकम्, रथिकाश्वारोहम्। (ख) (जातिरप्राणिनाम्) निर्जीव जातिवाचक शब्द। यवाश्च चणकाश्च > यवचणकम्। व्रीहियवम्। (ग) (येषां च विरोधः०) जिनका जन्मसिद्ध वैर हो। अहिनकुलम्, गोव्याघ्रम्, काकोलूकम्। (घ) (विभाषा वृक्षमृग०) वृक्ष, मृग, पशु आदि में विकल्प से। कुशकाशम्, शुकबकम्, गोमहिषम्, दधिघृतम्, पूर्वापरम्, अधरोत्तरम्। (ङ) (विप्रतिषिद्धं०) विरोधी चीजों में। शीतोष्णम्, सुखदुःखम्, पापपुण्यम्। (च) (द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात्०) अन्त में चवर्ग, द, ष, ह होंगे तो अ अन्त में जुड़ेगा। वाक्त्वचम्। त्वक्स्रजम्। शमीदृषदम्। वाक्त्विषम्। छत्रोपानहम्। (३) **एकशेष**—अभ्यास २५ में देखो।

अभ्यास २४

संस्कृत बनाओ—(क) (गो शब्द)१. गौएँ दूधवाली हों। २. चरागाह से गाय को लाओ। ३. बाड़े में गाय को बन्द करो। ४. गायों को पालो। ५. गाय की महिमा अपार है। ६. गायों में काली गाय अधिक दूध देती है। ७. राम की बात सुनकर सीता बोली। (ख) (अस् धातु) १. जिसके पास स्वयं बुद्धि नहीं है, शास्त्र उसका क्या भला कर सकता है? २. मेरे पास खाने को है। ३. जो मेरी चीज है, वह तुम ले लो। ४. उसके पास कुछ भी धन नहीं है। ५. वह चुप था। ६. अच्छा ऐसा ही सही। ७. सृष्टि के आदि में न असत् था और न सत्। ८. मैं पहले नहीं था, ऐसी बात नहीं है। ९. मैं जो चाहता हूँ, वह तुम्हें मिले। १०. शिव तुम्हें मुक्ति दे। ११. सज्जनों के कल्याण के लिए श्री और सरस्वती का मेल हो। १२. अन्य राजाओं का दिया हुआ मेरे साग और नमक भर को होगा। १३. जैसा मैं उसके प्रति सोचता हूँ, क्या वह भी मेरे प्रति वैसा ही सोचती है? १४. सूर्य निकला। (ग) (द्वन्द्व) १. दुर्योधन और भीम का गदा-युद्ध प्रारम्भ हुआ। २. अतिथि के लिए पत्र, पुष्प और फल लाओ। ३. राम, लक्ष्मण और भरत भ्रातृ-प्रेम की मूर्ति हैं। ४. मोरनी और मुर्गे वन में घूम रहे हैं। ५. मुनि सुख-दुःख, पाप-पुण्य और सर्दी-गर्मी को समान मानता है। ६. घी-दूध और जौ--चने खाओ। ७. पूर्वापर और ऊँच-नीच को सोचकर बोलो। ८. छाता-जूता लाओ (घ) (वैश्यवर्ग) १. बनिया साहूकारी का काम करता है, वह लोगों को रुपया उधार देता है और सूद वसूल करता है। २. आज बाजार में बहुत रौनक थी, दूकानें सजी हुई थीं, बनिए ग्राहकों को सामान बेच रहे थे और वे नगद खरीद रहे थे। ३. कर्ज लेनेवाला सदा दुःखी रहता है और कर्ज देनेवाला पनपता है। ४. वाणिज्य सुख का मूल और वैभव का कर्ता है। ५. बनियों की दूकानों पर मुनीम रहते हैं, वे दूकान की आय और व्यय का पूरा हिसाब बहियों में लिखते हैं। जो आमदनी होती है, उसे आयमध्ये और जो उधार जाता है, उसे उधार खाते लिखते हैं। दैनिक आय-व्यय रोजनामचा में लिखा जाता है और बाद में वही लेखा-बही में वर्णानुक्रम से प्रत्येक व्यक्ति के हिसाब में लिखा जाता है। ६. बनिये रोज के रोज अपना हिसाब बहुत बारीकी से मिलाते हैं।

संकेत—(क) १. क्षीरिण्यः। २. शाद्वलात्। ३. व्रजमवरुणद्धि गाम्। ४. पालय। ५. गोस्तु मात्रा न विद्यते। ६. कृष्णा बहुक्षीरा। ७. गां निशम्य। (ख) १. यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा, शास्त्रं०। २. अस्ति मे भोक्तुम्। ३. यन्ममास्ति। ४. नहि तस्यास्ति किंचित् स्वम्। ५. तूष्णीम्। ६. एवमेव स्यात्। ७. नासदासीन्नो सदासीत्तदानीम्। ८. न त्वेवाहं जातु नासम्। ९. ते तदस्तु। १०. निःश्रेयसायास्तु वः। ११. भूतये····संगतम्। १२. अन्यैर्नृपालैः परिदीयमानं शाकाय वा स्यात् लवणाय वा स्यात्। १३. किं नु खलु यथा वयमस्याम्, एवमियमप्यस्मान् प्रति स्यात्। १४. प्रादुरासीत्। (ग) ४. मयूरीकुक्कुटाः। ५. शीतोष्णम्, मनुते। ७. अधरोत्तरम्। ८. छत्रोपानहम्। (घ) १. धनम् ऋणरूपेण यच्छति, गृह्णाति। २. अपूर्वा छटा, सुसज्जिताः, वस्तूनि व्यक्रीणत, मूल्येन। ३. एधते। ४. मूलम्, कर्तृ। ५. आयः, ऋणरूपेण दीयते, लिख्यते, आयव्ययविवरणे। ६. प्रत्यहम्, अतिसूक्ष्मतया गणयन्ति।

शब्दकोष—६००+२५=६२५] **अभ्यास २५** (व्याकरण)

(क) अभिकर्तृ (पुं०, एजेण्ट, आढ़ती), अभिकरणम् (एजेन्सी, आढ़त), शुल्कम् (कमीशन, दलाली), शुल्काजीवः (दलाल, कमीशन एजेण्ट), तुला (तराजू), तोलनम् (तोलना), तोलः (तोल), तुलामानम् (बाट, बटखरा) अर्घः (भाव, रेट), मूल्यम् (मूल्य), मूल्येन (तृ०, नगद), ऋणरूपेण (तृ०, उधार), अर्घापचितिः (स्त्री०, भाव गिरना), अर्घोपचितिः (स्त्री०, भाव चढ़ना), मन्दायनम् (मन्दी), मूलधनम् (पूँजी), विनिमयः (अदल-बदल), आयातः (बाहर से आना, इम्पोर्ट), निर्यातः (बाहर जाना, एक्सपोर्ट), करः (टैक्स), विक्रयकरः (सेल्स टैक्स), आयकरः (इन्कम-टैक्स), क्रयः (खरीद), आयात-शुल्कम् (आयात पर चुंगी), निर्यात-शुल्कम् (निर्यात पर चुंगी)। (२५)।

व्याकरण (प्राञ्च्, उदञ्च्; ब्रू धातु, एकशेष, अलुक् समास)

१. प्राञ्च्, उदञ्च् शब्दों के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० सं० १६, १७)

२. ब्रू धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ४७)

नियम १५४—(एकशेष) एकशेष मुख्यतः इन स्थानों पर होता है—(क) (सरूपाणाम्०) द्विवचन और बहुवचन में एक शब्द शेष रहेगा, उसीसे विभक्ति होगी। वृक्षश्च वृक्षश्च > वृक्षौ। वृक्षाः। (ख) (पिता मात्रा) पिता-माता में पितृ शेष रहेगा, उससे द्विवचन होगा। माता च पिता च > पितरौ। (ग) (पुमान् स्त्रिया) स्त्रीलिंग और पुंलिंग में पुं० शेष रहेगा, उससे द्विवचन होगा। हंसी च हंसश्च > हंसौ।

नियम १५५—(एकशेष) (नपुंसकमनपुंसकेन०) यदि एक वाक्य में पुंलिंग और स्त्रीलिंग शब्द हैं तो सर्वनाम और क्रिया पुं० होंगे। यदि पुं०, स्त्री०, नपुं० तीनों हैं तो सर्वनाम और क्रिया नपुंसक० होंगे। शुक्लः पटः, शुक्ला शाटी, ताविमौ क्रीतौ।

नियम १५६—(एकशेष) (त्यदादीनि०) कोई संज्ञा-शब्द और सर्वनाम होगा, तो सर्वनाम शेष रहेगा। कई सर्वनाम होंगे तो अन्तिम शेष रहेगा। स रामश्च > तौ।

नियम १५७—(एकशेष) प्रथम, मध्यम, उत्तमपुरुष एकत्र हों तो क्रिया इस प्रकार रहेगीः—(क) प्रथम०+प्रथम०=क्रिया प्रथमपुरुष। वचन संख्या के अनुसार। रामः रमा च पठतः। (ख) प्रथम०+मध्यम०=क्रिया मध्यम पु०। वचन संख्यानुसार। स त्वं च पठथः। ते यूयं च गच्छथ। (ग) यदि उत्तमपुरुष भी होगा तो उत्तम पुरुष शेष रहेगा। वचन संख्या के अनुसार होगा। स त्वम् अहं च पठामः।

नियम १५८—(नञ्समास) (नञ्, तस्मान्नुडचि) तत्पुरुष और बहुव्रीहि में नञ् समास होता है। नञ् का 'अ' शेष रहता है। बाद में कोई स्वर होगा तो अ को अन् हो जायगा। न ब्राह्मणः > अब्राह्मणः। न पुत्रः यस्य सः > अपुत्रः। उपस्थितः > अनुपस्थितः। अतिथिः, अज्ञः, अनुचितः, अनादरः, अनीश्वरवादी।

नियम १५९—(अलुक् समास) जिन स्थानों पर बीच की विभक्ति का लोप नहीं होता है, उसे अलुक् समास कहते हैं। विभक्ति-लोप इन स्थानों पर नहीं होता है। परस्मैपदम्, आत्मनेपदम्, युधिष्ठिरः, कण्ठेकालः (शिव), अन्तेवासिन् (शिष्य), पश्यतोहरः (सुनार, डाकू), देवानांप्रियः (मूर्ख), शुनःशेपः (नाम), दिवोदासः (नाम), खेचरः (देव आदि), सरसिजम् (कमल), मनसिजः (काम), पात्रेसमिताः (खाने के साथी), गेहेशूरः (घर में शूर), गेहेनर्दी (घर में ही चिल्लानेवाला)।

अभ्यास २५

संस्कृत बनाओ— (क) (प्राञ्च्, उदञ्च्) १. इस विषय में पूर्व, पश्चिम और उत्तर के वैयाकरणों में एकमत नहीं है। २. पूर्व, पश्चिम और उत्तर के लोग अपने-अपने प्रदेश को अधिक मानते हैं। ३. पूर्व दिग्भाग में सूर्य उदय होता है और पश्चिम में अस्त होता है। उत्तर में हिमालय शोभित होता है। ४. पूर्व दिशा में अब चन्द्रमा निकल रहा है और सूर्य पश्चिम में छिप रहा है। उत्तर में हिमालय है। (ख) (ब्रू धातु) १. मैं शकुन्तला के विषय में कह रहा हूँ। २. वह बच्चे को धर्म बता रहा है। ३. तुमसे क्या कहें? ४. सज्जन कार्य से अपनी उपयोगिता बताते हैं, न कि मुँह से। ५. मेरे चार प्रश्नों का उत्तर दो। ६. दिलीप ने शेर को उत्तर दिया। ७. सत्य बोलो, प्रिय बोलो, अप्रिय सत्य न बोलो। ८. मैंने कहा कि चरित्र की उन्नति से देशोन्नति होती है। (ग) (एकशेष, अलुक्) १. माता-पिता की वन्दना करता हूँ। २. एक कॉपी, एक होल्डर और एक पुस्तक, ये तीन चीजें खरीदीं। ३. एक डंडा और एक साड़ी, ये दो सामान खरीदे। ४. देवदत्त और तुम कब खेलने जाओगे? ५. देवदत्त, तुम और हम सब आज घूमने चलेंगे। ६. कक्षा में अनुपस्थित न हो, अनीश्वरवादी न हो, अतिथि का अनादर न करो, अनुदार मत हो। ७. अज्ञ अनुचित कार्य करते हैं। ८. सुनार देखते-देखते सोना चुरा लेता है। ९. आजकल अधिकांश मित्र खाने के साथी होते हैं, मौका पड़ने पर काम नहीं आते। १०. कुत्ता भी घर पर शेर होता है। (घ) (व्यापारीवर्ग) १. आढ़ती आढ़त करता है, दूसरे के लिए सामान मँगाता है और बेचता है। २. दलाल कमीशन लेकर एक का सामान दूसरे के हाथ बिकवाता है। ३. ग्राहक दूकानदार से वस्तुओं का भाव पूछता है। ४. दूकानदार तराजू पर बाट रखकर सामान तोलता है, डण्डी नहीं मारता है। ५. कुछ दूकानदार डंडी भी मारते हैं और कम तोल देते हैं। ६. सदा नगद लेना चाहिए। ७. उधार लेना और उधार देना दोनों ही अनुचित और हानिकारक हैं। ८. भाव कभी गिरता है, कभी चढ़ता है, कभी मन्दी भी आती है। ९. सरकार ने बिक्री पर सेल्स-टैक्स, आयात पर आयात-कर, निर्यात पर निर्यात-कर और आमदनी पर इन्कम-टैक्स लगाए हुए हैं।

संकेत—(क) १. प्राचां प्रतीचामुदीचां⋯नैकमत्यम्। २. प्राञ्चः, प्रत्यञ्चः, उदञ्चः। ३. प्राचि दिग्भागे, प्रतीचि, उदीचि। ४. प्राच्यां दिशि, प्रतीच्याम्, उदीच्याम्। **(ख)** १. शकुन्तलामधिकृत्य ब्रवीमि। २. माणवकं धर्मं ब्रूते। ३. किं त्वां प्रति ब्रूमहे। ४. ब्रुवते हि फलेन साधवो, न कण्ठेन निजोपयोगिताम्। ५. ब्रूहि मे चतुरः प्रश्नान्। ६. प्रत्यब्रवीत्। ७. सत्यं ब्रूयात्, प्रियम्। ८. अवोचम्। **(ग)** १. पितरौ। २. एतानि त्रीणि वस्तूनि। ३. एतौ द्वौ पदार्थौ। ४. गमिष्यथः। ५. गमिष्यामः। ८. पश्यतोहरः पश्यत एव, मुष्णाति। ९. पात्रेसमिता भवन्ति, न तु कार्ये। १०. गेहेशूरः, गेहेनर्दी वा। **(घ)** १. आनाययति, विक्रीणीते। २. अपरस्य हस्ते, विक्रापयते। ४. तोलयति, कूटमानं न कुरुते। ६. ग्रहीतव्यम्। ७. दानादानम्, द्वयमेव। ८. जातु अर्घापचितिर्भवति। ९. सर्वकारेण निर्धारितानि सन्ति।

शब्दकोष—६२५+२५=६५०] **अभ्यास २६** (व्याकरण)

(क) अन्नम् (अन्न), शस्यम् (अन्न, खेत में विद्यमान), धान्यम् (धान, भूसीसहित), तण्डुलः (चावल, भूसी-रहित), व्रीहिः (पुं०, चावल), गोधूमः (गेहूँ), चणकः (चना), यवः (जौ), माषः (उड़द), मुद्गः (मूँग), मसूरः (मसूर), सर्षपः (सरसों), आढकी (स्त्री०, अरहर), द्विदलम् (दाल), तिलः (तिल), कलायः (मटर), यवनालः (ज्वार), प्रियंगुः (पुं०, बाजरा), चूर्णम् (आटा), चणकचूर्णम् (बेसन), मिश्रचूर्णम् (मिस्सा आटा), अणुः (पुं०, बासमती चावल), श्यामाकः (सावाँ, जंगली चावल), वनमुद्गः (लोबिया), रसवती (स्त्री०, रसोई)। (२५)

व्याकरण (पयामुच्, वणिज्; या, पा धातु, समासान्तप्रत्यय)

१. पयोमुच्, वणिज् के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० १५, १८)

२. या और पा धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ४०, ४१)

नियम १६०—(समासान्तप्रत्यय) निम्नलिखित स्थानों पर समास होने के बाद अन्त में कोई प्रत्यय होता है। बहुव्रीहि के समासान्त प्रत्ययों के लिए देखो नियम १५१ और १५२। द्वन्द्व के समासान्त प्रत्यय के लिए देखो नियम १५३ (च)। (१) (राजाहःसखिभ्यष्टच्)। टच् होकर समास के अन्त में राजन् को राज, अहन् को अह या अह्न, सखि को सख हो जाता है। महान् चासौ राजा > महाराजः। देवराजः। उत्तमम् अहः > उत्तमाहः। कृष्णस्य सखा > कृष्णसखः। (२) (अह्नोऽह्न एतेभ्यः) इन स्थानों पर अहन् को अह्न होता है। सर्वाह्णः, पूर्वाह्णः, मध्याह्नः, सायाह्नः, द्व्यह्नः, अपराह्णः। (न संख्यादेः०) संख्या पहले होगी तो समाहार में अहन् का अहः ही होगा। एकाहः, द्व्यहः, त्र्यहः। (३) (आन्महतः०) प्रथम पद के महत् को महा हो जाता है, कर्मधारय और बहुव्रीहि में। महात्मा, महादेवः, महाशयः। (४) (अहः सर्वैकदेश०) अच् होकर रात्रि का रात्र हो जाता है, अहः सर्व आदि के बाद। अहोरात्रः, सर्वरात्रः, पूर्वरात्रः, द्विरात्रम्, नवरात्रम्, अतिरात्रः। (५) (अनोऽश्मायः०) अनस्, अश्मन्, अयस् और सरस् के अन्त में टच् (अ) जुड़ जाता है, जाति या संज्ञा अर्थ में। उपानसम्, अमृताश्मः, कालायसम्, मण्डूकसरसम्। महानसम् (रसोई), पिण्डाश्मः, लोहितायसम्, जलसरसम्। (६) (ऋक्पूरब्धूः०) समासान्त अ होकर ऋच् को ऋच, पुर् को पुर, अप् को अप, धुर् को धुरा, पथिन् को पथ हो जाता है। ऋचः अर्धम् > अर्धर्चः। विष्णोः पूः > विष्णुपुरम्। विमलापं सरः। राजधुरा। सुपथो देशः। (७) (द्व्यन्तरुपसर्गेभ्यो०) इन स्थानों पर अन्तिम अप् का ईप हो जाता है। द्वीपम्, अन्तरीपम्, प्रतीपम्, समीपम्। (८) (अच् प्रत्यन्वव०) अच् होकर इन स्थानों पर लोमन् को लोम होता है। प्रतिलोमम्, अनुलोमम्, अवलोमम्। (९) (अचतुर०) निपातन से ये रूप बनते हैं। नक्तन्दिवम्, रात्रिन्दिवम्, अहर्दिवम्, निःश्रेयसम्, पुरुषायुषम्, ऋग्यजुषम्। (१०) (न पूजनात्, किमःक्षेपे, नञस्तत्पुरुषात्) पूजा तथा निन्दा अर्थ में और नञ्समास होने पर कोई समासान्त नहीं होगा। सुराजा, किंराजा, अराजा, असखा। (११) (अव्ययीभावे शरत्०) अव्ययीभाव में (क) शरद् आदि से टच् (अ) होगा। उपशरदम्, प्रतिविपाशम्। (ख) (प्रतिपर०) प्रति, पर, सम्, अनु के बाद अक्षि को अक्ष होगा। प्रत्यक्षम्, परोक्षम्, समक्षम्। (ग) (अनश्च) अन्नन्त से टच् (अ) और अन् का लोप होगा। उपराजम्, अध्यात्मम्।

अभ्यास २६

संस्कृत बनाओ—(क) (पयोमुच्, वणिज्) १. बादल गरजता है। २. बादल की बूँदों से सींची हुई वन-राजि शोभित हुई। ३. बादल की पंक्तियों में बिजली की तरह वह राजा चमक रहा था। ४. बादलों में बिजली चमकती है। ५. सत्यवक्ता सदा निर्भय होते हैं। ६. बनियों का टका ही धर्म और टका ही कर्म है। ७. बनिया व्यापार में सर्वस्व लगा देता है तथा देश और विदेश में सर्वत्र ही व्यापारार्थ जाता है। ८. राजा का (भूभुज्) दाहिना हाथ मन्त्री होता है। ९. वैद्यों की (भिषज्) परीक्षा सन्निपात रोग में होती है। १०. अग्नि (हुतभुज्) की लपटें उठ रही हैं। (ख) (या, पा धातु) १. भाग्य से ही धन आते हैं और जाते हैं। २. जवानी ढल जाती है। ३. विश्वासघातक सर्वत्र निन्दित होता है। ४. बच्चा दाई की अँगुली पकड़कर चला। ५. दिलीप गाय के पीछे चला। ६. अच्छा यह छोड़ो, ठीक बात पर आओ। ७. तुम्हारी बुद्धि मारी गयी है। ८. झूठ बोलने से मनुष्य गिर जाता है। ९. बच्चा सोता है। १०. खाना खिलाने से कौन वश में नहीं आ जाता ? ११. सूर्य उदय होता है और अस्त होता है। १२. नदी के पार जाता है। १३. गाय उस राजा से शोभित हुई (भा)। १४. तुम पिता की तरह प्रजा की रक्षा करते हो। १५. शिव तुम्हारी रक्षा करे। (ग) (समासान्त) १. वह महाराजा कृष्ण का सखा है। २. दिन-रात परिश्रम से काम करो। ३. तालाब का जल स्वच्छ है। ४. इस नगर की सड़कें अच्छी हैं। ५. अध्यात्म में मन लगाओ। (घ) १. बाजार में सभी दूकानों पर गेहूँ, जौ, चना, चावल, दाल, मटर, ज्वार, बाजरा बिकते हैं। २. आजकल कई दालें चल रही हैं, अरहर की दाल, उड़द की दाल, मूँग की दाल और मसूर की दाल। ३. गेहूँ के आटे का भाव ४० रु० मन है। ४. गेहूँ का आटा और बेसन की रोटी जाड़े में अधिक स्वादिष्ट लगती हैं। ५. बासमती चावल का भात मीठा होता है। ६. भात और दालें अच्छी पकी होती हैं तो भोजन रुचिकर और पौष्टिक होता है। ७. आज रसोई में मीठे चावल, नमकीन चावल, अरहर, उड़द, मूँग और मसूर की दालें बनी हैं।

संकेत—(क) १. गर्जति। २. पृषतैः सिक्ता। ३. पङ्क्तिषु विद्युदिव व्यरुचत्। ४. जलमुक्षु, द्योतते। ५. सत्यवाचः। ६. वणिजो वित्तधर्माणो वित्तकर्माणश्च भवन्ति। ७. नियुङ्क्ते। ८. भूभुजाम्। ९. भिषजां सान्निपातिके०। १०. हुतभुजोऽर्चींषि उद्यान्ति। (ख) १. भवन्ति यान्ति। २. यौवनमवनतिं याति। ३. वाच्यतां याति। ४. धात्र्याः, अवलम्ब्य, ययौ। ५. गामन्वग् ययौ। ६. यातु, प्रकृतमनुसंधीयताम्। ७. यातस्तवापि च विवेकः। ८. लघुतां याति। ९. निद्रां याति। १०. को न याति वशं लोके मुखे पिण्डेन पूरितः। ११. उदयं याति, अस्तं याति। १२. पारं याति। १३. बभौ। १४. प्रजाः पासि। १५. पातु वः। (ग) १. कृष्णसखः। २. नक्तन्दिवम्। ३. विमलापं सरः। ४. सुपथं नगरम्। ५. अध्यात्मे, कुरु। (घ) १. विक्रीयन्ते। २. व्यवह्रियन्ते, आढकीद्विदलम्, माषद्विदलम्। ३. चत्वारिंशद्रूप्यकाणि। ४. शरदि रोचन्ते। ५. भक्तम्। ६. सूपभक्तानि चेत्। ७. मिष्टौदनम्, लवणौदनम्, सूपानि।

शब्दकोष—६५०+२५=६७५] **अभ्यास २७** (व्याकरण)

(क) रोटिका (रोटी), पूपला (फुलका), पूलिका (पूरी), शष्कुली (स्त्री०, खस्ता पूरी), पिष्टिका (कचौड़ी), पूपिका (पराँठा), लप्सिका (हलुआ), पायसम् (खीर), सूत्रिका (सेवई), पक्वान्नम् (पकवान), सूपः (दाल), शाकः (साग), राज्यक्तम् (रायता), क्षीरम् (दूध), आज्यम् (घी), नवनीतम् (मक्खन), तक्रम् (मट्ठा), यवागूः (स्त्री०, लपसी, आटे का हलुआ), दाधिकम् (लस्सी), कृशरः (खिचड़ी), शर्करा (शक्कर, बूरा), सिता (चीनी), सन्धितम् (अचार), अवलेहः (चटनी), किलाटः (खोवा)। (२५)

व्याकरण (भूभृत् शब्द; दुह्, लिह् धातु, स्त्रीप्रत्यय)

१. भूभृत् शब्द के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० सं० १९)

२. दुह् और लिह् धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ३६, ३७)

नियम १६१—पुंलिंग शब्दों को स्त्रीलिंग बनाने के लिए जो प्रत्यय लगते हैं, उन्हें स्त्रीप्रत्यय कहते हैं। ये साधारणतया ३ हैं—१. टाप् (आ), २. ङीप् (ई), ३. ङीष् (ई)। इनके रूप रमावत् या नदीवत् चलेंगे। (क) टाप्—(१) (अजाद्यतष्टाप्) अज आदि और अकारान्त शब्दों के अन्त में टाप् (आ) लगता है। जैसे—अज > अजा, बाल > बाला। इसी प्रकार अश्वा, कोकिला, प्रथमा, द्वितीया, ज्येष्ठा, कनिष्ठा। (२) (प्रत्ययस्थात्कात्०) यदि शब्द के अन्त में 'अक' होगा तो टाप् होने पर 'इका' हो जाएगा। कारक > कारिका। इसी प्रकार गायिका, अध्यापिका, मूषिका, बालिका।

नियम १६२—(ख) ङीप्—(१) (उगितश्च) जिन प्रत्ययों में से उ या ऋ का लोप होता है, उनमें अन्त में ङीप् (ई) लगेगा। जैसे—मतुप्, शतृ, क्तवतु, ईयसुन् प्रत्ययवाले शब्द। मतुप्—श्रीमत् > श्रीमती। बुद्धिमती, विद्यावती, भगवती। शतृ—पठत् > पठन्ती। लिखन्ती, हसन्ती, गच्छन्ती, कुर्वन्ती। क्तवतु—गतवती, पठितवती। ईयस्—श्रेयसी, गरीयसी, भूयसी, ज्यायसी। (२) (ऋन्नेभ्यो ङीप्) अन्त में ऋ या न् होगा तो ङीप् (ई) लगेगा। कर्तृ > कर्त्री। हर्त्री, धर्त्री, कवयित्री, अध्येत्री, विधात्री। दण्डिन् > दण्डिनी। मानिनी, मनोहारिणी, तपस्विनी, राज्ञी। (३) (टिड्ढाणञ्०) टित्, ढ (एय), अण् (अ), अञ् (अ), ठक् (इक), ठञ् (इक) आदि प्रत्यय होने पर ङीप् (ई) होगा। जैसे—टित्—नदी, पुरातनी, सनातनी। दैविकी, भौतिकी, आध्यात्मिकी। (४) (वयसि प्रथमे) बाल्य और युवा आयु में ङीप् (ई)। कुमारी, किशोरी, तरुणी। (५) (द्विगोः) द्विगु समास में। त्रिलोकी, शताब्दी, चतुर्युगी।

नियम १६३—(ग) ङीष्—(१) (षिद्गौरादिभ्यश्च) षित् और गौर आदि से ङीष् (ई)। नर्तकी, गौरी, रजकी। (२) (पुंयोगादा०) पुंलिंग से स्त्रीत्व में। गोप की स्त्री > गोपी। शूद्री। (३) (जातेरस्त्री०) जातिवाची शब्दों से। ब्राह्मण > ब्राह्मणी। हरिणी, मृगी, सिंही। परन्तु क्षत्रिया, वैश्या ही होगा। (४) (वोतो गुणवचनात्) गुणवाची से विकल्प से। मृद्वी, मृदुः। (५) (इन्द्रवरुणभव०) इन्द्र आदि में आनी लगेगा। इन्द्राणी, भव > भवानी, शर्व > शर्वाणी, मातुल > मातुलानी, उपाध्याय > उपाध्यायानी, आचार्य > आचार्याणी, आचार्या। यवन > यवनानी (लिपि)।

नियम १६४—इन शब्दों में स्त्रीलिंग में ये रूप होते हैं—पति > पत्नी, युवन् > युवतिः, श्वशुर > श्वश्रूः, विद्वस् > विदुषी, राजन् > राज्ञी, नर > नारी, युवत् > युवती।

अभ्यास २७

संस्कृत बनाओ—(क) (भूभृत्) १. राजा (भूभृत्) की नीति का सर्वत्र आदर है, क्योंकि वह जनता को अपनी प्रजा के तुल्य मानता है। २. राजा (भूभृत्) में गुण हैं और पर्वत पर (भूभृत्) ओषधियाँ हैं। ३. राजाओं (महीभृत्) का हित प्रजा के हित के साथ जुड़ा हुआ है। ४. राजा (महीक्षित्) के धार्मिक होने पर प्रजा धार्मिक होती है। ५. चन्द्रमा (शशभृत्) की चाँदनी जगत् को आह्लादित करती है। ६. कौए (परभृत्) की आवाज कानों को अच्छी नहीं लगती है। ७. हवाएँ (मरुत्) सुखद बह रही थीं। ८. रघु ने विश्वजित् यज्ञ में समस्त खजाना दान में दे दिया था। (ख) (दुह्, लिह्) १. गाय से दूध दुहता है। २. दिलीप यज्ञ के लिए पृथ्वी से कर लेता था। ३. ग्वाले ने गाय को दुहा। ४. सत्य और प्रिय वाणी कामनाओं को पूर्ण करती है, अशोभा को दूर करती है और कीर्ति को देती है। ५. भौंरे पद्मों से मधु पी रहे हैं। ६. गाय ने बछड़े को चाटा। ७. किसी मूर्ख ने बन्दर की छाती पर हार डाला। बन्दर ने उसे चाटा, सूँघा और लपेटकर उस पर बैठ गया। (ग) (स्त्रीप्रत्यय) १. गायिका गाती है, अध्यापिका पढ़ाती है, बालिका पढ़ती है, तपस्विनी तप करती है, रानी शृंगार कर रही है, पत्नी खाना पकाती है, कवयित्री कविता करती है, नर्तकी नाचती है, युवती वस्त्रो को सीती है, धोबिन कपड़े धोती है। २. जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर हैं। ३. सास-ससुर, नर-नारी, युवा-युवतियाँ, राजा-रानी, पति-पत्नी, विद्वान्-विदुषी, उपाध्याय-उपाध्यायानी, आचार्य-आचार्याणी प्रातःकाल उद्यान में घूमते हैं। ४. आचार्य की स्त्री आचार्याणी होती है और जो स्वयं पढ़ाती है वह आचार्या होती है। ५. यूनानी लिपि देवनागरी लिपि से भिन्न है। (घ) (भक्ष्यवर्ग) १. आज दिवाली का शुभ पर्व है। सभी घरों में स्त्रियाँ रसोई और चूल्हे को पोतकर पूरी, खस्तापूरी, कचौड़ी, हलुवा, खीर, सेवई आदि पकवान बना रही हैं। वे कुटुम्ब के लोगों को खाना परोसती हैं और पकवान के साथ साग, रायता, अचार, चटनी, पापड़, दही, चीनी और बूरा परोसती हैं। २. साधारणतया प्रतिदिन रोटी, फुलका, भात, दाल, साग, चटनी, अचार ही खाया जाता है। दाल-साग में घी डाला जाता है। ३. कभी-कभी, खिचड़ी, कढ़ी और लपसी भी बनती है। ४. नाश्ते में प्रायः चाय, मट्ठा, लस्सी, घुघरी, पराँठा या दूध चलता है।

संकेत—(क) १. आद्रियते, प्रजाः प्रजाः स्वा इव। ३. समन्वितं वर्तते। ४. महीक्षिति धर्मिणि प्रजा धर्मिष्ठाः। ५. आह्लादयति। ६. परभृतो रवो न श्रुतिसुखदः। ७. मरुतो ववुः सुखाः। ८. विश्वजिति अध्वरे निःशेषविश्राणितकोषजातः। (ख) १. गां पयः। गां दुदोह। ३. अधुक्षत्। ४. सूनृता वाक्, कामं दुग्धे, विप्रकर्षत्यलक्ष्मीं कीर्तिं च सूते। ५. लिहन्ति। ६. वत्समलिक्षत्। ७. हारं वक्षसि केनापि दत्तमज्ञेन मर्कटः। लेढि जिघ्रति संक्षिप्य करोत्युन्नतमासनम्। (ग) १. अध्यापयति, तपश्चरति, रचयति, नृत्यति, सीव्यति, रजकी, प्रक्षालयति। २. गरीयसी। ५. यवनानी, भिद्यते। (घ) १. पर्व, महानसं चुल्लिं च विलिप्य, पचन्ति, कौटुम्बिकेभ्यो जनेभ्यः, परिवेषयन्ति, पर्पटान्, दधि। २. भुज्यते अभ्यवह्रियते वा, निक्षिप्यते। ३. तेमनम्। ४. कल्यवर्ते, चायम्, कुल्माषाः, भक्ष्यते।

शब्दकोष—६७५+२५=७००] **अभ्यास २८** (व्याकरण)

(क) मिष्टान्नम् (मिठाई), कान्दविकः (हलवाई), मोदकः (लड्डू), पूपः (पूआ), अपूपः (मालपूआ), कुण्डली (स्त्री०, जलेबी), अमृती (स्त्री०, इमरती), हैमी (स्त्री०, बर्फी), पिण्डः (पेड़ा), कौष्माण्डम् (पेठे की मिठाई), दुग्धपूपिका (गुलाबजामुन), रसगोलः (रसगुल्ला), शर्करापालः (शक्करपारा), मधुमण्ठः (बालूशाही), संयावः (गुझिया), सन्तानिका (मलाई), कूर्चिका (रबड़ी), कलाकन्दः (कलाकन्द), पर्पटी (स्त्री०, पपड़ी), घृतपूरः (घेवर), मधुशीर्षः (खाजा), मिष्टपाकः (मुरब्बा), वाताशः (बताशा), मोहनभोगः (मोहनभोग), गजकः (गजक)। (२५)

व्याकरण (भगवत्, धीमत् शब्द; रुद्, स्वप् धातु, कर्तृवाच्य, पदक्रम)

१. भगवत् और धीमत् के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० २०, २१)

२. रुद् और स्वप् धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ३४, ३५)

नियम १६५—(कर्तृवाच्य) कर्तृवाच्य में कर्ता मुख्य होता है, कर्ता के अनुसार ही क्रिया का लिंग, वचन, विभक्ति या पुरुष होगा। कर्ता एक० होगा तो क्रिया एक०, द्वि० होगा तो द्वि०, बहु० होगा तो बहु०। बालकाः पुस्तकानि पठितवन्तः, बालिकाः पठितवत्यः। कर्तृवाच्य में इन बातों का ध्यान रखें:—(१) यदि 'च' लगाकर कर्ता अनेक हों तो तदनुसार क्रिया द्वि० या बहु० होगी। रामः कृष्णश्च गच्छतः। नियम १५७ भी देखें। (२) यदि 'वा' लगा हो और प्रत्येक एक० हों तो क्रिया एक०, यदि अन्तिम बहु० हो तो क्रिया बहु०। रामः कृष्णो वा पठतु। (३) कर्ता और कर्म के विशेषणों में कर्ता और कर्म के लिंग, वचनादि लगेंगे। रूपवती स्त्री। (४) कभी 'च' लगने पर क्रिया अन्तिम कर्ता के अनुसार होती है। उद्वेगः कलहः च वर्धते। (५) विंशतिः, शतम्, सहस्रम् आदि निश्चित लिंग और निश्चित वचन हैं, इनमें अन्तर नहीं होगा। शतं जनाः, सहस्रं स्त्रियः, विंशतिः छात्राः।

नियम १६६—(सापेक्ष सर्वनाम) यत् और तत् सापेक्ष सर्वनाम हैं (जो......वह)। जो यत् का लिंग, विभक्ति, वचन होगा, वही तत् का होगा। बुद्धिर्यस्य बलं तस्य।

नियम १६७—यदि प्रथम और द्वितीय वाक्य में लिंग-भेद होगा तो तत् शब्द का लिंग प्रायः द्वितीय वाक्यवत् होगा। शैत्यं हि यत्, सा प्रकृतिर्जलस्य।

नियम १६८—'यत्' शब्द 'कि' अर्थ में भी आता है, तब वह नपुं० एक० ही रहेगा। यह सत्य है कि०—सत्यमेतद् यत् सम्पत् सम्पदमनुबध्नातीति।

नियम १६९—(पदक्रम) संस्कृत के वाक्यों में शब्दों के क्रम का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। कर्ता कर्म क्रिया आगे-पीछे भी रखे जा सकते हैं। स पुस्तकं पठति, पुस्तकं पठति सः आदि। परन्तु साधारणतया नियम यह है कि:—(१) पहले कर्ता, फिर कर्म, बाद में क्रिया। कर्ता और कर्म के विशेषण कर्ता और कर्म से पहले रखे जाएँगे। (२) सम्बोधन सबसे पहले रखा जाता है। (३) कर्मप्रवचनीय अनु प्रति आदि कर्म के बाद आते हैं। (४) सह, ऋते, विना आदि सम्बद्ध शब्द के बाद में आते हैं। (५) च, वा, तु, हि, चेत्, ये प्रारम्भ में नहीं आते। ६. प्रश्नवाचक अपि, किम्, कथम्, कियत् आदि तथा विस्मयादिबोधक अव्यय—हो, हन्त आदि प्रारम्भ में आते हैं।

अभ्यास २८

संस्कृत बनाओ—(क) (भगवत्, धीमत्) १. भगवान् काश्यप सकुशल तो हैं? २. भगवन्! मैं पराधीन हूँ। ३. सिद्धि-सम्पन्न महात्माओं की कुशलता अपने हाथ में होती है। ४. विद्वानों के लिए कोई भी चीज अज्ञात नहीं होती। ५. गुणवान् को कन्या देनी चाहिए, यह माता-पिता का मुख्य विचार होता है। ६. सूर्य (भानुमत्) जिस दिशा में उदय होता है, वही पूर्व दिशा होती है। सूर्य दिशा के अधीन होकर उदय नहीं होता। ७. पहाड़ (सानुमत्) की चोटी पर बर्फ दिखाई दे रही है। **(ख)** (रुद्, स्वप्) १. मैं निराश्रय हूँ, कहो किसके सामने रोऊँ। २. सीता के वियोग में राम की दयनीय स्थिति को देखकर पत्थर भी रो पड़ते हैं और वज्र का भी हृदय फट जाता है। ३. यशोवती आँचल से मुँह ढककर खूब जोर से बहुत देर रोई। ४. हर्ष पिता के पैर पकड़कर चीख-चीखकर बहुत देर रोया। ५. सभी अपने साथियों पर विश्वास करते हैं (विश्वस्)। ६. मुझे अँगूठी का विश्वास नहीं है। ७. हृदय धैर्य रख, धैर्य रख। **(ग)** (कर्तृवाच्य) १. जिसके पास पैसा होता है, उसके मित्र हो जाते हैं, उसके ही बन्धु हो जाते हैं। २. जिसके पास बुद्धि है, उसके पास बल है। ३. जो शीतलता है, वह जल का स्वभाव है। ४. जो दूसरे के गुणों की असहिष्णुता है, वह दुर्जनों का स्वभाव है। ५. जो जिसके योग्य हो, विद्वान् उसे उससे मिला दें। ६. यह कहावत सत्य है कि सम्पत्ति के पीछे सम्पत्ति चलती है और विपत्ति के पीछे विपत्ति। ७. सौ बालक, सौ स्त्रियाँ और एक हजार लोग इस उत्सव में हैं। **(घ)** (मिष्टान्नवर्ग) होली का पवित्र पर्व है। सभी ओर आनन्द और उत्साह का संचार है। घरों में स्त्रियाँ लड्डू, पूए, मालपूए, रसगुल्ले, गुझिया, शक्करपारे आदि मिठाइयाँ बना रही हैं। हलवाई अपनी दूकानों पर लड्डू, पेड़ा, जलेबी, इमरती, बर्फी, पेठे की मिठाई, गुलाबजामुन, रसगुल्ला, चमचम, बालूशाही, रबड़ी, कलाकन्द, घेवर, मोहनभोग, सोहनभोग, गुझिया, बताशे और पपड़ी बेच रहे हैं। लोग अपने लिए और अपने मित्रों के लिए खरीद रहे हैं। वे मित्रों के घर मिठाइयाँ बैना के रूप में भेजते हैं।

संकेत—(क) १. अपि कुशली। २. परवानयं जनः। ३. स्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः। ४. न खलु धीमतां कश्चिदविषयो नाम। ५. गुणवते कन्या प्रतिपादनीयेत्ययं तावत् पित्रोः प्रथमः संकल्पः। ६. उदयति दिशि यस्यां भानुमान् सैव पूर्वा। न हि तरुणिरुदेति दिक्पराधीनवृत्तिः। ७. शिखरे हिमं दृश्यते। **(ख)** १. कस्य पुरतो रोदानि। २. अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्। ३. पटान्तेन मुखं प्रच्छाद्य मुक्तकण्ठम् अतिचिरं प्रारोदीत्। ४. पादौ आश्लिष्य विमुक्तारावः चिरं रुरोद। ५. सर्वः सगन्धेषु विश्वसिति। ६. नास्याङ्गुलीयकस्य विश्वसिमि। ७. समाश्वसिहि। **(ग)** १. यस्यार्थास्तस्य मित्राणि, यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः। ४. परगुणासहिष्णुत्वं यत्, स दुर्जनानां स्वभावः। ५. यद्येन युज्यते लोके बुधस्तत्तेन योजयेत्। ६. सत्योऽयं जनप्रवादो यत् संपत् सम्पदमनुबध्नाति, विपद् विपदम्। ७. शतं बालकाः, शतं स्त्रियः, सहस्रं लोकाः। **(घ)** रचयन्ति, चमनम्, विक्रीणते, क्रीणन्ति, वायनरूपेण प्रहिण्वन्ति।

शब्दकोष—७००+२५=७२५] **अभ्यास २९** (व्याकरण)

(क) चायम् (चाय, टी), जलपानम् (जलपान), चायपानम् (चायपानी), चायपात्रम् (टी-पॉट), कफघ्नी (स्त्री०, कॉफी), कन्दुः (पुं०, स्त्री०, केतली), अभ्यूषः (डबलरोटी), भृष्टापूपः (टोस्ट), पिष्टान्नम् (पेस्ट्री), पिष्टकः (बिस्कुट), गुल्यः (टॉफी, मीठी गोली), सपीतिः (स्त्री०, टी पार्टी), सग्धिः (स्त्री०, सहभोज), सहभोजः (लंच या डिनर पार्टी), लवणान्नम् (नमकीन), अवदंशः (चाट), समोषः (समोसा), दालमुद्‌गः (दालमोठ), सूत्रकः (नमकीन सेव), पक्ववटिका (पकौड़ी), दधिवटकः (दही-बड़ा), पक्वालुः (पुं०, कचालू, आलू की टिकिया), कूलपी (स्त्री०, कुलफी), पुलाकः (पुलाव, ताहरी), व्यञ्जनम् (१. मसाला, २. मसालेदार पदार्थ)। (२५)

व्याकरण (महत्, भवत् शब्द; हन्, स्तु धातु, आत्मनेपद)

१. महत् और भवत् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० २२, २३)

२. हन् और स्तु धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ३८, ३९)

नियम १७०—(नेर्विशः) नि+विश् आत्मनेपदी होती है। निविशते।

नियम १७१—(परिव्यवेभ्यः क्रियः) परि+क्री, वि+क्री, अव+क्री आत्मनेपदी होती हैं। परिक्रीणीते, विक्रीणीते, अवक्रीणीते।

नियम १७२—(विपराभ्यां जेः) वि+जि, परा+जि आत्मनेपदी होती हैं। विजयते, पराजयते।

नियम १७३—(आङो दोऽनास्यविहरणे) आ+दा आत्मनेपदी होती है, मुँह खोलना अर्थ न हो तो। विद्यामादत्ते। परन्तु मुखं व्याददाति (मुँह खोलता है)।

नियम १७४—(क) (शिक्षेर्जिज्ञासायाम्) जिज्ञासा अर्थ में शिक्ष् धातु आत्मनेपदी है। धनुषि शिक्षते। (ख) (हरतेर्गतताच्छील्ये) गति के अनुकरण में हृ धातु आत्मनेपदी है। पैतृकम् अश्वा अनुहरन्ते, मातृकं गावः। (ग) (किरतेर्हर्षजीविकाकुलायकरणेषु०) हर्ष, जीविका और आश्रयस्थान बनाने में कृ धातु आत्मनेपदी है। अप+कृ =अपस्कृ हो जाता है। अपस्किरते वृषो हृष्टः (भूमि खोदता है), कुक्कुटो भक्षार्थी, श्वा आश्रयार्थी। (घ) (आङि नुप्रच्छ्योः) आ+नु, आ+प्रच्छ् आत्मनेपदी होती हैं। आनुते। आपृच्छते (विदाई लेता है)।

नियम १७५—(क) (समवप्रविभ्यः स्थः) सम्+स्था, अव+स्था, प्र+स्था, वि+स्था आत्मनेपदी होती हैं। सन्तिष्ठते, अवतिष्ठते, प्रतिष्ठते, वितिष्ठते। (ख) (आङः प्रतिज्ञायाम्०) आ+स्था प्रतिज्ञा अर्थ में। शब्दं नित्यमातिष्ठते। (ग) (उदोऽनूर्ध्वकर्मणि) उत्+स्था आत्मने०, उठना अर्थ न हो तो। मुक्तावुत्तिष्ठते (यत्न करता है)। परन्तु आसनादुत्तिष्ठति, ग्रामाच्छतमुत्तिष्ठति (गाँव से सौ रु० लगान मिलता है)। (घ) (उपाद् देवपूजा०) उप+स्था आत्मनेपदी होती है, देवपूजा, संगति करना, मित्र बनाना, मार्ग अर्थ में। आदित्यमुपतिष्ठते (पूजा करता है)। गङ्गा यमुनामुपतिष्ठते (मिलती है)। कृष्णमुपतिष्ठते (मित्र बनाता है)। पन्थाः प्रयागमुपतिष्ठते (रास्ता प्रयाग को जाता है)।

नियम १७६—(समो गम्यृच्छिभ्याम्) अकर्मक सम्+गम् आत्मनेपदी है। संगच्छते। (अर्तिश्रुदृशिभ्यश्च०) अकर्मक सम्+श्रु, सम्+दृश् आत्मनेपदी हैं। संशृणुते। संपश्यते।

अभ्यास २९

संस्कृत बनाओ—(क) (महत्, भवत्) १. वह बड़ा वीर है। २. यहाँ बड़ा अँधेरा है। ३. मैंने एक बड़े शेर और बघेरे को देखा। ४. वहाँ सम्पत्ति का बड़ा ढेर है। ५. बड़े सबेरे बहेलियों के हल्ले से जगा दिया गया हूँ। ६. बड़ा आदमी बड़े पर ही अपना पराक्रम दिखाता है। ७. बड़ों की बात बड़ी है। ८. इस विषय में आपका क्या विचार है? ९. आप ही रघुवंशियों की कुल स्थिति को जानते हैं। १०. आपके मित्र के बारे में कुछ पूछता हूँ। ११. आप आगे चलिए, मैं पीछे-पीछे आ रहा हूँ। १२. आपसे ही इस विषय का औचित्य-अनौचित्य पूछता हूँ। १३. आपके बारे में उसका प्रेम कैसा है? १४. आपकी यह प्रार्थना शिरोधार्य है। **(ख)** (हन्, स्तु) १. राजा शत्रु को मारता है। २. शत्रुओं को मारो। ३. राम ने रावण को मारा। ४. हे निषाद, तेरा कभी भला नहीं होगा, तूने क्रौंच के जोड़े में से एक को मारा है। ५. देवदत्त राम की स्तुति करता है। ६. राम ने ईश्वर की स्तुति की। ७. रजिस्ट्रार प्रस्तावों को प्रस्तुत करता है (प्र+स्तु)। ८. मैं यह प्रस्ताव रखता हूँ कि छात्र-संघ का प्रधान राम हो। **(ग)** (आत्मनेपद) १. हलवाई मिठाई और नमकीन बेचता है (विक्री)। २. वह शत्रुओं को पराजित करता है (पराजि)। ३. आपकी विजय हो (विजि)। ४. यदि कील की-नोक पैर में चुभ जाती है (निविश्) तो कितना दर्द हो जाता है। ५. वह विद्या ग्रहण करता है (आदा)। ६. वह मुँह खोलता है (व्यादा)। ७. वह धनुष की शिक्षा पाता है (शिक्ष्)। ८. घोड़े पिता की चाल का अनुकरण करते हैं और गौएँ माँ की (अनुहृ)। ९. बैल प्रसन्न होकर जमीन खोदता है (अपकृ)। १०. तुम अपने मित्र से विदाई लो (आप्रच्छ्)। ११. कृष्ण ने दिल्ली के लिए प्रस्थान किया (प्रस्था)। **(घ)** (पानादिवर्ग) १. आजकल चाय का बहुत रिवाज है। अंग्रेजी ढंग से चाय पीनेवाले केतली में पानी उबालकर, टी पॉट में चाय डालकर, उस पर उबला हुआ पानी डाल देते हैं और पाँच मिनट बाद उसे छान लेते हैं। कुछ लोग कॉफी भी पीते हैं। उसके साथ ये डबल रोटी, मक्खन, टोस्ट, पेस्ट्री और बिस्कुट भी लेते हैं। सहभोज और टी पार्टी में मिठाइयों के साथ समोसा, पकौड़ी, सेव, दालमोठ भी चलते हैं। २. आजकल विद्यार्थियों को चाट, दही-बड़ा, पकौड़ी, कुलफी और मसालेवाली चीजें अधिक अच्छी लगती हैं।

संकेत—(क) १. महान्। २. महानन्धकारः। ३. महान्तम्, व्याघ्रम्। ४. महान् द्रव्यराशिः। ५. महति प्रत्यूषे शाकुनिककोलाहलेन प्रतिबोधितोऽस्मि। ६. महान् महत्स्वेव करोति विक्रमम्। ७. अपूर्वं महतां वृत्तम्। ८. अथवा कथं भवान् मन्यते। ९. रघूणाम्, जानन्ति। १०. मित्रगतं किमपि। ११. गच्छतु पुरो भवान्, अहमनुपदमागत एव। १२. भवन्तमेव गुरुलाघवं पृच्छामि। १३. भवन्तमन्तरेण कीदृशस्तस्या दृष्टिरागः। **(ख)** २. जहि। ३. अवधीत्। ४. मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः। एकमवधीः। ५. रामं स्तौति। ६. अस्तावीत्। ७. प्रस्तोता प्रस्तावान् प्रस्तौति। ८. एतत् प्रस्तवीमि, भवेत्। **(ग)** १. विक्रीणीते। २. पराजयते। ३. विजयतां भवान्। ४. निविशते यदि शूकशिखा पदे सृजति तावदियं कियतीं व्यथाम्। १०. आपृच्छस्व सहचरम्। ११. हरिर्हरिप्रस्थमथ प्रतस्थे। **(घ)** १. प्रचलनम्, आङ्ग्लपद्धत्या, क्वथयित्वा, क्वथितम्, पातयन्ति, स्रावयन्ति, भुज्यते। २. मधुरमापतन्ति तेषां मनांसि।

शब्दकोष—७२५+२५=७५०] **अभ्यास ३०** (व्याकरण)

(क) करकः (लोटा), स्थालिका (थाली), कंसः (गिलास), काचकंसः (काँच का गिलास), काचघटी (स्त्री०, जार), कटोरम् (कटोरा), कटोरा (कटोरी), घटः (घड़ा), उदञ्चनम् (बाल्टी), वारिधिः (पुं०, कण्डाल), द्रोणी (स्त्री०, टब), स्थाली (स्त्री०, पतीली), स्वदेनी (स्त्री०, कड़ाही), ऋजीषम् (तवा), पिष्टपचनम् (तई, जलेबी आदि पकाने की), हसन्ती (स्त्री०, अँगीठी), उद्ध्मानम् (स्टोव), धिषणा (तसला), चमसः (चम्मच), दर्वी (स्त्री०, चमचा, कलछुल), चषकः (प्याला, कप), शरावः (प्लेट, तश्तरी), उखा (सास-पेन), हस्तधावनी (स्त्री०, चिलमची), सन्दंशः (चिमटा)। (२५)

व्याकरण (पठत्, यावत्, शब्द; इ, विद् धातु, आत्मने० परस्मैपद)

१. पठत् और यावत् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० २४, २५)

२. इ और विद् धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ३३, ४३)

नियम १७७—(स्पर्धायामाङः) आ+ह्वे आत्मने० है, शत्रु को आह्वान करना अर्थ में। शत्रुमाह्वयते।

नियम १७८—(उपपराभ्याम्) उप+क्रम्, परा+क्रम् आत्मने० हैं। उपक्रमते, पराक्रमते। (प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम्) प्र+क्रम्, उप+क्रम् प्रारम्भ अर्थ में आ०। प्रक्रमते।

नियम १७९—(अपह्नवे ज्ञः) मुकरना अर्थ में ज्ञा आत्मने० है। शतम् अपजानीते (सौ रु० को मुकरता है)। (सम्प्रतिभ्याम्०) सम्+ज्ञा, प्रति+ज्ञा स्मरण अर्थ न हो तो आत्मनेपदी हैं। संजानीते, प्रतिजानीते।

नियम १८०—(उदश्चरः०) उत्+चर् आत्मने० है, सकर्मक हो तो। धर्ममुच्चरते। (समस्तृतीया०) सम्+चर् तृतीया के साथ हो तो आत्मनेपदी। रथेन संचरते।

नियम १८१—(ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः) जिज्ञास, शुश्रूष, सुस्मूर्ष और दिदृक्ष ये आत्मनेपदी होती हैं। जिज्ञासते, शुश्रूषते, सुस्मूर्षते, दिदृक्षते।

नियम १८२—(प्रोपाभ्यां युजेः०) प्र+युज्, उप+युज् आत्मनेपदी हैं। प्रयुङ्क्ते, उपयुङ्क्ते।

नियम १८३—(भुजोऽनवने) भुज् धातु खाना तथा उपभोग अर्थ में आत्मनेपदी है और रक्षा अर्थ में परस्मैपदी है। ओदनं भुङ्क्ते। परन्तु महीं भुनक्ति।

(परस्मैपद)

नियम १८४—(अनुपराभ्यां कृञः) अनु+कृ, परा+कृ परस्मैपदी हैं। अनुकरोति, पराकरोति।

नियम १८५—(अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः) अभिक्षिप् परस्मैपदी है। अभिक्षिपति।

नियम १८६—(प्राद्वहः) प्र+वह् परस्मैपदी होती है। प्रवहति।

नियम १८७—(व्याङ्परिभ्यो रमः) वि+रम् परस्मैपदी है। विरमति।

नियम १८८—(बुधयुधनशजनेङ्) बुध्, युध्, नश्, जन्, अधि+इ, प्रु, द्रु, स्रु, धातुएँ णिच् प्रत्यय करने पर परस्मैपदी होती हैं। बोधयति पद्मम्। योधयति जनान्। नाशयति दुःखम्। जनयति सुखम्। अध्यापयति वेदम्। द्रावयति। स्रावयति।

नियम १८९—(निगरणचलनार्थेभ्यश्च) खिलाना और चलाना अर्थ की धातुएँ परस्मैपदी होती हैं। आशयति, भोजयति। चलयति, कम्पयति।

अभ्यास ३०

संस्कृत बनाओ—(क) (पठत्, यावत्) १. पढ़ते हुए को पाप नहीं लगता। २. मैं जब पढ़ रहा था तब वह आया। ३. गाँव को जाता हुआ तिनके को छूता है। ४. कर्मशील मनुष्य उत्तम फल पाता है। ५. सूर्य की शोभा को देखो, जो चलता हुआ कभी नहीं रुकता। ६. जितने छात्र परीक्षा में बैठे, सभी उत्तीर्ण हो गए। ७. वे युद्ध में जितने थे, उनको वह राजा उतने ही रूपों में दिखाई पड़ा। ८. जितना मिला उतना सब खा लिया। (ख) (इ, विद्) १. मूर्ख क्षय को पाता है। २. दरिद्रता से मनुष्य लज्जा को प्राप्त होता है। ३. चन्द्रमा को चाँदनी फिर मिल जाती है। ४. वे भरद्वाज मुनि के आश्रम पर पहुँचे। ५. पहले फूल आता है, फिर फल आता है। ६. सूर्य लाल ही उदय होता है और लाल ही अस्त होता है। ७. मुझे शिव का नौकर समझो (अव+इ)। ८. नीच, वहाँ से हट (अप+इ)। ९. तेरे हृदय से प्रत्याख्यान का दुःख दूर हो (अप+इ)। १०. उद्योगी पुरुष को लक्ष्मी प्राप्त होती है (उप+इ) ११. जो स्पर्धा करता हुआ सामने आवे (अभि+इ), उसे नष्ट कर दो। १२. वह सत्य नहीं, जो छल से युक्त हो। १३. वह गुरु के पीछे जाता है (अनु+इ)। १४. वह मुझ पर विश्वास करता है (प्रति+इ)। १५. जो जिसके गुण को नहीं जानता (विद्), वह उसकी सदा निन्दा करता है। १६. जो आत्मा को हन्ता समझता है, वह उसे नहीं जानता। १७. मुझे ऋषियों के तुल्य समझो। १८. इस जीवन में आत्मा को जान लिया तो भला है, नहीं तो बड़ा नाश होगा। (ग) (परस्मैपद) १. राजा पृथ्वी का पालन करता है। २. वह भात खाता है। ३. पाप से रुको। ४. गंगा और यमुना बहती हैं (प्रवह्)। ५. विद्या दुःख को नष्ट करती है और सुख उत्पन्न करती है। (घ) (पात्रवर्ग) खाना-पीना जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। भूख और प्यास के निवारणार्थ बर्तनों की आवश्यकता होती है। पानी पीने और रखने के लिए घड़ा, कलश, गागर, गगरी, सुराही, जार, कमण्डलु, लोटा और काँच का गिलास, इन पात्रों की आवश्यकता होती है। पानी बाल्टी, कण्डाल और टब में रखा जाता है। खाना बनाने और खाने के लिए थाली, कटोरा, कटोरी, पतीली, कड़ाही, कड़ाह, तवा, तई, तसला, चम्मच, चमचा और चिमटा इनकी आवश्यकता होती है। खाना अँगीठी और स्टोव दोनों पर बनाया जा सकता है। सास-पैन शाकादि बनाने के लिए, प्लेट खाना रखने के लिए और कप चाय पीने के लिए होते हैं।

संकेत—(क) १. पठतो नास्ति पातकम्। २. मयि पठति सति। ३. तृणं स्पृशति। ४. चरन् वै मधु विन्दति। ५. पश्य सूर्यस्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्। ६. यावन्तः अदुः, तावन्तः। ७. ते तु यावन्त एवाजौ, तावांश्च ददृशे स तैः। ८. यावल्लब्धं तावद् भुक्तम्। (ख) १. निर्बुद्धिः क्षयमेति। २. दारिद्र्याद् ह्रियमेति। ३. शशिनं पुनरेति शर्वरी। ४. ईयुर्भरद्वाजमुनेर्निकेतम्। ५. उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलम्। ६. उदेति सविता ताम्रस्ताम्र एवास्तमेति च। ७. अवेहि मां किंकरमष्टमूर्तेः। ८. अपेहि पापे। ९. हृदयात् प्रत्यादेशव्यलीकमपैतु ते। १०. उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः। ११. यः स्पर्धमानोऽभ्येति, तं जहि। १२. सत्यं न तद्यच्छलमभ्युपैति। १३. स गुरुमन्वेति। १४. स मयि प्रत्येति। १५. न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षम्। १६. य एनं वेत्ति हन्तारम्। १७. विद्धि मामृषिभिस्तुल्यम्। १८. इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति, न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः। (ग) १. भुनक्ति। २. भुङ्क्ते। ३. विरम। ४. प्रवहतः। ५. नाशयति, जनयति। (घ) पानाशने, अशनायोदन्ययोः (अशनाया+उदन्या), पात्राणाम्, कलशः, गर्गरः, गर्गरी, भृंगारः, कमण्डलुः, पचनार्थम्, कटाहः।

शब्दकोष—७५०+२५=७७५] **अभ्यास ३१** (व्याकरण)

(क) अन्त्यजः (शूद्र), चर्मकारः (चमार), संमार्जकः (भंगी), शाकुनिकः (बहेलिया), अजाजीवः (गडरिया), मायाकारः (जादूगर), शौण्डिकः (सुरा-विक्रेता), कर्मकरः (नौकर), भारवाहः (कुली), मालाकारः (माली), कुलालः (कुम्हार), लेपकः (पुताईवाला), प्रैष्यः (चपरासी), वैतनिकः (वेतन पर नियुक्त नौकर), तस्करः (चोर), पाटच्चरः (डाकू), ग्रन्थिभेदकः (गिरहकट), मृगयुः (पुं०, शिकारी), मृगया (शिकार), वागुरा (जाल), मार्जनी (स्त्री०, झाड़ू), चर्मप्रभेदिका (जूता सीनेकी सूई), उपानह्,-त् (जूता, बूट), पादुका (चप्पल), अनुपदीना (गम बूट)। (२५)

व्याकरण (बुध्, आस्, कर्म-भाव-वाच्य)

१. बुध् शब्द के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० २६)

२. आस् धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ४४)

नियम १९०—संस्कृत में तीन वाच्य होते हैं—१. कर्तृवाच्य, २. कर्मवाच्य, ३. भाववाच्य। सकर्मक धातुओं के रूप कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य में चलते हैं। अकर्मक धातुओं के रूप कर्तृवाच्य और भाववाच्य में चलते हैं। अकर्मक की साधारण पहचान है कि जहाँ किम् (क्या, किसको) का प्रश्न न उठे। १. कर्तृवाच्य में कर्ता मुख्य होता है, क्रिया कर्ता के अनुसार चलती है। कर्ता में प्रथमा, कर्म में द्वितीया, क्रिया कर्ता के अनुसार होगी। २. कर्मवाच्य में कर्म मुख्य होता है। कर्म के अनुसार ही क्रिया के पुरुष, वचन, लिंग होंगे। कर्मवाच्य में कर्ता में तृ०, कर्म में प्र०, क्रिया कर्म के अनुसार। ३. भाववाच्य में कर्ता में तृ०, कर्म नहीं, क्रिया में प्रथम पु० एक०।

नियम १९१—(सार्वधातुके यक्) कर्मवाच्य और भाववाच्य में सार्वधातुक लकारों (अर्थात् लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्) में धातु के अन्त में य लगेगा। धातु का रूप आत्मनेपद में ही चलेगा, धातु चाहे किसी पद की हो। अन्य लकारों में य नहीं लगेगा। धातु के रूप में य लगाकर युध् (धातु० सं० ६६) के तुल्य चलेंगे। लृट् में इष्यते या स्यते लगेगा। जैसे—गम् > गम्यते, गम्यताम्, अगम्यत, गम्येत, गमिष्यते।

नियम १९२—(क) लिट् में द्वित्व करके आत्मनेपदी के तुल्य रूप होंगे। जैसे—गम् > जग्मे, भू > बभूवे, नी > निन्ये, लिख् > लिलिखे। सेव् लिट् के तुल्य रूप चलाओ। जिन धातुओं के अन्त में 'आम्' लगता है, उनमें आम् लगाकर कृ, भू, अस् के रूप आत्मनेपद में चलेंगे। जैसे—कथयांचक्रे, कथयांबभूवे, कथयामासे। (ख) लुट्, लृट्, आशीर्लिङ् में भी सेव् (धातु० २०) के तुल्य रूप चलेंगे। सेट् धातु में इ लगेगा, अनिट् में नहीं। जैसे—भविता, भविष्यते, भविषीष्ट, अभविष्यत।

नियम १९३—लुङ् प्र० पु० एक० में धातु के अन्त में इ लगेगा। बाद के त का लोप होगा। 'इ' से पूर्व धातु के अन्तिम इ, उ, ऋ को वृद्धि होगी, उपधा में अ होगा तो उसे आ और उपधा के इ, उ, ऋ को गुण होगा। जैसे—अकारि, अभावि, अपाचि, अयोजि। लुङ् में धातु के बाद प्रत्यय इस प्रकार होंगे। सेट् में इ लगेगा, अनिट् में इ नहीं लगेगा। प्र० पु०—इ, इषाताम्, इषत। म० पु०—इष्ठाः, इषाथाम्, इध्वम्। उ० पु०—इषि, इष्वहि, इष्महि।

अभ्यास ३१

संस्कृत बनाओ—(क) (बुध् शब्द) १. विद्वानों की संगति से मूर्ख भी प्रवीण हो जाते हैं। २. विद्वानों के साथ श्रद्धापूर्वक व्यवहार करें। (वृत्)। ३. विद्वानों के साथ ही उठे, बैठे, वाद और विवाद करे। **(ख) (आस् धातु)** १. आपको जहाँ अच्छा लगे, वहाँ बैठिए। २. आप इस आसन पर बैठिए। ३. वहाँ देवता रहते हैं। ४. उसने स्वागत-वचन से अतिथि का अभिनन्दन करके अपने आसन पर बैठने के लिए उसे निमन्त्रित किया। ५. बैठे हुए का ऐश्वर्य भी बैठा रहता है और खड़े हुए का ऐश्वर्य खड़ा हो जाता है। ६. राजा सिंहासन पर बैठा (अध्यास्त)। ७. उस ईश्वर की शैव शिव नाम से उपासना करते हैं (उपासते)। ८. दोनों सखियों के द्वारा शकुन्तला की सेवा की जा रही है (अन्वास्यते)। **(ग) (कर्मवाच्य)** १. कल्याण के विषय में किसकी तृप्ति होती है ? २. क्या तुम्हारी आज्ञा टाली जा सकती है ? ३. मेरी ओर से सारथि से कहना। ४. यह शकुन्तला ``तिगृह को जा रही है, सब स्वीकृति दें। ५. जाने के समय में देर हो रही है। ६. स्त्रियों में बिना शिक्षा के भी पटुत्व देखा जाता है। ७. तुम्हारी प्रार्थना के योग्य ही कोई नहीं दीखता है। ८. तेजस्वियों की आयु नहीं देखी जाती है। ९. धर्मवृद्धों में आयु नहीं देखी जाती। १०. रत्न किसीको नहीं ढूँढ़ता, वह स्वयं ढूँढ़ा जाता है। ११. गेरुए वस्त्र पहनने की स्वीकृति से मुझे अनुगृहीत कीजिए। १२. पुराने कर्मफलों को कौन उलट सकता है ? १३. किसको ताना दिया जा सकता है ? १४. दुर्भाग्य ने ऐसा सर्वनाश किया कि विजय की आशा तो दूर रही, जीवन की आशा भी सन्दिग्ध दिखाई देती थी। १५. मेरे द्वारा तुम्हारा मुखकमल देखा गया। **(घ) (शूद्रवर्ग)** शूद्र समाज के योग्य सेवक होते हुए भी अपनी कुछ न्यूनताओं के कारण समाज की दृष्टि में नीचे गिने जाते हैं। उनमें बहुतेरे बहुत अच्छा काम करते हैं। जैसे—चमार जूता सीने की सूई से बूटों, चप्पलों आदि को सीता है और उनकी मरम्मत करता है, भंगी झाड़ू से मकानों और आँगनों को साफ करता है, गडरिया बकरियों को पालता है, कुली भार ढोते हैं, माली फूलों से मालाएँ बनाता है, कुम्हार मिट्टी के बर्तन बनाता है, पुताईवाला कलई से मकानों को पोतता है, चपरासी संवादों को यथास्थान पहुँचाता है। कुछ बुरा काम करते हैं, अतः वे निन्दनीय हैं। जैसे— बहेलिया जाल डालकर पक्षियों को मारता है, सुराविक्रेता शराब पीता है, चोर चोरी करता है। डाकू दीवार में सेंध मारता है, गिरहकट जेब काटता है, शिकारी शिकार खेलता हुआ निरपराध जीवों की हत्या करता है।

संकेत—(क) १. प्रावीण्यमुपयान्ति। २. भुत्सु। **(ख)** १. रोचते। २. एतदासनमास्यताम्। ३. आसते। ४. अभ्यागतमभिनन्द्य स्वेनासनेन आध्वमिति निमन्त्रयांचकार। ५. आस्ते भग आसीनस्य, ऊर्ध्वं तिष्ठति तिष्ठतः। **(ग)** १. श्रेयसि केन तृप्यते। २. विकल्प्यते। ३. मद्वचनादुच्यतां सारथिः। ४. सर्वैरनुज्ञायताम्। ५. परिहीयते गमनवेला। ६. स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वं संदृश्यते। ७. न दृश्यते प्रार्थयितव्य एव ते। ८. तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते। ९. धर्मवृद्धेषु। १०. न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्। ११. काषायग्रहणानुज्ञया अनुगृह्यतामयं जनः। १२. पुरातन्यः स्थितयः केन शक्यन्तेऽन्यथाकर्तुम्। १३. कतम उपालभ्यते। १४. दैवहतकेन अकारि, दूरे तावदास्ताम्। १५. अदर्शि। **(घ)** गण्यन्ते, उपानहः सीव्यति, संदधाति ताः, अजिराणि, मार्जयन्ति, भारं वहन्ति, स्रजः, पात्राणि, सुधाभिः, लिम्पति संस्करोति वा, प्रापयति, दुष्कर्माणि, सुराम्, भित्तौ सन्धिं करोति, ग्रन्थिं भिनत्ति, निरागसः हन्ति।

शब्दकोष—७७५+२५=८००] **अभ्यास ३२** (व्याकरण)

(क) कारुः (पुं०, शिल्पी), नापितः (नाई), रजकः (धोबी), निर्णेजकः (ड्राईक्लीनर), रञ्जकः (रँगरेज), श्रेणिः (पुं०, स्त्री०, शिल्पि-संघ); कुलिकः (शिल्पि-संघ का अध्यक्ष), तन्तुवायः (जुलाहा), सौचिकः (दर्जी), चित्रकारः (चित्रकार, पेन्टर), लोहकारः (लुहार), स्वर्णकारः (सुनार), शौल्विकः (ताँबे के बर्तन बनानेवाला), त्वष्टृ (पुं०, बढ़ई), स्थपतिः (पुं०, मिस्त्री, राज), अश्मचूर्णम् (सीमेंट), इष्टका (ईंट), स्यूतिः (स्त्री०, सिलाई), यन्त्रम् (मशीन), उपहासचित्रम् (कार्टून), वर्तिका (ब्रश), कर्तरी (स्त्री०, कैंची), तक्षणी (स्त्री०, बसूला), अयोघनः (हथौड़ी), करपत्रम् (आरी)। (२५)

व्याकरण (आत्मन्, राजन्, शी, अधि+ई, कर्म-भाव-वाच्य)

१. आत्मन् और राजन् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० २७, २८)

२. शी और अधि+इ धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ४५, ४६)

नियम १९४—धातु से कर्मवाच्य या भाववाच्य बनाने के लिए ये नियम ठीक स्मरण कर लें। सार्वधातुक लकारों (लट्, लोट, लङ्, विधिलिङ्) में ही ये नियम लगते हैं। (क) धातु के अन्त में 'य' लगेगा। आत्मनेपद ही होगा। धातु को गुण नहीं होगा। धातु मूलरूप में रहेगी। गच्छ्, पिब्, जिघ्र् आदि नहीं होंगे। साधारणतया धातु में अन्तर नहीं होता। जैसे—भूयते, पठ्यते, लिख्यते, गम्यते। (ख) (घुमास्थागापा०) आकारान्त धातुओं में इनके ही आ का ई होगा—दा, धा, मा, स्था, गा, पा (पीना), हा (छोड़ना), सा। अन्यत्र आ ही रहेगा। जैसे— दीयते, धीयते, मीयते, स्थीयते, गीयते, पीयते, हीयते, सीयते। (ग) (अकृत्सार्वधातुकयोः०) धातुओं के अन्त में इ को ई, उ को ऊ हो जाता है। जि > जीयते, चि > चीयते, हु > हूयते। किन्तु श्वि को सम्प्रसारण होने से शूयते होगा और शी का शय्यते रूप होगा। (घ) (रिङ् शयग्लिङ्क्षु) ह्रस्व ऋ अन्तवाली धातुओं में ऋ के स्थान पर 'रि' हो जायगा। जैसे—कृ, हृ, धृ, भृ, मृ के क्रमशः क्रियते, ह्रियते, ध्रियते, भ्रियते, म्रियते। किन्तु ऋ धातु को और संयुक्ताक्षर आदिवाली ऋकारान्त धातु को गुण होता है। (गुणोऽर्ति०)। जैसे—ऋ > अर्यते। स्मृ > स्मर्यते। (ङ) (ॠत इद्धातोः, उदोष्ठ्यपूर्वस्य) दीर्घ ॠ अन्तवाली धातुओं के ॠ को ईर् होगा। यदि पवर्ग पहले होगा तो ऊर् होगा। जैसे—कॄ > कीर्यते, गॄ > गीर्यते, तॄ > तीर्यते, शॄ > शीर्यते, पॄ > पूर्यते। (च) (वचिस्वपि०, ग्रहिज्या०) वच्, स्वप्, ग्रह्, यज्, वप्, वह्, वद्, वस्, प्रच्छ् आदि धातुओं को सम्प्रसारण होता है, अर्थात् य् को इ, व् को उ, र् को ऋ। (ब्रू) वच् > उच्यते, स्वप् > सुप्यते, ग्रह् > गृह्यते, यज् > इज्यते, वप् > उप्यते, वह् > उह्यते, वद् > उद्यते, वस् > उष्यते, प्रच्छ् > पृच्छ्यते। (छ) (अनिदितां०) धातु के बीच के न् का प्रायः लोप हो जाता है। मन्थ् > मथ्यते, बन्ध् > बध्यते, भ्रंश् > भ्रश्यते, स्रंस् > स्रस्यते। इनमें न् रहेगा—वन्द्यते, चिन्त्यते, निन्द्यते (ज) इन धातुओं के स्थान पर ये आदेश हो जाते हैं—ब्रू > वच्, अस् > भू, अज् > वी। उच्यते, भूयते, वीयते। (झ) जन्, सन्, खन् और तन् के दो रूप होते हैं, न् को आ विकल्प से होगा। जैसे—जायते, जन्यते। (ञ) चुरादि० और णिच् प्रत्ययवाली धातुओं के इ (अय्) का लोप हो जायगा। चोर्यते, कथ्यते, भक्ष्यते।

अभ्यास ३२

संस्कृत बनाओ—(क) (आत्मन्, राजन्) १. अपने-आपको प्रकट करने का यह मौका है। २. तुम अपनी तरह ही सबको समझते हो। ३. यदि अपने-आपको सँभाल सका तो, यहाँ से जाऊँगा। ४. यहाँ बाह्य और अन्तःकरण के साथ मेरी अन्तरात्मा प्रसन्न हो रही है। ५. यह तो तुम्हारी अपनी इच्छा है। ६. यह तो अपने स्वभाव पर आ गया है। ७. आपने यहाँ आने का कष्ट क्यों उठाया? ८. अति हर्ष उसके मन में नहीं समाया। ९. अपने में झूठे महत्त्व का आरोप करके राजा लोग देवताओं को प्रणाम नहीं करते हैं। १०. शिक्षितों को भी अपने ऊपर पूरा भरोसा नहीं होता। ११. जैसा राजा, वैसी प्रजा। १२. मैं राजा को कुछ नहीं समझता। १३. राजा से रहित देश में शान्ति नहीं होती। १४. राजा को जनहित की भी चिन्ता करनी चाहिए। १५. राजा को चाहिए कि आपत्तिग्रस्तों का दुःख दूर करे। (ख) (शीं, अधि+इ) १. वह हाथ का तकिया लगाकर सोई। २. इधर मोर सो रहे हैं। ३. क्यों निःशंक सो रहे हो? ४. उसने वेदों को पढ़ा। (ग) (कर्मवाच्य) १. चित्र में जो कुछ ठीक नहीं है, उसे ठीक कर रहा हूँ। २. पुरुष तभी तक है, जब तक वह मान से हीन नहीं होता। ३. सोने की स्वच्छता और कालिमा आग में ही दीखती है। ४. विकार का कारण विद्यमान होने पर भी जिनके चित्त विकृत नहीं होते, वे धीर हैं। ५. पर उपदेश कुशल बहुतेरे। ६. क्यों गोलमाल बात करते हो? ७. गुणों से ही सर्वत्र स्थान बनाया जाता है। ८. इससे हमारा कुछ नहीं बिगड़ता। ९. यह बात समाप्त करो। १०. आगे की बात समझ ली। ११. विपत्ति में भी उसका धैर्य नष्ट नहीं होता। १२. वह देवदत्त नाम से पुकारा जाता है। १३. बेकार कहाँ जा रहे हो? १४. और कोई रास्ता नहीं दीखता है। (घ) (शिल्पिवर्ग) शिल्पि-संघ शिल्पियों का संगठन करता है। उनको उचित कार्यों में नियुक्त करता है। धोबी वस्त्रों को धोता है। ड्राईक्लीनर वस्त्रों को मशीन से धोता है और उन पर लोहा करता है। जुलाहा सूत से वस्त्रों को बुनता है। दर्जी टेलरचाक से कपड़ों पर निशान लगाता है और कैंची से काटकर उन्हें सिलाई की मशीन से सीता है। चित्रकार ब्रश से चित्र को रँगता है और कार्टून बनाता है। बढ़ई आरी से लकड़ी चीरता है, बसूले से उसे छीलता है और हथौड़े से कीलों को ठोकता है। राज सीमेंट से ईंटों को जोड़कर मकान बनाता है।

संकेत—(क) १. अवसरोऽयमात्मानं प्रकाशयितुम्। २. आत्मनो हृदयानुमानेन पश्यसि। ३. यद्यात्मनः प्रभविष्यामि। ४. सबाह्यान्तःकरणो ममान्तरात्मा प्रसीदति। ५. एष तवात्मगतो मनोरथः। ६. गत एवात्मनः प्रकृतिम्। ७. किमिति भवताऽऽत्मा अत्रागमनक्लेशस्य पदमुपनीतः। ८. गुरुः प्रहर्षः प्रबभूव नात्मनि। ९. आत्मन्यारोपितालीकाभिमानाः। १०. आत्मन्यप्रत्ययं चेतः। ११. यथा राजा। १२. राजेति का गणना मम। १३. अराजके ज़नपदे। १४. जनहितमपि चिन्तनीयम्। १५. आपन्नस्य जनस्यार्तिहरेण राज्ञा भवितव्यम्। (ख) १. अशेत सा बाहुलतोपधायिनी। ४. अध्यैष्ट। (ग) १. क्रियते तत्तदन्यथा। २. यावन्मानात्र हीयते। ३. हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा। ४. विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः। ५. सुखमुपदिश्यते परस्य। ६. किमिति असंबद्धम् अनुसन्धीयते। ७. पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते। ८. न नः किंचित् भिद्यते। ९. संह्रियतामियं कथा। १०. परस्तादवगम्यते। ११. न हीयते। १२. आहूयते। १३. क्वानिर्दिष्टकारणं गम्यते। १४. नान्यच्छरणमालोक्यते। (घ) धावति, यन्त्रण नेनेक्ति, अयस्करोति, सूत्रैः, वयति, सौचिकवर्तिकया, चिह्नयति, कर्तित्वा, स्यूतियन्त्रेण, रञ्जयति, छिनत्ति, श्यति, कीलान् कीलति, संयोज्य।

शब्दकोष—८००+२५=८२५] **अभ्यास ३३** (व्याकरण)

(क) क्षुरम् (उस्तरा) क्षुरकम् (ब्लेड), उपक्षुरम् (सेफ्टी रेजर), कर्तनी (स्त्री०, बाल काटने की मशीन), शस्त्रमार्जः (धार धरनेवाला), तैलकारः (तेली), रसयन्त्रम् (कोल्हू), मिलः (मिल), अयस् (लोहा आयरन), वृश्चनः (छेनी), आविधः (बर्मा), यान्त्रिकः (मिस्त्री, मेकेनिक), सूत्रम् (धागा), सूचिका (सूई), पादुरञ्जकः (पालिश), वेतनम् (वेतन), भ्राष्ट्रम् (भाड़), भृष्टकारः (भड़भूजा), भस्त्रा (धौंकनी), नीली (स्त्री०, नील), शिल्पशाला (फैक्टरी)। (२१)। (ख) कृत् (काटना), अयस्+कृ (लोहा करना), मण्डा+कृ (कलफ करना), नीली+कृ (नील लगाना)। (४)।

व्याकरण (श्वन्, युवन्, हु, भी, णिच् प्रत्यय)

१. श्वन् और युवन् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० २९, ३०)

२. हु और भी धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ४८, ४९)

नियम १९५—(हेतुमति च) प्रेरणार्थक धातु उसे कहते हैं जहाँ कर्ता स्वयं काम न करके दूसरे से काम कराता है। जैसे—पढ़ना > पढ़वाना, लिखना > लिखवाना, जाना > भेजना, करना > कराना। प्रेरणार्थक धातु में शुद्ध धातु के अन्त में णिच् (अर्थात् अय) लग जाता है। धातु के रूप दोनों पदों में चुर् धातु के तुल्य (देखो धातु० ९७) चलेंगे। धातु के अन्तिम ह्रस्व और दीर्घ इ, उ, ऋ को वृद्धि (अर्थात् क्रमशः ऐ, औ, आर्) हो जाता है, बाद में अयादि सन्धि भी। उपधा (अर्थात् अन्तिम अक्षर से पूर्व अक्षर) में अ को आ तथा इ, उ, ऋ को क्रमशः ए, ओ, अर् गुण हो जाता है। जैसे—कृ > कारयति, नी > नाययति, भू > भावयति, पठ् > पाठयति, लिख् > लेखयति। गम् का गमयति।

नियम १९६—प्रेरणार्थक धातुओं के साथ मूल धातु के कर्ता में तृतीया होती है और कर्म में पूर्ववत् द्वितीया ही रहती है। क्रिया कर्ता के अनुसार होती है। जैसे—शिष्यः लेखं लिखति > गुरुः शिष्येण लेखं लेखयति। नृपः भृत्येन कार्यं कारयति।

नियम १९७—(गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ०) इन अर्थोंवाली धातुओं के प्रेरणार्थक रूप के साथ मूल धातु के कर्ता में तृतीया न होकर द्वितीया होती है—जाना, जानना, समझना, खाना (अद्, खाद्, भक्ष् को छोड़कर), पढ़ना, अकर्मक धातुएँ, बोलना, देखना (दृश्), सुनना (श्रु), प्रवेश (प्रविश्), चढ़ना (आरुह्), तैरना (उत्तॄ), ग्रहण (ग्रह्), प्राप्ति (प्राप्), पीना, ले जाना (हृ), (नी और वह् को छोड़कर)। जैसे बालः गृहं गच्छति > बालं गृहं गमयति। शिष्यः वेदम् अवगच्छति > शिष्यं वेदम् अवगमयति। पुत्रः अन्नं भुङ्क्ते > माता पुत्रमन्नं भोजयति। शिष्यः शास्त्रं पठति > गुरुः शिष्यं शास्त्रं पठयति। पृथ्वी सलिले आस्त > पृथ्वीं सलिले आसयत्। (क) (नीवह्योर्नः) नाययति वाहयति वा भारं भृत्येन। (ख) (नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः) वाहयति रथं वाहान् सूतः। (ग) (आदिखाद्योर्न) आदयति, खादयति वाऽन्नं वटुना। (घ) (भक्षेरहिंसार्थस्य न) भक्षयत्यन्नं वटुना। (ङ) (जल्पतिप्रभृतीनाम्०) जल्पयति भाषयति वा धर्मं पुत्रं देवदत्तः। (च) (दृशेश्च) दर्शयति हरिं भक्तान्। (छ) (शब्दायतेर्न) शब्दाययति देवदत्तेन।

अभ्यास ३३

संस्कृत बनाओ—(क) (श्वन्, युवन्) १. कुत्ते को यदि राजा बना दिया जाता है तो क्या वह जूता नहीं चाटता है। २. पण्डित कुत्ते और चाण्डाल को समान मानते हैं। ३. काच मणि और कांचन को एक धागे में पिरो रही हो, हे बाले, यह उचित नहीं है। उसने कहा—सर्ववित् पाणिनि ने तो एक सूत्र में कुत्ता, युवक और इन्द्र तीनों को डाला है। ४. विद्वानों ने सेवा को श्ववृत्ति माना है। ५. युवक भुलक्कड़ होते हैं। ६. अति सुन्दर रमणी जिस प्रकार युवकों के मन को हरण करती है, उस प्रकार कुमारों के नहीं। यौवन के प्रारम्भ में प्रायः युवकों की दृष्टि कलुषित हो जाती है। (ख) (हु, भी धातु), १. यहाँ पर अग्नि में हवन करो। २. उसने मन्त्रपूत शरीर को भी अग्नि में हवन कर दिया। ३. हे बालक, तू मृत्यु से क्यों डरता है, वह भयभीत को भी नहीं छोड़ता। ४. मत डरो। ५. क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कौन वेदों का उद्धार करेगा? हे स्त्री, मत डरो, अभी पृथ्वी पर कुमारिल भट्ट जीवित है। (ग) (णिच् प्रत्यय) १. उसने विषय-सुखों से विरक्त हो जीवन बिताया। २. उन्होंने अपने काम को ठीक निभाया। ३. उसने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। ४. दो 'नहीं' स्वीकृतिसूचक अर्थ बताते हैं। ५. पिता पुत्र से लेख लिखवाता है। ६. धनिक नौकर से काम करता है। ७. वह पुत्र को घर भेजता है। ८. वह पुत्र को वेद पढ़ाता है। ९. माता पुत्र को फल खिलाती है। १०. गुरु शिष्य को वेद पढ़ाता है। ११. उसने पुस्तक मेज पर रखवाई। १२. वह नौकर से भार ढुलवाता है। १३. वह छात्रों को चित्र दिखाता है। १४. मैं यह पत्र उसके पास पहुँचा दूँगा। १५. बच्चा सिर हिला रहा है। (घ) (शिल्पिवर्ग) १. नाई बाल काटने की मशीन से बाल काटता है और उस्तरे से दाढ़ी बनाता है। आजकल अधिक लोग सेफ्टीरेजर से स्वयं ही दाढ़ी बना लेते हैं। २. धोबी कपड़ों को धोकर, नील लगाता है, कलफ करता है और उन पर लोहा करता है। ३. फैक्टरी में मिस्त्री मशीनों को ठीक करता है। ४. मिलों में मजदूर काम करते हैं। ५. तेली कोल्हू के द्वारा तिलों से तेल निकालता है, धार रखनेवाला उस्तरे पर धार रखता है, बढ़ई छेनी से लोहे को काटता है, बर्मा से लकड़ी में छेद करता है और बुढ़िया सूई-धागे से वस्त्र सीती है।

संकेत—(क) १. क्रियते, स किं नाश्नात्युपानहम्। २. शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः। ३. काचं मणिः काञ्चनमेकसूत्रे करोषि बाले नहि युक्तमेतत्। अशेषवित् पाणिनिरेकसूत्रे श्वानं युवानं मघवानमाह। ४. श्ववृत्तिं विदुः। ५. युवानो विस्मरणशीलाः। ६. यथा यूनस्तद्वत् परमरमणीयापि रमणी, कुमाराणामन्तःकरणहरणं नैव कुरुते। ७. कालुष्यमुपयाति। (ख) १. जुहुधीह पावकम्। २. यो मन्त्रपूतां तनुमप्यहौषीत्। ३. मृत्योर्बिभेषि किं बाल, न स भीतं विमुञ्चति। ४. मा भैषीः। ५. किं करोमि, उद्धरिष्यति। मा बिभेहि वरारोहे भट्टाचार्योऽस्ति भूतले। (ग) १. जीवितमत्यवाहयत्। २. साधु निरवाहयन्। ३. अभिसन्धाम् अपालयत्। ४. द्वौ नञौ प्रकृतार्थं गमयतः। ७. गमयति। ८. अवगमयति। ९. भोजयति। ११. आसयत्। १२. वाहयति। १३. दर्शयति। १४. तस्य हस्तं प्रापयिष्यामि। १५. मूर्धानं चालयति। (घ) १. वयति, कूर्चं मुण्डयति। २. धावित्वा। ३. संशोधयति। ४. श्रमिकाः। ५. निःसारयति, क्षुरं तीक्ष्णयति, कृन्तति, छिद्रयति, सीव्यति।

शब्दकोष—८२५+२५=८५०] **अभ्यास ३४** (व्याकरण)

(क) शाकम् (साग), आलुः (पुं०, आलू), रक्ताङ्गः (टमाटर), गोजिह्वा (गोभी), कलायः (मटर), भण्टाकी (स्त्री०, भाँटा, बैंगन), वङ्गनः (बगन), भिण्डकः (भिंडी), टिण्डिशः (टिंडा), अलाबुः (स्त्री०, लौकी), कूष्माण्डः (कद्दू), गृञ्जनम् (गाजर), मूलकम् (मूली), श्वेतकन्दः (शलगम), पालकी (स्त्री०, पालक), वास्तुकम् (बथुआ), सिम्बा (सेम), सुसिम्बः (फरासबीन, फ्रेंच बीन), जालिनी (स्त्री०, तोरई), कुन्दरुः (पुं०, कुन्दरु), पटोलः (परवल), कारवेल्लः (करेला), कर्कटी (स्त्री०, ककड़ी), पनसम् (कटहल), शदः (सलाद)। (२५)

व्याकरण (वृत्रहन्, मघवन्, हा, ह्री, णिच् प्रत्यय)

१. वृत्रहन् और मघवन् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ३१, ३२)

२. हा और ह्री धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ५०, ५१)

नियम १९८—मूलधातु से प्रेरणार्थक धातु बनाने के लिए ये नियम ठीक स्मरण कर लें। (क) धातु से णिच् (अय) प्रत्यय लगता है। नियम १९५ के अनुसार वृद्धि या गुण (ख) (मितां ह्रस्वः) इन धातुओं की उपधा (उपान्त्य स्वर) के अ को आ नहीं होता—गम्, रम्, क्रम्, नम्, शम्, दम्, जन्, त्वर्, घट्, व्यथ्, जॄ। गमयति, रमयति, क्रमयति, नमयति, शमयति, दमयते, जनयति, त्वरयति, घटयति, व्यथयति, जरयति। अन्यत्र अ को आ होगा। पाठयति, कामयते, चामयति। (ग) (० आतां पुङ् णौ) आकारान्त धातुओं के अन्त में णिच् से पहले 'प्' और लग जाता है। जैसे—दा > दापयति, धा > धापयति, स्था > स्थापयति, या > यापयति, स्ना>स्नापयति। (घ) (शाच्छासाह्वा०) इन आकारान्त धातुओं में बीच में 'य्' लगेगा। शो (शा), छो (छा), सो (सा), ह्वे (ह्वा), व्ये (व्या), वे (वा) और पा (पीना)। जैसे—शाययति, ह्वाययति, पाययति (पिलाता है)। (पातेर्णौ लुग्०) पा (रक्षा करना) का रूप पालयति होगा। (ङ) (क्रीङ्जीनां णौ) इनके ये रूप होते हैं—क्री > क्रापयति (खरीदवाना), अधि+इ > अध्यापयति (पढ़ाना), जि > जापयति (जिताना)। (च) इन धातुओं के ये रूप हो जाते हैं:—ब्रू > वाचयति (बाँचना), हन् > घातयति (वध कराना), दुष् > दूषयति (दोष देना) रुह् > रोपयति, रोहयति (उगाना), ऋ > अर्पयति (देना), ह्रेपयति (लज्जित करना), वि+ली > विलीनयति, विलाययति (पिघलाना), भी > भापयते, भीषयते (डर की वस्तु से डराना) भाययति (केवल डराना), वि+स्मि > विस्मापयते (किसी कारण से विस्मित करना), विस्माययति (केवल विस्मित करना), सिध् > साधयति (बनाना), सेधयति (निश्चय कराना), रञ्ज् > रञ्जयति (प्रसन्न करना), रजयति (शिकार खेलना), इ (जाना) > गमयति (भेजना), अधि+इ (जानना) > अधिगमयति (समझाना, याद दिलाना), प्रति+इ > प्रत्याययति (विश्वास दिलाना), गुह् > गूहयति (छिपाना), धू > धूनयति (हिलाना), प्री > प्रीणयति (प्रसन्न करना), मृज् > मार्जयति (साफ कराना), शद् > शातयति (गिराना), शादयति (भेजना)। (छ) चुरादिगण की धातुओं के रूप णिच् में वैसे ही रहते हैं। (ज) कर्मवाच्य और भाववाच्य में णिजन्त धातु के अन्तिम इ (अय) का लोप हो जाता है। जैसे—पाठ्यते, कार्यते, हार्यते, धार्यते, चोर्यते, भक्ष्यते।

अभ्यास

संस्कृत बनाओ—(क) (वृत्रहन्, मघवन्) १. इन्द्र ने वृत्र का वध किया। २. मैं इन्द्र के सम्मान से अनुगृहीत हूँ। ३. इन्द्र का यश प्रत्येक घर में गाया जाता है। ४. इन्द्र का वज्र दैत्य-सेना का संहार करता है (संहृ)। (ख) (हा, ह्री) १. हे अर्जुन, जब मनुष्य सभी मनोगत कामनाओं को छोड़ देता है और अपने-आपमें सन्तुष्ट रहता है, तब वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। २. तृष्णा को छोड़ दो। ३. तुमने जो सीता को छोड़ दिया है, वह क्या तुम्हारे कुल के अनुकूल है? ४. विपत्ति में भी उसका धैर्य क्षीण नहीं होता। ५. पुत्रवधू श्वशुर से शर्माती है। ६. आपके साथ गुरुजनों के समीप जाने में मुझे लज्जा अनुभव होती है। ७. हमें आपस में ही शर्म लगती है औरों के सामने तो कहना ही क्या? (ग) (णिच् प्रत्यय) १. शरीर को शान्ति देनेवाली शरत्कालीन चाँदनी को कौन आँचल से रोकता है? २. मैं महल पर रहूँगा, वहाँ आवाज दे लेना। ३. यह विवाद ही विश्वास दिलाता है कि तुम झूठ बोल रहे हो। ४. पार्वती ने अपनी करुण कथा सुनाकर अनेक बार सखियों को रुलाया। ५. वह मुझे पिता मानता है। ६. मैं किसके सिर दोष मढ़ूँ? ७. वह फिर अपने काम में लग गया। ८. विद्या धन से बढ़कर है। ९. यह समाचार पत्र में लिख दो। १०. वह अभी तक अपने-आपको नहीं सँभाल पाया। ११. होनहार बिरवान के होत चीकने पात। १२. उसने किसी तरह आठ वर्ष बिताए। १३. उसने दासी को रानी बना लिया। १४. मौका हाथ से न जाने दे। १५. सज्जनों का मेल शीघ्र ही विश्वास दिलाता है। १६. प्रतिष्ठा केवल उत्सुकता को शान्त करती है। १७. बड़े दुःख को भी आशा का बन्धन सहन करा देता है। १८. दिन चन्द्रमा को जितना दुःखित करता है, उतना कुमुदिनी को नहीं। (घ) (शाकादि-वर्ग) हरा साग और सलाद स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभप्रद हैं। अनेक साग हैं, किसीको कोई अच्छा लगता है, किसीको कोई। कुछ लोग बदल-बदलकर आलू, टमाटर, गोभी, मटर बैगन, भिण्डी, टिण्डा, लौकी, कद्दू, गाजर, मूली, शलगम, परवल, पालक, बथुआ, सेम, फरासबीन, करेला और कटहल का साग खाते हैं। कुछ लोग दो-तीन साग को मिलाकर बनाते हैं या एक ही समय दो-तीन साग बनाते हैं।

संकेत—(क) २. संभावनया। (ख) १. प्रजहाति यदा कामान्, आत्मन्येवात्मना तुष्टः। २. जहीहि। ३. अहासीः, सदृशं कुलस्य। ४. तस्य धैर्यं न हीयते। ५. जिह्रेति। ६. जिह्रेमि आर्यपुत्रेण सह गुरुसमीपं गन्तुम्। ७. अन्योन्यस्यापि जिह्रीमः, किं पुनरन्येषाम्। (ग) १. शरीरनिर्वापयित्रीम्, पटान्तेन वारयति। २. मां प्रासादे शब्दायय। ३. प्रत्याययति। ४. निशाम्य, अरोदयत्। ५. मां पितेति मानयति। ६. कं दोषपक्षे स्थापयानि। ७. मनो न्यवेशयत्। ८. अतिरिच्यते। ९. वृत्तं पत्रमारोपय। १०. स नाद्यापि पर्यवस्थापयति आत्मानम्। ११. आवेदयन्ति हि प्रत्यासन्नमानन्दमग्रपातीनि शुभानि निमित्तानि। १२. तेनाष्टौ परिगमिताः समाः कथंचित्। १३. महिषीपदं प्रापिता। १४. न कार्यकालमतिपातयेत्। १५. विश्वासयत्याशु सतां हि योगः। १६. औत्सुक्यमात्रमवसाययति। १७. आशाबन्धः साहयति। १८. ग्लपयति यथा। (घ) पर्यायशः, संमिश्र्य, शाकत्रयं वा पचन्ति।

शब्दकोष—८५०+२५=८७५] **अभ्यास ३५** (व्याकरण)

(क) करमर्दक: (करौंदा), पलाण्डु: (पुं०, प्याज), लशुनम् (लहसुन), तिन्तिडीकम् (इमली), आर्द्रकम् (अदरक), व्यञ्जनम् (मसाला), मरीचम् (मिर्च), जीरक: (जीरा), धान्यकम् (धनिया), शुण्ठी (स्त्री०, सोंठ), हिङ्गु: (पुं०, नपुं०, हींग), हरिद्रा (हल्दी), लवणम् (नमक) सैन्धवम् (सेंधा नमक), रौमकम् (साँभर नमक), पिप्पली (स्त्री०, पीपर), एला (इलायची), मधुरा (सौंफ), लवङ्गम् (लौंग), दारुत्वचम् (दालचीनी), त्रिपुटा (छोटी इलायची), खादिर: (कत्था), चूर्ण: (चूना), पूगम् (सुपारी), ताम्बूलम् (पान)। (२५)

व्याकरण (करिन्, पथिन्, भृ, मा, सन् प्रत्यय)

१. करिन् और पथिन् शब्दों के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ३३, ३४)

२. भृ और मा धातुओं के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ५२, ५३)

नियम १९९—(धातो: कर्मण: समानकर्तृकादिच्छायां वा) इच्छा करना या चाहना अर्थ में धातु से सन् (स) प्रत्यय लगता है। सन् के विषय में ये बातें स्मरण रखें—(क) इच्छा करनेवाला वही व्यक्ति हो, तभी सन् होगा। (ख) सन् प्रत्यय ऐच्छिक है, अत: सन् न लगाना चाहें तो तुमुन् (तुम्) प्रत्यय करके इष् या अभिलष् आदि धातु का प्रयोग करें। जैसे—पठितुमिच्छति। (ग) इच्छा करनेवाली क्रिया कर्म के रूप में होनी चाहिए, अन्य कारक के रूप में नहीं। करण में होने से यहाँ नहीं होगा—अहमिच्छामि पठनेन मे ज्ञानं वर्धेत। (घ) सन् का स शेष रहता है। सन् प्रत्यय करने पर धातुओं को द्वित्व होता है, जैसे लिट् लकार में। सेट् धातुओं में स से पहले इ लगाकर 'इष' हो जाएगा। अनिट् में केवल 'स' लगेगा, यह स कहीं-कहीं पर सन्धि-नियमों के कारण ष या क्ष हो जाता है। (ङ) धातुओं को द्वित्व करने पर अभ्यास अर्थात् प्रथम अंश में धातु में अ होगा तो उसे इ हो जाएगा। (च) धातुओं के रूप इस प्रकार चलेंगे:—(१) परस्मैपदी के रूप परस्मै० में और आत्मने० के आत्मने० में, उभयपदी के उभयपद में। (२) लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् में परस्मै० में रूप भवतिवत्, आत्मने० में सेव् के तुल्य (३) लिट् लकार में धातु+आम्+कृ, भू या अस्। (४) लुङ् में परस्मै० में ईत्, इष्टाम्, इषु: आदि और आत्मने० में इष्ट, इषाताम्, इषत आदि। (५) आशीलिङ् में पर० में यात्, यास्ताम् आदि; आत्मने० में इषीष्ट आदि। (६) अन्य लकारों में भू या सेव् के तुल्य। जैसे—गम् > जिगमिषति, जिगमिषतु, अजिगमिषत्, जिगमिषेत्, जिगमिषिष्यति, जिगमिषांचकार, जिगमिषिता, अजिगमिषीत्, जिगमिष्यात्, अजिगमिष्यत्। (छ) सन्नन्त प्रयोगवाली प्रचलित धातुएँ ये हैं:—ज्ञा > जिज्ञासते, दा > दित्सति, धा > धित्सति, पा > पिपासति, जि > जिगीषति, चि > चिचीषति, श्रु > शुश्रूषते, ब्रू > विवक्षति, भू > बुभूषति, कृ > चिकीर्षति, हृ > जिहीर्षति, मृ > मुमूर्षति, तॄ > तितीर्षति, मुच् > मुमुक्षते, प्रच्छ् > पिप्रच्छिषति, भुज् (आ०) > बुभुक्षते, पठ् > पिपठिषति, कित् > चिकित्सति, पत् > पित्सति, पिपतिषति, अद् > जिघत्सति, पद् > पित्सते, विद् > विविदिषति, बुध् > बुबोधिषति, मान् > मीमांसते, हन् > जिघांसति, आप् > ईप्सति, स्वप् > सुषुप्सति, रभ् > रिप्सते, लभ् > लिप्सते, गम् > जिगमिषति, दृश् > दिदृक्षते, ग्रह् > जिघृक्षति

अभ्यास ३५

संस्कृत बनाओ—(क) (करिन्, पथिन्) १. हाथी ने इस पेड़ की छाल छील दी। २. साक्षी उपस्थित नहीं हुआ (साक्षिन्)। ३. अतिस्नेह में अनिष्ट की शंका बनी रहती है (पापशङ्किन्)। ४. अगले रविवार को आप हमसे मिलिएगा (आगामिन्)। ५. सहाध्यायियों से प्रेमपूर्वक व्यवहार करो (सहाध्यायिन्)। ६. शेर बादल की ध्वनि पर हुंकार करता है, गीदड़ों की आवाज पर नहीं (केसरिन्)। ७. कम-से-कम तीन गवाह होने चाहिए (साक्षिन्)। ८. गुणवानों के गुण पूजा के योग्य हैं, चिह्न और आयु नहीं (गुणिन्)। ९. रथी पैदल से युद्ध नहीं करते (रथिन्)। १०. ऐसा परोपकारियों का स्वभाव ही होता है। ११. हाथी के मित्र गीदड़ नहीं होते (दन्तिन्)। १२. मानहीन मनुष्य की और तृण की समान गति होती है (जन्मिन्)। १३. वे मूर्ख तिरस्कार को प्राप्त होते हैं, जो धूर्तों से धूर्तता नहीं करते (मायाविन्)। १४. स्वाभिमानियों का स्वाभिमान ही धन होता है (मानिन्)। १५. तुम्हारा मार्ग शुभ हो। १६. धीर लोग न्याय के मार्ग से जरा भी विचलित नहीं होते। **(ख)** (भृ, मा) १. अपना पेट कौन नहीं पालता ? २. उसने पृथ्वी की धुरा को धारण किया। ३. राजाओं के पास चुगलखोर रहते हैं। ४. सदा स्वच्छ वस्त्रों को धारण करो। ५. व्यापारी हाथ से कपड़े को नापता है (मा)। ६. लेखपाल ने जंजीर से खेत नापा। **(ग)** (सन् प्रत्यय) १. विद्यार्थी पाठ पढ़ना चाहता है, लेख लिखना चाहता है, धर्म जानना चाहता है, दान देना चाहता है, धर्म करना चाहता है, जल पीना चाहता है, शत्रु को जीतना चाहता है, फूल इकट्ठा करना चाहता है (संचि), गुरुवचन सुनना चाहता है, कार्य करना चाहता है (कृ), पाप को छोड़ना चाहता है (हृ), प्रश्न पूछना चाहता है (प्रच्छ्), फल खाना चाहता है (भुज्), धन पाना चाहता है (लभ्) और मित्र को देखना चाहता है। २. गुरुओं की सेवा करो। ३. वह छोटी नौका से समुद्र को पार करना चाहता है। **(घ)** (शाकादि०) १. कुछ लोग साग और दाल में अधिक मसाला पसन्द करते हैं। वे दाल में हल्दी, धनिया, नमक के साथ ही प्याज, लहसुन, इमली और लाल मिर्च भी डालते हैं। साग में भी मसाला डाला जाता है। २. कुछ लोग चाय में भी काली मिर्च, दालचीनी और सोंठ या अदरक डालते हैं। ३. पनवारी पान में चूना और कत्था लगाता है, बाद में छोटी इलायची और सुपारी डालकर देता है। पान खानेवाले पानदान में पान रखते हैं।

संकेत—(क) १. त्वगुन्मथिता। २. नोपतस्थौ। ३. अतिस्नेहः पापशङ्की। ४. आगामिनि, भवता द्रष्टव्या वयम्। ६. अनुहुंकुरुते घनध्वनिं नहि गोमायुरुतानि केसरी। ७. त्र्यवराः साक्षिणो ज्ञेयाः। ८. गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः। ९. न रथिनः पादचारमभियुञ्जन्ति। १०. परोपकारिणाम्। ११. भवन्ति गोमायुसखा न दन्तिनः। १२. जन्मिनो मानहीनस्य तृणस्य च समा गतिः। १३. व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः। १४. सदाऽभिमानैकधना हि मानिनः। १५. शिवास्ते सन्तु पन्थानः। १६. न्याय्यात् पथः। **(ख)** १. बिभर्ति। २. बिभरांबभूव। ३. पिशुनजनं खलु बिभ्रति क्षितीन्द्राः। ४. बिभृयात्। ६. लेखपालः शृङ्खलाभिः, अमास्त। **(ग)** १. लिलिखिषति, विधित्सति। २. शुश्रूषस्व। ३. उडुपेन, तितीर्षति। **(घ)** १. सहैव, रक्तमरीचम्, निक्षिपन्ति। शाकमपि उपस्क्रियते (उपस्कृ)। ३. ताम्बूलिकः, लिम्पति, निक्षिप्य, ताम्बूलकरङ्के।

शब्दकोष—८७५+२५=९००] **अभ्यास ३६** (व्याकरण)

(क) कृषिः (स्त्री०, खेती), कृषीवलः (किसान), वसुधा (पृथ्वी), मृत्तिका (मिट्टी), उर्वरा (उपजाऊ), ऊषरः (ऊसर), शाद्वलः (शस्य-श्यामल), क्षेत्रम् (खेत), सीता (जुती भूमि), लाङ्गलम् (हल), फालः (हल की फाल), खनित्रम् (फावड़ा, कुदाल), दात्रम् (दराँती), लोष्ठम् (ढेला), लोष्ठभेदनः (१. मूँगरी, २. पटरा, ३. मैंड़ा), कोटिशः (धुर्मुश), तोत्त्रम् (चाबुक), कणिशः (अनाज की बाल), पलालः (पराल), बुसम् (भुस), तुषः (भूसी), खाद्यम् (खाद), खलम् (खलिहान), खनियन्त्रम् (ट्रैक्टर), कृषियन्त्रम् (खेती के औजार)। (२५)

व्याकरण (तादृश्, चन्द्रमस्, दा, यङ्, यङ्लुक्, नामधातु)

१. तादृश् और चन्द्रमस् शब्दों के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ३५, ३८)

२. दा धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ५४)

नियम २००—(धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्) व्यंजन से प्रारम्भ होनेवाली एकाच् धातु से यङ् प्रत्यय होता है, बार-बार या अधिक करने अर्थ में। यङ् प्रत्यय के लिए ये नियम स्मरण रखें—**(क)** यङ् का य शेष रहता है। सभी धातुओं के रूप केवल आत्मनेपद में चलते हैं। **(ख)** (सन्यङोः) धातु को द्वित्व होता है। **(ग)** (गुणो यङ्लुकोः, दीर्घोऽकितः) द्वित्व होने पर अभ्यास (पूर्वपद) में अ को आ, इ ई को ए, उ ऊ को ओ होगा। नी > नेनीयते, भू > बोभूयते, पठ्—पापठ्यते। **(घ)** (नित्यं कौटिल्ये गतौ) गत्यर्थक धातुओं से कुटिलता अर्थ में ही यङ् होगा। व्रज् > वाव्रज्यते (कुटिल चलता है)। **(ङ)** (रीगृदुपधस्य च) धातु की उपधा में ह्रस्व ऋ होगा तो उसके अभ्यास में 'री' और लगेगा। नृत् > नरीनृत्यते। **(च)** (घुमास्था०) दा, धा, स्था, गा, पा, हा, सा के आ को ई होगा। देदीयते, देधीयते, तेष्ठीयते, जेगीयते, पेपीयते, जेहीयते, सेषीयते। **(छ)** कुछ अन्य प्रसिद्ध यङन्त रूप ये हैं—कृ > चेक्रीयते, दिव् > देदीव्यते, भ्रम् > बंभ्रम्यते, चर् > चंचूर्यते, वृत् > वरीवृत्यते, ग्रह् > जरीगृह्यते।

नियम २०१—(यङ्लुक्) (यङोऽचि च) धातु के बाद य का लोप होगा। यङ्लुक् के लिए ये नियम स्मरण रखें— **(क)** धातु को द्वित्व होगा। धातु के रूप परस्मैपद में ही चलेंगे। **(ख)** अभ्यास में अ को आ, इ ई को ए, उ ऊ को ओ होगा **(ग)** धातु के अन्त में ऋ होगा तो उसके अभ्यास में री या रि लगेगा। **(घ)** यङ्लुक् के प्रयोग साहित्य में बहुत कम मिलते हैं। **(ङ)** ति, सि, मि से पूर्व विकल्प से ई लगेगा। जैसे—भू > बोभवीति, बोभोति। वृत् > वरीवर्ति, कृ > चरीकर्ति, गम् > जंगमीति।

नियम २०२—(नामधातु) नामधातु में ये प्रत्यय मुख्यतया होते हैं:—**(क)** (सुप आत्मनः क्यच्) अपने लिए चाहने अर्थ में क्यच् (य) प्रत्यय। परस्मैपद होगा। आत्मनः पुत्रमिच्छति > पुत्रीयति। कवीयति, अशनायति, उदन्यति। **(ख)** (उपमानादाचारे) उसके तुल्य आचरण करने में क्यच् (य)। शिष्य को पुत्रवत् मानता है—पुत्रीयति छात्रम्। **(ग)** (काम्यच्च) अपने लिए चाहने में 'काम्य' होता है। पुत्रकाम्यति। **(घ)** (कर्तुः क्यङ्०) उसके तुल्य आचरण करने में क्यङ् (य) प्रत्यय। आत्मनेपद होगा। कृष्णवत् आचरण करता है > कृष्णायते। ओजायते, अप्सरायते। **(ङ)** (तत्करोति तदाचष्टे) करना और कहना अर्थ में णिच्। सूत्र बनाता है—सूत्रयति।

अभ्यास ३६

संस्कृत बनाओ—(क) (तादृश्, चन्द्रमस्) १. वैसे सुन्दर आकृतिवाले लोग सहृदय ही होते हैं (सचेतस्)। २. ऐसे-वैसे लोग सभाओं में आ जाते हैं और रंग में भंग करते हैं। ३. पुत्र-स्नेह कितना प्रबल होगा, जब कि भ्रातृ-स्नेह इतना प्रबल होता है। ४. नक्षत्र, तारा और ग्रहों से युक्त भी रात्रि चन्द्रमा से ही प्रकाशित होती है। ५. मुनिव्रतों से अतिकृश तुम्हें देखकर किस सहृदय का मन दुःखित नहीं होगा (सचेतस्)? ६. उसने उसके पास खड़े हुए एक वृद्ध पुरुष को देखा (प्रवयस्)। ७. यह दुर्वासा (दुर्वासस्) के शाप का ही प्रभाव है। ८. अच्छे चित्तवालों का (सुमनस्) भले और बुरों पर समान प्रेम होता है। (ख) (दा धातु) १. पढ़ाई पर ध्यान दो। २. भगवती पृथ्वी, मुझे अपने अन्दर समा लो। ३. क्या राजा ने तुम्हें यह अँगूठी इनाम में दी है? ४. थोड़ा स्थान देना। ५. ये कन्याएँ पौधों को जल दे रही हैं (दा)। ६. उसने स्वामी के लिए प्राण दे दिए। ७. आँसू चित्र में भी शकुन्तला को नहीं देखने देता। ८. वस्त्रों को धूप में सुखाता है। ९. गुरु शिष्य को आज्ञा देता है। १०. वह खेल में मन लगाता है। ११. उसने प्रत्युत्तर दिया। १२. उसने घर में आग लगा दी। १३. उसने यह वचन कहा। १४. हंस दूध को ले लेता है और उसमें मिले हुए जल को छोड़ देता है। १५. उसने सब लोगों का मन अपनी ओर खींच लिया (आदा)। १६. उसने निर्धनों को वस्त्र दिए (प्रदा)। (ग) (यङ् नामधातु) १. बालक बार-बार हँसता है, रोता है, टेढ़ा चलता है, नाचता है, गाता है, खाना खाता है, पानी पीता है, काम करता है, घूमता है, प्रश्न पूछता है। २. (यङ्लुक्) वह बार-बार काम करता है, घर जाता है, विद्यालय में रहता है, साँप को मारता है और पुस्तक लेता है। ३. वह पत्नी-सहित तपस्या करता है। ४. वह अपने कुल को बदनाम करता है। ५. वह शिष्य को पुत्रवत् मानता है। ६. वह कृष्णवत् आचरण करता है। (घ) (कृषिवर्ग) भारत कृषि-प्रधान देश है। किसान उपजाऊ भूमि को हल से जोतता है, जुती हुई भूमि के ऐलों को मैंड़ा चलाकर सम कर देता है, बाद में उसमें बीज बोता है, अंकुर आने के बाद निराई करता है और अनावश्यक घास आदि को निकाल देता है। खेती तैयार होने पर दराँती से बालों को काट लेते हैं या जड़ से ही काटते हैं। भुस और भूसी गायों-बैलों को दी जाती है। आजकल ट्रैक्टरों से भी खेती की जाती है।

संकेत—(क) १. आकृतिविशेषाः, सचेतसः। २. यादृशस्तादृशो जनाः, रङ्गभङ्गं विदधति। ३. कीदृक् तनयस्नेहः, ईदृक्। ४. ०संकुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः। ५. सचेतसः कस्य मनो न दूयते। ६. स्थितं प्रवयसम्। ७. दुर्वाससः शाप एष प्रभवति। ८. सुमनसां प्रीतिर्वामदक्षिणयोः समा। (ख) १. अवधानम्। २. देहि मे विवरम्। ३. पारितोषिकम्। ४. अवकाशम्। ५. बालपादपेभ्यः ६. प्राणान् अदात्। ७. बाष्पस्तु न ददात्येनां द्रष्टुं चित्रगतामपि। ८. आतपे ददाति। १०. मनो ददाति। १२. पावकम् अदात्। १३. इति वाचमाददे। १४. हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः। १५. मन आददे। (ग) १. बालकः जाहस्यते, रोरुद्यते, वाव्रज्यते, नरीनृत्यते, जेगीयते, बोभुज्यते, पेपीयते, चेक्रीयते, बंभ्रम्यते, प्रश्नं परीपृच्छ्यते। २. स कार्यं चरीकर्ति, जंगमीति, वरीवर्ति, जंघनीति, जाग्रहीति। ३. सपत्नीकः तपस्यति। ४. मलिनयति। (घ) कर्षति, संवाह्य समीकरोति, बीजानि वपति, क्षेत्रपरिष्कारम्, संपन्नायां सत्याम्, लुनन्ति, मूलत एव।

शब्दकोष—९००+२५=९२५] **अभ्यास ३७** (व्याकरण)

(घ) सुकृतिन् (भाग्यवान्), सहृदयः (सहृदय), निष्णातः (विद्वान्), प्रतीक्ष्यः (पूज्य), वदान्यः (दानी), हृष्टमानसः (प्रसन्नचित्त), विमनस् (दुःखित हृदय), उत्कः (उत्कण्ठित), विश्रुतः (प्रसिद्ध), स्निग्धः (प्रेमी), आयत्तः (अधीन), आद्यूनः (पेटू), लुब्धः (लोभी), विनीतः (नम्र), धृष्टः (ढीठ), प्रत्याख्यातः (छोड़ा हुआ), विप्रकृतः (तिरस्कृत), विप्रलब्धः (वंचित), आपन्नः (आपत्तिग्रस्त), दुर्गतः (दीन), कान्तम् (सुन्दर), अभीष्टम् (मनोहर), निकृष्टः (नीच), पूतम् (पवित्र), संख्यातम् (गिना हुआ)। (२५)

व्याकरण (विद्वस्, पुंस्, धा धातु, क्त प्रत्यय)

१. विद्वस् और पुंस् शब्द के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ३६, ३७)

२. धा धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ५५)

नियम २०३—(क्तक्तवतू निष्ठा, निष्ठा) भूतकाल अर्थ में धातु से क्त और क्तवतु कृत् प्रत्यय होते हैं। दोनों का क्रमशः त और तवत् शेष रहता है। 'त' प्रत्यय कर्मवाच्य और भाववाच्य में होता है। तवत् प्रत्यय कर्तृवाच्य में होता है। 'त' प्रत्यय करने पर सेट् (इ-वाली) धातुओं में इ लगेगा, अनिट् (इ-नहींवाली) धातुओं में इ नहीं लगेगा। धातु को गुण या वृद्धि नहीं होती। संप्रसारण होता है।

नियम २०४—(क) क्त (त) प्रत्यय जब सकर्मक धातु से कर्मवाच्य में होगा तो कर्म में प्रथमा, कर्ता में तृतीया और क्रिया के लिंग, वचन और विभक्ति कर्म के अनुसार होंगे, कर्ता के अनुसार नहीं। (ख) अकर्मक धातु से क्त (त) प्रत्यय होगा तो कर्ता में तृतीया होगी। क्रिया में नपुंसक० एक० ही रहेगा। (ग) 'त'-प्रत्ययान्त क्रिया-शब्द कर्म के अनुसार पुलिंग होगा तो उसके रूप रामवत्, स्त्रीलिंग होगा तो रमावत्, नपुंसक० होगा तो गृहवत् चलेंगे। जैसे—मया पुस्तकं पठितम्, पुस्तके पठिते, पुस्तकानि पठितानि। मया ग्रन्थः पठितः, ग्रन्थौ पठितौ, ग्रन्थाः पठिताः। मया बाला दृष्टा, बालाः दृष्टाः। तेन हसितम्।

नियम २०५—(गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्०) इन धातुओं से क्त प्रत्यय कर्तृवाच्य में भी होता है:—जाना, चलना अर्थ की धातुओं, अकर्मक धातुओं तथा श्लिष्, शी, स्था, आस्, वस्, जन्, रुह्, जॄ धातुओं से। अतः कर्ता में प्रथम और कर्म में द्वितीया। जैसे—गृहं गतः। स ग्रामं प्राप्तः। स भूतः। हरिः रमामाश्लिष्टः। स शेषमधिशयितः। वैकुण्ठमधिष्ठितः। शिवमुपासितः। अत्र उषितः। राममनुजातः। वृक्षमारूढः। स जीर्णः।

नियम २०६—(मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च) मन्, बुध्, पूज् तथा इन अर्थोंवाली अन्य धातुओं से क्त प्रत्यय वर्तमान काल अर्थ में होता है। इसके साथ षष्ठी होगी। राज्ञां मतः, बुद्धः, पूजितः (राजा के द्वारा सम्मानित या पूजित)।

नियम २०७—(नपुंसके भावे क्तः) कभी-कभी क्त प्रत्यय नपुंसकलिंग भाववाचक शब्द बनाने के लिए होता है। जैसे— जल्पितम् (कहना), शयितम् (सोना), हसितम् (हँसना), गतम् (चलना), स्थितम् (रहना), कस्येदमालिखितम्? (किसका चित्र है?)

अभ्यास ३७

संस्कृत बनाओ—(क) (विद्वस्, पुंस्) १. विद्वान् ही विद्वानों के परिश्रम को समझता है। २. विद्वान् को भी दुष्ट लक्ष्मी दुर्जन बना देती है। ३. विद्वानों के मुँह से बात सहसा बाहर नहीं निकलती और जो निकल जाती है, वह फिर लौटती नहीं है। ४. जिसके पास पैसा है, वही संसार में पुरुष है। ५. शत्रु भी जिसके नाम का अभिनन्दन करते हैं, वही पुरुष पुरुष है। ६. वह पुरुषों के द्वारा वन्दनीय है। ७. दुष्ट स्त्री पुरुष पर विश्वास नहीं करती (विश्वस्)। (ख) (धा धातु) १. सहसा काम न करो। २. मुझे श्रेष्ठ लक्ष्मी दो। ३. हे माता, तू दुर्जनों को भी पालती है। ४. काँच सुवर्ण के संग से मरकत की कान्ति को धारण करता है। ५. इधर ध्यान दो। ६. वह कान पर हाथ रखता है। ७. वह कानों को बन्द करता है (अपिधा) ८. खिड़की बन्द कर दो। ९. हे अर्जुन, इस शरीर को क्षेत्र कहा जाता है (अभिधा)। १०. आप इधर ध्यान दीजिए (अवधा)। ११. अपने से बलवान् शत्रु से सन्धि कर लो (संधा)। १२. उसने धनुष पर बाण रखा (संधा)। १३. नए कपड़े पहनो (परिधा)। १४. वह गुरु पर श्रद्धा करता है (श्रद्धा)। १५. वह बाँह का तकिया लगाकर सोता है (उपधा)। १६. शकुन्तला को ठगकर मुझे क्या मिलेगा (अभिसंधा)? १७. वैदिक वाङ्मय का अनुसन्धान करो (अनुसंधा)। १८. प्रायः भाग्य ही सबका शुभ और अशुभ करता है (विधा)। १९. मैं धनुष पर विजय की आशा रखता हूँ (निधा)। २०. मेज पर पुस्तकें रख दो (निधा)। २१. जल ने भूमि पर धूल को दबा दिया (निधा)। २२. मुझमें मन लगाओ (आधा)। २३. राक्षसों की छाया भय उत्पन्न करती हैं (आधा)। (ग) (विशेषण) १. भाग्यवान्, सहृदय, दानी और विद्वान् लोग तिरस्कृत, वंचित, आपत्तिग्रस्त और दीन को दुःख नहीं देते हैं। २. निकृष्ट व्यक्ति भी सुन्दर अभीष्ट वस्तुओं को पाकर प्रसन्नचित्त होता है और उन्हें न पाकर खिन्न होता है। ३. पेटू पराधीन होता है, नम्र प्रसिद्ध होता है, ढीठ तिरस्कृत होता है, प्रेमी विनीत होता है और उत्कण्ठित खिन्न होता है। (घ) (क्त प्रत्यय) १. मैंने रघुवंश के चार सर्ग पढ़े। २. उसने बनी-ठनी स्त्री देखी। ३. वह आसन पर बैठा (अधिष्ठा)। ४. वह वृक्ष पर चढ़ा (आरुह्)। ५. यह किसका चित्र है? ६. मुझे राजा मानते हैं। ७. यह अफवाह फैल गई। ८. उसका मन कहीं और है। ९. उसने यह शर्त लगाई। १०. उसने उस समय बहुत वीरता दिखाई।

संकेत—(क) १. विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्। २. अनार्या, खलीकरोति। ३. वदनाद् वाचः, याताश्चेन्न पराञ्चन्ति। ४. यस्यार्थाः स पुमान् लोके। ५. यस्य नामाभिनन्दन्ति द्विषोऽपि स पुमान् पुमान्। ६. पुंसाम्। (ख) १. सहसा विदधीत न क्रियाम्। २. मयि धेहि। ३. दधासि। ४. धत्ते मारकतीं द्युतिम्। ५. धियं धेहि। ६. करं दधाति। ७. कर्णौ पिधत्ते। ८. गवाक्षं पिधेहि। ९. क्षेत्रमित्यभिधीयते। १०. अवधत्ताम्। ११. बलीयसा रिपुणा संदध्यात्। १२. समधत्त। १३. परिधत्त। १४. श्रद्दधाति। १५. बाहुमुपधाय। १६. अभिसंधाय किं लभ्यते मया। १७. अनुसंधत्त। १८. भवितव्यतैव, विदधाति। १९. निदधे विजयाशंसाम्। २१. सलिलैर्निहितं रजः क्षितौ। २२. आधत्स्व। २३. भयमादधति। (घ) १. सर्गाः। २. स्वलंकृता। ६. अहं राज्ञां मतः। ७. वार्ता प्रसृता। ८. स हृदयेनासंनिहितः। ९. इति तेन समयः कृतः। १०. धीरं विक्रान्तम्।

शब्दकोष—९२५+२५=९५०] **अभ्यास ३८** (व्याकरण)

(घ) प्रौढम् (प्रौढ़), ततम् (विस्तृत), ईरितम् (प्रेरित), उपचितः (मोटा), अपचितः (पतला), भुग्नम् (टूटा हुआ), शातम् (तेज), पक्वम् (पका हुआ), ह्रीणः (लज्जित), स्रुतम् (पिघला हुआ), अवगीतः (निन्दित), उद्वान्तम् (उगला हुआ), शान्तः (शान्त), दान्तः (जितेन्द्रिय), प्रच्छन्नः (ढका हुआ), अवसितः (समाप्त), प्लुष्टम् (दग्ध), त्वष्टम् (छीला हुआ), निष्पन्नम् (तैयार), स्यूतम् (सिला हुआ), लूनम् (कटा हुआ), आसादितम् (प्राप्त), उज्झितम् (त्यक्त), अवगतम् (ज्ञात), जग्धम् (खाया हुआ)। (२५)

व्याकरण (श्रेयस्, अनुडुह्, दिव्, नृत्, क्त प्रत्यय)

१. श्रेयस् और अनुडुह् शब्दों के रूप स्मरण करो (देखो शब्द० ३९, ४०)

२. दिव् और नृत् धातुओं के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ५६, ५७)

नियम २०८—धातु से त, तवत् (तथा क्त्वा, क्तिन्) प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए ये नियम ठीक स्मरण कर लें। (देखो परिशिष्ट में क्त प्रत्यय से बने रूप)। (क) धातु को गुण या वृद्धि नहीं होगी। सेट् में इ लगेगा, अनिट् में नहीं। संधि-कार्य होगा। जैसे—कृ > कृतः। हृतः, धृतः, भृतः। पठितम्, लिखितम्। (ख) (रदाभ्यां निष्ठातो नः०) र् और द् के बाद त को न होगा, धातु के द् को भी न्। अर्थात् र्+त=र्ण। द्+त=न्न। दीर्घ ॠ को ईर् होता है, पॄ को पूर्। शॄ > शीर्ण, तॄ > तीर्ण, गॄ > गीर्ण, कॄ > कीर्ण, संकीर्ण, प्रकीर्ण, विकीर्ण। पॄ > पूर्ण। भिद् > भिन्न, छिद् > छिन्न, सद् > सन्न, प्रसन्न, विषण्ण, आसन्न आदि। (ग) (घुमास्थागापा०) गा, पा और हा के आ को ई होगा। गीतम्, पीतम् (पिया), हीनम् (छोड़ा)। (घ) (द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति) दो (दा), सो (सा), मा, स्था, इनके आ को इ होता है। दित, अवसित, परिमित, स्थित। (ङ) (अनुदात्तोपदेश०) यम्, रम्, नम्, गम्, हन्, मन्, वन् और तनादिगणी धातुओं के म् और न् का लोप होता है। यम् > यत, संयत, रम् > रत, विरत, नम् > नत, प्रणत, गम् > गत, आगत, हन् > हत, मन् > मत, संमत, तन् > तत, वितत। (च) (अनिदितां हल०) उपधा के न् का लोप होगा, यदि धातु का इ हटा होगा तो नहीं। बन्ध् > बद्ध, ध्वंस् > ध्वस्त, स्रंस् > स्रस्त, दंश् > दष्ट। (छ) (जनसनखनां०) जन्, सन्, खन् के न् को आ होगा। जात, सात, खात। (ज) (वचिस्वपियजादीनां०, ग्रहिज्या०) वच् आदि को संप्रसारण होता है, अर्थात् य् > इ, व् > उ, र् > ऋ। ब्रू या वच् > उक्त, स्वप् > सुप्त, यज् > इष्ट, वप् > उप्त, वह् > ऊढ, वस् > उषित, ग्रह् > गृहीत, व्यध् > विद्ध, प्रच्छ् > पृष्ट, आह्वे > आहूत, वद् > उदित। (झ) (संयोगादेरातो०) ग्ला, म्ला आदि के बाद त को न। ग्लान, म्लान। (ञ) (ल्वादिभ्यः) लू आदि २१ धातुओं के बाद त को न। लू > लून, स्तॄ > स्तीर्ण, विस्तीर्ण, ज्या > जीन, दु > दून। (ट) (ओदितश्च) जिन धातुओं में से ओ हटा हो, उनके बाद त को न। उड्डी > उड्डीनः, भञ्ज् > भग्न, भुज् > भुग्न, मस्ज् > मग्न, रुज् > रुग्ण, ली > लीन, उद्विज् > उद्विग्न, श्वि > शून, हा > हीन। (ठ) इन धातुओं के ये रूप होते हैं:— दा > दत्त, धा > हित, विहित, निहित, अस् > भूत, शुष् > शुष्क, पच् > पक्व, क्षै > क्षाम। सह् > सोढ, वह् > ऊढ, अद् > जग्ध, क्षि > क्षीण, निर्वा > निर्वाण, निर्वात, गुह् > गूढ, लिह् > लीढ, प्यै > पीन, प्यान।

अभ्यास ३८

संस्कृत बनाओ—(क) (श्रेयस्, अनडुह्) १. अपना धर्म घटिया भी अच्छा है। २. कल्याण के विषय में किसकी तृप्ति होती है? ३. सूर्य अनड्वान् (बैल) है, वह पृथ्वी को धारण करता है (धृ)। ४. बैलों से खेती की जाती है। (ख) (दिव्, नृत् धातु) १. वह पासों से जुआ खेलता है। २. नाचनेवाला युवतियों के साथ नाचता है। ३. बाण चंचल लक्ष्य पर भी लगते हैं (सिध्)। ४. एक के परिश्रम से ही घर-खर्च चल जाता है। (ग) (क्त प्रत्यय) १. अच्छी याद दिलाई। २. अच्छा, हमने ऐसा मान लिया। ३. व्यापारी नाव टूट जाने से मर गया। ४. आपकी घोषणा का लोगों ने स्वागत किया है। ५. यह क्या बात शुरू की? ६. ऐसा अशुभ न हो। ७. राजा ने अनुचित किया। ८. शकुन्तला पेड़ों से ओझल हो गई। ९. उसको भाग्य पर छोड़ दिया। १०. उसकी प्रतिज्ञा सबको विदित हो गई। ११. वह दुःख के कारण अन्यमनस्क है। १२. मैं व्यर्थ ही रोया। १३. वे दोनों एक-दूसरे को मारने पर तुले हुए हैं। १४. सारी चीजें उलट-पलट हो गई हैं। १५. सीता का क्या हाल हुआ? १६. लोकापवाद मेरे लिए बलवान् है। १७. घर में आग लग गई। १८. घर में आग लगने पर कुआँ खोदना कहाँ तक उचित है? १९. राजा होश में आया। २०. तुम्हारा तर्क उचित है। २१. तुमने स्वयं अपना सत्यानाश किया है। २२. अब मेरी हालत ठीक है। २३. बड़ी कठिनाई से जान छूटी। २४. वह सदा के लिए चला गया। २५. उन्होंने उसे अपराधी ठहराया। २६. वह बहुत प्रसन्न हुआ। २७. उसकी आँखों में आँसू भर आए। २८. मैं पीछे-पीछे आ रहा हूँ। २९. तुमने देर कर दी। ३०. मैंने तुम्हारा कभी कुछ भी बुरा नहीं किया है। ३१. यह बात आपके कान तक पहुँची ही होगी। ३२. मैंने उसे कुछ मना लिया। (घ) (विशेषण) १. पके और कटे फल को खाओ। २. जले हुए, खाए हुए और छोड़े हुए भोजन को न खाओ। ३. आदमी पतला हो या मोटा, उसे शान्त और दान्त होना चाहिए। ४. प्रौढ़ व्यक्ति का ज्ञान विस्तृत, सन्तुलित, परिपक्व, तीक्ष्ण और अनिन्दित होता है। ५. सिले हुए वस्त्र, तैयार भोजन, पिघला हुआ घी, ढके हुए बर्तन और छीले हुए फल को यहाँ रखो।

संकेत—(क) १. श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः। २. श्रेयसि। ३. अनड्वान् दाधार पृथ्वीम्। (ख) १. अक्षैः दीव्यति। २. नर्तकः। ३. सिध्यन्ति। ४. व्ययः शुध्यति। (ग) १. सम्यगनुबोधितोऽस्मि। २. अभ्युपगतं तावदस्माभिरेवम्। ३. सार्थवाहो नौव्यसने विपन्नः। ४. अभिनन्दितं देवस्य शासनं जनैः। ५. किमिदमुपन्यस्तम्। ६. प्रतिहतमङ्गलम्। ७. अनुचितमाचरितम्। ८. अन्तर्हिता वनराज्या। ९. स दैवाधीनः कृतः। १०. प्रकाशतां गता। ११. सन्तापेन भ्रष्टहृदयः। १२. अरण्ये मया रुदितम्। १३. परस्परवधायोद्यतौ तौ। १४. सर्वं विपर्यासं यातम्। १५. किं वृत्तम्। १६. बलवान् मतो मे। १७. ज्वलनमुपगतं गेहम्। १८. सन्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः। १९. प्रकृतिमापन्नः। २०. उपपन्नः। २१. त्वया स्वहस्तेनाङ्गाराः कर्षिताः। २२. लब्धं मया स्वास्थ्यम्। २३. कथं कथमपि मुक्तः। २४. असंनिवृत्त्यै गतः। २५. स्थापितः। २६. आनन्दस्य परां कोटिमधिगतः। २७. तस्या नयने उद्बाष्पे जाते। २८. अनुपदमागत एव। २९. वेलातिक्रमः कृतः। ३०. विप्रियं न कृतम्। ३१. इदं भवतः श्रुतिविषयमापतितमेव। ३२. किमपि सानुक्रोशः कृतः।

शब्दकोष—९५०+२५=९७५] **अभ्यास ३९** (व्याकरण)

(क) अद्रिः (पुं०, पर्वत), ग्रावन् (पुं०, पत्थर), शिला (चट्टान), शृङ्गम् (चोटी), प्रपातः (झरना), उत्सः (सोंता), निर्झरः (पहाड़ी नाला, बड़ा झरना), दरी (स्त्री०, दर्रा), अद्रिद्रोणी (स्त्री०, घाटी), गह्वरम् (गुफा), खनिः (स्त्री०, खान), उपत्यका (तराई, भावर), अधित्यका (पठार), निकुञ्जः (झाड़ी), हिमसरित् (स्त्री०, ग्लेशियर)। (१५)। (ख) क्रुध् (गुस्सा करना), द्रुह् (द्रोह करना), क्षम् (क्षमा करना), दम् (दबाना), तुष् (सन्तुष्ट होना), दुष् (दूषित होना), व्यध् (बींधना), शुष् (सूखना), सिध् (सिद्ध होना), हृष् (प्रसन्न होना)। (१०)

व्याकरण (मति, नश्, भ्रम्, क्तवतु प्रत्यय)

१. मति शब्द के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ४२)

२. नश् और भ्रम् धातुओं के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ५८, ५९)

नियम २०९—क्तवतु प्रत्यय भूतकाल में होता है। इसका तवत् शेष रहता है। यह कर्तृवाच्य में होता है, अतः कर्ता के तुल्य क्रिया-शब्द के लिंग, विभक्ति और वचन होंगे। कर्ता में प्रथमा, कर्म में द्वितीया, क्रिया कर्ता के तुल्य। धातुओं के रूप क्त प्रत्यय के तुल्य ही बनेंगे। नियम २०८ पूरा इसमें भी लगेगा। क्त प्रत्यय लगाकर जो रूप बनता है, उसीमें 'वत्' और जोड़ दें। जैसे—कृ > कृतः, तवत् में कृतवत् होगा। तवत् प्रत्ययान्त के रूप पुंलिंग में भगवत् (शब्द० २०) के तुल्य चलेंगे, स्त्रीलिंग में ई लगाकर नदी के तुल्य और नपुंसक० में जगत् (शब्द० ६८) के तुल्य। क्त प्रत्यय लगाने पर कर्म के लिंग, वचन, विभक्ति पर ध्यान दिया जाता है, कर्ता के लिंग आदि पर नहीं। परन्तु क्तवतु प्रत्यय लगाने पर कर्ता के लिंग आदि पर ध्यान दिया जाएगा, कर्म पर नहीं। जैसे—स पुस्तकम् अपठत् का क्तवतु में स पुस्तकं पठितवान्। ते पुस्तकानि पठितवन्तः। सा पुस्तकं पठितवती।

नियम २१०—दीर्घ, गुण, वृद्धि, संप्रसारण आदि के लिए यह सारणी ठीक स्मरण कर लें। ऊपर मूल स्वर दिए गए हैं, उनके स्थान पर गुण, वृद्धि आदि कहने पर ऊपर के मूल स्वर के नीचे गुण आदि के सामने जो स्वर आदि दिए गए हैं, वे होंगे। आगे भी जहाँ गुण, वृद्धि, संप्रसारण आदि कहा जाए, वहाँ इस सारणी (टेबुल) के अनुसार कार्य करें। (रिक्त स्थानों पर वह कार्य नहीं होता।)

१. स्वर	अ, आ	इ, ई	उ, ऊ	ऋ, ॠ	ऌ	ए	ऐ	ओ	औ
२. दीर्घ	आ	ई	ऊ	ॠ	—	—	—	—	—
३. गुण	अ	ए	ओ	अर्	अल्	ए	—	ओ	—
४. वृद्धि	आ	ऐ	औ	आर्	आल्	ऐ	ऐ	औ	औ

५. संप्रसारण—य् को इ, व् को उ, र् को ऋ, ल् को ऌ।

अभ्यास ३९

संस्कृत बनाओ—(क) (मति शब्द) १. विनाश के समय बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। २. सबकी रुचि पृथक् होती है (रुचि)। ३. कुपथ पर वर्तमान मूर्ख को दोनों लोकों में दुःख देनेवाली आपत्ति आती है (दुर्मति)। ४. एकता से कार्य सिद्ध होते हैं (संहति)। ५. गुणों से गौरव प्राप्त होता है, न कि मोटापे से (संहति)। ६. ओह, इष्ट वस्तु की सिद्धि में विघ्न आते हैं (सिद्धि)। ७. चेष्टा के अनुकूल ही कामी जनों की मनोवृत्ति होती है। (वृत्ति)। ८. अधिक पैसा हो तो बहुत-से सम्बन्धी हो जाते हैं (ज्ञाति)। ९. अत्युन्नति के बाद बड़ों का भी पतन होता है (अत्यारूढि)। १०. वह सदा चौकन्ना रहता है (प्रत्युत्पन्नमतिः)। ११. आप क्या काम करते हैं ? (वृत्ति)। १२. यह बात उस समय मुझे नहीं सूझी (बुद्धि)। १३. और कोई चारा नहीं है। १४. इस प्रकार की स्त्रियाँ गृहिणी होती हैं और इससे विपरीत कुल के लिए दुःखद होती हैं (युवति, आधि)। १५. राम की बुद्धि तीक्ष्ण है और देवदत्त की मोटी। १६. वह देखने में सुन्दर हैं। १७. उसने शत्रुता का रुख अपनाया हुआ है। १८. वह आपाततः राम की बड़ाई कर रहा है, पर वस्तुतः बुराई कर रहा है। (ख) (नश्, भ्रम् धातु) १. देर करनेवाला नष्ट हो जाता है (विनश्)। २. संशयात्मा नष्ट हो जाता है (विनश्)। मेरा मन अस्थिर घूम रहा है (भ्रम्)। ४. पेड़ के थाँवले में जल चक्कर खा रहा है (भ्रम्)। ५. अधीनस्थ व्यक्ति बड़े कामों में जो सफल हो जाते हैं, वह बड़ों की कृपा ही समझनी चाहिए (सिध्)। ६. सज्जन पापी पर क्रोध करता है (क्रुध्), दुर्जन से द्रोह करता है (द्रुह्), निरपराध को क्षमा करता है (क्षम्)। ७. राम बाण से मृगों को बींधता है (व्यध्), शत्रुओं को दबाता है (दम्) और रावण को जीतने से प्रसन्न होता है (हृष्)। ८. दुर्जन थोड़े से सन्तुष्ट होता है (तुष्)। ९. कुलमर्यादा के नाश से कुलीन स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं (दुष्)। १०. ग्रीष्म ऋतु में तालाब सूख जाता है (शुष्)। (ग) (क्तवतु) १. तुमने मेरा अभिप्राय ठीक समझा। २. उसके खाना खा लेने पर मैं उसके पास गया। ३. पहाड़ दिखाई दिया। ४. पत्थर गिरे। (घ) (शैलवर्ग) १. पहाड़ की चोटी से झरना बहा। २. घाटी में सोते निकलते हैं और नाले बहते हैं। ३. पर्वत की गुफाओं में ऋषि तपस्या करते हैं। ४. पिण्डारी ग्लेशियर का दृश्य मनोरम है। ५. पठार की भूमि सम होती है, वहाँ वृक्षादि भी होते हैं। ६. दर्रे के मार्ग से यातायात होता है।

संकेत—(क) १. भवत्यपाये परिमोहिनी मतिः। २. भिन्नरुचिर्हि लोकः। ३. आपदेत्युभयलोकदूषणी वर्तमानमपथे हि दुर्मतिम्। ४. संहतिः कार्यसाधिका। ५. गुरुतां नयन्ति हि गुणा न संहतिः। ६. अहो, विघ्नवत्यः प्रार्थितार्थसिद्धयः। ७. चेष्टाप्रतिरूपिका कामिजनमनोवृत्तिः। ८. अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः संभवन्ति। ९. अत्यारूढिर्भवति महतामप्यपभ्रंशनिष्ठा। ११. कां वृत्तिमुपजीवत्यार्यः। १२. इति मम बुद्धौ नापतितम्। १३. नान्या गतिः। १४. यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः। १५. तीक्ष्णमती रामः, स्थूलबुद्धिः। १६. शोभनाकृतिः। १७. विपक्षवृत्तितामाश्रयते। १८. स रामस्य व्याजस्तुतिमाचरति। (ख) १. दीर्घसूत्री। ३. निष्ठाशून्यम्। ४. वृक्षावर्ते। ५. सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः, संभावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम्। ६. पापिने, दुर्जनाय द्रुह्यति, क्षाम्यति। ७. विध्यति, दाम्यति, हृष्यति। ८. तुष्यति। ९. प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः। १०. शुष्यति कासारः। (ग) १. सम्यग् निगृहीतवानसि। २. भुक्तवति तस्मिन्। ४. ग्रावाणः।

शब्दकोष—९७५+२५=१०००] **अभ्यास ४०** (व्याकरण)

(क) काननम् (वन), विटपिन् (वृक्ष), व्रतति: (स्त्री०, लता), मूलम् (जड़), दारु (नपुं०, लकड़ी), इन्धनम् (ईंधन), वल्लरि: (स्त्री०, बौर), पर्णम् (पत्ता), किसलयम् (कोंपल), वृन्तम् (डंठल), देवदारु: (पुं०, देवदार), भद्रदारु: (पुं०, चीड़), सिन्दूर: (बाँझ का पेड़), सर्ज: (सर्ज), साल: (साल का पेड़), तमाल: (आबनूस), करीर: (करील, बबूल), गुग्गुल: (गूगल), श्लेष्मातक: (लिसोड़ा), प्रियाल: (प्याल)। (२०)। (ख) ष्ठिव् (थूकना), अस् (फेंकना), पुष् (पुष्ट करना), शुध् (शुद्ध होना), तृप् (तृप्त होना)। (५)

व्याकरण (नदी, लक्ष्मी, श्रम्, सिव्, शतृ प्रत्यय)

१. नदी और लक्ष्मी शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ४३, ४४)

२. श्रम् और सिव् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ६०, ६१)

नियम २११—(लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे) (क) लट् के स्थान पर परस्मैपद में शतृ और आत्मनेपद में शानच् होता है। शतृ का अत् और शानच् का आन शेष रहता है। ये दोनों प्रत्यय क्रिया की वर्तमानता को सूचित करते हैं। हिन्दी में इनका अर्थ 'रहा है, रहे हैं, रहा था, हुआ, हुए' आदि के द्वारा प्रकट किया जाता है। (ख) पाणिनि के नियमानुसार प्रथमा कारक में शतृ, शानच् का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जैसे—स पठन् अस्ति, न कहकर—स पठति ही कहना चाहिए। परन्तु प्रथमा में भी कुछ प्रयोग मिलते हैं अत: प्रथमा में भी इनका प्रयोग प्रचलित है। (ग) शतृ और शानच्-प्रत्ययान्त शब्द विधेय या विशेषण के रूप में आते हैं। शतृ-प्रत्ययान्त के लिंग, वचन, कारक, कर्ता के तुल्य होते हैं। इसके रूप पुंलिंग में पठत् (शब्द० २४) के तुल्य चलेंगे। जुहोत्यादि० की धातुओं में न् नहीं लगेगा। जैसे—ददत् ददतौ ददत:। स्त्रीलिंग में ई लगाकर नदी के तुल्य। नपुंसक० जगत् (शब्द० ६८) के तुल्य। जैसे—पठन्तं रामं पश्य। पठते रामाय फलानि यच्छ। (घ) शतृ प्रत्यय में भी धातु से विकरण आदि होते हैं। अत: शतृ प्रत्यय लगाकर रूप बनाने का अति सरल प्रकार यह है कि उस धातु के लट् के प्रथम पु० बहुवचन के रूप से अन्तिम इ और बीच के न् को (यदि हो तो) हटा दें। इस प्रकार शत्-प्रत्ययवाला रूप बच जाता है। जैसे—भू > भवन्ति, शतृ-भवत्। अस् > सन्ति, सत्। गम् > गच्छन्ति, गच्छत्। कृ > कुर्वन्ति, कुर्वत्। दा > ददति, ददत्। (ङ) शतृ-प्रत्ययान्त के बाद अर्थ के अनुसार अस्, आस् या स्था धातु का प्रयोग होता है। वर्तमान आदि में अर्थानुसार लट्, लङ् आदि। गृहं गच्छन् आसीत्, भविष्यति वा। पशूनां वधं कुर्वन् आस्ते। तं प्रतिपालयन् तस्थौ, अतिष्ठत् वा। (च) शतृ-प्रत्ययान्त को स्त्रीलिंग बनाने के लिए ये नियम स्मरण रखें:—(१) (उगितश्च) सभी जगह अन्त में ङीप् (ई) लगेगा। (२) (शप्श्यनोर्नित्यम्) भ्वादि०, दिवादि० और चुरादि० की धातुओं में त् से पहले न् और लगेगा। जैसे—गच्छत् > गच्छन्ती, नृत्यत् > नृत्यन्ती, कथयत् > कथयन्ती। (३) (आच्छीनद्यो:०) अदादि० की आकारान्त धातुओं तथा तुदादि० की धातुओं के बीच में न् विकल्प से लगेगा। भात् > भान्ती, भाती, तुदत् > तुदन्ती, तुदती। (४) इसके अतिरिक्त शेष स्थानों पर न् नहीं लगेगा, केवल ई अन्त में लगेगा। रुदती, दधती, शृण्वती, कुर्वती, क्रीणती। (देखो परिशिष्ट में शतृप्रत्यय)।

अभ्यास ४०

संस्कृत बनाओ—(क) (नदी, लक्ष्मी) १. नदियाँ स्वयं अपना जल नहीं पीतीं। २. नदियों में लोग तैरते हैं और उनमें मगर आदि भी रहते हैं। ३. लक्ष्मी वह है, जिससे दूसरों का उपकार होता है। ४. लक्ष्मी के प्रसाद से दोष भी गुण हो जाते हैं। ५. यह घर में लक्ष्मी है। ६. सधवा स्त्रियों का चित्त फूल के तुल्य कोमल होता है (पुरन्ध्री)। ७. जिन्होंने पुण्य कर्म नहीं किए हैं, उनकी वाणी स्वच्छ और गम्भीर पदोंवाली नहीं होती (सरस्वती)। (ख) (श्रम्, सिव्) १. वह कठिन परिश्रम करता है (श्रम्)। २. वह तीव्रगति से शत्रु की ओर चला (क्रम्)। ३. बिना कारण ही जो पक्षपात होता है, उसका प्रतिकार नहीं है। वह प्रेमरूपी तन्तु है, जो प्राणियों को अन्दर से सी रहा है। ४. अच्छी सिलाई के लिए सिलाई की मशीन से वस्त्रों को सीओ। ५. इधर-उधर मत थूको और न कूड़ा-करकट ही मनमाने फेंको (अस्)। ६. यज्ञ से वायु शुद्ध होती है (शुध्)। ७. आग लकड़ी से तृप्त नहीं होती (तृप्)। (ग) (शतृ प्रत्यय) १. वह बाण चढ़ाता हुआ दिखाई दिया। २. थोड़ी योग्यतावाला होने पर भी मैं रघुवंशियों का वर्णन करूँगा। ३. वह सिर-दर्द का बहाना बनाकर घर चला गया। ४. सूर्य के तपते होने पर अन्धकार कैसे प्रकट होगा (आविर्भू) ? ५. नीचों से मित्रता की अपेक्षा महात्माओं से विरोध अच्छा है, क्योंकि वह ऐश्वर्य को उन्नत करता है। ६. सज्जनों के सन्देहास्पद विषयों में उनके अन्तःकरण की वृत्तियाँ ही प्रमाण हैं। (घ) (द्वितीया) १. तुम्हें लोग प्रकृति कहते हैं। २. वह यमुना के किनारे गया। ३. उसे बड़ा दुःख हुआ। ४. राजा का हितकर्ता लोगों में बुरा समझा जाता है। ५. वह तृप्त नहीं हुआ। ६. राम पहाड़ की चोटी पर चढ़ा। ७. पक्षी आकाश में उड़ा। ८. चन्द्रापीड शिलापट्ट पर सोया। ९. दुष्यन्त इन्द्र के आधे आसन पर बैठा। १०. वह सन्मार्ग पर चलता है (अभिनिविश्)। ११. बदमाशों को धिक्कार। १२. नौकर राजा के चारों ओर खड़े हो गए। (ङ) (वन-वर्ग) वन भूमि के रक्षक हैं, वे भूमि को रेगिस्तान होने से बचाते हैं। वृक्षों की उपयोगिता बहुत है। उनके पत्ते, जड़, लकड़ी, कोंपल, बौर, डण्ठल, कलियाँ, फूल और फल सभी अनेक कामों में आते हैं। कुछ पेड़ फल देते हैं और उनके फल खाए जाते हैं। कुछ पेड़ों की लकड़ी ईंधन के रूप में काम आती है। पहाड़ों पर देवदार, चीड़, बाँझ, सर्ज और साल के पेड़ अधिक होते हैं। गूगल, लिसोड़ा और प्याल पर फल भी होते हैं। आबनूस की लकड़ी काली होती है और बबूल की दातूनें अच्छी बनती हैं।

संकेत—(क) ३. उपकुरुते यया परेषाम्। ६. पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति। ७. प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती। (ख) ३. अहेतुः, स हि स्नेहात्मकस्तन्तुरन्तर्भूतानि सीव्यति। ४. स्यूत्यर्थम्। ५. ष्ठीव्यत, अवकरनिकरम्, यथेच्छम्, अस्यत। ७. काष्ठानाम्। (ग) १. शरसन्धानं कुर्वन्। २. रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन्। ३. शिरःशूलस्पर्शनमपदिशन्। ४. घर्मांशौ तपति। ५. समुन्नयन् भूतिमनार्यसंगमाद् वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः। ६. सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः। (घ) १. प्रकृतिमामनन्ति। २. कच्छमवतीर्णः। ३. परं विषादमगच्छत्। ४. द्वेष्यतां याति लोके। ५. न तृप्तिमाययौ। ६. शिखरमारुरोह। ७. दिवमुदपतत्। ८. ०पट्टमधिशिश्ये। ९. अर्धासनम् अधितष्ठौ। १०. अभिनिविशते सन्मार्गम्। ११. धिक् जाल्मान्। १२. परिजनः। (ङ) मरुत्वात्, कलिकाः, उपयुज्यन्ते, दन्तधावनानि।

शब्दकोष—१०००+२५=१०२५] **अभ्यास ४१** (व्याकरण)

(क) रसाल: (आम), जम्बू: (स्त्री०, जामुन), पलाश: (ढाक), प्लक्ष: (पाकड़), अश्वत्थ: (पीपल), न्यग्रोध: (बड़), नीप: (कदम्ब), शाल्मलि: (पुं०, सेमर), खदिर: (खैर), एरण्ड: (एरंड), शिंशपा (शीशम), ताल: (ताड़), नारिकेल: (नारियल), निम्ब: (नीम), मधूक: (महुआ), बिल्व: (बेल), फेनिल: (रीठा), आमलकी (स्त्री०, आँवला), विभीतक: (बहेड़ा), हरीतकी (स्त्री०, हर्र), पनस: (कटहल), अपामार्ग: (चिरचिटा), वेतस: (बेंत), अर्क: (आक), धत्तूर: (धतूरा)। (२५)

व्याकरण (स्त्री, श्री, सो, शो, शतृ, शानच् प्रत्यय)

१. स्त्री और श्री शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द ४५, ४६)

२. सो और शो धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ६२, ६३)

नियम २१२—(लट: शतृशानचौ०) (क) आत्मनेपदी धातुओं के लट् के स्थान पर शानच् हो जाता है। शानच् का आन शेष रहेगा। शानच् होने पर शब्द के रूप पुंलिंग में रामवत्, स्त्रीलिंग में आ लगाकर रमावत्, नपुंसक में गृहवत् चलेंगे। शानच्-प्रत्ययान्त के लिंग, वचन और कारक कर्ता के तुल्य होंगे। (देखो परिशिष्ट में शानच् प्रत्यय)। (ख) शानच्-प्रत्ययान्त के बाद अर्थ के अनुसार अस्, आस् या स्था के लट्, लङ् आदि का प्रयोग होगा। (ग) (आने मुक्) जिन धातुओं के अन्त में अ विकरण लगता है, वहाँ पर अ और आन के बीच में म् लग जायगा। अर्थात् अ+आन=मान। जैसे— यजते > यजमान:। वर्तते > वर्तमान:। (घ) (ईदास:) आस् धातु से शानच् होने पर आसीन रूप होता है। (ङ) अन्यत्र आन ही जुड़ेगा। शी > शयान:, कृ > कुर्वाण:, धा > दधान:।

नियम २१३—(क) (विदे: शतुर्वसु:) विद् के बाद शतृ को वस् विकल्प से होता है। विदन्, विद्वान्। विदुषी। (ख) द्विष् धातु से शत्रु अर्थ में और सु से यज्ञ में रस निचोड़ना अर्थ में शतृ होता है। द्विषन्, सुन्वन्। (ग) अर्ह् से योग्य होना अर्थ में शतृ। अर्हन्। (घ) (पूङ्यजो:०) पू और यज् के वर्तमान अर्थ में पवमान:, यजमान: रूप होते हैं। (ङ) (ताच्छील्य०) स्वभाव आदि अर्थों में चानश् (आन) प्रत्यय होता है। भोगं भुञ्जान:। कवचं बिभ्राण:। शत्रुं निघ्नान:।

नियम २१४—(क) शतृ और शानच् क्रिया की वर्तमानता को बताते हैं। इनसे 'जब कि' अर्थ भी निकलता है। अरण्यं चरन्—जब वह वन में घूम रहा था। विवाहकौतुकं बिभ्रत एव—जब कि वह विवाह का सूत्र पहने हुए था। (ख) (लक्षणहेत्वो: क्रियाया:) स्वभाव और कारण अर्थ बताने में शतृ और शानच् होते हैं। शयाना भुञ्जते यवना: (यवन लेटे-लेटे खाते हैं)। अर्जयन् वसति (धन कमाता हुआ रहता है)। (ग) (ताच्छील्य०) चानश् (आन) स्वभाव, आयु और शक्ति अर्थ का बोध कराता है। उदाहरण नियम २१३ (ङ) में हैं। (घ) शतृ और शानच् प्रत्ययान्त का सप्तमी में समय-सूचक अर्थ हो जाता है। जब वह रो रहा था— तस्मिन् रुदति सति। तस्मिन् पठति सति।

नियम २१५—(लृट: सद्वा) करने जा रहा है या करनेवाला है, इस अर्थ में लृट् को परस्मै० में शतृ और आत्मने० में शानच् होता है। लृट् का रूप बनाकर शतृ या शानच् लगावें। वन्यान् विनेष्यन्निव दुष्टसत्त्वान्। करिष्यमाण: सशरं शरासनम्।

अभ्यास ४१

संस्कृत बनाओ—(क) (स्त्री, श्री शब्द) १. स्त्रियाँ जन्म से ही चतुर होती हैं। २. लज्जा ही वस्तुतः स्त्रियों को सुशोभित करती है। ३. स्त्रियों में बिना शिक्षा के ही चतुरता देखी जाती है। ४. स्त्रियों का पति ही गति है। ५. स्त्रियों का भर्ता ही देवता है। ६. अथक परिश्रम ही श्री का मूल है। ७. साहस में श्री निवास करती है। ८. स्वाभिमान भी रहे और धन भी मिले, ऐसा नहीं होता। ९. सीता दशरथ के गृह में लक्ष्मी के सदृश थी। (ख) (सो, शो धातु) १. वह शत्रु को मारता है (सो)। २. भीम ने दुर्योधन को मारा। ३. आधा काम समाप्त हो गया (अवसो)। ४. वह ऋषि नीलकमल के पत्ते की धार से शमी-लता को काटने का प्रयत्न करता है (व्यवसो)। ५. पेड़ों को जल दिये बिना शकुन्तला जल नहीं पीना चाहती थी। ६. वह चाकू से आलू छीलता है (शो)। ७. उसने छुरी से पेन्सिल छीली। ८. वह कुशा को काटता है (दो)। ९. वह लकड़ी काटता है (छो)। (ग) (शतृ, शानच्) १. पुत्र और शिष्य को बढ़ता हुआ, प्रसन्न होता हुआ और यत्न करता हुआ देखना चाहे। २. सूर्योदय होने पर सोनेवाले को श्री छोड़ देती है। ३. मैं आराम से बैठा हूँ, आप भी आराम से बैठें। ४. बिस्तर के पास में बैठे हुए पुत्र को राजा ने देखा। ५. वह कवच पहनता है, शत्रुओं को मारता है और भोगों को भोगता है। ६. मुसलमान लेटे-लेटे खाते हैं। ७. जब वह रो रहा था, तभी कौआ रोटी लेकर उड़ गया। ८. वन्य जन्तुओं को विनीत करने की इच्छा से मानो वह वन में घूमा। (घ) (द्वितीया) १. तुम्हारी दुष्टता की शिकायत मैंने आचार्य से कर दी है। २. आपके बारे में उसका प्रेम कैसा है? ३. चार महीने वर्षा नहीं हुई। ४. राम बालक से रास्ता पूछता है। ५. पिता बालक को धर्म बताता है। ६. वह देवदत्त से सौ रुपया जीतता है (जि)। ७. चोर देवदत्त का सौ रुपया चुराता है। ८. विष्णु समुद्र से अमृत को मथते हैं। ९. वह बकरी को गाँव में ले जाता है (नी, हृ, कृष्)। १०. उसने राजा से कुशल पूछा। ११. शोक के वश में न होओ। १२. अपने साथी से बिदाई लो। १३. समय ही बलाबल को करता है। १४. सब अपना स्वार्थ देखते हैं। (ङ) (वृक्षवर्ग) उपवन में वृक्षों की सुन्दरता दर्शनीय है। वृक्षों की पंक्तियाँ लगी हुई हैं। आम, कलमी आम, जामुन, ढाक, पाकड़, पीपल, बड़, कदम्ब, सेम, खैर, एरंड, शीशम, ताड़, नारियल, नीम, महुआ, बेल और कटहल के वृक्ष फूलों और फलों से सुशोभित हो रहे हैं। हर्र, बहेड़ा और आँवला त्रिफला कहा जाता है।

संकेत—(क) १. निसर्गादेव। २. स्फुटमभिभूषयति स्त्रियस्त्रपैव। ३. स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वम्। ६. अनिर्वेदः। ८. न मानिता चास्ति, भवन्ति च श्रियः। ९. यथा श्रीः। (ख) १. स्यति। ३. अर्धमवसितं कार्यस्य। ४. धारया छेत्तुं व्यवस्यति। ५. वृक्षेष्वपीतेषु, पातुं न व्यवस्यति। ६. श्यति। ७. अशात्। ८. कुशान् द्यति। ९. छ्यति। (ग) १. वर्धमानम्, मोदमानम्, यतमानम्। २. शयानम्। ३. सुखासीनोऽहम्। ४. शयनान्तिके आसीनम्। ५. बिभ्राणः, निघ्नानः, भुञ्जानः। ८. विनेष्यन्निव। (घ) १. तवाविनयमन्तरेण परिगृहीतार्थः कृत आचार्यः। २. भवन्तमन्तरेण। ३. चतुरो मासान् न ववर्ष। ४. बालकं पन्थानम्। ५. ब्रूते। ६. देवदत्तं शतम्। ७. मुष्णाति। ८. सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति। ९. अजां ग्रामम्। ११. वशं मा गमः। १२. आपृच्छस्व सहचरम्। १४. सर्वः स्वार्थं समीहते। (ङ) राजाम्रः।

शब्दकोष—१०२५+२५=१०५०] **अभ्यास ४२** (व्याकरण)

(क) बकुल: (मौलसरी), कुवलयम् (नीलकमल), इन्दीवरम् (नीलकमल), कुमुदम् (श्वेतकमल), पुण्डरीकम् (सफेद कमल), कोकनदम् (लाल कमल), कह्लारम् (सफेद कमल), कुमुदिनी (स्त्री०, कुमुद की लता), नलिनी (स्त्री०, पद्म-समूह), शेफालिका (हार-सिंगार), यूथिका (जूही), चम्पक: (चम्पा), मालती (स्त्री०, चमेली), मल्लिका (बेला), गन्धपुष्पम् (गेंदा), केतकी (स्त्री०, केवड़ा), कर्णिकार: (कनेर), बन्धूक: (दुपहरिया), कुन्दम् (कुन्द), स्थलपद्मम् (गुलाब), स्तबक: (गुलदस्ता), प्रसूनम् (फूल), मकरन्द: (पराग), जपापुष्पम् (जवाकुसुम), नवमालिका (नेवारी)। (२५)

व्याकरण (धेनु, वधू, कुप्, पद्, तुमुन् प्रत्यय)

१. धेनु और वधू शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ४७, ४८)

२. कुप् और पद् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ६४, ६५)

नियम २१६—(क) (तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्) को, के लिए अर्थ को प्रकट करने के लिए धातु से तुमुन् प्रत्यय होता है। ऐसे स्थानों पर दूसरी क्रिया के लिए कोई क्रिया की जाती है। तुमुन् का तुम् शेष रहता है। यह अव्यय होता है, अत: इसका रूप नहीं चलेगा। पठितुं लेखितुं क्रीडितुं च विद्यालयं याति। **(ख)** (समानकर्तृकेषु तुमुन्) इच्छार्थक धातुओं के साथ तुमुन् होता है। पठितुं भोक्तुं वा इच्छति। श्रोतुमिच्छामि। **(ग)** (शकधृषज्ञा०) शक्, ज्ञा, रभ्, लभ्, क्रम्, अर्ह्, अस् आदि के साथ तुमुन् होता है। भोक्तुं शक्नोति, पठितुं जानाति, भोक्तुमारभते। **(घ)** (पर्याप्तिवचनेषु०) पर्याप्त अर्थ में तुमुन्। भोक्तुं पर्याप्त: प्रवीण: कुशलो वा। **(ङ)** (कालसमय-वेलासु०) समयवाचक शब्दों के साथ तुमुन् होता है। काल: समयो वेला वा भोक्तुम्।

नियम २१७—तुमुन् (तुम्) प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए ये नियम स्मरण कर लें। ये नियम तृच् (तृ), तव्यत् (तव्य) में भी लगेंगे। **(क)** धातु को गुण होता है, अर्थात् अन्तिम इ ई > ए, उ ऊ > ओ, ऋ ॠ > अर् तथा उपधा (उपान्त्य) के इ, उ, ऋ को क्रमश: ए, ओ, अर् होता है। जैसे—जि > जेतुम्, भू > भवितुम्, कृ > कर्तुम्। हर्तुम्। धर्तुम्। **(ख)** सेट् धातुओं में बीच में इ लगेगा, अनिट् में नहीं। उदाहरण उपर्युक्त हैं। **(ग)** सन्धि-नियमों के अनुसार धातु के अन्तिम च् और ज् को क्, द् को त्, ध् को द् और भ् को ब् होता है। पच्-पक्तुम्, भुज्-भोक्तुम्, छिद्-छेत्तुम्, रुध्-रोद्धुम्, लभ्-लब्धुम्। **(घ)** (व्रश्चभ्रस्जसृजमृज०) धातु के अन्तिम च्छ् और श् को ष् होता है और इन धातुओं के च् या ज् को भी ष् होता है:— व्रश्च्, भ्रस्ज्, सृज्, मृज्, यज्, राज्, भ्राज्। ष् होकर इनके ष्टुम् वाले रूप बनेंगे। प्रच्छ्-प्रष्टुम्, प्रविश्-प्रवेष्टुम्। स्रष्टुम्, यष्टुम्। **(ङ)** (आदेच०) धातुओं के अन्तिम ए और ऐ को आ हो जाता है। आह्वे-आह्वातुम्, गै-गातुम्, त्रै-त्रातुम्। **(च)** धातु के अन्तिम म् को न् हो जाता है। गम्-गन्तुम्, रम्-रन्तुम्। **(छ)** धातु के अन्तिम ह् को घ् या ढ् होकर ग्धुम् या ढुम्वाला रूप बनता है। दह्-दग्धुम्, द्रुह्-द्रोग्धुम्, दुह्-दोग्धुम्, लिह्-लेढुम्। वह्-वोढुम्। **(ज)** इन धातुओं के ये रूप होते हैं:—सह्-सोढुम्, वह्-वोढुम्, सृज्-स्रष्टुम्, दृश्-द्रष्टुम्, आरुह्-आरोढुम्, ग्रह्-ग्रहीतुम्।

नियम २१८—(तुं काममनसोरपि) तुम् के म् का लोप होता है, बाद में काम या मनस् (इच्छार्थक) शब्द हों तो। वक्तुकाम:, वक्तुमना: (बोलने का इच्छुक)।

अभ्यास ४२

संस्कृत बनाओ—(क) (धेनु, वधू) १. गाय को माता माना जाता है, यह उचित है, परन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है। इसकी सुरक्षा और पालन-पोषण का भी पूरा प्रबन्ध होना चाहिए। २. यह दुवला शरीर (तनु) कठिन परिश्रम के योग्य नहीं है। ३. कौआ चोंच से (चञ्चु) दाने चुगता है और बच्चों को खिलाता है। ४. तन्दूर में (कन्दु) पकी रोटियाँ जल्दी हजम होती हैं। ५. वधू श्वशुर से शर्माती है। ६. जामुन (जम्बू) मीठी होती है। ७. कुप्पी (कुतू) में तेल भर दो। ८. यह चप्पल (पादू) मेरे पैर में ठीक आता है। (ख) (कुप्, पद् धातु) १. राजा लोग हितवादी पर क्रोध करते हैं (कुप्)। २. गुरु शिष्य पर बहुत अधिक क्रुद्ध हुआ। ३. रक्त के दूषित होने पर शरीर में दोष कुपित हो जाते हैं। ४. उसने विदर्भ का आधिपत्य पाया (पद्)। ५. वे अपने धर्म का पालन करते हैं (पद्)। ६. लोकाचार का पालन करो (प्रतिपद्)। ७. मनुष्य क्षुब्ध होने पर प्रायः अपने महत्त्व को प्राप्त करता है (प्रतिपद्)। ८. समय मिलने पर आपका काम पूरा करूँगा (संपादि)। ९. इधर चलो। १०. कौन तुम्हारा अनुकरण कर सकता है (प्रतिपद्) ? ११. वह यौवन को प्राप्त हुआ (प्रपद्)। १२. धूल कीचड़ हो गई (प्रपद्)। १३. कोई मुझ जैसा पैदा होगा (उत्पद्)। १४. जो पाप करेगा, वह दुःखी होगा (विपद्)। १५. यह तुम्हारे योग्य नहीं है (उपपद्)। १६. पाँच को तीन से गुणा करने पर पन्द्रह हो जाते हैं (संपद्)। १७. इस शब्द का यह रूप बनता है (निष्पद्)। (ग) (तृतीया) १. चन्द्रमा के साथ चाँदनी चली जाती है और बादल के साथ बिजली। २. सज्जनों का सज्जनों से मिलन बड़े भाग्य से होता है। ३. मृग मृगों के साथ घूमते हैं, गाएँ गायों के साथ, घोड़े घोड़ों के साथ, मूर्ख मूर्खों के साथ, विद्वान् विद्वानों के साथ। समान स्वभाव और आदतवालों की मित्रता होती है। ४. वह आँख से काणा, कान से बहरा, सिर से गंजा, पैर से लँगड़ा और पीठ से कुबड़ा है। ५. चोटी से हिंन्दू और दाढ़ी से मुसलमान जाने जाते हैं। (घ) (तुमुन्) १. आग के अतिरिक्त और कौन जला सकता है ? २. यह इस काम को कर सकता है। ३. वह घर जाने को उतावला हो रहा था। ४. दो-तीन दिन प्रतीक्षा करो। ५. मेरे प्रेम को मत ठुकराओ। ६. तुम कुछ कहना चाहते हो। ७. मैं कुछ पूछना चाहता हूँ। (ङ) (पुष्पवर्ग) उपवन फूलों से सुरभित है। तालाब में नीले, लाल और सफेद कमल खिले हुए हैं। रंग-बिरंगे फूल खिले हैं। हारसिंगार, जूही, चम्पा, चमेली, बेला, जवाकुसुम, नेवारी, गुलाव, गेंदा, दुपहरिया, केवड़ा, कनेर और कुन्द के फूल शोभित हो रहे हैं।

संकेत—(क) १. मन्यते। २. इयम्, अक्षमा कठिनश्रमस्य। ३. कणान् चिनुते। ४. कन्दौ, सुपचा भवन्ति। ७. पूरय। ८. पादप्रमिता वर्तते। (ख) १. हितवादिने। २. भृशम्। ३. प्रकुप्यन्ति। ४. अपद्यत। ५. पद्यन्ते। ६. आचारं प्रतिपद्यस्व। ७. क्षोभात्। ८. लब्धावकाशः, संपादयिष्यामि। ९. पन्थानं प्रतिपद्यस्व। १०. अनुकृतिं प्रतिपत्स्यते। ११. प्रपेदे। १२. पङ्कभावं प्रपेदे। १३. उत्पत्स्यते च मम कोपि समानधर्मा। १४. विपत्स्यते। १५. नैतत्त्वय्युपपद्यते। १६. त्र्याहताः पञ्च पञ्चदश संपद्यन्ते। १७. निष्पद्यन्ते। (ग) १. सह मेघेन तडित् प्रलीयते। २. सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति। ३. मृगा मृगैः सङ्गमनुव्रजन्ति। समानशीलव्यसनेषु सख्यम्। ४. खल्वाटः, पृष्ठेन कुब्जः। (घ) १. कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति। २. साधयितुमलम्। ३. उदताम्यत्। ४. द्वित्राण्यहानि सोढुमर्हसि। ५. नार्हसि मे प्रणयं विहन्तुम्। ६. वक्तुकामोऽसि। ७. प्रष्टुमनाः। (ङ) नानावर्णानि।

शब्दकोष—१०५०+२५=१०७५] अभ्यास ४३ (व्याकरण)

(क) मृद्वीका (अंगूर), द्राक्षा (अंगूर), सेवम् (सेव), आम्रम् (आम), जम्बुः (स्त्री०, जामुन), कदलीफलम् (केला), नारङ्गम् (नारंगी, संतरा), आम्रलम् (अमरूद), दाडिमम् (अनार), जम्बीरम् (नींबू), जम्बीरकम् (कागजी नींबू), बीजपूरः (बिजौरा नींबू), उदुम्बरम् (गूलर), कर्कन्धुः (बेर), श्रीपर्णिका (काफल), अमृतफलम् (नाशपाती), क्षुमानी (खुमानी), आलुकम् (आलूबुखारा), तूतम् (शहतूत), मातुलुङ्गः (मुसम्मी), क्षीरिका (खिरनी), स्वर्णक्षीरी (मकोय), नारिकेलम् (नारियल), लीचिका (लीची), अञ्जीरम् (अंजीर)। (२५)

व्याकरण (स्वसृ, मातृ, युध्, जन्, क्त्वा प्रत्यय)

१. स्वसृ और मातृ शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ४९, ५०)

२. युध् और जन् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ६६, ६७)

नियम २१९—(क) (समानकर्तृकयोः पूर्वकाले) पढ़कर, लिखकर आदि 'कर' या 'करके' अर्थ में क्त्वा प्रत्यय होता है। क्त्वा का त्वा शेष रहता है। क्रिया का कर्ता एक ही होना चाहिए। त्वा प्रत्यय अव्यय होता है, अतः इसका रूप नहीं चलता। जैसे—भोजनं खादित्वा विद्यालयं गच्छति। (ख) (अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः०) निषेधार्थक अलम् और खलु के साथ धातु से क्त्वा प्रत्यय होता है। जैसे—अलं दत्त्वा (मत दो)। पीत्वा खलु (मत पीओ)। अलं हसित्वा (मत हँसो)। (देखो अभ्यास ४४ भी)। (ग) कुछ क्त्वा और ल्यप् प्रत्ययान्त कर्मप्रवचनीय के तुल्य व्यवहार में आते हैं। जैसे—उद्दिश्य, अधिकृत्य। किमुद्दिश्य (किसलिए), धर्ममधिकृत्य (धर्म के बारे में)।

नियम २२०—क्त्वा (त्वा) प्रत्यय लगाकर रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि क्त प्रत्यय से बने रूप में से त या न हटाकर त्वा लगा दो। क्त प्रत्ययवाले सभी नियम यहाँ भी लगते हैं—जैसे पठ् > पठितम्, त्वा में पठित्वा। इसी प्रकार लिखित > लिखित्वा, गत > गत्वा, उक्त > उक्त्वा, कृत > कृत्वा। संक्षेप में नियम ये हैं:— (क) नियम २०८ (क) देखो। धातु को गुण या वृद्धि नहीं होगी। सेट् में इ लगेगा, अनिट् में नहीं। पठित्वा, लिखित्वा। कृत्वा, हृत्वा, धृत्वा। (ख) नियम २०८ (ग) देखो। गीत्वा, पीत्वा। (ग) नियम २०८ (घ)। दित्वा, सित्वा, मित्वा, स्थित्वा। (घ) २०८ (ङ)। यत्वा, रत्वा, नत्वा, गत्वा, हत्वा, मत्वा। (ङ) नियम २०८ (च)। बद्ध्वा, स्रस्त्वा, दष्ट्वा। (च) नियम २०८ (ज)। उक्त्वा, सुप्त्वा, इष्ट्वा, ऊढ्वा, उषित्वा, गृहीत्वा, पृष्ट्वा। (छ) नियम २१७ (ग) यहाँ भी लगेगा। पक्त्वा, भुक्त्वा, छित्त्वा, रुद्ध्वा, लब्ध्वा। (ज) नियम २१७ (घ) यहाँ भी लगेगा। च्छ्, श्, ज् को ष्। प्रच्छ्-पृष्ट्वा, दृश्- दृष्ट्वा, सृज्-सृष्ट्वा। (झ) नियम २१७ (छ)। ह् का ग्ध्वा या ढ्वावाला रूप। दह्-दग्ध्वा, दुह्-दुग्ध्वा, लिह्-लीढ्वा। (ञ) दीर्घ ॠ को ईर् होगा, पॄ को पूर् होगा। तॄ-तीर्त्वा, कॄ-कीर्त्वा, पॄ-पूर्त्वा। (ट) (उदितो वा) जिन धातुओं में से मूलरूप में उ हटा है, वहाँ बीच में इ विकल्प से होगा। अतः दो रूप बनेंगे। नियम २०८ (छ) लगेगा, जनित्वा-जात्वा, सनित्वा-सात्वा, खनित्वा-खात्वा। (ठ) (अनुनासिकस्य क्विझलोः०) कम्, क्रम्, शम्, दम्, भ्रम्, श्रम् के दो रूप होते हैं। एक इ लगाकर, दूसरा अम् को आन् बनाकर। जैसे—कमित्वा-कान्त्वा, क्रमित्वा-क्रान्त्वा। (ड) इन धातुओं के ये रूप होते हैं- दा > दत्त्वा, धा > हित्वा, हा (छोड़कर) > हित्वा, अद् > जग्ध्वा, दिव् > द्यूत्वा, देवित्वा, सिव् > स्यूत्वा, सेवित्वा।

अभ्यास ४३

संस्कृत बनाओ— (क) (स्वसृ, मातृ शब्द) १. वह अपनी बहन (स्वसृ) को लेकर घर आया। २. माता गौरव में सौ पिताओं से भी बढ़कर है। ३. पुत्र कुपुत्र भले ही हो जाए, पर माता कुमाता नहीं होती। ४. बहू की ननद (ननान्दृ) से नहीं पटती है, पर देवरानी (यातृ) से अच्छी पटती है। ५. मैं मौसी (मातृष्वसृ) और फूआ (पितृष्वसृ) के घर गया था। ६. लड़की विवाह के बाद दूर भेजी जाती है, अतः उसे दुहिता कहते हैं। (ख) (युध्, जन् धातु) १. पदाति पदातियों से लड़ते हैं और घुड़सवार घुडसवारों से (सादिन्)। २. ब्रह्मा से प्रजा उत्पन्न होती है। ३. विषयों का ध्यान करनेवालों की उनमें आसक्ति उत्पन्न होती है, आसक्ति से काम और काम से क्रोध होता है। ४. उसमें कोई गुण नहीं है (विद्)। ५. दुर्जन मित्रों से वियुक्त हो जाता है (वियुज्)। ६. हम अपने काम में लगते हैं (अभियुज्)। ७. ऐसा मेरा विश्वास है (मन्)। ८. वह तुम्हें बहुत मानता है (मन्)। ९. मैं जब तक जीवित हूँ, लड़ूँगा। (ग) (क्त्वा प्रत्यय) १. जो जन्म लेकर, पढ़कर, लिखकर, सुनकर और मनन करके (मन्) भी ईश्वरभक्ति नहीं करता, उसका जीवन असार है। २. बालक प्रातः उठकर, मुँह धोकर, खाना खाकर, पानी पीकर, पाठ याद करके (स्मृ), लेख लिखकर और बस्ते में (प्रसेवः) पुस्तकें रखकर विद्यालय को जाता है। ३. वह घर आकर, खेलकर, कूदकर, हँसकर, उठकर, बैठकर, कुछ देकर, कुछ लेकर, गाकर और नाचकर मनोरंजन करता है। ४. कुल मिलाकर हम सात आदमी हैं। ५. आप इसको उलटा न समझें। ६. समुद्र को छोड़कर महानदी कहाँ उतरती है? ७. वह भौं चढ़ाकर और बनावटी झगड़ा करके बोला। ८. इसका अर्थ ठीक समझकर अपना कर्तव्य निश्चित करूँगा। (घ) (तृतीया) १. इधर-उधर की मत हाँकिए, सीधी बात कहिए। २. चापलूसी न करिए। ३. बस इतने ही फूल रहने दो। ४. बहुत कष्ट न कीजिए। ५. ऐसे प्राण और पुरुषार्थ से क्या लाभ, जो आपत्तिग्रस्तों को न बचा सकें। ६. क्रुद्ध सर्प क्या खून की इच्छा से कुचलनेवाले को काटता है? ७. उद्यम से ही कार्य सिद्ध होते हैं, मनोरथों से नहीं। ८. उद्यम के बिना मनोरथ सिद्ध नहीं होते। ९. उपाय से जो चीज सम्भव है, वह पराक्रम से सम्भव नहीं। (ङ) (फलवर्ग) फल स्वास्थ्य और बुद्धि को बढ़ाते हैं। शारीरिक और बौद्धिक उन्नति के लिए फलों का सेवन अनिवार्य है। यह आवश्यक नहीं है कि महँगे फल ही खाए जायँ, सस्ते फल भी उतना ही लाभ देते हैं। अपनी स्थिति के अनुसार फल खावे। ऋतु के अनुसार अंगूर, अनार, सेव, नासपाती, खुमानी, आम, केला, सन्तरा, अमरूद, जामुन, बेर, काफल, आलूबुखारा, शहतूत, मुसम्मी, नारियल, लीची, अंजीर, खिरनी और मकोय खावे।

संकेत :- (क) २. पितॄणां शतं माता गौरवेणातिरिच्यते। ३. कुपुत्रो जायेत। ४. वधूर्ननान्द्रा न संगच्छते, संजानीते। ६. दुहिता दूरे हिता भवति। (ख) १. सादिनश्च सादिभिः। ३. ध्यायतो विषयान्, उपजायते, संगात्, संजायते। ४. गुणास्तावत्तस्य नैव विद्यन्ते। ५. वियुज्यते। ६. अभियुज्यामहे। ७. इति दृढं मन्ये। ९. यावदहं ध्रिये। (ग) २. प्रसेवे। ४. सर्वे मिलित्वा। ५. अलमन्यथा संभाव्य। ६. उज्झित्वा, अवतरति। ७. भ्रूभङ्गं कृत्वा, कृतककलहम्। ८. परिगृहीतार्थो भूत्वा, निश्चेष्यामि। (घ) १. अलमंप्रासङ्गिकेन, प्रकृतमेवानुसंधीयताम्। २. अलं स्नेहभणितेन। ३. अलमेतावद्भिः कुसुमैः। ४. कृतमत्यायासेन। ५. आपन्नत्राणविकलैः किं प्राणैः पौरुषेण वा। ६. अमर्षणः शोणितकाङ्क्षया किं पदा स्पृशन्तं दशति द्विजिह्वः। ९. यच्छक्यम्। (ङ) महार्घाणि, अल्पार्घाणि।

शब्दकोष-१०७५+२५=११००] **अभ्यास ४४** (व्याकरण)

(क) आर्द्रालुः (पुं०, आड़ू), सीताफलम् (शरीफा), पुंनागम् (फालसा), आम्रातकम् (१. आँवड़ा, २. अमावट), आम्रचूर्णम् (अमचूर), कर्कटिका (ककड़ी), मधुकर्कटी (स्त्री०, चकोतरा), खर्बुजम् (खरबूजा), कालिन्दम् (तरबूज), कर्मरक्षम् (कमरख), खर्जूरम् (खजूर), लकुचम् (बड़हल), शृङ्गाटकम् (सिंघाड़ा), निर्बीजम् (१. बिदाना अंगूर, २. बिदाना अनार), शुष्कफलम् (मेवा), वातादम् (बादाम), अक्षोटम् (अखरोट), अङ्कोलम् (पिस्ता), काजवम् (काजू), शुष्कद्राक्षा (किशमिश), मधुरिका (मुनक्का), क्षुधाहरम् (छुहारा), मखान्नम् (मखाना), प्रियालम् (चिरौंजी), पौष्टिकम् (पोस्ता) (२५)

व्याकरण (नौ, वाच्, आप्, शक्, ल्यप्, णमुल् प्रत्यय)

१. नौ और वाच् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ५१, ५२)

२. आप् और शक् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ६८, ६९)

नियम २२१—(समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्) धातु से पूर्व कोई अव्यय, उपसर्ग या च्वि प्रत्यय हो तो क्त्वा के स्थान पर ल्यप् हो जाता है। ल्यप् का य शेष रहता है। धातु से पहले नञ् (अ) होगा तो ल्यप् नहीं होगा। ल्यप् अव्यय होता है, अतः इसके रूप नहीं चलते। जैसे— आलिख्य, संपठ्य, स्वीकृत्य। परन्तु अकृत्वा, अगत्वा।

नियम २२२— ल्यप् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए ये नियम स्मरण कर लें— (क) साधारणतया धातु अपने मूल रूप में रहती है। गुण या वृद्धि नहीं होती है। इ भी बीच में नहीं लगता। जैसे—विलिख्य, आनीय, विहस्य। (ख) (अन्तरङ्गानपि विधीन्०) ल्यप् होने पर धातु को कोई भी आदेश आदि नहीं होगा। जैसे—प्रदाय, विधाय, प्रखन्य, प्रस्थाय, प्रक्रम्य, आपृच्छ्य, प्रदीव्य, प्रपठ्य। इन स्थानों पर दत्, हि, दीर्घ, इ आदि नहीं हुए। (ग) (न ल्यपि) दा, धा, मा, स्था, गा, पा, हा, सा के आ को ई नहीं होगा। प्रदाय, प्रधाय, प्रगाय, प्रपाय, विहाय आदि। (घ) (वा ल्यपि) गम् आदि के म् का लोप विकल्प से होता है, हन् आदि के न् का लोप नित्य। (लोप होने पर बीच में अगले नियम ङ से त्) आगम्य > आगत्य, प्रणम्य > प्रणत्य। आहत्य, वितत्य, अनुमत्य। (ङ) (ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्) ह्रस्व अ, इ, उ, ऋ के बाद ल्यप् से पहले त् लग जाता है। अर्थात् त्य होता है। आगत्य, अधीत्य, विजित्य, संश्रुत्य, प्रहृत्य, प्रकृत्य। (च) दीर्घ ॠ को ईर्, पॄ को पूर् होगा। उत्तीर्य, विकीर्य, प्रपूर्य। (छ) (वचिस्वपि०, ग्रहिज्या०) वच् आदि को संप्रसारण होगा। वच् > प्रोच्य, वद् > अनूद्य, वस् > अध्युष्य, स्वप् > प्रसुप्य, ह्वे > आहूय, ग्रह् > संगृह्य, प्रच्छ् > आपृच्छ्य। (ज) (णेरनिटि) णिजन्त धातुओं के 'इ' का लोप हो जाता है। विचारि > विचार्य। (झ) (ल्यपि लघुपूर्वात्) धातु की उपधा में ह्रस्व अक्षर हो तो इ को अय् होगा। विगणय्य, प्रणमय्य, विरचय्य। (ञ) इनके ये रूप होते हैं—क्षि > प्रक्षीय, प्रापि > प्राप्य, प्रापय्य, वे > प्रवाय, ज्या > प्रज्याय, व्ये > उपव्याय। मी या मि > प्रमाय। ली > विलीय, विलाय।

नियम २२३— (क) (आभीक्ष्ण्ये णमुल् च, नित्यवीप्सयोः) 'बार-बार करना' अर्थ में क्त्वा (त्वा) और णमुल् (अम्) दोनों होते हैं। णमुल् में धातु को वृद्धि। इन प्रत्ययों के होने पर शब्द को दो बार पढ़ा जायेगा। स्मृ>स्मारं स्मारम्, स्मृत्वा स्मृत्वा (याद करके)। पायं पायम्, पीत्वा पीत्वा। भोजं भोजम्- भुक्त्वा भुक्त्वा। श्रावं श्रावम्-श्रुत्वा श्रुत्वा। (ख) (अन्यथैवं०) अन्यथा, एवम् आदि के साथ णमुल् होगा। अन्यथाकारम्, एवंकारम्, कथंकारं ब्रूते।

अभ्यास ४४

संस्कृत बनाओ—(क) (नौ, वाच् शब्द) १. बड़े पुण्यरूपी मूल्य से तुमने यह शरीररूपी नौका खरीदी है। २. वह नौका से तीव्र वेगवाली नदी को पार करता है (उत्तॄ)। ३. चित्त, वाणी और क्रिया में सज्जनों की एकरूपता होती है। ४. वाणी उसके पीछे अधीनस्थ के तुल्य चलती है। ५. लौकिक सज्जनों की वाणी अर्थ के पीछे चलती है, किन्तु आदिकालीन ऋषियों की वाणी के पीछे अर्थ चलता है। ६. यह बात सिद्ध है कि ब्राह्मणों की वाणी में बल होता है और क्षत्रियों के बाहुओं में बल होता है। ७. वे लोग विद्वानों में सभ्यतम गिने जाते हैं, जो मनोगत बात को वाणी से प्रकट कर सकते हैं। **(ख)** (आप्, शक् धातु) १. इससे क्या लाभ होगा? २. इससे यह निष्कर्ष निकलता है। ३. तुम चक्रवर्ती पुत्र को प्राप्त करो (आप्)। ४. ईश्वर जगत् में व्याप्त है (व्याप्)। ५. परीक्षा समाप्त हुई (समाप्)। ६. कौन इस दुष्कर काम को कर सकता है? ७. राम ही रावण को मार सका। **(ग)** (ल्यप्, णमुल्) १. तुम किसलिए हम पर दोषारोपण कर रहे हो? २. सत्य विषय पर गांधीजी ने लेख लिखे हैं। ३. यदि युद्ध को त्यागकर मृत्यु का भय न हो तो युद्ध को छोड़कर जाना उचित है। ४. कन्या को पति-गृह भेजकर मेरी अन्तरात्मा प्रसन्न हो गई है। ५. इस पर अधिक विचार मत करो। ६. सब लोग इष्ट वस्तु को पाकर सुखी हो जाते हैं। ७. कान बन्द करके, ऐसा न हो। ८. सारी बात पत्र में लिखकर दो। ९. वह हाथ जोड़कर बोला। १०. उसने लम्बी साँस लेकर और पृथ्वी पर घुटने टेककर अपनी करुण कथा कही। ११. मेरी बात काटकर क्यों बोलते हो? १२. सज्जन औरों का सत्कार करके, उनकी प्रार्थना स्वीकार करके और उन्हें पुरस्कृत करके सुखी होते हैं। १३. दुर्जन दुर्भाव को मन में रखकर, छिपकर, एकत्र होकर, तिरस्कार करके और दुःख देकर सुख का अनुभव करते हैं। **(घ)** (चतुर्थी)। १. इससे काम चल जायगा। २. उसने चावलों को धूप में डाला। ३. उन्होंने लड़ाई के लिए कमर कस ली है। ४. मैं उनको कुछ नहीं समझता। ५. जो आपको रुचे (रुच्) वह कीजिए। ६. पापियों का नाम भी न लो, उससे अमंगल होगा। **(ङ)** (फलवर्ग) डॉक्टर और वैद्य फलों का बहुत महत्त्व बताते हैं। फल रक्त को शुद्ध करके लाल बनाता है। भोजन के बाद या तीसरे पहर फल खावे। आड़ू, शरीफा, फालसा, ककड़ी, खरबूजा, तरबूज, कमरख, सिंघाड़ा और बिदाना सभी लाभप्रद हैं। मेवा भी पौष्टिक और रक्तवर्धक है। बादाम, अखरोट, पिस्ता, काजू, किशमिश, मुनक्का, छुहारा, मखाना, चिरौंजी और पोस्ता का भी सेवन करो।

संकेत—(क) १. पुण्यपण्येन, कायनौः। ३. वाचि। ४. तं वाग् वश्येवानुवर्तते। ५. अर्थं वागनुवर्तते। ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति। ६. वाचि वीर्यं द्विजानाम्। बाह्वोर्वीर्यं यत् तत् क्षत्रियाणाम्। ७. भवन्ति ते सभ्यतमा विपश्चितां, मनोगतं वाचि निवेशयन्ति ये। **(ख)** १. अतः किं प्राप्यते। २. प्राप्नोति। ३. आप्नुहि। ५. समापत्। ७. हन्तुमशकत्। **(ग)** १. किमुद्दिश्य। २. सत्यमधिकृत्य। ३. यदि समरमपास्य। ४. संप्रेष्य। ५. अलं विचार्य। ६. सर्वः प्रार्थितमर्थमधिगम्य। ७. पिधाय, शान्तं पापम्। ८. वृत्तं पत्रमारोप्य। ९. समानीय। १०. दीर्घं निःश्वस्य, जानुभ्यामवनौ पतित्वा। ११. मद्वचनमाक्षिप्य। १२. सत्कृत्य, उररीकृत्य, पुरस्कृत्य। १३. मनसिकृत्य, तिरोभूय, संहत्य, तिरस्कृत्य, प्रपीड्य। **(घ)** १. इदं मे इष्टसिद्धये कल्पेत। २. आतपे उज्झितवती। ३. युद्धाय बद्धपरिकरास्ते। ४. तृणाय मन्ये। ६. कथाऽपि खलु पापानामलमश्रेयसे यतः। **(ङ)** भिषग्वराः अपराह्णे।

शब्दकोष-११००+२५=११२५]　　**अभ्यास ४५**　　(व्याकरण)

(क) केसरिन् (शेर), द्वीपिन् (व्याघ्र, बघेरा), तरक्षुः (पुं०, तेंदुआ), भल्लूकः (भालू), शाखामृगः (बन्दर), गोमायुः (पुं०, गीदड़), वराहः (सूअर), शल्यः (सेंह), वृकः (भेड़िया), कुरङ्गः (मृग), उक्षन् (बैल), लोमशा (लोमड़ी), महिषः (भैंसा), महिषी (स्त्री०, भैंस), अजः (बकरा), मेषः (भेड़), कौलेयकः (कुत्ता), सरमा (कुतिया), खरः (गदहा), मार्जारी (स्त्री०, बिल्ली), वृश्चिकः (बिच्छू), गोधा (गोह), गृहगोधिका (छिपकली), लूता (मकड़ी), कर्णजलौका (१. कानखजूरा, २. गोजर) (२५)

व्याकरण—(स्रज्, सरित्, चि, अश्, तव्य, अनीय, केलिमर्)

१. स्रज् और सरित् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ५३, ५४)

२. चि और अश् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ७०, ७१)

नियम २२४—(कृत्य प्रत्यय) (क) (तव्यत्तव्यानीयरः) 'चाहिए' अर्थ में धातु से तव्य, तव्यत् और अनीयर् प्रत्यय होते हैं। तव्यत् का तव्य और अनीयर् का अनीय शेष रहता है। तव्य और तव्यत् में कोई अन्तर नहीं है। वेद में तव्यत्वाला शब्द स्वरित होगा, तव्यवाला नहीं। **(ख)** (तयोरेव कृत्यक्त०) कृत्य प्रत्यय अर्थात् तव्य, अनीय आदि भाववाच्य और कर्मवाच्य में होते हैं। (१) जब ये कर्मवाच्य में होंगे तो कर्म के अनुसार इनके लिंग, वचन और विभक्ति होंगे। कर्ता में तृतीया, कर्म में प्रथमा और क्रिया कर्म के अनुसार। जैसे—तेन त्वया मया अस्माभिः वा पुस्तकानि पठितव्यानि, पठनीयानि वा। (२) जब तव्य और अनीय भाववाच्य में होंगे तो इनमें नपुंसक० एकवचन ही रहेगा, कर्ता में तृतीया होगी। जैसे—तेन हसितव्यम्, हसनीयं वा। (३) तव्य और अनीय प्रत्ययान्त के रूप पुं० में रामवत्, स्त्रीलिंग में रमावत् और नपुं० में गृहवत् चलेंगे।

नियम २२५—'तव्य' प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए देखो नियम २१७। वह नियम पूरा लगेगा। 'तव्य' प्रत्यय लगाकर रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि तुमुन्-प्रत्ययान्त धातु-रूप में तुम् के स्थान पर तव्य लगा दो। जैसे—कर्तुम्-कर्तव्य, पठितुम्-पठितव्य। लेखितव्यम्, हर्तव्यम्।

नियम २२६—'अनीय' प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए ये नियम स्मरण कर लें। ल्युट् (अन), अच् (अ), अप् (अ) में भी ये नियम लगेंगे। **(क)** साधारणतया धातु में कोई अन्तर नहीं होता। धातु मूलरूप में रहती है। बीच में इ नहीं लगेगा। गम् > गमनीय। हसनीय, पठनीय। पा > पानीय। दानीय, स्नानीय। **(ख)** धातु के अन्तिम इ ई को ए, उ ऊ को ओ, ऋ ॠ को अर् गुण होगा। उपधा के इ, उ, ऋ को भी क्रमशः ए, ओ, अर् गुण होगा। जैसे—जि > जयनीय, नी > नयनीय, श्रु > श्रवणीय, भू > भवनीय, कृ > करणीय। लेखनीय, शोचनीय, कर्षणीय। **(ग)** धातु के अन्तिम ए और ऐ को आ होगा। आह्वे > आह्वानीय, गै > गानीय।

नियम २२७—(केलिमर उपसंख्यानम्) चाहिए अर्थ में केलिमर् प्रत्यय भी होता है। इसका एलिम शेष रहता है। पचेलिमा माषाः (पकाने योग्य उड़द)। भिदेलिमाः सरलाः (तोड़ने योग्य चीड़ के वृक्ष)।

अभ्यास ४५

संस्कृत बनाओ—(क) (स्रज्, सरित् शब्द) १. यदि यह माला प्राणघातक है तो मेरे हृदय पर रखी हुई मुझे क्यों नहीं मारती? २. अन्धा सिर पर डाली हुई माला को साँप समझकर फेंक देता है। ३. रोग (रुज्) से पीड़ित को शान्ति नहीं मिलती। ४. ग्रीष्म में नदियों का जल कम हो जाता है और वर्षा में बढ़ जाता है। ५. लक्ष्मी बिजली (विद्युत्) की तरह चपला है। ६. स्त्रियाँ (योषित्) अपने बच्चों के लिए क्या कष्ट नहीं उठातीं? (ख) (चि, अश् धातु) १. बालिका लता से फूलों को चुनती है (चि)। २. जो धन को इकट्ठा करता है (संचि), पर उसका उपभोग नहीं करता (उपभुज्), उसका वह धन व्यर्थ है। ३. व्यायामप्रिय का शरीर पुष्ट होता है (प्रचि)। ४. राजहंस, तेरी वही श्वेतता है, न बढ़ती है और न घटती है। ५. मैं परिचित हूँ (परिचि) कि वह जो कहता है, वही करता है। ६. व्यापार से धन बढ़ता है (उपचि) और अपव्यय से घटता है (अपचि)। ७. वह अपने कर्तव्य का निश्चय करता है (निश्चि) और उसका पालन करता है। ८. माली माला बनाने के लिए फूलों को इकट्ठा करता है (समुच्चि)। ९. अर्थ को जाननेवाला ही पूर्ण कुशलता प्राप्त करता है। १०. अत्युत्कट पाप-पुण्यों का फल यहीं मिलता (अश्)। (ग) (कृत्यप्रत्यय) १. रात्रि में भी पूरा सोना नहीं मिलता। २. गुरुओं की आज्ञा अनुल्लंघनीय होती है। ३. इच्छानुसार काम करना चाहिए, निन्दा कहाँ नहीं मिलती। ४. जलाशय तक प्रेमी के साथ जाए। ५. कभी भी सज्जन शोक के अधीन नहीं होते। ६. भवितव्यता बलवती होती है। ७. होनहार के सर्वत्र द्वार हो जाते हैं। ८. मित्र के वाक्य का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। ९. परस्त्री को नहीं देखना चाहिए। १०. जो सुनना था सुन लिया, जो जानना था जान लिया, जो करना था कर लिया। ११. ऐसी स्थिति में हमें क्या करना चाहिए? १२. पूज्य का अपमान नहीं करना चाहिए। (घ) (चतुर्थी) १. युद्ध के लिए तैयारी करता है। २. देवदत्त को पूआ पसन्द है। ३. यज्ञदत्त राम का सौ रुपये ऋणी है (धारि)। ४. वह विद्या की इच्छा करता है (स्पृह्)। ५. मैं इस दुलारे शिशु को चाहता हूँ (स्पृह्)। ६. यह लकड़ी खंभे के लिए है, यह सोना कुण्डल के लिए है और यह ऊखल कूटने के लिए है। (ङ) (पशुवर्ग) मनुष्य के तुल्य पशु भी दया के पात्र हैं। पशु-हत्या घृणित कार्य है। पशु भी मनुष्य के उपकार को मानते हैं। अकारण ही शेर, बघेरा, तेंदुआ, भालू, बन्दर, गीदड़, सूअर, भेड़िया, मृग, गाय, बैल, बछड़ा, भैंसा, भैंस, कुत्ता, बिल्ली, बकरा, साँप या बिच्छू को नहीं मारना चाहिए।

संकेत—(क) १. स्रगियं यदि जीवितापहा, निहिता। २. स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया। ४. क्षीयते। ६. सहन्ते। (ख) २. नोपभुङ्क्ते। ३. गात्राणि प्रचीयन्ते। ४. चीयते, न चापचीयते। ५. परिचिनोमि। ६. उपचीयते, अपचीयते। ७. निश्चिनोति। ९. अर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते। १०. पापपुण्यैरिहैव फलमश्नुते। (ग) १. निकामं शयितव्यं नास्ति। २. अविचारणीया। ३. सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता। ४. ओदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्यः। ५. शोकवास्तव्याः। ७. भवितव्यानाम्। ८. अनतिक्रमणीयम्। ९. अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम्। १०. श्रुतं श्रोतव्यं, ज्ञातं ज्ञातव्यम्, कृतं कर्तव्यम्। ११. इत्थंगते। १२. अनतिक्रमणीयानि श्रेयांसि। (घ) १. संनह्यते। २. स्वदतेऽपूपः। ५. दुर्ललिताय [illegible]

शब्दकोष-११२५+२५=११५०] **अभ्यास ४६** (व्याकरण)

(क) पारावतः (कबूतर), चटका (चिड़िया), परभृतः (कोयल), मरालः (हंस), बकः (बगुला), सारसः (सारस), वर्तकः (बतख), कीरः (तोता), सारिका (मैना), ध्वाङ्क्षः (कौआ), चिल्लः (चील), गृध्रः (गिद्ध), श्येनः (बाज), कौशिकः (उल्लू), खञ्जनः (खंजन), चाषः (नीलकंठ), दार्वाघाटः (कठफोड़ा), चातकः (चातक), चक्रवाकः (चकवा), बर्हिन् (मोर), षट्पदः (भौंरा), शलभः (१. पतंगा, २. टिड्डी), सरघा (मधुमक्खी), वरटा (१. हंसी, २. भिरड़, ततैया, बर्र), कुलायः (घोंसला)। (२५)

व्याकरण (समिध्, अप्, सु धातु, यत्, ण्यत्, क्यप्)

१. समिध् और अप् शब्दों के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ५५, ५६)

२. सु धातु के पूरे रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ७२)

नियम २२८—(यत् प्रत्यय) (अचो यत्) चाहिए या योग्य अर्थ में आ, इ, ई, उ, ऊ अन्तवाली धातुओं से यत् प्रत्यय होता है। यत् का य शेष रहता है। यत् प्रत्यय कर्मवाच्य और भाववाच्य में होता है। कर्मवाच्य में कर्म के तुल्य लिंग, विभक्ति और वचन होंगे। कर्ता में तृतीया, कर्म में प्रथमा, क्रिया कर्मवत्। भाववाच्य में कर्ता में तृतीया, क्रिया में नपुं० एकवचन। मया अस्माभिः वा जलं पेयम्, दानं देयम्, फलानि चेयानि। मया स्थेयम्।

नियम २२९—यत् प्रत्यय लगाने पर धातु में ये अन्तर होते हैं :- (१) (ईद्यति) आ को ई होकर ए हो जायेगा। आ > ए। दा > देयम्, गा > गेयम्, पा > पेयम्, स्था > स्थेयम्, हा > हेयम्। (२) इ और ई को गुण होकर ए हो जायेगा। चि > चेयम्, जि > जेयम्, नी > नेयम्। (३) उ और ऊ को गुण ओ होकर अव् हो जायेगा। श्रु > श्रव्यम्, हु > हव्यम्, सु > सव्यम्, भू > भव्यम्।

नियम २३०—इन स्थानों पर भी यत् (य) होता है—(१) (पोरदुपधात्) पवर्गान्त और उपधा में अ वाली धातुओं से यत्। शप्यम्, लभ्यम्। (२) (हनो वा यद्०) हन् से यत् और हन् को वध। हन् > वध्यः। (३) (शकिसहोश्च) शक् और सह् धातु से यत्। शक्यम्, सह्यम्। (४) (गदमदचर०) गद् मद् चर् और यम् धातु से यत्। गद्यम्, मद्यम्, चर्यम्, यम्यम्। (५) (अवद्यपण्यवर्या०) अवद्यम् (नीच), पण्यम् (विक्रेय), वर्या (वरणयोग्य स्त्री) ये रूप बनते हैं।

नियम २३१—(ण्यत् प्रत्यय) (१) (ऋहलोर्ण्यत्) ऋकारान्त और हलन्त धातुओं से ण्यत् (य) होगा। अन्तिम ऋ को आर् वृद्धि और उपधा के इ उ ऋ को गुण। कृ>कार्यम्। हार्यम्। धार्यम्। मृज् + ण्यत् = मार्ग्यः होगा। भुज् + ण्यत् = भोज्यम् (भक्ष्य), अन्यत्र भोग्यम् होगा। (२) (त्यजेश्च) त्यज् + ण्यत् = त्याज्यम् होगा। (३) (ओरावश्यके) उकारान्त से अवश्य अर्थ में। लू > लाव्यम्, पू > पाव्यम्।

नियम २३२—(क्यप् प्रत्यय) (१)-एतिस्तुशास्०) इन धातुओं से क्यप् (य) होगा और ये रूप बनेंगे—इ > इत्यः, स्तु > स्तुत्यः, शास् > शिष्यः, वृ > वृत्यः, आदृ > आदृत्यः, जुष् > जुष्यः। (२) (मृजेर्विभाषा) मृज् > मृज्यः। (३) (भृञोऽसंज्ञायाम्) भृ > भृत्यः (नौकर)। (४) (विभाषा कृवृषोः) कृ > कृत्यम्, वृष् > वृष्यम्। कृ से ण्यत् होकर कार्यम् भी बनेगा।

अभ्यास ४६

संस्कृत बनाओ—(क) (समिध्, अप् शब्द) १. समिधाओं से अग्नि प्रदीप्त होती है (समिन्ध्)। २. हम समिधा लाने के लिए जा रहे हैं। ३. जल हमारे सुख और इष्ट-प्राप्ति के लिए हो। ४. जल में ओषधि के गुण हैं। ५. जल सुखप्रद है। (ख) (सु धातु) १. उसने गिलोय का रस निचोड़ा (सु)। २. प्राचीन काल में यज्ञों में सोमलता का रस निचोड़ा जाता था। ३. मूर्खता दोषों को छिपा लेती है (संवृ)। ४. रक्षारूपी योग से यह भी प्रतिदिन तप का संचय करता है (संचि)। ५. वह मन के लड्डू खाता है (चि)। (ग) (कृत्य प्रत्यय) १. अतः परीक्षा करके गुप्त प्रेम करना चाहिए। २. सुशिष्य को दी हुई विद्या के तुल्य तुम अशोचनीय हो गई हो। ३. सारी अवस्थाओं में सुन्दर व्यक्ति रमणीय होते हैं। ४. इसको अँगूठी कैसे मिली, इस पर विचार करना चाहिए। ५. भूख मुझे खा जायगी। ६. ब्राह्मण को निःस्वार्थभाव से षडङ्ग वेदों को पढ़ना चाहिए और जानना चाहिए। ७. उसके एक अंश का अभिनय किया गया। ८. मूर्ख की बुद्धि दूसरे के विश्वास पर चलती है। ९. वह नींद के अधीन हो गया। १०. स्वहितपरायण नहीं होना चाहिए। ११. ऐसे लोग सभी की हँसी के पात्र होते हैं। १२. अतिथि-विशेष का सम्मान करना चाहिए। १३. पापी निन्दा को प्राप्त होता है। १४. वह कायर है, इसलिए निन्दा को प्राप्त हुआ। १५. तुम मेरी ओर से राजा से कहना। (घ) (पंचमी) १. वह आय से अधिक व्यय करता है। २. मैंने तुम्हारे विश्वास पर और हित समझकर ऐसा किया है। ३. लाचार होकर मैंने चोरी की। ४. यह मेरे शरीर से अपृथक् है। ५. झगड़ालू झगड़े से बाज नहीं आता। ६. अतिपरिचय से तिरस्कार होता है, निरन्तर किसीके घर जाने से अनादर होता है। ७. वह रास्ता भूल गया। ८. कहने से करना अच्छा है। ९. कठिन समय में भी धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए। (ङ) (पक्षिवर्ग) पक्षियों की मधुर ध्वनि किसके मन को बलात् नहीं हर लेती। वनों और उपवनों में पक्षी मधुर संगीत करते हैं। कबूतर, कोयल, हंस, बगुले, बतख, तोता, मैना, कौवे, चील, गिद्ध, बाज, खंजन, नीलकंठ, कठफोड़ा, चातक, चकवा, चकवी ये सभी आकाश में उड़ते हैं और मनोरंजन करते हैं। पक्षी वृक्षों में घोंसले बनाकर रहते हैं। भौंरे और मधुमक्खी पुष्पों का पराग ले लेते हैं। मधुमक्खियाँ शहद तैयार करती हैं।

संकेत :—(क) १. समिध्यते। ३. शन्नो देवीरभिष्टये आपः। ४. अप्सु भेषजम्। ५. आपो हि ष्ठा मयोभुवः। (ख) १. अमृतवल्लरीम्। २. सूयते स्म। ३. संवृणोति खलु दोषमज्ञता। ४. रक्षायोगात्। ५. गगनकुसुमानि चिनोति। (ग) १. अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् संगतं रहः। ३. रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम्। ४. अङ्गुलीयकदर्शनमस्य विमर्शयितव्यम्। ५. बुभुक्षया खादितव्योऽस्मि। ६. ब्राह्मणेन निष्कारणः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च। ७. एकदेशोऽभिनेयार्थः कृतः। ८. मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः। ९. निद्राविधेयतां गतः। १०. भाव्यम्। ११. उपहास्यतामुपयान्ति। १२. संमान्यः। १३. वाच्यतां याति। १४. कातरः। १५. मद्वचनात्। (घ) २. त्वत्प्रत्ययात्, अवेक्ष्य। ३. गत्यन्तराभावात्। ४. अव्यतिरिक्तः। ५. कलहकामः कलहान्न निवर्तते। ६. अवज्ञा, सन्ततगमनात्। ७. मार्गात् भ्रष्टः। ८. वाचः कर्मातिरिच्यते। ९. त्याज्यम्।

शब्दकोष-११५०+२५=११७५] **अभ्यास ४७** (व्याकरण)

(क) अर्णवः (समुद्र), आपगा (नदी), सरस् (नपुं०, तालाब), सरसी (स्त्री०, झील), ह्रदः (बड़ी झील), आहावः (१. हौज, २. टैंक), तोयम् (जल), वीचिः (स्त्री०, तरंग), आवर्तः (भँवर), कूलम् (तट), सैकतम् (रेतीला किनारा), कर्दमः (कीचड़), नौः (नाव), पोतः (पानी का जहाज), कर्णधारः (नाविक, खेवैया), मीनः (मछली), कुलीरः (केकड़ा), कच्छपः (कछुआ), नक्रः (मगर), भेकः (मेढक)। (२०)। **(ख)** विद् (पाना), लिप् (लीपना), सिच् (सींचना), कृत् (काटना), सृज् (बनाना)। (५)।

व्याकरण (गिर्, पुर्, इष्, प्रच्छ्, घञ् प्रत्यय)

१. गिर् और पुर् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ५७, ५८)

२. इष् और प्रच्छ् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ७३, ७४)

नियम २३३—(१. भावे, २. अकर्तरि च कारके०) धातु का अर्थ बताने में तथा कर्ता को छोड़कर अन्य कारक का अर्थ बताने के लिए घञ् प्रत्यय होता है। घञ् का अ शेष रहता है। घञन्त शब्द पुंलिंग होता है। जैसे—हस् > हासः (हँसी), पच् > पाकः (पकना)। घञन्त के साथ कर्म में षष्ठी होती है। भोजनस्य पाकः, रामस्य हासः।

नियम २३४—घञ् (अ) प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए ये नियम स्मरण कर लें :—(१) धातु के अन्तिम इ ई, उ ऊ और ऋ ॠ को वृद्धि होकर क्रमशः ऐ, औ, आर् होंगे। धातु की उपधा के अ को आ, इ को ए, उ को ओ और ऋ को अर् होगा। चि > कायः, नी > नायः, प्रस्तु > प्रस्तावः, भू > भावः, कृ > कारः, विकारः, प्रकारः, उपकारः आदि, संस्कृ > संस्कारः, अवतॄ > अवतारः। पठ् > पाठः, लिख् > लेखः, रुध् > रोधः, विरोधः आदि। (२) (चजोः कु घिण्ण्यतोः) च् को क् और ज् को ग् होगा। पच् > पाकः, शुच् > शोकः, सिच् > सेकः, त्यज् > त्यागः, भज् > भागः, भुज् > भोगः, मृज् > मार्गः, यज् > यागः, युज् > योगः, रुज् > रोगः। (३) इन धातुओं के ये रूप होते हैं—(क) (घञि च भाव०) भाव और करण में रञ्ज् के न् का लोप। रञ्ज् > रागः। अन्यत्र रङ्गः। (ख) (निवासचिति०) चि के च् को क् होगा निवास, समूह, शरीर और ढेर अर्थ में। चि > कायः। निकायः, गोमयनिकायः। (ग) (मृजेर्वृद्धिः) मृज् > मार्गः। अपामार्गः। (घ) (उपसर्गस्य घञि०) उपसर्गों को विकल्प से दीर्घ होता है। प्रतीहारः, परीहारः, अपामार्गः। (ङ) (नोदात्तोपदेशस्य०) म् अन्तवाली धातुओं को प्रायः वृद्धि नहीं होगी। शमः, दमः, विश्रमः। (अनाचमि०) आचम्, कम्, वम् को वृद्धि होगी। आचामः, कामः, वामः। रम् का रामः होगा। विश्राम शब्द अपाणिनीय है।

नियम २३५—इन स्थानों पर घञ् होता है—(१) (इङश्च) इ धातु से। उप + अधि + इ (आ०) > उपाध्यायः। (२) (उपसर्गे रुवः) उपसर्ग पहले हो तो रु धातु से। संरावः। अन्यत्र रवः। (३) (श्रिणीभुवो०) उपसर्गरहित श्रि नी और भू धातु से। श्रायः, नायः, भावः। अन्यत्र प्रश्रयः, प्रणयः, प्रभवः। (४) (प्रे द्रुस्तुस्रुवः) प्रपूर्वक द्रु स्तु स्रु धातु से। प्रद्रावः, प्रस्तावः, प्रस्रावः। (५) (उन्योर्ग्रः) उत् और नि पूर्वक गॄ धातु से। उद्गारः, निगारः। (६) (परिन्योर्नीणोः०) परिणी और नि + इ (पर०) धातु से द्यूत और उचित अर्थ में। परिणायः, न्यायः।

अभ्यास ४७

संस्कृत बनाओ—(क) (गिर्, पुर् शब्द) १. भगवन्, अपने क्रोध को रोको, इस प्रकार जब तक देवों की वाणी आकाश में फैली, तब तक शिव के नेत्रों से उत्पन्न अग्नि ने मदन को भस्मसात् कर दिया। २. आप लोगों की प्रिय वाणी से ही मेरा आतिथ्य हो गया। ३. उस बात के समाप्त होने पर वे वचन बोले। ४. यह नगरी (पुर्) देवभूमि के तुल्य है। ५. राजा भोज की नगरी में सभी संस्कृतज्ञ विद्वान् रहते थे। वहाँ न चोर थे, न जुआरी, न शराबी, न कबाबी। (ख) (इष्, प्रच्छ्) १. मैं चाहता हूँ कि आपकी कुछ सेवा कर सकूँ और आप मुझे स्मरण करें। २. ब्राह्मण से कुशल पूछे और क्षत्रिय से अनामय। ३. अपने साथी से बिदाई लो (आप्रच्छ्)। ४. बछड़ा सहस्रों गायों में भी अपनी माँ को ढूँढ़ लेता है (विद्)। ५. अन्धकार शरीर पर लिप्त-सा हो रहा है (लिप्)। ६. कन्याएँ पौधों को सींच रही हैं (सिच्)। ७. चाकू से पेन्सिल को काटता है। ८. मकड़ी अपने शरीर से ही धागे को उत्पन्न करती है (सृज्)। ९. कौन भला उष्ण जल से नवमालिका को सींचता है (सिच्) ? १०. रोगी से पूछो, सुख से सोया या नहीं ? ११. तुमने घोर अन्धकार दूर किया (नुद्)। १२. घोर अन्धकार में मेरी अन्तरात्मा डूब-सी रही है (मस्ज्)। १३. भड़भूजा भाड़ में चने भूनता है (भ्रस्ज्)। (ग) (घञ् प्रत्यय) १. प्रसंग के अनुकूल ही कहना चाहिए। २. उर्वशी लक्ष्मी को भी मात करती है। ३. वह कहानी समाप्त हुई। ४. इसका प्रेम बहुत गहरा हो गया है। ५. तूने पिता के द्वारा दिए हुए पैसे को कैसे खर्च किया ? ६. वह सदा के लिए सो गई। ७. सन्तान न होने से वह बहुत दुःखित हुआ। ८. हिम्मत न हारना वैभव का मूल है। ९. तुम्हारे दुःख का क्या कारण है ? १०. जब आँखें चार होती हैं, मुहब्बत हो ही जाती है। ११. तालाब में पानी बढ़ जाए तो उसको निकाल देना ही उसका प्रतिकार है। १२. हृदय शोक से क्षुब्ध होने पर विलाप से ही सँभलता है। (घ) (पंचमी) १. कीचड़ को धोने से न छूना ही अच्छा है। २. चोर अपमानसहित नगर से निकाला गया। ३. उपदेश देने की अपेक्षा स्वयं करना अच्छा है। ४. तेजोमय ज्योति पृथ्वी से नहीं निकलती। (ङ) (वारिवर्ग) जल जीवन है। तालाब हो या झील, नदी हो या समुद्र, सर्वत्र जल का महत्त्व है। समद्र का जल ही भाप बनकर बादल और मानसून का रूप ग्रहण करता है और बरसता है। मगर, कछुए, मछली, मेढक, केकड़े आदि जल में सुख से विचरण करते हैं। जल में तरंग, भँवर और कीचड़ भी होते हैं। नाविक नौका और जहाजों को जल में चलाते हैं।

संकेत—(क) १. संहर, यावद् गिरः खे मरुतां चरन्ति। २. सूनृतया। ३. अवसिते, गिरमुज्जगार। ५. द्यूतकाराः, मांसाशिनः। (ख) १. कार्यलवोपपादनोपयोगेन स्मारयितुमात्मानम्। २. ब्राह्मणम्। ३. आपृच्छस्व सहचरम्। ४. धेनुसहस्रेषु, विन्दति। ५. लिम्पतीव तमोऽङ्गानि। ६. सिञ्चन्ति। ७. कृन्तति। ८. तन्तुनाभः, तन्तून् सृजति। १०. रुग्णं सुखशयितं पृच्छ। ११. अदस्त्वया नुन्नमनुत्तमं तमः। १२. मज्जतीव। १३. भ्राष्ट्रमिन्धो भ्राष्ट्रे, भृज्जति। (ग) १. प्रस्तावसदृशम्। २. प्रत्यादेशः श्रियः। ३. विच्छेदमाप। ४. अतिभूमिं गतः। ५. द्रव्यस्य कथं विनियोगः कृतः। ६. अप्रबोधाय। ७. सन्ततिविच्छेदात्। ८. अनिर्वेदः। ९. किंनिमित्तं ते सन्तापः। १०. तारामैत्रकं चक्षूरागः। ११. पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाहः प्रतिक्रिया। १२. शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते। (घ) १. प्रक्षालनाद् हि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्। २. सनिकारं निर्वासितः। ३. शासनात् करणं श्रेयः। ४. न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्। (ङ) बाष्परूपेण परिणम्य, जलदागमस्य, संचालयन्ति।

शब्दकोष-११७५+२५=१२००] **अभ्यास ४८** (व्याकरण)

(क) गात्रम् (शरीर), शिरस् (नपुं०, शिर), शिरोरुहः (बाल), शिखा (चोटी), पलितम् (सफेद बाल), ललाटम् (माथा), लोचनम् (नेत्र), घ्राणम् (नाक) आस्यम् (मुँह), रसना (जीभ), रदनः (दाँत), श्रोत्रम् (कान), कण्ठः (गला), ग्रीवा (गर्दन), स्कन्धः (कंधा), जत्रु (नपुं०, कंधे की हड्डी), कूर्चम् (दाढ़ी), श्मश्रु (नपुं० मूँछ), कपोलः (गाल), ओष्ठः (ओठ), अधरः (नीचे का होठ), भ्रूः (स्त्री०, भौं), पक्ष्मन् (नपुं०, पलक), वक्षस् (नपुं०, छाती), कुक्षिः (पुं०, पेट)। (२५)

व्याकरण—(दिश्, उपानह्, लिख्, स्पृश्, तृच्, अच्, अप्)

१. दिश् और उपानह् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ५९, ६०)

२. लिख् और स्पृश् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ७५, ७६)

नियम २३६—(ण्वुल्तृचौ) धातु से 'वाला' (कर्ता) अर्थ में तृच् प्रत्यय होता है। तृच् का 'तृ' शेष रहता है। जैसे—कृ > कर्तृ (करनेवाला), हृ > हर्तृ (हरनेवाला)। कर्ता के अनुसार इसके लिंग, विभक्ति और वचन होते हैं। पुंलिंग में इसके रूप कर्तृ शब्द (शब्द० सं० ११) के तुल्य चलेंगे। स्त्रीलिंग में अन्त में 'ई' लगाकर नदी (शब्द० ४३) के तुल्य और नपुं० में कर्तृ (शब्द० ६७) के तुल्य रूप चलेंगे। प्रायः सभी धातुओं से तृच् प्रत्यय लगता है। तृच् प्रत्ययान्त के साथ कर्म में षष्ठी होती है। पुस्तकस्य कर्ता, धर्ता, हर्ता वा। धातु को गुण होता है।

नियम २३७—तृच् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए ये नियम स्मरण कर लें। रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि धातु के तुमुन्-प्रत्ययान्त रूप में से तुम् के स्थान पर तृ लगाने से तृच् प्रत्ययान्त रूप बन जाता है। तृच् का प्र० १ में ता होता है। नियम २१७ (क) से (ज) पूरा लगेगा। (क) धातु को गुण होगा। कृ > कर्तुम्=कर्तृ। हर्ता, धर्ता, भर्ता। जेता, चेता, भविता। (ख) सेट् में इ लगेगा, अनिट् में नहीं। पठिता, लेखिता, रोदिता। (ग) पक्ता, भोक्ता, छेत्ता। (घ) प्रष्टा, प्रवेष्टा, स्रष्टा। (ङ) आह्वाता, गाता। (च) गन्ता, रन्ता। (छ) दग्धा, द्रोग्धा, दोग्धा, लेढा, वोढा। (ज) सोढा, वोढा, स्रष्टा, द्रष्टा, आरोढा, ग्रहीता प्र० एक० में।

नियम २३८—(१) (पचाद्यच्) पच् आदि धातुओं से अच् प्रत्यय होता है। अच् का अ शेष रहता है। अच् लगाने से संज्ञाशब्द बन जाते हैं। धातु को गुण होता है। पुंलिंग होता है। रामवत् रूप होंगे। पच् > पचः। इसी प्रकार नदः, चोरः, देवः, चरः, चलः, पतः, वदः, मरः, क्षमः, कोपः, व्रणः, सर्पः, दर्पः आदि। (२) (एरच्) इ या ई अन्तवाली धातुओं से अच् (अ) प्रत्यय होता है। गुण ए होकर अय् आदेश। चि > चयः, जि > जयः, नी > नयः। आश्रि > आश्रयः। इसी प्रकार प्रश्रयः, विनयः, प्रणयः।

नियम २३९—(ॠदोरप्) दीर्घ ॠ, उ या ऊ अन्तवाली धातुओं से अप् (अ) प्रत्यय होता है। गुण होता है, पुंलिंग होगा। कॄ > करः, गॄ > गरः। यु > यवः, स्तु > स्तवः। पू > पवः, भू > भवः।

अभ्यास ४८

संस्कृत बनाओ—(क) (दिश्, उपानह् शब्द) १. दिशाएँ स्वच्छ हो गईं और हवा सुखद बहने लगी। २. वायु प्रत्येक दिशा में मकरन्द को फैला रही है (कृ)। ३. दक्षिण दिशा में सूर्य का भी तेज मन्द हो जाता है। ४. कुत्ते को यदि राजा बना दिया जाता है तो क्या वह जूता नहीं चाटता ? ५. जूता पैर में हो तो सारी पृथ्वी चमड़े से ढकी-सी दीखती है। (ख) (लिख्, स्पृश् धातु) १. अरसिकों को कविता सुनाना मेरे भाग्य में मत लिखना। २. रात्रि ने तारे रूपी अक्षरों से आकाश में अन्धकार की प्रशस्ति लिखी है। ३. उसने शिर, वाल, आँख, नाक, कान और पेट को छुआ ? ४. हाथी छूता हुआ भी मार डालता है। ५. वह सोलह वर्ष का हो गया। ६. बिना धन के भी वीर बहुत सम्मानवाले उन्नति के पद को पाता है। ७. किसपर दोष डालूँ (निक्षिप्) ? (ग) (तृच् आदि प्रत्यय) १. कौन शरीर को शान्ति देनेवाली शरत्कालीन चाँदनी को वस्त्र से रोकता है ? २. विषय ऊपर से मनोहर लगते हैं, पर उनका अन्त दुःखद होता है। ३. विद्वानों के लिए कुछ भी अज्ञात नहीं है। ४. विनय सज्जनों को प्रिय क्यों न हो, क्योंकि वह योगियों को मुक्ति देता है। ५. लता ही नहीं रही तो फूल कहाँ ? ६. जिसको तुम आग समझते थे, वह स्पर्श के योग्य रत्न है। (घ) (षष्ठी) १. ऋषियों के लिए क्या परोक्ष है ? २. वीरों का निश्चय कठोर कर्मोंवाला होता है, वह प्रेम-मार्ग को छोड़ देता है। ३. उसमें ईर्ष्या नाममात्र को नहीं है। ४. उसे खाना खाए आज तीसरा दिन है। ५. तुम्हारी बात सत्य-सी प्रतीत होती है। ६. वर्षा हुए दो सप्ताह हो गए। ७. भूकम्प आए एक महीना हो गया। ८. उसका मुँह हर्ष से खिल गया। ९. उसका मुख कमल की शोभा को धारण करता है। १०. उसका सौन्दर्य अवर्णनीय है। (ङ) (शरीरवर्ग) शरीर ही मुख्यतः धर्म का साधन है। शरीर को स्वस्थ रखना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। स्वच्छ वायु में भ्रमण और व्यायाम से शरीर स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट रहता है। नियमित रूप से स्नान करे और शिर, हाथ, नाक, आँख, कान, गर्दन, कन्धा, छाती, पेट, जाँघ, पैर और मुँह को जल से या साबुन से धोवे। शिर में तेल डाले, माथे पर तिलक लगावे, आँख में अंजन लगावे। दाढ़ी को उस्तरे से साफ करे, मूँछ को साफ रखे, नाखूनों को नेल-कटर (नहरनी) से काटे। अंगुष्ठ, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा, इन पाँचों अँगुलियों को पुष्ट रखे।

संकेतः-(क) १. प्रसेदुः, मरुतो ववुः सुखाः। २. दिशि दिशि, किरति। ३. दक्षिणस्यां, मन्दायते। ४. क्रियते, नाश्नात्युपानहम्। ५. उपानद्गूढपादस्य सर्वा चर्मावृतेव भूः। (ख) १. अरसिकेषु कवित्वनिवेदनं शिरसि मा लिख। २. ताराक्षरैः, तमःप्रशस्तिम्। ४. स्पृशन्नपि गजो हन्ति। ५ षोडशवर्षवयोऽवस्थामस्पृशत्। ६. स्पृशति बहुमानोन्नतिपदम्। (ग) १. शरीरनिर्वापयित्रीम्, वारयति २. आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः। ३. धीमताम्, अविषयः। ४. योगिनां परिणमन् विमुक्त केन नास्तु विनयः सतां प्रियः। ५. लतायां पूर्वलूनायां प्रसवस्योद्भवः कुतः। ६. आशङ्कसे यदि (घ) १. किमृषीणाम्। २. वीराणां समयो हि दारुणरसः स्नेहक्रमं बाधते। ३. अदत्तावकाशो मत ४. कृताहारस्य तस्य। ५. सत्यमिव प्रतिभाति। ६. सप्ताहद्वयं वृष्टस्य देवस्य। ७. मासै कम्पितायाः। ८. हर्षोत्फुल्लं बभौ। ९. उद्वहति। १०. श्रीर्वचनानामविषया। (ङ) श फेनिलेन प्रमार्जयेत्, निक्षिपेत्, दद्यात्, कृन्तेत्, नखनिकृन्तनेन, कृन्तेत्।

शब्दकोष-१२००+२५=१२२५] **अभ्यास ४९** (व्याकरण)

(क) पृष्ठम् (पीठ), श्रोणिः (स्त्री०, कमर), ऊरुः (पुं०, जंघा), जानुः (पुं०, घुटना), गुल्फः (टखना, पैर के जोड़ की हड्डी), बाहुः, (बाँह), कफोणिः (स्त्री०, कोहनी), मणिबन्धः (कलाई), चपेटः (चपत), मुष्टिः (स्त्री०, मुट्ठी), करभः (कलाई से कनी अँगुलि तक हाथ का बाहरी भाग), नाडिः (स्त्री०, नाड़ी), शिरा (स्त्री०, नस), फुप्फुसम् (फेफड़ा), हृदयम् (हृदय), यकृत् (नपुं०, जिगर), प्लीहा (तिल्ली), अन्त्रम् (आँत), पृष्ठास्थि (नपुं०, रीढ़), शुक्रम् (वीर्य), रजस् (रज), रुधिरम् (खून), आमिषम् (मांस), वसा (चर्बी), मज्जा (हड्डी के अन्दर की चर्बी)। (२५)

व्याकरण (वारि, दधि, कॄ, गॄ, ल्युट्, ण्वुल्, ट प्रत्यय।)

१. वारि और दधि शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ६२, ६३)

२. कॄ और गॄ धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ७७, ७८)

नियम २४०—(ल्युट् प्रत्यय) (१) (ल्युट् च) भाववाचक शब्द बनाने के लिए धातु से ल्युट् प्रत्यय होता है। ल्युट् के यु को 'अन' हो जाता है। अन प्रत्ययान्त शब्द नपुं० होते हैं। धातु को गुण होता है। ल्युट् (अन) प्रत्यय में भी वही नियम लगते हैं जो अनीय प्रत्यय में लगते हैं। देखो नियम २२६। गम् > गमनम् (जाना)। इसी प्रकार पठनम्, लेखनम्, जयनम्, पूजनम्। कृ > करणम्। हरणम्, भरणम्, मरणम्, रोदनम्। (२) (करणाधिकरणयोश्च) करण और अधिकरण अर्थों में भी ल्युट् (अन) होता है। यानम् (जिससे जाते हैं, सवारी), स्थानम् (जहाँ बैठते हैं), उपकरणम् (जिससे काम करते हैं, साधन), आवरणम् (जिससे ढकते हैं)। (३) (कर्मणि च येन०) कर्ता को सुख मिले तो कर्म पहले होने पर धातु से ल्युट् (अन)। नित्य-समास होगा। पयःपानं सुखम्। (४) (नन्दिग्रहि०) नन्द् आदि से ल्यु (अन) होता है। नन्दनः, जनार्दनः, मधुसूदनः।

नियम २४१—(ण्वुल्तृचौ) करनेवाला (कर्ता) अर्थ में धातु से ण्वुल् प्रत्यय होता है। ण्वुल् के वु को 'अक' हो जाता है। नियम २३४ के तुल्य वृद्धि होगी। कर्ता के तुल्य इसके लिंग होंगे। पुं० में रामवत्, स्त्रीलिंग में 'इका' अन्त में होगा और रमावत्, नपुं० में ज्ञानवत्। कृ > कारकः (करनेवाला), कारिका, कारकम्। पाठकः, लेखकः, हारकः, उपकारकः, सेवकः। (१) (आतो युक्०) आकारान्त धातु में बीच में य् लगेगा। दा > दायकः, धा > धायकः, पा > पायकः। (२) (नोदात्तोपदेशस्य०) इनमें वृद्धि नहीं होगी। शमकः, दमकः, गमकः, यमकः। जन् को भी वृद्धि नहीं होती है। जनकः। (३) इन धातुओं के ये रूप होते हैं— हन् > घातकः, वध् > वधकः, रन्ध् > रन्धकः, रभ् > रम्भकः, लभ् > लम्भकः।

नियम २४२—(ट प्रत्यय) इन स्थानों पर ट (अ) होता है-(१) (चरेष्टः) अधिकरण पहले होने पर चर् धातु से। कुरुचरः। (२) (भिक्षासेना०) भिक्षा आदि पहले हों, तो चर् धातु से। भिक्षाचरः, सेनाचरः, आदायचरः। (३) (पुरोऽग्रतो०) पुरः आदि पहले हों तो सृ धातु से। पुरस्सरः, अग्रतस्सरः, अग्रेसरः, अग्रसरः। (४) (कृञो हेतु०) कृ धातु से हेतु, स्वभाव और अनुकूल अर्थ में। यशस्करी विद्या, श्राद्धकरः, वचनकरः। (५) (दिवाविभानिशाप्रभा०) दिवा आदि पहले हों तो कृ धातु से। दिवाकरः, विभाकरः, निशाकरः, प्रभाकरः, भास्करः, किंकरः, लिपिकरः, चित्रकरः। (६) (कर्मणि भृतौ) कर्म पहले हो तो कृ धातु से। कर्मकरः (नौकर)।

अभ्यास ४९

संस्कृत बनाओ—(क) (वारि, दधि शब्द) १. जिस प्रकार फावड़े से खोदकर मनुष्य जल पा लेता है, उसी प्रकार छात्र सेवा से गुरुगत विद्या को प्राप्त कर लेता है। २. एक बार चन्द्रमा ने समुद्र के विमल (शुचि) जल में पड़े हुए अपने प्रतिविम्ब को देखा और उसने खेदपूर्वक तारा के मुख का स्मरण किया। ३. दूध दही के रूप में परिणत होता है। ४. दही मीठा है, मधु मधुर है, अंगूर मीठे हैं, चीनी भी मीठी है। जिसका मन जिसमें लग गया, उसके लिए वही मीठा है। (ख) (कृ, गृ धातु) १. यह कोई वीर बालक सेनाओं के ऊपर बाणरूपी हिम को डाल रहा है (कृ)। २. हवा प्रत्येक दिशा में पराग को फैला रही है (कृ)। ३. हरिचरणों में यह फूलों की अंजलि डाल दी है (प्रकृ)। ४. घोड़े खुरों से धूलि को उठा रहे हैं (उत्कृ)। ५. तेरी तलवार शत्रुओं के अंगों को टुकड़े-टुकड़े कर दे (विकृ)। ६. बैल प्रसन्नचित्त हो मिट्टी खोदता है, अन्नार्थी मुर्गा कूड़े को खोदता है, कुत्ता सोने के लिए मिट्टी खोदता है (अपस्कृ, आ०)। ७. रोगी दवा की गोली को निगलता है (गृ)। ८. राजा ने वचन कहा (उद्गृ)। ९. साँप विष को उगलता है (उद्गृ)। १०. बालक अन्न के ग्रास को निगलता है (निगृ)। ११. वह शब्द को नित्य मानता है (संगृ, आ०)। (ग) (ल्युट् आदि) १. उसने राष्ट्रपतिजी से भेंट की। २. मैं राष्ट्रपतिजी से मिलना चाहता हूँ। ३. मधुर आकृतिवालों के लिए क्या मण्डन नहीं है? ४. जीवन में हँसना, रोना, मरना, जीना, उत्थान, पतन लगा ही रहता है। ५. विद्या यशस्करी है। ६. अधिक खेलने के कारण मुझे बहुत ताना सहना पड़ा है। (घ) (षष्ठी) १. वह मेरा निःस्वार्थ बन्धु है। २. वह मेरा विश्वासपात्र है। ३. राजा के पास जाता हूँ। ४. वह सत्कार मेरे मनोरथों से भी परे था। ५. लक्ष्मण तुम्हारी याद करता है। ६. वह शिशु पर दया करता है। ७. यदि अपने-आपको सँभाल सका तो विदेश जाऊँगा। ८. आपका शिष्यों पर पूरा अधिकार है। ९. पाणिनि वैयाकरणों में श्रेष्ठ हैं। १०. वह साहसियों में धुरीण और विद्वानों में अग्रणी है। ११. क्या तुम पति को याद करती हो? (ङ) (शरीरवर्ग) शरीर की सुरक्षा के लिए प्राणायाम अनिवार्य है। प्राणायाम से फेफड़ों की सफाई होती है। प्राणायाम से शरीर के प्रत्येक अंग में शुद्ध वायु पहुँचती है। पीठ, कमर, घुटना, टखना, कोहनी, कलाई, मुट्ठी, हृदय, आँत, नसें, नाड़ियाँ, सभी को प्राणायाम से लाभ होता है। वैद्यक के अनुसार वात, पित्त और कफ के विकार से ही शरीर में सभी रोगों की उत्पत्ति होती है। ठीक आहार और विहार से शरीर नीरोग रहता है।

संकेत—(क) १. खनन् खनित्रेण, अधिगच्छति। २. शुचिनि, संक्रान्तम्, सस्मार। ३. दधिभावेन। ४. सिता, तस्य तदेव हि मधुरम्। (ख) १. शरतुषारं किरति। ३. प्रकीर्णः। ४. उत्किरन्ति। ५. लवशो विकिरतु। ६. अपस्किरते। ७. गोलिकाम्। ८. उज्जगार। ९. उद्गिरति। १०. निगिरति। ११. शब्दं नित्यं संगिरते। (ग) १. राष्ट्रपतिदर्शनं लेभे। २. राष्ट्रपतिदर्शनानुग्रहमिच्छामि। ३. किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्। ४. वरीवर्ति। ६. क्रीडातिशयमन्तरेण महदुपालम्भनं गतोऽस्मि। (घ) १. निष्कारणः। २. विश्रम्भभूमिः। ३. उपैमि। ४. मनोरथानामप्यभूमिः। ५. अध्येति तव। ६. शिशोः दयते। ७. आत्मनः प्रभविष्यामि। ८. प्रभवत्यार्यः शिष्यजनस्य। १०. धौरेयः साहसिकानामग्रणीर्विदग्धानाम्। ११. कच्चिद्भर्तुः स्मरसि।

शब्दकोष-१२२५+२५=१२५०] **अभ्यास ५०** (व्याकरण)

(क) कञ्चुकः (कुर्ता), कञ्चुलिका (ब्लाउज), अधोवस्त्रम् (धोती), शाटिका (साड़ी), पादयामः (पायजामा), प्रावारः (कोट), प्रावारकम् (शेरवानी), बृहतिका (ओवरकोट), आप्रपदीनम् (पैंट), अन्तरीयम् (पेटीकोट), अर्धोरुकम् (अण्डरवीयर, जाँघिया), नक्तकम् (नाइट ड्रेस), प्रच्छदपटः (ओढ़नी, चुन्नी), स्यूतवरः (सलवार), रल्लकः (लोई), नीशारः (रजाई), तूलसंस्तरः (गद्दा), आस्तरणम् (दरी), प्रच्छदः (चादर), उपधानम् (तकिया), ऊर्णावरकम् (स्वेटर)। (२१)। (घ) कार्पासम् (सूती), कौशेयम् (रेशमी), राङ्कवम् (ऊनी), नवलीनकम् (नाइलोन का)। (४)

व्याकरण (अक्षि, अस्थि, क्षिप्, मृ, क, खल्, णिनि प्रत्यय)

१. अक्षि और अस्थि शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ६४, ६५)

२. क्षिप् और मृ धातुओं के रूप स्मरण करो (देखो धातु० ७९, ८०)

नियम २४३—(क प्रत्यय) इन स्थानों पर क (अ) प्रत्यय होता है। क का 'अ' शेष रहता है। धातु को गुण नहीं होगा। धातु के अन्तिम आ का लोप होता है। 'वाला' (कर्ता) अर्थ में क प्रत्यय होता है। (१) (इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः) जिन धातुओं की उपधा में इ, उ, ऋ हो उनसे तथा ज्ञा, प्री, कॄ धातु से क प्रत्यय। लिख् > लिखः (लेखक), बुध् > बुधः (विद्वान्), कृश् > कृशः (निर्बल), ज्ञा > ज्ञः, प्री > प्रियः (प्रिय), कॄ > किरः (बखेरनेवाला)। (२) (आतश्चोपसर्गे) उपसर्ग पहले हो तो आकारान्त धातु से क (अ)। क होने पर आ का लोप होता है। प्र+ज्ञा > प्रज्ञः। विज्ञः, सुज्ञः, अभिज्ञः, आ+ह्वा > आह्वः, प्रह्वः। (३) (आतोऽनुपसर्गे कः) उपसर्ग-भिन्न कोई कर्म पहले हो तो आकारान्त धातु से क। दा > सुखदः, दुःखदः, गोदः। त्रा > आतपत्रम्, गोत्रम्, पुत्रः, क्षत्रः। पा > द्विपः, गोपः, महीपः, पादपः। (४) (सुपि स्थः) कोई शब्द पहले हो तो आकारान्त और स्था धातु से क। पा > द्विपः। स्था > समस्थः, विषमस्थः। (५) (मूलविभुजादिभ्यः कः) मूलविभुज आदि में क होता है। मूलविभुजः, महीध्रः, कुध्रः। (६) (गेहे कः) ग्रह् धातु से गृह अर्थ में क। ग्रह् > गृहम्।

नियम २४४—(खल् प्रत्यय) (ईषद्दुःसुषु०) ईषत्, दुर् या सु पहले हो तो धातु से खल् (अ) प्रत्यय ही होता है, कठिन या सरल अर्थ में। धातु को गुण होगा। ईषत्करः, दुष्करः, सुकरः। दुर्लभः, सुलभः, दुर्गमः, सुगमः, दुर्जयः, सुजयः, दुःसहः, सुसहः।

नियम २४५—(णिनि प्रत्यय) इन स्थानों पर णिनि (इन्) प्रत्यय होता है। नियम २३४ (१) के तुल्य वृद्धि या गुण। पुं० में करिन् के तुल्य, स्त्री० में ई लगाकर नदीवत्, नपुं० में वारिवत्। (१) (नन्दिग्रहि०) ग्रह् आदि धातुओं से णिनि (इन्)। ग्रह् > ग्राही। स्थायी, मन्त्री। (२) (सुप्यजातौ णिनिः०) जाति-भिन्न कोई शब्द पहले हो तो धातु से णिनि होगा, स्वभाव अर्थ में। भुज् > उष्णभोजी, आमिषभोजी, निरामिषभोजी। शाकाहारी, मांसाहारी, मिथ्यावादी, मित्रद्रोही, मनोहारी। वस् > निवासी, प्रवासी। कृ > उपकारी, अपकारी, अधिकारी। (३) (साधुकारिणि) अच्छा करने अर्थ में। साधुदायी। (४) (कर्तर्युपमाने) उपमान अर्थ में। उष्ट्रक्रोशी, ध्वांक्षरावी। (५) (व्रते) व्रत में। स्थण्डिलशायी। (६) (मनः, आत्ममाने खश्च) अपने को समझने अर्थ में मन् धातु से णिनि और खश् (अ)। शब्द के अन्त में खश् में म् लगेगा। पण्डितमानी, पण्डितंमन्यः।

अभ्यास ५०

संस्कृत बनाओ—(क) (अक्षि, अस्थि शब्द) १. वह आँख से काणा है। २. उसकी आँख में तिनका गिर गया (पत्)। ३. उसे जागते ही रात बीती। ४. कुत्ता हड्डी चाटता है। ५. हड्डियों में फासफोरस भी होता है। (ख) (क्षिप्, मृ धातु) १. नौकर पर दोष लगाता है (क्षिप्)। २. हे मूर्ख सुनार, तू मुझे बार-बार आग में क्यों डालता है (क्षिप्)? जलने पर मेरे अन्दर गुण और बढ़ जाते हैं और मैं खरा सोना हो जाता हूँ। ३. जल में पत्थर फेंकता है (क्षिप्)। ४. उसने सूक्ष्म वस्त्र फेंककर (अवक्षिप्) मुनिवस्त्र पहने। ५. उसने कृष्ण की निन्दा की (अवक्षिप्)। ६. अरे मूर्ख, क्यों इस प्रकार अपमान कर रहा है (आक्षिप्)। ७. बालक ने ढेला ऊपर फेंका (उत्क्षिप्)। ८. वह स्त्री अपना आभूषण सुनार के पास धरोहर रखती है (निक्षिप्)। ९. राजा ने उस पर क्रूर दृष्टि डाली (निक्षिप्)। १०. जले पर नमक डालता है (प्रक्षिप्)। ११. गन्दी चीजें आग में न डालो (प्रक्षिप्)। १२. उसने अपना निबन्ध संक्षिप्त करके लिखा (संक्षिप्)। १३. आत्मा न उत्पन्न होता है (जन्) और न मरता है (मृ)। १४. परमात्मा न कभी मरा, न वृद्ध हुआ। (ग) (क, खल् आदि) १. विज्ञ सुखद वचन ही कहता है, दुःखद नहीं। २. यह काम शीघ्र करना तो सुकर है, पर गुप्त रूप से करना कठिन है। ३. आंधी में भी पहाड़ निष्कम्प रहते हैं। ४. सबके मन की रुचिकर बात कहना अति कठिन है। ५. प्रिय के प्रवास से उत्पन्न दुःख स्त्रियों के लिए अति दुःसह होते हैं। ६. संसार में सुन्दरता सुलभ है, गुणार्जन कठिन है। ७. तुम्हारे लिए मृग पकड़ना कठिन नहीं होगा। ८. बड़ों की इच्छा ऊँची होती है। ९. बन्धुजनों के वियोग सन्तापकारी होते हैं। १०. छिद्रान्वेषी लोग दोषों को ही देखते हैं। ११. उसने पृथ्वी उसके हाथों में दे दी। (घ) (सप्तमी) १. चौदहवें दिन खूब जोर से वर्षा हुई थी। २. पति के कहने में रहना (स्था)। ३. सपत्नीजन पर प्रिय-सखी का व्यवहार करना। ४. ऐसा होने पर क्या करना चाहिए? ५. सर्वनाश प्राप्त होने पर विद्वान् व्यक्ति आधा छोड़ देता है। ६. रण में जयश्री उत्कर्ष पर निर्भर है। (ङ) (वस्त्रवर्ग) वस्त्र शरीर को ढकने के लिए हैं। स्वच्छ और धुले हुए वस्त्र पहनने चाहिए (धारि)। प्राचीन पद्धति को अपनानेवाले लोग कुर्ता, धोती पहनते हैं। पाश्चात्य पद्धति को अपनानेवाले लोग कोट, पैंट या पायजामा, शेरवानी पहनते हैं। स्त्रियाँ साड़ी, ब्लाउज, पेटीकोट पहनती हैं। कुर्ता, सलवार और ओढ़नी का पंजाब में अधिक प्रचलन है। आजकल सूती, रेशमी, ऊनी और नाइलोन के कपड़े अधिक चलते हैं। बिस्तर में दरी, गद्दा, चादर, तकिया, रजाई, लोई, कम्बल, दुतई काम आते हैं।

संकेत—(क) ३. तस्याक्ष्णोः प्रभातमासीत्। ४. लेढि। ५. भास्वरम्। (ख) १. दोषान् क्षिपति। २. दग्धे पुनर्मयि भवन्ति गुणातिरेकाः, विशुद्धम्। ४. अवक्षिप्य, अवस्त। ५. कृष्णमवाक्षिपत्। ६. आक्षिपसि। ७. उदक्षिपत्। ८. हस्ते निक्षिपति। ९. निचिक्षेप। १०. क्षारं क्षते प्रक्षिपति। ११. अमेध्यम्। १२. संक्षिप्य। १४. न ममार न जीर्यति। (ग) २. शीघ्रमिति सुकरम्, निभृतमिति दुष्करम्। ३. प्रवातेऽपि। ४. सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः। ६. सुलभा रम्यता लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम्। ७. मृगो दुरासदः। ८. उत्सर्पिणी। १०. छिद्रान्वेषिणः। ११. हस्तगामिनीमकरोत्। (घ) १. चतुर्दशे दिवसे धारासारैरवर्षद् देवः। २. शासने। ३. वृत्तिम्। ४. एवं गते सति। ५. समुत्पन्ने। ६. प्रकर्षतन्त्रा। (ङ) स्वीकुर्वाणाः, प्रचलन्ति, शय्यायाम्, कम्बलः, द्वितयी, उपयुज्यन्ते।

शब्दकोष-१२५०+२५=१२७५] **अभ्यास ५१** (व्याकरण)

(क) आभरणम् (आभूषण), मूर्धाभरणम् (वेणी), ललाटाभरणम् (टिकुली), नासाभरणम् (१. नथ, २. बुलाक), नासापुष्पम् (नाक का फूल), कर्णपूरः (कनफूल), कुण्डलम् (कान की बाली), कण्ठाभरणम् (कण्ठा), ग्रैवेयकम् (हसुली), हारः (मोती का हार), एकावली (एक लड़ का हार), मुक्तावली (मोती की माला), स्रज् (पुष्प-माला), केयूरम् (बाजूबन्द, ब्रेसलेट), कङ्कणम् (कंगन), काचवलयम् (चूड़ी), अङ्गुलीयकम् (अँगूठी), कटकः (सोने का कड़ा), त्रौटकम् (हाथ का तोड़ा), मेखला (करधन), नूपुरम् (पाजेब), पादाभरणम् (लच्छे), मुकुटम् (मुकुट), मुद्रिका (नामांकित अँगूठी), किंकिणी (घुँघरू)। (२५)

व्याकरण (मधु, कर्तृ, तुद्, मुच्, क्तिन्, अण्, क्विप्)

१. मधु और कर्तृ शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ६६, ६७)

२. तुद् और मुच् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ८१, ८२)

नियम २४६—(क्तिन् प्रत्यय) (१) (स्त्रियां क्तिन्) धातुओं से स्त्रीलिंग में क्तिन् प्रत्यय होता है। क्तिन् का 'ति' शेष रहता है। 'ति' प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिंग ही होते हैं। गुण या वृद्धि नहीं होगी। सम्प्रसारण होगा। ति प्रत्यय से भाववाचक संज्ञाशब्द बनते हैं। जैसे-कृ > कृतिः, धृतिः, स्तुतिः, भूतिः। 'ति' प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के लिए देखो नियम २०८ (क), (ग) से (झ)। साधारणतया क्त-प्रत्ययान्त रूप में त के स्थान पर ति लगाने से ति-प्रत्ययान्त रूप बन जाते हैं। जैसे-गा > गीत > गीति, गम् > गत > गति, वच् > उक्त > उक्ति। (क) कृति, हृति, धृति। (ग) गीति, पीति। (घ) उपमिति, स्थिति। (ङ) गति, मति, नति। (छ) जाति, खाति। (ज) उक्ति, इष्टि, सुप्ति। (झ) ग्लानि, म्लानि। (२) (स्थागापापचो भावे) इनसे भावार्थ में क्तिन्। उपस्थितिः, गीतिः, संपीतिः, पक्तिः। (३) (ऊतियूति०) ये रूप बनते हैं-ऊतिः, हेतिः, कीर्तिः। (४) (संपदादिभ्यः०) संपद् आदि से क्तिन्। संपत्तिः, विपत्तिः।

नियम २४७—(अण् प्रत्यय) (कर्मण्यण्) कोई कर्मवाचक शब्द पहले हो तो धातु से अण् (अ) प्रत्यय होता है। धातु को वृद्धि होती है। कुम्भं करोतीति > कुम्भकारः।

नियम २४८—(क्विप् प्रत्यय) इन स्थानों पर क्विप् प्रत्यय होता है। क्विप् का पूरा लोप हो जाएगा, कुछ शेष नहीं रहेगा। (१) (सत्सूद्विष०) उपसर्ग या अन्य कोई शब्द पहले हो तो सद् सू द्विष् दुह् विद् आदि से क्विप्। उपनिषत्। प्रसूः। मित्रद्विट्। गोधुक्। वेदवित्। (२) (क्विप् च) धातुओं से क्विप् होता है। उखास्रत्, पर्णध्वत्, वाहभ्रट्। (३) (ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्) ब्रह्म आदि पहले हो तो भूत अर्थ में हन् धातु से क्विप्। ब्रह्महा, भ्रूणहा, वृत्रहा। (४) (सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः) सु कर्म आदि पहले हों तो कृ धातु से क्विप्। त् अन्त में जुड़ जाएगा। सुकृत्, कर्मकृत्, पापकृत्, मन्त्रकृत्, पुण्यकृत्। भूभृत् के तुल्य रूप चलेंगे। (५) (भ्राजभास०) भ्राज्, भास्, धुर्व्, द्युत्, ऊर्ज्, पुर् आदि से क्विप् होता है। विभ्राट्, भाः, धूः, विद्युत्, ऊर्क्, पूः।

नियम २४९—(क्वनिप् प्रत्यय) इन स्थानों पर क्वनिप् होता है। इसका 'वन्' शेष रहता है। गुण नहीं होगा। रूप आत्मन् के तुल्य। (१) (दृशेः क्वनिप्) दृश् धातु से क्वनिप्। पारदृश्वा। (२) (राजनि युधिकृञः) राजन् पहले हो तो युध् और कृ धातु से क्वनिप्। राजयुध्वा। (३) (सहे च) सह पहले हो तो युध् और कृ धातु से। सहयुध्वा, सहकृत्वा। (४) (अन्येभ्योऽपि०) अन्य धातुओं से भी क्वनिप्। इऽइत्वा, प्रातरित्वा। बीच में त् लगा है।

अभ्यास ५१

संस्कृत बनाओ—(क) (मधु, कर्तृ शब्द) १. भौंरे कमलों से मधु को पीते हैं। २. दुर्जनों के जिह्वाग्र पर मधु रहता है और हृदय में घोर विष। ३. भोजन पकाने के लिए लकड़ियाँ (दारु) लाओ और कुएँ से जल (अम्बु) लाओ। ४. पहाड़ की चोटी पर (सानु) ऋषि-मुनि रहते हैं। ५. आग पर राँगा (त्रपु) और लाख (जतु) पिघलाओ। ६. आँसू (अश्रु) मत गिराओ, धैर्य रखो। ७. प्रातः सेफ्टी-रेज़र से दाढ़ी (श्मश्रु) बनाओ। ८. ब्रह्म जगत् का कर्ता, धर्ता और संहर्ता है। **(ख)** (तुद्, मुंच्) १. दुर्जन वाणीरूपी बाण से सज्जनों को दुःख देते हैं (तुद्)। २. भीम ने गदा से शत्रु को चोट मारी (तुद्)। ३. रात्रि बीत गई, बिस्तर छोड़ो (मुच्)। ४. मृगों पर बाण छोड़ता है (मुच्)। ५. सत्यवादी सब पापों से मुक्त हो जाता है। ६. मारो या छोड़ो, यह आपकी इच्छा पर है। **(ग)** (क्तिन् आदि प्रत्यय) १. मनोरथ के लिए कुछ भी अगम्य नहीं है। २. मरना मनुष्यों का स्वभाव है, इसका उल्टा जीवन है। ३. अविवेक बड़ी आपत्तियों का घर है। ४. विपत्ति में (विपद्) धैर्य और वैभव में क्षमा, यह महात्माओं में ही होता है। ५. विपत्ति में धैर्य धारण करके रहना चाहिए। ६. जन्म लेनेवालों पर विपत्ति आती ही है। ७. विपत्ति के पीछे विपत्ति और संपत्ति के पीछे संपत्ति चलती है। ८. संपत्तियाँ अच्छे आचरणवालों को भी विचलित कर देती हैं। ९. यह वचन मर्मवेधी है। १०. प्राणियों की इस असारता को धिक्कार है। **(घ)** (सप्तमी) १. भव्यों पर पक्षपात होता ही है। २. सब अपने साथियों पर विश्वास करते हैं। ३. प्रायः ऐश्वर्य से उन्मत्तों में ये विकार बढ़ते हैं। ४. प्रजा राजा पर बहुत अनुरक्त है। ५. साहस में श्री रहती है। ६. उसने चावलों को धूप में डाला। ७. पढ़ाई शुरू करने के समय क्यों खेल रहे हो? ८. प्रसन्नता के स्थान पर दुःख न करो। ९. वर्षा रुकने पर वह घर गया। १०. यह बात मेरी समझ के बाहर है। ११. आप मेरे पिता की जगह पर हैं। १२. मेरी आवाज की पहुँच के अन्दर रहना। १३. सिपाही के आते ही चोर भाग गए। १४. तुम्हारे रहते हुए कौन दीनों को दुःख दे सकता है। १५. यज्ञ करने पर वर्षा हुई। १६. आए हुए बच्चों को मिठाई दो। **(ङ)** (आभूषणवर्ग) अलंकार शरीर को अलंकृत करते हैं। सधवा स्त्रियाँ सिर पर वेणी, माथे पर मुकुट और टिकुली, नाक में नथ और नाक का फूल, कान में कनफूल और बाली, गले में हँसुली, कण्ठा, मोती का हार और फूल-माला, बाँह में बाजूबन्द, कलाई में कंगन और चूड़ी, अँगुलियों में अँगूठी, कमर में करधन, पैरों में पाजेब, लच्छे और घुँघरू पहनती हैं।

संकेत—(क) २. हालाहलम्। ५. द्रावय। ६. पातय। ८. कर्तृ, धर्तृ, संहर्तृ। **(ख)** १. वाग्बाणेन। २. तुतोद। ३. शय्यां मुञ्च। **(ग)** १. अगतिः। २. मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः। ३. अविवेकः परमापदां पदम्। ५. अवलम्ब्य। ६. विपदुत्पत्तिमतामुपस्थिता। ७. विपद् विपदमनुबध्नाति संपत् संपदम्। ८. साधुवृत्तानपि विक्षिपन्ति। ९. मर्मच्छिद्। १०. धिगिमां देहभृतामसारताम् **(घ)** २. सर्वः सगन्धेषु विश्वसिति। ३. मूर्च्छन्ति। ६. सूर्यातपे दत्तवती। ७. अध्ययने प्रारब्धव्ये। ८. हर्षस्थाने अलं विषादेन। ९. शान्ते पानीयवर्षे। १०. मम धियः पथि न वर्तते। ११. पितृस्थाने वर्तते। १२. श्रवणगोचरे तिष्ठ। १३. प्रविष्टमात्र एव रक्षिणि। १४. त्वयि वर्तमाने। १६. आगतेभ्यः।

शब्दकोष-१२७५+२५=१३००] **अभ्यास ५२** (व्याकरण)

(क) सिन्दूरम् (सिन्दूर), चूर्णकम् (पाउडर), बिन्दुः (बिन्दी), ललाटिका (टीका), तिलकम् (तिलक), पत्रलेखा (पत्रलेखा), कज्जलम् (काजल), गन्धतैलम् (इत्र), हैमम् (स्नो), शरः (क्रीम), दर्पणः (शीशा), प्रसाधनी (कंघी), ओष्ठरञ्जनम् (लिपस्टिक), कपोलरञ्जनम् (रूज़), नखरञ्जनम् (नेल पॉलिश), फेनिलम् (साबुन), शृङ्गारफलकम् (ड्रेसिंग टेबुल), रोममार्जनी (ब्रश), दन्तधावनम् (१. दाँत का ब्रश, २. दातून), दन्तपिष्टकम् (टूथपेस्ट), दन्तचूर्णम् (१. टूथ पाउडर, २. मंजन), मेन्धिका (मेंहदी), अलक्तकः (लाक्षारस, महावर), उद्वर्तनम् (उबटन), शृङ्गारधानम् (सिंगारदान)। (२५)

व्याकरण (जगत्, छिद्, भिद्, इष्णु, खश् आदि प्रत्यय)

१. जगत् शब्द के रूप स्मरण करो (देखो शब्द० ६८)

२. छिद् और भिद् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ८३, ८४)

नियम २५०—(इष्णुच् प्रत्यय) (अलंकृञ्निराकृञ्०) अलंकृ, निराकृ आदि धातुओं से इष्णुच् प्रत्यय होता है। इष्णु शेष रहता है। धातु को गुण, गुरुवत् रूप। अलंकरिष्णुः। निराकरिष्णुः। उत्पतिष्णुः। उन्मदिष्णुः। रोचिष्णुः। वर्धिष्णुः। सहिष्णुः। चरिष्णुः।

नियम २५१—(खश् प्रत्यय) इन स्थानों पर खश् होता है। इसका अ शेष रहता है। (अरुर्द्विषद०) खश् होने पर पहले अजन्त शब्द के अन्त में 'म्' जुड़ जाएगा। गुण होगा। (१) (एजेः खश्) एजि धातु से खश् (अ)। जनमेजयतीति जनमेजयः। (२) इन स्थानों पर खश् होता है-स्तनन्धयः, अभ्रंलिहो वायुः, मितम्पचः, विधुन्तुदः, अरुन्तुदः, असूर्यम्पश्या, ललाटन्तपः। (३) (आत्ममाने खश्च) अपने-आपको समझने अर्थ में खश्। पण्डितंमन्यः। कालिंमन्या। स्त्रियंमन्यः। नरंमन्यः।

नियम २५२—(खच् प्रत्यय) खच् का अ शेष रहता है। पूर्वपद में म् जुड़ेगा। गुण होगा। १. (प्रियवशे वदः खच्) प्रिय, वश पहले हों तो वद् से खच्। प्रियंवदः। वशंवदः। (२) (गमेः सुपि, विहायसो विहः) गम् धातु से खच्। भुजंगमः, भुजंगः। विहंगमः, विहंगः। (३) (द्विषत्परयोस्तापेः) द्विषत् या पर पहले हों तो तापि से खच्। द्विषन्तपः, परन्तपः। (४) इन स्थानों पर खच् होता है-वाचंयमः, पुरन्दरः, सर्वंसहः, कूलंकषा नदी, भयंकरः, अभयंकरः, भद्रंकरः, विश्वंभरः, पतिंवरा कन्या, अरिन्दमः।

नियम २५३—(अथुच्) अथुच् का अथु शेष रहता है। गुण होगा। (ट्वितोऽथुच्) जिन धातुओं में से टु हटा है, वहाँ अथुच् होगा। वेप् > वेपथुः, श्वि > श्वयथुः।

नियम २५४—(ष्ट्रन्) (दाम्नीशस्०) दा, नी, शस्, स्तु आदि से ष्ट्रन् होता है। इसका त्र शेष रहता है। गुण होगा। दात्रम्, नेत्रम्, शस्त्रम्, पत् > पत्रम्। दंश् > दंष्ट्रा।

नियम २५५—(इत्र) (अर्तिलूधूसूखन०) ऋ, लू, धू, सू, खन्, सह्, चर् धातुओं से इत्र प्रत्यय होता है। गुण होगा। अरित्रम्, लवित्रम्, खनित्रम्, चरित्रम्।

नियम २५६—(उ) (सनाशंसभिक्ष उः) सन् प्रत्यय जिनके अन्त में हो उनसे, आशंस् और भिक्ष् धातु से उ प्रत्यय होता है। चिकीर्षुः, आशंसुः, भिक्षुः।

नियम २५७—(ड) ड का अ शेष रहता है। टि का लोप होगा। (१) (सप्तम्यां जनेर्डः) सप्तम्यन्त शब्द पहले हो तो जन् धातु से ड। सरसिजम्, सरोजम्। (२) इन स्थानों पर भी ड होता है। प्रजा, अजः, द्विजः।

नियम २५८—(अ) (अ प्रत्ययात्) प्रत्ययान्त धातु से स्त्रीलिंग में अ। बाद में टाप्। चिकीर्षा, जिगीषा, जिज्ञासा, पिपासा।

नियम २५९—(युच्) (ण्यासश्रन्थो०) ण्यन्त से युच् (अन) होता है। कारि>कारणा। हारणा, धारणा।

अभ्यास ५२

संस्कृत बनाओ :- (क) (जगत् शब्द) १. सूर्य जंगम और स्थावर का आत्मा है। २. जगत् के माता-पिता पार्वती और शिव की वन्दना करता हूँ। ३. यह सारा संसार ही नश्वर है, इसमें भी यह शरीर और अधिक नश्वर है। ४. यदि एक ही काम से संसार को वश में करना चाहते हो तो पर-निन्दा से वाणी को रोको। ५. पत्नी के वियोग में यह सारा संसार वनवत् हो जाता है। ६. पत्नी के स्वर्गवास होने पर संसार जीर्ण अरण्यवत् हो जाता है। ७. मृग ऊँची छलाँग के कारण आकाश में अधिक और भूमि पर कम चल रहा है। (वियत्)। ८. वृक्ष से पत्ते गिर रहे हैं (पतत्)। ९. लता से फूल गिरे (पतितवत्)। (ख) (छिद्, भिद् धातु) १. इस आत्मा को शस्त्र नहीं काटते हैं (छिद्)। २. हमारे बन्धनों को काटो (छिद्)। ३. तृष्णा को नष्ट करो (छिद्)। ४. मेरे इस संशय को दूर करो (छिद्)। ५. इससे हमारा कुछ नहीं बिगड़ता (छिद्)। ६. घड़ा फोड़कर, कपड़ा फाड़कर, गधे की सवारी करके, जिस किसी प्रकार हो मनुष्य प्रसिद्धि प्राप्त करे। ७. ठण्डा जल भी क्या पहाड़ को नहीं तोड़ देता है (भिद्)। ८. शत्रु ने सन्धि को तोड़ा (भिद्)। ९. गुप्त बात छः कानों में पड़ते ही समाप्त हो जाती है। १०. उड़द को पीसता है (पिष्)। ११. वह व्यर्थ ही पिष्टपेषण करता है। (ग) (इष्णु आदि) १. बन-ठनकर रहनेवाले लोग बालों में तेल और इत्र डालते हैं, कंघी से बालों को सँवारते हैं, मुँह पर स्नो और क्रीम लगाते हैं। दाँत के ब्रश पर टूथपेस्ट लेकर दाँत साफ करते हैं। जूतों पर पॉलिश कराते हैं और वस्त्रों पर लोहा कराते हैं। २. बड़े आदमी मर्मवेधी वचन कभी नहीं कहते। ३. कमल शेवाल से घिरा हुआ भी मनोहर होता है। ४. सज्जन प्रियवादी, शिष्य आज्ञाकारी, दुर्जन भयंकर, सत्पुरुष अभयंकर, मुनि वाक्संयमी, राजा शत्रुनाशी, महल गगनचुम्बी, राहु चन्द्र-पीडक, सूर्य ललाटतापी और कृपण मितभक्षी हैं। (घ) (प्रसाधनवर्ग) स्त्रियाँ प्रायः शृंगार-प्रिय होती हैं। वे सज-धजकर रहना चाहती हैं। वे सिर में सिन्दूर लगाती हैं, माथे पर टीका और बेंदी लगाती हैं, आँखों में काजल, देह में उबटन, नाखूनों पर नेल पॉलिश, गालों पर रूज़, ओठों पर लिपस्टिक, मुँह पर स्नो और क्रीम, पैरों में महावर और हाथों पर मेंहदी लगाती हैं। ड्रेसिंग टेबुल पर सिंगारदान और शृंगार का सामान रखती हैं। कुछ स्त्रियाँ जूड़ा बाँधती हैं, कुछ जूड़े में जाली लगाती हैं और कुछ बालों में काँटा लगाती हैं।

संकेत :- (क) १. जगतस्तस्थुषश्च। २. पितरौ। ३. निखिलं जगदेव नश्वरम्, नितराम्। ४. यदीच्छसि वशीकर्तुम्, परापवादात्, निवारय। ५. प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति। ६. जगज्जीर्णारण्यं भवति च कलत्रे ह्युपरते। ७. उदग्रप्लुतत्वाद् वियति। ८. पतन्ति सन्ति। ९. पतितवन्ति। (ख) २. पाशान्। ४. छिन्धि। ५. न नः किंचिद् छिद्यते। ६. भित्त्वा, छित्त्वा, कृत्वा गर्दभरोहणम्। येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत्। ८. अभिनत्। ९. षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रः। १०. माषपेषं पिनष्टि। (ग) १. अलंकरिष्णवः, प्रसाधयन्ति, पादूरञ्जनं योजयन्ति, अयस्कारयन्ति। २. अरुन्तुदत्वं महतां ह्यगोचरः। ३. सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्। ४. प्रियंवदः, वशंवदः, वाचंयमः, अरिन्दमः, अभ्रंलिहः, विधुन्तुदः, ललाटन्तपः, मितंपचः। (घ) अलंकरिष्णवो भवन्ति। वेणीबन्धं बध्नन्ति, वेणीजालं युञ्जन्ति, केशशूकान्।

शब्दकोष १३००+२५=१३२५] **अभ्यास ५३** (व्याकरण)

(क) ग्रामः (गाँव), नगरी (कस्बा), नगरम् (शहर), कुटी (कुटिया), भवनम् (मकान), प्रासादः (महल), मार्गः (सड़क), राजमार्गः (मुख्य सड़क), मृन्मार्गः (कच्ची सड़क), दृढमार्गः (पक्की सड़क), रथ्या (चौड़ी सड़क), वीथिका (१. गली, २. गेलरी), नगरपालिका (म्युनिसिपलिटी), निगमः (कार्पोरेशन), नगराध्यक्षः (म्युनिसिपल चेयरमैन), निगमाध्यक्षः (मेयर), चतुष्पथः (१. चौक, २. चौराहा), पुरोद्यानम् (पार्क), रक्षिस्थानम् (थाना), कोटपालिका (कोतवाली), जनमार्गः (आम रास्ता), उपवेशकक्षः (ड्राइंग रूम), भोजनकक्षः (डाइनिंग रूम), स्नानागारम् (बाथरूम), भाण्डागारम् (स्टोर रूम)। (२५)

व्याकरण (नामन्, शर्मन्, हिंस्, भञ्ज्, अपत्यार्थक प्रत्यय)

१. नामन् और शर्मन् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ६९, ७०)

२. हिंस् और भञ्ज् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ८५, ८६)

नियम २६०—सारे तद्धित के लिए यह नियम मुख्यतया स्मरण कर लें। (तद्धितेष्वचामादेः, किति च) जिस तद्धित प्रत्यय में से ण्, ञ् या क् हटा होगा, वहाँ पर शब्द के प्रथम स्वर को वृद्धि हो जायगी। (१) ञ् हटेवाले प्रत्यय। जैसे-अञ्, इञ्, ढञ्, ठञ्। (२) ण् हटेवाले प्रत्यय-अण्, छण्, ण्य। (३) क् हटेवाले=ठक्, ढक्।

नियम २६१—(अण् प्रत्यय) अपत्य अर्थात् पुत्र या पुत्री के अर्थ में इन स्थानों पर अण् प्रत्यय होगा। अण् का अ शेष रहेगा। शब्द के प्रथम अक्षर को वृद्धि। (यस्येति च) शब्द के अन्तिम अ, आ, इ और ई का लोप हो जायगा। (१) (तस्यापत्यम्) अपत्य अर्थ में अण् (अ) होगा। वसुदेवस्यापत्यम् > वासुदेवः। उपगु > औपगवः। (२) (अश्वपत्यादिभ्यश्च) अश्वपति आदि से अपत्य अर्थ में अण्। अश्वपति > आश्वपतम्। गणपति > गाणपतम्। (३) (शिवादिभ्योऽण्०) शिव आदि से अण्। शिवस्यापत्यम् > शैवः। गङ्गा > गाङ्गः। (४) (ऋष्यन्धकवृष्णि०) ऋषि, अन्धकवंशी, वृष्णिवंशी और कुरुवंशी से अपत्यार्थ में अण्। वसिष्ठ > वासिष्ठः। विश्वामित्र > वैश्वामित्रः। अनिरुद्ध > आनिरुद्धः। नकुल > नाकुलः। सहदेव > साहदेवः। (५) (मातुरुत्संख्या०) कोई संख्या, सम् या भद्र पहले होगा तो मातृ शब्द से अपत्यार्थ में अण्। मातृ को मातुर् हो जायगा। द्विमातृ > द्वैमातुरः। षण्मातृ > षाण्मातुरः। संमातृ > सांमातुरः।

नियम २६२—(इञ् प्रत्यय) अपत्य अर्थ में इन स्थानों पर इञ् प्रत्यय होगा। इञ् का इ शेष रहेगा। शब्द के प्रथम अक्षर को वृद्धि। हरिवत् रूप चलेंगे। (१) (अत इञ्) अकारान्त शब्दों से इञ्। दशरथ > दाशरथिः (राम)। दक्ष > दाक्षिः। सुमित्रा > सौमित्रिः (लक्ष्मण)। द्रोण > द्रौणिः (अश्वत्थामा)। (२) (बाह्वादिभ्यश्च) बाहु आदि से इञ्। उ को गुण ओ होकर अव् हो जाएगा। बाहुः > बाहविः।

नियम २६३—(ढक् प्रत्यय) अपत्य अर्थ में इन स्थानों पर ढक् होगा। ढ को एय हो जायगा। प्रथम स्वर को वृद्धि। (१) (स्त्रीभ्यो ढक्) स्त्रीलिंग शब्दों में ढक् (एय)। विनता > वैनतेयः। भगिनी > भागिनेयः। (२) (द्व्यचः) दो स्वरवाले स्त्रीलिंग शब्दों से ढक्। कुन्ती > कौन्तेयः, माद्री > माद्रेयः, राधा > राधेयः, गङ्गा > गाङ्गेयः।

नियम २६४—(ण्य प्रत्यय) अपत्यार्थ में ण्य। य शेष रहेगा। प्रथम स्वर को वृद्धि। (१) (दित्यदित्या०) दिति, अदिति, आदित्य, पति अन्तवाले शब्दों से ण्य। दिति > दैत्यः, अदिति > आदित्यः, आदित्य > आदित्यः, प्रजापति > प्राजापत्यः। (२) (कुरुनादिभ्यो ण्यः) कुरुवंशी और नकारादि से ण्य। कुरु > कौरव्यः। निषध > नैषध्यः।

अभ्यास ५३

संस्कृत बनाओ-(क) (नामन्, शर्मन् शब्द) १. उसने अपने पुत्र का नाम रघु रखा। २. मानी लोग प्राणों और सुख को सरलता से छोड़ देते हैं। ३. अपने किये कर्म को कौन नहीं भोगता (कर्मन्) ? ४. वह स्थलमार्ग से चल पड़ा (वर्त्मन्)। ५. वे सन्मार्ग से जरा भी नहीं हटे (सद्वर्त्मन्)। ६. उसने मन, वचन, शरीर और कर्म से देशसेवा की। ७. उस वचन ने उस पर पूरा असर किया (मर्मन्)। (ख) (हिंस्, भञ्ज् धातु) १. जो निरपराध जीवों की हिंसा करता है, वह पापी होता है (हिंस्)। २. शुभ कर्म पापों को नष्ट करता है (हिंस्)। ३. किसी भी जीव को न मारो। ४. बन्दर बगीचे को तोड़-फोड़ रहा है (भञ्ज्)। ५. राम ने धनुष को तोड़ दिया (भञ्ज्)। ६. कुलमर्यादाओं को न तोड़े। ७. यह सुन्दर भाषण उसकी वाग्मिता को व्यक्त करता है (वि+अञ्ज्)। (ग) (अपत्यार्थक) १. दाशरथि राम ने जामदग्न्य राम को निर्भीकता से उत्तर दिया। २. वासुदेव ने कुन्ती के पुत्र अर्जुन का सारथि होना स्वीकार किया। ३. पृथा के पुत्र भीम ने धृतराष्ट्र के पुत्र दुःशासन को मार दिया। ४. राधा के पुत्र कर्ण ने द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा से कहा-मैं सारथि होऊँ या सारथि-पुत्र, अथवा जो कुछ भी होऊँ, इससे क्या ? सत्कुल में जन्म होना भाग्याधीन है, पर पुरुषार्थ करना मेरे हाथ में है। ५. माद्री के पुत्र नकुल और सहदेव युधिष्ठिर के साथ ही वन में गए। ६. सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण ने कभी भी राम का साथ नहीं छोड़ा। (घ) (पुरवर्ग) नगर में सज्जन, दुर्जन, विद्वान्, अविद्वान्, धनिक, निर्धन, बड़े-छोटे, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी रहते हैं। नगर की उन्नति सभी नागरिकों का कर्तव्य है। सत्य, अहिंसा, प्रेम, सद्भाव और सहानुभूति से जन-जीवन सुखमय होता है। अतः इन गुणों को अपनाना और इनका उपयोग करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। प्रत्येक देश में गाँव, कस्बे और नगर होते हैं। गाँवों में झोपड़ियाँ और कुटिया होती हैं, परन्तु नगरों में मकान और महल अधिक होते हैं। शहरों में पक्की सड़कें, चौड़ी सड़कें, मेन रोड और गलियाँ भी होती हैं। वहाँ पार्क, बच्चों के पार्क, बिजलीघर, वाटर-वर्क्स, थाना, कोतवाली भी होते हैं। छोटे शहरों में म्युनिसिपलिटी होती है और उसका अध्यक्ष म्युनिसिपल-चेयरमैन होता है। बड़े शहरों में कार्पोरेशन होता है और उसका अध्यक्ष मेयर होता है। इनका काम होता है कि नगर की सुरक्षा करें और नगर की उन्नति के लिए सभी साधनों को अपनावें। नगरों में प्रत्येक घर में साधारणतया ड्राइंग रूम, डाइनिंग रूम, बाथरूम, स्टोर रूम, रसोई, सोने का कमरा, रहने का कमरा, शौचालय, मूत्रालय और अतिथिगृह होते हैं। कुछ मकानों में यज्ञशाला और बगीचे भी होते हैं।

संकेत :-(क) १. नाम्ना रघुं चकार। २. असून् शर्म च। ३. कर्म कः स्वकृतमत्र न भुङ्क्ते। ४. प्रतस्थे स्थलवर्त्मना। ५. सद्वर्त्मनो रेखामात्रमपि न व्यतीयुः। ६. मनोवाक्कायकर्मभिः। ७. तस्य हृदयमर्मास्पृशत्। (ख) २. दुष्कृतानि हिनस्ति। ४. भनक्ति। ७. व्यनक्ति। (ग) ३. पार्थः धार्तराष्ट्रम्। ४. सूतो वा सूतपुत्रो वा। दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्। ६. सांनिध्यम्। (घ) ज्येष्ठाः, कनिष्ठाः, यवनाः, ईसुमतानुयायिनः, धारणम्, उटजाः, बालोद्यानानि, विद्युद्गृहाणि, उदयन्त्राणि, पाकशाला, शयनगृहम्, वासगृहम्, निष्कुटाः।

शब्दकोष-१३२५+२५=१३५०] **अभ्यास ५४** (व्याकरण)

(क) आपण: (दूकान), विपणि: (स्त्री०, बाजार), महाहट्ट: (मंडी), प्राकार: (परकोटा), वृति: (स्त्री०, बाड़, घेरा), भित्ति: (स्त्री०, दीवार), द्विभूमिक: (दुमंजिला), त्रिभूमिक: (तिमंजिला), चतु:शालम् (चारों ओर मकान, बीच में आँगन), उटज: (झोपड़ी), मण्डप: (१. मंडप, २. टेन्ट), अन्त:पुरम् (रनवास), देहली (देहली), प्रपा (प्याऊ), पथिकालय: (मुसाफिरखाना), अट्ट: (अटारी, बुर्जी), वलभी (छज्जा), गोपुरम् (मुख्य द्वार), वेदिका (वेदी), द्वारम् (द्वार), चत्वरम् (चबूतरा), अलिन्द: (घर के बाहर का चबूतरा), अजिरम् (आँगन), निश्रेणि: (सीढ़ी, काठ आदि की), सोपानम् (सीढ़ी)। (२५)

व्याकरण (ब्रह्मन्, अहन्, रुध्, भुज्, चातुरर्थिक प्रत्यय)

१. ब्रह्मन् और अहन् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ७१, ७२)

२. रुध् और भुज् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ८७, ८८)

नियम २६५—(रक्तार्थक) रंग आदि से रँगने अर्थ में ये प्रत्यय होते हैं-(१) (तेन रक्तं रागात्) जिससे रँगा जाए, उससे अण् (अ) प्रत्यय। प्रथम स्वर को वृद्धि। कषाय > काषायम् (गेरु से रँगा हुआ वस्त्र)। माञ्जिष्ठम् (मँजीठ से रँगा हुआ)। (२) (नील्या अन्) नीली शब्द से अन् (अ)। नीली>नीलम् (नील से रँगा हुआ)। (३) (पीतात्कन्) पीत से कन् (क)। पीतकम् (पीले रंग से रँगा हुआ)। (४) (हरिद्रा०) हरिद्रा से अञ् (अ)। हारिद्रम् (हल्दी से रँगा हुआ)।

नियम २६६—(कालार्थक) किसी नक्षत्र से युक्त समय या पूर्णिमा होगी तो ये प्रत्यय होंगे। (१) (नक्षत्रेण युक्त: काल:) नक्षत्र से अण् (अ)। पुष्य > पौषम् अह:, पौषी रात्रि: (पुष्य से युक्त दिन या रात)। (२) (सास्मिन्०) नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा होने पर मास का वह नाम पड़ता है। अण् (अ) प्रत्यय। पुष्य से युक्त मास-पौष:। चित्रा > चैत्र:। विशाखा > वैशाख:। ज्येष्ठा > ज्येष्ठ:। अषाढा > आषाढ:।

नियम २६७—(देवतार्थक) देवता अर्थ में ये प्रत्यय होते हैं। (१) (सास्य देवता) देवता अर्थ में अण् (अ)। इन्द्र > ऐन्द्रं हवि: (इन्द्र है देवता जिसका)। पशुपति > पाशुपतम्। (२) (सोमाट् ट्यण्) सोम से ट्यण् (य)। सोम > सौम्यम्। (३) (वाय्वृतु०) वायु आदि से यत् (य)। वायु > वायव्यम्। पितृ > पित्र्यम्। (४) (अग्नेर्ढक्) अग्नि से ढक्। ढ को एय। अग्नि > आग्नेयम्।

नियम २६८—(समूहार्थक) समूह अर्थ में ये प्रत्यय होते हैं:—(१) (तस्य समूह:) समूह अर्थ में अण् (अ)। काक > काकम् (काक-समूह)। बक > बाकम्। (२) (भिक्षादिभ्योऽण्) भिक्षा आदि से अण् (अ)। भिक्षा > भैक्षम्। युवति > यौवनम् (स्त्री-समूह)। (३) (ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्) ग्राम आदि से तल् (ता)। ग्रामता, जन > जनता (जनसमूह)। बन्धु > बन्धुता। (४) (अनुदात्तादेरञ्) इनसे अञ् (अ) होगा। कपोत > कापोतम्। मयूर > मायूरम् (मयूर-समूह)।

नियम २६९—(अध्ययनार्थक) पढ़ने या जानने अर्थ में ये प्रत्यय होते हैं:—(१) (तदधीते तद्वेद) पढ़ने या जानने अर्थ में अण् (अ)। (न य्वाभ्यां०) संयुक्ताक्षरों में य् से पहले ऐ, व् से पहले औ लगेगा। व्याकरण > वैयाकरण: (व्याकरण पढ़ने या जाननेवाला)। न्याय > नैयायिक:। (२) (क्रमादिभ्यो वुन्) क्रम आदि से वुन् (अक) होता है। मीमांसा > मीमांसक:।

अभ्यास ५४

संस्कृत बनाओ-(क) (ब्रह्मन्, अहन् शब्द) १. ब्रह्म नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त-स्वभाव सर्वज्ञ और सर्वशक्तियुक्त है। २. सभी दानों में विद्या-दान श्रेष्ठ है। ३. जो ब्रह्म को जानता है, वह ब्राह्मण होता है। ४. वह वेद में (ब्रह्मन्) निष्णात है। ५. चन्द्रमा चाण्डाल के घर से (वेश्मन्) चाँदनी को नहीं हटाता। ६. कवच (वर्मन्) धारण करो, त्योहार (पर्वन्) मनाओ, वेद (ब्रह्मन्) पढ़ो, घर में (सद्मन्) सुख से रहो, शुभ लक्षण (लक्ष्मन्) धारण करो। ७. दिन ज्योति का प्रतीक है और रात्रि अन्धकार की। ८. दिन में ऐसा काम न करो, जिससे रात्रि दुःखद प्रतीत हो। ९. दिन प्रायः बीत गया है। (ख) (रुध्, भुज् धातु) १. वह बाड़े में गायों को रोकता है। २. प्राण और अपान की गति को रोककर प्राणायाम करे (रुध्)। ३. आशा का बन्धन ही स्त्रियों के अतिकोमल हृदय को वियोग के समय रोकता है (रुध्)। ४. बिस्तरे पर बैठकर न खावे (भुज्)। ५. पापी आदमी सैकड़ों दुःखों को भोगता है। ६. उसने राज्य का धरोहर की तरह पालन किया (भुज्, पर०)। ७. यह अकेला ही सम्पूर्ण पृथ्वी का पालन करता है (भुज्)। (ग) (चातुरर्थिक प्रत्यय) १. संन्यासी गेरुआ वस्त्र पहनते हैं। कुछ लोग नील से रँगे हुए वस्त्रों को पहनते हैं, कुछ पीले रंग से रँगे हुए और कुछ हल्दी से रँगे हुए वस्त्रों को। २. संस्कृत में महीनों के नाम नक्षत्रों के नामों से पड़े हैं। पूर्णिमा के दिन जो नक्षत्र होता है, उसके नाम से ही वह मास बोला जाता है, जैसे-चित्रा नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा होने पर चैत्र मास, विशाखा से वैशाख, ज्येष्ठा से ज्येष्ठ, अषाढा से आषाढ, श्रवणा से श्रावण, भद्रपदा से भाद्रपद, अश्विनी से आश्विन, कृत्तिका से कार्तिक, मृगशिरा से मार्गशीर्ष, पुष्य से पौष, मघा से माघ और फल्गुनी से फाल्गुन नाम पड़े हैं। ३. प्राचीन समय में बहुत से अद्भुत गुणोंवाले अस्त्र थे। जैसे- आग्नेय, वारुण, वायव्य, पाशुपत आदि। ४. जनता में प्रेम और बन्धुता होनी चाहिए। ५. काक-समूह, बक-समूह, कपोत-समूह और मयूर-समूह, ये अपने समूह के साथ ही रहते, उड़ते और बैठते हैं। ६. वैयाकरण व्याकरण पढ़ता है, नैयायिक न्याय को, मीमांसक मीमांसा को और वेदान्ती वेदान्त को। (घ) (पुरवर्ग) बड़े शहरों में बाजार, मंडी और दुकानें होती हैं। जहाँ से नगरनिवासी सामान लाकर अपना आवश्यक कार्य करते हैं। शहरों में दुमंजिले, तिमंजिले, चौमंजिले और आठ मंजिले मकान भी होते हैं। सीढ़ी के द्वारा ऊपर की मंजिलों पर पहुँचते हैं। आजकल बम्बई, कलकत्ता आदि बड़े शहरों में लिफ्ट के द्वारा ऊपर की मंजिल पर सरलता से पहुँच जाते हैं और उससे ही उतर आते हैं। प्राचीन नगरों के चारों ओर परकोटा या बाड़ होती थी। मकानों में अटारी, छज्जा, द्वार, मुख्यद्वार, आँगन, सीढ़ी, दीवार, चबूतरा, देहली, रनवास, मंडप भी होते थे। नगरों में प्याऊ, मुसाफिरखाने आदि भी होते थे।

संकेत-(क) २. ब्रह्मदानं विशिष्यते। ५. वेश्मनः। ६. विधिवत् संपादय। ९. परिणतप्रायमहः। (ख) १. व्रजम्। ३. आशाबन्धः। ४. शयनस्थो न भुञ्जीत। ५. भुङ्क्ते। ६. न्यासमिवाभुनक्। ७. भुनक्ति। (घ) चतुर्भूमिकाः, अष्टभूमिकाः प्रसादाः, उत्थापनयन्त्रेण ऊर्ध्वभूमिम्, अवतरन्ति।

शब्दकोष-१३५०+२५=१३७५] **अभ्यास ५५** (व्याकरण)

(क) गवाक्षः (खिड़की), छदिः (स्त्री०, छत), पटलगवाक्षः (स्काई लाइट), वरण्डः (बरामदा), प्रकोष्ठः (पोर्टिको), कुट्टिमम् (फर्श), कपाटम् (किवाड़), अर्गलम् (अर्गला, किवाड़ के पीछे का डंडा), कीलः (चटकनी), नागदन्तकः (खूँटी), कक्षः (कमरा), महाकक्षः (हॉल), लघुकक्षः (कोठरी), स्तम्भः (खंभा), दारु (नपुं०, लकड़ी), काचः (काँच), अश्मचूर्णम् (सीमेंट), प्रलेपः (प्लास्टर), तृणम् (फूँस), त्रपु (नपुं०, टीन), त्रपुफलकम् (टीन की चद्दर), लौहफलकम् (लोहे की चद्दर), प्रणालिका (नाली), खर्परः (खपड़ा)। (२४)। **(घ)** खर्परावृतम् (खपड़ैल का)। (१)

व्याकरण (हविष्, धनुष्, युज्, तन्, शैषिक प्रत्यय)

१. हविष् और धनुष् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ७३, ७४)

२. युज् और तन् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ८९, ९०)

नियम २७०—(तत्र जातः, तत्र भवः) सप्तम्यन्त शब्दों से उत्पन्न होना आदि अर्थों में शैषिक प्रत्यय अण् आदि होते हैं। मुख्य प्रत्यय ये हैं-(१) (शेषे) अपत्य आदि से शेष अर्थों में अण् आदि होते हैं। चक्षुष् > चाक्षुषं रूपम् (आँख से देखने योग्य), श्रवण > श्रावणः शब्दः। (२) (राष्ट्रावारपाराद्०) राष्ट्र शब्द से घ (इय) और अवारपार से ख (ईन) होते हैं। राष्ट्रे जातः > राष्ट्रियः। अवारपार > अवारपारीणः। (३) (ग्रामाद्यखञौ) ग्राम में य और खञ् (ईन) होते हैं। ग्राम्यः, ग्रामीणः। (४) (दक्षिणापश्चात्०) दक्षिणा आदि से त्यक् (त्य) होता है। दक्षिणा > दाक्षिणात्यः। पश्चात् > पाश्चात्त्यः। पुरस् > पौरस्त्यः (५) (द्युप्रागपागुदक्०) दिव्, प्राच्, अपाच्, उदच् और प्रतीच् से यत् (य) होता है। दिव्यम्, प्राच्यम्, अपाच्यम्, उदीच्यम्, प्रतीच्यम्। (६) (अमेहक्वतसित्रेभ्य०) अमा, इह, क्व, तः और त्र प्रत्ययान्त से त्यप् (त्य) होता है। अमात्यः, इहत्यः, क्वत्यः, ततस्त्यः तत्रत्यः। (७) (त्यदादीनि च) त्यद् आदि सर्वनामों की वृद्ध संज्ञा होने से छ (ईय) प्रत्यय। तदीयः। यदीयः। (८) (वृद्धाच्छः) शब्द का प्रथम अक्षर दीर्घ हो तो छ (ईय) प्रत्यय। शाला>शालीयः। मालीयः। (९) (भवतष्ठक्छसौ) भवत् शब्द से ठक् (क) और छस् (ईय) होते हैं। भावत्कः, भवदीयः। (१०) (युष्मदस्मदो०) युष्मद्, अस्मद् शब्द के ये रूप बनते हैं- युष्मदीयः (तुम्हारा), यौष्माकीणः, यौष्माकः, तावकीनः (तेरा), तावकः, त्वदीयः। अस्मदीयः, आस्माकीनः, आस्माकः, मामकीनः, मामकः, मदीयः। (११) (कालाट्ठञ्) कालवाचकों से ठञ् (इक)। मास > मासिकम्। वार्षिकम्। (१२) (सायंचिरं०) सायंचिरं आदि के अन्त में तन लग जाता है। सायन्तनम्, चिरन्तनम्, पुरातनम्, सनातनम्।

नियम २७१—(प्रभवति) उत्पन्न होना अर्थ में अण् (अ)। हिमवत् > हैमवती गङ्गा।

नियम २७२—(अधिकृत्य कृते०) जिस विषय को लेकर ग्रन्थ बनाया जाए, वहाँ अण् आदि। शकुन्तला > शाकुन्तलम्। कहानी आदि में प्रत्यय का लोप। वासवदत्ता।

नियम २७३—(तेन प्रोक्तम्) कृति अर्थ में अण् आदि। पाणिनि > पाणिनीयम्।

नियम २७४—इन अर्थों में भी अण् (अ) या इक लगता है। (१) (तद्गच्छति०) रास्ता या दूत का जाना। स्रुघ्न > स्रौघ्नः। (२) (सोऽस्य निवासः) निवास अर्थ में अण्। स्रौघ्नः। (३) (तस्येदम्) इसका यह है अर्थ में अण्। शरद् > शारदम्। (४) (कृते ग्रन्थे) उसके रचित ग्रन्थ अर्थ में। वररुचि > वाररुचम्।

अभ्यास ५५

संस्कृत बनाओ-(क) (हविष्, धनुष् शब्द) १. अग्नि विधिपूर्वक हुत हवि को देवों को पहुँचाता है। २. वह सामग्री और घी से हवन करता है। ३. अग्नि पर घी को (सर्पिष्) पिघलाओ। ४. आकाश में तारों (ज्योतिष्) की ज्योति (रोचिष्) चमक रही है। ५. उसने धनुष पर अमोघ बाण रखा। ६. आँख से (चक्षुष्) देखकर आगे पैर रखो। ७. यह शरीर बिना कृत्रिमता के ही सुन्दर है (वपुष्)। ८. इसका शरीर हर्ष से रोमांचित है। ९. आयु मर्मस्थलों की रक्षा करती है (आयुष्)। १०. प्राण ही जीवों की आयु है। (ख) (युज्, तन् धातु) १. वे सुख के अर्थ में विषय शब्द का प्रयोग नहीं करते हैं। २. आत्मा को परमात्मा में लगाओ। ३. उसने आशीर्वाद दिया। ४. कल नाटक खेला जाएगा (प्रयुज्)। ५. ऋषि असाधुदर्शी हैं, जो इस शकुन्तला को आश्रम के कार्यों में लगाते हैं (नियुज्)। ६. उ़न्मत्त मनुष्य को मूर्खता भी नहीं छोड़ती है (वियुज्)। ७. सौभाग्य से उसकी जान नहीं गई (वियुज्)। ८. विद्या का सत्कार्य में उपयोग करे (उपयुज्)। ९. मलिन भी चन्द्रमा का चिह्न शोभा को करता है (तन्)। १०. सज्जनों की संगति क्या मंगल नहीं करती है (आतन्)? ११. सत्संगति दिशाओं में कीर्ति को फैलाती है (तन्)। १२. नौकरों ने शामियाना फैलाया (वितन्)। (ग) (शैषिक प्रत्यय) १. पौरस्त्य और पाश्चात्य संस्कृतियों में भेद होते हुए भी पर्याप्त समानता है। दोनों ही मौलिक सिद्धान्तों को मानते और अपनाते हैं। पुरातन हो या नूतन, सभी संस्कृतियों ने विश्व को लाभ पहुँचाया है। २. हे गोविन्द, तुम्हारी वस्तु तुम्हें भेट करते हैं। ३. पाणिनीय अष्टाध्यायी सारे व्याकरणों का सार है और विद्वत्ता की पराकाष्ठा है। ४. विद्यालयों और महाविद्यालयों में पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, षाण्मासिक और वार्षिक परीक्षाएँ भी होती हैं। ५. कन्या पराई संपत्ति है। (घ) (गृहवर्ग) निवास के लिए घरों की आवश्यकता सदा रहती है और सदा रहेगी। समयानुसार इनकी निर्माण-विधि में अन्तर होता रहा है। प्राचीन समय में ग्रामों में मकान फूँस के या खपड़ैल के होते थे। आजकल भी ग्रामों में अधिक मकान फूँस और खपड़ैल के हैं। नगरों में अधिकांश मकान पक्की ईंटों के होते हैं। उनमें पक्की ईंटों की छतें होती हैं। खिड़कियाँ, स्काईलाइट, बरामदा, फर्श, किवाड़, चटकनी, खूँटी आदि भी होती हैं। मकानों में सीमेंट का प्लास्टर होता है। कुछ मकानों पर टीन या लोहे की चद्दरें भी लगाई जाती हैं। पहाड़ में मकानों में लकड़ी और काँच अधिक लगाया जाता है, जिससे खिड़की आदि बन्द होने पर भी प्रकाश अन्दर आ सके और कमरों में अँधेरा न हो।

संकेतः-(क) १. वहति। २. हविषा, जुहोति। ३. सर्पिः द्रावय। ४. रोचींषि द्योतन्ते। ५. समधत्त। ७. इदं किलाव्याजमनोहरं वपुः। ९. आयुर्मर्माणि रक्षति। १०. प्राणो हि भूतानामायुः (ख) १. सुखार्थे विषयशब्दं न प्रयुञ्जते। ३. आशिषं युयुजे। ४. प्रयोक्ष्यते। ५. आश्रमधर्मे नियुङ्क्ते। ६. वियुङ्क्ते। ७. प्राणैर्न व्ययुज्यत। ८. उपयुञ्जीत। ९. लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति। १०. सङ्गः सतां किमु न मङ्गलमातनोति। १२. चन्द्रातपं व्यतानिषुः। (ग) २. तुभ्यमेव समर्पये। ४. पाक्षिक्यः, वार्षिक्यः। ५. अर्थो हि कन्या परकीय एव। (घ) पक्वेष्टकानिर्मितानि, अवरुद्धेष्वपि।

शब्दकोष-१३७५+२५=१४००] **अभ्यास ५६** (व्याकरण)

(ग) अङ्ग (१. संबोधन, २. आदरार्थ में), अथ (१. मंगलार्थक, २. प्रारम्भ में, ३. बाद में, ४. प्रश्नार्थक), अथकिम् (१. और क्या, २. हाँ), अधिकृत्य (बारे में), अपि (१. भी, २. प्रश्नार्थक, ३. संशय), आम् (हाँ), इति (१. कथनोद्धरण में, २. अतएव), इव (१. सदृश, २. मानो), कच्चित् (आशा करता हूँ कि), क्व---क्व (बहुत अन्तर-सूचक), कामम् (भले ही), किमुत (क्या भला), किल (१. वस्तुतः, २. ऐसा कहते हैं, ३. आशा अर्थ में), खलु (१. वस्तुतः, २. प्रार्थनासूचक, ३. निषेधार्थक, ४. क्योंकि), ततः (१. इसलिए, २. तो, ३. वहाँ से, ४. आगे), तथा (१. वैसा, २. और भी, ३. हाँ), तावत् (१. तो, २. तब तक, ३. अभी, ४. वस्तुतः), दिष्ट्या (१. भाग्य से, २. बधाई देना), न---न (अवश्य), ननु (१. अवश्य, २. कृपया, ३. क्या, ४. चूँकि), बत (खेद, हर्ष), यथा---तथा (१. जैसा-वैसा, २. इस प्रकार---कि, ३. चूँकि---इसलिए, ४. यदि---तो, ५. जितना---उतना), यावत्---तावत् (१. उतना ही---जितना, २. सब, ३. जबतक---तबतक, ४. ज्योंही---त्योंही), वरं---न (अच्छा है---न कि), स्थाने (उचित है)। (२५)

व्याकरण (पयस्, मनस्, ज्ञा धातु, मत्वर्थक प्रत्यय)

१. पयस् और मनस् शब्दों के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ७५, ७६)

२. ज्ञा धातु के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ९६)

नियम २७५—(१) (तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्) इसके पास है या इसमें है, इन अर्थों में मतुप् प्रत्यय होता है। इसका मत् शेष रहता है। पुं० में भगवत् के तुल्य रूप चलेंगे, स्त्री० ई लगाकर नदीवत्, नपुं० में जगत् के तुल्य। (२) (मादुपधायाश्च०) शब्द के अन्त में या उपधा में अ, आ या म् हो तो मत् के म को व होता है, अर्थात् मत् > वत्। धन > धनवान् (धनयुक्त)। गुणवान्, विद्यावान्, धीमान्, श्रीमान्, बुद्धिमान्। यव आदि के बाद म को व नहीं होगा। यवमान्, भूमिमान्। (३) (झयः) वर्ग के १ से ४ के बाद मत् को वत् होगा। विद्युत् > विद्युत्वान्। (४) (रसादिभ्यश्च) रस आदि से मतुप् प्रत्यय होता है। रसवान्, रूपवान्।

नियम २७६—(अत इनिठनौ) अकारान्त शब्दों से युक्त या वाला अर्थ में इनि (इन्) और ठन् (इक) प्रत्यय होते हैं। दण्ड > दण्डी, दण्डिकः (दण्डवाला)। धन > धनी, धनिकः। इन्-प्रत्ययान्त के रूप पुं० में करिन् के तुल्य, स्त्री में ई लाकर नदीवत्, नपुं० में मनोहारिन् के तुल्य।

नियम २७७—(लोमादिपामादि०) (१) लोमन् आदि से श प्रत्यय। लोमन्>लोमशः (लोमयुक्त)। रोमन् > रोमशः। (२) पामन् आदि से न प्रत्यय। पामन् > पामनः (खाजवाला), अङ्ग > अङ्गना (स्त्री), लक्ष्मी > लक्ष्मणः (लक्ष्मीयुक्त)। (३) पिच्छ आदि से इलच् (इल)। पिच्छ > पिच्छिलः। उरस् > उरसिलः।

नियम २७८—(तदस्य संजातं०) युक्त अर्थ में तारका आदि शब्दों से इतच् (इत) प्रत्यय होगा। तारका > तारकितं नभः। पुष्पितः, कुसुमितः, दुःखितः, अङ्कुरितः, क्षुधितः।

नियम २७९—कुछ मत्वर्थक प्रत्यय ये हैं: (१) (अस्मायामेधा०) अस् अन्तवाले शब्दों, माया, मेधा, स्रज् से विनि (विन्) प्रत्यय। यशस्वी, मायावी, मेधावी, स्रग्वी। (२) (वाचो ग्मिनिः) वाच् से ग्मिन् प्रत्यय। वाग्मी (सुन्दर वक्ता)। (३) (अर्श आदिभ्योऽच्) अर्शस् आदि से अच् (अ)। अर्शसः (बवासीर-युक्त)। (४) (दन्त उन्नत०) दन्त से उरच् (उर)। दन्तुरः। (५) (केशाद् वो०) केश से व प्रत्यय। केश > केशवः।

अभ्यास ५६

संस्कृत बनाओ—(क) (पयस्, मनस् शब्द) १. माता शिशु को दूध पिला रही है। २. साँप को दूध पिलाना केवल उसका विष बढ़ाना है। ३. महात्माओं के मन, वचन (वचस्) और कर्म में एकरूपता होती है, पर दुरात्माओं के मन, वचन और कर्म में अन्तर होता है। ४. मैंने मन से भी कभी आज तक तुम्हारा बुरा नहीं किया है। ५. मेरा मन सन्देह में ही पड़ा है। ६. दृढ़ निश्चयवाले मन को और नीचे की ओर बहते हुए पानी को कौन रोक सकता है? ७. हितकारी और मनोहर वचन दुर्लभ है। ८. यशस्वी को शत्रुओं से अपने यश की रक्षा करनी चाहिए। ९. विमल और कलुषित होता हुआ चित्त बता देता है कि कौन उसका हितैषी है और कौन शत्रु है (चेतस्)। १०. उसकी बात पर दुर्भाव का आरोप न लगाओ। **(ख) (ज्ञा धातु)** १. मैं तपस्या के बल को जानता हूँ। २. जानता हुआ भी मेधावी संसार में जड़ के तुल्य आचरण करे। ३. हमें घर जाने के लिए आज्ञा दीजिए (अनुज्ञा)। ४. मैं करूँगा, यह प्रतिज्ञा करता हूँ, राम दुबारा नहीं कहता (प्रतिज्ञा)। ५. निर्धनों का अपमान न करो (अवज्ञा)। ६. सौ रुपया लिया है, इस बात से मुकरता है (अपज्ञा)। ७. बहू की सास से पटती है (संज्ञा)। **(ग) (मत्वर्थक प्रत्यय)** १. बलवान्, धनवान्, गुणवान्, बुद्धिमान्, रूपवान् और श्रीमान् सभी को अपनी विशेषता का अभिमान होता है। २. दण्डी, धनी, दानी, मानी, ज्ञानी और गुणी, ये अपने गुणों से दूसरों को उपकृत करते हैं। ३. यशस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी, मेधावी और वाग्मी अपने ज्ञान और तेज से दूसरों का पथप्रदर्शन करते हैं। **(घ) (अव्ययवर्ग)** १. श्रीमन् (अङ्ग), बच्चे को पढ़ा दीजिए। २. अब (अथ) शब्दानुशासन प्रारम्भ होता है। ३. क्या यह काम कर सकते हैं? ४. अब मैं ग्रीष्म ऋतु के बारे में गाऊँगा। ५. क्या यह चोर तो नहीं है? ६. मैं विदेशी हूँ, अतः पूछता हूँ। ७. वह कृष्ण की हँसी-सा कर रहा था। ८. आशा करता हूँ कि आप सकुशल हैं। ९. कहाँ तपस्या और कहाँ तुम्हारा कोमल शरीर। १०. भले ही वह मेरे सामने न बैठे। ११. मुझ पर यम भी प्रहार नहीं कर सकता है, अन्य हिंसकों का तो कहना ही क्या? १२. भाग्य से विपत्ति टल गई। १३. महाराज आपको विजय के लिए बधाई है। १४. वैसा करना, जिससे राजा की कृपा का पात्र हो जाऊँ। १५. मुझे भार उतना दुःख नहीं दे रहा है, जितना बाधति-प्रयोग। १६. जितना पाया, उतना खा लिया। १७. जबतक एक दुःख समाप्त नहीं होता, तबतक दूसरा उपस्थित हो जाता है। १८. प्राणत्याग अच्छा है, पर मूर्खों का साथ नहीं।

संकेत:—(क) १. पाययति। २. पयःपानम्। ३. महात्मनाम्, मनस्येकं, मनस्यन्यद्। ४. न ते विप्रियं कृतपूर्वम्। ५. संशयमेव गाहते। ६. क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत्। ८. यशस्तु रक्ष्यं परतो यशोधनैः। ९. विमलं कलुषीभवच्च चेतः कथयत्येव हितैषिणं रिपुं वा। १०. तस्य वचसि दुराशयं मा आरोपय। **(ख)** ३. अनुजानीहि। ४. प्रतिजाने, रामो द्विर्नाभिभाषते। ५. नावजानीत। ६. शतमपजानीते। ७. श्वश्र्वा संजानीते। **(घ)** ३. अथ। ४. ऋतुमधिकृत्य। ५. अपि चौरो भवेत्। ६. इति। ७. जहासेव। ८. कच्चित् कुशली। ९. क्व---क्व। १०. कामम्। ११. किमुतान्यहिंस्राः। १२. दिष्ट्या प्रतिहतं दुर्जातम्। १३. दिष्ट्या महाराजो विजयेन वर्धते। १४. तथा---यथा। १५. तथा---यथा बाधति बाधते। १६. यावत्---तावत्। १७. यावत्---तावत्। १८. वरं---न।

शब्दकोष-१४००+२५=१४२५] **अभ्यास ५७** (व्याकरण)

(ख) पीड् (उ०, दुःख देना), पॄ (उ०, पूरा करना), तड् (उ०, चोट मारना), खण्ड् (उ०, तोड़ना), क्षल् (उ० धोना), तुल् (उ० तोलना), पाल् (उ०, रक्षा करना), तिज् (उ०, तेज करना), कृत् (उ०, गुणगान करना), तन्त्र् (आ०, शासन करना, पालन करना), मन्त्र् (आ०, मंत्रणा करना), त्रुट् (आ०, तोड़ना), तर्ज् (आ० धमकाना), अर्थ् (आ०, प्रार्थना करना), कुत्स् (आ०, दोष लगाना), भर्त्स् (आ०, डाँटना), टङ्क् (उ०, खोदना, लगाना), पश् (उ०, बाँधना), धृ (उ०, धारण करना), मृष् (उ०, क्षमा करना), लङ्घ् (उ०, उल्लंघन करना), घुष् (उ०, घोषणा करना), ईर् (उ०, प्रेरणा देना), प्री (उ०, प्रसन्न करना), गवेष् (उ०, गवेषणा करना)। (२५)। सूचना-इन सबके रूप चुर् के तुल्य चलेंगे।

व्याकरण-(पाद, दन्त, बन्ध्, मन्थ्, विभक्त्यर्थ प्रत्यय)

१. पाद और दन्त के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० २)।

२. बन्ध् और मन्थ् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ९२, ९३)

नियम २८०—(तः प्रत्यय) (१) (पञ्चम्यास्तसिल्) पंचमी विभक्ति के स्थान पर तसिल् (तः) प्रत्यय होता है। यस्मात् > यतः। ततः, इतः, अतः, अग्रतः, सर्वतः, उभयतः। त्वत्तः, मत्तः, अस्मत्तः, युष्मत्तः। (२) (कु तिहोः) किम् को कु हो जाएगा। कस्मात् > कुतः। (३) (पर्यभिभ्यां च) परि और अभि से तः प्रत्यय। परितः, अभितः।

नियम २८१—(त्र प्रत्यय) (१) (सप्तम्यास्त्रल्) सप्तमी के स्थान पर त्रल् (त्र) प्रत्यय होता है। कुत्र, यत्र, तत्र, सर्वत्र, उभयत्र, अत्र, अन्यत्र, बहुत्र। (२) (किमोऽत्, क्वाति) किम् के क्व और कुत्र दोनों रूप होते हैं। (३) (इदमो हः) इदम् का इह (यहाँ) भी रूप बनता है। (४) (इतराभ्योऽपि०) पंचमी और सप्तमी के अतिरिक्त भी तः और त्र होते हैं। स भवान् > तत्रभवान्, ततोभवान् (पूज्य आप)। अयं भवान् > अत्रभवान् (पूज्य आप)। अत्रभवती (पूज्य स्त्री)।

नियम २८२—(१) (सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा) सर्व आदि से समय अर्थ में 'दा' प्रत्यय होता है। सर्वदा, एकदा, अन्यदा, किम् > कदा, यदा, तदा। (२) (सर्वस्य सो०) सर्व को स भी हो जाता है। सदा। (३) (अधुना) इदम् को अधुना हो जाता है। अधुना (अब)। (४) (दानीं च) इदम् से दानीम् प्रत्यय भी होता है। इदानीम् (अब)। (५) (तदो दा च) तद् से दानीम् भी होता है। तदानीम् (तब)।

नियम २८३—(१) (प्रकारवचने थाल्) 'प्रकार' अर्थ में किम् आदि से थाल् (था) प्रत्यय होगा। तेन प्रकारेण > तथा। इसी प्रकार-यथा, सर्वथा, उभयथा (दोनों प्रकार से), अन्यथा। (२) (इदमस्थमुः) इदम् से था की जगह थम् होगा। इदम् > इत्थम्। (३) (किमश्च) किम् से भी था को थम्। किम् > कथम् (कैसे)।

नियम २८४—(संख्याया विधार्थे धा) संख्यावाची शब्दों से प्रकार अर्थ में 'धा' प्रत्यय होता है। एकधा, द्विधा, त्रिधा, चतुर्धा, पञ्चधा। बहुधा, शतधा, सहस्रधा।

नियम २८५—(प्रमाण आदि अर्थ में) (१) (प्रमाणे द्वयसच्०) प्रमाण अर्थात् नाप-तोल आदि अर्थ में द्वयस, दघ्न और मात्र प्रत्यय होते हैं। जाँघ तक-ऊरुद्वयसम्, ऊरुदघ्नम्, ऊरुमात्रम्। हस्तमात्रम्, मुष्टिमात्रम्, कटिमात्रम्। (२) (यत्तदेतेभ्यः०) यत् आदि से परिमाण अर्थ में वत् प्रत्यय। यावान्, तावान्, एतावान्। किम् का कियान्, इदम् का इयान् होता है।

अभ्यास ५७

संस्कृत बनाओ—(क) (पाद, दन्त, मनस् शब्द) १. उसने गुरु के पैर छुए। २. अपराधी ने राजा के पैर छूकर क्षमा माँगी। ३. मनुष्य द्विपाद् और पशु चतुष्पाद् होते हैं। ४. इस पुस्तक का मूल्य सवा रुपया है। ५. दाँतों को ब्रश से साफ करो और दाँतों में कोई तिनका फँसा हो तो दाँत सफा करने की सींक से उसे निकाल दो। ६. उसके वचन (वचस्) से मेरा हृदय द्रवित हो गया। ७. उसकी बात (वचस्) मेरे हृदय पर असर कर गई। ८. उसके हृदय (चेतस्) पर उपदेश का प्रभाव नहीं पड़ा। ९. मेरा मन सन्देह में पड़ा है। १०. ये विचार मेरे मन में उत्पन्न हुए (प्रादुर्भू)। ११. आज हवा बन्द है। १२. यहाँ घोर अँधेरा है। १३. वृद्धावस्था में इसे तृष्णा लगी हुई है। १४. यह उसकी बात (वचस्) का निष्कर्ष है। १५. मैं तुम्हारी बात का समर्थन नहीं करता। १६. मेरी पूरी बात सुनो। १७. उसके हृदय (चेतस्) में कुतूहलता उत्पन्न हुई। १८. उसका मन नरम हो गया। १९. तेज तेज में (तेजस्) शान्त होता है। (ख) (बन्ध्, मन्थ् धातु) १. उसने उससे प्रीति लगाई (बन्ध्)। २. अपने बालों को ठीक बाँधो (बन्ध्)। ३. पुण्यात्मा कर्मों से बद्ध नहीं होता। ४. चूड़ामणि पैर में नहीं पहना जाता। ५. चित्रकूट मेरी दृष्टि को आकृष्ट कर रहा है। ६. क्या यह श्लोक तुमने बनाया है (बन्ध्)? ७. उसने बाहुयुद्ध के लिए कमर कस ली। ८. मैं हाथ जोड़कर तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ (प्रार्थ्)। ९. इसको बीच में मत टोको। १०. उसने फिर अपने काम में मन लगाया। ११. देवों ने समुद्र से अमृत को मथकर निकाला (मन्थ्)। १२. मैं युद्ध में सौ कौरवों को नष्ट करूँगा (मन्थ्)। (ग) (विभक्त्यर्थ प्रत्यय) १. कण्व को आश्रम के वृक्ष तुझसे भी अधिक प्रिय हैं, ऐसा मैं सोचता हूँ। २. तीर्थ का जल और अग्नि ये अन्य वस्तु से शुद्धि के योग्य नहीं हैं। ३. इस विषय में मैं पूज्य आपको प्रमाण मानता हूँ। ४. वह वंश आठ भागों में विभक्त होकर फैला (प्रसृ)। ५. यहाँ वहाँ जहाँ कहीं से भी छात्र आवें, उन्हें विद्यादान दो। ६. जब-तब मुझे पत्र लिखते रहना। ७. कहाँ कैसे व्यवहार करें? यहाँ इस प्रकार से और वहाँ उस प्रकार से बरतें। ८. वहाँ कितना जल है? कहीं कमर भर, कहीं घुटने भर, कहीं जाँघ भर। (घ) (क्रियावर्ग) १. जो दुःख दे, चोट मारे, डराये, धमकावे, डाँटे, व्रत को तोड़े, मर्यादा का उल्लंघन करे और दोष लगावे, उसके साथ न रहे और न उससे मित्रता करे। २. छात्र अपनी प्रतिज्ञा पूरी करता है; नौकर बर्तन धोता है; बनिया चीनी तोलता है; राजा प्रजा की रक्षा करता है (पाल्); धार धरनेवाला शस्त्रों और अस्त्रों को तेज करता है; कवि राजा का गुणगान करता है; राजा प्रजा पर शासन करता है; राजा मंत्रियों से मंत्रणा करता है और सज्जनों को प्रेरित करता है।

संकेत—(क) १. पस्पर्श। २. पादयोर्निपत्य क्षमां ययाचे। ४. सपादरूप्यकम्। ५. निविष्टं चेत्, दन्तशोधन्या। ६. द्रवीभूतम्। ७. हृदयमर्मास्पृशत्। ८. लेभेऽन्तरं चेतसि नोपदेशः। ९. संशयमेव गाहते। ११. निर्वातं नभः। १२. सूचीभेद्यं तमः। १३. परिणतवयसि, पीडयति। १५. वचो नाभिनन्दामि। १६. सावशेषम्। १७. कुतूहलेन कृतं पदम्। १८. मार्दवमभजत। १९. शाम्यति। (ख) १. तस्यां, बबन्ध। ३. न बध्यते। ४. बध्यते। ५. बध्नाति। ६. बद्धः। ७. परिकरं बबन्ध। ८. अञ्जलिं बद्ध्वा, प्रार्थये। ९. मैनमन्तरा प्रतिबधान। १०. बबन्ध। (ग) १. त्वत्तः, तर्कयामि। २. नान्यतः शुद्धिमर्हतः। ३. अत्रभवन्तं प्रमाणीकरोमि। ४. भिन्नोऽष्टधा विप्रससार। ६. यदा कदा। ८. कटिदघ्नम्, जानुदघ्नम्, ऊरुमात्रम्। (घ) १. पीडयेत्, भाययेत्। २. पारयति, प्रक्षालयति, तोलयति, तेजयति, कीर्तयति, तन्त्रयते, मन्त्रयते, प्रेरयति।

शब्दकोष-१४२५+२५=१४५०] **अभ्यास ५८** (व्याकरण)

(क) कार्तस्वरम् (सुवर्ण, सोना), रजतम् (चाँदी), चन्द्रलौहम् (जर्मन सिलवर), आयसम् (लोहा), निष्कलङ्कायसम् (स्टेनलेस स्टील), ताम्रकम् (ताँबा), पीतलम् (पीतल), कांस्यम् (काँसा, फूल), कांस्यकूटः (कसकूट), मौक्तिकम् (मोती), इन्द्रनीलः (नीलम), वैदूर्यम् (लहसुनिया), हीरकः (हीरा), प्रवालम् (मूँगा), पुष्परागः (पुखराग), मरकतम् (पन्ना), माणिक्यम् (चुन्नी), अभ्रकम् (अभ्रक), पीतकम् (हरताल), गन्धकः (गन्धक), तुत्थाञ्जनम् (तूतिया), पारदः (पारा), यशदम् (जस्ता), सीसम् (सीसा), स्फटिका (फिटकरी) (२५)

व्याकरण (गोपा, विश्वपा, क्री, ग्रह्, भावार्थक प्रत्यय)

१. गोपा शब्द के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ३) विश्वपा गोपा के तुल्य।

२. क्री और ग्रह् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ९४, ९५)

नियम २८६—(तस्य भावस्त्वलौ) भाव (हिन्दी 'पन') अर्थ में शब्द के अन्त में त्व और ता लगते हैं। त्व-प्रत्ययान्त के रूप नपुं० में ही चलेंगे, गृहवत्। ता-प्रत्ययान्त के रूप रमावत्। लघु > लघुत्वम्, लघुता (हल्कापन)। गुरु > गुरुत्वम्, गुरुता। ब्राह्मणत्वम्, क्षत्रियत्वम्, विद्वस् > विद्वत्त्वम्, विद्वत्ता। महत् > महत्त्वम्, महत्ता।

नियम २८७—(ष्यञ् प्रत्यय) (१) (वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च) वर्णवाचकों और दृढ आदि शब्दों से ष्यञ् (य) प्रत्यय होगा। प्रथम स्वर को वृद्धि। शुक्ल > शौक्ल्यम् (सफेदी)। कृष्ण > कार्ष्ण्यम् (कालापन)। दृढ > दार्ढ्यम् (दृढता)। (२) (गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः०) गुणवाचक और ब्राह्मण आदि शब्दों से ष्यञ् (य)। शूर > शौर्यम्। सुन्दर > सौन्दर्यम्। धीर > धैर्यम्। सुख > सौख्यम्। कवि > काव्यम्। (३) (चतुर्वर्णादीनां स्वार्थे०) चतुर्वर्ण आदि से स्वार्थ में ष्यञ् (य)। चातुर्वर्ण्यम्। चातुराश्रम्यम्। षड्गुण > षाड्गुण्यम्। सेना > सैन्यम्। समीप > सामीप्यम्। त्रिलोक > त्रैलोक्यम्।

नियम २८८—(इमनिच् प्रत्यय) (पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा) पृथु आदि से भाव अर्थ में इमनिच् (इमन्) प्रत्यय होता है। टि (अन्तिम स्वर-सहित अंश) का लोप होगा। (र ऋतो०) शब्द के ऋ को र होगा। पृथु > प्रथिमन्, प्रथिमा प्र० एक०। लघु > लघिमा, गुरु > गरिमा, अणु > अणिमा, महत् > महिमा, मृदु > म्रदिमा। ये प्र० एक० के रूप हैं।

नियम २८९—भावार्थक कुछ अन्य प्रत्यय ये हैं- (१) (इगन्ताच्च लघुपूर्वात्) शब्द के अन्त में इ, उ या ऋ हो और उससे पहले ह्रस्व स्वर हो तो शब्द से अण् (अ) होगा। शुचि > शौचम् (स्वच्छता), मुनि > मौनम् (मौन), पृथु>पार्थवम् (मोटापा)। (२) (सख्युर्यः) सखि से य प्रत्यय होगा। सखि > सख्यम् (मित्रता)। (३) (पत्यन्त०) पति अन्तवाले शब्दों, पुरोहित आदि और राजन् से यक् (य) होगा। प्रथम स्वर को वृद्धि। सेनापति > सैनापत्यम्। पौरोहित्यम्। राजन् > राज्यम्। (४) (प्राणभृज्जाति०) प्राणी, जातिवाचक और आयुवाचक से अञ् (अ)। अश्व > आश्वम्। कुमार > कौमारम्। कैशोरम्। (५) (हायनान्त०) हायन अन्तवाले और युवन् आदि से अण् (अ)। द्वैहायनम् (२ वर्ष का)। युवन् > यौवनम्।

नियम २९०—(वत्, क) (१) (तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः) तृतीयान्त से तुल्य अर्थ में वति (वत्), क्रियासाम्य में। ब्राह्मणेन तुल्यम् > ब्राह्मणवत् अधीते। (२) (तत्र तस्येव) सप्तम्यन्त और षष्ठ्यन्त से तुल्य अर्थ में वत्। मथुरायामिव > मथुरावत्। चैत्रस्य इव > चैत्रवत्। (३) (इवे प्रतिकृतौ) तत्सदृश मूर्ति या चित्र अर्थ में कन् (क)। अश्व इव > अश्वकः।

अभ्यास ५८

संस्कृत बनाओ—(क) (गोपा, विश्वपा शब्द) १. ग्वाला गायों को चराता है, उनकी सेवा करता है और उनकी रक्षा करता है। २. ईश्वर विश्वपा है, वह विश्व का पालन करता है। ३. शंख बजानेवाला (शंखध्मा) शंख बजाता है। ४. धूम्रपान करनेवाले (धूम्रपा) बीड़ी, सिगरेट और हुक्का पीते हैं। ५. सोमपान करनेवाला (सोमपा) सोम पीता है। (ख) (क्री, ग्रह् धातु) १. प्राणों के मूल्य से यश खरीदो। २. बनिया सामान खरीदता है और ग्राहकों को बेचता है (विक्री)। ३. वर वधू का हाथ पकड़ता है (ग्रह्)। ४. प्रजा के कल्याण के लिए ही उसने प्रजा से कर लिया (ग्रह्)। ५. राजा चोरों को पकड़े (ग्रह्) और उन्हें जेल में डाल दे। ६. लोभी को धन से जीतो (ग्रह्)। ७. मुझ मूर्खबुद्धि ने भी वैसा ही समझ लिया (ग्रह्)। ८. लोग ऐसा समझते हैं (ग्रह्)। ९. पापी का नाम भी न ले (ग्रह्)। १०. तुमने यह पुस्तक कितने मूल्य में खरीदी (ग्रह्)? ११. मनुष्य पुराने कपड़ों को उतारकर नवीन वस्त्रों को पहनता है (ग्रह्)। १२. बलवान् के साथ लड़ाई न करे (विग्रह्)। १३. आप मुझे विद्यादान से अनुगृहीत करें (अनुग्रह्)। १४. राजा पापियों और चोरों को दण्ड दे (निग्रह्)। १५. इस आतिथ्य-सत्कार को स्वीकार कीजिए (प्रतिग्रह्)। १६. इन्द्रियों को संयम में रखो (निग्रह्)। १७. माली फूलों को इकट्ठा करके (संग्रह्) लाया और उनसे उसने मालाएँ बनाईं। १८. इस विषय में मुनि बुरा नहीं मानेंगे। १९. क्या कारण है कि गुरुजी अभी तक खुश नहीं हुए? (ग) (भावार्थक) १. प्रतिष्ठा उत्सुकतामात्र को नष्ट करती है। २. ढीठ, क्यों स्वच्छन्द हो रही है? ३. इस विषय में उन सबकी एक राय है। ४. नम्बर से लड़कों को मिठाई बाँटो (वितृ)। ५. महान् राज्य भी मुझे सुख नहीं देता। ६. संसार में मनुष्य के अपने कर्म ही उसे गौरव या हीनता देते हैं। ७. त्रुटि करना मानव-सुलभ है। ८. दुष्टों पर सिधाई दिखाना नीति नहीं है। ९. सन्तान-हीनता दुःखद है। १०. क्षण-क्षण में जो नवीनता को प्राप्त हो, वही सौन्दर्य है। (घ) (धातुवर्ग) संसार में धातुओं का बहुत महत्त्व है। धातुओं से ही सभी उपयोगी वस्तुएँ बनती हैं। सोना, चाँदी, मोती, नीलम, लहसुनिया, हीरा, मूँगा, पुखराग, पन्ना और चुन्नी ये बहुमूल्य धातुएँ हैं और आभूषणों आदि में इनका उपयोग होता है। जर्मन सिलवर, लोहा, स्टेनलेस स्टील, ताँबा, पीतल, काँसा, कसकुट, जस्ता और शीशे के विविध प्रकार के बर्तन आदि बनते हैं।

संकेत :—(क) ३. धमति (ध्मा)। ४. तमाखुवीटिकाम्, तमाखुवर्तिकाम्, धूम्रनलिकाम्। (ख) १. प्राणमूल्यैः। २. पण्यान्, विक्रीणीते। ३. पाणिं गृह्णाति। ५. गृह्णीयात्, कारायां निक्षिपेत्। ७. गृहीतम्। १०. कियता मूल्येन गृहीतम्? ११. विहाय, गृह्णाति। १२. न विगृह्णीयात्। १३. अनुगृह्णातु। १५. प्रतिगृह्यतामातिथेयः सत्कारः। १७. संगृह्य। १८. न दोषं ग्रहीष्यति। १९. नाद्यापि प्रसादं गृह्णाति। (ग) (भावार्थक) १. औत्सुक्यमात्रमवसाययति। २. पुरोभागे, किं स्वातन्त्र्यमवलम्बसे? ३. ऐकमत्यम्। ४. आनुपूर्व्येण। ५. न सौख्यमावहति। ६. लोके गुरुत्वं विपरीततां वा स्वचेष्टितान्येव नरं नयन्ति। ७. लघिमा। ८. आर्जवं हि कुटिलेषु। ९. अनपत्यता। १०. नवतामुपैति, तदेव रूपं रमणीयतायाः।

शब्दकोष-१४५०+२५=१४७५] **अभ्यास ५९** (व्याकरण)

(क) नव रसा: (नौ रस), सप्त स्वरा: (सात स्वर), मन्द्र: (कोमल स्वर), मध्य: (मध्यम स्वर), तार: (तीव्र स्वर), आरोह: (चढ़ाव), अवरोह: (उतार), वीणा (सितार), मुरली (स्त्री०, बाँसुरी), मनोहारिवाद्यम् (हारमोनियम), सारङ्गी (स्त्री०, १. वायोलिन, २. सारंगी), तन्त्रीकवाद्यम् (पियानो), तानपूर: (तानपूरा), जलतरङ्ग: (जलतरंग), मुरज: (तबला), ढौलक: (ढोलक), मञ्जीरम् (मंजीरा), दुन्दुभि: (पुं०, स्त्री०, नगाड़ा), पटह: (ढोल), तूर्यम् (तुरही, शहनाई), डिण्डिम: (ढिंढोरा), वादित्रगण: (बैण्ड), वीणावाद्यम् (बीनबाजा, नफीरी), संज्ञाशङ्ख: (बिगुल), कोण: (मिज़राब)। (२५)।

व्याकरण (कति, चुर्, चिन्त्, तर, तम, ईयस्, इष्ठ)

१. कति शब्द के रूप स्मरण करो। (देखो शब्द० ९९)।

२. चुर् और चिन्त् धातुओं के रूप स्मरण करो। (देखो धातु० ९७, ९८)।

नियम २९१—(द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ) दो की तुलना में विशेषण शब्द से तरप् (तर) और ईयसुन् (ईयस्) प्रत्यय होते हैं। तर प्रत्यय लगने पर पुं० में रामवत्, स्त्री० में रमावत् और नपुं० में गृहवत् रूप चलेंगे। ईयस् लगने पर पुं० में श्रेयस् (शब्द० ३९) के तुल्य, स्त्री० में अन्त में ई लगाकर नदीवत् और नपुं० में मनस् के तुल्य रूप चलेंगे। जिससे विशेषता दिखाई जाती है, उसमें पंचमी होगी। राम: श्यामात् पटुतर:, पटीयान् वा।

नियम २९२—(अतिशायने तमबिष्ठनौ) बहुतों में से एक की विशेषता बताने अर्थ में तमप् (तम) और इष्ठन् (इष्ठ) प्रत्यय होते हैं। दोनों के रूप पुं० में रामवत्, स्त्री० में रमावत्, नपुं० में गृहवत् चलेंगे। जिससे विशेषता बताई जाती है, उसमें षष्ठी या सप्तमी होगी। छात्राणां छात्रेषु वा राम: पटुतम: पटिष्ठ: वा।

नियम २९३—ईयस् और इष्ठ के बारे में ये बातें स्मरण रखें-(१) (अजादी गुणावचनादेव) ईयस् और इष्ठ गुणवाचकों से ही लगेंगे; अन्य से नहीं। तर, तम सर्वत्र लगते हैं। (२) (टे:) ईयस् या इष्ठ बाद में होगा तो टि (अन्तिम स्वरसहित अंश) का लोप होगा। (३) (र ऋतो०) शब्द के ऋ को र् होगा। (४) (स्थूलदूर०) स्थूल दूर आदि के अन्तिम र, ल या व का लोप होगा, ईयस् या इष्ठ बाद में होगा तो। (५) (प्रियस्थिर०) प्रिय, स्थिर आदि को प्र, स्थ आदि होते हैं। विशेष प्रसिद्ध रूप ये हैं। कोष्ठगत शब्द शेष रहता है। इन शब्दों से तर-तम भी लगते हैं।

प्रशस्य (श्र)	श्रेयान्	श्रेष्ठ:	गुरु (गर्)	गरीयान्	गरिष्ठ:
वृद्ध, प्रशस्य (ज्य)	ज्यायान्	ज्येष्ठ:	दीर्घ (द्राघ्)	द्राघीयान्	द्राघिष्ठ:
अन्तिक (नेद्)	नेदीयान्	नेदिष्ठ:	बहु (भू)	भूयान्	भूयिष्ठ:
बाढ (साध्)	साधीयान्	साधिष्ठ:	युवन् (कन्)	कनीयान्	कनिष्ठ:
स्थूल (स्थू)	स्थवीयान्	स्थविष्ठ:	पटु (पट्)	पटीयान्	पटिष्ठ:
दूर (दू)	दवीयान्	दविष्ठ:	लघु (लघ्)	लघीयान्	लघिष्ठ:
प्रिय (प्र)	प्रेयान्	प्रेष्ठ:	महत् (मह्)	महीयान्	महिष्ठ:
स्थिर (स्थ)	स्थेयान्	स्थेष्ठ:	मृदु (म्रद्)	म्रदीयान्	म्रदिष्ठ:
उरु (वर्)	वरीयान्	वरिष्ठ:	बलिन् (बल्)	बलीयान्	बलिष्ठ:

अभ्यास ५९

संस्कृत बनाओ—(क) (कति शब्द) १. कितनी अग्नियाँ हैं और कितने सूर्य हैं ? २. मन, तू स्मरण कर कि तूने कितने पाप किए हैं और कितने पुण्य। ३. कुछ ही पैर चलकर वह तन्वी रुक गई। ४. उस पर्वत पर उसने कुछ महीने बिताए (नी)। ५. कदम्ब पर कुछ फूल खिले हैं। ६. कुछ दिन बीतने पर वह घर लौटा। (ख) (चुर्, चिन्त्) १. चोर ने तिजोरी तोड़कर तीन एक हजार रुपये के, दस एक सौ के, पचास दस रुपये के और अस्सी पाँच रुपये के नोट चुराए। २. नारद ने चन्द्रमा की शोभा को चुराया। ३. सोचो, किस बहाने से हम आश्रम में जावें। ४. सज्जन की हानि को मन से भी न सोचे (चिन्त्)। ५. पिता तुम्हारी देख-भाल करेंगे (चिन्त्)। ६. पाखण्डियों और कुकर्मियों की वाणी से भी पूजा न करे (अर्च्)। ७. ऐसी वाणी न कहे (उदीर्), जिससे दूसरे के हृदय को दुःख पहुँचे। ८. कार्य पूरा करने का इच्छुक मनस्वी न दुःख की परवाह करता है और न सुख की। ९. धर्म की प्राचीन मान्यताओं का पता चलाओ (गवेष्)। १०. वह मुँह पर घूँघट काढ़ती है। ११. भारतीय सरकार ने गोहत्या-निरोध की घोषणा की (घुष्)। १२. चित्रकार कपड़े पर नेहरूजी का चित्र बनाता है (चित्र्)। १३. मैं दुर्योधन की जंघा को चूर-चूर कर दूँगा (चूर्ण्)। १४. वह आभूषणों से अपने शरीर को अलंकृत कर रही है (अवतंस्)। १५. विद्या और धन को बड़े परिश्रम से एकत्र करे (अर्ज्)। (ग) (तर, तम आदि) १. यशोधनों के लिए यश बड़ी चीज है (गुरु)। २. बड़े लोग स्वभाव से ही कम बोलते हैं। ३. बड़ों की सहायता से क्षुद्र भी सफल हो जाता है। ४. जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है (गुरु)। ५. स्वधर्म परधर्म से बढ़कर है। ६. राम श्याम से अधिक बड़ा (प्रशस्य), अच्छा (बाढ), प्रिय, विशाल (उरु), भारी (गुरु), लम्बा (दीर्घ), चतुर (पटु), महान् और बलवान् (बलिन्) हैं और श्याम राम से हलका (लघु), छोटा (युवन्), कोमल (मृदु) और कृश है। (घ) ७. कृष्ण सबसे अधिक बड़ा, अच्छा, प्रिय, विशाल, भारी, लम्बा, चतुर, महान् और बलवान् है और यज्ञदत्त सबसे अधिक हलका, छोटा, कोमल और कृश है। (नाट्यवर्ग) विभाव, अनुभाव और संचारिभावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। शृंगार, वीर आदि नौ रस हैं और उनके रति, उत्साह आदि नौ स्थायिभाव हैं। षड्ज; ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद ये सात स्वर हैं। इनके प्रथम अक्षरों को लेकर स रे ग म आदि सरगम बना है। संगीत में कोमल, मध्यम और तीव्र स्वरों के तीन सप्तक होते हैं। स्वरों का आरोह और अवरोह होता है। प्राचीन वाद्यों में से सितार, बाँसुरी, सारंगी, तानपूरा, तबला, ढोलक, मजीरा, नगाड़ा, ढोल, तुरही, ढिंढोरा इनका प्रचलन अभी तक है। नवीन वाद्यों में हारमोनियम, वायोलिन, पियानो, जलतरंग, बैंड, बीनबाजा और बिगुल का अधिक प्रचलन है। संगीत जीवन को सरस और मधुर बनाता है।

संकेत :—(क) ३. कतिचिदेव। ४. कतिचित्। ५. कतिपयकुसुमोद्गमः कदम्बः। ६. कतिपयदिवसापगमे। (ख) १. लौहमञ्जूषां विदार्य, सहस्ररूप्यकनाणकानि, नाणकानि। २. अचूचुरत्। ३. अपदेशेन। ५. त्वां चिन्तयिष्यति। ६. पाषण्डिनो विकर्मस्थान् वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्। ७. उदीरयेत्। ८. मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुःखं न च सुखम्। ९. गवेषय। १०. मुखमवगुण्ठयति। ११. सर्वकारः, अघोषयत्। १२. चित्रयति। १३. संचूर्णयिष्यामि। १४. अवतंसयति। १५. अर्जयेत्। (ग) १. यशोधनानां हि यशो गरीयः। २. महीयांसः, मितभाषिणः। ३. बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति। ४. गरीयसी। ५. श्रेयान्। ६. ज्यायान्, साधीयान्।

शब्दकोष-१४७५+२५=१५००] **अभ्यास ६०** (व्याकरण)

(क) कासः (खाँसी), प्रतिश्यायः (जुकाम), ज्वरः (बुखार), विषमज्वरः (मलेरिया), शीतज्वरः (इन्फ्लुएन्जा, फ्लु), प्रलापकज्वरः (निमोनिया), संनिपातज्वरः (टाइफाइड), राजयक्ष्मन् (पुं०, तपेदिक, टी० बी०), शीतला (चेचक), मन्थरज्वरः (मोतीझरा), अतिसारः (दस्त), प्रवाहिका (पेचिश, संग्रहणी), वमथुः (पुं०, कै), विषूचिका (हैजा), रक्तचापः (ब्लडप्रेशर), पिटकः (फोड़ा), पिटिका (फुंसी), अर्शस् (नपुं०, बवासीर), प्रमेहः (प्रमेह), मधुमेहः (बहुमूत्र, डाएबिटीज), पाण्डुः (पुं०, पीलिया), अजीर्णम् (कब्ज), उपदंशः (गरमी, सिफलिस), विद्रधिः (पुं०, विषव्रणम्, केन्सर), पक्षाघातः (लकवा मारना)। (२५)

नियम २९४—(विकारार्थक) विकार अर्थ में ये प्रत्यय होते हैं—(१) (तस्य विकारः) विकार अर्थ में अण् (अ)। भस्मन्>भास्मनः। (२) (मयड्वैतयो०) विकार और अवयव अर्थ में मय प्रत्यय। अश्मन् > अश्ममयम्। (३) (गोश्च पुरीषे) गो से गोबर अर्थ में मय। गो > गोमयम्। (४) (गोपयसोर्यत्) गो और पयस् से यत् (य)। गव्यम्। पयस्यम्।

नियम २९५—(ठक्) इन अर्थों में ठक् (इक) होता है। प्रथम स्वर को वृद्धि। (१) (तेन दीव्यति०) जुआ खेलना आदि अर्थों में। अक्ष > आक्षिकः। (२) (संस्कृतम्) बनाने अर्थ में। दधि > दाधिकम्। (३) (तरति) तैरने अर्थ में। उडुप > औडुपिकः (छोटी नाव से पार करनेवाला)। (४) (चरति) सवारी करना अर्थ में। हस्तिन् > हास्तिकः। (५) (रक्षति) रक्षा अर्थ में। समाज > सामाजिकः।

नियम २९६—(यत्) इन स्थानों पर यत् (य) होता है :—(१) (तद्वहति०) ढोने अर्थ में यत्। रथ > रथ्यः। (२) (धुरो यड्ढकौ) धुर् से य और ढक् (एय)। धुर् > धुर्यः, धौरेयः। (३) (नौवयोधर्म०) नौ आदि से। नौ > नाव्यम्। (४) (तत्र साधुः) शिष्ट अर्थ में यत्। शरण > शरण्यः। (५) (सभाया यः) सभा से य प्रत्यय। सभ्यः। (६) (पथ्यतिथि०) पथिन् आदि से ढञ् (एय)। पथिन् > पाथेयम्। अतिथि > आतिथेयम्।

नियम २९७—(छ, यत्) छ का ईय, यत् का य शेष रहता है। (१) (उगवादिभ्यो०) हित अर्थ में उकारान्त और गो आदि से यत्। शङ्कु > शङ्कव्यम्। गो > गव्यम्। (२) (तस्मै हितम्) हित अर्थ में छ (ईय)। वत्स>वत्सीयः। (३) (शरीरावयवाद्यत्) शरीरावयवों से यत् (य)। दन्त्यम्, कण्ठ्यम्। (४) (आत्मन्विश्वजन०) आत्मन् आदि से हित अर्थ में ख (ईन)। आत्मन् > आत्मनीनम्। विश्वजन > विश्वजनीनम्।

नियम २९८—(ठञ्) ठ को इक। (१) (तेन क्रीतम्) खरीदने अर्थ में ठञ् (इक)। सप्तति>साप्ततिकम्। (२) (तदर्हति) योग्य होने अर्थ में ठञ् (इक)। श्वेतछत्र > श्वैतच्छत्रिकः। (३) (दण्डादिभ्यो यत्) दण्ड आदि से यत् (य)। दण्ड > दण्ड्यः।

नियम २९९—(स्वार्थिक) (१) (प्रज्ञादिभ्यश्च) प्रज्ञ आदि से स्वार्थ में अण् (अ)। प्रज्ञ > प्राज्ञः, देवता > दैवतः, बन्धु > बान्धवः। (२) (अल्पे, ह्रस्वे) अल्प और छोटा अर्थ में कन् (क)। तैल > तैलकम्, वृक्ष > वृक्षकः।

नियम ३००—(१) (कृभ्वस्तियोगे०) वैसा हो जाना अर्थ में च्वि प्रत्यय होता है। च्वि का कुछ नहीं शेष रहता है। बाद में कृ, भू, अस् का प्रयोग होता है। च्वि होने पर शब्द के अ को ई, इ और उ को दीर्घ होगा। शुक्ल>शुक्लीकरोति, कृष्णीकरोति। (२) (विभाषा साति०) सम्पूर्ण अर्थ में साति (सात्)। भस्मसात्, अग्निसात्। (३) (नित्यवीप्सयोः) बार-बार और द्विरुक्ति अर्थ में पद को द्वित्व होता है। भुक्त्वा भुक्त्वा। वृक्षं वृक्षं सिञ्चति। (४) (ईषदसमाप्तौ०) कुछ कम अर्थ में कल्प, देश्य, देशीय प्रत्यय होते हैं। लगभग ५ वर्ष का—पञ्चवर्षदेशीयः, पञ्चवर्षदेश्यः। मध्याह्नकल्पः।

अभ्यास ६०

संस्कृत बनाओ :—(क) (कथ्, भक्ष् धातु) १. उन दोनों की संपत्ति का क्या कहना ? २. उन्होंने जनक से कहा कि राम धनुष को देखना चाहते हैं। ३. कथा के बहाने से यहाँ नीति ही कही गई है। ४. दूसरे का उच्छिष्ट न खावे। ५. गुरु आज्ञा देते हैं (आज्ञापि) कि पापों को छोड़ो। ६. स्त्री अलंकारों से अपने शरीर को विभूषित करती है (भूष्)। ७. बालक मिठाई का स्वाद लेता है (आस्वद्)। ८. वह बर्तनों को माँजता है (मृज्), शत्रुओं को तपाता है (तप्), सज्जनों को तृप्त करता है (तृप्), मान्यों का मान करता है (मान्) और दुष्टों को दबाता है (धृष्)। **(ख) (तद्धित प्रत्यय)** १. शारीरिक पुष्टि के लिए पंचगव्य का सेवन करना चाहिए। २. जुआरी पासों से जुआ खेलता है (दिव्)। ३. सभ्य अपने-अपने स्थानों को लौट गए। ४. अहिंसा का सिद्धान्त अपनी भलाई और विश्व की भलाई दोनों के लिए है। ५. राम लगभग अठारह वर्ष का है। ६. अब लगभग दोपहर का समय है। ७. वह लगभग मरा हुआ है। ८. आग सब वस्तुओं को भस्मसात् कर देती है। ९. नेहरूजी का कथन था कि श्रमिकों की गन्दी बस्तियों को जला दो और उनके लिए साफ मकान बनाओ। १०. एकचित्त होकर देशोद्धार में लगो (प्रवृत्)। ११. कुल मिलाकर मुझे बीस रुपए दो। १२. यह बात मुझको ही संकेत करती है। १३. मकान जलकर राख हो गए। १४. यह बात सर्वत्र फैल गई है। **(ग) (रोगवर्ग)** १. मुझे बड़ा सिरदर्द है। २. यह फोड़े पर फोड़ा निकला है। ३. उसके रोग का शीघ्र इलाज करो। ४. आज मेरी तबीयत पहले से ठीक है। ५. रोग को ठीक जाने बिना उसका इलाज नहीं करना चाहिए। ६. इसका रोग बहुत बढ़ गया है। ७. रोगी की जान खतरे में है। ८. उसका रोग असाध्य है। **(घ) (रोगवर्ग)** शरीर व्याधियों का घर है। अतः कहा गया है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का सर्वोत्तम मूल आरोग्य है। अतः सदा स्वस्थ रहने का प्रयत्न करना चाहिए। सात्त्विक भोजन, उचित आहार-विहार, दैनिक व्यायाम, भ्रमण, योगासन और प्राणायाम से शरीर नीरोग रहता है। इन नियमों पर ध्यान न देने से ही खाँसी, जुकाम, बुखार, मलेरिया, इन्फ्लुएन्जा, निमोनिया, टाइफाइड, तपेदिक, चेचक, मोतीझरा, दस्त, पेचिश, संग्रहणी, हैजा, फोड़ा, फुंसी, बवासीर, प्रमेह, मधुमेह, कब्ज आदि रोग होते हैं। केन्सर, लकवा मारना, तपेदिक और दिल के रोग, ये घातक रोग हैं। विशेषज्ञों का कथन है कि रोगों का कारण जीवन की अनियमितता है। जीवन को नियमित बनावें और वेद के शब्दों में नीरोग होकर सौ वर्ष जीवें। सब सुखी हों, सब नीरोग हों, सब सुख देखें और कोई दुःखी न हो।

संकेत :—(क) १. किं कथ्यते श्रीरुभयस्य तस्य। २. मैथिलाय कथयांबभूव। ३. छलेन। ५. वर्जय। ६. भूषयति। ७. आस्वादयति। ८. मार्जयति, तापयति, तर्पयति, मानयति, धर्षयति। **(ख)** २. आक्षिकः, अक्षैः। ३. प्रतिजग्मुः। ४. आत्मनीनो विश्वजनीनश्च वर्तते। ५. अष्टादशवर्षदेशीयः। ६. मध्याह्नकल्पः। ७. मृतप्रायः। ९. शीर्णान्यावासस्थानानि अग्निसात् कुरुत। १०. एकचित्तीभूय। ११. पिण्डीकृत्य। १२. कथा, लक्ष्यीकरोति। १३. भस्मीभूतानि। १४. वृत्तं बहुलीभूतम्। **(ग)** १. बलवती शिरोवेदना मां बाधते। २. गण्डस्योपरि पिटिका संवृत्ता। ३. विकारो विलम्बाक्षमः। ४. अस्ति मे विशेषोऽद्य। ५. विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भः प्रतीकारस्य। ६. अतिभूमिं गतः। ७. आतुरो जीवितसंशये वर्तते। **(घ)** हृद्रोगाः। जीवेम शरदः शतम्। सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्।

व्याकरण

आवश्यक निर्देश

१. शब्दरूप-संग्रह में उन सभी शब्दों (१०० शब्दों) का संग्रह किया गया है, जो अधिक प्रचलित हैं। जिन शब्दों का प्रयोग बहुत कम होता है या सर्वथा नहीं होता है, उनका समावेश इसमें नहीं किया गया है।

२. शब्दों और धातुओं के रूप के साथ अभ्यासों की संख्याएँ दी गई हैं। उसका भाव यह है कि उस शब्द या धातु का प्रयोग उस अभ्यास में हुआ है और उस प्रकार से चलनेवाले शब्द या धातु भी उस अभ्यास में दिए गए हैं। अनुवादवाले प्रकरण में उस शब्द या धातु के अभ्यास में उसी प्रकार चलनेवाले शब्द या धातु यथास्थान कोष्ठ में दिए गए हैं, उनके रूप भी निर्दिष्ट शब्द या धातु के तुल्य चलावें।

३. संक्षेप के लिए निम्नलिखित संकेतों का उपयोग किया गया है :—

(क) शब्दरूपों में प्रथमा आदि के लिए उनके प्रथम अक्षर रखे गए हैं। जैसे–प्र०=प्रथमा, द्वि०=द्वितीया, तृ०=तृतीया, च०=चतुर्थी, पं०=पंचमी, ष०=षष्ठी, स०=सप्तमी, सं०=संबोधन।

(ख) पुं०=पुंलिंग, स्त्री०=स्त्रीलिंग, नपुं०=नपुंसक लिंग। एक०=एकवचन, द्वि०=द्विवचन, बहु०=बहुवचन। दे०अ०=देखो अभ्यास, अ०=अभ्यास। प्रत्येक शब्द या धातु के रूप में ऊपर से नीचे की ओर प्रथम पंक्ति एकवचन की है, दूसरी द्विवचन की और तीसरी बहुवचन की। जो शब्द किसी विशेष वचन में ही चलते हैं, उनके उसी वचन के रूप हैं।

(ग) धातुरूपों में प्र०पु० या प्र०=प्रथम पुरुष (अन्य पुरुष), म०पु० या म०=मध्यम पुरुष, उ०पु० या उ०=उत्तम पुरुष। पर० या प०=परस्मैपद, आत्मने० या आ०=आत्मनेपद, उभय० या उ०=उभयपद।

४. सर्वनाम शब्दों का संबोधन नहीं होता, अतः उनके रूप संबोधन में नहीं दिए गए हैं।

५. शब्दरूपों के लिए ये नियम स्मरण कर लें—(१) (अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि) र् और ष् के बाद न् को ण् होता है, यदि अट् (स्वर, ह, य, व, र), कवर्ग, पवर्ग, आ, न् बीच में हों तो भी न् को ण् होगा। ऋ वाले शब्दों में भी यह नियम लगेगा। अतः र्, ऋ और ष् वाले शब्दों में इस नियम के अनुसार न् को ण् करें, अन्यत्र न् ही रहेगा। (२) (इण्कोः, आदेशप्रत्यययोः) अ को छोड़कर अन्य स्वरों के बाद तथा कवर्ग के बाद प्रत्यय के स् को ष् हो जाता है। धातुओं में भी यह नियम लगेगा। जैसे–रामेषु, हरिषु, कर्तृषु, वाक्षु।

(१) शब्दरूप-संग्रह

(क) अजन्त पुंलिंग शब्द

(१) राम (राम) (देखो अभ्यास १)

रामः	रामौ	रामाः	प्र०
रामम्	,,	रामान्	द्वि०
रामेण	रामाभ्याम्	रामैः	तृ०
रामाय	,,	रामेभ्यः	च०
रामात्	,,	,,	पं०
रामस्य	रामयोः	रामाणाम्	ष०
रामे	,,	रामेषु	स०
हे राम	हे रामौ	हे रामाः	सं०

(२) पाद (पैर) (देखो अभ्यास ५७)

प्र०	पादः	पादौ	पादाः
द्वि०	पादम्	,,	पदः
तृ०	पदा	पद्भ्याम्	पद्भिः
च०	पदे	,,	पद्भ्यः
पं०	पदः	,,	,,
ष०	पदः	पदोः	पदाम्
स०	पदि	,,	पत्सु
सं०	हे पाद	हे पादौ	हे पादाः

सूचना— पाद के पूरे रूप राम के तुल्य भी चलेंगे। पाद के तुल्य ही दन्त (दत्) के द्वितीया बहु० आदि में दतः, दता, दद्भ्याम् आदि रूप होंगे।

❖ ❖ ❖

(३) गोपा (ग्वाला) (दे० अ० ५८)

गोपाः	गोपौ	गोपाः	प्र०
गोपाम्	,,	गोपः	द्वि०
गोपा	गोपाभ्याम्	गोपाभिः	तृ०
गोपे	,,	गोपाभ्यः	च०
गोपः	,,	,,	पं०
,,	गोपोः	गोपाम्	ष०
गोपि	,,	गोपासु	स०
हे गोपाः	हे गोपौ	हे गोपाः	सं०

(४) हरि (विष्णु) (देखो अ० ४)

प्र०	हरिः	हरी	हरयः
द्वि०	हरिम्	,,	हरीन्
तृ०	हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभिः
च०	हरये	,,	हरिभ्यः
पं०	हरेः	,,	,,
ष०	,,	हर्योः	हरीणाम्
स०	हरौ	,,	हरिषु
सं०	हे हरे	हे हरी	हे हरयः

❖ ❖ ❖

(५) सखि (मित्र) (दे० अ० १९)

सखा	सखायौ	सखायः	प्र०
सखायम्	,,	सखीन्	द्वि०
सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः	तृ०
सख्ये	,,	सखिभ्यः	च०
सख्युः	,,	,,	पं०
,,	सख्योः	सखीनाम्	ष०
सख्यौ	,,	सखिषु	स०
हे सखे	हे सखायौ	हे सखायः	सं०

(६) पति (पति) (दे० अ० २०)

प्र०	पतिः	पती	पतयः
द्वि०	पतिम्	,,	पतीन्
तृ०	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः
च०	पत्ये	,,	पतिभ्यः
पं०	पत्युः	,,	,,
ष०	,,	पत्योः	पतीनाम्
स०	पत्यौ	,,	पतिषु
सं०	हे पते	हे पती	हे पतयः

सूचना—स्त्रीलिंग में सखी के रूप नदीवत् चलेंगे।

(७) भूपति (राजा) (हरिवत्) (दे० अ० ४) (८) सुधी (विद्वान्) (दे० अ०२१)

भूपतिः	भूपती	भूपतयः	प्र०	सुधीः	सुधियौ	सुधियः
भूपतिम्	''	भूपतीन्	द्वि०	सुधियम्	''	''
भूपतिना	भूपतिभ्याम्	भूपतिभिः	तृ०	सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभिः
भूपतये	''	भूपतिभ्यः	च०	सुधिये	''	सुधीभ्यः
भूपतेः	''	''	पं०	सुधियः	''	''
''	भूपत्योः	भूपतीनाम्	ष०	''	सुधियोः	सुधियाम्
भूपतौ	''	भूपतिषु	स०	सुधियि	''	सुधीषु
हे भूपते	हे भूपती	हे भूपतयः	सं०	हे सुधीः	हे सुधियौ	हे सुधियः

❖ ❖ ❖

(९) गुरु (गुरु) (दे० अ० ५) (१०) स्वभू (ब्रह्मा) (दे० अ० २१)

गुरुः	गुरू	गुरवः	प्र०	स्वभूः	स्वभुवौ	स्वभुवः
गुरुम्	''	गुरून्	द्वि०	स्वभुवम्	''	''
गुरुणा	गुरुभ्याम्	गुरुभिः	तृ०	स्वभुवा	स्वभूभ्याम्	स्वभूभिः
गुरवे	''	गुरुभ्यः	च०	स्वभुवे	''	स्वभूभ्यः
गुरोः	''	''	पं०	स्वभुवः	''	''
''	गुर्वोः	गुरूणाम्	ष०	''	स्वभुवोः	स्वभुवाम्
गुरौ	''	गुरुषु	स०	स्वभुवि	''	स्वभूषु
हे गुरो	हे गुरू	हे गुरवः	सं०	हे स्वभूः	हे स्वभुवौ	हे स्वभुवः

❖ ❖ ❖

(११) कर्तृ (करनेवाला) (दे० अ० २२) (१२) पितृ (पिता) (दे० अ० २३)

कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः	प्र०	पिता	पितरौ	पितरः
कर्तारम्	''	कर्तॄन्	द्वि०	पितरम्	''	पितॄन्
कर्त्रा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः	तृ०	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
कर्त्रे	''	कर्तृभ्यः	च०	पित्रे	''	पितृभ्यः
कर्तुः	''	''	पं०	पितुः	''	''
''	कर्त्रोः	कर्तॄणाम्	ष०	''	पित्रोः	पितॄणाम्
कर्तरि	''	कर्तृषु	स०	पितरि	''	पितृषु
हे कर्तः	हे कर्तारौ	हे कर्तारः	सं०	हे पितः	हे पितरौ	हे पितरः

(१३) नृ (मनुष्य) (पितृवत्) (दे० अ० २३) — (१४) गो (बैल या गाय) पुं०, स्त्री० (दे० अ० २४)

ना	नरौ	नरः	प्र०	गौः	गावौ	गावः
नरम्	"	नॄन्	द्वि०	गाम्	"	गाः
न्रा	नृभ्याम्	नृभिः	तृ०	गवा	गोभ्याम्	गोभिः
न्रे	"	नृभ्यः	च०	गवे	"	गोभ्यः
नुः	"	"	पं०	गोः	"	"
"	न्रोः	नृणाम्, नॄणाम्	ष०	"	गवोः	गवाम्
नरि	"	नृषु	स०	गवि	"	गोषु
हे नः	हे नरौ	हे नरः	सं०	हे गौः	हे गावौ	हे गावः

❖ ❖ ❖

(ख) हलन्त पुंलिंग शब्द

(१५) पयोमुच् (बादल) (दे० अ० २६) — (१६) प्राञ्च् (पूर्वी) (दे० अ० २५)

पयोमुक्	पयोमुचौ	पयोमुचः	प्र०	प्राङ्	प्राञ्चौ	प्राञ्चः
पयोमुचम्	"	"	द्वि०	प्राञ्चम्	"	प्राचः
पयोमुचा	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भिः	तृ०	प्राचा	प्राग्भ्याम्	प्राग्भिः
पयोमुचे	"	पयोमुग्भ्यः	च०	प्राचे	"	प्राग्भ्यः
पयोमुचः	"	"	पं०	प्राचः	"	"
"	पयोमुचोः	पयोमुचाम्	ष०	"	प्राचोः	प्राचाम्
पयोमुचि	"	पयोमुक्षु	स०	प्राचि	"	प्राक्षु
हे पयोमुक्	हे पयोमुचौ	हे पयोमुचः	सं०	हे प्राङ्	हे प्राञ्चौ	हे प्राञ्चः

❖ ❖ ❖

(१७) उदञ्च् (उत्तरी) (दे० अ० २५) — (१८) वणिज् (बनिया) (दे० अ० २६)

उदङ्	उदञ्चौ	उदञ्चः	प्र०	वणिक्	वणिजौ	वणिजः
उदञ्चम्	"	उदीचः	द्वि०	वणिजम्	"	"
उदीचा	उदग्भ्याम्	उदग्भिः	तृ०	वणिजा	वणिग्भ्याम्	वणिग्भिः
उदीचे	"	उदग्भ्यः	च०	वणिजे	"	वणिग्भ्यः
उदीचः	"	"	पं०	वणिजः	"	"
"	उदीचोः	उदीचाम्	ष०	"	वणिजोः	वणिजाम्
उदीचि	"	उदक्षु	स०	वणिजि	"	वणिक्षु
हे उदङ्	हे उदञ्चौ	हे उदञ्चः	सं०	हे वणिक्	हे वणिजौ	हे वणिजः

(१९) भूभृत् (राजा, पर्वत) (दे० अ० २७) **(२०) भगवत् (भगवान्) (दे० अ० २८)**

भूभृत्	भूभृतौ	भूभृतः	प्र०	भगवान्	भगवन्तौ	भगवन्तः
भूभृतम्	"	"	द्वि०	भगवन्तम्	"	भगवतः
भूभृता	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भिः	तृ०	भगवता	भगवद्भ्याम्	भगवद्भिः
भूभृते	"	भूभृद्भ्यः	च०	भगवते	"	भगवद्भ्यः
भूभृतः	"	"	पं०	भगवतः	"	"
"	भूभृतोः	भूभृताम्	ष०	"	भगवतोः	भगवताम्
भूभृति	"	भूभृत्सु	स०	भगवति	"	भगवत्सु
हे भूभृत्	हे भूभृतौ	हे भूभृतः	सं०	हे भगवन्	हे भगवन्तौ	हे भगवन्तः

❖ ❖ ❖

(२१) धीमत् (बुद्धिमान्) (दे० अ० २८) **(२२) महत् (महान्) (दे० अ० २९)**

धीमान्	धीमन्तौ	धीमन्तः	प्र०	महान्	महान्तौ	महान्तः
धीमन्तम्	"	धीमतः	द्वि०	महान्तम्	"	महतः
धीमता	धीमद्भ्याम्	धीमद्भिः	तृ०	महता	महद्भ्याम्	महद्भिः
धीमते	"	धीमद्भ्यः	च०	महते	"	महद्भ्यः
धीमतः	"	"	पं०	महतः	"	"
"	धीमतोः	धीमताम्	ष०	"	महतोः	महताम्
धीमति	"	धीमत्सु	स०	महति	"	महत्सु
हे धीमन्	हे धीमन्तौ	हे धीमन्तः	सं०	हे महन्	हे महान्तौ	हे महान्तः

❖ ❖ ❖

(२३) भवत् (आप) (दे० अ० २९) **(२४) पठत् (पढ़ता हुआ) (दे० अ० ३०)**

भवान्	भवन्तौ	भवन्तः	प्र०	पठन्	पठन्तौ	पठन्तः
भवन्तम्	"	भवतः	द्वि०	पठन्तम्	"	पठतः
भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भिः	तृ०	पठता	पठद्भ्याम्	पठद्भिः
भवते	"	भवद्भ्यः	च०	पठते	"	पठद्भ्यः
भवतः	"	"	पं०	पठतः	"	"
"	भवतोः	भवताम्	ष०	"	पठतोः	पठताम्
भवति	"	भवत्सु	स०	पठति	"	पठत्सु
हे भवन्	हे भवन्तौ	हे भवन्तः	सं०	हे पठन्	हे पठन्तौ	हे पठन्तः

सूचना- स्त्रीलिंग में भवती के रूप नदी (शब्द० ४३) के तुल्य चलेंगे।

(२५) यावत् (जितना) (दे० अ० ३०)

यावान्	यावन्तौ	यावन्तः	प्र०
यावन्तम्	"	यावतः	द्वि०
यावता	यावद्भ्याम्	यावद्भिः	तृ०
यावते	"	यावद्भ्यः	च०
यावतः	"	"	पं०
"	यावतोः	यावताम्	ष०
यावति	"	यावत्सु	स०
हे यावत्	हे यावन्तौ	हे यावन्तः	सं०

(२६) बुध् (विद्वान्) (दे० अ० ३१)

प्र०	भुत्	बुधौ	बुधः
द्वि०	बुधम्	"	"
तृ०	बुधा	भुद्भ्याम्	भुद्भिः
च०	बुधे	"	भुद्भ्यः
पं०	बुधः	"	"
ष०	"	बुधोः	बुधाम्
स०	बुधि	"	भुत्सु
सं०	हे भुत्	हे बुधौ	हे बुधः

❖ ❖ ❖

(२७) आत्मन् (आत्मा) (दे० अ० ३२)

आत्मा	आत्मानौ	आत्मानः	प्र०
आत्मानम्	"	आत्मनः	द्वि०
आत्मना	आत्मभ्याम्	आत्मभिः	तृ०
आत्मने	"	आत्मभ्यः	च०
आत्मनः	"	"	पं०
"	आत्मनोः	आत्मनाम्	ष०
आत्मनि	"	आत्मसु	स०
हे आत्मन्	हे आत्मानौ	हे आत्मानः	सं०

(२८) राजन् (राजा) (दे० अ० ३२)

प्र०	राजा	राजानौ	राजानः
द्वि०	राजानम्	"	राज्ञः
तृ०	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः
च०	राज्ञे	"	राजभ्यः
पं०	राज्ञः	"	"
ष०	"	राज्ञोः	राज्ञाम्
स०	राज्ञि, राजनि	"	राजसु
सं०	हे राजन्	हे राजानौ	हे राजानः

❖ ❖ ❖

(२९) श्वन् (कुत्ता) (दे० अ० ३३)

श्वा	श्वानौ	श्वानः	प्र०
श्वानम्	"	शुनः	द्वि०
शुना	श्वभ्याम्	श्वभिः	तृ०
शुने	"	श्वभ्यः	च०
शुनः	"	"	पं०
"	शुनोः	शुनाम्	ष०
शुनि	"	श्वसु	स०
हे श्वन्	हे श्वानौ	हे श्वानः	सं०

(३०) युवन् (युवक) (दे० अ० ३३)

प्र०	युवा	युवानौ	युवानः
द्वि०	युवानम्	"	यूनः
तृ०	यूना	युवभ्याम्	युवभिः
च०	यूने	"	युवभ्यः
पं०	यूनः	"	"
ष०	"	यूनोः	यूनाम्
स०	यूनि	"	युवसु
सं०	हे युवन्	हे युवानौ	हे युवानः

(३१) वृत्रहन् (इन्द्र) (दे० अ० ३४) **(३२) मघवन् (इन्द्र) (दे० अ० ३४)**

वृत्रहा	वृत्रहणौ	वृत्रहणः	प्र०	मघवा	मघवानौ	मघवानः
वृत्रहणम्	"	वृत्रघ्नः	द्वि०	मघवानम्	"	मघोनः
वृत्रघ्ना	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभिः	तृ०	मघोना	मघवभ्याम्	मघवभिः
वृत्रघ्ने	"	वृत्रहभ्यः	च०	मघोने	"	मघवभ्यः
वृत्रघ्नः	"	"	पं०	मघोनः	"	"
"	वृत्रघ्नोः	वृत्रघ्नाम्	ष०	"	मघोनोः	मघोनाम्
वृत्रघ्नि, वृत्रहणि	"	वृत्रहसु	स०	मघोनि	"	मघवसु
हे वृत्रहन्	हे वृत्रहणौ	हे वृत्रहणः	सं०	हे मघवन्	हे मघवानौ	हे मघवानः

सूचना- मघवन् का ही मघवत् शब्द बनाकर भगवत् (शब्द० २०) के तुल्य भी रूप चलावें।

❖ ❖ ❖

(३३) करिन् (हाथी) (दे० अ० ३५) **(३४) पथिन् (मार्ग) (दे० अ० ३५)**

करी	करिणौ	करिणः	प्र०	पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः
करिणम्	"	"	द्वि०	पन्थानम्	"	पथः
करिणा	करिभ्याम्	करिभिः	तृ०	पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः
करिणे	"	करिभ्यः	च०	पथे	"	पथिभ्यः
करिणः	"	"	पं०	पथः	"	"
"	करिणोः	करिणाम्	ष०	"	पथोः	पथाम्
करिणि	"	करिषु	स०	पथि	"	पथिषु
हे करिन्	हे करिणौ	हे करिणः	सं०	हे पन्थाः	हे पन्थानौ	हे पन्थानः

❖ ❖ ❖

(३५) तादृश् (वैसा) (दे० अ० ३६) **(३६) विद्वस् (विद्वान्) (दे० अ० ३७)**

तादृक्	तादृशौ	तादृशः	प्र०	विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांसः
तादृशम्	"	"	द्वि०	विद्वांसम्	"	विदुषः
तादृशा	तादृग्भ्याम्	तादृग्भिः	तृ०	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः
तादृशे	"	तादृग्भ्यः	च०	विदुषे	"	विद्वद्भ्यः
तादृशः	"	"	पं०	विदुषः	"	"
"	तादृशोः	तादृशाम्	ष०	"	विदुषोः	विदुषाम्
तादृशि	"	तादृक्षु	स०	विदुषि	"	विद्वत्सु
हे तादृक्	हे तादृशौ	हे तादृशः	सं०	हे विद्वन्	हे विद्वांसौ	हे विद्वांसः

(३७) पुंस् (पुरुष) (दे० अ० ३७)

पुमान्	पुमांसौ	पुमांसः	प्र०
पुमांसम्	"	पुंसः	द्वि०
पुंसा	पुंभ्याम्	पुंभिः	तृ०
पुंसे	"	पुंभ्यः	च०
पुंसः	"	"	पं०
"	पुंसोः	पुंसाम्	ष०
पुंसि	"	पुंसु	स०
हे पुमन्	हे पुमांसौ	हे पुमांसः	सं०

(३८) चन्द्रमस् (चन्द्रमा) (दे० अ० ३६)

प्र०	चन्द्रमाः	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसः
द्वि०	चन्द्रमसम्	"	"
तृ०	चन्द्रमसा	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभिः
च०	चन्द्रमसे	"	चन्द्रमोभ्यः
पं०	चन्द्रमसः	"	"
ष०	"	चन्द्रमसोः	चन्द्रमसाम्
स०	चन्द्रमसि	"	चन्द्रमस्सु
सं०	हे चन्द्रमः	हे चन्द्रमसौ	हे चन्द्रमसः

❖ ❖ ❖

(३९) श्रेयस् (अधिक प्रशंसनीय) (दे० अ० ३८)

श्रेयान्	श्रेयांसौ	श्रेयांसः	प्र०
श्रेयांसम्	"	श्रेयसः	द्वि०
श्रेयसा	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभिः	तृ०
श्रेयसे	"	श्रेयोभ्यः	च०
श्रेयसः	"	"	पं०
"	श्रेयसोः	श्रेयसाम्	ष०
श्रेयसि	"	श्रेयस्सु	स०
हे श्रेयन्	हे श्रेयांसौ	हे श्रेयांसः	सं०

(४०) अनडुह् (बैल) (दे० अ० ३८)

प्र०	अनड्वान्	अनड्वाहौ	अनड्वाहः
द्वि०	अनड्वाहम्	"	अनडुहः
तृ०	अनडुहा	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भिः
च०	अनडुहे	"	अनडुद्भ्यः
पं०	अनडुहः	"	"
ष०	"	अनडुहोः	अनडुहाम्
स०	अनडुहि	"	अनडुत्सु
सं०	हे अनड्वन्	हे अनड्वाहौ	हे अनड्वाहः

❖ ❖ ❖

(ग) स्त्रीलिंग शब्द

(४१) रमा (लक्ष्मी) (दे० अ० ३)

रमा	रमे	रमाः	प्र०
रमाम्	"	"	द्वि०
रमया	रमाभ्याम्	रमाभिः	तृ०
रमायै	"	रमाभ्यः	च०
रमायाः	"	"	पं०
"	रमयोः	रमाणाम्	ष०
रमायाम्	"	रमासु	स०
हे रमे	हे रमे	हे रमाः	सं०

(४२) मति (बुद्धि) (दे० अ० ३९)

प्र०	मतिः	मती	मतयः
द्वि०	मतिम्	"	मतीः
तृ०	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः
च०	मत्यै, मतये	"	मतिभ्यः
पं०	मत्याः, मतेः	"	"
ष०	" "	मत्योः	मतीनाम्
स०	मत्याम्, मतौ	"	मतिषु
सं०	हे मते	हे मती	हे मतयः

(४३) नदी (नदी) (दे० अ० ४०)

नदी	नद्यौ	नद्यः	प्र०
नदीम्	"	नदीः	द्वि०
नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः	तृ०
नद्यै	"	नदीभ्यः	च०
नद्याः	"	"	पं०
"	नद्योः	नदीनाम्	ष०
नद्याम्	"	नदीषु	स०
हे नदि	हे नद्यौ	हे नद्यः	सं०

(४४) लक्ष्मी (लक्ष्मी) (दे० अ० ४०)

प्र०	लक्ष्मीः	लक्ष्म्यौ	लक्ष्म्यः
द्वि०	लक्ष्मीम्	"	लक्ष्मीः
तृ०	लक्ष्म्या	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभिः
च०	लक्ष्म्यै	"	लक्ष्मीभ्यः
पं०	लक्ष्म्याः	"	"
ष०	"	लक्ष्म्योः	लक्ष्मीणाम्
स०	लक्ष्म्याम्	"	लक्ष्मीषु
सं०	हे लक्ष्मि	हे लक्ष्म्यौ	हे लक्ष्म्यः

❖ ❖ ❖

(४५) स्त्री (स्त्री) (दे० अ० ४१)

स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः	प्र०
स्त्रियम्, स्त्रीम्	"	स्त्रियः, स्त्रीः	द्वि०
स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः	तृ०
स्त्रियै	"	स्त्रीभ्यः	च०
स्त्रियाः	"	"	पं०
"	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्	ष०
स्त्रियाम्	"	स्त्रीषु	स०
हे स्त्रि	हे स्त्रियौ	हे स्त्रियः	सं०

(४६) श्री (लक्ष्मी) (दे० अ० ४१)

प्र०	श्रीः	श्रियौ	श्रियः
द्वि०	श्रियम्	"	"
तृ०	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः
च०	श्रियै, श्रिये	"	श्रीभ्यः
पं०	श्रियाः, श्रियः	"	"
ष०	" "	श्रियोः	श्रियाम्
स०	श्रियाम्, श्रियि	"	श्रीषु
सं०	हे श्रीः	हे श्रियौ	हे श्रियः

❖ ❖ ❖

(४७) धेनु (गाय) (दे० अ० ४२)

धेनुः	धेनू	धेनवः	प्र०
धेनुम्	"	धेनूः	द्वि०
धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः	तृ०
धेन्वै, धेनवे	"	धेनुभ्यः	च०
धेन्वाः, धेनोः	"	"	पं०
" "	धेन्वोः	धेनूनाम्	ष०
धेन्वाम्, धेनौ	"	धेनुषु	स०
हे धेनो	हे धेनू	हे धेनवः	सं०

(४८) वधू (बहू) (दे० अ० ४२)

प्र०	वधूः	वध्वौ	वध्वः
द्वि०	वधूम्	"	वधूः
तृ०	वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः
च०	वध्वै	"	वधूभ्यः
पं०	वध्वाः	"	"
ष०	"	वध्वोः	वधूनाम्
स०	वध्वाम्	"	वधूषु
सं०	हे वधु	हे वध्वौ	हे वध्वः

(४९) स्वसृ (बहन) (दे० अ० ४३) **(५०) मातृ (माता) (दे० अ० ४३)**

स्वसा	स्वसारौ	स्वसारः	प्र०	माता	मातरौ	मातरः
स्वसारम्	"	स्वसॄः	द्वि०	मातरम्	"	मातॄः
स्वस्रा	स्वसृभ्याम्	स्वसृभिः	तृ०	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः
स्वस्रे	"	स्वसृभ्यः	च०	मात्रे	"	मातृभ्यः
स्वसुः	"	"	पं०	मातुः	"	"
"	स्वस्रोः	स्वसॄणाम्	ष०	"	मात्रोः	मातॄणाम्
स्वसरि	"	स्वसृषु	स०	मातरि	"	मातृषु
हे स्वसः	हे स्वसारौ	हे स्वसारः	सं०	हे मातः	हे मातरौ	हे मातरः

❖ ❖ ❖

(५१) नौ (नाव) (दे० अ० ४४) **(५२) वाच् (वाणी) (दे० अ० ४४)**

नौः	नावौ	नावः	प्र०	वाक्,-ग्	वाचौ	वाचः
नावम्	"	"	द्वि०	वाचम्	"	"
नावा	नौभ्याम्	नौभिः	तृ०	वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भिः
नावे	"	नौभ्यः	च०	वाचे	"	वाग्भ्यः
नावः	"	"	पं०	वाचः	"	"
"	नावोः	नावाम्	ष०	"	वाचोः	वाचाम्
नावि	"	नौषु	स०	वाचि	"	वाक्षु
हे नौः	हे नावौ	हे नावः	सं०	हे वाक्,-ग्	हे वाचौ	हे वाचः

❖ ❖ ❖

(५३) स्रज् (माला) (दे० अ० ४५) **(५४) सरित् (नदी) (दे० अ० ४५)**

स्रक्	स्रजौ	स्रजः	प्र०	सरित्	सरितौ	सरितः
स्रजम्	"	"	द्वि०	सरितम्	"	"
स्रजा	स्रग्भ्याम्	स्रग्भिः	तृ०	सरिता	सरिद्भ्याम्	सरिद्भिः
स्रजे	"	स्रग्भ्यः	च०	सरिते	"	सरिद्भ्यः
स्रजः	"	"	पं०	सरितः	"	"
"	स्रजोः	स्रजाम्	ष०	"	सरितोः	सरिताम्
स्रजि	"	स्रक्षु	स०	सरिति	"	सरित्सु
हे स्रक्	हे स्रजौ	हे स्रजः	सं०	हे सरित्	हे सरितौ	हे सरितः

(५५) समिध् (समिधा) (दे० अ० ४६) | (५६) अप् (जल) (दे० अ० ४६)

समित्	समिधौ	समिधः	प्र०	आपः
समिधम्	"	"	द्वि०	अपः
समिधा	समिद्भ्याम्	समिद्भिः	तृ०	अद्भिः
समिधे	"	समिद्भ्यः	च०	अद्भ्यः
समिधः	"	"	पं०	"
"	समिधोः	समिधाम्	ष०	अपाम्
समिधि	"	समित्सु	स०	अप्सु
हे समित्	हे समिधौ	हे समिधः	सं०	हे आपः

सूचना—अप् के रूप केवल बहुवचन में ही चलते हैं।

❖ ❖ ❖

(५७) गिर् (वाणी) (दे० अ० ४७) | (५८) पुर् (नगर) (दे० अ० ४७)

गीः	गिरौ	गिरः	प्र०	पूः	पुरौ	पुरः
गिरम्	"	"	द्वि०	पुरम्	"	"
गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्भिः	तृ०	पुरा	पूर्भ्याम्	पूर्भिः
गिरे	"	गीर्भ्यः	च०	पुरे	"	पूर्भ्यः
गिरः	"	"	पं०	पुरः	"	"
"	गिरोः	गिराम्	ष०	"	पुरोः	पुराम्
गिरि	"	गीर्षु	स०	पुरि	"	पूर्षु
हे गीः	हे गिरौ	हे गिरः	सं०	हे पूः	हे पुरौ	हे पुरः

❖ ❖ ❖

(५९) दिश् (दिशा) (दे० अ० ४८) | (६०) उपानह् (जूता) (दे० अ० ४८)

दिक्	दिशौ	दिशः	प्र०	उपानत्	उपानहौ	उपानहः
दिशम्	"	"	द्वि०	उपानहम्	"	"
दिशा	दिग्भ्याम्	दिग्भिः	तृ०	उपानहा	उपानद्भ्याम्	उपानद्भिः
दिशे	"	दिग्भ्यः	च०	उपानहे	"	उपानद्भ्यः
दिशः	"	"	पं०	उपानहः	"	"
"	दिशोः	दिशाम्	ष०	"	उपानहोः	उपानहाम्
दिशि	"	दिक्षु	स०	उपानहि	"	उपानत्सु
हे दिक्	हे दिशौ	हे दिशः	सं०	हे उपानत्	हे उपानहौ	हे उपानहः

(ग) नपुंसकलिंग शब्द

(६१) गृह (घर) (दे० अ० २)

गृहम्	गृहे	गृहाणि	प्र०
"	"	"	द्वि०
गृहेण	गृहाभ्याम्	गृहैः	तृ०
गृहाय	"	गृहेभ्यः	च०
गृहात्	"	"	पं०
गृहस्य	गृहयोः	गृहाणाम्	ष०
गृहे	"	गृहेषु	स०
हे गृह	हे गृहे	हे गृहाणि	सं०

(६२) वारि (जल) (दे० अ० ४९)

प्र०	वारि	वारिणी	वारीणि
द्वि०	"	"	"
तृ०	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
च०	वारिणे	"	वारिभ्यः
पं०	वारिणः	"	"
ष०	"	वारिणोः	वारीणाम्
स०	वारिणि	"	वारिषु
सं०	हे वारि, वारे	हे वारिणी	हे वारीणि

सूचना— मनोहारिन् आदि इन् अन्तवालों के रूप वारि के तुल्य चलेंगे। दो स्थानों पर अन्तर होगा। षष्ठी बहु० में 'इनाम्' अन्त में रहेगा और सं० एक० में 'इन्'।

❖ ❖ ❖

(६३) दधि (दही) (दे० अ० ४९)

दधि	दधिनी	दधीनि	प्र०
"	"	"	द्वि०
दध्ना	दधिभ्याम्	दधिभिः	तृ०
दध्ने	"	दधिभ्यः	च०
दध्नः	"	"	पं०
"	दध्नोः	दध्नाम्	ष०
दध्नि, दधनि	"	दधिषु	स०
हे दधि, दधे	हे दधिनी	हे दधीनि	सं०

(६४) अक्षि (आँख) (दधिवत्) (दे० अ० ५०)

प्र०	अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि
द्वि०	"	"	"
तृ०	अक्ष्णा	अक्षिभ्याम्	अक्षिभिः
च०	अक्ष्णे	"	अक्षिभ्य:
पं०	अक्ष्णः	"	"
ष०	"	अक्ष्णोः	अक्ष्णाम्
स०	अक्ष्णि, अक्षणि	"	अक्षिषु
सं०	हे अक्षि, अक्षे	हे अक्षिणी	हे अक्षीणि

❖ ❖ ❖

(६५) अस्थि (हड्डी) (दधिवत्) (दे० अ० ५०)

अस्थि	अस्थिनी	अस्थीनि	प्र०
"	"	"	द्वि०
अस्थ्ना	अस्थिभ्याम्	अस्थिभिः	तृ०
अस्थ्ने	"	अस्थिभ्यः	च०
अस्थ्नः	"	"	पं०
"	अस्थ्नोः	अस्थ्नाम्	ष०
अस्थ्नि, अस्थनि	"	अस्थिषु	स०
हे अस्थि, अस्थे	हे अस्थिनी	हे अस्थीनि	सं०

(६६) मधु (शहद) (दे० अ० ५१)

प्र०	मधु	मधुनी	मधूनि
द्वि०	"	"	"
तृ०	मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः
च०	मधुने	"	मधुभ्यः
पं०	मधुनः	"	"
ष०	"	मधुनोः	मधूनाम्
स०	मधुनि	"	मधुषु
सं०	हे मधु, मधो	हे मधुनी	हे मधूनि

(६७) कर्तृ (करनेवाला) (दे० अ० ५१) (६८) जगत् (संसार) (दे० अ० ५२)

कर्तृ	कर्तृणी	कर्तॄणि	प्र०	जगत्	जगती	जगन्ति
''	''	''	द्वि	''	''	''
कर्तृणा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः	तृ०	जगता	जगद्भ्याम्	जगद्भिः
कर्तृणे	''	कर्तृभ्यः	च०	जगते	''	जगद्भ्यः
कर्तृणः	''	''	पं०	जगतः	''	''
''	कर्तृणोः	कर्तॄणाम्	ष०	''	जगतोः	जगताम्
कर्तृणि	''	कर्तृषु	स०	जगति	''	जगत्सु
हे कर्तृ, कर्तः	हे कर्तृणी	हे कर्तॄणि	सं०	हे जगत्	हे जगती	हे जगन्ति

सूचना—कर्तृ के तृतीया एक० से सप्तमी बहु० तक कर्तृ पुं० (शब्द० ११) के तुल्य भी रूप चलेंगे।

❖ ❖ ❖

(६९) नामन् (नाम) (दे० अ० ५३) (७०) शर्मन् (सुख) (दे० अ० ५३)

नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि	प्र०	शर्म	शर्मणी	शर्माणि
''	'' ''	''	द्वि०	''	''	''
नाम्ना	नामभ्याम्	नामभिः	तृ०	शर्मणा	शर्मभ्याम्	शर्मभिः
नाम्ने	''	नामभ्यः	च०	शर्मणे	''	शर्मभ्यः
नाम्नः	''	''	पं०	शर्मणः	''	''
''	नाम्नोः	नाम्नाम्	ष०	''	शर्मणोः	शर्मणाम्
नाम्नि, नामनि	''	नामसु	स०	शर्मणि	''	शर्मसु
हे नाम, नामन्	नाम्नी, नामनी	नामानि	सं०	हे शर्म, शर्मन्	हे शर्मणी	हे शर्माणि

❖ ❖ ❖

(७१) ब्रह्मन् (ब्रह्म, वेद) (दे० अ० ५४) (७२) अहन् (दिन) (दे० अ० ५४)

ब्रह्म	ब्रह्मणी	ब्रह्माणि	प्र०	अहः	अह्नी, अहनी	अहानि
''	''	''	द्वि०	''	'' ''	''
ब्रह्मणा	ब्रह्मभ्याम्	ब्रह्मभिः	तृ०	अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभिः
ब्रह्मणे	''	ब्रह्मभ्यः	च०	अह्ने	''	अहोभ्यः
ब्रह्मणः	''	''	पं०	अह्नः	''	''
''	ब्रह्मणोः	ब्रह्मणाम्	ष०	''	अह्नोः	अह्नाम्
ब्रह्मणि	''	ब्रह्मसु	स०	अह्नि, अहनि	''	अहःसु,-स्सु
हे ब्रह्म, ब्रह्मन्	हे ब्रह्मणी	हे ब्रह्माणि	सं०	हे अहः	हे अह्नी, अहनी	हे अहानि

(७३) हविष् (हवि) ((दे० अ० ५५) | (७४) धनुष् (धनुष) (दे० अ० ५५)

हविः	हविषी	हवींषि	प्र०	धनुः	धनुषी	धनूंषि
''	''	''	द्वि०	''	''	''
हविषा	हविर्भ्याम्	हविर्भिः	तृ०	धनुषा	धनुर्भ्याम्	धनुर्भिः
हविषे	''	हविर्भ्यः	च०	धनुषे	''	धनुर्भ्यः
हविषः	''	''	पं०	धनुषः	''	''
''	हविषोः	हविषाम्	ष०	''	धनुषोः	धनुषाम्
हविषि	''	हविःषु, -ष्षु	स०	धनुषि	''	धनुःषु, -ष्षु
हे हविः	हे हविषी	हवींषि	सं०	हे धनुः	हे धनुषी	हे धनूंषि

❖ ❖ ❖

(७५) पयस् (दूध, जल) (दे० अ० ५६) | (७६) मनस् (मन) (दे० अ० ५६)

पयः	पयसी	पयांसि	प्र०	मनः	मनसी	मनांसि
''	''	''	द्वि०	''	''	''
पयसा	पयोभ्याम्	पयोभिः	तृ०	मनसा	मनोभ्याम्	मनोभिः
पयसे	''	पयोभ्यः	च०	मनसे	''	मनोभ्यः
पयसः	''	''	पं०	मनसः	''	''
''	पयसोः	पयसाम्	ष०	''	मनसोः	मनसाम्
पयसि	''	पयःसु, -स्सु	स०	मनसि	''	मनःसु, -स्सु
हे पयः	हे पयसी	हे पयांसि	सं०	हे मनः	हे मनसी	हे मनांसि

❖ ❖ ❖

(ङ) सर्वनाम शब्द

(७७) (क) सर्व (सब) पुंलिंग (दे० अ० ६) | (७७) (ग) सर्व (सब) (स्त्रीलिंग) (दे० अ० ८)

सर्वः	सर्वौ	सर्वे	प्र०	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
सर्वम्	''	सर्वान्	द्वि०	सर्वाम्	''	''
सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः	तृ०	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
सर्वस्मै	''	सर्वेभ्यः	च०	सर्वस्यै	''	सर्वाभ्यः
सर्वस्मात्	''	''	पं०	सर्वस्याः	''	''
सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्	ष०	''	सर्वयोः	सर्वासाम्
सर्वस्मिन्	''	सर्वेषु	स०	सर्वस्याम्	''	सर्वासु

❖ ❖ ❖

(७७) (ख) सर्व (नपुंसकलिंग) (दे० अ० ७)

सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि	प्र०
''	''	''	द्वि०

शेष पुंलिंग के तुल्य (दे० ७७, क)

(७८) (क) विश्व (सब) पुंलिंग (दे० अ० ६) — **(७९) (क) पूर्व (पहला) पुंलिंग (दे० अ० ६)**

विश्वः	विश्वौ	विश्वे	प्र०	पूर्वः	पूर्वौ	पूर्वे, पूर्वाः
विश्वम्	''	विश्वान्	द्वि०	पूर्वम्	''	पूर्वान्
विश्वेन	विश्वाभ्याम्	विश्वैः	तृ०	पूर्वेण	पूर्वाभ्याम्	पूर्वैः
विश्वस्मै	''	विश्वेभ्यः	च०	पूर्वस्मै	''	पूर्वेभ्यः
विश्वस्मात्	''	''	पं०	पूर्वस्मात्, पूर्वात्	''	''
विश्वस्य	विश्वयोः	विश्वेषाम्	ष०	पूर्वस्य	पूर्वयोः	पूर्वेषाम्
विश्वस्मिन्	''	विश्वेषु	स०	पूर्वस्मिन्, पूर्वे	''	पूर्वेषु

❖ ❖ ❖

(७८) (ख) विश्व (नपुंसकलिंग) (दे० अ० ७) — **(७९) (ख) पूर्व (नपुंसकलिंग) (दे० अ० ७)**

विश्वम्	विश्वे	विश्वानि	प्र०	पूर्वम्	पूर्वे	पूर्वाणि
''	''	''	द्वि०	''	''	''

शेष पुंलिंग के तुल्य (दे० अ० ७८, क) — शेष पुंलिंग के तुल्य (देखो ७९, क)

❖ ❖ ❖

(७८) (ग) विश्व (स्त्रीलिंग) (दे० अ० ८) — **(७९) (ग) पूर्व (स्त्रीलिंग) (दे० अ० ८)**

विश्वा	विश्वे	विश्वाः	प्र०	पूर्वा	पूर्वे	पूर्वाः
विश्वाम्	''	''	द्वि०	पूर्वाम्	''	''
विश्वया	विश्वाभ्याम्	विश्वाभिः	तृ०	पूर्वया	पूर्वाभ्याम्	पूर्वाभिः
विश्वस्यै	''	विश्वाभ्यः	च०	पूर्वस्यै	''	पूर्वाभ्यः
विश्वस्याः	''	''	पं०	पूर्वस्याः	''	''
''	विश्वयोः	विश्वासाम्	ष०	''	पूर्वयोः	पूर्वासाम्
विश्वस्याम्	''	विश्वासु	स०	पूर्वस्याम्	''	पूर्वासु

❖ ❖ ❖

(८०) (क) अन्य (दूसरा) पुंलिंग (दे० अ० ६) — **(८०) (ग) अन्य (स्त्रीलिंग) (दे० अ० ८)**

अन्यः	अन्यौ	अन्ये	प्र०	अन्या	अन्ये	अन्याः
अन्यम्	''	अन्यान्	द्वि०	अन्याम्	''	''
अन्येन	अन्याभ्याम्	अन्यैः	तृ०	अन्यया	अन्याभ्याम्	अन्याभिः
अन्यस्मै	''	अन्येभ्यः	च०	अन्यस्यै	''	अन्याभ्यः
अन्यस्मात्	''	''	पं०	अन्यस्याः	''	''
अन्यस्य	अन्ययोः	अन्येषाम्	ष०	''	अन्ययोः	अन्यासाम्
अन्यस्मिन्	''	अन्येषु	स०	अन्यस्याम्	''	अन्यासु

❖ ❖ ❖

(८०) (ख) अन्य (नपुंसकलिंग) (दे० अ० ७)

अन्यत्	अन्ये	अन्यानि	प्र०
''	''	''	द्वि०

शेष पुंलिंग के तुल्य (देखो ८०, क)

(८१) (क) तत् (वह) पुंलिंग (दे० अ० ६) — **(८२) (क) यत् (जो) पुंलिंग (दे० अ० ६)**

सः	तौ	ते	प्र०	यः	यौ	ये
तम्	"	तान्	द्वि०	यम्	"	यान्
तेनं	ताभ्याम्	तैः	तृ०	येन	याभ्याम्	यैः
तस्मै	"	तेभ्यः	च०	यस्मै	"	येभ्यः
तस्मात्	"	"	पं०	यस्मात्	"	"
तस्य	तयोः	तेषाम्	ष०	यस्य	ययोः	येषाम्
तस्मिन्	"	तेषु	स०	यस्मिन्	"	येषु

(८१) (ख) तत् (नपुंसकलिंग) (दे० अ० ७) — **(८२) (ख) यत् (नपुंसकलिंग) (दे० अ० ७)**

तत्	ते	तानि	प्र०	यत्	ये	यानि
"	"	"	द्वि०	"	"	"

शेष पुंलिंग के तुल्य (देखो ८१, क) — शेष पुंलिंग के तुल्य (देखो ८२, क)

(८१) (ग) तत् (स्त्रीलिंग) (दे० अ० ८) — **(८२) (ग) यत् (स्त्रीलिंग) (दे० अ० ८)**

सा	ते	ताः	प्र०	या	ये	याः
ताम्	"	"	द्वि०	याम्	"	"
तया	ताभ्याम्	ताभिः	तृ०	यया	याभ्याम्	याभिः
तस्यै	"	ताभ्यः	च०	यस्यै	"	याभ्यः
तस्याः	"	"	पं०	यस्याः	"	"
"	तयोः	तासाम्	ष०	"	ययोः	यासाम्
तस्याम्	"	तासु	स०	यस्याम्	"	यासु

(८३) (क) एतत् (यह) पुंलिंग (तत् के तुल्य) — **(८४) (क) किम् (क्या) पुंलिंग (तत् के तुल्य)**

एषः	एतौ	एते	प्र०	कः	कौ	के
एतम्	"	एतान्	द्वि०	कम्	"	कान्

शेष तत् पुंलिंग (८१, क) के तुल्य। — शेष तत् पुंलिंग (८१, क) के तुल्य।

(८३) (ख) एतत् (नपुंसकलिंग) — **(८४) (ख) किम् (नपुंसक०)**

एतत्	एते	एतानि	प्र०	किम्	के	कानि
"	"	"	द्वि०	"	"	"

शेष तत् नपुं० (८१, ख) के तुल्य। — शेष तत् नपुं० (८१, ख) के तुल्य।

(८३) (ग) एतत् (स्त्रीलिंग) — **(८४) (ग) किम् (स्त्रीलिंग)**

एषा	एते	एताः	प्र०	का	के	काः
एताम्	"	"	द्वि०	काम्	"	"

शेष तत् स्त्रीलिंग (८१, ग) के तुल्य। — शेष तत् स्त्रीलिंग (८१, ग) के तुल्य।

(८५) युष्मद् (तू) (दे० अ० ११) **(८६) अस्मद् (मैं) (दे० अ० १२)**

त्वम्	युवाम्	यूयम्	प्र०	अहम्	आवाम्	वयम्
त्वाम्	"	युष्मान्	द्वि०	माम्	"	अस्मान्
त्वा	वाम्	वः	द्वि०	मा	नौ	नः
त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः	तृ०	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
तुभ्यम्	"	युष्मभ्यम्	च०	मह्यम्	"	अस्मभ्यम्
ते	वाम्	वः	च०	मे	नौ	नः
त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्	पं०	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
तव	युवयोः	युष्माकम्	ष०	मम	आवयोः	अस्माकम्
ते	वाम्	वः	ष०	मे	नौ	नः
त्वयि	युवयोः	युष्मासु	स०	मयि	आवयोः	अस्मासु

(८७) (क) इदम् (यह) पुंलिंग (दे० अ० ९) **(८८) (क) अदस् (वह) पुंलिंग (दे० अ० १०)**

अयम्	इमौ	इमे	प्र०	असौ	अमू	अमी
इमम्	"	इमान्	द्वि०	अमुम्	"	अमून्
अनेन	आभ्याम्	एभिः	तृ०	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः
अस्मै	"	एभ्यः	च०	अमुष्मै	"	अमीभ्यः
अस्मात्	"	"	पं०	अमुष्मात्	"	"
अस्य	अनयोः	एषाम्	ष०	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
अस्मिन्	"	एषु	स०	अमुष्मिन्	"	अमीषु

(८७) (ख) इदम् (नपुंसक०) **(८८) (ख) अदस् (नपुंसक०)**

इदम्	इमे	इमानि	प्र०	अदः	अमू	अमूनि
"	"	"	द्वि०	"	"	"

शेष पुंलिंग के तुल्य (देखो ८७, क) शेष पुंलिंग के तुल्य (देखो ८८, क)

(८७) (ग) इदम् (स्त्रीलिंग) **(८८) (ग) अदस् (स्त्रीलिंग)**

इयम्	इमे	इमाः	प्र०	असौ	अमू	अमूः
इमाम्	"	"	द्वि०	अमूम्	"	"
अनया	आभ्याम्	आभिः	तृ०	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
अस्यै	"	आभ्यः	च०	अमुष्यै	"	अमूभ्यः
अस्याः	"	"	पं०	अमुष्याः	"	"
"	अनयोः	आसाम्	ष०	"	अमुयोः	अमूषाम्
अस्याम्	"	आसु	स०	अमुष्याम्	"	अमूषु

(८९) एक (एक) (दे० अ० १३) (९०) द्वि (दो) (दे० अ० १४)

पुंलिंग	*नपुंसक*	*स्त्रीलिंग*		*पुंलिंग*	*नपुंसक*	*स्त्रीलिंग*
एकः	एकम्	एका	प्र०	द्वौ	द्वे	द्वे
एकम्	"	एकाम्	द्वि०	"	"	"
एकेन	एकेन	एकया	तृ०	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
एकस्मै	एकस्मै	एकस्यै	च०	"	"	"
एकस्मात्	एकस्मात्	एकस्याः	पं०	"	"	"
एकस्य	एकस्य	"	ष०	द्वयोः	द्वयोः	द्वयोः
एकस्मिन्	एकस्मिन्	एकस्याम्	स०	"	"	"

सूचना-एक के केवल एक० में रूप चलते हैं। **सूचना**-द्वि के द्वि० में ही रूप चलेंगे।

(९१) (त्रि) (तीन) (दे० अ० १५) (९२) चतुर् (चार) (दे० अ० १६)

पुंलिंग	*नपुंसक*	*स्त्रीलिंग*		*पुंलिंग*	*नपुंसक*	*स्त्रीलिंग*
त्रयः	त्रीणि	तिस्रः	प्र०	चत्वारः	चत्वारि	चतस्रः
त्रीन्	"	"	द्वि०	चतुरः	"	"
त्रिभिः	त्रिभिः	तिसृभिः	तृ०	चतुर्भिः	चतुर्भिः	चतसृभिः
त्रिभ्यः	त्रिभ्यः	तिसृभ्यः	च०	चतुर्भ्यः	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः
"	"	"	पं०	"	"	"
त्रयाणाम्	त्रयाणाम्	तिसृणाम्	ष०	चतुर्णाम्	चतुर्णाम्	चतसृणाम्
त्रिषु	त्रिषु	तिसृषु	स०	चतुर्षु	चतुर्षु	चतसृषु

सूचना-त्रि के बहु० में ही रूप चलते हैं। **सूचना**-चतुर् के बहु० में ही रूप चलते हैं।

(९३) पञ्चन् (पाँच) (९४) षष् (छः) (९५) सप्तन् (सात)

पञ्चन्	षष्		सप्तन्
पञ्च	षट्, षड्	प्र०	सप्त
"	"	द्वि०	"
पञ्चभिः	षड्भिः	तृ०	सप्तभिः
पञ्चभ्यः	षड्भ्यः	च०	सप्तभ्यः
"	"	पं०	"
पञ्चानाम्	षण्णाम्	ष०	सप्तानाम्
पञ्चसु	षट्सु	स०	सप्तसु

सूचना—३ से १८ तक की संख्याओं के रूप केवल बहुवचन में ही चलते हैं।

(९६) अष्टन् (आठ)			(९७) नवन् (नौ)	(९८) दशन् (दश)
अष्ट	अष्टौ	प्र०	नव	दश
"	"	द्वि०	"	"
अष्टभिः	अष्टाभिः	तृ०	नवभिः	दशभिः
अष्टभ्यः	अष्टाभ्यः	च०	नवभ्यः	दशभ्यः
"	"	पं०	"	"
अष्टानाम्	अष्टानाम्	ष०	नवानाम्	दशानाम्
अष्टसु	अष्टासु	स०	नवसु	दशसु

सूचना—अष्टन्, नवन्, दशन् के रूप बहुवचन में ही चलते हैं।

(९९) कति (कितने) (दे० अ० ५९)		(१००) उभ (दोनों) (दे० अ० ६०) पुं०	नपुं०, स्त्री०
कति	प्र०	उभौ	उभे
"	द्वि०	"	"
कतिभिः	तृ०	उभाभ्याम्	उभाभ्याम्
कतिभ्यः	च०	"	"
"	पं०	"	"
कतीनाम्	ष०	उभयोः	उभयोः
कतिषु	स०	"	"

सूचना—कति के रूप बहु० में ही चलते हैं।

सूचना— उभ के रूप तीनों लिंगों में केवल द्विवचन में ही चलते हैं।

❖ ❖ ❖

(२) संख्याएँ

१. एकः, एकम्, एका
२. द्वौ, द्वे, द्वे
३. त्रयः, त्रीणि, तिस्रः
४. चत्वारः, चत्वारि, चतस्रः
५. पञ्च
६. षट्
७. सप्त
८. अष्ट, अष्टौ
९. नव
१०. दश
११. एकादश
१२. द्वादश
१३. त्रयोदश
१४. चतुर्दश
१५. पञ्चदश
१६. षोडश
१७. सप्तदश
१८. अष्टादश
१९. नवदश
एकोनविंशतिः
२०. विंशतिः
२१. एकविंशतिः
२२. द्वाविंशतिः
२३. त्रयोविंशतिः
२४. चतुर्विंशतिः
२५. पञ्चविंशतिः
२६. षड्विंशतिः
२७. सप्तविंशतिः
२८. अष्टाविंशतिः
२९. नवविंशतिः
एकोनत्रिंशत्
३०. त्रिंशत्
३१. एकत्रिंशत्
३२. द्वात्रिंशत्
३३. त्रयस्त्रिंशत्
३४. चतुस्त्रिंशत्
३५. पञ्चत्रिंशत्
३६. षट्त्रिंशत्
३७. सप्तत्रिंशत्
३८. अष्टात्रिंशत्
३९. नवत्रिंशत्
एकोनचत्वारिंशत्
४०. चत्वारिंशत्
४१. एकचत्वारिंशत्
४२. द्विचत्वारिंशत्
द्वाचत्वारिंशत्
४३. त्रिचत्वारिंशत्
त्रयश्चत्वारिंशत्
४४. चतुश्चत्वारिंशत्
४५. पञ्चचत्वारिंशत्
४६. षट्चत्वारिंशत्
४७. सप्तचत्वारिंशत्
४८. अष्टचत्वारिंशत्
अष्टाचत्वारिंशत्
४९. नवचत्वारिंशत्
एकोनपञ्चाशत्
५०. पञ्चाशत्
५१. एकपञ्चाशत्
५२. द्विपञ्चाशत्
द्वापञ्चाशत्
५३. त्रिपञ्चाशत्
त्रयःपञ्चाशत्
५४. चतुःपञ्चाशत्
५५. पञ्चपञ्चाशत्
५६. षट्पञ्चाशत्
५७. सप्तपञ्चाशत्
५८. अष्टपञ्चाशत्
अष्टापञ्चाशत्
५९. नवपञ्चाशत्
एकोनषष्टिः
६०. षष्टिः
६१. एकषष्टिः
६२. द्विषष्टिः, द्वाषष्टिः
६३. त्रिषष्टिः
त्रयःषष्टिः
६४. चतुःषष्टिः
६५. पञ्चषष्टिः
६६. षट्षष्टिः
६७. सप्तषष्टिः
६८. अष्टषष्टिः
अष्टाषष्टिः
६९. नवषष्टिः
एकोनसप्ततिः
७०. सप्ततिः
७१. एकसप्ततिः
७२. द्विसप्ततिः
द्वासप्ततिः
७३. त्रिसप्ततिः
त्रयःसप्ततिः
७४. चतुःसप्ततिः
७५. पञ्चसप्ततिः
७६. षट्सप्ततिः
७७. सप्तसप्ततिः

७८. अष्टसप्तति:	८६. षडशीति:	त्रयोनवति:
अष्टासप्तति:	८७. सप्ताशीति:	९४. चतुर्नवति:
७९. नवसप्तति:	८८. अष्टाशीति:	९५. पञ्चनवति:
एकोनाशीति:	८९. नवाशीति:	९६. षण्णवति:
८०. अशीति:	एकोननवति:	९७. सप्तनवति:
८१. एकाशीति:	९०. नवति:	९८. अष्टनवति:
८२. द्व्यशीति:	९१. एकनवति:	अष्टानवति:
८३. त्र्यशीति:	९२. द्विनवति:	९९. नवनवति:
८४. चतुरशीति:	द्वानवति:	एकोनशतम्
८५. पञ्चाशीति:	९३. त्रिनवति:	१००. शतम्।

१ हजार – सहस्रम्। १० हजार – अयुतम्। १ लाख – लक्षम्। १० लाख – नियुतम्, प्रयुतम्। १ करोड़ – कोटि:। १० करोड़ – दशकोटि:। १ अरब – अर्बुदम्। १० अरब – दशार्बुदम्। १ खरब – खर्वम्। १० खरब – दशखर्वम्। १ नील – नीलम्। १० नील – दशनीलम्। १ पद्म – पद्मम्। १० पद्म – दशपद्मम्। १ शंख – शंखम्। १० शंख – दशशंखम्। १ महाशंख – महाशंखम्।

सूचना–१. (क) १०१ आदि संख्याओं के लिए अधिक शब्द लगाकर संख्याशब्द बनावें। जैसे–१०१ एकाधिकं शतम्। १०२ द्व्यधिकं शतम् आदि। (ख) २०० आदि के लिए दो आदि संख्यावाचक शब्द पहले रखकर बाद में 'शती' रखें, या शत पहले रखकर द्वयम्, त्रयम् आदि रखें। जैसे—२०० द्विशती, शतद्वयम्। ३०० त्रिशती, शतत्रयम्, ४०० चतु:शती, ५०० पञ्चशती, ६०० षट्शती, ७०० सप्तशती (हिन्दी सतसई), ८०० अष्टशती, ९०० नवशती आदि।

२. त्रि ३ से लेकर १८ (अष्टादशन्) तक सारे शब्दों के रूप केवल बहुवचन में चलते हैं। दशन् से अष्टादशन् तक दशन् के तुल्य।

३. एकोनविंशति से नवविंशति तक सारे शब्द एकवचनान्त स्त्रीलिंग हैं। इनके रूप एकवचन में ही चलते हैं। इकारान्त विंशति, सप्तति, अशीति, नवति तथा जिनके अन्त में ये हों, उनके रूप मति के तुल्य चलेंगे। तकारान्त त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत् के रूप सरित् के तुल्य (शब्द सं० ५४) चलेंगे।

४. शतम्, सहस्रम्, अयुतम्, लक्षम्, नियुतम्, प्रयुतम् आदि शब्द सदा एकवचनान्त नपुंसक हैं। गृहवत् एकवचन में रूप चलेंगे। कोटि के मतिवत्। शत, सहस्र आदि शब्द काव्यों में अनन्त संख्या के अर्थ में भी प्रयुक्त होते हैं। 'शतं सहस्रमयुतं सर्वमानन्त्यवाचकम्'।

५. संख्येय शब्द (प्रथम, द्वितीय आदि) बनाने के लिए अभ्यास १८ का व्याकरण देखें।

❖ ❖ ❖

(३) धातुरूप-संग्रह

आवश्यक निर्देश

१. संस्कृत में सारी धातुओं को १० विभागों में बाँटा गया है। उन्हें 'गण' कहते हैं, अतः १० गण हैं। धातु और तिङ् (ति, तः आदि) प्रत्यय के बीच में होनेवाले अ, उ, नु आदि को 'विकरण' कहते हैं। इनके अन्तर के आधार पर ही ये गण बनाए गए हैं। ये 'विकरण' लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में ही होते हैं, अन्य ६ लकारों में नहीं होते, यह स्मरण रखें। प्रत्येक गण में तीनों प्रकार की धातुएँ होती हैं, परस्मैपदी (ति, तः, अन्ति आदिवाली), आत्मनेपदी (ते, एते, अन्ते आदिवाली) और उभयपदी (पूर्वोक्त दोनों प्रकार के रूपवाली)। प्रत्येक गण की विशेषताएँ आगे प्रत्येक गण के विवरण में दी गई हैं। यहाँ अधिक प्रसिद्ध १०० धातुओं के रूप दिए गए हैं।

२. प्रत्येक गण के विवरण में उस गण में आनेवाली धातुओं के अन्त में क्या संक्षिप्त रूप लगेंगे, इसका विवरण दिया गया है। उस गण की धातुओं के अन्त में उन लकारों में निर्दिष्ट संक्षिप्त रूप लगावें।

३. गणों के अन्तर के कारण लृट्, लुट्, आशीर्लिङ्, लृङ्, लिट् और लुङ् में कोई अन्तर नहीं होता। अतः सभी गणों में इन लकारों में एक से ही रूप चलेंगे। इन लकारों के संक्षिप्त-रूप आगे दिए हैं, उन्हें स्मरण कर लें। सभी गणों में उन्हीं संक्षिप्त-रूपों को लगावें। अतएव धातु-रूपों में लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लृङ् के प्रारम्भिक रूप ही संकेतमात्र दिए गए हैं। सभी धातुओं के लिट् और लुङ् के पूरे रूप दिए गए हैं।

४. दसों गणों के विकरण और मुख्य कार्य ये हैं—

	गण	विकरण	कार्य
(१)	भ्वादिगण	अ	लट् आदि में धातु को गुण होगा।
(२)	अदादिगण	×	लट् आदि के एक० में धातु को गुण होगा।
(३)	जुहोत्यादिगण	×	लट् आदि में धातु को द्वित्व और एक० में गुण।
(४)	दिवादिगण	य	लट् आदि में धातु को गुण नहीं होगा।
(५)	स्वादिगण	नु (नो)	लट् आदि में धातु को गुण नहीं होगा।
(६)	तुदादिगण	अ	,, ,, ,,
(७)	रुधादिगण	न (न्)	,, ,, ,,
(८)	तनादिगण	उ (ओ)	लट् आदि में धातु को पर० में गुण होगा।
(९)	क्र्यादिगण	ना (नी)	लट् आदि में धातु को गुण नहीं होगा।
(१०)	चुरादिगण	अय	लट् आदि में धातु को गुण या वृद्धि होगी।

(क) लकारों के संक्षिप्त रूप

परस्मैपद	**लट्**			**आत्मनेपद**	**लट्**	
ति	तः	अन्ति	प्र०	ते	इते (आते)	अन्ते (अते)
सि	थः	थ	म०	से	इथे (आथे)	ध्वे
मि	वः	मः	उ०	इ (ए)	वहे	महे
लोट्					**लोट्**	
तु	ताम्	अन्तु	प्र०	ताम्	इताम् (आताम्)	अन्ताम् (अताम्)
–, हि	तम्	त	म०	स्व	इथाम् (आथाम्)	ध्वम्
आनि	आव	आम	उ०	ऐ	आवहै	आमहै
लङ् (धातु से पहले अ या आ)					**लङ् (धातु से पहले अ या आ)**	
त्	ताम्	अन्	प्र०	त	इताम् (आताम्)	अन्त (अत)
:	तम्	त	म०	थाः	इथाम् (आथाम्)	ध्वम्
अम्	व	म	उ०	इ	वहि	महि

विधिलिङ्							**विधिलिङ्**		
ईत्	ईताम्	ईयुः	यात्	याताम्	युः	प्र०	ईत	ईयाताम्	ईरन्
ईः	ईतम्	ईत	याः	यातम्	यात	म०	ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
ईयम्	ईव	ईम	याम्	याव	याम	उ०	ईय	ईवहि	ईमहि

लृट्						**लृट्**		
(इ)	स्यति	स्यतः	स्यन्ति	प्र०	(इ)	स्यते	स्येते	स्यन्ते
	स्यसि	स्यथः	स्यथ	म०		स्यसे	स्येथे	स्यध्वे
	स्यामि	स्यावः	स्यामः	उ०		स्ये	स्यावहे	स्यामहे
लुट्						**लुट्**		
(इ)	ता	तारौ	तारः	प्र०	(इ)	ता	तारौ	तारः
	तासि	तास्थः	तास्थ	म०		तासे	तासाथे	ताध्वे
	तास्मि	तास्वः	तास्मः	उ०		ताहे	तास्वहे	तास्महे
आशीर्लिङ्						**आशीर्लिङ्**		
(×)	यात्	यास्ताम्	यासुः	प्र०	(इ)	सीष्ट	सीयास्ताम्	सीरन्
	याः	यास्तम्	यास्त	म०		सीष्ठाः	सीयास्थाम्	सीध्वम्
	यासम्	यास्व	यास्म	उ०		सीय	सीवहि	सीमहि
लृङ् (धातु से पहले अ लगेगा)						**लृङ् (धातु से पहले अ लगेगा)**		
(इ)	स्यत्	स्यताम्	स्यन्	प्र०	(इ)	स्यत	स्येताम्	स्यन्त
	स्यः	स्यतम्	स्यत	म०		स्यथाः	स्येथाम्	स्यध्वम्
	स्यम्	स्याव	स्याम	उ०		स्ये	स्यावहि	स्यामहि

सूचना—लृट्, लुट् आशीर्लिङ् और लृङ् में सेट् में सं० रूप से पहले इ भी लगेगा।

परस्मैपद-लिट्				आत्मनेपद-लिट्		
अ	अतुः	उः	प्र० पु०	इ	आते	इरे
(इ) थ	अथुः	अ	म० पु०	(इ) से	आथे	(इ) ध्वे
अ	(इ) व	(इ)म	उ० पु०	ए	(इ)वहे	(इ)महे
लुङ् (१. स्-लोप वाला भेद)				**लुङ् (१. स-लोप वाला भेद)**		
त्	ताम्	उः (अन्)	प्र० पु०	*सूचना*— यह भेद आत्मनेपद में नहीं होता। लुङ्		
:	तम्	त	म० पु०	के ७ भेद होते हैं। आगे रूपों में लुङ् के		
अम्	व	म	उ० पु०	आगे संख्या से इसका निर्देश होगा।		
(२. अ-वाला भेद)				**(२. अ-वाला भेद)**		
अत्	अताम्	अन्	प्र० पु०	अत	एताम्	अन्त
अः	अतम्	अत	म० पु०	अथाः	एथाम्	अध्वम्
अम्	आव	आम	उ० पु०	ए	आवहि	आमहि
(३. द्वित्व-वाला भेद)				**(३. द्वित्व-वाला भेद)**		
अत्	अताम्	अन्	प्र० पु०	अत	एताम्	अन्त
अः	अतम्	अत	म० पु०	अथाः	एथाम्	अध्वम्
अम्	आव	आम	उ० पु०	ए	आवहि	आमहि
(४. स्-वाला भेद)				**(४. स्-वाला भेद)**		
सीत्	स्ताम्	सुः	प्र० पु०	स्त	साताम्	सत
सीः	स्तम्	स्त	म० पु०	स्थाः	साथाम्	ध्वम्
सम्	स्व	स्म	उ० पु०	सि	स्वहि	स्महि
(५. इष्-वाला भेद)				**(५. इष्-वाला भेद)**		
ईत्	इष्टाम्	इषुः	प्र० पु०	इष्ट	इषाताम्	इषत
ईः	इष्टम्	इष्ट	म० पु०	इष्ठाः	इषाथाम्	इध्वम्-ढ्वम्
इषम्	इष्व	इष्म	उ० पु०	इषि	इष्वहि	इष्महि
(६. सिष्-वाला भेद)				**(६. सिष्-वाला भेद)**		
सीत्	सिष्टाम्	सिषुः	प्र० पु०	*सूचना*—आत्मनेपद में यह भेद नहीं होता।		
सीः	सिष्टम्	सिष्ट	म० पु०			
सिषम्	सिष्व	सिष्म	उ० पु०			
(७. स-वाला भेद)				**(७. स-वाला भेद)**		
सत्	सताम्	सन्	प्र० पु०	सत	साताम्	सन्त
सः	सतम्	सत	म० पु०	सथाः	साथाम्	सध्वम्
सम्	साव	साम	उ० पु०	सि	सावहि	सामहि

(१) भ्वादिगण

(१) भ्वादिगण की प्रथम धातु भू है, अतः इसका नाम भ्वादिगण पड़ा। दसों गणों में यह गण सबसे मुख्य है। सबसे अधिक धातुएँ इसी गण में हैं। चुरादिगण तक धातुपाठ में वर्णित धातुओं की संख्या १९४४ है, तथा कण्ड्वादि को लेकर धातुसंख्या १९९३ है। इसमें से भ्वादिगण की धातुओं की संख्या १०१० है। अतः ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण धातुपाठ की आधे से अधिक धातुएँ भ्वादिगण में हैं।

(२) भ्वादिगण की विशेषताएँ ये हैं—(क) (कर्तरि शप्) धातु और प्रत्यय के बीच में शप् (अ) विकरण लगता है। इसलिए धातु के अन्त में अति, अतः, अन्ति आदि लगेंगे। मूल प्रत्यय ति, तः आदि हैं। (ख) धातु के अन्तिम स्वर इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ को तथा उपधा (अन्तिम अक्षर से पूर्व) के इ, उ, ऋ को क्रमशः ए, ओ, अर् गुण हो जाता है। बाद में गुण के ए को अय् और ओ को अव् हो जाता है। जैसे—भू > भवति, जि > जयति, हृ > हरति, शुच् > शोचति, मुद् > मोदते।

(३) लट् आदि में धातु के अन्त में संक्षिप्तरूप निम्नलिखित लगेंगे। लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लुङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट संक्षिप्तरूप ही लगेंगे।

परस्मैपद लट्				आत्मनेपद लट्		
अति	अतः	अन्ति	प्र०	अते	एते	अन्ते
असि	अथः	अथ	म०	असे	एथे	अध्वे
आमि	आवः	आमः	उ०	ए	आवहे	आमहे
लोट्				**लोट्**		
अतु	अताम्	अन्तु	प्र०	अताम्	एताम्	अन्ताम्
अ	अतम्	अत	म०	अस्व	एथाम्	अध्वम्
आनि	आव	आम	उ०	ऐ	आवहै	आमहै
लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				**लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)**		
अत्	अताम्	अन्	प्र०	अत	एताम्	अन्त
अः	अतम्	अत	म०	अथाः	एथाम्	अध्वम्
अम्	आव	आम	उ०	ए	आवहि	आमहि
विधिलिङ्				**विधिलिङ्**		
एत्	एताम्	एयुः	प्र०	एत	एयाताम्	एरन्
एः	एतम्	एत	म०	एथाः	एयाथाम्	एध्वम्
एयम्	एव	एम	उ०	एय	एवहि	एमहि

(१) भ्वादिगण (परस्मैपदी धातुएँ)

(१) भू (होना) लट् (वर्तमान) (दे० अ० १) लोट् (आज्ञा अर्थ)

लट्				लोट्		
भवति	भवतः	भवन्ति	प्र० पु०	भवतु	भवताम्	भवन्तु
भवसि	भवथः	भवथ	म० पु०	भव	भवतम्	भवत
भवामि	भवावः	भवामः	उ० पु०	भवानि	भवाव	भवाम

लङ् (भूतकाल, अनद्यतन) विधिलिङ् (आज्ञा या चाहिए अर्थ)

लङ्				विधिलिङ्		
अभवत्	अभवताम्	अभवन्	प्र० पु०	भवेत्	भवेताम्	भवेयुः
अभवः	अभवतम्	अभवत	म० पु०	भवेः	भवेतम्	भवेत
अभवम्	अभवाव	अभवाम	उ० पु०	भवेयम्	भवेव	भवेम

लृट् (भविष्यत्) लुट् (अनद्यतन भविष्यत्)

लृट्				लुट्		
भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति	प्र० पु०	भविता	भवितारौ	भवितारः
भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ	म० पु०	भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थ
भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः	उ० पु०	भवितास्मि	भवितास्वः	भवितास्मः

आशीर्लिङ् (आशीर्वाद) लृङ् (हेतुहेतुमद् भविष्यत्)

आशीर्लिङ्				लृङ्		
भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासुः	प्र० पु०	अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्
भूयाः	भूयास्तम्	भूयास्त	म० पु०	अभविष्यः	अभविष्यतम्	अभविष्यत
भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म	उ० पु०	अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

लिट् (परोक्ष भूत) लुङ् (१) (सामान्य भूत)

लिट्				लुङ्		
बभूव	बभूवतुः	बभूवुः	प्र० पु०	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
बभूविथ	बभूवथुः	बभूव	म० पु०	अभूः	अभूतम्	अभूत
बभूव	बभूविव	बभूविम	उ० पु०	अभूवम्	अभूव	अभूम

सूचना—(१) लङ् लुङ्और लृङ् में धातु से पहले 'अ' लगता है। यदि धातु का प्रथम अक्षर स्वर होगा तो धातु से पहले 'आ' लगेगा और सन्धिकार्य भी होगा।

(२) लुङ् के आगे दी हुई संख्याएँ इस बात का निर्देश करती हैं कि पृष्ठ १४५ पर दिए हुए लुङ् के ७ भेदों में कौन-सा भेद वहाँ पर है। जिस भेद का निर्देश हो, उसी भेद के संक्षिप्त-रूप पृष्ठ १४५ के अनुसार धातु के अन्त में लगावें। सम्पूर्ण धातुरूप के लिए यह निर्देश स्मरण रखें।

(२) हस् (हँसना) (भू के तुल्य) (दे० अ० १)

(३) पठ् (पढ़ना) (भू के तुल्य) (दे० अ० २)

हस्				पठ्		
लट्				**लट्**		
हसति	हसतः	हसन्ति	प्र० पु०	पठति	पठतः	पठन्ति
हससि	हसथः	हसथ	म० पु०	पठसि	पठथः	पठथ
हसामि	हसावः	हसामः	उ० पु०	पठामि	पठावः	पठामः
लोट्				**लोट्**		
हसतु	हसताम्	हसन्तु	प्र० पु०	पठतु	पठताम्	पठन्तु
हस	हसतम्	हसत	म० पु०	पठ	पठतम्	पठत
हसानि	हसाव	हसाम	उ० पु०	पठानि	पठाव	पठाम
लङ्				**लङ्**		
अहसत्	अहसताम्	अहसन्	प्र० पु०	अपठत्	अपठताम्	अपठन्
अहसः	अहसतम्	अहसत	म० पु०	अपठः	अपठतम्	अपठत
अहसम्	अहसाव	अहसाम	उ० पु०	अपठम्	अपठाव	अपठाम
विधिलिङ्				**विधिलिङ्**		
हसेत्	हसेताम्	हसेयुः	प्र० पु०	पठेत्	पठेताम्	पठेयुः
हसेः	हसेतम्	हसेत	म० पु०	पठेः	पठेतम्	पठेत
हसेयम्	हसेव	हसेम	उ० पु०	पठेयम्	पठेव	पठेम
—				—		
हसिष्यति	हसिष्यतः	हसिष्यन्ति	लृट्	पठिष्यति	पठिष्यतः	पठिष्यन्ति
हसिता	हसितारौ	हसितारः	लुट्	पठिता	पठितारौ	पठितारः
हस्यात्	हस्यास्ताम्	हस्यासुः	आ० लिङ्	पठ्यात्	पठ्यास्ताम्	पठ्यासुः
अहसिष्यत्	अहसिष्यताम्	अहसिष्यन्	लृङ्	अपठिष्यत्	अपठिष्यताम्	अपठिष्यन्
लिट्				**लिट्**		
जहास	जहसतुः	जहसुः	प्र० पु०	पपाठ	पेठतुः	पेठुः
जहसिथ	जहसथुः	जहस	म० पु०	पेठिथ	पेठथुः	पेठ
जहास, जहस	जहसिव	जहसिम	उ० पु०	पपाठ, पपठ	पेठिव	पेठिम
लुङ् (५)				**लुङ् (५)**		
अहसीत्	अहसिष्टाम्	अहसिषुः	प्र० पु०	अपाठीत्	अपाठिष्टाम्	अपाठिषुः
अहसीः	अहसिष्टम्	अहसिष्ट	म० पु०	अपाठीः	अपाठिष्टम्	अपाठिष्ट
अहसिषम्	अहसिष्व	अहसिष्म	उ० पु०	अपाठिषम्	अपाठिष्व	अपाठिष्म

सूचना—पठ् के लुङ् में अपठीत् आदि भी रूप होते हैं। हस् (लुङ्) के तुल्य रूप चलेंगे।

(४) रक्ष् (रक्षा करना) (भू के तुल्य) (दे० अ० २)

(५) वद् (बोलना) (भू के तुल्य) (दे० अ० ३)

लट्

रक्षति	रक्षतः	रक्षन्ति	प्र० पु०	वदति	वदतः	वदन्ति
रक्षसि	रक्षथः	रक्षथ	म० पु०	वदसि	वदथः	वदथ
रक्षामि	रक्षावः	रक्षामः	उ० पु०	वदामि	वदावः	वदामः

लोट्

रक्षतु	रक्षताम्	रक्षन्तु	प्र० पु०	वदतु	वदताम्	वदन्तु
रक्ष	रक्षतम्	रक्षत	म० पु०	वद	वदतम्	वदत
रक्षाणि	रक्षाव	रक्षाम	उ० पु०	वदानि	वदाव	वदाम

लङ्

अरक्षत्	अरक्षताम्	अरक्षन्	प्र० पु०	अवदत्	अवदताम्	अवदन्
अरक्षः	अरक्षतम्	अरक्षत	म० पु०	अवदः	अवदतम्	अवदत
अरक्षम्	अरक्षाव	अरक्षाम	उ० पु०	अवदम्	अवदाव	अवदाम

विधिलिङ्

रक्षेत्	रक्षेताम्	रक्षेयुः	प्र० पु०	वदेत्	वदेताम्	वदेयुः
रक्षेः	रक्षेतम्	रक्षेत	म० पु०	वदेः	वदेतम्	वदेत
रक्षेयम्	रक्षेव	रक्षेम	उ० पु०	वदेयम्	वदेव	वदेम

रक्षिष्यति	रक्षिष्यतः	रक्षिष्यन्ति	लृट्	वदिष्यति	वदिष्यतः	वदिष्यन्ति
रक्षिता	रक्षितारौ	रक्षितारः	लुट्	वदिता	वदितारौ	वदितारः
रक्ष्यात्	रक्ष्यास्ताम्	रक्ष्यासुः	आ० लिङ्	उद्यात्	उद्यास्ताम्	उद्यासुः
अरक्षिष्यत्	अरक्षिष्यताम्	अरक्षिष्यन्	लृङ्	अवदिष्यत्	अवदिष्यताम्	अवदिष्यन्

लिट्

ररक्ष	ररक्षतुः	ररक्षुः	प्र० पु०	उवाद	ऊदतुः	ऊदुः
ररक्षिथ	ररक्षथुः	ररक्ष	म० पु०	उवदिथ	ऊदथुः	ऊद
ररक्ष	ररक्षिव	ररक्षिम	उ० पु०	उवाद, उवद	ऊदिव	ऊदिम

लुङ् (५)

अरक्षीत्	अरक्षिष्टाम्	अरक्षिषुः	प्र० पु०	अवादीत्	अवादिष्टाम्	अवादिषुः
अरक्षीः	अरक्षिष्टम्	अरक्षिष्ट	म० पु०	अवादीः	अवादिष्टम्	अवादिष्ट
अरक्षिषम्	अरक्षिष्व	अरक्षिष्म	उ० पु०	अवादिषम्	अवादिष्व	अवादिष्म

(६) गम् (जाना) (भू के तुल्य) (दे० अ० ३)

सूचना—लट् आदि में गम् को गच्छ् होगा।

(७) दृश् (देखना) (भू के तुल्य) (दे० अ० ४)

सूचना—लट् आदि में दृश् को पश्य् होगा।

लट्

गच्छति	गच्छतः	गच्छन्ति	प्र० पु०	पश्यति	पश्यतः	पश्यन्ति
गच्छसि	गच्छथः	गच्छथ	म० पु०	पश्यसि	पश्यथः	पश्यथ
गच्छामि	गच्छावः	गच्छामः	उ० पु०	पश्यामि	पश्यावः	पश्यामः

लोट्

गच्छतु	गच्छताम्	गच्छन्तु	प्र० पु०	पश्यतु	पश्यताम्	पश्यन्तु
गच्छ	गच्छतम्	गच्छत	म० पु०	पश्य	पश्यतम्	पश्यत
गच्छानि	गच्छाव	गच्छाम	उ० पु०	पश्यानि	पश्याव	पश्याम

विधिलिङ्

गच्छेत्	गच्छेताम्	गच्छेयुः	प्र० पु०	पश्येत्	पश्येताम्	पश्येयुः
गच्छेः	गच्छेतम्	गच्छेत	म० पु०	पश्येः	पश्येतम्	पश्येत
गच्छेयम्	गच्छेव	गच्छेम	उ० पु०	पश्येयम्	पश्येव	पश्येम

गमिष्यति	गमिष्यतः	गमिष्यन्ति	लृट्	द्रक्ष्यति	द्रक्ष्यतः	द्रक्ष्यन्ति
गन्ता	गन्तारौ	गन्तारः	लुट्	द्रष्टा	द्रष्टारौ	द्रष्टारः
गम्यात्	गम्यास्ताम्	गम्यासुः	आ० लिङ्	दृश्यात्	दृश्यास्ताम्	दृश्यासुः
अगमिष्यत्	अगमिष्यताम्	अगमिष्यन्	लृङ्	अद्रक्ष्यत्	अद्रक्ष्यताम्	अद्रक्ष्यन्

लिट्

जगाम	जग्मतुः	जग्मुः	प्र० पु०	ददर्श	ददृशतुः	ददृशुः
जग्मिथ, जगन्थ	जग्मथुः	जग्म	म० पु०	ददर्शिथ, दद्रष्ठ	ददृशथुः	ददृश
जगाम, जगम	जग्मिव	जग्मिम	उ० पु०	ददर्श	ददृशिव	ददृशिम

लुङ् (२) — **लुङ् (२), (४)**

अगमत्	अगमताम्	अगमन्	प्र० पु०	(क) अदर्शत्	अदर्शताम्	अदर्शन्
अगमः	अगमतम्	अगमत	म० पु०	अदर्शः	अदर्शतम्	अदर्शत
अगमम्	अगमाव	अगमाम	उ० पु०	अदर्शम्	अदर्शाव	अदर्शाम
				(ख) अद्राक्षीत्	अद्राष्टाम्	अद्राक्षुः
				अद्राक्षीः	अद्राष्टम्	अद्राष्ट
				अद्राक्षम्	अद्राक्ष्व	अद्राक्ष्म

(८) पा (पीना) (भू के तुल्य) (दे० अ० ५) — **(९) स्था (रुकना) (भू के तुल्य) (दे० अ० ९)**

सूचना—लट् आदि में पा को पिब् होगा।

सूचना—लट् आदि में स्था को तिष्ठ् होगा।

लट्

पिबति	पिबतः	पिबन्ति	प्र० पु०	तिष्ठति	तिष्ठतः	तिष्ठन्ति
पिबसि	पिबथः	पिबथ	म० पु०	तिष्ठसि	तिष्ठथः	तिष्ठथ
पिबामि	पिबावः	पिबामः	उ० पु०	तिष्ठामि	तिष्ठावः	तिष्ठामः

लोट्

पिबतु	पिबताम्	पिबन्तु	प्र० पु०	तिष्ठतु	तिष्ठताम्	तिष्ठन्तु
पिब	पिबतम्	पिबत	म० पु०	तिष्ठ	तिष्ठतम्	तिष्ठत
पिबानि	पिबाव	पिबाम	उ० पु०	तिष्ठानि	तिष्ठाव	तिष्ठाम

लङ्

अपिबत्	अपिबताम्	अपिबन्	प्र० पु०	अतिष्ठत्	अतिष्ठताम्	अतिष्ठन्
अपिबः	अपिबतम्	अपिबत	म० पु०	अतिष्ठः	अतिष्ठतम्	अतिष्ठत
अपिबम्	अपिबाव	अपिबाम	उ० पु०	अतिष्ठम्	अतिष्ठाव	अतिष्ठाम

विधिलिङ्

पिबेत्	पिबेताम्	पिबेयुः	प्र० पु०	तिष्ठेत्	तिष्ठेताम्	तिष्ठेयुः
पिबेः	पिबेतम्	पिबेत	म० पु०	तिष्ठेः	तिष्ठेतम्	तिष्ठेत
पिबेयम्	पिबेव	पिबेम	उ० पु०	तिष्ठेयम्	तिष्ठेव	तिष्ठेम

पास्यति	पास्यतः	पास्यन्ति	लृट्	स्थास्यति	स्थास्यतः	स्थास्यन्ति
पाता	पातारौ	पातारः	लुट्	स्थाता	स्थातारौ	स्थातारः
पेयात्	पेयास्ताम्	पेयासुः	आ० लिङ्	स्थेयात्	स्थेयास्ताम्	स्थेयासुः
अपास्यत्	अपास्यताम्	अपास्यन्	लृङ्	अस्थास्यत्	अस्थास्यताम्	अस्थास्यन्

लिट्

पपौ	पपतुः	पपुः	प्र० पु०	तस्थौ	तस्थतुः	तस्थुः
पपिथ, पपाथ	पपथुः	पप	म० पु०	तस्थिथ, तस्थाथ	तस्थथुः	तस्थ
पपौ	पपिव	पपिम	उ० पु०	तस्थौ	तस्थिव	तस्थिम

लुङ् (१)

अपात्	अपाताम्	अपुः	प्र० पु०	अस्थात्	अस्थाताम्	अस्थुः
अपाः	अपातम्	अपात	म० पु०	अस्थाः	अस्थातम्	अस्थात
अपाम्	अपाव	अपाम	उ० पु०	अस्थाम्	अस्थाव	अस्थाम

(१०) घ्रा (सूँघना (भू के तुल्य) (दे० अ० १३)

(११) सद् (बैठना) (भू के तुल्य) (दे० अ० ५)

सूचना–लट् आदि में घ्रा को जिघ्र् होगा।

सूचना–लट् आदि में सद् को सीद् होगा।

	लट्				लट्	
जिघ्रति	जिघ्रतः	जिघ्रन्ति	प्र० पु०	सीदति	सीदतः	सीदन्ति
जिघ्रसि	जिघ्रथः	जिघ्रथ	म० पु०	सीदसि	सीदथः	सीदथ
जिघ्रामि	जिघ्रावः	जिघ्रामः	उ० पु०	सीदामि	सीदावः	सीदामः
	लोट्				लोट्	
जिघ्रतु	जिघ्रताम्	जिघ्रन्तु	प्र० पु०	सीदतु	सीदताम्	सीदन्तु
जिघ्र	जिघ्रतम्	जिघ्रत	म० पु०	सीद	सीदतम्	सीदत
जिघ्राणि	जिघ्राव	जिघ्राम	उ० पु०	सीदानि	सीदाव	सीदाम
	लङ्				लङ्	
अजिघ्रत्	अजिघ्रताम्	अजिघ्रन्	प्र० पु०	असीदत्	असीदताम्	असीदन्
अजिघ्रः	अजिघ्रतम्	अजिघ्रत	म० पु०	असीदः	असीदतम्	असीदत
अजिघ्रम्	अजिघ्राव	अजिघ्राम	उ० पु०	असीदम्	असीदाव	असीदाम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
जिघ्रेत्	जिघ्रेताम्	जिघ्रेयुः	प्र० पु०	सीदेत्	सीदेताम्	सीदेयुः
जिघ्रेः	जिघ्रेतम्	जिघ्रेत	म० पु०	सीदेः	सीदेतम्	सीदेत
जिघ्रेयम्	जिघ्रेव	जिघ्रेम	उ० पु०	सीदेयम्	सीदेव	सीदेम
	——				——	
घ्रास्यति	घ्रास्यतः	घ्रास्यन्ति	लृट्	सत्स्यति	सत्स्यतः	सत्स्यन्ति
घ्राता	घ्रातारौ	घ्रातारः	लुट्	सत्ता	सत्तारौ	सत्तारः
घ्रेयात्	घ्रेयास्ताम्	घ्रेयासुः	}			
घ्रायात्	घ्रायास्ताम्	घ्रायासुः	} आ० लिङ्	सद्यात्	सद्यास्ताम्	सद्यासुः
अघ्रास्यत्	अघ्रास्यताम्	अघ्रास्यन्	लृङ्	असत्स्यत्	असत्स्यताम्	असत्स्यन्
	लिट्				लिट्	
जघ्रौ	जघ्रतुः	जघ्रुः	प्र० पु०	ससाद	सेदतुः	सेदुः
जघ्रिथ, जघ्राथ	जघ्रथुः	जघ्र	म० पु०	सेदिथ, ससत्थ	सेदथुः	सेद
जघ्रौ	जघ्रिव	जघ्रिम	उ० पु०	ससाद, ससद	सेदिव	सेदिम
	लुङ् (क) (१)				लुङ् (२)	
अघ्रात्	अघ्राताम्	अघ्रुः	प्र० पु०	असदत्	असदताम्	असदन्
अघ्राः	अघ्रातम्	अघ्रात	म० पु०	असदः	असदतम्	असदत
अघ्राम्	अघ्राव	अघ्राम	उ० पु०	असदम्	असदाव	असदाम
	लुङ् (ख) (६)					
अघ्रासीत्	अघ्रासिष्टाम्	अघ्रासिषुः	प्र०			
अघ्रासीः	अघ्रासिष्टम्	अघ्रासिष्ट	म०			
अघ्रासिषम्	अघ्रासिष्व	अघ्रासिष्म	उ०			

(१२) पच् (पकाना) (भू के तुल्य) (दे० अ० ११) | **(१३) नम् (नमस्कार करना) (दे० अ० ११)**

लट्

पचति	पचतः	पचन्ति	प्र० पु०	नमति	नमतः	नमन्ति
पचसि	पचथः	पचथ	म० पु०	नमसि	नमथः	नमथ
पचामि	पचावः	पचामः	उ० पु०	नमामि	नमावः	नमामः

लोट्

पचतु	पचताम्	पचन्तु	प्र० पु०	नमतु	नमताम्	नमन्तु
पच	पचतम्	पचत	म० पु०	नम	नमतम्	नमत
पचानि	पचाव	पचाम	उ० पु०	नमानि	नमाव	नमाम

लङ्

अपचत्	अपचताम्	अपचन्	प्र० पु०	अनमत्	अनमताम्	अनमन्
अपचः	अपचतम्	अपचत	म० पु०	अनमः	अनमतम्	अनमत
अपचम्	अपचाव	अपचाम	उ० पु०	अनमम्	अनमाव	अनमाम

विधिलिङ्

पचेत्	पचेताम्	पचेयुः	प्र० पु०	नमेत्	नमेताम्	नमेयुः
पचेः	पचेतम्	पचेत	म० पु०	नमेः	नमेतम्	नमेत
पचेयम्	पचेव	पचेम	उ० पु०	नमेयम्	नमेव	नमेम

पक्ष्यति	पक्ष्यतः	पक्ष्यन्ति	लृट्	नंस्यति	नंस्यतः	नंस्यन्ति
पक्ता	पक्तारौ	पक्तारः	लुट्	नन्ता	नन्तारौ	नन्तारः
पच्यात्	पच्यास्ताम्	पच्यासुः	आ० लिङ्	नम्यात्	नम्यास्ताम्	नम्यासुः
अपक्ष्यत्	अपक्ष्यताम्	अपक्ष्यन्	लृङ्	अनंस्यत्	अनंस्यताम्	अनंस्यन्

लिट्

पपाच	पेचतुः	पेचुः	प्र० पु०	ननाम	नेमतुः	नेमुः
पेचिथ, पपक्थ	पेचथुः	पेच	म० पु०	नेमिथ, ननन्थ	नेमतुः	नेम
पपाच, पपच	पेचिव	पेचिम	उ० पु०	ननाम, ननम	नेमिव	नेमिम

लुङ् (४) | लुङ् (६)

अपाक्षीत्	अपाक्ताम्	अपाक्षुः	प्र० पु०	अनंसीत्	अनंसिष्टाम्	अनंसिषुः
अपाक्षीः	अपाक्तम्	अपाक्त	म० पु०	अनंसीः	अनंसिष्टम्	अनंसिष्ट
अपाक्षम्	अपाक्ष्व	अपाक्ष्म	उ० पु०	अनंसिषम्	अनंसिष्व	अनंसिष्म

(१४) स्मृ (स्मरण करना) (दे० अ० १२)

लट्

स्मरति	स्मरतः	स्मरन्ति	प्र० पु०
स्मरसि	स्मरथः	स्मरथ	म० पु०
स्मरामि	स्मरावः	स्मरामः	उ० पु०

लोट्

स्मरतु	स्मरताम्	स्मरन्तु	प्र० पु०
स्मर	स्मरतम्	स्मरत	म० पु०
स्मराणि	स्मराव	स्मराम	उ० पु०

लङ्

अस्मरत्	अस्मरताम्	अस्मरन्	प्र० पु०
अस्मरः	अस्मरतम्	अस्मरत	म० पु०
अस्मरम्	अस्मराव	अस्मराम	उ० पु०

विधिलिङ्

स्मरेत्	स्मरेताम्	स्मरेयुः	प्र० पु०
स्मरेः	स्मरेतम्	स्मरेत	म० पु०
स्मरेयम्	स्मरेव	स्मरेम	उ० पु०

स्मरिष्यति	स्मरिष्यतः	स्मरिष्यन्ति	लृट्
स्मर्ता	स्मर्तारौ	स्मर्तारः	लुट्
स्मर्यात्	स्मर्यास्ताम्	स्मर्यासुः	आ० लिङ्
अस्मरिष्यत्	अस्मरिष्यताम्	अस्मरिष्यन्	लृङ्

लिट्

सस्मार	सस्मरतुः	सस्मरुः	प्र० पु०
सस्मर्थ	सस्मरथुः	सस्मर	म० पु०
सस्मार, सस्मर	सस्मरिव	सस्मरिम	उ० पु०

लुङ् (४)

अस्मार्षीत्	अस्मार्ष्टाम्	अस्मार्षुः	प्र० पु०
अस्मार्षीः	अस्मार्ष्टम्	अस्मार्ष्ट	म० पु०
अस्मार्षम्	अस्मार्ष्व	अस्मार्ष्म	उ० पु०

(१५) जि (जीतना) (दे० अ० १२)

लट्

जयति	जयतः	जयन्ति	प्र० पु०
जयसि	जयथः	जयथ	म० पु०
जयामि	जयावः	जयामः	उ० पु०

लोट्

जयतु	जयताम्	जयन्तु	प्र० पु०
जय	जयतम्	जयत	म० पु०
जयानि	जयाव	जयाम	उ० पु०

लङ्

अजयत्	अजयताम्	अजयन्	प्र० पु०
अजयः	अजयतम्	अजयत	म० पु०
अजयम्	अजयाव	अजयाम	उ० पु०

विधिलिङ्

जयेत्	जयेताम्	जयेयुः	प्र० पु०
जयेः	जयेतम्	जयेत	म० पु०
जयेयम्	जयेव	जयेम	उ० पु०

जेष्यति	जेष्यतः	जेष्यन्ति	लृट्
जेता	जेतारौ	जेतारः	लुट्
जीयात्	जीयास्ताम्	जीयासुः	आ० लिङ्
अजेष्यत्	अजेष्यताम्	अजेष्यन्	लृङ्

लिट्

जिगाय	जिग्यतुः	जिग्युः	प्र० पु०
जिगयिथ, जिगेथ	जिग्यथुः	जिग्य	म० पु०
जिगाय, जिगय	जिग्यिव	जिग्यिम	उ० पु०

लुङ् (४)

अजैषीत्	अजैष्टाम्	अजैषुः	प्र० पु०
अजैषीः	अजैष्टम्	अजैष्ट	म० पु०
अजैषम्	अजैष्व	अजैष्म	उ० पु०

(१६) श्रु (सुनना) (दे० अ० २०)   (१७) कृष् (जोतना) (दे० अ० १४)

लट् (श्रु को शृ)				लट्		
शृणोति	शृणुतः	शृण्वन्ति	प्र० पु०	कर्षति	कर्षतः	कर्षन्ति
शृणोषि	शृणुथः	शृणुथ	म० पु०	कर्षसि	कर्षथः	कर्षथ
शृणोमि	शृणुवः,-ण्वः	शृणुमः-ण्मः	उ० पु०	कर्षामि	कर्षावः	कर्षामः
लोट् (श्रु को शृ)				**लोट्**		
शृणोतु	शृणुताम्	शृण्वन्तु	प्र० पु०	कर्षतु	कर्षताम्	कर्षन्तु
शृणु	शृणुतम्	शृणुत	म० पु०	कर्ष	कर्षतम्	कर्षत
शृणवानि	शृणवाव	शृणवाम	उ० पु०	कर्षाणि	कर्षाव	कर्षाम
लङ् (श्रु को शृ)				**लङ्**		
अशृणोत्	अशृणुताम्	अशृण्वन्	प्र० पु०	अकर्षत्	अकर्षताम्	अकर्षन्
अशृणोः	अशृणुतम्	अशृणुत	म० पु०	अकर्षः	अकर्षतम्	अकर्षत
अशृणवम्	अशृणुव-ण्व	अशृणुम,-ण्म	उ० पु०	अकर्षम्	अकर्षाव	अकर्षाम
विधिलिङ् (श्रु को शृ)				**विधिलिङ्**		
शृणुयात्	शृणुयाताम्	शृणुयुः	प्र० पु०	कर्षेत्	कर्षेताम्	कर्षेयुः
शृणुयाः	शृणुयातम्	शृणुयात	म० पु०	कर्षेः	कर्षेतम्	कर्षेत
शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम	उ० पु०	कर्षेयम्	कर्षेव	कर्षेम

श्रोष्यति	श्रोष्यतः	श्रोष्यन्ति	लृट्	क्रक्ष्यति / कर्क्ष्यति	क्रक्ष्यतः / कर्क्ष्यतः	क्रक्ष्यन्ति / कर्क्ष्यन्ति
श्रोता	श्रोतारौ	श्रोतारः	लुट्	क्रष्टा, कर्ष्टा (दोनों प्रकार से)		
श्रूयात्	श्रूयास्ताम्	श्रूयासुः	आ० लिङ्	कृष्यात्	कृष्यास्ताम्	कृष्यासुः
अश्रोष्यत्	अश्रोष्यताम्	अश्रोष्यन्	लृङ्	अक्रक्ष्यत्, अकर्क्ष्यत् (दोनों प्रकार से)		

लिट्				लिट्		
शुश्राव	शुश्रुवतुः	शुश्रुवुः	प्र० पु०	चकर्ष	चकृषतुः	चकृषुः
शुश्रोथ	शुश्रुवथुः	शुश्रुव	म० पु०	चकर्षिथ	चकृषथुः	चकृष
शुश्राव, शुश्रव	शुश्रुव	शुश्रुम	उ० पु०	चकर्ष	चकृषिव	चकृषिम
लुङ् (४)				**लुङ् (४)**		
अश्रौषीत्	अश्रौष्टाम्	अश्रौषुः	प्र० पु०	अकार्क्षीत्	अकार्ष्टाम्	अकार्क्षुः
अश्रौषीः	अश्रौष्टम्	अश्रौष्ट	म० पु०	अकार्क्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट
अश्रौषम्	अश्रौष्व	अश्रौष्म	उ० पु०	अकार्क्षम्	अकार्क्ष्व	अकार्क्ष्म

सूचना—लट् आदि में श्रु को शृ होगा। सूचना—लुङ् में अकृक्षत् और अक्राक्षीत् भी रूप बनेंगे। दृश् (७) के लुङ् के तुल्य रूप चलावें।

(१८) वस् (रहना) (दे० अ० १४)

लट्

वसति	वसतः	वसन्ति	प्र० पु०
वससि	वसथः	वसथ	म० पु०
वसामि	वसावः	वसामः	उ० पु०

लोट्

वसतु	वसताम्	वसन्तु	प्र० पु०
वस	वसतम्	वसत	म० पु०
वसानि	वसाव	वसाम	उ० पु०

लङ्

अवसत्	अवसताम्	अवसन्	प्र० पु०
अवसः	अवसतम्	अवसत	म० पु०
अवसम्	अवसाव	अवसाम	उ० पु०

विधिलिङ्

वसेत्	वसेताम्	वसेयुः	प्र० पु०
वसेः	वसेतम्	वसेत	म० पु०
वसेयम्	वसेव	वसेम	उ० पु०

—

वत्स्यति	वत्स्यतः	वत्स्यन्ति	लृट्
वस्ता	वस्तारौ	वस्तारः	लुट्
उष्यात्	उष्यास्ताम्	उष्यासुः	आ० लिङ्
अवत्स्यत्	अवत्स्यताम्	अवत्स्यन्	लृङ्

लिट्

उवास	ऊषतुः	ऊषुः	प्र० पु०
उवसिथ, उवस्थ	ऊषथुः	ऊष	म० पु०
उवास, उवस	ऊषिव	ऊषिम	उ० पु०

लुङ् (४)

अवात्सीत्	अवात्ताम्	अवात्सुः	प्र० पु०
अवात्सीः	अवात्तम्	अवात्त	म० पु०
अवात्सम्	अवात्स्व	अवात्स्म	उ० पु०

(१९) त्यज् (छोड़ना) (दे० अ० १५)

लट्

प्र० पु०	त्यजति	त्यजतः	त्यजन्ति
म० पु०	त्यजसि	त्यजथः	त्यजथ
उ० पु०	त्यजामि	त्यजावः	त्यजामः

लोट्

प्र० पु०	त्यजतु	त्यजताम्	त्यजन्तु
म० पु०	त्यज	त्यजतम्	त्यजत
उ० पु०	त्यजानि	त्यजाव	त्यजाम

लङ्

प्र० पु०	अत्यजत्	अत्यजताम्	अत्यजन्
म० पु०	अत्यजः	अत्यजतम्	अत्यजत
उ० पु०	अत्यजम्	अत्यजाव	अत्यजाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	त्यजेत्	त्यजेताम्	त्यजेयुः
म० पु०	त्यजेः	त्यजेतम्	त्यजेत
उ० पु०	त्यजेयम्	त्यजेव	त्यजेम

—

लृट्	त्यक्ष्यति	त्यक्ष्यतः	त्यक्ष्यन्ति
लुट्	त्यक्ता	त्यक्तारौ	त्यक्तारः
आ० लिङ्	त्यज्यात्	त्यज्यास्ताम्	त्यज्यासुः
लृङ्	अत्यक्ष्यत्	अत्यक्ष्यताम्	अत्यक्ष्यन्

लिट्

प्र० पु०	तत्याज	तत्यजतुः	तत्यजुः
म० पु०	तत्यजिथ, तत्यक्थ	तत्यजथुः	तत्यज
उ० पु०	तत्याज, तत्यज	तत्यजिव	तत्यजिम

लुङ् (४)

प्र० पु०	अत्याक्षीत्	अत्याक्ताम्	अत्याक्षुः
म० पु०	अत्याक्षीः	अत्याक्तम्	अत्याक्त
उ० पु०	अत्याक्षम्	अत्याक्ष्व	अत्याक्ष्म

भ्वादिगण (आत्मनेपदी धातुएँ)

(२०) सेव् (सेवा करना) (दे० अ० ६)

लट्				लोट्		
सेवते	सेवेते	सेवन्ते	प्र० पु०	सेवताम्	सेवेताम्	सेवन्ताम्
सेवसे	सेवेथे	सेवध्वे	म० पु०	सेवस्व	सेवेथाम्	सेवध्वम्
सेवे	सेवावहे	सेवामहे	उ० पु०	सेवै	सेवावहै	सेवामहै

लङ्				विधिलिङ्		
असेवत	असेवेताम्	असेवन्त	प्र० पु०	सेवेत	सेवेयाताम्	सेवेरन्
असेवथाः	असेवेथाम्	असेवध्वम्	म० पु०	सेवेथाः	सेवेयाथाम्	सेवेध्वम्
असेवे	असेवावहि	असेवामहि	उ० पु०	सेवेय	सेवेवहि	सेवेमहि

लृट्				लुट्		
सेविष्यते	सेविष्येते	सेविष्यन्ते	प्र० पु०	सेविता	सेवितारौ	सेवितारः
सेविष्यसे	सेविष्येथे	सेविष्यध्वे	म० पु०	सेवितासे	सेवितासाथे	सेविताध्वे
सेविष्ये	सेविष्यावहे	सेविष्यामहे	उ० पु०	सेविताहे	सेवितास्वहे	सेवितास्महे

आशीर्लिङ्				लृङ्		
सेविषीष्ट	सेविषीयास्ताम्	सेविषीरन्	प्र० पु०	असेविष्यत	असेविष्येताम्	असेविष्यन्त
सेविषीष्ठाः	सेविषीयास्थाम्	सेविषीध्वम्	म० पु०	असेविष्यथाः	असेविष्येथाम्	असेविष्यध्वम्
सेविषीय	सेविषीवहि	सेविषीमहि	उ० पु०	असेविष्ये	असेविष्यावहि	असेविष्यामहि

लिट्				लुङ् (५)		
सिषेवे	सिषेवाते	सिषेविरे	प्र० पु०	असेविष्ट	असेविषाताम्	असेविषत
सिषेविषे	सिषेवाथे	सिषेविध्वे	म० पु०	असेविष्ठाः	असेविषाथाम्	असेविध्वम्
सिषेवे	सिषेविवहे	सिषेविमहे	उ० पु०	असेविषि	असेविष्वहि	असेविष्महि

सूचना—लङ्, लुङ्और लृङ् में धातु से पहले 'अ' लगता है। यदि धातु का प्रथम अक्षर स्वर होगा तो धातु से पहले 'आ' लगेगा और सन्धि—कार्य भी होगा।

(२१) लभ् (पाना) (सेव् के तुल्य) (देखो अ० ९) **(२२) वृध् (बढ़ना) (सेव् के तुल्य) (देखो अ० ७)**

	लट्				लट्	
लभते	लभेते	लभन्ते	प्र० पु०	वर्धते	वर्धेते	वर्धन्ते
लभसे	लभेते	लभध्वे	म० पु०	वर्धसे	वर्धेथे	वर्धध्वे
लभे	लभावहे	लभामहे	उ० पु०	वर्धे	वर्धावहे	वर्धामहे
	लोट्				लोट्	
लभताम्	लभेताम्	लभन्ताम्	प्र० पु०	वर्धताम्	वर्धेताम्	वर्धन्ताम्
लभस्व	लभेथाम्	लभध्वम्	म० पु०	वर्धस्व	वर्धेथाम्	वर्धध्वम्
लभै	लभावहै	लभामहै	उ० पु०	वर्धै	वर्धावहै	वर्धामहै
	लङ्				लङ्	
अलभत	अलभेताम्	अलभन्त	प्र० पु०	अवर्धत	अवर्धेताम्	अवर्धन्त
अलभथाः	अलभेथाम्	अलभध्वम्	म० पु०	अवर्धथाः	अवर्धेथाम्	अवर्धध्वम्
अलभे	अलभावहि	अलभामहि	उ० पु०	अवर्धे	अवर्धावहि	अवर्धामहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
लभेत	लभेयाताम्	लभेरन्	प्र० पु०	वर्धेत	वर्धेयाताम्	वर्धेरन्
लभेथाः	लभेयाथाम्	लभेध्वम्	म० पु०	वर्धेथाः	वर्धेयाथाम्	वर्धेध्वम्
लभेय	लभेवहि	लभेमहि	उ० पु०	वर्धेय	वर्धेवहि	वर्धेमहि

लप्स्यते	लप्स्येते	लप्स्यन्ते	लृट्	वर्धिष्यते,	वर्त्स्यति (दोनों प्रकार से)	
लब्धा	लब्धारौ	लब्धारः	लुट्	वर्धिता	वर्धितारौ	वर्धितारः
लप्सीष्ट	लप्सीयास्ताम्	लप्सीरन्	आ०लिङ्	वर्धिषीष्ट	वर्धिषीयास्ताम्	वर्धिषीरन्
अलप्स्यत	अलप्स्येताम्	अलप्स्यन्त	लृङ्	अवर्धिष्यत,	अवर्त्स्यत् (दोनों प्रकार से)	
	लिट्				लिट्	
लेभे	लेभाते	लेभिरे	प्र० पु०	ववृधे	ववृधाते	ववृधिरे
लेभिषे	लेभाथे	लेभिध्वे	म० पु०	ववृधिषे	ववृधाथे	ववृधिध्वे
लेभे	लेभिवहे	लेभिमहे	उ० पु०	ववृधे	ववृधिवहे	ववृधिमहे
	लुङ् (४)				लुङ् (क) (५)	
अलब्ध	अलप्साताम्	अलप्सत	प्र० पु०	अवर्धिष्ट	अवर्धिषाताम्	अवर्धिषत
अलब्धाः	अलप्साथाम्	अलब्ध्वम्	म० पु०	अवर्धिष्ठाः	अवर्धिषाथाम्	अवर्धिध्वम्
अलप्सि	अलप्स्वहि	अलप्स्महि	उ० पु०	अवर्धिषि	अवर्धिष्वहि	अवर्धिष्महि
					लुङ् (ख) (२)	
				अवृधत्	अवृधताम्	अवृधन्
				अवृधः	अवृधतम्	अवृधत
				अवृधम्	अवृधाव	अवृधाम

(२३) मुद् (प्रसन्न होना) (सेव् के तुल्य) (देखो अ० १०)

(२४) सह् (सहना) (सेव् के तुल्य) (देखो अ० १०)

लट्

मोदते	मोदेते	मोदन्ते	प्र०	सहते	सहेते	सहन्ते
मोदसे	मोदेथे	मोदध्वे	म०	सहसे	सहेथे	सहध्वे
मोदे	मोदावहे	मोदामहे	उ०	सहे	सहावहे	सहामहे

लोट्

मोदताम्	मोदेताम्	मोदन्ताम्	प्र०	सहताम्	सहेताम्	सहन्ताम्
मोदस्व	मोदेथाम्	मोदध्वम्	म०	सहस्व	सहेथाम्	सहध्वम्
मोदै	मोदावहै	मोदामहै	उ०	सहै	सहावहै	सहामहै

लङ्

अमोदत	अमोदेताम्	अमोदन्त	प्र० पु०	असहत	असहेताम्	असहन्त
अमोदथाः	अमोदेथाम्	अमोदध्वम्	म० पु०	असहथाः	असहेथाम्	असहध्वम्
अमोदे	अमोदावहि	अमोदामहि	उ० पु०	असहे	असहावहि	असहामहि

विधिलिङ्

मोदेत	मोदेयाताम्	मोदेरन्	प्र०	सहेत	सहेयाताम्	सहेरन्
मोदेथाः	मोदेयाथाम्	मोदेध्वम्	म०	सहेथाः	सहेयाथाम्	सहेध्वम्
मोदेय	मोदेवहि	मोदेमहि	उ०	सहेय	सहेवहि	सहेमहि

मोदिष्यते	मोदिष्येते	मोदिष्यन्ते	लृट्	सहिष्यते	सहिष्येते	सहिष्यन्ते
मोदिता	मोदितारौ	मोदितारः	लुट्	{ सहिता	सहितारौ	सहितारः
				{ सोढा	सोढारौ	सोढारः
मोदिषीष्ट	मोदिषीयास्ताम्	मोदिषीरन्	*आ० लिङ्*	सहिषीष्ट	सहिषीयास्ताम्०	
अमोदिष्यत	अमोदिष्येताम्	अमोदिष्यन्त	लृङ्	असहिष्यत	असहिष्येताम्०	

लिट्

मुमुदे	मुमुदाते	मुमुदिरे	प्र० पु०	सेहे	सेहाते	सेहिरे
मुमुदिषे	मुमुदाथे	मुमुदिध्वे	म० पु०	सेहिषे	सेहाथे	सेहिध्वे
मुमुदे	मुमुदिवहे	मुमुदिमहे	उ० पु०	सेहे	सेहिवहे	सेहिमहे

लुङ् (५)

अमोदिष्ट	अमोदिषाताम्	अमोदिषत	प्र०	असहिष्ट	असहिषाताम्	असहिषत
अमोदिष्ठाः	अमोदिषाथाम्	अमोदिध्वम्	म०	असहिष्ठाः	असहिषाथाम्	असहिध्वम्
अमोदिषि	अमोदिष्वहि	अमोदिष्महि	उ०	असहिषि	असहिष्वहि	असहिष्महि

(२५) वृत् (होना) (सेव् के तुल्य) (देखो अ० ६)

(२६) ईक्ष् (देखना) (सेव् के तुल्य) (देखो अ० ७)

	लट्				लट्	
वर्तते	वर्तेते	वर्तन्ते	प्र०	ईक्षते	ईक्षेते	ईक्षन्ते
वर्तसे	वर्तेथे	वर्तध्वे	म०	ईक्षसे	ईक्षेथे	ईक्षध्वे
वर्ते	वर्तावहे	वर्तामहे	उ०	ईक्षे	ईक्षावहे	ईक्षामहे
	लोट्				लोट्	
वर्तताम्	वर्तेताम्	वर्तन्ताम्	प्र०	ईक्षताम्	ईक्षेताम्	ईक्षन्ताम्
वर्तस्व	वर्तेथाम्	वर्तध्वम्	म०	ईक्षस्व	ईक्षेथाम्	ईक्षध्वम्
वर्तै	वर्तावहै	वर्तामहै	उ०	ईक्षै	ईक्षावहै	ईक्षामहै
	लङ्				लङ्	
अवर्तत	अवर्तेताम्	अवर्तन्त	प्र०	ऐक्षत	ऐक्षेताम्	ऐक्षन्त
अवर्तथाः	अवर्तेथाम्	अवर्तध्वम्	म०	ऐक्षथाः	ऐक्षेथाम्	ऐक्षध्वम्
अवर्ते	अवर्तावहि	अवर्तामहि	उ०	ऐक्षे	ऐक्षावहि	ऐक्षामहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
वर्तेत	वर्तेयाताम्	वर्तेरन्	प्र०	ईक्षेत	ईक्षेयाताम्	ईक्षेरन्
वर्तेथाः	वर्तेयाथाम्	वर्तेध्वम्	म०	ईक्षेथाः	ईक्षेयाथाम्	ईक्षेध्वम्
वर्तेय	वर्तेवहि	वर्तेमहि	उ०	ईक्षेय	ईक्षेवहि	ईक्षेमहि
	—				—	
वर्तिष्यते,	वर्त्स्यति (दोनों प्रकार से)		लृट्	ईक्षिष्यते	ईक्षिष्येते	ईक्षिष्यन्ते
वर्तिता	वर्तितारौ	वर्तितारः	लुट्	ईक्षिता	ईक्षितारौ	ईक्षितारः
वर्तिषीष्ट	वर्तिषीयास्ताम्०		आ०लिङ्	ईक्षिषीष्ट	ईक्षिषीयास्ताम्०	
अवर्तिष्यत,	अवर्त्स्यत् (दोनों प्रकार से)		लृङ्	ऐक्षिष्यत	ऐक्षिष्येताम्०	
	लिट्				लिट्	
ववृते	ववृताते	ववृतिरे	प्र०	ईक्षांचक्रे	ईक्षांचक्राते	ईक्षांचक्रिरे
ववृतिषे	ववृताथे	ववृतिध्वे	म०	ईक्षांचकृषे	ईक्षांचक्राथे	ईक्षांचकृढ्वे
ववृते	ववृतिवहे	ववृतिमहे	उ०	ईक्षांचक्रे	ईक्षांचकृवहे	ईक्षांचकृमहे
	लुङ् (क) (५)				लुङ् (५)	
अवर्तिष्ट	अवर्तिषाताम्	अवर्तिषत	प्र०	ऐक्षिष्ट	ऐक्षिषाताम्	ऐक्षिषत
अवर्तिष्ठाः	अवर्तिषाथाम्	अवर्तिध्वम्	म०	ऐक्षिष्ठाः	ऐक्षिषाथाम्	ऐक्षिध्वम्
अवर्तिषि	अवर्तिष्वहि	अवर्तिष्महि	उ०	ऐक्षिषि	ऐक्षिष्वहि	ऐक्षिष्महि
	लुङ् (ख) (२)					
अवृतत्	अवृतताम्	अवृतन्	प्र०			
अवृतः	अवृततम्	अवृतत	म०			
अवृतम्	अवृताव	अवृताम	उ०			

भ्वादिगण (उभयपदी धातुएँ)

(२७) नी (ले जाना) परस्मैपद — **आत्मनेपद (दे० अ० १८)**

	लट्				**लट्**	
नयति	नयतः	नयन्ति	प्र०	नयते	नयेते	नयन्ते
नयसि	नयथः	नयथ	म०	नयसे	नयेथे	नयध्वे
नयामि	नयावः	नयामः	उ०	नये	नयावहे	नयामहे
	लोट्				**लोट्**	
नयतु	नयताम्	नयन्तु	प्र०	नयताम्	नयेताम्	नयन्ताम्
नय	नयतम्	नयत	म०	नयस्व	नयेथाम्	नयध्वम्
नयानि	नयाव	नयाम	उ०	नयै	नयावहै	नयामहै
	लङ्				**लङ्**	
अनयत्	अनयताम्	अनयन्	प्र०	अनयत	अनयेताम्	अनयन्त
अनयः	अनयतम्	अनयत	म०	अनयथाः	अनयेथाम्	अनयध्वम्
अनयम्	अनयाव	अनयाम	उ०	अनये	अनयावहि	अनयामहि
	विधिलिङ्				**विधिलिङ्**	
नयेत्	नयेताम्	नयेयुः	प्र०	नयेत	नयेयाताम्	नयेरन्
नयेः	नयेतम्	नयेत	म०	नयेथाः	नयेयाथाम्	नयेध्वम्
नयेयम्	नयेव	नयेम	उ०	नयेय	नयेवहि	नयेमहि
	—				—	
नेष्यति	नेष्यतः	नेष्यन्ति	लृट्	नेष्यते	नेष्येते	नेष्यन्ते
नेता	नेतारौ	नेतारः	लुट्	नेता	नेतारौ	नेतारः
नीयात्	नीयास्ताम्	नीयासुः	*आ० लिङ्*	नेषीष्ट	नेषीयास्ताम्	नेषीरन्
अनेष्यत्	अनेष्यताम्	अनेष्यन्	लृङ्	अनेष्यत	अनेष्येताम्	अनेष्यन्त
	लिट्				**लिट्**	
निनाय	निन्यतुः	निन्युः	प्र०	निन्ये	निन्याते	निन्यिरे
ननयिथ, निनेथ	निन्यथुः	निन्य	म०	निन्यिषे	निन्याथे	निन्यिध्वे
निनाय, निनय	निन्यिव	निन्यिम	उ०	निन्ये	निन्यिवहे	निन्यिमहे
	लुङ् (४)				**लुङ् (४)**	
अनैषीत्	अनैष्टाम्	अनैषुः	प्र०	अनेष्ट	अनेषाताम्	अनेषत
अनैषीः	अनैष्टम्	अनैष्ट	म०	अनेष्ठाः	अनेषाथाम्	अनेढ्वम्
अनैषम्	अनैष्व	अनैष्म	उ०	अनेषि	अनेष्वहि	अनेष्महि

(२८) हृ (हरना) परस्मैपद | आत्मनेपद (दे० अ० १९)

	लट्				लट्	
हरति	हरतः	हरन्ति	प्र०	हरते	हरेते	हरन्ते
हरसि	हरथः	हरथ	म०	हरसे	हरेथे	हरध्वे
हरामि	हरावः	हरामः	उ०	हरे	हरावहे	हरामहे
	लोट्				लोट्	
हरतु	हरताम्	हरन्तु	प्र०	हरताम्	हरेताम्	हरन्ताम्
हर	हरतम्	हरत	म०	हरस्व	हरेथाम्	हरध्वम्
हराणि	हराव	हराम	उ०	हरै	हरावहै	हरामहै
	लङ्				लङ्	
अहरत्	अहरताम्	अहरन्	प्र०	अहरत	अहरेताम्	अहरन्त
अहरः	अहरतम्	अहरत	म०	अहरथाः	अहरेथाम्	अहरध्वम्
अहरम्	अहराव	अहराम	उ०	अहरे	अहरावहि	अहरामहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
हरेत्	हरेताम्	हरेयुः	प्र०	हरेत	हरेयाताम्	हरेरन्
हरेः	हरेतम्	हरेत	म०	हरेथाः	हरेयाथाम्	हरेध्वम्
हरेयम्	हरेव	हरेम	उ०	हरेय	हरेवहि	हरेमहि
हरिष्यति	हरिष्यतः	हरिष्यन्ति	लृट्	हरिष्यते	हरिष्येते	हरिष्यन्ते
हर्ता	हर्तारौ	हर्तारः	लुट्	हर्ता	हर्तारौ	हर्तारः
ह्रियात्	ह्रियास्ताम्	ह्रियासुः	आ० लिङ्	हृषीष्ट	हृषीयास्ताम्	हृषीरन्
अहरिष्यत्	अहरिष्यताम्	अहरिष्यन्	लृङ्	अहरिष्यत	अहरिष्येताम्	अहरिष्यन्त
	लिट्				लिट्	
जहार	जह्रतुः	जह्रुः	प्र०	जह्रे	जह्राते	जह्रिरे
जहर्थ	जह्रथुः	जह्र	म०	जह्रिषे	जह्राथे	जह्रिध्वे
जहार, जहर	जह्रिव	जह्रिम	उ०	जह्रे	जह्रिवहे	जह्रिमहे
	लुङ् (४)				लुङ् (४)	
अहार्षीत्	अहार्ष्टाम्	अहार्षुः	प्र०	अहृत	अहृषाताम्	अहृषत
अहार्षीः	अहार्ष्टम्	अहार्ष्ट	म०	अहृथाः	अहृषाथाम्	अहृढ्वम्
अहार्षम्	अहार्ष्व	अहार्ष्म	उ०	अहृषि	अहृष्वहि	अहृष्महि

(२९) याच् (माँगना) परस्मैपद आत्मनेपद (दे० अ० १६)

	लट्				लट्	
याचति	याचतः	याचन्ति	प्र०	याचते	याचेते	याचन्ते
याचसि	याचथः	याचथ	म०	याचसे	याचेथे	याचध्वे
याचामि	याचावः	याचामः	उ०	याचे	याचावहे	याचामहे

	लोट्				लोट्	
याचतु	याचताम्	याचन्तु	प्र०	याचताम्	याचेताम्	याचन्ताम्
याच	याचतम्	याचत	म०	याचस्व	याचेथाम्	याचध्वम्
याचानि	याचाव	याचाम	उ०	याचै	याचावहै	याचामहै

	लङ्				लङ्	
अयाचत्	अयाचताम्	अयाचन्	प्र०	अयाचत	अयाचेताम्	अयाचन्त
अयाचः	अयाचतम्	अयाचत	म०	अयाचथाः	अयाचेथाम्	अयाचध्वम्
अयाचम्	अयाचाव	अयाचाम	उ०	अयाचे	अयाचावहि	अयाचामहि

	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
याचेत्	याचेताम्	याचेयुः	प्र०	याचेत	याचेयाताम्	याचेरन्
याचेः	याचेतम्	याचेत	म०	याचेथाः	याचेयाथाम्	याचेध्वम्
याचेयम्	याचेव	याचेम	उ०	याचेय	याचेवहि	याचेमहि

याचिष्यति	याचिष्यतः	याचिष्यन्ति	लृट्	याचिष्यते	याचिष्येते	याचिष्यन्ते
याचिता	याचितारौ	याचितारः	लुट्	याचिता	याचितारौ	याचितारः
याच्यात्	याच्यास्ताम्	याच्यासुः	आ० लिङ्	याचिषीष्ट	याचिषीयास्ताम्०	
अयाचिष्यत्	अयाचिष्यताम्०		लृङ्	अयाचिष्यत	अयाचिष्येताम्०	

	लिट्				लिट्	
ययाच	ययाचतुः	ययाचुः	प्र०	ययाचे	ययाचाते	ययाचिरे
ययाचिथ	ययाचथुः	ययाच	म०	ययाचिषे	ययाचाथे	ययाचिध्वे
ययाच	ययाचिव	ययाचिम	उ०	ययाचे	ययाचिवहे	ययाचिमहे

	लुङ् (५)				लुङ् (५)	
अयाचीत्	अयाचिष्टाम्	अयाचिषुः	प्र०	अयाचिष्ट	अयाचिषाताम्	अयाचिषत
अयाचीः	अयाचिष्टम्	अयाचिष्ट	म०	अयाचिष्ठाः	अयाचिषाथाम्	अयाचिध्वम्
अयाचिषम्	अयाचिष्व	अयाचिष्म	उ०	अयाचिषि	अयाचिष्वहि	अयाचिष्महि

(३०) वह् (ढोना) परस्मैपद आत्मनेपद (दे० अ० १७)

	लट्				लट्	
वहति	वहतः	वहन्ति	प्र०	वहते	वहेते	वहन्ते
वहसि	वहथः	वहथ	म०	वहसे	वहेथे	वहध्वे
वहामि	वहावः	वहामः	उ०	वहे	वहावहे	वहामहे
	लोट्				लोट्	
वहतु	वहताम्	वहन्तु	प्र०	वहताम्	वहेताम्	वहन्ताम्
वह	वहतम्	वहत	म०	वहस्व	वहेथाम्	वहध्वम्
वहानि	वहाव	वहाम	उ०	वहै	वहावहै	वहामहै
	लङ्				लङ्	
अवहत्	अवहताम्	अवहन्	प्र०	अवहत	अवहेताम्	अवहन्त
अवहः	अवहतम्	अवहत	म०	अवहथाः	अवहेथाम्	अवहध्वम्
अवहम्	अवहाव	अवहाम	उ०	अवहे	अवहावहि	अवहामहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
वहेत्	वहेताम्	वहेयुः	प्र०	वहेत	वहेयाताम्	वहेरन्
वहेः	वहेतम्	वहेत	म०	वहेथाः	वहेयाथाम्	वहेध्वम्
वहेयम्	वहेव	वहेम	उ०	वहेय	वहेवहि	वहेमहि
	—				—	
वक्ष्यति	वक्ष्यतः	वक्ष्यन्ति	लृट्	वक्ष्यते	वक्ष्येते	वक्ष्यन्ते
वोढा	वोढारौ	वोढारः	लुट्	वोढा	वोढारौ	वोढारः
उह्यात्	उह्यास्ताम्	उह्यासुः	आ० लिङ्	वक्षीष्ट	वक्षीयास्ताम्	वक्षीरन्
अवक्ष्यत्	अवक्ष्यताम्	अवक्ष्यन्	लृङ्	अवक्ष्यत	अवक्ष्येताम्	अवक्ष्यन्त
	लिट्				लिट्	
उवाह	ऊहतुः	ऊहुः	प्र०	ऊहे	ऊहाते	ऊहिरे
उवहिथ, उवोढ	ऊहथुः	ऊह	म०	ऊहिषे	ऊहाथे	ऊहिध्वे
उवाह, उवह	ऊहिव	ऊहिम	उ०	ऊहे	ऊहिवहे	ऊहिमहे
	लुङ् (४)				लुङ् (४)	
अवाक्षीत्	अवोढाम्	अवाक्षुः	प्र०	अवोढ	अवक्षाताम्	अवक्षत
अवाक्षीः	अवोढम्	अवोढ	म०	अवोढाः	अवक्षाथाम्	अवोढ्वम्
अवाक्षम्	अवाक्ष्व	अवाक्ष्म	उ०	अवक्षि	अवक्ष्वहि	अवक्ष्महि

(२) अदादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु अद् (खाना) है, अतः गण का नाम अदादिगण पड़ा। (अदिप्रभृतिभ्यः शपः) अदादिगण की धातुओं में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में धातु और प्रत्यय के बीच में कोई विकरण नहीं लगता है (शप् का लोप होता है)। धातु के अन्त में केवल ति, तः आदि लगते हैं। उपर्युक्त लकारों में धातु को एकवचन में गुण होता है, अन्यत्र नहीं।

(२) इस गण में ७२ धातुएँ हैं।

(३) लट् आदि में धातु के अन्त में संक्षिप्त-रूप निम्नलिखित लगेंगे। लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लृङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट संक्षिप्त-रूप ही लगेंगे। लृट् आदि में सेट् (इ वाली) धातुओं में संक्षिप्त-रूप से पहले इ भी लगता है, अनिट् (इ-नहीं वाली) धातुओं में केवल संक्षिप्त-रूप ही लगेंगे।

परस्मैपद (सं० रूप)				आत्मनेपद (सं० रूप)		
	लट्				लट्	
ति	तः	अन्ति	प्र०	ते	आते	अते
सि	थः	थ	म०	से	आथे	ध्वे
मि	वः	मः	उ०	ए	वहे	महे
	लोट्				लोट्	
तु	ताम्	अन्तु	प्र०	ताम्	आताम्	अताम्
हि	तम्	त	म०	स्व	आथाम्	ध्वम्
आनि	आव	आम	उ०	ऐ	आवहै	आमहै
	लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)			लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)		
त्	ताम्	अन्	प्र०	त	आताम्	अत
:	तम्	त	म०	थाः	आथाम्	ध्वम्
अम्	व	म	उ०	इ	वहि	महि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
यात्	याताम्	युः	प्र०	ईत	ईयाताम्	ईरन्
याः	यातम्	यात	म०	ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
याम्	याव	याम	उ०	ईय	ईवहि	ईमहि

अदादिगण (परस्मैपदी धातुएँ)

(३१) अद् (खाना) (दे० अ० २३)

लट्				लोट्		
अत्ति	अत्तः	अदन्ति	प्र०	अत्तु	अत्ताम्	अदन्तु
अत्सि	अत्थः	अत्थ	म०	अद्धि	अत्तम्	अत्त
अद्मि	अद्वः	अद्मः	उ०	अदानि	अदाव	अदाम

लङ्				विधिलिङ्		
आदत्	आत्ताम्	आदन्	प्र०	अद्यात्	अद्याताम्	अद्युः
आदः	आत्तम्	आत्त	म०	अद्याः	अद्यातम्	अद्यात
आदम्	आद्व	आद्म	उ०	अद्याम्	अद्याव	अद्याम

लृट्				लुट्		
अत्स्यति	अत्स्यतः	अत्स्यन्ति	प्र०	अत्ता	अत्तारौ	अत्तारः
अत्स्यसि	अत्स्यथः	अत्स्यथ	म०	अत्तासि	अत्तास्थः	अत्तास्थ
अत्स्यामि	अत्स्यावः	अत्स्यामः	उ०	अत्तास्मि	अत्तास्वः	अत्तास्मः

आशीर्लिङ्				लृङ्		
अद्यात्	अद्यास्ताम्	अद्यासुः	प्र०	आत्स्यत्	आत्स्यताम्	आत्स्यन्
अद्याः	अद्यास्तम्	अद्यास्त	म०	आत्स्यः	आत्स्यतम्	आत्स्यत
अद्यासम्	अद्यास्व	अद्यास्म	उ०	आत्स्यम्	आत्स्याव	आत्स्याम

लिट् (क)				लुङ् (२) (अद् को घस्)		
आद	आदतुः	आदुः	प्र०	अघसत्	अघसताम्	अघसन्
आदिथ	आदथुः	आद	म०	अघसः	अघसतम्	अघसत
आद	आदिव	आदिम	उ०	अघसम्	अघसाव	अघसाम

लिट् (ख) (अद् को घस्)			
जघास	जक्षतुः	जक्षुः	प्र०
जघसिथ	जक्षथुः	जक्ष	म०
जघास, जघस	जक्षिव	जक्षिम	उ०

(३२) अस् (होना) (दे० अ० २४) **(३३) इ (जाना) (दे० अ० ३०)**

सूचना—लिट्, लुङ् आदि में अस् को भू होगा। **सूचना**—इ को लुङ् में गा होगा।

	लट्				**लट्**	
अस्ति	स्तः	सन्ति	प्र०	एति	इतः	यन्ति
असि	स्थः	स्थ	म०	एषि	इथः	इथ
अस्मि	स्वः	स्मः	उ०	एमि	इवः	इमः
	लोट्				**लोट्**	
अस्तु	स्ताम्	सन्तु	प्र०	एतु	इताम्	यन्तु
एधि	स्तम्	स्त	म०	इहि	इतम्	इत
असानि	असाव	असाम	उ०	अयानि	अयाव	अयाम
	लङ्				**लङ्**	
आसीत्	आस्ताम्	आसन्	प्र०	ऐत्	ऐताम्	आयन्
आसीः	आस्तम्	आस्त	म०	ऐः	ऐतम्	ऐत
आसम्	आस्व	आस्म	उ०	आयम्	ऐव	ऐम
	विधिलिङ्				**विधिलिङ्**	
स्यात्	स्याताम्	स्युः	प्र०	इयात्	इयाताम्	इयुः
स्याः	स्यातम्	स्यात	म०	इयाः	इयातम्	इयात
स्याम्	स्याव	स्याम	उ०	इयाम्	इयाव	इयाम
	—				—	
भविष्यति	भविष्यतः०	(भू के तुल्य)	लृट्	एष्यति	एष्यतः	एष्यन्ति
भविता	भवितारौ०	('')	लुट्	एता	एतारौ	एतारः
भूयात्	भूयास्ताम्०	('')	आ० लिङ्	ईयात्	ईयास्ताम्	ईयासुः
अभविष्यत्	अभविष्यताम्०	('')	लृङ्	ऐष्यत्	ऐष्यताम्	ऐष्यन्
	लिट् (भू के तुल्य)					
बभूव	बभूवतुः	बभूवुः	प्र०	इयाय	ईयतुः	ईयुः
बभूविथ	बभूवथुः	बभूव	म०	इययिथ, इयेथ	ईयथुः	ईय
बभूव	बभूविव	बभूविम	उ०	इयाय, इयय	ईयिव	ईयिम
	लुङ् (१) (भू के तुल्य)			**लुङ् (१) (इ को गा)**		
अभूत्	अभूताम्	अभूवन्	प्र०	अगात्	अगाताम्	अगुः
अभूः	अभूतम्	अभूत	म०	अगाः	अगातम्	अगात
अभूवम्	अभूव	अभूम	उ०	अगाम्	अगाव	अगाम

(३४) रुद् (रोना) (दे० अ० २८)

लट्

रोदिति	रुदितः	रुदन्ति	प्र०
रोदिषि	रुदिथः	रुदिथ	म०
रोदिमि	रुदिवः	रुदिमः	उ०

लोट्

रोदितु	रुदिताम्	रुदन्तु	प्र०
रुदिहि	रुदितम्	रुदित	म०
रोदानि	रोदाव	रोदाम	उ०

लङ्

अरोदीत्, अरोदत्	अरुदिताम्	अरुदन्	प्र०
अरोदीः, अरोदः	अरुदितम्	अरुदित	म०
अरोदम्	अरुदिव	अरुदिम	उ०

विधिलिङ्

रुद्यात्	रुद्याताम्	रुद्युः	प्र०
रुद्याः	रुद्यातम्	रुद्यात	म०
रुद्याम्	रुद्याव	रुद्याम	उ०

रोदिष्यति	रोदिष्यतः	रोदिष्यन्ति	लृट्
रोदिता	रोदितारौ	रोदितारः	लुट्
रुद्यात्	रुद्यास्ताम्	रुद्यासुः	*आ० लिङ्*
अरोदिष्यत्	अरोदिष्यताम्०		लृङ्

लिट्

रुरोद	रुरुदतुः	रुरुदुः	प्र०
रुरोदिथ	रुरुदथुः	रुरुद	म०
रुरोद	रुरुदिव	रुरुदिम	उ०

लुङ् (क) (२)

अरुदत्	अरुदताम्	अरुदन्	प्र०
अरुदः	अरुदतम्	अरुदत	म०
अरुदम्	अरुदाव	अरुदाम	उ०

लुङ् (ख) (५)

अरोदीत्	अरोदिष्टाम्	अरोदिषुः	प्र०
अरोदीः	अरोदिष्टम्	अरोदिष्ट	म०
अरोदिषम्	अरोदिष्व	अरोदिष्म	उ०

(३५) स्वप् (सोना) (दे० अ० २८)

लट्

प्र०	स्वपिति	स्वपितः	स्वपन्ति
म०	स्वपिषि	स्वपिथः	स्वपिथ
उ०	स्वपिमि	स्वपिवः	स्वपिमः

लोट्

प्र०	स्वपितु	स्वपिताम्	स्वपन्तु
म०	स्वपिहि	स्वपितम्	स्वपित
उ०	स्वपानि	स्वपाव	स्वपाम

लङ्

प्र०	अस्वपीत्, अस्वपत्	अस्वपिताम्	अस्वपन्
म०	अस्वपीः, अस्वपः	अस्वपितम्	अस्वपित
उ०	अस्वपम्	अस्वपिव	अस्वपिम

विधिलिङ्

प्र०	स्वप्यात्	स्वप्याताम्	स्वप्युः
म०	स्वप्याः	स्वप्यातम्	स्वप्यात
उ०	स्वप्याम्	स्वप्याव	स्वप्याम

लृट्	स्वप्स्यति	स्वप्स्यतः	स्वप्स्यन्ति
लुट्	स्वप्ता	स्वप्तारौ	स्वप्तारः
आ० लिङ्	सुप्यात्	सुप्यास्ताम्	सुप्यासुः
लृङ्	अस्वप्स्यत्	अस्वप्स्यताम्०	

लिट्

प्र०	सुष्वाप	सुषुपतुः	सुषुपुः
म०	सुष्वपिथ, सुष्वप्थ	सुषुपथुः	सुषुप
उ०	सुष्वाप, सुष्वप	सुषुपिव	सुषुपिम

लुङ् (४)

प्र०	अस्वाप्सीत्	अस्वाप्ताम्	अस्वाप्सुः
म०	अस्वाप्सीः	अस्वाप्तम्	अस्वाप्त
उ०	अस्वाप्सम्	अस्वाप्स्व	अस्वाप्स्म

(३६) दुह् (दुहना) (दे० अ० २७)
सूचना—केवल परस्मैपद के रूप दिए हैं।

(३७) लिह् (चाटना) (दे० अ० २७)
सूचना—केवल परस्मैपद के रूप दिये हैं।

दुह्				लिह्		
	लट्				लट्	
दोग्धि	दुग्धः	दुहन्ति	प्र०	लेढि	लीढः	लिहन्ति
धोक्षि	दुग्धः	दुग्ध	म०	लेक्षि	लीढः	लीढ
दोह्मि	दुह्वः	दुह्मः	उ०	लेह्मि	लिह्वः	लिह्मः
	लोट्				लोट्	
दोग्धु	दुग्धाम्	दुहन्तु	प्र०	लेढु	लीढाम्	लिहन्तु
दुग्धि	दुग्धम्	दुग्ध	म०	लीढि	लीढम्	लीढ
दोहानि	दोहाव	दोहाम	उ०	लेहानि	लेहाव	लेहाम
	लङ्				लङ्	
अधोक्,-ग्	अदुग्धाम्	अदुहन्	प्र०	अलेट्,-ड्	अलीढाम्	अलिहन्
अधोक्,-ग्	अदुग्धम्	अदुग्ध	म०	अलेट्,-ड्	अलीढम्	अलीढ
अदोहम्	अदुह्व	अदुह्म	उ०	अलेहम्	अलिह्व	अलिह्म
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
दुह्यात्	दुह्याताम्	दुह्युः	प्र०	लिह्यात्	लिह्याताम्	लिह्युः
दुह्याः	दुह्यातम्	दुह्यात	म०	लिह्याः	लिह्यातम्	लिह्यात
दुह्याम्	दुह्याव	दुह्याम	उ०	लिह्याम्	लिह्याव	लिह्याम
	—				—	
धोक्ष्यति	धोक्ष्यतः	धोक्ष्यन्ति	लृट्	लेक्ष्यति	लेक्ष्यतः	लेक्ष्यन्ति
दोग्धा	दोग्धारौ	दोग्धारः	लुट्	लेढा	लेढारौ	लेढारः
दुह्यात्.	दुह्यास्ताम्	दुह्यासुः	आ० लिङ्	लिह्यात्	लिह्यास्ताम्	लिह्यासुः
अधोक्ष्यत्	अधोक्ष्यताम्	अधोक्ष्यन्	लृङ्	अलेक्ष्यत्	अलेक्ष्यताम्०	
	लिट्				लिट्	
दुदोह	दुदुहतुः	दुदुहुः	प्र०	लिलेह	लिलिहतुः	लिलिहुः
दुदोहिथ	दुदुहथुः	दुदुह	म०	लिलेहिथ	लिलिहथुः	लिलिह
दुदोह	दुदुहिव	दुदुहिम	उ०	लिलेह	लिलिहिव	लिलिहिम
	लुङ् (७)				लुङ् (७)	
अधुक्षत्	अधुक्षताम्	अधुक्षन्	प्र०	अलिक्षत्	अलिक्षताम्	अलिक्षन्
अधुक्षः	अधुक्षतम्	अधुक्षत	म०	अलिक्षः	अलिक्षतम्	अलिक्षत
अधुक्षम्	अधुक्षाव	अधुक्षाम	उ०	अलिक्षम्	अलिक्षाव	अलिक्षाम

(३८) हन् (मारना) (दे० अ० २९) **(३९) स्तु (स्तुति करना) (दे० अ० २९)**

लट्				लट्		
हन्ति	हतः	घ्नन्ति	प्र०	स्तौति, स्तवीति	स्तुतः	स्तुवन्ति
हन्सि	हथः	हथ	म०	स्तौषि, स्तवीषि	स्तुथः	स्तुथ
हन्मि	हन्वः	हन्मः	उ०	स्तौमि, स्तवीमि	स्तुवः	स्तुमः

लोट्				लोट्		
हन्तु	हताम्	घ्नन्तु	प्र०	स्तौतु, स्तवीतु	स्तुताम्	स्तुवन्तु
जहि	हतम्	हत	म०	स्तुहि	स्तुतम्	स्तुत
हनानि	हनाव	हनाम	उ०	स्तवानि	स्तवाव	स्तवाम

लङ्				लङ्		
अहन्	अहताम्	अघ्नन्	प्र०	अस्तौत्, अस्तवीत्	अस्तुताम्	अस्तुवन्
अहन्	अहतम्	अहत	म०	अस्तौः, अस्तवीः	अस्तुतम्	अस्तुत
अहनम्	अहन्व	अहन्म	उ०	अस्तवम्	अस्तुव	अस्तुम

विधिलिङ्				विधिलिङ्		
हन्यात्	हन्याताम्	हन्युः	प्र०	स्तुयात्	स्तुयाताम्	स्तुयुः
हन्याः	हन्यातम्	हन्यात	म०	स्तुयाः	स्तुयातम्	स्तुयात
हन्याम्	हन्याव	हन्याम	उ०	स्तुयाम्	स्तुयाव	स्तुयाम

हनिष्यति	हनिष्यतः	हनिष्यन्ति	लृट्	स्तोष्यति	स्तोष्यतः	स्तोष्यन्ति
हन्ता	हन्तारौ	हन्तारः	लुट्	स्तोता	स्तोतारौ	स्तोतारः
वध्यात्	वध्यास्ताम्	वध्यासुः	आ० लिङ्	स्तूयात्	स्तूयास्ताम्	स्तूयासुः
अहनिष्यत्	अहनिष्यताम्०		लृङ्	अस्तोष्यत्	अस्तोष्यताम्०	

लिट्				लिट्		
जघान	जघ्नतुः	जघ्नुः	प्र०	तुष्टाव	तुष्टुवतुः	तुष्टुवुः
जघनिथ, जघन्थ	जघ्नथुः	जघ्न	म०	तुष्टोथ	तुष्टुवथुः	तुष्टुव
जघान, जघन	जघ्निव	जघ्निम	उ०	तुष्टाव, तुष्टव	तुष्टुव	तुष्टुम

लुङ् (५) (हन् को वध)				लुङ् (५)		
अवधीत्	अवधिष्टाम्	अवधिषुः	प्र०	अस्तावीत्	अस्ताविष्टाम्	अस्ताविषुः
अवधीः	अवधिष्टम्	अवधिष्ट	म०	अस्तावीः	अस्ताविष्टम्	अस्ताविष्ट
अवधिषम्	अवधिष्व	अवधिष्म	उ०	अस्ताविषम्	अस्ताविष्व	अस्ताविष्म

(४०) या (जाना) (दे० अ० २६) (४१) पा (रक्षा करना) (दे० अ० २६)

	लट्				लट्	
याति	यातः	यान्ति	प्र०	पाति	पातः	पान्ति
यासि	याथः	याथ	म०	पासि	पाथः	पाथ
यामि	यावः	यामः	उ०	पामि	पावः	पामः
	लोट्				**लोट्**	
यातु	याताम्	यान्तु	प्र०	पातु	पाताम्	पान्तु
याहि	यातम्	यात	म०	पाहि	पातम्	पात
यानि	याव	याम	उ०	पानि	पाव	पाम
	लङ्				**लङ्**	
अयात्	अयाताम्	अयुः, अयान्	प्र०	अपात्	अपाताम्	अपुः, अपान्
अयाः	अयातम्	अयात	म०	अपाः	अपातम्	अपात
अयाम्	अयाव	अयाम	उ०	अपाम्	अपाव	अपाम
	विधिलिङ्				**विधिलिङ्**	
यायात्	यायाताम्	यायुः	प्र०	पायात्	पायाताम्	पायुः
यायाः	यायातम्	यायात	म०	पायाः	पायातम्	पायात
यायाम्	यायाव	यायाम	उ०	पायाम्	पायाव	पायाम
	—				—	
यास्यति	यास्यतः	यास्यन्ति	लृट्	पास्यति	पास्यतः	पास्यन्ति
याता	यातारौ	यातारः	लुट्	पाता	पातारौ	पातारः
यायात्	यायास्ताम्	यायासुः	आ० लिङ्	पायात्	पायास्ताम्	पायासुः
अयास्यत्	अयास्यताम्	अयास्यन्	लृङ्	अपास्यत्	अपास्यताम्	अपास्यन्
	लिट्				**लिट्**	
ययौ	ययतुः	ययुः	प्र०	पपौ	पपतुः	पपुः
ययिथ, ययाथ	ययथुः	यय	म०	पपिथ, पपाथ	पपथुः	पप
ययौ	ययिव	ययिम	उ०	पपौ	पपिव	पपिम
	लुङ् (६)				**लुङ् (६)**	
अयासीत्	अयासिष्टाम्	अयासिषुः	प्र०	अपासीत्	अपासिष्टाम्	अपासिषुः
अयासीः	अयासिष्टम्	अयासिष्ट	म०	अपासीः	अपासिष्टम्	अपासिष्ट
अयासिषम्	अयासिष्व	अयासिष्म	उ०	अपासिषम्	अपासिष्व	अपासिष्म

(४२) शास् (शिक्षा देना) (दे० अ० २३) (४३) विद् (जानना) (दे अ० ३०)

	लट्				**लट्**	
शास्ति	शिष्टः	शासति	प्र०	वेत्ति	वित्तः	विदन्ति
शास्सि	शिष्ठः	शिष्ठ	म०	वेत्सि	वित्थः	वित्थ
शास्मि	शिष्वः	शिष्मः	उ०	वेद्मि	विद्वः	विद्मः
	लोट्				**लोट्**	
शास्तु	शिष्टाम्	शासतु	प्र०	वेत्तु	वित्ताम्	विदन्तु
शाधि	शिष्टम्	शिष्ट	म०	विद्धि	वित्तम्	वित्त
शासानि	शासाव	शासाम	उ०	वेदानि	वेदाव	वेदाम
	लङ्				**लङ्**	
अशात्	अशिष्टाम्	अशासुः	प्र०	अवेत्	अवित्ताम्	अविदुः
अशाः, अशात्	अशिष्टम्	अशिष्ट	म०	अवेः, अवेत्	अवित्तम्	अवित्त
अशासम्	अशिष्व	अशिष्म	उ०	अवेदम्	अविद्व	अविद्म
	विधिलिङ्				**विधिलिङ्**	
शिष्यात्	शिष्याताम्	शिष्युः	प्र०	विद्यात्	विद्याताम्	विद्युः
शिष्याः	शिष्यातम्	शिष्यात	म०	विद्याः	विद्यातम्	विद्यात
शिष्याम्	शिष्याव	शिष्याम	उ०	विद्याम्	विद्याव	विद्याम
	—				—	
शासिष्यति	शासिष्यतः	शासिष्यन्ति	*लृट्*	वेदिष्यति	वेदिष्यतः	वेदिष्यन्ति
शासिता	शासितारौ	शासितारः	*लुट्*	वेदिता	वेदितारौ	वेदितारः
शिष्यात्	शिष्यास्ताम्	शिष्यासुः	*आ० लिङ्*	विद्यात्	विद्यास्ताम्	विद्यासुः
अशासिष्यत्	अशासिष्यताम्०		*लृङ्*	अवेदिष्यत्	अवेदिष्यताम्०	
	लिट्				**लिट्**	
शशास	शशासतुः	शशासुः	प्र०	विवेद	विविदतुः	विविदुः
शशासिथ	शशासतुः	शशास	म०	विवेदिथ	विविदथुः	विविद
शशास	शशासिव	शशासिम	उ०	विवेद	विविदिव	विविदिम
	लुङ् (२)				**लुङ् (५)**	
अशिषत्	अशिषताम्	अशिषन्	प्र०	अवेदीत्	अवेदिष्टाम्	अवेदिषुः
अशिषः	अशिषतम्	अशिषत	म०	अवेदीः	अवेदिष्टम्	अवेदिष्ट
अशिषम्	अशिषाव	अशिषाम	उ०	अवेदिषम्	अवेदिष्व	अवेदिष्म

सूचना—(१) लट् में वेद विदतुः विदुः, वेत्थ विदथुः विद, वेद विद्व विद्म भी रूप होते हैं।

(२) लिट् और लोट् में विदां + कृ वाले अर्थात् विदांचकार और विदांकरोतु आदि भी रूप होते हैं।

अदादिगण—आत्मनेपदी धातुएँ

(४४) आस् (बैठना) (दे० अ० ३१)

लट्				लोट्		
आस्ते	आसाते	आसते	प्र०	आस्ताम्	आसाताम्	आसताम्
आस्से	आसाथे	आध्वे	म०	आस्स्व	आसाथाम्	आध्वम्
आसे	आस्वहे	आस्महे	उ०	आसै	आसावहै	आसामहै

लङ्				विधिलिङ्		
आस्त	आसाताम्	आसत	प्र०	आसीत	आसीयाताम्	आसीरन्
आस्थाः	आसाथाम्	आध्वम्	म०	आसीथाः	आसीयाथाम्	आसीध्वम्
आसि	आस्वहि	आस्महि	उ०	आसीय	आसीवहि	आसीमहि

लृट्				लुट्		
आसिष्यते	आसिष्येते	आसिष्यन्ते	प्र०	आसिता	आसितारौ	आसितारः
आसिष्यसे	आसिष्येथे	आसिष्यध्वे	म०	आसितासे	आसितासाथे	आसिताध्वे
आसिष्ये	आसिष्यावहे	आसिष्यामहे	उ०	आसिताहे	आसितास्वहे	आसितास्महे

आशीर्लिङ्				लृङ्		
आसिषीष्ट	आसिषीयास्ताम्	आसिषीरन्	प्र०	आसिष्यत	आसिष्येताम्	आसिष्यन्त
आसिषीष्ठाः	आसिषीयास्थाम्	आसिषीध्वम्	म०	आसिष्यथाः	आसिष्येथाम्	आसिष्यध्वम्
आसिषीय	आसिषीवहि	आसिषीमहि	उ०	आसिष्ये	आसिष्यावहि	आसिष्यामहि

लिट् (आसां + कृ)				लुङ् (५)		
आसांचक्रे	आसांचक्राते	आसांचक्रिरे	प्र०	आसिष्ट	आसिषाताम्	आसिषत
—चकृषे	—चक्राथे	—चकृढ्वे	म०	आसिष्ठाः	आसिषाथाम्	आसिध्वम्
—चक्रे	—चकृवहे	—चकृमहे	उ०	आसिषि	आसिष्वहि	आसिष्महि

(४५) शी (सोना) (दे० अ० ३२) (४६) अधि + इ (पढ़ना) (दे० अ० ३२)

लट्				लट्		
शेते	शयाते	शेरते	प्र०	अधीते	अधीयाते	अधीयते
शेषे	शयाथे	शेध्वे	म०	अधीषे	अधीयाथे	अधीध्वे
शये	शेवहे	शेमहे	उ०	अधीये	अधीवहे	अधीमहे

लोट्				लोट्		
शेताम्	शयाताम्	शेरताम्	प्र०	अधीताम्	अधीयाताम्	अधीयताम्
शेष्व	शयाथाम्	शेध्वम्	म०	अधीष्व	अधीयाथाम्	अधीध्वम्
शयै	शयावहै	शयामहै	उ०	अध्ययै	अध्ययावहै	अध्ययामहै

लङ्				लङ्		
अशेत	अशयाताम्	अशेरत	प्र०	अध्यैत	अध्यैयाताम्	अध्यैयत
अशेथाः	अशयाथाम्	अशेध्वम्	म०	अध्यैथाः	अध्यैयाथाम्	अध्यैध्वम्
अशयि	अशेवहि	अशेमहि	उ०	अध्यैयि	अध्यैवहि	अध्यैमहि

विधिलिङ्				विधिलिङ्		
शयीत	शयीयाताम्	शयीरन्	प्र०	अधीयीत	अधीयीयाताम्	अधीयीरन्
शयीथाः	शयीयाथाम्	शयीध्वम्	म०	अधीयीथाः	अधीयीयाथाम्	अधीयीध्वम्
शयीय	शयीवहि	शयीमहि	उ०	अधीयीय	अधीयीवहि	अधीयीमहि

शयिष्यते	शयिष्येते	शयिष्यन्ते	लृट्	अध्येष्यते	अध्येष्येते	अध्येष्यन्ते
शयिता	शयितारौ	शयितारः	लुट्	अध्येता	अध्येतारौ	अध्येतारः
शयिषीष्ट	शयिषीयास्ताम्०		आ०लिङ्	अध्येषीष्ट	अध्येषीयास्ताम्०	
अशयिष्यत	अशयिष्येताम्०		लृङ्	अध्यैष्यत,	अध्यगीष्यत (दोनों प्रकार से)	

लिट्				लिट् (इ को गा)		
शिश्ये	शिश्याते	शिश्यिरे	प्र०	अधिजगे	अधिजगाते	अधिजगिरे
शिश्यिषे	शिश्याथे	शिश्यिध्वे	म०	अधिजगिषे	अधिजगाथे	अधिजगिध्वे
शिश्ये	शिश्यिवहे	शिश्यिमहे	उ०	अधिजगे	अधिजगिवहे	अधिजगिमहे

लुङ् (५)				लुङ् (क) (४)		
अशयिष्ट	अशयिषाताम्	अशयिषत	प्र०	अध्यैष्ट	अध्यैषाताम्	अध्यैषत
अशयिष्ठाः	अशयिषाथाम्	अशयिध्वम्	म०	अध्यैष्ठाः	अध्यैषाथाम्	अध्यैढ्वम्
अशयिषि	अशयिष्वहि	अशयिष्महि	उ०	अध्यैषि	अध्यैष्वहि	अध्यैष्महि

लुङ् (ख) (४) (इ को गा)

अध्यगीष्ट	अध्यगीषाताम्	अध्यगीषत
अध्यगीष्ठाः	अध्यगीषाथाम्	अध्यगीढ्वम्
अध्यगीषि	अध्यगीष्वहि	अध्यगीष्महि

(४७) ब्रू (कहना) परस्मैपद | **आत्मनेपद (दे० अ० २५)**

सूचना—लृट् आदि में ब्रू को वच् होगा। | *सूचना*—लृट् आदि में ब्रू को वच्।

लट् | **लट्**

ब्रवीति, आह	ब्रूतः, आहतुः	ब्रुवन्ति, आहुः	प्र०	ब्रूते	ब्रुवाते	ब्रुवते
ब्रवीषि, आत्थ	ब्रूथः, आहथुः	ब्रूथ	म०	ब्रूषे	ब्रुवाथे	ब्रूध्वे
ब्रवीमि	ब्रूवः	ब्रूमः	उ०	ब्रुवे	ब्रूवहे	ब्रूमहे

लोट् | **लोट्**

ब्रवीतु	ब्रूताम्	ब्रुवन्तु	प्र०	ब्रूताम्	ब्रुवाताम्	ब्रुवताम्
ब्रूहि	ब्रूतम्	ब्रूत	म०	ब्रूष्व	ब्रुवाथाम्	ब्रूध्वम्
ब्रवाणि	ब्रवाव	ब्रवाम	उ०	ब्रवै	ब्रवावहै	ब्रवामहै

लङ् | **लङ्**

अब्रवीत्	अब्रूताम्	अब्रुवन्	प्र०	अब्रूत	अब्रुवाताम्	अब्रुवत
अब्रवीः	अब्रूतम्	अब्रूत	म०	अब्रूथाः	अब्रुवाथाम्	अब्रूध्वम्
अब्रवम्	अब्रूव	अब्रूम	उ०	अब्रुवि	अब्रूवहि	अब्रूमहि

विधिलिङ् | **विधिलिङ्**

ब्रूयात्	ब्रूयाताम्	ब्रूयुः	प्र०	ब्रुवीत	ब्रुवीयाताम्	ब्रुवीरन्
ब्रूयाः	ब्रूयातम्	ब्रूयात	म०	ब्रुवीथाः	ब्रुवीयाथाम्	ब्रुवीध्वम्
ब्रूयाम्	ब्रूयाव	ब्रूयाम	उ०	ब्रुवीय	ब्रुवीवहि	ब्रुवीमहि

—— | ——

वक्ष्यति	वक्ष्यतः	वक्ष्यन्ति	लृट्	वक्ष्यते	वक्ष्येते	वक्ष्यन्ते
वक्ता	वक्तारौ	वक्तारः	लुट्	वक्ता	वक्तारौ	वक्तारः
उच्यात्	उच्यास्ताम्	उच्यासुः	आ०लिङ्	वक्षीष्ट	वक्षीयास्ताम्	वक्षीरन्
अवक्ष्यत्	अवक्ष्यताम्	अवक्ष्यन्	लृङ्	अवक्ष्यत	अवक्ष्येताम्	अवक्ष्यन्त

लिट् | **लिट्**

उवाच	ऊचतुः	ऊचुः	प्र०	ऊचे	ऊचाते	ऊचिरे
ऊवचिथ, उवक्थ	ऊचथुः	ऊच	म०	ऊचिषे	ऊचाथे	ऊचिध्वे
उवाच, उवच	ऊचिव	ऊचिम	उ०	ऊचे	ऊचिवहे	ऊचिमहे

लुङ् (२) | **लुङ् (२)**

अवोचत्	अवोचताम्	अवोचन्	प्र०	अवोचत	अवोचेताम्	अवोचन्त
अवोचः	अवोचतम्	अवोचत	म०	अवोचथाः	अवोचेथाम्	अवोचध्वम्
अवोचम्	अवोचाव	अवोचाम	उ०	अवोचे	अवोचावहि	अवोचामहि

(३) जुहोत्यादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु हु (हवन करना) है। उसके रूप जुहोति आदि होते हैं, अतः गण का नाम जुहोत्यादिगण पड़ा। जुहोत्यादिगण में भी अदादिगण के तुल्य धातु और प्रत्यय के बीच में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में कोई विकरण नहीं लगता है। (जुहोत्यादिभ्यः श्लुः, श्लौ) उक्त लकारों में धातु को द्वित्व होता है अर्थात् धातु को दो बार पढ़ा जाता है और द्वित्व के प्रथम भाग में कुछ परिवर्तन भी होते हैं। उक्त लकारों में धातु को एकवचन में गुण होता है, अन्यत्र नहीं।

(२) इस गण में २४ धातुएँ हैं।

(३) लट् आदि में धातु के अन्त में संक्षिप्त-रूप निम्नलिखित लगेंगे। लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लृङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट संक्षिप्तरूप ही लगेंगे। लृट् आदि में सेट् धातुओं में संक्षिप्तरूप से पहले इ भी लगेगा, अनिट् में नहीं।

परस्मैपद (सं० रूप)				आत्मनेपद (सं० रूप)		
	लट्				लट्	
ति	तः	अति	प्र०	ते	आते	अते
सि	थः	थ	म०	से	आथे	ध्वे
मि	वः	मः	उ०	ए	वहे	महे
	लोट्				लोट्	
तु	ताम्	अतु	प्र०	ताम्	आताम्	अताम्
हि	तम्	त	म०	स्व	आथाम्	ध्वम्
आनि	आव	आम	उ०	ऐ	आवहै	आमहै
लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)		
त्	ताम्	उः	प्र०	त	आताम्	अत
:	तम्	त	म०	थाः	आथाम्	ध्वम्
अम्	व	म	उ०	इ	वहि	महि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
यात्	याताम्	युः	प्र०	ईत	ईयाताम्	ईरन्
याः	यातम्	यात	म०	ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
याम्	याव	याम	उ०	ईय	ईवहि	ईमहि

(४८) हु (हवन करना) (दे० अ० ३३)

परस्मैपदी

लट्

जुहोति	जुहुतः	जुह्वति	प्र०
जुहोषि	जुहुथः	जुहुथ	म०
जुहोमि	जुहुवः	जुहुमः	उ०

लोट्

जुहोतु	जुहुताम्	जुह्वतु	प्र०
जुहुधि	जुहुतम्	जुहुत	म०
जुहवानि	जुहवाव	जुहवाम	उ०

लङ्

अजुहोत्	अजुहुताम्	अजुहवुः	प्र०
अजुहोः	अजुहुतम्	अजुहुत	म०
अजुहवम्	अजुहुव	अजुहुम	उ०

विधिलिङ्

जुहुयात्	जुहुयाताम्	जुहुयुः	प्र०
जुहुयाः	जुहुयातम्	जुहुयात	म०
जुहुयाम्	जुहुयाव	जुहुयाम	उ०

होष्यति	होष्यतः	होष्यन्ति	लृट्
होता	होतारौ	होतारः	लुट्
हूयात्	हूयास्ताम्	हूयासुः	आ० लिङ्
अहोष्यत्	अहोष्यताम्	अहोष्यन्	लृङ्

लिट् (क)

जुहाव	जुहुवतुः	जुहुवुः	प्र०
जुहविथ, जुहोथ	जुहुवथुः	जुहुव	म०
जुहाव, जुहव	जुहुविव	जुहुविम	उ०

लिट् (ख) (जुहवां + कृ)

जुहवांचकार	—चक्रतुः	—चक्रुः	प्र०
—चकर्थ	—चक्रथुः	—चक्र	म०
—चकार, चकर	—चकृव	—चकृम	उ०

लुङ् (४)

अहौषीत्	अहौष्टाम्	अहौषुः	प्र०
अहौषीः	अहौष्टम्	अहौष्ट	म०
अहौषम्	अहौष्व	अहौष्म	उ०

(४९) भी (डरना) (दे० अ० ३३)

परस्मैपदी

लट्

प्र०	बिभेति	बिभीतः	बिभ्यति
म०	बिभेषि	बिभीथः	बिभीथ
उ०	बिभेमि	बिभीवः	बिभीमः

लोट्

प्र०	बिभेतु	बिभीताम्	बिभ्यतु
म०	बिभीहि	बिभीतम्	बिभीत
उ०	बिभयानि	बिभयाव	बिभयाम

लङ्

प्र०	अबिभेत्	अबिभीताम्	अबिभयुः
म०	अबिभेः	अबिभीतम्	अबिभीत
उ०	अबिभयम्	अबिभीव	अबिभीम

विधिलिङ्

प्र०	बिभीयात्	बिभीयाताम्	बिभीयुः
म०	बिभीयाः	बिभीयातम्	बिभीयात
उ०	बिभीयाम्	बिभीयाव	बिभीयाम

लृट्	भेष्यति	भेष्यतः	भेष्यन्ति
लुट्	भेता	भेतारौ	भेतारः
आ० लिङ्	भीयात्	भीयास्ताम्	भीयासुः
लृङ्	अभेष्यत्	अभेष्यताम्	अभेष्यन्

लिट् (क)

प्र०	बिभाय	बिभ्यतुः	बिभ्युः
म०	बिभयिथ, बिभेथ	बिभ्यथुः	बिभ्य
उ०	बिभाय, बिभय	बिभ्यिव	बिभ्यिम

लिट् (ख) (बिभयां + कृ)

प्र०	बिभयांचकार	—चक्रतुः	—चक्रुः
म०	—चकर्थ	—चक्रथुः	—चक्र
उ०	—चकार, चकर	—चकृव	— चकृम

लुङ् (४)

प्र०	अभैषीत्	अभैष्टाम्	अभैषुः
म०	अभैषीः	अभैष्टम्	अभैष्ट
उ०	अभैषम्	अभैष्व	अभैष्म

(५०) हा (छोड़ना) (दे० अ० ३४) **(५१) ह्री (लज्जित होना) (दे० अ० ३४)**

परस्मैपदी | परस्मैपदी

	लट्				लट्	
जहाति	जहीत:	जहति	प्र०	जिह्रेति	जिह्रीत:	जिह्रियति
जहासि	जहीथ:	जहीथ	म०	जिह्रेषि	जिह्रीथ:	जिह्रीथ
जहामि	ज़हीव:	जहीम:	उ०	जिह्रेमि	जिह्रीव:	जिह्रीम:
	लोट्				लोट्	
जहातु	जहीताम्	जहतु	प्र०	जिह्रेतु	जिह्रीताम्	जिह्रियतु
जहाहि,जहीहि	जहीतम्	जहीत	म०	जिह्रीहि	जिह्रीतम्	जिह्रीत
जहानि	जहाव	जहाम	उ०	जिह्रयाणि	जिह्रयाव	जिह्रयाम
	लिङ्				लिङ्	
अजहात्	अजहीताम्	अजहु:	प्र०	अजिह्रेत्	अजिह्रीताम्	अजिह्रयु:
अजहा:	अजहीतम्	अजहीत	म०	अजिह्रे:	अजिह्रीतम्	अजिह्रीत
अजहाम्	अजहीव	अजहीम	उ०	अजिह्रयम्	अजिह्रीव	अजिह्रीम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
जह्यात्	जह्याताम्	जह्यु:	प्र०	जिह्रीयात्	जिह्रीयाताम्	जिह्रीयु:
जह्या:	जंह्यातम्	जह्यात	म०	जिह्रीया:	जिह्रीयातम्	जिह्रीयात
जह्याम्	जह्याव	जह्याम	उ०	जिह्रीयाम्	जिह्रीयाव	जिह्रीयाम
	—				—	
हास्यति	हास्यत:	हास्यन्ति	लृट्	ह्रेष्यति	ह्रेष्यत:	ह्रेष्यन्ति
हाता	हातारौ	हातार:	लुट्	ह्रेता	ह्रेतारौ	ह्रेतार:
हेयात्	हेयास्ताम्	हेयासु:	*आ०लिङ्*	ह्रीयात्	ह्रीयास्ताम्	ह्रीयासु:
अहास्यत्	अहास्यताम्	अहास्यन्	लृङ्	अह्रेष्यत्	अह्रेष्यताम्	अह्रेष्यन्
	लिट्				लिट्	
जहौ	जहतु:	जहु:	प्र०	जिह्राय	जिह्रियतु:	जिह्रियु:
जहिथ,जहाथ	जहथु:	जह	म०	जिह्रयिथ,जिह्रेथ	जिह्रियथु:	जिह्रिय
जहौ	जहिव	जहिम	उ०	जिह्राय, जिह्रय	जिह्रियिव	जिह्रियिम
	लुङ् (६)				लुङ् (४)	
अहासीत्	अहासिष्टाम्	अहासिषु:	प्र०	अह्रैषीत्	अह्रैष्टाम्	अह्रैषु:
अहासी:	अहासिष्टम्	अहासिष्ट	म०	अह्रैषी:	अह्रैष्टम्	अह्रैष्ट
अहासिषम्	अहासिष्व	अहासिष्म	उ०	अह्रैषम्	अह्रैष्व	अह्रैष्म

सूचना—ह्री के लिट् में जिह्रयां + कृ अर्थात् जिह्रयांचकार आदि भी रूप होते हैं।

(५२) भृ (पालन करना) (दे० अ० ३५) (५३) मा (तोलना, नापना) (दे० अ० ३५)

उभयपदी | आत्मनेपदी

सूचना—केवल परस्मैपद के रूप दिए हैं।

लट्				लट्		
बिभर्ति	बिभृतः	बिभ्रति	प्र०	मिमीते	मिमाते	मिमते
बिभर्षि	बिभृथः	बिभृथ	म०	मिमीषे	मिमाथे	मिमीध्वे
बिभर्मि	बिभृवः	बिभृमः	उ०	मिमे	मिमीवहे	मिमीमहे
लोट्				**लोट्**		
बिभर्तु	बिभृताम्	बिभ्रतु	प्र०	मिमीताम्	मिमाताम्	मिमताम्
बिभृहि	बिभृतम्	बिभृत	म०	मिमीष्व	मिमाथाम्	मिमीध्वम्
बिभराणि	बिभराव	बिभराम	उ०	मिमै	मिमावहै	मिमामहै
लङ्				**लङ्**		
अबिभः	अबिभृताम्	अबिभरुः	प्र०	अमिमीत	अमिमाताम्	अमिमत
अबिभः	अबिभृतम्	अबिभृत	म०	अमिमीथाः	अमिमाथाम्	अमिमीध्वम्
अबिभरम्	अबिभृव	अबिभृम	उ०	अमिमि	अमिमीवहि	अमिमीमहि
विधिलिङ्				**विधिलिङ्**		
बिभृयात्	बिभृयाताम्	बिभृयुः	प्र०	मिमीत	मिमीयाताम्	मिमीरन्
बिभृयाः	बिभृयातम्	बिभृयात	म०	मिमीथाः	मिमीयाथाम्	मिमीध्वम्
बिभृयाम्	बिभृयाव	बिभृयाम	उ०	मिमीय	मिमीवहि	मिमीमहि
—				—		
भरिष्यति	भरिष्यतः	भरिष्यन्ति	लृट्	मास्यते	मास्येते	मास्यन्ते
भर्ता	भर्तारौ	भर्तारः	लुट्	माता	मातारौ	मातारः
भ्रियात्	भ्रियास्ताम्	भ्रियासुः	आ०लिङ्	मासीष्ट	मासीयास्ताम्	मासीरन्
अभरिष्यत्	अभरिष्यताम्	अभरिष्यन्	लृङ्	अमास्यत	अमास्येताम्	अमास्यन्त
लिट्				**लिट्**		
बभार	बभ्रतुः	बभ्रुः	प्र०	ममे	ममाते	ममिरे
बभर्थ	बभ्रथुः	बभ्र	म०	ममिषे	ममाथे	ममिध्वे
बभार, बभर	बभृव	बभृम	उ०	ममे	ममिवहे	ममिमहे
लुङ् (४)				**लुङ् (४)**		
अभार्षीत्	अभार्ष्टाम्	अभार्षुः	प्र०	अमास्त	अमासाताम्	अमासत
अभार्षीः	अभार्ष्टम्	अभार्ष्ट	म०	अमास्थाः	अमासाथाम्	अमाध्वम्
अभार्षम्	अभार्ष्व	अभार्ष्म	उ०	अमासि	अमास्वहि	अमास्महि

सूचना—लिट् में भृ के विभाषा...क अर्थात् बिभरांचकार आदि भी रूप बनेंगे।

(५४) दा (देना) परस्मैपद आत्मनेपद (दे० अ० ३६)

	लट्				लट्	
ददाति	दत्तः	ददति	प्र०	दत्ते	ददाते	ददते
ददासि	दत्थः	दत्थ	म०	दत्से	ददाथे	दद्ध्वे
ददामि	दद्वः	दद्मः	उ०	ददे	दद्वहे	दद्महे
	लोट्				लोट्	
ददातु	दत्ताम्	ददतु	प्र०	दत्ताम्	ददाताम्	ददताम्
देहि	दत्तम्	दत्त	म०	दत्स्व	ददाथाम्	दद्ध्वम्
ददानि	ददाव	ददाम	उ०	ददै	ददावहै	ददामहै
	लङ्				लङ्	
अददात्	अदत्ताम्	अददुः	प्र०	अदत्त	अददाताम्	अददत
अददाः	अदत्तम्	अदत्त	म०	अदत्थाः	अददाथाम्	अदद्ध्वम्
अददाम्	अदद्व	अदद्म	उ०	अददि	अदद्वहि	अदद्महि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
दद्यात्	दद्याताम्	दद्युः	प्र०	ददीत	ददीयाताम्	ददीरन्
दद्याः	दद्याताम्	दद्यात	म०	ददीथाः	ददीयाथाम्	ददीध्वम्
दद्याम्	दद्याव	दद्याम	उ०	ददीय	ददीवहि	ददीमहि
	—				—	
दास्यति	दास्यतः	दास्यन्ति	लृट्	दास्यते	दास्येते	दास्यन्ते
दाता	दातारौ	दातारः	लुट्	दाता	दातारौ	दातारः
देयात्	देयास्ताम्	देयासुः	आ० लिङ्	दासीष्ट	दासीयास्ताम्	दासीरन्
अदास्यत्	अदास्यताम्	अदास्यन्	लृङ्	अदास्यत	अदास्येताम्	अदास्यन्त
	लिट्				लिट्	
ददौ	ददतुः	ददुः	प्र०	ददे	ददाते	ददिरे
ददिथ, ददाथ	ददथुः	दद	म०	ददिषे	ददाथे	ददिध्वे
ददौ	ददिव	ददिम	उ०	ददे	ददिवहे	ददिमहे
	लुङ् (१)				लुङ् (४)	
अदात्	अदाताम्	अदुः	प्र०	अदित	अदिषाताम्	अदिषत
अदाः	अदातम्	अदात	म०	अदिथाः	अदिषाथाम्	अदिढ्वम्
अदाम्	अदाव	अदाम	उ०	अदिषि	अदिष्वहि	अदिष्महि

(५५) धा (धारण करना) परस्मैपद — आत्मनेपद (दे० अ० ३७)

	लट्				लट्	
दधाति	धत्तः	दधति	प्र०	धत्ते	दधाते	दधते
दधासि	धत्थः	धत्थ	म०	धत्से	दधाते	धद्ध्वे
दधामि	दध्वः	दध्मः	उ०	दधे	दध्वहे	दध्महे
	लोट्				लोट्	
दधातु	धत्ताम्	दधतु	प्र०	धत्ताम्	दधाताम्	दधताम्
धेहि	धत्तम्	धत्त	म०	धत्स्व	दधाथाम्	धद्ध्वम्
दधानि	दधाव	दधाम	उ०	दधै	दधावहै	दधामहै
	लङ्				लङ्	
अदधात्	अधत्ताम्	अदधुः	प्र०	अधत्त	अदधाताम्	अदधत
अदधाः	अधत्तम्	अधत्त	म०	अधत्थाः	अदधाथाम्	अधद्ध्वम्
अदधाम्	अदध्व	अदध्म	उ०	अदधि	अदध्वहि	अदध्महि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
दध्यात्	दध्याताम्	दध्युः	प्र०	दधीत	दधीयाताम्	दधीरन्
दध्याः	दध्यातम्	दध्यात	म०	दधीथाः	दधीयाथाम्	दधीध्वम्
दध्याम्	दध्याव	दध्याम	उ०	दधीय	दधीवहि	दधीमहि
	—				—	
धास्यति	धास्यतः	धास्यन्ति	लृट्	धास्यते	धास्येते	धास्यन्ते
धाता	धातारौ	धातारः	लुट्	धाता	धातारौ	धातारः
धेयात्	धेयास्ताम्	धेयासुः	आ०लिङ्	धासीष्ट	धासीयास्ताम्	धासीरन्
अधास्यत्	अधास्यताम्	अधास्यन्	लृङ्	अधास्यत	अधास्येताम्	अधास्यन्त
	लिट्				लिट्	
दधौ	दधतुः	दधुः	प्र०	दधे	दधाते	दधिरे
दधिथ, दधाथ	दधथुः	दध	म०	दधिषे	दधाथे	दधिध्वे
दधौ	दधिव	दधिम	उ०	दधे	दधिवहे	दधिमहे
	लुङ् (१)				लुङ् (४)	
अधात्	अधाताम्	अधुः	प्र०	अधित	अधिषाताम्	अधिषत
अधाः	अधातम्	अधात	म०	अधिथाः	अधिषाथाम्	अधिध्वम्
अधाम्	अधाव	अधाम	उ०	अधिषि	अधिष्वहि	अधिष्महि

(४) दिवादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु दिव् (चमकना आदि) है, अतः गण का नाम दिवादिगण पड़ा। (दिवादिभ्यः श्यन्) दिवादिगण की धातुओं में धातु और प्रत्यय के बीच में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में श्यन् (य) विकरण लगता है और धातु को गुण नहीं होता। इस गण की धातुओं के रूप चलाने का सरल उपाय यह है कि धातु के अन्त में 'य' लगाकर परस्मैपद में भू धातु के तुल्य और आत्मनेपद में सेव् धातु के तुल्य रूप चलावें।

(२) इस गण में १४१ धातुएँ हैं।

(३) लट् आदि में धातु के अन्त में संक्षिप्तरूप निम्नलिखित लगेंगे।

लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लृङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट संक्षिप्तरूप ही लगेंगे।

लृट् आदि में सेट् धातुओं में संक्षिप्तरूप से पहले इ भी लगेगा, अनिट् में नहीं।

परस्मैपद (सं रूप)				आत्मनेपद (सं रूप)		
	लट्				लट्	
यति	यतः	यन्ति	प्र०	यते	येते	यन्ते
यसि	यथः	यथ	म०	यसे	येथे	यध्वे
यामि	यावः	यामः	उ०	ये	यावहे	यामहे
	लोट्				लोट्	
यतु	यताम्	यन्तु	प्र०	यताम्	येताम्	यन्ताम्
य	यतम्	यत	म०	यस्व	येथाम्	यध्वम्
यानि	याव	याम	उ०	यै	यावहै	यामहै
लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)		
यत्	यताम्	यन्	प्र०	यत	येताम्	यन्त
यः	यतम्	यत	म०	यथाः	येथाम्	यध्वम्
यम्	याव	याम	उ०	ये	यावहि	यामहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
येत्	येताम्	येयुः	प्र०	येत	येयाताम्	येरन्
येः	येतम्	येत	म०	येथाः	येयाथाम्	येध्वम्
येयम्	येव	येम	उ०	येय	येवहि	येमहि

दिवादिगण—परस्मैपदी धातुएँ

(५६) दिव् (चमकना आदि) (दे० अ० ३८) (५७) नृत् (नाचना) (दे० अ० ३८)

लट्				लट्		
दीव्यति	दीव्यतः	दीव्यन्ति	प्र०	नृत्यति	नृत्यतः	नृत्यन्ति
दीव्यसि	दीव्यथः	दीव्यथ	म०	नृत्यसि	नृत्यथः	नृत्यथ
दीव्यामि	दीव्यावः	दीव्यामः	उ०	नृत्यामि	नृत्यावः	नृत्यामः
लोट्				**लोट्**		
दीव्यतु	दीव्यताम्	दीव्यन्तु	प्र०	नृत्यतु	नृत्यताम्	नृत्यन्तु
दीव्य	दीव्यतम्	दीव्यत	म०	नृत्य	नृत्यतम्	नृत्यत
दीव्यानि	दीव्याव	दीव्याम	उ०	नृत्यानि	नृत्याव	नृत्याम
लङ्				**लङ्**		
अदीव्यत्	अदीव्यताम्	अदीव्यन्	प्र०	अनृत्यत्	अनृत्यताम्	अनृत्यन्
अदीव्यः	अदीव्यतम्	अदीव्यत	म०	अनृत्यः	अनृत्यतम्	अनृत्यत
अदीव्यम्	अदीव्याव	अदीव्याम	उ०	अनृत्यम्	अनृत्याव	अनृत्याम
विधिलिङ्				**विधिलिङ्**		
दीव्येत्	दीव्येताम्	दीव्येयुः	प्र०	नृत्येत्	नृत्येताम्	नृत्येयुः
दीव्येः	दीव्येतम्	दीव्येत	म०	नृत्येः	नृत्येतम्	नृत्येत
दीव्येयम्	दीव्येव	दीव्येम	उ०	नृत्येयम्	नृत्येव	नृत्येम
—				—		
देविष्यति	देविष्यतः	देविष्यन्ति	लृट्	नर्तिष्यति,	नर्त्स्यति	(दोनों प्रकार से)
देविता	देवितारौ	देवितारः	लुट्	नर्तिता	नर्तितारौ	नर्तितारः
दीव्यात्	दीव्यास्ताम्	दीव्यासुः	आ०लिङ्	नृत्यात्	नृत्यास्ताम्	नृत्यासुः
अदेविष्यत्	अदेविष्यताम्०		लृङ्	अनर्तिष्यत्	अनर्त्स्यत्	(दोनों प्रकार से)
लिट्				**लिट्**		
दिदेव	दिदिवतुः	दिदिवुः	प्र०	ननर्त	ननृततुः	ननृतुः
दिदेविथ	दिदिवथुः	दिदिव	म०	ननर्तिथ	ननृतथुः	ननृत
दिदेव	दिदिविव	दिदिविम	उ०	ननर्त	ननृतिव	ननृतिम
लुङ् (५)				**लुङ् (५)**		
अदेवीत्	अदेविष्टाम्	अदेविषुः	प्र०	अनर्तीत्	अनर्तिष्टाम्	अनर्तिषुः
अदेवीः	अदेविष्टम्	अदेविष्ट	म०	अनर्तीः	अनर्तिष्टम्	अनर्तिष्ट
अदेविषम्	अदेविष्व	अदेविष्म	उ०	अनर्तिषम्	अनर्तिष्व	अनर्तिष्म

(५८) नश् (नष्ट होना) (दे० अ० ३९) (५९) भ्रम् (घूमना) (दे० अ० ३९)

लट्				लट्		
नश्यति	नश्यतः	नश्यन्ति	प्र०	भ्राम्यति	भ्राम्यतः	भ्राम्यन्ति
नश्यसि	नश्यथः	नश्यथ	म०	भ्राम्यसि	भ्राम्यथः	भ्राम्यथ
नश्यामि	नश्यावः	नश्यामः	उ०	भ्राम्यामि	भ्राम्यावः	भ्राम्यामः
लोट्				**लोट्**		
नश्यतु	नश्यताम्	नश्यन्तु	प्र०	भ्राम्यतु	भ्राम्यताम्	भ्राम्यन्तु
नश्य	नश्यतम्	नश्यत	म०	भ्राम्य	भ्राम्यतम्	भ्राम्यत
नश्यानि	नश्याव	नश्याम	उ०	भ्राम्याणि	भ्राम्याव	भ्राम्याम
लङ्				**लङ्**		
अनश्यत्	अनश्यताम्	अनश्यन्	प्र०	अभ्राम्यत्	अभ्राम्यताम्	अभ्राम्यन्
अनश्यः	अनश्यतम्	अनश्यत	म०	अभ्राम्यः	अभ्राम्यतम्	अभ्राम्यत
अनश्यम्	अनश्याव	अनश्याम	उ०	अभ्राम्यम्	अभ्राम्याव	अभ्राम्याम
विधिलिङ्				**विधिलिङ्**		
नश्येत्	नश्येताम्	नश्येयुः	प्र०	भ्राम्येत्	भ्राम्येताम्	भ्राम्येयुः
नश्येः	नश्येतम्	नश्येत	म०	भ्राम्येः	भ्राम्येतम्	भ्राम्येत
नश्येयम्	नश्येव	नश्येम	उ०	भ्राम्येयम्	भ्राम्येव	भ्राम्येम

नशिष्यति, नङ्क्ष्यति (दोनों प्रकार से)	लृट्	भ्रमिष्यति भ्रमिष्यतः	भ्रमिष्यन्ति
नशिता, नंष्टा (दोनों प्रकार से)	लुट्	भ्रमिता भ्रमितारौ	भ्रमितारः
नश्यात् नश्यास्ताम् नश्यासुः	आ०लिङ्	भ्रम्यात् भ्रम्यास्ताम्	भ्रम्यासुः
अनशिष्यत्, अनङ्क्ष्यत् (दोनों प्रकार से)	लृङ्	अभ्रमिष्यत् अभ्रमिष्यताम्०	

लिट्				लिट्		
ननाश	नेशतुः	नेशुः	प्र०	बभ्राम	बभ्रमतुः, भ्रेमतुः	बभ्रमुः, भ्रेमुः
नेशिथ, ननंष्ठ	नेशथुः	नेश	म०	बभ्रमिथ, भ्रेमिथ	बभ्रमथुः, भ्रेमथुः	बभ्रम, भ्रेम
ननाश, ननश	नेशिव, नेश्व	नेशिम, नेश्म	उ०	बभ्राम, बभ्रम	बभ्रमिव, भ्रेमिव	बभ्रमिम, भ्रेमिम
लुङ् (२)				**लुङ् (२)**		
अनशत्	अनशताम्	अनशन्	प्र०	अभ्रमत्	अभ्रमताम्	अभ्रमन्
अनशः	अनशतम्	अनशत	म०	अभ्रमः	अभ्रमतम्	अभ्रमत
अनशम्	अनशाव	अनशाम	उ०	अभ्रमम्	अभ्रमाव	अभ्रमाम

सूचना—भ्रम् भ्वादिगणी भी है, अतः भ्रमति, भ्रमतु, अभ्रमत्, भ्रमेत् वाले रूप भी बनेंगे।

(६०) श्रम् (परिश्रम करना) (दे० अ० ४०) (६१) सिव् (सीना) (दें० अ० ४०)

लट्				लट्		
श्राम्यति	श्राम्यतः	श्राम्यन्ति	प्र०	सीव्यति	सीव्यतः	सीव्यन्ति
श्राम्यसि	श्राम्यथः	श्राम्यथ	म०	सीव्यसि	सीव्यथः	सीव्यथ
श्राम्यामि	श्राम्यावः	श्राम्यामः	उ०	सीव्यामि	सीव्यावः	सीव्यामः
लोट्				**लोट्**		
श्राम्यतु	श्राम्यताम्	श्राम्यन्तु	प्र०	सीव्यतु	सीव्यताम्	सीव्यन्तु
श्राम्य	श्राम्यंतम्	श्राम्यत	म०	सीव्य	सीव्यतम्	सीव्यत
श्राम्याणि	श्राम्याव	श्राम्याम	उ०	सीव्यानि	सीव्याव	सीव्याम
लङ्				**लङ्**		
अश्राम्यत्	अश्राम्यताम्	अश्राम्यन्	प्र०	असीव्यत्	असीव्यताम्	असीव्यन्
अश्राम्यः	अश्राम्यतम्	अश्राम्यत	म०	असीव्यः	असीव्यतम्	असीव्यत
अश्राम्यम्	अश्राम्याव	अश्राम्याम	उ०	असीव्यम्	असीव्याव	असीव्याम
विधिलिङ्				**विधिलिङ्**		
श्राम्येत्	श्राम्येताम्	श्राम्येयुः	प्र०	सीव्येत्	सीव्येताम्	सीव्येयुः
श्राम्येः	श्राम्येतम्	श्राम्येत	म०	सीव्येः	सीव्येतम्	सीव्येत
श्राम्येयम्	श्राम्येव	श्राम्येम	उ०	सीव्येयम्	सीव्येव	सीव्येम
—				—		
श्रमिष्यति	श्रमिष्यतः	श्रमिष्यन्ति	लृट्	सेविष्यति	सेविष्यतः	सेविष्यन्ति
श्रमिता	श्रमितारौ	श्रमितारः	लुट्	सेविता	सेवितारौ	सेवितारः
श्रम्यात्	श्रम्यास्ताम्	श्रम्यासुः	आ०लिङ्	सीव्यात्	सीव्यास्ताम्	सीव्यासुः
अश्रमिष्यत्	अश्रमिष्यताम्०		लृङ्	असेविष्यत्	असेविष्यताम्०	
लिट्				**लिट्**		
शश्राम	शश्रमतुः	शश्रमुः	प्र०	सिषेव	सिषिवतुः	सिषिवुः
शश्रमिथ	शश्रमथुः	शश्रम	म०	सिषेविथ	सिषिवथुः	सिषिव
शश्राम, शश्रम	शश्रमिव	शश्रमिम	उ०	सिषेव	सिषिविव	सिषिविम
लुङ् (२)				**लुङ् (५)**		
अश्रमत्	अश्रमताम्	अश्रमन्	प्र०	असेवीत्	असेविष्टाम्	असेविषुः
अश्रमः	अश्रमतम्	अश्रमत	म०	असेवीः	असेविष्टम्	असेविष्ट
अश्रमम्	अश्रमाव	अश्रमाम	उ०	असेविषम्	असेविष्व	असेविष्म

(६२) सो (नष्ट होना) (दे० अ० ४१) (६३) शो (छीलना) (दे० अ० ४१)

	लट्				लट्	
स्यति	स्यतः	स्यन्ति	प्र०	श्यति	श्यतः	श्यन्ति
स्यसि	स्यथः	स्यथ	म०	श्यसि	श्यथः	श्यथ
स्यामि	स्यावः	स्यामः	उ०	श्यामि	श्यावः	श्यामः
	लोट्				**लोट्**	
स्यतु	स्यताम्	स्यन्तु	प्र०	श्यतु	श्यताम्	श्यन्तु
स्य	स्यतम्	स्यत	म०	श्य	श्यतम्	श्यत
स्यानि	स्याव	स्याम	उ०	श्यानि	श्याव	श्याम
	लङ्				**लङ्**	
अस्यत्	अस्यताम्	अस्यन्	प्र०	अश्यत्	अश्यताम्	अश्यन्
अस्यः	अस्यतम्	अस्यत	म०	अश्यः	अश्यतम्	अश्यत
अस्यम्	अस्याव	अस्याम	उ०	अश्यम्	अश्याव	अश्याम
	विधिलिङ्				**विधिलिङ्**	
स्येत्	स्येताम्	स्येयुः	प्र०	श्येत्	श्येताम्	श्येयुः
स्येः	स्येतम्	स्येत	म०	श्येः	श्येतम्	श्येत
स्येयम्	स्येव	स्येम	उ०	श्येयम्	श्येव	श्येम
	—				—	
सास्यति	सास्यतः	सास्यन्ति	लृट्	शास्यति	शास्यतः	शास्यन्ति
साता	सातारौ	सातारः	लुट्	शाता	शातारौ	शातारः
सेयात्	सेयास्ताम्	सेयासुः	आ०लिङ्	शायात्	शायास्ताम्	शायासुः
असास्यत्	असास्यताम्	असास्यन्	लृङ्	अशास्यत्	अशास्यताम्	अशास्यन्
	लिट्				**लिट्**	
ससौ	ससतुः	ससुः	प्र०	शशौ	शशतुः	शशुः
ससिथ, ससाथ	ससथुः	सस	म०	शशिथ, शशाथ,	शशथुः	शश
ससौ	ससिव	ससिम	उ०	शशौ	शशिव	शशिम
	लुङ् (क) (१)				**लुङ् (क) (१)**	
असात्	असाताम्	असुः	प्र०	अशात्	अशाताम्	अशुः
असाः	असातम्	असात	म०	अशाः	अशातम्	अशात
असाम्	असाव	असाम	उ०	अशाम्	अशाव	अशाम
	लुङ् (ख) (६)				**लुङ् (ख) (६)**	
असासीत्	असासिष्टाम्	असासिषुः	प्र०	अशासीत्	अशासिष्टाम्	अशासिषुः
असासीः	असासिष्टम्	असासिष्ट	म०	अशासीः	अशासिष्टम्	अशासिष्ट
असासिषम्	असासिष्व	असासिष्म	उ०	अशासिषम्	अशासिष्व	अशासिष्म

(६४) कुप् (क्रुद्ध होना) (दे० अ० ४२)   (६५) पद् (जाना) (दे० अ० ४२)

परस्मैपदी — **आत्मनेपदी**

लट् — लट्

कुप्यति	कुप्यतः	कुप्यन्ति	प्र०	पद्यते	पद्येते	पद्यन्ते
कुप्यसि	कुप्यथः	कुप्यथ	म०	पद्यसे	पद्येथे	पद्यध्वे
कुप्यामि	कुप्यावः	कुप्यामः	उ०	पद्ये	पद्यावहे	पद्यामहे

लोट् — लोट्

कुप्यतु	कुप्यताम्	कुप्यन्तु	प्र०	पद्यताम्	पद्येताम्	पद्यन्ताम्
कुप्य	कुप्यतम्	कुप्यत	म०	पद्यस्व	पद्येथाम्	पद्यध्वम्
कुप्यानि	कुप्याव	कुप्याम	उ०	पद्यै	पद्यावहै	पद्यामहै

लङ् — लङ्

अकुप्यत्	अकुप्यताम्	अकुप्यन्	प्र०	अपद्यत	अपद्येताम्	अपद्यन्त
अकुप्यः	अकुप्यतम्	अकुप्यत	म०	अपद्यथाः	अपद्येथाम्	अपद्यध्वम्
अकुप्यम्	अकुप्याव	अकुप्याम	उ०	अपद्ये	अपद्यावहि	अपद्यामहि

विधिलिङ् — विधिलिङ्

कुप्येत्	कुप्येताम्	कुप्येयुः	प्र०	पद्येत	पद्येयाताम्	पद्येरन्
कुप्येः	कुप्येतम्	कुप्येत	म०	पद्येथाः	पद्येयाथाम्	पद्येध्वम्
कुप्येयम्	कुप्येव	कुप्येम	उ०	पद्येय	पद्येवहि	पद्येमहि

कोपिष्यति	कोपिष्यतः	कोपिष्यन्ति	लृट्	पत्स्यते	पत्स्येते	पत्स्यन्ते
कोपिता	कोपितारौ	कोपितारः	लुट्	पत्ता	पत्तारौ	पत्तारः
कुप्यात्	कुप्यास्ताम्	कुप्यासुः	आ०लिङ्	पत्सीष्ट	पत्सीयास्ताम्	पत्सीरन्
अकोपिष्यत्	अकोपिष्यताम्०		लृङ्	अपत्स्यत	अपत्स्येताम्०	

लिट् — लिट्

चुकोप	चुकुपतुः	चुकुपुः	प्र०	पेदे	पेदाते	पेदिरे
चुकोपिथ	चुकुपथुः	चुकुप	म०	पेदिषे	पेदाथे	पेदिध्वे
चुकोप	चुकुपिव	चुकुपिम	उ०	पेदे	पेदिवहे	पेदिमहे

लुङ् (२) — लुङ् (४)

अकुपत्	अकुपताम्	अकुपन्	प्र०	अपादि	अपत्साताम्	अपत्सत
अकुपः	अकुपतम्	अकुपत	म०	अपत्थाः	अपत्साथाम्	अपद्ध्वम्
अकुपम्	अकुपाव	अकुपाम	उ०	अपत्सि	अपत्स्वहि	अपत्स्महि

आत्मनेपदी — धातुएँ

(६६) युध् (लड़ना) (दे० अ० ४३) **(६७) जन् (उत्पन्न होना) (दे० अ० ४३)**

सूचना—लट् आदि में जन् को जा होगा।

लट्				लट् (जन् को जा)		
युध्यते	युध्येते	युध्यन्ते	प्र०	जायते	जायेते	जायन्ते
युध्यसे	युध्येथे	युध्यध्वे	म०	जायसे	जायेथे	जायध्वे
युध्ये	युध्यावहे	युध्यामहे	उ०	जाये	जायावहे	जायामहे

लोट्				लोट् (जन् को जा)		
युध्यताम्	युध्येताम्	युध्यन्ताम्	प्र०	जायताम्	जायेताम्	जायन्ताम्
युध्यस्व	युध्येथाम्	युध्यध्वम्	म०	जायस्व	जायेथाम्	जायध्वम्
युध्यै	युध्यावहै	युध्यामहै	उ०	जायै	जायावहै	जायामहै

लङ्				लङ् (जन् को जा)		
अयुध्यत	अयुध्येताम्	अयुध्यन्त	प्र०	अजायत	अजायेताम्	अजायन्त
अयुध्यथाः	अयुध्येथाम्	अयुध्यध्वम्	म०	अजायथाः	अजायेथाम्	अजायध्वम्
अयुध्ये	अयुध्यावहि	अयुध्यामहि	उ०	अजाये	अजायावहि	अजायामहि

विधिलिङ्				विधिलिङ् (जन् को जा)		
युध्येत	युध्येयाताम्	युध्येरन्	प्र०	जायेत	जायेयाताम्	जायेरन्
युध्येथाः	युध्येयाथाम्	युध्येध्वम्	म०	जायेथाः	जायेयाथाम्	जायेध्वम्
युध्येय	युध्येवहि	युध्येमहि	उ०	जायेय	जायेवहि	जायेमहि

योत्स्यते	योत्स्येते	योत्स्यन्ते	लृट्	जनिष्यते	जनिष्येते	जनिष्यन्ते
योद्धा	योद्धारौ	योद्धारः	लुट्	जनिता	जनितारौ	जनितारः
युत्सीष्ट	युत्सीयास्ताम्०		आ०लिङ्	जनिषीष्ट	जनिषीयास्ताम्०	
अयोत्स्यत	अयोत्स्येताम्०		लृङ्	अजनिष्यत	अजनिष्येताम्०	

लिट्				लिट्		
युयुधे	युयुधाते	युयुधिरे	प्र०	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
युयुधिषे	युयुधाथे	युयुधिध्वे	म०	ज़ज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिध्वे
युयुधे	युयुधिवहे	युयुधिमहे	उ०	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे

लुङ् (४)				लुङ् (५)		
अयुद्ध	अयुत्साताम्	अयुत्सत	प्र०	{ अजनि / अजनिष्ट	अजनिषाताम्	अजनिषत
अयुद्धाः	अयुत्साथाम्	अयुद्ध्वम्	म०	अजनिष्ठाः	अजनिषाथाम्	अजनिध्वम्
अयुत्सि	अयुत्स्वहि	अयुत्स्महि	उ०	अजनिषि	अजनिष्वहि	अजनिष्महि

(५) स्वादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु सु (रस निकालना) है, अतः गण का नाम स्वादिगण पड़ा। (स्वादिभ्यः श्नुः) स्वादिगण की धातुओं में धातु और प्रत्यय के बीच में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में श्नु (नु) विकरण लगता है और धातु को गुण नहीं होता।

(२) (क) 'नु' को परस्मैपद में लट्, लोट् (म० पु० एक० को छोड़कर) और लङ् में एकवचन में गुण होता है। (ख) (लोपश्चान्यतरस्यां म्वोः) यदि कोई व्यंजन पहले न हो तो नु के उ का लोप विकल्प से होता है, बाद में व् या म् हो तो। अतः लट् आदि में उ० पु० द्विवचन और बहुवचन में दो रूप बनेंगे।

(३) इस गण में ३४ धातुएँ हैं।

(४) लट् आदि में धातु के अन्त में संक्षिप्तरूप निम्नलिखित लगेंगे। लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लृङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट संक्षिप्तरूप ही लगेंगे। लृट् आदि में सेट् धातुओं में संक्षिप्तरूप से पहले इ भी लगेगा, अनिट् में नहीं।

परस्मैपद (सं रूप) — **आत्मनेपद (सं रूप)**

लट् — **लट्**

नोति	नुतः	न्वन्ति, नुवन्ति	प्र०	नुते	नुवाते, न्वाते	नुवते, न्वते
नोषि	नुथः	नुथ	म०	नुषे	नुवाथे, न्वाथे	नुध्वे
नोमि	नुवः, न्वः	नुमः, न्मः	उ०	न्वे, नुवे	नुवहे, न्वहे,	नुमहे, न्महे

लोट् — **लोट्**

नोतु	नुताम्	न्वन्तु, नुवन्तु	प्र०	नुताम्	नुवाताम्, न्वाताम्	नुवताम्, न्वताम्
नु, नुहि	नुतम्	नुत	म०	नुष्व	नुवाथाम्, न्वाथाम्	नुध्वम्
नवानि	नवाव	नवाम	उ०	नवै	नवावहै	नवामहै

लङ् (धातु से पूर्व अ या आ) — **लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)**

नोत्	नुताम्	न्वन्, नुवन्	प्र०	नुत	नुवाताम्, न्वाताम्	नुवत, न्वत
नोः	नुतम्	नुत	म०	नुथाः	नुवाथाम्, न्वाथाम्	नुध्वम्
नवम्	नुव, न्व	नुम, न्म	उ०	नुवि, न्वि	नुवहि, न्वहि	नुमहि, न्महि

विधिलिङ् — **विधिलिङ्**

नुयात्	नुयाताम्	नुयुः	प्र०	न्वीत	न्वीयाताम्	न्वीरन्
नुयाः	नुयातम्	नुयात	म०	न्वीथाः	न्वीयाथाम्	न्वीध्वम्
नुयाम्	नुयाव	नुयाम	उ०	न्वीय	न्वीवहि	न्वीमहि

सूचना— जहाँ दो सं० रूप दिए हैं, उनमें से एक या दोनों रूप होना धातु पर निर्भर है।

स्वादिगण—परस्मैपदी धातुएँ

(६८) आप् (पाना) (दे० अ० ४४) **(६९) शक् (सकना) (दे०अ० ४४)**

	लट्				**लट्**	
आप्नोति	आप्नुतः	आप्नुवन्ति	प्र०	शक्नोति	शक्नुतः	शक्नुवन्ति
आप्नोषि	आप्नुथः	आप्नुथ	म०	शक्नोषि	शक्नुथः	शक्नुथ
आप्नोमि	आप्नुवः	आप्नुमः	उ०	शक्नोमि	शक्नुवः	शक्नुमः
	लोट्				**लोट्**	
आप्नोतु	आप्नुताम्	आप्नुवन्तु	प्र०	शक्नोतु	शक्नुताम्	शक्नुवन्तु
आप्नुहि	आप्नुतम्	आप्नुत	म०	शक्नुहि	शक्नुतम्	शक्नुत
आप्नवानि	आप्नवाम	आप्नवाम	उ०	शक्नवानि	शक्नवाव	शक्नवाम
	लङ्				**लङ्**	
आप्नोत्	आप्नुताम्	आप्नुवन्	प्र०	अशक्नोत्	अशक्नुताम्	अशक्नुवन्
आप्नोः	आप्नुतम्	आप्नुत	म०	अशक्नोः	अशक्नुतम्	अशक्नुत
आप्नवम्	आप्नुव	आप्नुम	उ०	अशक्नवम्	अशक्नुव	अशक्नुम
	विधिलिङ्				**विधिलिङ्**	
आप्नुयात्	आप्नुयाताम्	आप्नुयुः	प्र०	शक्नुयात्	शक्नुयाताम्	शक्नुयुः
आप्नुयाः	आप्नुयातम्	आप्नुयात	म०	शक्नुयाः	शक्नुयातम्	शक्नुयात
आप्नुयाम्	आप्नुयाव	आप्नुयाम	उ०	शक्नुयाम्	शक्नुयाव	शक्नुयाम
	—				—	
आप्स्यति	आप्स्यतः	आप्स्यन्ति	लृट्	शक्ष्यति	शक्ष्यतः	शक्ष्यन्ति
आप्ता	आप्तारौ	आप्तारः	लुट्	शक्ता	शक्तारौ	शक्तारः
आप्यात्	आप्यास्ताम्	आप्यासुः	आ० लिङ्	शक्यात्	शक्यास्ताम्	शक्यासुः
आप्स्यत्	आप्स्यताम्	आप्स्यन्	लृङ्	अशक्ष्यत्	अशक्ष्यताम्०	
	लिट्				**लिट्**	
आप	आपतुः	आपुः	प्र०	शशाक	शेकतुः	शेकुः
आपिथ	आपथुः	आप	म०	शेकिथ, शशक्थ	शेकथुः	शेक
आप	आपिव	आपिम	उ०	शशाक, शशक	शेकिव	शेकिम
	लुङ् (२)				**लुङ् (२)**	
आपत्	आपताम्	आपन्	प्र०	अशकत्	अशकताम्	अशकन्
आपः	आपतम्	आपत	म०	अशकः	अशकतम्	अशकत
आपम्	आपाव	आपाम	उ०	अशकम्	अशकाव	अशकाम

(७०) चि (इकट्ठा करना) (दे० अ० ४५)   (७१) अश् (व्याप्त होना) (दे० अ० ४५)

सूचना—उभय० है, केवल परस्मै० के रूप दिए हैं।

आत्मनेपदी

लट्

चिनोति	चिनुतः	चिन्वन्ति	प्र०	अश्नुते	अश्नुवाते	अश्नुवते
चिनोषि	चिनुथः	चिनुथ	म०	अश्नुषे	अश्नुवाथे	अश्नुध्वे
चिनोमि	चिनुवः, न्वः	चिनुमः, न्मः	उ०	अश्नुवे	अश्नुवहे	अश्नुमहे

लोट्

चिनोतु	चिनुताम्	चिन्वन्तु	प्र०	अश्नुताम्	अश्नुवाताम्	अश्नुवताम्
चिनु	चिनुतम्	चिनुत	म०	अश्नुष्व	अश्नुवाथाम्	अश्नुध्वम्
चिनवानि	चिनवाव	चिनवाम	उ०	अश्नवै	अश्नवावहै	अश्नवामहै

लङ्

अचिनोत्	अचिनुताम्	अचिन्वन्	प्र०	आश्नुत	आश्नुवाताम्	आश्नुवत
अचिनोः	अचिनुतम्	अचिनुत	म०	आश्नुथाः	आश्नुवाथाम्	आश्नुध्वम्
अचिनवम्	अचिनुव	अचिनुम	उ०	आश्नुवि	आश्नुवहि	आश्नुमहि

विधिलिङ्

चिनुयात्	चिनुयाताम्	चिनुयुः	प्र०	अश्नुवीत	अश्नुवीयाताम्	अश्नुवीरन्
चिनुयाः	चिनुयातम्	चिनुयात	म०	अश्नुवीथाः	अश्नुवीयाथाम्	अश्नुवीध्वम्
चिनुयाम्	चिनुयाव	चिनुयाम	उ०	अश्नुवीय	अश्नुवीवहि	अश्नुवीमहि

चेष्यति	चेष्यतः	चेष्यन्ति	लृट्	अशिष्यते,	अक्ष्यते	(दोनों प्रकार से)
चेता	चेतारौ	चेतारः	लुट्	अशिता,	अष्टा	(,,)
चीयात्	चीयास्ताम्	चीयासुः	*आ०लिङ्*	अशिषीष्ट,	अक्षीष्ट	(,,)
अचेष्यत्	अचेष्यताम्	अचेष्यन्	लृङ्	आशिष्यत,	आक्ष्यत	(,,)

लिट् (क)   **लिट्**

चिचाय	चिच्यतुः	चिच्युः	प्र०	आनशे	आनशाते	आनशिरे
चिचयिथ, चिचेथ	चिच्यथुः	चिच्य	म०	आनशिषे	आनशाथे	आनशिध्वे
चिचाय, चिचय	चिच्यिव	चिच्यिम	उ०	आनशे	आनशिवहे	आनशिमहे

(ख) चिकाय चिक्यतुः० आदि

लुङ् (४)   **लुङ् (क) (५)**

अचैषीत्	अचैष्टाम्	अचैषुः	प्र०	आशिष्ट	आशिषाताम्	आशिषत
अचैषीः	अचैष्टम्	अचैष्ट	म०	आशिष्ठाः	आशिषाथाम्	आशिध्वम्
अचैषम्	अचैष्व	अचैष्म	उ०	आशिषि	आशिष्वहि	आशिष्महि

सूचना—आत्मने० में सु (७२) आ० के तुल्य। (ख) आष्ट आक्षाताम् इत्यादि।

उभयपदी धातु

(७२) सु (रस निकालना) (दे० अ० ४६)

परस्मैपद-लट्				आत्मनेपद-लट्		
सुनोति	सुनुतः	सुन्वन्ति	प्र०	सुनुते	सुन्वाते	सुन्वते
सुनोषि	सुनुथः	सुनुथ	म०	सुनुषे	सुन्वाथे	सुनुध्वे
सुनोमि	सुनुवः	सुनुमः	उ०	सुन्वे	सुनुवहे	सुनुमहे

लोट्				लोट्		
सुनोतु	सुनुताम्	सुन्वन्तु	प्र०	सुनुताम्	सुन्वाताम्	सुन्वताम्
सुनु	सुनुतम्	सुनुत	म०	सुनुष्व	सुन्वाथाम्	सुनुध्वम्
सुनवानि	सुनवाव	सुनवाम	उ०	सुनवै	सुनवावहै	सुनवामहै

लङ्				लङ्		
असुनोत्	असुनुताम्	असुन्वन्	प्र०	असुनुत	असुन्वाताम्	असुन्वत
असुनोः	असुनुतम्	असुनुत	म०	असुनुथाः	असुन्वाथाम्	असुनुध्वम्
असुनवम्	असुनुव	असुनुम	उ०	असुन्वि	असुनुवहि	असुनुमहि

विधिलिङ्				विधिलिङ्		
सुनुयात्	सुनुयाताम्	सुनुयुः	प्र०	सुन्वीत	सुन्वीयाताम्	सुन्वीरन्
सुनुयाः	सुनुयातम्	सुनुयात	म०	सुन्वीथाः	सुन्वीयाथाम्	सुन्वीध्वम्
सुनुयाम्	सुनुयाव	सुनुयाम	उ०	सुन्वीय	सुन्वीवहि	सुन्वीमहि

सोष्यति	सोष्यतः	सोष्यन्ति	लृट्	सोष्यते	सोष्येते	सोष्यन्ते
सोता	सोतारौ	सोतारः	लुट्	सोता	सोतारौ	सोतारः
सूयात्	सूयास्ताम्	सूयासुः	आ० लिङ्	सोषीष्ट	सोषीयास्ताम्०	
असोष्यत्	असोष्यताम्०		लृङ्	असोष्यत	असोष्येताम्०	

लिट्				लिट्		
सुषाव	सुषुवतुः	सुषुवुः	प्र०	सुषुवे	सुषुवाते	सुषुविरे
सुषुविथ, सुषोथ	सुषुवथुः	सुषुव	म०	सुषुविषे	सुषुवाथे	सुषुविध्वे
सुषाव, सुषव	सुषुविव	सुषुविम	उ०	सुषुवे	सुषुविवहे	सुषुविमहे

लुङ् (५)				लुङ् (४)		
असावीत्	असाविष्टाम्	असाविषुः	प्र०	असोष्ट	असोषाताम्	असोषत
असावीः	असाविष्टम्	असाविष्ट	म०	असोष्ठाः	असोषाथाम्	असोढ्वम्
असाविषम्	असाविष्व	असाविष्म	उ०	असोषि	असोष्वहि	असोष्महि

(६) तुदादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु तुद् (दुःख देना) है, अतः गण का नाम तुदादिगण पड़ा। (तुदादिभ्यः शः) तुदादिगण की धातुओं में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में श (अ) विकरण लगता है। भ्वादिगण में भी 'अ' विकरण लगता है। अन्तर यह है कि भ्वादिगण में लट् आदि में धातु को गुण होता है, परन्तु तुदादि० में धातु को गुण नहीं होगा।

(२) (क) लट् आदि में धातु के अन्तिम इ और ई को इय् होगा, उ और ऊ को उव्, ऋ को रिय् और ॠ को ईर् होगा। जैसा—रि > रियति, सू > सुवति, मृ > म्रियते, गॄ > गिरति।

(ख) (शे मुचादीनाम्) मुच् आदि धातुओं में बीच में न् लग जाता है। मुच् > मुञ्चति, विद् > विन्दति, लिप् > लिम्पति, सिच् > सिञ्चति, कृत् > कृन्तति।

(३) इस गण में १५७ धातुएँ हैं।

(४) लट् आदि में संक्षिप्तरूप निम्नलिखित लगेंगे। परस्मैपद में भू के तुल्य और आत्मनेपद में सेव् के तुल्य रूप चलावें। लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लृङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट सं० रूप ही लगेंगे। सेट् में लृट् आदि में सं० रूप से पहले इ भी लगेगा।

परस्मैपद (सं० रूप)				आत्मनेपद (सं० रूप)		
	लट्				लट्	
अति	अतः	अन्ति	प्र०	अते	एते	अन्ते
असि	अथः	अथ	म०	असे	एथे	अध्वे
आमि	आवः	आमः	उ०	ए	आवहे	आमहे
	लोट्				लोट्	
अतु	अताम्	अन्तु	प्र०	अताम्	एताम्	अन्ताम्
अ	अतम्	अत	म०	अस्व	एथाम्	अध्वम्
आनि	आव	आम	उ०	ऐ	आवहै	आमहै
लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)		
अत्	अताम्	अन्	प्र०	अत	एताम्	अन्त
अः	अतम्	अत	म०	अथाः	एथाम्	अध्वम्
अम्	आव	आम	उ०	ए	आवहि	आमहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
एत्	एताम्	एयुः	प्र०	एत	एयाताम्	एरन्
एः	एतम्	एत	म०	एथाः	एयाथाम्	एध्वम्
एयम्	एव	एम	उ०	एय	एवहि	एमहि

परस्मैपदी धातुएँ

(७३) इष् (चाहना) (दे० अ० ४७) **(७४) प्रच्छ् (पूछना) (दे० अ० ४७)**

सूचना—लट् आदि में इष् को इच्छ् होगा। *सूचना*—लट् आदि में प्रच्छ् को पृच्छ्।

	लट्				**लट्**	
इच्छति	इच्छतः	इच्छन्ति	*प्र०*	पृच्छति	पृच्छतः	पृच्छन्ति
इच्छसि	इच्छथः	इच्छथ	*म०*	पृच्छसि	पृच्छथः	पृच्छथ
इच्छामि	इच्छावः	इच्छामः	*उ०*	पृच्छामि	पृच्छावः	पृच्छामः
	लोट्				**लोट्**	
इच्छतु	इच्छताम्	इच्छन्तु	*प्र०*	पृच्छतु	पृच्छताम्	पृच्छन्तु
इच्छ	इच्छतम्	इच्छत	*म०*	पृच्छ	पृच्छतम्	पृच्छत
इच्छानि	इच्छाव	इच्छाम	*उ०*	पृच्छानि	पृच्छाव	पृच्छाम
	लङ्				**लङ्**	
ऐच्छत्	ऐच्छताम्	ऐच्छन्	*प्र०*	अपृच्छत्	अपृच्छताम्	अपृच्छन्
ऐच्छः	ऐच्छतम्	ऐच्छत	*म०*	अपृच्छः	अपृच्छतम्	अपृच्छत
ऐच्छम्	ऐच्छाव	ऐच्छाम	*उ०*	अपृच्छम्	अपृच्छाव	अपृच्छाम
	विधिलिङ्				**विधिलिङ**	
इच्छेत्	इच्छेताम्	इच्छेयुः	*प्र०*	पृच्छेत्	पृच्छेताम्	पृच्छेयुः
इच्छेः	इच्छेतम्	इच्छेत	*म०*	पृच्छेः	पृच्छेतम्	पृच्छेत
इच्छेयम्	इच्छेव	इच्छेम	*उ०*	पृच्छेयम्	पृच्छेव	पृच्छेम
	—				—	
एषिष्यति	एषिष्यतः	एषिष्यन्ति	*लृट्*	प्रक्ष्यति	प्रक्ष्यतः	प्रक्ष्यन्ति
एषिता, एष्टा (दोनों प्रकार से)			*लुट्*	प्रष्टा	प्रष्टारौ	प्रष्टारः
इष्यात्	इष्यास्ताम्	इष्यासुः	*आ०लिङ्*	पृच्छ्यात्	पृच्छ्यास्ताम्०	
ऐषिष्यत्	ऐषिष्यताम्	ऐषिष्यन्	*लृङ्*	अप्रक्ष्यत्	अप्रक्ष्यताम्०	
	लिट्				**लिट्**	
इयेष	ईषतुः	ईषुः	*प्र०*	पप्रच्छ	पप्रच्छतुः	पप्रच्छुः
इयेषिथ	ईषथुः	ईष	*म०*	पप्रच्छिथ, पप्रष्ठ	पप्रच्छथुः	पप्रच्छ
इयेष	ईषिव	ईषिम	*उ०*	पप्रच्छ	पप्रच्छिव	पप्रच्छिम
	लुङ् (५)				**लुङ् (४)**	
ऐषीत्	ऐषिष्टाम्	ऐषिषुः	*प्र०*	अप्राक्षीत्	अप्राष्टाम्	अप्राक्षुः
ऐषीः	ऐषिष्टम्	ऐषिष्ट	*म०*	अप्राक्षीः	अप्राष्टम्	अप्राष्ट
ऐषिषम्	ऐषिष्व	ऐषिष्म	*उ०*	अप्राक्षम्	अप्राक्ष्व	अप्राक्ष्म

(७५) लिख् (लिखना) (दे० अ० ४८) (७६) स्पृश् (छूना) (दे० अ० ४८)

लट्				लट्		
लिखति	लिखतः	लिखन्ति	प्र०	स्पृशति	स्पृशतः	स्पृशन्ति
लिखसि	लिखथः	लिखथ	म०	स्पृशसि	स्पृशथः	स्पृशथ
लिखामि	लिखावः	लिखामः	उ०	स्पृशामि	स्पृशावः	स्पृशामः

लोट्				लोट्		
लिखतु	लिखताम्	लिखन्तु	प्र०	स्पृशतु	स्पृशताम्	स्पृशन्तु
लिख	लिखतम्	लिखत	म०	स्पृश	स्पृशतम्	स्पृशत
लिखानि	लिखाव	लिखाम	उ०	स्पृशानि	स्पृशाव	स्पृशाम

लङ्				लङ्		
अलिखत्	अलिखताम्	अलिखन्	प्र०	अस्पृशत्	अस्पृशताम्	अस्पृशन्
अलिखः	अलिखतम्	अलिखत	म०	अस्पृशः	अस्पृशतम्	अस्पृशत
अलिखम्	अलिखाव	अलिखाम	उ०	अस्पृशम्	अस्पृशाव	अस्पृशाम

विधिलिङ्				विधिलिङ्		
लिखेत्	लिखेताम्	लिखेयुः	प्र०	स्पृशेत्	स्पृशेताम्	स्पृशेयुः
लिखेः	लिखेतम्	लिखेत	म०	स्पृशेः	स्पृशेतम्	स्पृशेत
लिखेयम्	लिखेव	लिखेम	उ०	स्पृशेयम्	स्पृशेव	स्पृशेम

लेखिष्यति	लेखिष्यतः	लेखिष्यन्ति	लृट्	स्पर्क्ष्यति,	स्प्रक्ष्यति (दोनों प्रकार से)
लेखिता	लेखितारौ	लेखितारः	लुट्	स्पर्ष्टा,	स्प्रष्टा ,,
लिख्यात्	लिख्यास्ताम्	लिख्यासुः	आ० लिङ्	स्पृश्यात्	स्पृश्यास्ताम्०
अलेखिष्यत्	अलेखिष्यताम्०		लृङ्	अस्पर्क्ष्यत्,	अस्प्रक्ष्यत् (दोनों प्रकार से)

लिट्				लिट्		
लिलेख	लिलिखतुः	लिलिखुः	प्र०	पस्पर्श	पस्पृशतुः	पस्पृशुः
लिलेखिथ	लिलिखथुः	लिलिख	म०	पस्पर्शिथ	पस्पृशथुः	पस्पृश
लिलेख	लिलिखिव	लिलिखिम	उ०	पस्पर्श	पस्पृशिव	पस्पृशिम

लुङ् (५)				लुङ् (क) (४)		
अलेखीत्	अलेखिष्टाम्	अलेखिषुः	प्र०	अस्पार्क्षीत्	अस्पार्ष्टाम्	अस्पार्क्षुः
अलेखीः	अलेखिष्टम्	अलेखिष्ट	म०	अस्पार्क्षीः	अस्पार्ष्टम्	अस्पार्ष्ट
अलेखिषम्	अलेखिष्व	अलेखिष्म	उ०	अस्पार्क्षम्	अस्पार्क्ष्व	अस्पार्क्ष्म
			लुङ् (ख) (४)	अस्प्राक्षीत्	अस्प्राष्टाम्० (पूर्ववत्)	
			लुङ् (ग) (७)	अस्पृक्षत्	अस्पृक्षताम्	अस्पृक्षन्
				अस्पृक्षः	अस्पृक्षतम्	अस्पृक्षत
				अस्पृक्षम्	अस्पृक्षाव	अस्पृक्षाम

(७७) कॄ (फैलाना) (दे० अ० ४९) (७८) गॄ (निगलना) (दे० अ० ४९)

	लट्				लट्	
किरति	किरतः	किरन्ति	प्र०	गिरति	गिरतः	गिरन्ति
किरसि	किरथः	किरथ	म०	गिरसि	गिरथः	गिरथ
किरामि	किरावः	किरामः	उ०	गिरामि	गिरावः	गिरामः
	लोट्				लोट्	
किरतु	किरताम्	किरन्तु	प्र०	गिरतु	गिरताम्	गिरन्तु
किर	किरतम्	किरत	म०	गिर	गिरतम्	गिरत
किराणि	किराव	किराम	उ०	गिराणि	गिराव	गिराम
	लङ्				लङ्	
अकिरत्	अकिरताम्	अकिरन्	प्र०	अगिरत्	अगिरताम्	अगिरन्
अकिरः	अकिरतम्	अकिरत	म०	अगिरः	अगिरतम्	अगिरत
अकिरम्	अकिराव	अकिराम	उ०	अगिरम्	अगिराव	अगिराम
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
किरेत्	किरेताम्	किरेयुः	प्र०	गिरेत्	गिरेताम्	गिरेयुः
किरेः	किरेतम्	किरेत	म०	गिरेः	गिरेतम्	गिरेत
किरेयम्	किरेव	किरेम	उ०	गिरेयम्	गिरेव	गिरेम

—

करिष्यति, करीष्यति (दोनों प्रकार से) लृट् गरिष्यति, गरीष्यति (दोनों प्रकार से)
करिता, करीता (,,) लुट् गरिता, गरीता (,,)
कीर्यात् कीर्यास्ताम् कीर्यासुः आ० लिङ् गीर्यात् गीर्यास्ताम् गीर्यासुः
अकरिष्यत्, अकरीष्यत् (दोनों प्रकार से) लृङ् अगरिष्यत्, अगरीष्यत् (दोनों प्रकार से)

	लिट्				लिट्	
चकार	चकरतुः	चकरुः	प्र०	जगार	जगरतुः	जगरुः
चकरिथ	चकरथुः	चकर	म०	जगरिथ	जगरथुः	जगर
चकार, चकर	चकरिव	चकरिम	उ०	जगार, जगर	जगरिव	जगरिम
	लुङ् (५)				लुङ् (५)	
अकारीत्	अकारिष्टाम्	अकारिषुः	प्र०	अगारीत्	अगारिष्टाम्	अगारिषुः
अकारीः	अकारिष्टम्	अकारिष्ट	म०	अगारीः	अगारिष्टम्	अगारिष्ट
अकारिषम्	अकारिष्व	अकारिष्म	उ०	अगारिषम्	अगारिष्व	अगारिष्म

सूचना—(अचि विभाषा) गॄ धातु के र् को ल् होता है, स्वर बाद में हो तो। अतः आशीर्लिङ् को छोड़कर सर्वत्र र के स्थान पर ल वाले भी रूप बनेंगे। जैसे—गिलति, गिलतु, अगिलत्, गिलेत्, गलिष्यति, गलिता, अगलिष्यत्, जगाल, अगालीत्।

(७९) क्षिप् (फेंकना) (दे० अ० ५०)

सूचना—धातु उभयपदी है। यहाँ परस्मैपद के ही रूप दिये हैं। आत्मनेपद में तुद् (८१) के तुल्य।

(८०) मृ (मरना) (दे० अ० ५०)

सूचना—यह लृट्, लुट्, लृङ् और लिट् में परस्मै० है, अन्यत्र आत्मनेपदी।

	लट्				**लट्**	
क्षिपति	क्षिपतः	क्षिपन्ति	प्र०	म्रियते	म्रियेते	म्रियन्ते
क्षिपसि	क्षिपथः	क्षिपथ	म०	म्रियसे	म्रियेथे	म्रियध्वे
क्षिपामि	क्षिपावः	क्षिपामः	उ०	म्रिये	म्रियावहे	म्रियामहे
	लोट्				**लोट्**	
क्षिपतु	क्षिपताम्	क्षिपन्तु	प्र०	म्रियताम्	म्रियेताम्	म्रियन्ताम्
क्षिप	क्षिपतम्	क्षिपत	म०	म्रियस्व	म्रियेथाम्	म्रियध्वम्
क्षिपाणि	क्षिपाव	क्षिपाम	उ०	म्रियै	म्रियावहै	म्रियामहै
	लङ्				**लङ्**	
अक्षिपत्	अक्षिपताम्	अक्षिपन्	प्र०	अम्रियत	अम्रियेताम्	अम्रियन्त
अक्षिपः	अक्षिपतम्	अक्षिपत	म०	अम्रियथाः	अम्रियेथाम्	अम्रियध्वम्
अक्षिपम्	अक्षिपाव	अक्षिपाम	उ०	अम्रिये	अम्रियावहि	अम्रियामहि
	विधिलिङ्				**विधिलिङ्**	
क्षिपेत्	क्षिपेताम्	क्षिपेयुः	प्र०	म्रियेत	म्रियेयाताम्	म्रियेरन्
क्षिपेः	क्षिपेतम्	क्षिपेत	म०	म्रियेथाः	म्रियेयाथाम्	म्रियेध्वम्
क्षिपेयम्	क्षिपेव	क्षिपेम	उ०	म्रियेय	म्रियेवहि	म्रियेमहि
	—				—	
क्षेप्स्यति	क्षेप्स्यतः	क्षेप्स्यन्ति	लृट्	मरिष्यति	मरिष्यतः	मरिष्यन्ति
क्षेप्ता	क्षेप्तारौ	क्षेप्तारः	लुट्	मर्ता	मर्तारौ	मर्तारः
क्षिप्यात्	क्षिप्यास्ताम्	क्षिप्यासुः	*आ० लिङ्*	मृषीष्ट	मृषीयास्ताम्	०
अक्षेप्स्यत्	अक्षेप्स्यताम्	अक्षेप्स्यन्	लृङ्	अमरिष्यत्	अमरिष्यताम्	०
	लिट्				**लिट्**	
चिक्षेप	चिक्षिपतुः	चिक्षिपुः	प्र०	ममार	मम्रतुः	मम्रुः
चिक्षेपिथ	चिक्षिपथुः	चिक्षिप	म०	ममर्थ	मम्रथुः	मम्र
चिक्षेप	चिक्षिपिव	चिक्षिपिम	उ०	ममार, ममर	मम्रिव	मम्रिम
	लुङ् (४)				**लुङ् (४)**	
अक्षैप्सीत्	अक्षैप्ताम्	अक्षैप्सुः	प्र०	अमृत	अमृषाताम्	अमृषत
अक्षैप्सीः	अक्षैप्तम्	अक्षैप्त	म०	अमृथाः	अमृषाथाम्	अमृढ्वम्
अक्षैप्सम्	अक्षैप्स्व	अक्षैप्स्म	उ०	अमृषि	अमृष्वहि	अमृष्महि

तुदादिगण, उभयपदी धातुएँ

(८१) तुद् (दुःख देना) (दे०अ० ५१)

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
तुदति	तुदतः	तुदन्ति	प्र०	तुदते	तुदेते	तुदन्ते
तुदसि	तुदथः	तुदथ	म०	तुदसे	तुदेथे	तुदध्वे
तुदामि	तुदावः	तुदामः	उ०	तुदे	तुदावहे	तुदामहे
	लोट्				लोट्	
तुदतु	तुदताम्	तुदन्तु	प्र०	तुदताम्	तुदेताम्	तुदन्ताम्
तुद	तुदतम्	तुदत	म०	तुदस्व	तुदेथाम्	तुदध्वम्
तुदानि	तुदाव	तुदाम	उ०	तुदै	तुदावहै	तुदामहै
	लङ्				लङ्	
अतुदत्	अतुदताम्	अतुदन्	प्र०	अतुदत	अतुदेताम्	अतुदन्त
अतुदः	अतुदतम्	अतुदत	म०	अतुदथाः	अतुदेथाम्	अतुदध्वम्
अतुदम्	अतुदाव	अतुदाम	उ०	अतुदे	अतुदावहि	अतुदामहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
तुदेत्	तुदेताम्	तुदेयुः	प्र०	तुदेत	तुदेयाताम्	तुदेरन्
तुदेः	तुदेतम्	तुदेत	म०	तुदेथाः	तुदेयाथाम्	तुदेध्वम्
तुदेयम्	तुदेव	तुदेम	उ०	तुदेय	तुदेवहि	तुदेमहि
	—				—	
तोत्स्यति	तोत्स्यतः	तोत्स्यन्ति	लृट्	तोत्स्यते	तोत्स्येते	तोत्स्यन्ते
तोत्ता	तोत्तारौ	तोत्तारः	लुट्	तोत्ता	तोत्तारौ	तोत्तारः
तुद्यात्	तुद्यास्ताम्	तुद्यासुः	आ० लिङ्	तुत्सीष्ट	तुत्सीयास्ताम्	०
अतोत्स्यत्	अतोत्स्यताम्	०	लृङ्	अतोत्स्यत	अतोत्स्येताम्	०
	लिट्				लिट्	
तुतोद	तुतुदतुः	तुतुदुः	प्र०	तुतुदे	तुतुदाते	तुतुदिरे
तुतोदिथ	तुतुदथुः	तुतुद	म०	तुतुदिषे	तुतुदाथे	तुतुदिध्वे
तुतोद	तुतुदिव	तुतुदिम	उ०	तुतुदे	तुतुदिवहे	तुतुदिमहे
	लुङ् (४)				लुङ् (४)	
अतौत्सीत्	अतौत्ताम्	अतौत्सुः	प्र०	अतुत्त	अतुत्साताम्	अतुत्सत
अतौत्सीः	अतौत्तम्	अतौत्त	म०	अतुत्थाः	अतुत्साथाम्	अतुद्ध्वम्
अतौत्सम्	अतौत्स्व	अतौत्स्म	उ०	अतुत्सि	अतुत्स्वहि	अतुत्स्महि

(८२) मुच् (छोड़ना) (दे० अ० ५१)

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
मुञ्चति	मुञ्चतः	मुञ्चन्ति	प्र०	मुञ्चते	मुञ्चेते	मुञ्चन्ते
मुञ्चसि	मुञ्चथः	मुञ्चथ	म०	मुञ्चसे	मुञ्चेथे	मुञ्चध्वे
मुञ्चामि	मुञ्चावः	मुञ्चामः	उ०	मुञ्चे	मुञ्चावहे	मुञ्चामहे
लोट्				लोट्		
मुञ्चतु	मुञ्चताम्	मुञ्चन्तु	प्र०	मुञ्चताम्	मुञ्चेताम्	मुञ्चन्ताम्
मुञ्च	मुञ्चतम्	मुञ्चत	म०	मुञ्चस्व	मुञ्चेथाम्	मुञ्चध्वम्
मुञ्चानि	मुञ्चाव	मुञ्चाम	उ०	मुञ्चै	मुञ्चावहै	मुञ्चामहै
लङ्				लङ्		
अमुञ्चत्	अमुञ्चताम्	अमुञ्चन्	प्र०	अमुञ्चत	अमुञ्चेताम्	अमुञ्चन्त
अमुञ्चः	अमुञ्चतम्	अमुञ्चत	म०	अमुञ्चथाः	अमुञ्चेथाम्	अमुञ्चध्वम्
अमुञ्चम्	अमुञ्चाव	अमुञ्चाम	उ०	अमुञ्चे	अमुञ्चावहि	अमुञ्चामहि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
मुञ्चेत्	मुञ्चेताम्	मुञ्चेयुः	प्र०	मुञ्चेत	मुञ्चेयाताम्	मुञ्चेरन्
मुञ्चेः	मुञ्चेतम्	मुञ्चेत	म०	मुञ्चेथाः	मुञ्चेयाथाम्	मुञ्चेध्वम्
मुञ्चेयम्	मुञ्चेव	मुञ्चेम	उ०	मुञ्चेय	मुञ्चेवहि	मुञ्चेमहि
—				—		
मोक्ष्यति	मोक्ष्यतः	मोक्ष्यन्ति	लृट्	मोक्ष्यते	मोक्ष्येते	मोक्ष्यन्ते
मोक्ता	मोक्तारौ	मोक्तारः	लुट्	मोक्ता	मोक्तारौ	मोक्तारः
मुच्यात्	मुच्यास्ताम्	मुच्यासुः	*आ० लिङ्*	मुक्षीष्ट	मुक्षीयास्ताम्०	
अमोक्ष्यत्	अमोक्ष्यताम्	अमोक्ष्यन्	लृङ्	अमोक्ष्यत	अमोक्ष्येताम्०	
लिट्				लिट्		
मुमोच	मुमुचतुः	मुमुचुः	प्र०	मुमुचे	मुमुचाते	मुमुचिरे
मुमोचिथ	मुमुचथुः	मुमुच	म०	मुमुचिषे	मुमुचाथे	मुमुचिध्वे
मुमोच	मुमुचिव	मुमुचिम	उ०	मुमुचे	मुमुचिवहे	मुमुचिमहे
लुङ् (२)				लुङ् (४)		
अमुचत्	अमुचताम्	अमुचन्	प्र०	अमुक्त	अमुक्षाताम्	अमुक्षत
अमुचः	अमुचतम्	अमुचत	म०	अमुक्थाः	अमुक्षाताम्	अमुग्ध्वम्
अमुचम्	अमुचाव	अमुचाम	उ०	अमुक्षि	अमुक्ष्वहि	अमुक्ष्महि

(७) रुधादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु रुध् (रोकना) है, अतः गण का नाम रुधादिगण पड़ा। (रुधादिभ्यः श्नम्) रुधादिगण की धातुओं में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में धातु के प्रथम स्वर के बाद श्नम् (न) विकरण लगाता है। वह कभी न् हो जाता है। लट् आदि में धातु को गुण नहीं होता।

(२) (क) सन्धि-नियमों के अनुसार यथास्थान धातु के ध् को द् या त्, द् को त्, ज् को क् या ग् होते हैं। (ख) विकरण के न को परस्मैपद के लट्, लोट् (म० १ को छोड़कर) और लङ् के एकवचन में प्रायः न रहेगा, अन्यत्र न् होगा। (ग) विकरण के न् को सन्धि-नियमानुसार ङ् और ञ् भी होता है। 'न' का विशेष विवरण सं० रूप से समझें।

(३) इस गण में २५ धातुएँ हैं।

(४) लट् आदि में संक्षिप्तरूप निम्नलिखित लगेंगे। न या न् धातु के प्रथम स्वर के बाद लगावें। लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लृङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट संक्षिप्तरूप ही लगेंगे। सेट् में लृट् आदि में सं० रूप से पहले इ भी लगेगा, अनिट् के नहीं।

परस्मैपद (सं० रूप)				आत्मनेपद (सं० रूप)		
लट्				**लट्**		
(न) ति	(न्) तः	(न्) अन्ति	प्र०	(न्) ते	(न्) आते	(न्) अते
(न) सि	(न्) थः	(न्) थ	म०	(न्) से	(न्) आथे	(न्) ध्वे
(न) मि	(न्) वः	(न्) मः	उ०	(न्) ए	(न्) वहे	(न्) महे
लोट्				**लोट्**		
(न) तु	(न्) ताम्	(न्) अन्तु	प्र०	(न्) ताम्	(न्) आताम्	(न्) अताम्
(न्) हि	(न्) तम्	(न्) त	म०	(न्) स्व	(न्) आथाम्	(न्) ध्वम्
(न) आनि	(न) आव	(न) आम	उ०	(न) ऐ	(न) आवहै	(न) आमहै
लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				**लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)**		
(न) त्	(न्) ताम्	(न्) अन्	प्र०	(न्) त	(न्) आताम्	(न्) अत
(न) :	(न्) तम्	(न्) त	म०	(न्) थाः	(न्) आथाम्	(न्) ध्वम्
(न) अम्	(न्) व	(न्) म	उ०	(न्) इ	(न्) वहि	(न्) महि
विधिलिङ्				**विधिलिङ्**		
(न्) यात्	(न्) याताम्	(न्) युः	प्र०	(न्) ईत	(न्) ईयाताम्	(न्) ईरन्
(न्) याः	(न्) यातम्	(न्) यात	म०	(न्) ईथाः	(न्) ईयाथाम्	(न्) ईध्वम्
(न्) याम्	(न्) याव	(न्) याम	उ०	(न्) ईय	(न्) ईवहि	(न्) ईमहि

(८३) छिद् (काटना) (दे० अ० ५२) **(८४) भिद् (तोड़ना) (दे०अ० ५२)**

सूचना—केवल परस्मै० के रूप दिए हैं। सूचना—केवल परस्मै० के रूप दिए हैं।

	लट्				**लट्**	
छिनत्ति	छिन्तः	छिन्दन्ति	*प्र०*	भिनत्ति	भिन्तः	भिन्दन्ति
छिनत्सि	छिन्त्थः	छिन्त्थ	*म०*	भिनत्सि	भिन्त्थः	भिन्त्थ
छिनद्मि	छिन्द्वः	छिन्द्मः	*उ०*	भिनद्मि	भिन्द्वः	भिन्द्मः
	लोट्				**लोट्**	
छिनत्तु	छिन्ताम्	छिन्दन्तु	*प्र०*	भिनत्तु	भिन्ताम्	भिन्दन्तु
छिन्धि	छिन्तम्	छिन्त	*म०*	भिन्धि	भिन्तम्	भिन्त
छिनदानि	छिनदाव	छिनदाम	*उ०*	भिनदानि	भिनदाव	भिनदाम
	लङ्				**लङ्**	
अच्छिनत्	अच्छिन्ताम्	अच्छिन्दन्	*प्र०*	अभिनत्	अभिन्ताम्	अभिन्दन्
अच्छिनः	अच्छिन्तम्	अच्छिन्त	*म०*	अभिनः	अभिन्तम्	अभिन्त
अच्छिनदम्	अच्छिन्द्व	अच्छिन्द्म	*उ०*	अभिनदम्	अभिन्द्व	अभिन्द्म
	विधिलिङ्				**विधिलिङ्**	
छिन्द्यात्	छिन्द्याताम्	छिन्द्युः	*प्र०*	भिन्द्यात्	भिन्द्याताम्	भिन्द्युः
छिन्द्याः	छिन्द्यातम्	छिन्द्यात	*म०*	भिन्द्याः	भिन्द्यातम्	भिन्द्यात
छिन्द्याम्	छिन्द्याव	छिन्द्याम	*उ०*	भिन्द्याम्	भिन्द्याव	भिन्द्याम
	—				—	
छेत्स्यति	छेत्स्यतः	छेत्स्यन्ति	लृट्	भेत्स्यति	भेत्स्यतः	भेत्स्यन्ति
छेत्ता	छेत्तारौ	छेत्तारः	लुट्	भेत्ता	भेत्तारौ	भेत्तारः
छिद्यात्	छिद्यास्ताम्	छिद्यासुः	*आ० लिङ्*	भिद्यात्	भिद्यास्ताम्	भिद्यासुः
अच्छेत्स्यत्	अच्छेत्स्यताम्	०	लृङ्	अभेत्स्यत्	अभेत्स्यताम्	०
	लिट्				**लिट्**	
चिच्छेद	चिच्छिदतुः	चिच्छिदुः	*प्र०*	बिभेद	बिभिदतुः	बिभिदुः
चिच्छेदिथ	चिच्छिदथुः	चिच्छिद	*म०*	बिभेदिथ	बिभिदथुः	बिभिद
चिच्छेद	चिच्छिदिव	चिच्छिदिम	*उ०*	बिभेद	बिभिदिव	बिभिदिम
	लुङ् (क) (४)				**लुङ् (क) (४)**	
अच्छैत्सीत्	अच्छैत्ताम्	अच्छैत्सुः	*प्र०*	अभैत्सीत्	अभैत्ताम्	अभैत्सुः
अच्छैत्सीः	अच्छैत्तम्	अच्छैत्त	*म०*	अभैत्सीः	अभैत्तम्	अभैत्त
अच्छैत्सम्	अच्छैत्स्व	अच्छैत्स्म	*उ०*	अभैत्सम्	अभैत्स्व	अभैत्स्म

(ख) (२) अच्छिदत् अच्छिदताम् आदि। (ख) (२) अभिदत् अभिदताम् आदि।

(७७) हिंस् (हिंसा करना) (दे० अ० ५३) (८६) भञ्ज् (तोड़ना) (दे० अ० ५३)

परस्मैपदी				परस्मैपदी		
	लट्				**लट्**	
हिनस्ति	हिंस्तः	हिंसन्ति	प्र०	भनक्ति	भङ्क्तः	भञ्जन्ति
हिनस्सि	हिंस्थः	हिंस्थ	म०	भनक्षि	भङ्क्थः	भङ्क्थ
हिनस्मि	हिंस्वः	हिंस्मः	उ०	भनज्मि	भञ्ज्वः	भञ्ज्मः
	लोट्				**लोट्**	
हिनस्तु	हिंस्ताम्	हिंसन्तु	प्र०	भनक्तु	भङ्क्ताम्	भञ्जन्तु
हिन्धि	हिंस्तम्	हिंस्त	म०	भङ्ग्धि	भङ्क्तम्	भङ्क्त
हिनसानि	हिनसाव	हिनसाम	उ०	भनजानि	भनजाव	भनजाम
	लङ्				**लङ्**	
अहिनत्	अहिंस्ताम्	अहिंसन्	प्र०	अभनक्	अभङ्क्ताम्	अभञ्जन्
अहिनः	अहिंस्तम्	अहिंस्त	म०	अभनक्	अभङ्क्तम्	अभङ्क्त
अहिनसम्	अहिंस्व	अहिंस्म	उ०	अभनजम्	अभञ्ज्व	अभञ्ज्म
	विधिलिङ्				**विधिलिङ्**	
हिंस्यात्	हिंस्याताम्	हिंस्युः	प्र०	भञ्ज्यात्	भञ्ज्याताम्	भञ्ज्युः
हिंस्याः	हिंस्यातम्	हिंस्यात	म०	भञ्ज्याः	भञ्ज्यातम्	भञ्ज्यात
हिंस्याम्	हिंस्याव	हिंस्याम	उ०	भञ्ज्याम्	भञ्ज्याव	भञ्ज्याम
	—				—	
हिंसिष्यति	हिंसिष्यतः	हिंसिष्यन्ति	लृट्	भङ्क्ष्यति	भङ्क्ष्यतः	भङ्क्ष्यन्ति
हिंसिता	हिंसितारौ	हिंसितारः	लुट्	भङ्क्ता	भङ्क्तारौ	भङ्क्तारः
हिंस्यात्	हिंस्यास्ताम्	हिंस्यासुः	आ० लिङ्	भज्यात्	भज्यास्ताम्	भज्यासुः
अहिंसिष्यत्	अहिंसिष्यताम्	०	लृङ्	अभङ्क्ष्यत्	अभङ्क्ष्यताम्	०
	लिट्				**लिट्**	
जिहिंस	जिहिंसतुः	जिहिंसुः	प्र०	बभञ्ज	बभञ्जतुः	बभञ्जुः
जिहिंसिथ	जिहिंसथुः	जिहिंस	म०	बभञ्जिथ, बभङ्क्थ	बभञ्जथुः	बभञ्ज
जिहिंस	जिहिंसिव	जिहिंसिम	उ०	बभञ्ज	बभञ्जिव	बभञ्जिम
	लुङ् (५)				**लुङ् (४)**	
अहिंसीत्	अहिंसिष्टाम्	अहिंसिषुः	प्र०	अभाङ्क्षीत्	अभाङ्क्ताम्	अभाङ्क्षुः
अहिंसीः	अहिंसिष्टम्	अहिंसिष्ट	म०	अभाङ्क्षीः	अभाङ्क्तम्	अभाङ्क्त
अहिंसिषम्	अहिंसिष्व	अहिंसिष्म	उ०	अभाङ्क्षम्	अभाङ्क्ष्व	अभाङ्क्ष्म

(८७) रुध् (रोकना, ढकना) (दे०अ० ५४)

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
रुणद्धि	रुन्धः	रुन्धन्ति	प्र०	रुन्धे	रुन्धाते	रुन्धते
रुणत्सि	रुन्धः	रुन्ध	म०	रुन्त्से	रुन्धाथे	रुन्ध्वे
रुणध्मि	रुन्ध्वः	रुन्ध्मः	उ०	रुन्धे	रुन्ध्वहे	रुन्ध्महे
लोट्				लोट्		
रुणद्धु	रुन्धाम्	रुन्धन्तु	प्र०	रुन्धाम्	रुन्धाताम्	रुन्धताम्
रुन्धि	रुन्धम्	रुन्ध	म०	रुन्त्स्व	रुन्धाथाम्	रुन्ध्वम्
रुणधानि	रुणधाव	रुणधाम	उ०	रुणधै	रुणधावहै	रुणधामहै
लङ्				लङ्		
अरुणत्	अरुन्धाम्	अरुन्धन्	प्र०	अरुन्ध	अरुन्धाताम्	अरुन्धत
अरुणः	अरुन्धम्	अरुन्ध	म०	अरुन्धाः	अरुन्धाथाम्	अरुन्ध्वम्
अरुणधम्	अरुन्ध्व	अरुन्ध्म	उ०	अरुन्धि	अरुन्ध्वहि	अरुन्ध्महि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
रुन्ध्यात्	रुन्ध्याताम्	रुन्ध्युः	प्र०	रुन्धीत	रुन्धीयाताम्	रुन्धीरन्
रुन्ध्याः	रुन्ध्यातम्	रुन्ध्यात	म०	रुन्धीथाः	रुन्धीयाथाम्	रुन्धीध्वम्
रुन्ध्याम्	रुन्ध्याव	रुन्ध्याम	उ०	रुन्धीय	रुन्धीवहि	रुन्धीमहि
—				—		
रोत्स्यति	रोत्स्यतः	रोत्स्यन्ति	लृट्	रोत्स्यते	रोत्स्येते	रोत्स्यन्ते
रोद्धा	रोद्धारौ	रोद्धारः	लुट्	रोद्धा	रोद्धारौ	रोद्धारः
रुध्यात्	रुध्यास्ताम्	रुध्यासुः	*आ० लिङ्*	रुत्सीष्ट	रुत्सीयास्ताम्	०
अरोत्स्यत्	अरोत्स्यताम्	०	लृङ्	अरोत्स्यत	अरोत्स्येताम्	०
लिट्				लिट्		
रुरोध	रुरुधतुः	रुरुधुः	प्र०	रुरुधे	रुरुधाते	रुरुधिरे
रुरोधिथ	रुरुधथुः	रुरुध	म०	रुरुधिषे	रुरुधाथे	रुरुधिध्वे
रुरोध	रुरुधिव	रुरुधिम	उ०	रुरुधे	रुरुधिवहे	रुरुधिमहे
लुङ् (क) (४)				लुङ् (४)		
अरौत्सीत्	अरौद्धाम्	अरौत्सुः	प्र०	अरुद्ध	अरुत्साताम्	अरुत्सत
अरौत्सीः	अरौद्धम्	अरौद्ध	म०	अरुद्धाः	अरुत्साथाम्	अरुद्ध्वम्
अरौत्सम्	अरौत्स्व	अरौत्स्म	उ०	अरुत्सि	अरुत्स्वहि	अरुत्स्महि

(ख) (२) अरुधत् अरुधताम् अरुधन् प्र०
अरुधः अरुधतम् अरुधत म०
अरुधम् अरुधाव अरुधाम उ०

(८८) भुज् (पालन करना) (दे० अ० ५४) **(८८) भुज् (खाना) (दे० अ० ५४)**

सूचना—पालन करना अर्थ में परस्मैपदी है। सूचना—खाना और उपभोग करना अर्थ में आत्मनेपदी है।

	परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्	
भुनक्ति	भुङ्क्तः	भुञ्जन्ति	प्र०	भुङ्क्ते	भुञ्जाते	भुञ्जते
भुनक्षि	भुङ्क्थः	भुङ्क्थ	म०	भुङ्क्षे	भुञ्जाथे	भुङ्ग्ध्वे
भुनज्मि	भुञ्ज्वः	भुञ्ज्मः	उ०	भुञ्जे	भुञ्ज्वहे	भुञ्ज्महे
	लोट्				**लोट्**	
भुनक्तु	भुङ्क्ताम्	भुञ्जन्तु	प्र०	भुङ्क्ताम्	भुञ्जाताम्	भुञ्जताम्
भुङ्ग्धि	भुङ्क्तम्	भुङ्क्त	म०	भुङ्क्ष्व	भुञ्जाथाम्	भुङ्ग्ध्वम्
भुनजानि	भुनजाव	भुनजाम	उ०	भुनजै	भुनजावहै	भुनजामहै
	लङ्				**लङ्**	
अभुनक्	अभुङ्क्ताम्	अभुञ्जन्	प्र०	अभुङ्क्त	अभुञ्जाताम्	अभुञ्जत
अभुनक्	अभुङ्क्तम्	अभुङ्क्त	म०	अभुङ्क्थाः	अभुञ्जाथाम्	अभुङ्ग्ध्वम्
अभुनजम्	अभुञ्ज्व	अभुञ्ज्म	उ०	अभुञ्जि	अभुञ्ज्वहि	अभुञ्ज्महि
	विधिलिङ्				**विधिलिङ्**	
भुञ्ज्यात्	भुञ्ज्याताम्	भुञ्ज्युः	प्र०	भुञ्जीत	भुञ्जीयाताम्	भुञ्जीरन्
भुञ्ज्याः	भुञ्ज्याताम्	भुञ्ज्यात	म०	भुञ्जीथाः	भुञ्जीयाथाम्	भुञ्जीध्वम्
भुञ्ज्याम्	भुञ्ज्याव	भुञ्ज्याम	उ०	भुञ्जीय	भुञ्जीवहि	भुञ्जीमहि
	—				—	
भोक्ष्यति	भोक्ष्यतः	भोक्ष्यन्ति	लृट्	भोक्ष्यते	भोक्ष्येते	भोक्ष्यन्ते
भोक्ता	भोक्तारौ	भोक्तारः	लुट्	भोक्ता	भोक्तारौ	भोक्तारः
भुज्यात्	भुज्यास्ताम्	भुज्यासुः	आ० लिङ्	भुक्षीष्ट	भुक्षीयास्ताम्	०
अभोक्ष्यत्	अभोक्ष्यताम्	०	लृङ्	अभोक्ष्यत	अभोक्ष्येताम्	
	लिट्				**लिट्**	
बुभोज	बुभुजतुः	बुभुजुः	प्र०	बुभुजे	बुभुजाते	बुभुजिरे
बुभोजिथ	बुभुजथुः	बुभुज	म०	बुभुजिषे	बुभुजाथे	बुभुजिध्वे
बुभोज	बुभुजिव	बुभुजिम	उ०	बुभुजे	बुभुजिवहे	बुभुजिमहे
	लुङ् (४)				**लुङ् (४)**	
अभौक्षीत्	अभौक्ताम्	अभौक्षुः	प्र०	अभुक्त	अभुक्षाताम्	अभुक्षत
अभौक्षीः	अभौक्तम्	अभौक्त	म०	अभुक्थाः	अभुक्षाथाम्	अभुग्ध्वम्
अभौक्षम्	अभौक्ष्व	अभौक्ष्म	उ०	अभुक्षि	अभुक्ष्वहि	अभुक्ष्महि

(८९) युज् (लगाना, जोड़ना, मिलाना, नियुक्त करना) (दे०अ० ५५)

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
युनक्ति	युङ्क्तः	युञ्जन्ति	प्र०	युङ्क्ते	युञ्जाते	युञ्जते
युनक्षि	युङ्क्थः	युङ्क्थ	म०	युङ्क्षे	युञ्जाथे	युङ्ग्ध्वे
युनज्मि	युञ्ज्वः	युञ्ज्मः	उ०	युञ्जे	युञ्ज्वहे	युञ्ज्महे
	लोट्				लोट्	
युनक्तु	युङ्क्ताम्	युञ्जन्तु	प्र०	युङ्क्ताम्	युञ्जाताम्	युञ्जताम्
युङ्ग्धि	युङ्क्तम्	युङ्क्त	म०	युङ्क्ष्व	युञ्जाथाम्	युङ्ग्ध्वम्
युनजानि	युनजाव	युनजाम	उ०	युनजै	युनजावहै	युनजामहै
	लङ्				लङ्	
अयुनक्	अयुङ्क्ताम्	अयुञ्जन्	प्र०	अयुङ्क्त	अयुञ्जाताम्	अयुञ्जत
अयुनक्	अयुङ्क्तम्	अयुङ्क्त	म०	अयुङ्क्थाः	अयुञ्जाथाम्	अयुङ्ग्ध्वम्
अयुनजम्	अयुञ्ज्व	अयुञ्ज्म	उ०	अयुञ्जि	अयुञ्ज्वहि	अयुञ्ज्महि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
युञ्ज्यात्	युञ्ज्याताम्	युञ्ज्युः	प्र०	युञ्जीत	युञ्जीयाताम्	युञ्जीरन्
युञ्ज्याः	युञ्ज्यातम्	युञ्ज्यात	म०	युञ्जीथाः	युञ्जीयाथाम्	युञ्जीध्वम्
युञ्ज्याम्	युञ्ज्याव	युञ्ज्याम	उ०	युञ्जीय	युञ्जीवहि	युञ्जीमहि
	—				—	
योक्ष्यति	योक्ष्यतः	योक्ष्यन्ति	लृट्	योक्ष्यते	योक्ष्येते	योक्ष्यन्ते
योक्ता	योक्तारौ	योक्तारः	लुट्	योक्ता	योक्तारौ	योक्तारः
युज्यात्	युज्यास्ताम्	युज्यासुः	आ० लिङ्	युक्षीष्ट	युक्षीयास्ताम्	०
अयोक्ष्यत्	अयोक्ष्यताम्	०	लृङ्	अयोक्ष्यत	अयोक्ष्येताम्	०
	लिट्				लिट्	
युयोज	युयुजतुः	युयुजुः	प्र०	युयुजे	युयुजाते	युयुजिरे
युयोजिथ	युयुजथुः	युयुज	म०	युयुजिषे	युयुजाथे	युयुजिध्वे
युयोज	युयुजिव	युयुजिम	उ०	युयुजे	युयुजिवहे	युयुजिमहे
	लुङ् (क) (४)				लुङ् (४)	
अयौक्षीत्	अयौक्ताम्	अयौक्षुः	प्र०	अयुक्त	अयुक्षाताम्	अयुक्षत
अयौक्षीः	अयौक्तम्	अयौक्त	म०	अयुक्थाः	अयुक्षाथाम्	अयुग्ध्वम्
अयौक्षम्	अयौक्ष्व	अयौक्ष्म	उ०	अयुक्षि	अयुक्ष्वहि	अयुक्ष्महि

लुङ् (ख) (२)

अयुजत् अयुजताम् अयुजन् आदि।

(८) तनादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु तन् (फैलाना) है, अतः गण का नाम तनादिगण पड़ा। (तनादिकृञ्भ्य उः) तनादिगण की धातुओं में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में धातु और प्रत्यय के बीच में 'उ' विकरण लगता है।

(२) (क) धातुओं की उपधा के इ उ और ऋ को लट् आदि में विकल्प से गुण होता है। अतः उनके लट् आदि में दो रूप बनेंगे। क्षिण् > क्षिणोति, क्षेणोति। (ख) (अत उत्सार्वधातुके) कृ धातु के ऋ को उर् हो जाता है, कित् और ङित् वाले स्थानों पर। अतः परस्मैपद में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में द्विवचन और बहुवचन में ऋ को उर् होता है। आत्मनेपद में लट् आदि में सर्वत्र उर्। लोट् उत्तमपुरुष में दोनों पदों में गुण ही होता है। (ग) उ विकरण को परस्मै० लट् आदि के एक० में गुण होता है। परस्मै० विधिलिङ् और आत्मने० में उ ही रहता है। लोट् उ० पु० में गुण होगा।

(३) इस गण में १० धातुएँ हैं।

(४) लट् आदि में संक्षिप्तरूप निम्नलिखित लगेंगे। लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लृङ् में पृ० १४४ पर निर्दिष्ट संक्षिप्त रूप ही लगेंगे।

परस्मैपद (सं० रूप)				आत्मनेपद (सं० रूप)		
	लट्				लट्	
ओति	उतः	वन्ति	प्र०	उते	वाते	वते
ओषि	उथः	उथ	म०	उषे	वाथे	उध्वे
ओमि	उवः, वः	उमः, मः	उ०	वे	उवहे, वहे	उमहे, महे
	लोट्				लोट्	
ओतु	उताम्	वन्तु	प्र०	उताम्	वाताम्	वताम्
उ	उतम्	उत	म०	उष्व	वाथाम्	उध्वम्
अवानि	अवाव	अवाम	उ०	अवै	अवावहै	अवामहै
लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)		
ओत्	उताम्	वन्	प्र०	उत	वाताम्	वत
ओः	उतम्	उत	म०	उथाः	वाथाम्	उध्वम्
अवम्	उव, व	उम, म	उ०	वि	उवहि, वहि	उमहि, महि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
उयात्	उयाताम्	उयुः	प्र०	वीत	वीयाताम्	वीरन्
उयाः	उयातम्	उयात	म०	वीथाः	वीयाथाम्	वीध्वम्
उयाम्	उयाव	उयाम	उ०	वीय	वीवहि	वीमहि

तनादिगण, उभयपदी धातुएँ

(१०) तन् (फैलाना) (दे० अ० ५५)

	परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्	
तनोति	तनुतः	तन्वन्ति	प्र०	तनुते	तन्वाते	तन्वते
तनोषि	तनुथः	तनुथ	म०	तनुषे	तन्वाथे	तनुध्वे
तनोमि	तनुवः	तनुमः	उ०	तन्वे	तनुवहे	तनुमहे
	लोट्				लोट्	
तनोतु	तनुताम्	तन्वन्तु	प्र०	तनुताम्	तन्वाताम्	तन्वताम्
तनु	तनुतम्	तनुत	म०	तनुष्व	तन्वाथाम्	तनुध्वम्
तनवानि	तनवाव	तनवाम	उ०	तनवै	तनवावहै	तनवामहै
	लङ्				लङ्	
अतनोत्	अतनुताम्	अतन्वन्	प्र०	अतनुत	अतन्वाताम्	अतन्वत
अतनोः	अतनुतम्	अतनुत	म०	अतनुथाः	अतन्वाथाम्	अतनुध्वम्
अतनवम्	अतनुव	अतनुम	उ०	अतन्वि	अतनुवहि	अतनुमहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
तनुयात्	तनुयाताम्	तनुयुः	प्र०	तन्वीत	तन्वीयाताम्	तन्वीरन्
तनुयाः	तनुयातम्	तनुयात	म०	तन्वीथाः	तन्वीयाथाम्	तन्वीध्वम्
तनुयाम्	तनुयाव	तनुयाम	उ०	तन्वीय	तन्वीवहि	तन्वीमहि
	—				—	
तनिष्यति	तनिष्यतः	तनिष्यन्ति	लृट्	तनिष्यते	तनिष्येते	तनिष्यन्ते
तनिता	तनितारौ	तनितारः	लुट्	तनिता	तनितारौ	तनितारः
तन्यात्	तन्यास्ताम्	तन्यासुः	आ० लिङ्	तनिषीष्ट	तनिषीयास्ताम्	०
अतनिष्यत्	अतनिष्यताम्	०	लृङ्	अतनिष्यत	अतनिष्येताम्	०
	लिट्				लिट्	
ततान	तेनतुः	तेनुः	प्र०	तेने	तेनाते	तेनिरे
तेनिथ	तेनथुः	तेन	म०	तेनिषे	तेनाथे	तेनिध्वे
ततान, ततन	तेनिव	तेनिम	उ०	तेने	तेनिवहे	तेनिमहे
	लुङ् (क) (५)				लुङ् (५)	
अतनीत्	अतनिष्टाम्	अतनिषुः	प्र०	अतत, अतनिष्ट	अतनिषाताम्	अतनिषत
अतनीः	अतनिष्टम्	अतनिष्ट	म०	अतथाः, अतनिष्ठाः	अतनिषाथाम्	अतनिध्वम्
अतनिषम्	अतनिष्व	अतनिष्म	उ०	अतनिषि	अतनिष्वहि	अतनिष्महि

लुङ् (ख) (५)

अतानीत् अतानिष्टाम्० आदि (पूर्ववत्)।

(९१) कृ (करना) (दे० अ० २१-२२)

	परस्मैपद—लट्				**आत्मनेपद—लट्**	
करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति	प्र०	कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते
करोषि	कुरुथः	कुरुथ	म०	कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुध्वे
करोमि	कुर्वः	कुर्मः	उ०	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे
	लोट्				**लोट्**	
करोतु	कुरुताम्	कुर्वन्तु	प्र०	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्
कुरु	कुरुतम्	कुरुत	म०	कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्
करवाणि	करवाव	करवाम	उ०	करवै	करवावहै	करवामहै
	लङ्				**लङ्**	
अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्	प्र०	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत
अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत	म०	अकुरुथाः	अकुर्वाथाम्	अकुरुध्वम्
अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म	उ०	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि
	विधिलिङ्				**विधिलिङ्**	
कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः	प्र०	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्
कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात	म०	कुर्वीथाः	कुर्वीयाथाम्	कुर्वीध्वम्
कुर्याम्	कुर्याव	कुर्याम	उ०	कुर्वीय	कुर्वीवहि	कुर्वीमहि
	—				—	
करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति	लृट्	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः	लुट्	कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः
क्रियात्	क्रियास्ताम्	क्रियासुः	आ० लिङ्	कृषीष्ट	कृषीयास्ताम्	०
अकरिष्यत्	अकरिष्यताम	०	लृङ्	अकरिष्यत	अकरिष्येताम्	०
	लिट्				**लिट्**	
चकार	चक्रतुः	चक्रुः	प्र०	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे
चकर्थ	चक्रथुः	चक्र	म०	चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे
चकार, चकर	चकृव	चकृम	उ०	चक्रे	चकृवहे	चकृमहे
	लुङ् (४)				**लुङ् (४)**	
अकार्षीत्	अकार्ष्टाम्	अकार्षुः	प्र०	अकृत	अकृषाताम्	अकृषत
अकार्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट	म०	अकृथाः	अकृषाथाम्	अकृढ्वम्
अकार्षम्	अकार्ष्व	अकार्ष्म	उ०	अकृषि	अकृष्वहि	अकृष्महि

(९) क्र्यादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु क्री (मोल लेना) है, अतः गण का नाम क्र्यादिगण पड़ा। (क्र्यादिभ्यः श्ना) क्र्यादिगण की धातुओं से लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में धातु और प्रत्यय के बीच में श्ना (ना) विकरण होता है।

(२) (क) लट् आदि में धातु को गुण नहीं होता। (ख) 'ना' विकरण परस्मै० के लट्, लोट्, लङ् के एक० में ना रहता है। दोनों पदों में लोट् उ०पु० में ना रहेगा। अन्यत्र ना को नी होता है। जहाँ बाद में स्वर होता है, वहाँ ना का न् रहता है। परस्मै० लोट् म० पु० एक० में ना को नी होता है या आन होता है। (ग) धातु की उपधा में न् होगा तो लट् आदि में न् का लोप हो जाएगा। (घ) (हलः श्नः शानज्झौ) व्यंजनान्त धातुओं के बाद परस्मै० लोट् म०पु० एक० में ना को आन हो जायगा और हि का लोप होगा। अतः 'आन' शेष रहेगा। बन्ध् > बधान, ग्रह् > गृहाण। (ङ) (प्वादीनां ह्रस्वः) पू आदि धातुओं को लट् आदि में ह्रस्व होगा। पू > पुनाति। धू > धुनाति। (च) (ग्रहोऽलिटि दीर्घः) ग्रह् धातु के बाद इ को ई हो जाएगा, लिट् को छोड़कर। ग्रहीष्यति, ग्रहीता।

(३) इस गण में ६१ धातुएँ हैं।

(४) लट् आदि में धातु के बाद ये संक्षिप्तरूप लगेंगे। लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लृङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट सं० रूप ही लगेंगे।

परस्मैपद (सं० रूप) / **आत्मनेपद (सं० रूप)**

लट्

नाति	नीतः	नन्ति	प्र०	नीते	नाते	नते
नासि	नीथः	नीथ	म०	नीषे	नाथे	नीध्वे
नामि	नीवः	नीमः	उ०	ने	नीवहे	नीमहे

लोट्

नातु	नीताम्	नन्तु	प्र०	नीताम्	नाताम्	नताम्
नीहि(आन)	नीतम्	नीत	म०	नीष्व	नाथाम्	नीध्वम्
नानि	नाव	नाम	उ०	नै	नावहै	नामहै

लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)

नात्	नीताम्	नन्	प्र०	नीत	नाताम्	नत
नाः	नीतम्	नीत	म०	नीथाः	नाथाम्	नीध्वम्
नाम्	नीव	नीम	उ०	नि	नीवहि	नीमहि

विधिलिङ्

नीयात्	नीयाताम्	नीयुः	प्र०	नीत	नीयाताम्	नीरन्
नीयाः	नीयातम्	नीयात	म०	नीथाः	नीयाथाम्	नीध्वम्
नीयाम्	नीयाव	नीयाम	उ०	नीय	नीवहि	नीमहि

क्र्यादिगण। परस्मैपदी धातुएँ

(१२) बन्ध् (बाँधना) (दे० अ० ५७) (१३) मन्थ् (मथना) (दे० अ० ५७)

	लट्				लट्	
बध्नाति	बध्नीतः	बध्नन्ति	प्र०	मथ्नाति	मथ्नीतः	मथ्नन्ति
बध्नासि	बध्नीथः	बध्नीथ	म०	मथ्नासि	मथ्नीथः	मथ्नीथ
बध्नामि	बध्नीवः	बध्नीमः	उ०	मथ्नामि	मथ्नीवः	मथ्नीमः

	लोट्				लोट्	
बध्नातु	बध्नीताम्	बध्नन्तु	प्र०	मथ्नातु	मथ्नीताम्	मथ्नन्तु
बधान	बध्नीतम्	बध्नीत	म०	मथान	मथ्नीतम्	मथ्नीत
बध्नानि	बध्नाव	बध्नाम	उ०	मथ्नानि	मथ्नाव	मथ्नाम

	लङ्				लङ्	
अबध्नात्	अबध्नीताम्	अबध्नन्	प्र०	अमथ्नात्	अमथ्नीताम्	अमथ्नन्
अबध्नाः	अबध्नीतम्	अबध्नीत	म०	अमथ्नाः	अमथ्नीतम्	अमथ्नीत
अबध्नाम्	अबध्नीव	अबध्नीम	उ०	अमथ्नाम्	अमथ्नीव	अमथ्नीम

	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
बध्नीयात्	बध्नीयाताम्	बध्नीयुः	प्र०	मथ्नीयात्	मथ्नीयाताम्	मथ्नीयुः
बध्नीयाः	बध्नीयातम्	बध्नीयात	म०	मथ्नीयाः	मथ्नीयातम्	मथ्नीयात
बध्नीयाम्	बध्नीयाव	बध्नीयाम	उ०	मथ्नीयाम्	मथ्नीयाव	मथ्नीयाम

भन्त्स्यति	भन्त्स्यतः	भन्त्स्यन्ति	लृट्	मन्थिष्यति	मन्थिष्यतः	मन्थिष्यन्ति
बन्द्धा	बन्द्धारौ	बन्द्धारः	लुट्	मन्थिता	मन्थितारौ	मन्थितारः
बध्यात्	बध्यास्ताम्	बध्यासुः	आ०लिङ्	मथ्यात्	मथ्यास्ताम्	मथ्यासुः
अभन्त्स्यत्	अभन्त्स्यताम्	०	लृङ्	अमन्थिष्यत्	अमन्थिष्यताम्	०

	लिट्				लिट्	
बबन्ध	बबन्धतुः	बबन्धुः	प्र०	ममन्थ	ममन्थतुः	ममन्थुः
बबन्धिथ	बबन्धथुः	बबन्ध	म०	ममन्थिथ	ममन्थथुः	ममन्थ
बबन्ध	बबन्धिव	बबन्धिम	उ०	ममन्थ	ममन्थिव	ममन्थिम

	लुङ् (४)				लुङ् (५)	
अभान्त्सीत्	अबान्द्धाम्	अभान्त्सुः	प्र०	अमन्थीत्	अमन्थिष्टाम्	अमन्थिषुः
अभान्त्सीः	अबान्द्धम्	अबान्द्ध	म०	अमन्थीः	अमन्थिष्टम्	अमन्थिष्ट
अभान्त्सम्	अभान्त्स्व	अभान्त्स्म	उ०	अमन्थिषम्	अमन्थिष्व	अमन्थिष्म

उभयपदी धातुएँ

(९४) क्री (मोल लेना) (दे० अ० ५८)

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
क्रीणाति	क्रीणीतः	क्रीणन्ति	प्र०	क्रीणीते	क्रीणाते	क्रीणते
क्रीणासि	क्रीणीथः	क्रीणीथ	म०	क्रीणीषे	क्रीणाथे	क्रीणीध्वे
क्रीणामि	क्रीणीवः	क्रीणीमः	उ०	क्रीणे	क्रीणीवहे	क्रीणीमहे
लोट्				**लोट्**		
क्रीणातु	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु	प्र०	क्रीणीताम्	क्रीणाताम्	क्रीणताम्
क्रीणीहि	क्रीणीतम्	क्रीणीत	म०	क्रीणीष्व	क्रीणाथाम्	क्रीणीध्वम्
क्रीणानि	क्रीणाव	क्रीणाम	उ०	क्रीणै	क्रीणावहै	क्रीणामहै
लङ्				**लङ्**		
अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्	प्र०	अक्रीणीत	अक्रीणाताम्	अक्रीणत
अक्रीणाः	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत	म०	अक्रीणीथाः	अक्रीणाथाम्	अक्रीणीध्वम्
अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम	उ०	अक्रीणि	अक्रीणीवहि	अक्रीणीमहि
विधिलिङ्				**विधिलिङ्**		
क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयुः	प्र०	क्रीणीत	क्रीणीयाताम्	क्रीणीरन्
क्रीणीयाः	क्रीणीयातम्	क्रीणीयात	म०	क्रीणीथाः	क्रीणीयाथाम्	क्रीणीध्वम्
क्रीणीयाम्	क्रीणीयाव	क्रीणीयाम	उ०	क्रीणीय	क्रीणीवहि	क्रीणीमहि
—				—		
क्रेष्यति	क्रेष्यतः	क्रेष्यन्ति	लृट्	क्रेष्यते	क्रेष्येते	क्रेष्यन्ते
क्रेता	क्रेतारौ	क्रेतारः	लुट्	क्रेता	क्रेतारौ	क्रेतारः
क्रीयात्	क्रीयास्ताम्	क्रीयासुः	आ० लिङ्	क्रेषीष्ट	क्रेषीयास्ताम्	०
अक्रेष्यत्	अक्रेष्यताम्	०	लृङ्	अक्रेष्यत	अक्रेष्येताम्	०
लिट्				**लिट्**		
चिक्राय	चिक्रियतुः	चिक्रियुः	प्र०	चिक्रिये	चिक्रियाते	चिक्रियिरे
चिक्रयिथ, चिक्रेथ	चिक्रियथुः	चिक्रिय	म०	चिक्रियिषे	चिक्रियाथे	चिक्रियिध्वे
चिक्राय, चिक्रय	चिक्रियिव	चिक्रियिम	उ०	चिक्रिये	चिक्रियिवहे	चिक्रियिमहे
लुङ् (४)				**लुङ् (४)**		
अक्रैषीत्	अक्रैष्टाम्	अक्रैषुः	प्र०	अक्रेष्ट	अक्रेषाताम्	अक्रेषत
अक्रैषीः	अक्रैष्टम्	अक्रैष्ट	म०	अक्रेष्ठाः	अक्रेषाथाम्	अक्रेढ्वम्
अक्रैषम्	अक्रैष्व	अक्रैष्म	उ०	अक्रेषि	अक्रेष्वहि	अक्रेष्महि

(९५) ग्रह् (पकड़ना) (दे० अ० ५८)

सूचना—लट् आदि में ग्रह् को गृह् होगा। सूचना—लट् आदि में ग्रह् को गृह्।

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
गृह्णाति	गृह्णीतः	गृह्णन्ति	प्र०	गृह्णीते	गृह्णाते	गृह्णते
गृह्णासि	गृह्णीथः	गृह्णीथ	म०	गृह्णीषे	गृह्णाथे	गृह्णीध्वे
गृह्णामि	गृह्णीवः	गृह्णीमः	उ०	गृह्णे	गृह्णीवहे	गृह्णीमहे
लोट्				लोट्		
गृह्णातु	गृह्णीताम्	गृह्णन्तु	प्र०	गृह्णीताम्	गृह्णाताम्	गृह्णताम्
गृहाण	गृह्णीतम्	गृह्णीत	म०	गृह्णीष्व	गृह्णाथाम्	गृह्णीध्वम्
गृह्णानि	गृह्णाव	गृह्णाम	उ०	गृह्णै	गृह्णावहै	गृह्णामहै
लङ्				लङ्		
अगृह्णात्	अगृह्णीताम्	अगृह्णन्	प्र०	अगृह्णीत	अगृह्णाताम्	अगृह्णत
अगृह्णाः	अगृह्णीतम्	अगृह्णीत	म०	अगृह्णीथाः	अगृह्णाथाम्	अगृह्णीध्वम्
अगृह्णाम्	अगृह्णीव	अगृह्णीम	उ०	अगृह्णि	अगृह्णीवहि	अगृह्णीमहि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
गृह्णीयात्	गृह्णीयाताम्	गृह्णीयुः	प्र०	गृह्णीत	गृह्णीयाताम्	गृह्णीरन्
गृह्णीयाः	गृह्णीयातम्	गृह्णीयात	म०	गृह्णीथाः	गृह्णीयाथाम्	गृह्णीध्वम्
गृह्णीयाम्	गृह्णीयाव	गृह्णीयाम	उ०	गृह्णीय	गृह्णीवहि	गृह्णीमहि

ग्रहीष्यति	ग्रहीष्यतः	ग्रहीष्यन्ति	लृट्	ग्रहीष्यते	ग्रहीष्येते	ग्रहीष्यन्ते
ग्रहीता	ग्रहीतारौ	ग्रहीतारः	लुट्	ग्रहीता	ग्रहीतारौ	ग्रहीतारः
गृह्यात्	गृह्यास्ताम्	गृह्यासुः	आ०लिङ्	ग्रहीषीष्ट	ग्रहीषीयास्ताम्	०
अग्रहीष्यत्	अग्रहीष्यताम्	०	लृङ्	अग्रहीष्यत	अग्रहीष्येताम्	०

लिट्				लिट्		
जग्राह	जगृहतुः	जगृहुः	प्र०	जगृहे	जगृहाते	जगृहिरे
जग्रहिथ	जगृहथुः	जगृह	म०	जगृहिषे	जगृहाथे	जगृहिध्वे
जग्राह, जग्रह	जगृहिव	जगृहिम	उ०	जगृहे	जगृहिवहे	जगृहिमहे
लुङ् (५)				लुङ् (५)		
अग्रहीत्	अग्रहीष्टाम्	अग्रहीषुः	प्र०	अग्रहीष्ट	अग्रहीषाताम्	अग्रहीषत
अग्रहीः	अग्रहीष्टम्	अग्रहीष्ट	म०	अग्रहीष्ठाः	अग्रहीषाथाम्	अग्रहीध्वम्
अग्रहीषम्	अग्रहीष्व	अग्रहीष्म	उ०	अग्रहीषि	अग्रहीष्वहि	अग्रहीष्महि

(९६) ज्ञा (जानना) (दे० अ० ५६)

सूचना—लट् आदि में ज्ञा को 'जा' होगा। *सूचना*—लट् आदि में ज्ञा को 'जा' होगा।

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
जानाति	जानीत:	जानन्ति	प्र०	जानीते	जानाते	जानते
जानासि	जानीथ:	जानीथ	म०	जानीषे	जानाथे	जानीध्वे
जानामि	जानीव:	जानीम:	उ०	जाने	जानीवहे	जानीमहे
लोट्				लोट्		
जानातु	जानीताम्	जानन्तु	प्र०	जानीताम्	जानाताम्	जानताम्
जानीहि	जानीतम्	जानीत	म०	जानीष्व	जानाथाम्	जानीध्वम्
जानानि	जानाव	जानाम	उ०	जानै	जानावहै	जानामहै
लङ्				लङ्		
अजानात्	अजानीताम्	अजानन्	प्र०	अजानीत	अजानाताम्	अजानत
अजाना:	अजानीतम्	अजानीत	म०	अजानीथा:	अजानाथाम्	अजानीध्वम्
अजानाम्	अजानीव	अजानीम	उ०	अजानि	अजानीवहि	अजानीमहि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
जानीयात्	जानीयाताम्	जानीयु:	प्र०	जानीत	जानीयाताम्	जानीरन्
जानीया:	जानीयातम्	जानीयात	म०	जानीथा:	जानीयाथाम्	जानीध्वम्
जानीयाम्	जानीयाव	जानीयाम	उ०	जानीय	जानीवहि	जानीमहि
—				—		
ज्ञास्यति	ज्ञास्यत:	ज्ञास्यन्ति	लृट्	ज्ञास्यते	ज्ञास्येते	ज्ञास्यन्ते
ज्ञाता	ज्ञातारौ	ज्ञातार:	लुट्	ज्ञाता	ज्ञातारौ	ज्ञातार:
ज्ञायात्,	ज्ञेयात्	(दोनों प्रकार से)	*आ०लिङ्*	ज्ञासीष्ट	ज्ञासीयास्ताम्	०
अज्ञास्यत्	अज्ञास्यताम्	०	लृङ्	अज्ञास्यत	अज्ञास्येताम्	०
लिट्				लिट्		
जज्ञौ	जज्ञतु:	जज्ञु:	प्र०	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
जज्ञिथ, जज्ञाथ	जज्ञथु:	जज्ञ	म०	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिध्वे
जज्ञौ	जज्ञिव	जज्ञिम	उ०	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे
लुङ् (६)				लुङ् (४)		
अज्ञासीत्	अज्ञासिष्टाम्	अज्ञासिषु:	प्र०	अज्ञास्त	अज्ञासाताम्	अज्ञासत
अज्ञासी:	अज्ञासिष्टम्	अज्ञासिष्ट	म०	अज्ञास्था:	अज्ञासाथाम्	अज्ञाध्वम्
अज्ञासिषम्	अज्ञासिष्व	अज्ञासिष्म	उ०	अज्ञासि	अज्ञास्वहि	अज्ञास्महि

(१०) चुरादिगण

(१) इस गण की प्रथम धातु चुर् (चुराना) है, अतः गण का नाम चुरादिगण पड़ा। (सत्याप······चुरादिभ्यो णिच्) चुरादिगण में दसों लकारों में धातु से णिच् (अय्) प्रत्यय होता है। लट् आदि में शप् (अ) और लग जाने से धातु और प्रत्यय के बीच में 'अय' विकरण हो जाता है।

(२) सूचना—प्रेरणार्थक धातुओं में भी 'हेतुमति च' सूत्र से णिच् प्रत्यय करने पर चुरादिगण की धातुओं के तुल्य ही दसों लकारों में रूप चलेंगे।

(३) (क) णिच् (अय्) करने पर धातु के अन्तिम इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ को क्रमशः ऐ, औ, आर् वृद्धि होगी। पृ > पारयति, चि > चाययति। (ख) उपधा में अ, इ, उ, ऋ हों तो उन्हें क्रमशः आ, ए, ओ, अर् होगा। कथ्, गण्, रच् आदि कुछ धातुओं में अ को आ नहीं होता है। (ग) लृट् में परस्मै० इष्यति लगेगा और आत्मने० में इष्यते आदि। (घ) (अर्तिह्री······आतां पुङ् णौ) आकारान्त धातुओं में आ के बाद प् और लग जाता है। आ + ज्ञा > आज्ञापयति।

(४) इस गण में ४१० धातुएँ हैं। चुरादिगण तक पूरी धातुसंख्या १९४४ है।

(५) चुरादिगणी धातुओं के रूप चलाने का सरल उपाय यह है कि धातु के अन्त में 'अय' लगाकर परस्मै० में भू के तुल्य और आत्मने० में सेव् के तुल्य रूप चलावें। लृट्, लुट्, आशीर्लिङ् और लुङ् में पृष्ठ १४४ पर निर्दिष्ट सं० रूप ही लगेंगे।

परस्मैपद (सं० रूप) — **आत्मनेपद (सं० रूप)**

लट् (धातु + अय्) — **लट् (धातु + अय्)**

अति	अतः	अन्ति	प्र०	अते	एते	अन्ते
असि	अथः	अथ	म०	असे	एथे	अध्वे
आमि	आवः	आमः	उ०	ए	आवहे	आमहे

लोट् (धातु + अय्) — **लोट् (धातु + अय्)**

अतु	अताम्	अन्तु	प्र०	अताम्	एताम्	अन्ताम्
अ	अतम्	अत	म०	अस्व	एथाम्	अध्वम्
आनि	आव	आम	उ०	ऐ	आवहै	आमहै

लङ् (धातु + अय्) (धातु से पहले अ या आ) — **लङ् (धातु + अय्)**

अत्	अताम्	अन्	प्र०	अत	एताम्	अन्त
अः	अतम्	अत	म०	अथाः	एथाम्	अध्वम्
अम्	आव	आम	उ०	ए	आवहि	आमहि

विधिलिङ् (धातु + अय्) — **विधिलिङ् (धातु + अय्)**

एत्	एताम्	एयुः	प्र०	एत	एयाताम्	एरन्
एः	एतम्	एत	म०	एथाः	एयाथाम्	एध्वम्
एयम्	एव	एम	उ०	एय	एवहि	एमहि

चुरादिगण। उभयपदी धातुएँ

(१७) चुर् (चुराना) (दे० अ० ५९)

परस्मैपद —लट् / **आत्मनेपद—लट्**

चोरयति	चोरयतः	चोरयन्ति	प्र०	चोरयते	चोरयेते	चोरयन्ते
चोरयसि	चोरयथः	चोरयथ	म०	चोरयसे	चोरयेथे	चोरयध्वे
चोरयामि	चोरयावः	चोरयामः	उ०	चोरये	चोरयावहे	चोरयामहे

लोट् / **लोट्**

चोरयतु	चोरयताम्	चोरयन्तु	प्र०	चोरयताम्	चोरयेताम्	चोरयन्ताम्
चोरय	चोरयतम्	चोरयत	म०	चोरयस्व	चोरयेथाम्	चोरयध्वम्
चोरयाणि	चोरयाव	चोरयाम	उ०	चोरयै	चोरयावहै	चोरयामहै

लङ् / **लङ्**

अचोरयत्	अचोरयताम्	अचोरयन्	प्र०	अचोरयत	अचोरयेताम्	अचोरयन्त
अचोरयः	अचोरयतम्	अचोरयत	म०	अचोरयथाः	अचोरयेथाम्	अचोरयध्वम्
अचोरयम्	अचोरयाव	अचोरयाम	उ०	अचोरये	अचोरयावहि	अचोरयामहि

विधिलिङ् / **विधिलिङ्**

चोरयेत्	चोरयेताम्	चोरयेयुः	प्र०	चोरयेत	चोरयेयाताम्	चोरयेरन्
चोरयेः	चोरयेतम्	चोरयेत	म०	चोरयेथाः	चोरयेयाथाम्	चोरयेध्वम्
चोरयेयम्	चोरयेव	चोरयेम	उ०	चोरयेय	चोरयेवहि	चोरयेमहि

चोरयिष्यति	चोरयिष्यतः	चोरयिष्यन्ति	लृट्	चोरयिष्यते	चोरयिष्येते	०
चोरयिता	चोरयितारौ	चोरयितारः	लुट्	चोरयिता	चोरयितारौ	०
चोर्यात्	चोर्यास्ताम्	चोर्यासुः	आ०लिङ्	चोरयिषीष्ट	चोरयिषीयास्ताम्	०
अचोरयिष्यत्	अचोरयिष्यताम्	०	लृङ्	अचोरयिष्यत	अचोरयिष्येताम्	०

लिट् (क) (चोरयां + कृ) / **लिट् (क) (चोरयां + कृ)**

चोरयांचकार	–चक्रतुः	–चक्रुः	प्र०	चोरयांचक्रे	–चक्राते	–चक्रिरे
–चकर्थ	–चक्रथुः	–चक्र	म०	–चकृषे	–चक्राथे	–चकृढ्वे
–चकार, चकर	–चकृव	–चकृम	उ०	–चक्रे	–चकृवहे	–चकृमहे

(ख) (चोरयां + भू) चोरयांबभूव आदि। (ख) (चोरयां + भू) चोरयांबभूव आदि

(ग) (चोरयाम् + अस्) चोरयामास आदि। (ग) (चोरयाम् + अस्) चोरयामास आदि

लुङ् (३) / **लुङ् (३)**

अचूचुरत्	अचूचुरताम्	अचूचुरन्	प्र०	अचूचुरत	अचूचुरेताम्	अचूचुरन्त
अचूचुरः	अचूचुरतम्	अचूचुरत	म०	अचूचुरथाः	अचूचुरेथाम्	अचूचुरध्वम्
अचूचुरम्	अचूचुराव	अचूचुराम	उ०	अचूचुरे	अचूचुरावहि	अचूचुरामहि

(९८) चिन्त् (सोचना) (दे० अ० ५९) (दोनों पदों में चुर् के तुल्य)

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
चिन्तयति	चिन्तयत:	चिन्तयन्ति	प्र०	चिन्तयते	चिन्तयेते	चिन्तयन्ते
चिन्तयसि	चिन्तयथ:	चिन्तयथ	म०	चिन्तयसे	चिन्तयेथे	चिन्तयध्वे
चिन्तयामि	चिन्तयाव:	चिन्तयाम:	उ०	चिन्तये	चिन्तयावहे	चिन्तयामहे

लोट्				लोट्		
चिन्तयतु	चिन्तयताम्	चिन्तयन्तु	प्र०	चिन्तयताम्	चिन्तयेताम्	चिन्तयन्ताम्
चिन्तय	चिन्तयतम्	चिन्तयत	म०	चिन्तयस्व	चिन्तयेथाम्	चिन्तयध्वम्
चिन्तयानि	चिन्तयाव	चिन्तयाम	उ०	चिन्तयै	चिन्तयावहै	चिन्तयामहै

लङ्				लङ्		
अचिन्तयत्	अचिन्तयताम्	अचिन्तयन्	प्र०	अचिन्तयत	अचिन्तयेताम्	अचिन्तयन्त
अचिन्तय:	अचिन्तयतम्	अचिन्तयत	म०	अचिन्तयथा:	अचिन्तयेथाम्	अचिन्तयध्वम्
अचिन्तयम्	अचिन्तयाव	अचिन्तयाम	उ०	अचिन्तये	अचिन्तयावहि	अचिन्तयामहि

विधिलिङ्				विधिलिङ्		
चिन्तयेत्	चिन्तयेताम्	चिन्तयेयु:	प्र०	चिन्तयेत	चिन्तयेयाताम्	चिन्तयेरन्
चिन्तये:	चिन्तयेतम्	चिन्तयेत	म०	चिन्तयेथा:	चिन्तयेयाथाम्	चिन्तयेध्वम्
चिन्तयेयम्	चिन्तयेव	चिन्तयेम	उ०	चिन्तयेय	चिन्तयेवहि	चिन्तयेमहि

चिन्तयिष्यति	चिन्तयिष्यत:०	लृट्	चिन्तयिष्यते	चिन्तयिष्येते	०
चिन्तयिता	चिन्तयितारौ०	लुट्	चिन्तयिता	चिन्तयितारौ	०
चिन्त्यात्	चिन्त्यास्ताम्०	आ०लिङ्	चिन्तयिषीष्ट	चिन्तयिषीयास्ताम्	०
अचिन्तयिष्यत्	अचिन्तयिष्यताम्०	लृङ्	अचिन्तयिष्यत	अचिन्तयिष्येताम्	०

लिट् (क) (चिन्तयां + कृ)				लिट् (क) (चिन्तयां + कृ)		
चिन्तयांचकार	- चक्रतु:	-चक्रु:	प्र०	चिन्तयांचक्रे	-चक्राते	-चक्रिरे
-चकर्थ	-चक्रथु:	-चक्र	म०	-चकृषे	-चक्राथे	-चकृढ्वे
-चकार, चकर	-चकृव	-चकृम	उ०	-चक्रे	-चकृवहे	-चकृमहे

(ख)(चिन्तयां + भू) चिन्तयांबभूव आदि। (ख) (चिन्तयां + भू) चिन्तयांबभूव आंदि

(ग) (चिन्तयाम्+ अस्) चिन्तयामास आदि। (ग) (चिन्तयाम् + अस्) चिन्तयामास आदि

लुङ् (३)				लुङ् (३)		
अचिचिन्तत्	अचिचिन्तताम्	अचिचिन्तन्	प्र०	अचिचिन्तत	अचिचिन्तेताम्	अचिचिन्तन्त
अचिचिन्त:	अचिचिन्ततम्	अचिचिन्तत	म०	अचिचिन्तथा:	अचिचिन्तेथाम्	अचिचिन्तध्वम्
अचिचिन्तम्	अचिचिन्ताव	अचिचिन्ताम	उ०	अचिचिन्ते	अचिचिन्तावहि	अचिचिन्तामहि

(९९) कथ् (कहना) (दे० अ० ६०)

सूचना—दोनों पदों में पूरे रूप चुर् के तुल्य।

परस्मैपद—लट्

कथयति	कथयतः	कथयन्ति	प्र०
कथयसि	कथयथः	कथयथ	म०
कथयामि	कथयावः	कथयामः	उ०

—

कथयतु	कथयताम्	कथयन्तु	लोट्
अकथयत्	अकथयताम्	अकथयन्	लङ्
कथयेत्	कथयेताम्	कथयेयुः	वि०लिङ्
कथयिष्यति	कथयिष्यतः०		लृट्
कथयिता	कथयितारौ		लुट्
कथ्यात्	कथ्यास्ताम्०		आ०लिङ्
अकथयिष्यत्	अकथयिष्यताम्०		लृङ्

(क) कथयांचकार-चक्रतुः-चक्रुः — लिट्
(ख) कथयांबभूव (ग) कथयामास — ,,
अचकथत् अचकथताम्० — लुङ्

आत्मनेपद

कथयते	कथयेते	कथयन्ते	लट्
कथयताम्	कथयेताम्	कथयन्ताम्	लोट्
अकथयत	अकथयेताम्	अकथयन्त	लङ्
कथयेत	कथयेयाताम्	कथयेरन्	वि० लिङ्
कथयिष्यते	कथयिष्येते	कथयिष्यन्ते	लृट्
कथयिता	कथयितारौ०		लुट्
कथयिषीष्ट	कथयिषीयास्ताम्०		आ०लिङ्
अकथयिष्यत	अकथयिष्येताम्०		लृङ्

(क) कथयांचक्रे-चक्राते-चक्रिरे — लिट्
(ख) कथयांबभूव (ग) कथयामास — ,,
अचकथत अचकथेताम्० — लुङ्

—

(१००) भक्ष् (खाना) (दे० अ० ६०)

सूचना—दोनों पदों में पूरे रूप चुर् के तुल्य।

परस्मैपद—लट्

प्र०	भक्षयति	भक्षयतः	भक्षयन्ति
म०	भक्षयसि	भक्षयथः	भक्षयथ
उ०	भक्षयामि	भक्षयावः	भक्षयामः

—

लोट्	भक्षयतु	भक्षयताम्	भक्षयन्तु
लङ्	अभक्षयत्	अभक्षयताम्	अभक्षयन्
वि०लिङ्	भक्षयेत्	भक्षयेताम्	भक्षयेयुः
लृट्	भक्षयिष्यति	भक्षयिष्यतः०	
लुट्	भक्षयिता	भक्षयितारौ०	
आ०लिङ्	भक्ष्यात्	भक्ष्यास्ताम्०	
लृङ्	अभक्षयिष्यत्	अभक्षयिष्यताम्०	

लिट् — (क) भक्षयांचकार - चक्रतुः -चक्रुः
,, — (ख) भक्षयांबभूव (ग) भक्षयामास
लुङ् — अबभक्षत् अबभक्षताम्०

आत्मनेपद

लट्	भक्षयते	भक्षयेते	भक्षयन्ते
लोट्	भक्षयताम्	भक्षयेताम्	भक्षयन्ताम्
लङ्	अभक्षयत	अभक्षयेताम्	अभक्षयन्त
वि० लिङ्	भक्षयेत	भक्षयेयाताम्	भक्षयेरन्
लृट्	भक्षयिष्यते	भक्षयिष्येते०	
लुट्	भक्षयिता	भक्षयितारौ०	
आ०लिङ्	भक्षयिषीष्ट	भक्षयिषीयास्ताम्०	
लृङ्	अभक्षयिष्यत	अभक्षयिष्येताम्०	

लिट् — (क) भक्षयांचक्रे-चक्राते-चक्रिरे
,, — (ख) भक्षयांबभूव(ग) भक्षयामास
लुङ् — अबभक्षत अबभक्षेताम्०

—

(क) णिजन्त (प्रेरणार्थक) धातु

(१०१) कारि (करवाना) (व्याकरणादि के लिए देखो अभ्यास ३३-३४)

सूचना—परस्मै० और आत्मने० दोनों पदों में रूप चुर् (९७) धातु के तुल्य चलेंगे।

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
कारयति	कारयतः	कारयन्ति	प्र०	कारयते	कारयेते	कारयन्ते
कारयसि	कारयथः	कारयथ	म०	कारयसे	कारयेथे	कारयध्वे
कारयामि	कारयावः	कारयामः	उ०	कारये	कारयावहे	कारयामहे
लोट्				**लोट्**		
कारयतु	कारयताम्	कारयन्तु	प्र०	कारयताम्	कारयेताम्	कारयन्ताम्
कारय	कारयतम्	कारयत	म०	कारयस्व	कारयेथाम्	कारयध्वम्
कारयाणि	कारयाव	कारयाम	उ०	कारयै	कारयावहै	कारयामहै
लङ्				**लङ्**		
अकारयत्	अकारयताम्	अकारयन्	प्र०	अकारयत	अकारयेताम्	अकारयन्त
अकारयः	अकारयतम्	अकारयत	म०	अकारयथाः	अकारयेथाम्	अकारयध्वम्
अकारयम्	अकारयाव	अकारयाम	उ०	अकारये	अकारयावहि	अकारयामहि
विधिलिङ्				**विधिलिङ्**		
कारयेत्	कारयेताम्	कारयेयुः	प्र०	कारयेत	कारयेयाताम्	कारयेरन्
कारयेः	कारयेतम्	कारयेत	म०	कारयेथाः	कारयेयाथाम्	कारयेध्वम्
कारयेयम्	कारयेव	कारयेम	उ०	कारयेय	कारयेवहि	कारयेमहि

कारयिष्यति	कारयिष्यतः०	लृट्	कारयिष्यते	कारयिष्येते०
कारयिता	कारयितारौ०	लुट्	कारयिता	कारयितारौ०
कार्यात्	कार्यास्ताम्०	आ०लिङ्	कारयिषीष्ट	कारयिषीयास्ताम्०
अकारयिष्यत्	अकारयिष्यताम्०	लृङ्	अकारयिष्यत	अकारयिष्येताम्०

लिट् (क) (कारयां + कृ)				लिट् (क) (कारयां + कृ)		
कारयांचकार	-चक्रतुः	-चक्रुः	प्र०	कारयांचक्रे	-चक्राते	-चक्रिरे
-चकर्थ	-चक्रथुः	-चक्र	म०	-चकृषे	-चक्राथे	-चकृढ्वे
-चकार, चकर	-चकृव	-चकृम	उ०	-चक्रे	-चकृवहे	-चकृमहे

(ख) (कारयां + भू) कारयांबभूव आदि। (ख) (कारयां + भू) कारयांबभूव आदि

(ग) (कारयाम् + अस्) कारयामास आदि। (ग) (कारयाम् + अस्) कारयामास आदि

लुङ् (३)				लुङ् (३)		
अचीकरत्	अचीकरताम्	अचीकरन्	प्र०	अचीकरत	अचीकरेताम्	अचीकरन्त
अचीकरः	अचीकरतम्	अचीकरत	म०	अचीकरथाः	अचीकरेथाम्	अचीकरध्वम्
अचीकरम्	अचीकराव	अचीकराम	उ०	अचीकरे	अचीकरावहि	अचीकरामहि

(ख) सन्नन्त (इच्छार्थक) धातुएँ (देखो अभ्यास ३५)

(१०२) पिपठिष (पठ् + सन्)
(पढ़ना चाहना)

सूचना—परस्मै० में भू के तुल्य।

(१०३) जिज्ञास (ज्ञा + सन्)
(जिज्ञासा करना)

सूचना—आत्मने० में सेव् के तुल्य।

परस्मैपद—लट्				आत्मनेपद—लट्		
पिपठिषति	पिपठिषतः	पिपठिषन्ति	प्र०	जिज्ञासते	जिज्ञासेते	जिज्ञासन्ते
पिपठिषसि	पिपठिषथः	पिपठिषथ	म०	जिज्ञाससे	जिज्ञासेथे	जिज्ञासध्वे
पिपठिषामि	पिपठिषावः	पिपठिषामः	उ०	जिज्ञासे	जिज्ञासावहे	जिज्ञासामहे

लोट्				लोट्		
पिपठिषतु	पिपठिषताम्	पिपठिषन्तु	प्र०	जिज्ञासताम्	जिज्ञासेताम्	जिज्ञासन्ताम्
पिपठिष	पिपठिषतम्	पिपठिषत	म०	-सस्व	-सेथाम्	-सध्वम्
पिपठिषाणि	पिपठिषाव	पिपठिषाम	उ०	-सै	-सावहै	-सामहै

लङ्				लङ्		
अपिपठिषत्	अपिपठिषताम्	अपिपठिषन्	प्र०	अजिज्ञासत	-सेताम्	-सन्त
अपिपठिषः	अपिपठिषतम्	अपिपठिषत	म०	-सथाः	-सेथाम्	-सध्वम्
अपिपठिषम्	अपिपठिषाव	अपिपठिषाम	उ०	-से	-सावहि	-सामहि

विधिलिङ्				विधिलिङ्		
पिपठिषेत्	पिपठिषेताम्	पिपठिषेयुः	प्र०	जिज्ञासेत	जिज्ञासेयाताम्	जिज्ञासेरन्
पिपठिषेः	पिपठिषेतम्	पिपठिषेत	म०	-सेथाः	-सेयाथाम्	-सेध्वम्
पिपठिषेयम्	पिपठिषेव	पिपठिषेम	उ०	-सेय	-सेवहि	-सेमहि

पिपठिषिष्यति	पिपठिषिष्यतः०	लृट्	जिज्ञासिष्यते	जिज्ञासिष्येते०
पिपठिषिता	पिपठिषितारौ०	लुट्	जिज्ञासिता	जिज्ञासितारौ०
पिपठिष्यात्	पिपठिष्यास्ताम्०	आ०लिङ्	जिज्ञासिषीष्ट	जिज्ञासिषीयास्ताम्०
अपिपठिषिष्यत्	अपिपठिषिष्यताम्०	लृङ्	अजिज्ञासिष्यत	अजिज्ञासिष्येताम्०

लिट् (पिपठिष + आम् + कृ, भू, अस्) **लिट् (जिज्ञास + आम् + कृ, भू, अस्)**

(क) पिपठिषांचकार – चकतुः आदि   (क) जिज्ञासांचक्रे–चक्राते आदि

(ख) पिपठिषांबभूव–बभूवतुः आदि   (ख) जिज्ञासांबभूव –बभूवतुः आदि

(ग) पिपठिषामास	–आसतुः	–आसुः	प्र०	(ग) जिज्ञासामास	–आसतुः	–आसुः
–आसिथ	–आसथुः	–आस	म०	–आसिथ	–आसथुः	–आस
–आस	–आसिव	–आसिम	उ०	–आस	–आसिव	–आसिम

लुङ् (५)				लुङ् (५)		
अपिपठिषीत्	-ठिषिष्टाम्	-ठिषिषुः	प्र०	अजिज्ञासिष्ट	-सिषाताम्	-सिषत
-ठिषीः	-ठिषिष्टम्	-ठिषिष्ट	म०	-सिष्ठाः	-सिषाथाम्	-सिध्वम्
-ठिषिषम्	-ठिषिष्व	-ठिषिष्म	उ०	-सिषि	-सिष्वहि	-सिष्महि

(ग) भाव-कर्म-वाच्य

(१०४) कृ (करना) (दे० अ० ३१-३२) (१०५) दा (देना) (दे० अ० ३१-३२)

सूचना—भाववाच्य में प्र० पु० एक० ही रहेगा। *सूचना*—भाववाच्य में प्र० पु० एक० ही रहेगा।

	कर्मवाच्य—लट्				कर्मवाच्य—लट्	
क्रियते	क्रियेते	क्रियन्ते	प्र०	दीयते	दीयेते	दीयन्ते
क्रियसे	क्रियेथे	क्रियध्वे	म०	दीयसे	दीयेथे	दीयध्वे
क्रिये	क्रियावहे	क्रियामहे	उ०	दीये	दीयावहे	दीयामहे
	लोट्				लोट्	
क्रियताम्	क्रियेताम्	क्रियन्ताम्	प्र०	दीयताम्	दीयेताम्	दीयन्ताम्
क्रियस्व	क्रियेथाम्	क्रियध्वम्	म०	दीयस्व	दीयेथाम्	दीयध्वम्
क्रियै	क्रियावहै	क्रियामहै	उ०	दीयै	दीयावहै	दीयामहै
	लङ्				लङ्	
अक्रियत	अक्रियेताम्	अक्रियन्त	प्र०	अदीयत	अदीयेताम्	अदीयन्त
अक्रियथाः	अक्रियेथाम्	अक्रियध्वम्	म०	अदीयथाः	अदीयेथाम्	अदीयध्वम्
अक्रिये	अक्रियावहि	अक्रियामहि	उ०	अदीये	अदीयावहि	अदीयामहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
क्रियेत	क्रियेयाताम्	क्रियेरन्	प्र०	दीयेत	दीयेयाताम्	दीयेरन्
क्रियेथाः	क्रियेयाथाम्	क्रियेध्वंम्	म०	दीयेथाः	दीयेयाथाम्	दीयेध्वम्
क्रियेय	क्रियेवहि	क्रियेमहि	उ०	दीयेय	दीयेवहि	दीयेमहि

करिष्यते,	कारिष्यते	(दोनों प्रकार से)	लृट्०	दास्यते,	दायिष्यते	(दोनों प्रकार से)
कर्ता,	कारिता	(,, ,,)	लुट्	दाता,	दायिता	(,, ,,)
कृषीष्ट,	कारिषीष्ट	(,, ,,)	आ०लिङ्	दासीष्ट,	दायिषीष्ट	(,, ,,)
अकरिष्यत,	अकारिष्यत	(,, ,,)	लृङ्	अदास्यत,	अदायिष्यत	(,, ,,)

	लिट्				लिट्	
चक्रे	चक्राते	चक्रिरे	प्र०	ददे	ददाते	ददिरे
चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे	म०	ददिषे	ददाथे	ददिध्वे
चक्रे	चकृवहे	चकृमहे	उ०	ददे	ददिवहे	ददिमहे
	लुङ् (५)				लुङ् (५)	
अकारि	अकारिषाताम्	अकारिषत	प्र०	अदायि	अदायिषाताम्	अदायिषत
अकारिष्ठाः	अकारिषाथाम्	अकारिध्वम्	म०	अदायिष्ठाः	अदायिषाथाम्	अदायिध्वम्
अकारिषि	अकारिष्वहि	अकारिष्महि	उ०	अदायिषि	अदायिष्वहि	अदायिष्महि

(४) धातुरूप-कोष

(सिद्धान्तकौमुदी की सभी प्रसिद्ध धातुओं के रूपों का संग्रह)

आवश्यक निर्देश

१. सिद्धान्तकौमुदी में जितनी भी प्रसिद्ध धातुएँ हैं और जिनका संस्कृत-साहित्य में विशेष रूप से प्रयोग हुआ है, उन सभी धातुओं का यहाँ पर अकारादिक्रम से संग्रह किया गया है। प्रत्येक धातु के पूरे १० लकारों के प्रारम्भिक रूप (प्र०पु०एकवचन) यहाँ पर दिए गए हैं। साथ ही प्रत्येक धातु के णिच् प्रत्यय और कर्मवाच्य के रूप भी दिए गए हैं। इस कोष में ४६५ धातुएँ दी गई हैं।

२. जो धातु जिस गण की है, उस धातु के रूप उस गण की धातुओं के तुल्य ही चलेंगे। धातुरूप-संग्रह में प्रत्येक गण के प्रारम्भ में उस गण की विशेषताएँ दी हुई हैं और साथ ही संक्षिप्त-रूप भी दिए हुए हैं। जो धातु जिस गण की हो और जिस पद (परस्मै०, आत्मने० या उभयपद) की हो, उसके रूप इस गण में निर्दिष्ट संक्षिप्त-रूप लगाकर बनावें। जो उभयपदी धातुएँ परस्मैपद में ही अधिक प्रचलित हैं, उनके परस्मैपद के ही रूप यहाँ दिए गए हैं। जिनके दोनों पदों में रूप प्रचलित हैं, उनके दोनों पदों के रूप दिए हैं। जिन उभयपदी धातुओं के रूप यहाँ आत्मनेपद में नहीं दिए हैं, उनके आत्मनेपद के रूप उस गण की अन्य आत्मनेपदी धातुओं के तुल्य चलावें।

३. सिद्धान्तकौमुदी के लकारों का प्रामाणिक क्रम निम्नलिखित है। इसी क्रम से यहाँ धातुओं के रूप दिए गए हैं। लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लोट्, लङ् विधिलिङ् आशीर्लिङ् लुङ् लृङ्। अन्त में णिच् प्रत्यय और भावकर्मवाच्य का प्र० पु० एक० का रूप दिया गया है। प्रत्येक पृष्ठ पर ऊपर लकारों के नाम दिए गए हैं। उनके नीचे प्रत्येक पंक्ति में उस लकार के रूप दिए गए हैं। रूप दाएँ और बाएँ दोनों पृष्ठों पर फैले हुए हैं, अतः उस धातु के सामने के दोनों पृष्ठ देखें।

४. प्रत्येक धातु के बाद कोष्ठ में निर्देश कर दिया गया है कि वह किस गण की है और किस पद में उसके रूप चलते हैं। साथ ही धातु का हिन्दी में अर्थ भी दिया गया है। धातुओं के एक या दो ही अर्थ दिए गए हैं। संक्षेप के लिए कहीं-कहीं पर 'करना' के लिए ० (शून्य) दिया गया है।

५. संक्षेप के लिए निम्नलिखित संकेतों का प्रयोग किया गया है:— प० =परस्मैपदी। आ०=आत्मनेपदी। उ०=उभयपदी। १=भ्वादिगण। २=अदादिगण। ३=जुहोत्यादिगण। ४=दिवादिगण। ५=स्वादिगण। ६=तुदादिगण। ७=रुधादिगण। ८=तनादिगण। ९=क्र्यादिगण। १०=चुरादिगण। ११=कण्ड्वादिगण।

६. लङ् लुङ् और लृङ् में अ या आ धातु से ही पहले लगता है, उपसर्ग से पूर्व कभी नहीं। अतः उपसर्गयुक्त धातुओं में लङ् आदि में धातु से पहले अ या आ लगाकर उपसर्ग से मिलावें। सन्धिकार्य प्राप्त हो तो उसे भी करें। स्वर-आदिवाली धातुओं से पहले आ लगता है और व्यंजन-आदिवाली धातुओं के पहले अ लगता है।

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
अघ्	(१० उ०, पाप करना)	अघयति-ते	अघयांचकार	अघयिता	अघयिष्यति	अघयतु
अङ्क्	(१० उ०, चिह्न०)	अङ्कयति-ते	अङ्कयांचकार	अङ्कयिता	अङ्कयिष्यति	अङ्कयतु
अञ्ज्	(७ प०, स्वच्छ०)	अनक्ति	आनञ्ज	अञ्जिता	अञ्जिष्यति	अनक्तु
अट्	(१ प०, घूमना)	अटति	आट	अटिता	अटिष्यति	अटतु
अत्	(१ प०, सदा घूमना)	अतति	आत	अतिता	अतिष्यति	अततु
अद्	(२ प०, खाना)	अत्ति	आद,जघास	अत्ता	अत्स्यति	अत्तु
अन्	(२ प०,जीवित रहना)	प्र+अनिति	आन	अनिता	अनिष्यति	अनितु
अय्	(१ आ०, जाना)	परा+अयते	अयांचक्रे	अयिता	अयिष्यते	अयताम्
अर्च्	(१ प०, पूजना)	अर्चति	आनर्च	अर्चिता	अर्चिष्यति	अर्चतु
अर्ज्	(१ प०, संग्रह०)	अर्जति	आनर्ज	अर्जिता	अर्जिष्यति	अर्जतु
अर्ह्	(१ प०, योग्य होना)	अर्हति	आनर्ह	अर्हिता	अर्हिष्यति	अर्हतु
अव्	(१ प०, रक्षा०)	अवति	आव	अविता	अविष्यति	अवतु
अश्	(५ आ०, व्याप्त०)	अश्नुते	आनशे	अशिता	अशिष्यते	अश्नुताम्
अश्	(९ प०, खाना)	अश्नाति	आश	अशिता	अशिष्यति	अश्नातु
अस्	(२ प०, होना)	अस्ति	बभूव	भविता	भविष्यति	अस्तु
अस्	(४ प०, फेंकना)	अस्यति	आस	असिता	असिष्यति	अस्यतु
असू	(११ प०, द्रोह०)	असूयति	असूयांचकार	असूयिता	असूयिष्यति	असूयतु
आन्दोल्	(१० उ०, हिलना)	आन्दोल-यति	आन्दोलयां-चकार	आन्दोल-यिता	आन्दोलयि-ष्यति	आन्दोल-यतु
आप्	(५ प०, पाना)	आप्नोति	आप	आप्ता	आप्स्यति	आप्नोतु
आप्	(१० उ०, पहुँचाना)	आपयति-ते	आपयांचकार	आपयिता	आपयिष्यति	आपयतु
आस्	(२ आ०, बैठना)	आस्ते	आसांचक्रे	आसिता	आसिष्यते	आस्ताम्
इ	(२ प०, जाना)	एति	इयाय	एता	एष्यति	एतु
इ	(अधि + २, आ०, पढ़ना)	अधीते	अधिजगे	अध्येता	अध्येष्यते	अधीताम्
इष्	(४ प०, जाना)	अनु+इष्यति	इयेष	एषिता	एषिष्यति	इष्यतु
इष्	(६ प०, चाहना)	इच्छति	इयेष	एषिता	एषिष्यति	इच्छतु
ईक्ष्	(१ आ०, देखना)	ईक्षते	ईक्षांचक्रे	ईक्षिता	ईक्षिष्यते	ईक्षताम्
ईर्	(१० उ०, प्रेरणा)	प्र+ईरयति-ते	ईरयांचकार	ईरयिता	ईरयिष्यति	ईरयतु
ईर्ष्य्	(१ प०, ईर्ष्या०)	ईर्ष्यति	ईर्ष्यांचकार	ईर्ष्यिता	ईर्ष्यिष्यति	ईर्ष्यतु
ईह्	(१ आ०, चाहना)	ईहते	ईहांचक्रे	ईहिता	ईहिष्यते	ईहताम्
उज्झ्	(६ प०, छोड़ना)	उज्झति	उज्झांचकार	उज्झिता	उज्झिष्यति	उज्झतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्मवाच्य
आघयत्	अघयेत्	अघ्यात्	आजिघत्	आघयिष्यत्	अघयति	अघ्यते
आङ्कयत्	अङ्कयेत्	अङ्क्यात्	आञ्चिकत्	आङ्कयिष्यत्	अङ्कयति	अङ्क्यते
आनक्	अञ्ज्यात्	अज्यात्	आञ्जीत्	आञ्जिष्यत्	आञ्जयति	अज्यते
आटत्	अटेत्	अट्यात्	आटीत्	आटिष्यत्	आटयति	अट्यते
आतत्	अतेत्	अत्यात्	आतीत्	आतिष्यत्	आतयति	अत्यते
आदत्	अद्यात्	अद्यात्	अघसत्	आत्स्यत्	आदयति	अद्यते
आनत्	अन्यात्	अन्यात्	आनीत्	आनिष्यत्	आनयति	अन्यते
आयत	अयेत	अयिषीष्ट	आयिष्ट	आयिष्यत	आययते	अय्यते
आर्चत्	अर्चेत्	अर्च्यात्	आर्चीत्	आर्चिष्यत्	अर्चयति	अर्च्यते
आर्जत्	अर्जेत्	अर्ज्यात्	आर्जीत्	आर्जिष्यत्	अर्जयति	अर्ज्यते
आर्हत्	अर्हेत्	अर्ह्यात्	आर्हीत्	आर्हिष्यत्	अर्हयति	अर्ह्यते
आवत्	अवेत्	अव्यात्	आवीत्	आविष्यत्	आवयति	अव्यते
आश्नुत	अश्नुवीत	अशिषीष्ट	आशिष्ट	आशिष्यत	आशयति	अश्यते
आश्नात्	अश्नीयात्	अश्यात्	आशीत्	आशिष्यत्	आशयति	अश्यते
आसीत्	स्यात्	भूयात्	अभूत्	अभविष्यत्	भावयति	भूयते
आस्यत्	अस्येत्	अस्यात्	आस्यत्	आसिष्यत्	आसयति	अस्यते
आसूयत्	असूयेत्	असूय्यात्	आसूयीत्	आसूयिष्यत्	असूययति	असूय्यते
आन्दोलयत्	आन्दोलयेत्	आन्दोल्यात्	आन्दुदोलत्	आन्दोलयिष्यत्	आन्दोलयति	आन्दोल्यते
आप्नोत्	आप्नुयात्	आप्यात्	आपत्	आप्स्यत्	आपयति	आप्यते
आपयत्	आपयेत्	आप्यात्	आपिपत्	आपयिष्यत्	आपयति	आप्यते
आस्त	आसीत	आसिषीष्ट	आसिष्ट	आसिष्यत	आसयति	आस्यते
ऐत्	इयात्	ईयात्	अगात्	ऐष्यत्	गमयति	ईयते
अध्यैत	अधीयीत	अध्येषीष्ट	अध्यैष्ट	अध्यैष्यत	अध्यापयति	अधीयते
ऐष्यत्	इष्येत्	इष्यात्	ऐषीत्	ऐषिष्यत्	एषयति	इष्यते
ऐच्छत्	इच्छेत्	इष्यात्	ऐषीत्	ऐषिष्यत्	एषयति	इष्यते
ऐक्षत	ईक्षेत	ईक्षिषीष्ट	ऐक्षिष्ट	ऐक्षिष्यत	ईक्षयति	ईक्ष्यते
ऐरयत्	ईरयेत्	ईर्यात्	ऐरिरत्	ऐरयिष्यत्	ईरयति	ईर्यते
ऐर्ष्यत्	ईर्ष्येत्	ईर्ष्यात्	ऐर्ष्यीत्	ऐर्ष्यिष्यत्	ईर्ष्ययति	ईर्ष्यते
ऐहत	ईहेत	ईहिषीष्ट	ऐहिष्ट	ऐहिष्यत	ईहयति	ईह्यते
औज्झत्	उज्झेत्	उज्झ्यात्	औज्झीत्	औज्झिष्यत्	उज्झयति	उज्झ्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
उन्द्	(७ प०, भिगोना)	उनत्ति	उन्दांचकार	उन्दिता	उन्दिष्यति	उनत्तु
ऊह्	(१ आ०, तर्क०)	ऊहते	ऊहांचक्रे	ऊहिता	ऊहिष्यते	ऊहताम्
ऋच्छ्	(६ प०, जाना)	ऋच्छति	आनर्च्छ	ऋच्छिता	ऋच्छिष्यति	ऋच्छतु
एज्	(१ प०, काँपना)	एजति	एजांचकार	एजिता	एजिष्यति	एजतु
एध्	(१ आ०, बढ़ना)	एधते	एधांचक्रे	एधिता	एधिष्यते	एधताम्
कण्डू	(११ उ०, खुजाना)	कण्डूयति-ते	कण्डूयांचकार	कण्डूयिता	कण्डूयिष्यति	कण्डूयतु
कथ्	(१० उ०, कहना) प०	कथयति	कथयांचकार	कथयिता	कथयिष्यति	कथयतु
	आ०	कथयते	कथयांचक्रे	कथयिता	कथयिष्यते	कथयताम्
कम्	(१ आ०, चाहना)	कामयते	कामयांचक्रे	कामयिता	कामयिष्यते	कामयताम्
कम्प्	(१ आ०, काँपना)	कम्पते	चकम्पे	कम्पिता	कम्पिष्यते	कम्पताम्
कांक्ष्	(१ प०, चाहना)	कांक्षति	चकांक्ष	कांक्षिता	कांक्षिष्यति	कांक्षतु
कांश्	(१ आ०, चमकना)	काशते	चकाशे	काशिता	काशिष्यते	काशताम्
कास्	(१ आ०, खाँसना)	कासते	कासांचक्रे	कासिता	कासिष्यते	कासताम्
कित्	(१ प०, चिकित्सा०)	चिकित्सति	चिकित्सां-चकार	चिकित्सिता	चिकित्सि-ष्यति	चिकि-त्सतु
कील्	(१ प०, गाड़ना)	कीलति	चिकील	कीलिता	कीलिष्यति	कीलतु
कु	(२ प०, गूँजना)	कौति	चुकाव	कोता	कोष्यति	कौतु
कुञ्च्	(१ प०, कम होना)	कुञ्चति	चुकुञ्च	कुञ्चिता	कुञ्चिष्यति	कुञ्चतु
कुत्स्	(१० आ०, दोष देना)	कुत्सयते	कुत्सयांचक्रे	कुत्सयिता	कुत्सयिष्यते	कुत्सयताम्
कुप्	(४ प०, क्रोध०)	कुप्यति	चुकोप	कोपिता	कोपिष्यति	कुप्यतु
कुर्द्	(१ आ०, कूदना)	कूर्दते	चुकूर्दे	कूर्दिता	कूर्दिष्यते	कूर्दताम्
कूज्	(१ प०, चूँ-चूँ करना)	कूजति	चुकूज	कूजिता	कूजिष्यति	कूजतु
कृ	(८ उ०, करना) प०	करोति	चकार	कर्ता	करिष्यति	करोतु
	आ०	कुरुते	चक्रे	कर्ता	करिष्यते	कुरुताम्
कृत्	(६ प०, काटना)	कृन्तति	चकर्त	कर्तिता	कर्तिष्यति	कृन्ततु
कृप्	(१ आ०, समर्थ होना)	कल्पते	चक्लृपे	कल्पिता	कल्पिष्यते	कल्पताम्
कृष्	(१ प०, जोतना)	कर्षति	चकर्ष	कर्ष्टा	कर्क्ष्यति	कर्षतु
कॄ	(६ प०, बखेरना)	किरति	चकार	करिता	करिष्यति	किरतु
कॄत्	(१० प०, नाम लेना)	कीर्तयति-ते	कीर्तयांचकार	कीर्तयिता	कीर्तयिष्यति	कीर्तयतु
क्रन्द्	(१ प०, रोना)	क्रन्दति	चक्रन्द	क्रन्दिता	क्रन्दिष्यति	क्रन्दतु
क्रम्	(१ प०, चलना)	क्रामति	चक्राम	क्रमिता	क्रमिष्यति	क्रामतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
औनत्	उन्द्यात्	उद्यात्	औन्दीत्	औन्दिष्यत्	उन्दयति	उद्यते
औहत	ऊहेत	ऊहिषीष्ट	औहिष्ट	औहिष्यत	ऊहयति	ऊह्यते
आर्च्छत्	ऋच्छेत्	ऋच्छ्यात्	आर्च्छीत्	आर्च्छिष्यत्	ऋच्छयति	ऋच्छ्यते
ऐजत्	एजेत्	एज्यात्	ऐजीत्	ऐजिष्यत्	एजयति	एज्यते
ऐधत	एधेत	एधिषीष्ट	ऐधिष्ट	ऐधिष्यत	एधयति	एध्यते
अकण्डूयत्	कण्डूयेत्	कण्डूय्यात्	अकण्डूयीत्	अकण्डूयिष्यत्	कण्डूययति	कण्डूय्यते
अकथयत्	कथयेत्	कथ्यात्	अचकथत्	अकथयिष्यत्	कथयति	कथ्यते
अकथयत	कथयेत	कथयिषीष्ट	अचकथत	अकथयिष्यत	,,	,,
अकामयत	कामयेत	कामयिषीष्ट	अचीकमत	अकामयिष्यत	कामयति	काम्यते
अकम्पत	कम्पेत	कम्पिषीष्ट	अकम्पिष्ट	अकम्पिष्यत	कम्पयति	कम्प्यते
अकांक्षत्	कांक्षेत्	कांक्ष्यात्	अकांक्षीत्	अकांक्षिष्यत्	कांक्षयति	कांक्ष्यते
अकाशत	काशेत	काशिषीष्ट	अकाशिष्ट	अकाशिष्यत	काशयति	काश्यते
अकासत	कासेत	कासिषीष्ट	अकासिष्ट	अकासिष्यत	कासयति	कास्यते
अचिकित्सत्	चिकित्सेत्	चिकित्स्यात्	अचिकित्सीत्	अचिकित्सिष्यत्	चिकित्सयति	चिकित्स्यते
अकीलत्	कीलेत्	कील्यात्	अकीलीत्	अकीलिष्यत्	कीलयति	कील्यते
अकौत्	कुयात्	कूयात्	अकौषीत्	अकोष्यत्	कावयति	कूयते
अकुञ्चत्	कुञ्चेत्	कुच्यात्	अकुञ्चीत्	अकुञ्चिष्यत्	कुञ्चयति	कुच्यते
अकुत्सयत	कुत्सयेत	कुत्सयिषीष्ट	अचुकुत्सत	अकुत्सयिष्यत	कुत्सयते	कुत्स्यते
अकुप्यत्	कुप्येत्	कुप्यात्	अकुपत्	अकोपिष्यत्	कोपयति	कुप्यते
अकूर्दत	कूर्देत	कूर्दिषीष्ट	अकूर्दिष्ट	अकूर्दिष्यत	कूर्दयति	कूर्द्यते
अकूजत्	कूजेत्	कूज्यात्	अकूजीत्	अकूजिष्यत्	कूजयति	कूज्यते
अकरोत्	कुर्यात्	क्रियात्	अकार्षीत्	अकरिष्यत्	कारयति	क्रियते
अकुरुत	कुर्वीत	कृषीष्ट	अकृत	अकरिष्यत	,,	,,
अकृन्तत्	कृन्तेत्	कृत्यात्	अकर्तीत्	अकर्तिष्यत्	कर्तयति	कृत्यते
अकल्पत	कल्पेत	कल्पिषीष्ट	अक्लृपत्	अकल्पिष्यत्	कल्पयति	क्लृप्यते
अकर्षत्	कर्षेत्	कृष्यात्	अकार्क्षीत्	अकर्क्ष्यत्	कर्षयति	कृष्यते
अकिरत्	किरेत्	कीर्यात्	अकारीत्	अकरिष्यत्	कारयति	कीर्यते
अकीर्तयत्	कीर्तयेत्	कीर्त्यात्	अचिकीर्तत्	अकीर्तयिष्यत्	कीर्तयति	कीर्त्यते
अक्रन्दत्	क्रन्देत्	क्रन्द्यात्	अक्रन्दीत्	अक्रन्दिष्यत्	क्रन्दयति	क्रन्द्यते
अक्रामत्	क्रामेत्	क्रम्यात्	अक्रमीत्	अक्रमिष्यत्	क्रमयति	क्रम्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
क्री	(९ उ०, खरीदना)	प०-क्रीणाति	चिक्राय	क्रेता	क्रेष्यति	क्रीणातु
		आ०-क्रीणीते	चिक्रिये	क्रेता	क्रेष्यते	क्रीणीताम्
क्रीड्	(१ प०, खेलना)	क्रीडति	चिक्रीड	क्रीडिता	क्रीडिष्यति	क्रीडतु
क्रुध्	(४ प०, क्रुद्ध होना)	क्रुध्यति	चुक्रोध	क्रोद्धा	क्रोत्स्यति	क्रुध्यतु
क्रुश्	(१ प०, रोना)	क्रोशति	चुक्रोश	क्रोष्टा	क्रोक्ष्यति	क्रोशतु
क्लम्	(४ प०, थकना)	क्लाम्यति	चक्लाम	क्लमिता	क्लमिष्यति	क्लाम्यतु
क्लिद्	(४ प०, गीला होना)	क्लिद्यति	चिक्लेद	क्लेदिता	क्लेदिष्यति	क्लिद्यतु
क्लिश्	(४ आ०, खिन्न होना)	क्लिश्यते	चिक्लिशे	क्लेशिता	क्लेशिष्यते	क्लिश्यताम्
क्लिश्	(९ प०, दुःख देना)	क्लिश्नाति	चिक्लेश	क्लेशिता	क्लेशिष्यति	क्लिश्नातु
क्वण्	(१ प०, झनझनकरना)	क्वणति	चक्वाण	क्वणिता	क्वणिष्यति	क्वणतु
क्वथ्	(१ प०, पकाना)	क्वथति	चक्वाथ	क्वथिता	क्वथिष्यति	क्वथतु
क्षम्	(१ आ०, क्षमा करना)	क्षमते	चक्षमे	क्षमिता	क्षमिष्यते	क्षमताम्
क्षम्	(४ प०, क्षमा करना)	क्षाम्यति	चक्षाम	क्षमिता	क्षमिष्यति	क्षाम्यतु
क्षर्	(१ प०, बहना)	क्षरति	चक्षार	क्षरिता	क्षरिष्यति	क्षरतु
क्षल्	(१० उ०, धोना)	प्र+क्षालयति-ते	क्षालयांचकार	क्षालयिता	क्षालयिष्यति	क्षालयतु
क्षि	(१ प०, नष्ट होना)	क्षयति	चिक्षाय	क्षेता	क्षेष्यति	क्षयतु
क्षिप्	(६ उ०, फेंकना)	क्षिपति-ते	चिक्षेप	क्षेप्ता	क्षेप्स्यति	क्षिपतु
क्षीब्	(१ आ०, मत्त होना)	क्षीबते	चिक्षीबे	क्षीबिता	क्षीबिष्यते	क्षीबताम्
क्षुद्	(७ उ०, पीसना)	क्षुणत्ति	चुक्षोद	क्षोत्ता	क्षोत्स्यति	क्षुणत्तु
क्षुभ्	(१ आ०, क्षुब्ध होना)	क्षोभते	चुक्षुभे	क्षोभिता	क्षोभिष्यते	क्षोभताम्
क्षै	(१ प० क्षीण होना)	क्षायति	चक्षौ	क्षाता	क्षास्यति	क्षायतु
क्ष्णु	(२ प०, तेज करना)	क्ष्णौति	चुक्ष्णाव	क्ष्णविता	क्ष्णविष्यति	क्ष्णौतु
खण्ड्	(१० उ०, तोड़ना)	खण्डयति-ते	खण्डयांचकार	खण्डयिता	खण्डयिष्यति	खण्डयतु
खन्	(१ उ०, खोदना)	खनति-ते	चखान	खनिता	खनिष्यति	खनतु
खाद्	(१ प०, खाना)	खादति	चखाद	खादिता	खादिष्यति	खादतु
खिद्	(४ आ०, खिन्न होना)	खिद्यते	चिखिदे	खेत्ता	खेत्स्यते	खिद्यताम्
खेल्	(१ प०, खेलना)	खेलति	चिखेल	खेलिता	खेलिष्यति	खेलतु
गण्	(१० उ०, गिनना)	गणयति-ते	गणयांचकार	गणयिता	गणयिष्यति	गणयतु
गद्	(१ प०, कहना)	नि+गदति	जगाद	गदिता	गदिष्यति	गदतु
गम्	(१ प०, जाना)	गच्छति	जगाम	गन्ता	गमिष्यति	गच्छतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अक्रीणात्	क्रीणीयात्	क्रीयात्	अक्रैषीत्	अक्रेष्यत्	क्रापयति-ते	क्रीयते
अक्रीणीत	क्रीणीत	क्रेषीष्ट	अक्रेष्ट	अक्रेष्यत	,,	,,
अक्रीडत्	क्रीडेत्	क्रीड्यात्	अक्रीडीत्	अक्रीडिष्यत्	क्रीडयति	क्रीड्यते
अक्रुध्यत्	क्रुध्येत्	क्रुध्यात्	अक्रुधत्	अक्रोत्स्यत्	क्रोधयति	क्रुध्यते
अक्रोशत्	क्रोशेत्	क्रुश्यात्	अक्रुक्षत्	अक्रोक्ष्यत्	क्रोशयति	क्रुश्यते
अक्लाम्यत्	क्लाम्येत्	क्लम्यात्	अक्लमत्	अक्लमिष्यत्	क्लमयति	क्लम्यते
अक्लिद्यत्	क्लिद्येत्	क्लिद्यात्	अक्लिदत्	अक्लेदिष्यत्	क्लेदयति	क्लिद्यते
अक्लिश्यत	क्लिश्येत	क्लेशिषीष्ट	अक्लेशिष्ट	अक्लेशिष्यत	क्लेशयति	क्लिश्यते
अक्लिश्नात्	क्लिश्नीयात्	क्लिश्यात्	अक्लेक्षीत्	अक्लेशिष्यत्	,,	,,
अक्वणत्	क्वणेत्	क्वण्यात्	अक्वणीत्	अक्वणिष्यत्	क्वाणयति	क्वण्यते
अक्वथत्	क्वथेत्	क्वथ्यात्	अक्वथीत्	अक्वथिष्यत्	क्वाथयति	क्वथ्यते
अक्षमत	क्षमेत	क्षमिषीष्ट	अक्षमिष्ट	अक्षमिष्यत	क्षमयति	क्षम्यते
अक्षाम्यत्	क्षाम्येत्	क्षम्यात्	अक्षमत्	अक्षमिष्यत्	,,	,,
अक्षरत्	क्षरेत्	क्षर्यात्	अक्षारीत्	अक्षरिष्यत्	क्षारयति	क्षर्यते
अक्षालयत्	क्षालयेत्	क्षाल्यात्	अचिक्षलत्	अक्षालयिष्यत्	क्षालयति	क्षाल्यते
अक्षयत्	क्षयेत्	क्षीयात्	अक्षैषीत्	अक्षेष्यत्	क्षाययति	क्षीयते
अक्षिपत्	क्षिपेत्	क्षिप्यात्	अक्षैप्सीत्	अक्षेप्स्यत्	क्षेपयति	क्षिप्यते
अक्षीबत	क्षीबेत	क्षीबिषीष्ट	अक्षीबिष्ट	अक्षीबिष्यत	क्षीबयति	क्षीब्यते
अक्षुणत्	क्षुन्द्यात्	क्षुद्यात्	अक्षुदत्	अक्षोत्स्यत्	क्षोदयति	क्षुद्यते
अक्षोभत	क्षोभेत	क्षोभिषीष्ट	अक्षुभत	अक्षोभिष्यत	क्षोभयति	क्षुभ्यते
अक्षायत्	क्षायेत्	क्षायात्	अक्षासीत्	अक्षास्यत्	क्षपयति	क्षायते
अक्ष्णौत्	क्ष्णुयात्	क्ष्णूयात्	अक्ष्णविष्यत्	अक्ष्णावीत्	क्ष्णावयति	क्ष्णूयते
अखण्डयत्	खण्डयेत्	खण्ड्यात्	अचखण्डत्	अखण्डयिष्यत्	खण्डयति	खण्ड्यते
अखनत्	खनेत्	खन्यात्	अखनीत्	अखनिष्यत्	खानयति	खायते
अखादत्	खादेत्	खाद्यात्	अखादीत्	अखादिष्यत्	खादयति	खाद्यते
अखिद्यत	खिद्येत	खित्सीष्ट	अखित्त	अखेत्स्यत	खेदयति	खिद्यते
अखेलत्	खेलेत्	ख़ेल्यात्	अखेलीत्	अखेलिष्यत्	खेलयति	खेल्यते
अगणयत्	गणयेत्	गण्यात्	अजीगणत्	अगणयिष्यत्	गणयति	गण्यते
अगदत्	गदेत्	गद्यात्	अगादीत्	अगदिष्यत्	गादयति	गद्यते
अगच्छत्	गच्छेत्	गम्यात्	अगमत्	अगमिष्यत्	गमयति	गम्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
गर्ज्	(१ प०, गरजना)	गर्जति	जगर्ज	गर्जिता	गर्जिष्यति	गर्जतु
गर्ह्	(१ आ०, निन्दा करना)	गर्हते	जगर्हे	गर्हिता	गर्हिष्यते	गर्हताम्
गर्ह्	(१० उ०, ,, ,,)	गर्हयति-ते	गर्हयांचकार	गर्हयिता	गर्हयिष्यति	गर्हयतु
गवेष्	(१० उ०, खोजना)	गवेषयति	गवेषयांचकार	गवेषयिता	गवेषयिष्यति	गवेषयतु
गाह्	(१ आ०, घुसना)	गाहते	जगाहे	गाहिता	गाहिष्यते	गाहताम्
गुञ्ज्	(१ प०, गूँजना)	गुञ्जति	जुगुञ्ज	गुञ्जिता	गुञ्जिष्यति	गुञ्जतु
गुण्ठ्	(१० उ०, घूँघट०)	अव+गुण्ठयति	गुण्ठयांचकार	गुण्ठयिता	गुण्ठयिष्यति	गुण्ठयतु
गुप्	(१ प०, रक्षा करना)	गोपायति	जुगोप	गोपिता	गोपिष्यति	गोपायतु
गुप्	(१ आ०, निन्दा करना)	जुगुप्सते	जुगुप्सांचक्रे	जुगुप्सिता	जुगुप्सिष्यते	जुगुप्सताम्
गुम्फ्	(६ प०, गूँथना)	गुम्फति	जुगुम्फ	गुम्फिता	गुम्फिष्यति	गुम्फतु
गुह्	(१ उ०, छिपाना)	गूहति-ते	जुगूह	गूहिता	गूहिष्यति	गूहतु
गॄ	(६ प०, निगलना)	गिरति	जगार	गरिता	गरिष्यति	गिरतु
गॄ	(९ प०, कहना)	गृणाति	,,	,,	,,	गृणातु
गै	(१ प०, गाना)	गायति	जगौ	गाता	गास्यति	गायतु
ग्रन्थ्	(९ प०, संग्रह०)	ग्रथ्नाति	जग्रन्थ	ग्रन्थिता	ग्रन्थिष्यति	ग्रथ्नातु
ग्रस्	(१ आ०, खाना)	ग्रसते	जग्रसे	ग्रसिता	ग्रसिष्यते	ग्रसताम्
ग्रह्	(९ उ०, लेना) प०-	गृह्णाति	जग्राह	ग्रहीता	ग्रहीष्यति	गृह्णातु
	आ०-	गृह्णीते	जगृहे	ग्रहीता	ग्रहीष्यते	गृह्णीताम्
ग्लै	(१ प०, थकना)	ग्लायति	जग्लौ	ग्लाता	ग्लास्यति	ग्लायतु
घट्	(१ आ०, लगना)	घटते	जघटे	घटिता	घटिष्यते	घटताम्
घुष्	(१० उ०, घोषणा०)	घोषयति	घोषयांचकार	घोषयिता	घोषयिष्यति	घोषयतु
घूर्ण्	(१ आ०, घूमना)	घूर्णते	जुघूर्णे	घूर्णिता	घूर्णिष्यते	घूर्णताम्
घूर्ण्	(६ प०, घूमना)	घूर्णति	जुघूर्ण	घूर्णिता	घूर्णिष्यति	घूर्णतु
घ्रा	(१ प०, सूँघना)	जिघ्रति	जघ्रौ	घ्राता	घ्रास्यति	जिघ्रतु
चकास्	(२ प०, चमकना)	चकास्ति	चकासांचकार	चकासिता	चकासिष्यति	चकास्तु
चक्ष्	(२ आ०, कहना)	आ+आचष्टे	आचचक्षे	आख्याता	आख्यास्यति	आचष्टाम्
चम्	(आ+१ प०, पीना)	आ+आचामति	आचचाम	आचमिता	आचमिष्यति	आचामतु
चर्	(१ प०, चलना)	चरति	चचार	चरिता	चरिष्यति	चरतु
चर्व्	(१ प०, चबाना)	चर्वति	चचर्व	चर्विता	चर्विष्यति	चर्वतु
चल्	(१ प०, हिलना)	चलति	चचाल	चलिता	चलिष्यति	चलतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अगर्जत्	गर्जेत्	गर्ज्यात्	अगर्जीत्	अगर्जिष्यत्	गर्जयति	गर्ज्यते
अगर्हत	गर्हेत	गर्हिषीष्ट	अगर्हिष्ट	अगर्हिष्यत	गर्हयति	गर्ह्यते
अगर्हयत्	गर्हयेत्	गर्ह्यात्	अजगर्हत्	अगर्हयिष्यत्	,,	,,
अगवेषयत्	गवेषयेत्	गवेष्यात्	अजगवेषत्	अगवेषयिष्यत्	गवेषयति	गवेष्यते
अगाहत	गाहेत	गाहिषीष्ट	अगाहिष्ट	अगाहिष्यत	गाहयति	गाह्यते
अगुञ्जत्	गुञ्जेत्	गुञ्ज्यात्	अगुञ्जीत्	अगुञ्जिष्यत्	गुञ्जयति	गुञ्ज्यते
अगुण्ठयत्	गुण्ठयेत्	गुण्ठ्यात्	अजुगुण्ठत्	अगुण्ठयिष्यत्	गुण्ठयति	गुण्ठ्यते
अगोपायत्	गोपायेत्	गुप्यात्	अगौप्सीत्	अगोपिष्यत्	गोपयति	गुप्यते
अजुगुप्सत	जुगुप्सेत	जुगुप्सिषीष्ट	अजुगुप्सिष्ट	अजुगुप्सिष्यत	जुगुप्सयति	जुगुप्स्यते
अगुम्फत्	गुम्फेत्	गुफ्यात्	अगुम्फीत्	अगुम्फिष्यत्	गुम्फयति	गुफ्यते
अगूहत्	गूहेत्	गुह्यात्	अगूहीत्	अगूहिष्यत्	गूहयति	गुह्यते
अगिरत्	गिरेत्	गीर्यात्	अगारीत्	अगरिष्यत्	गारयति	गीर्यते
अगृणात्	गृणीयात्	,,	,,	,,	,,	,,
अगायत्	गायेत्	गेयात्	अगासीत्	अगास्यत्	गापयति	गीयते
अग्रथ्नात्	ग्रथ्नीयात्	ग्रथ्यात्	अग्रन्थीत्	अग्रन्थिष्यत्	ग्रन्थयति	ग्रथ्यते
अग्रसत	ग्रसेत	ग्रसिषीष्ट	अग्रसिष्ट	अग्रसिष्यत	ग्रासयति	ग्रस्यते
अगृह्णात्	गृह्णीयात्	गृह्यात्	अग्रहीत्	अग्रहीष्यत्	ग्राहयति	गृह्यते
अगृह्णीत	गृह्णीत	ग्रहीषीष्ट	अग्रहीष्ट	अग्रहीष्यत	,,	,,
अग्लायत्	ग्लायेत्	ग्लायात्	अग्लासीत्	अग्लास्यत्	ग्लापयति	ग्लायते
अघटत	घटेत	घटिषीष्ट	अघटिष्ट	अघटिष्यत	घटयति	घट्यते
अघोषयत्	घोषयेत्	घोष्यात्	अजूघुषत्	अघोषयिष्यत्	घोषयति	घोष्यते
अघूर्णत	घूर्णेत	घूर्णिषीष्ट	अघूर्णिष्ट	अघूर्णिष्यत	घूर्णयति	घूर्ण्यते
अघूर्णत्	घूर्णेत्	घूर्ण्यात्	अघूर्णीत्	अघूर्णिष्यत्	,,	,,
अजिघ्रत्	जिघ्रेत्	घ्रेयात्	अघ्रात्	अघ्रास्यत्	घ्रापयति	घ्रायते
अचकात्	चकास्यात्	चकास्यात्	अचकासीत्	अचकासिष्यत्	चकासयति	चकास्यते
आचष्ट	आचक्षीत	आख्यायात्	आख्यत्	आख्यास्यत्	ख्यापयति	ख्यायते
आचामत्	आचामेत्	आचम्यात्	आचमीत्	आचमिष्यत्	आचामयति	आचम्यते
अचरत्	चरेत्	चर्यात्	अचारीत्	अचरिष्यत्	चारयति	चर्यते
अचर्वत्	चर्वेत्	चर्व्यात्	अचर्वीत्	अचर्विष्यत्	चर्वयति	चर्व्यते
अचलत्	चलेत्	चल्यात्	अचालीत्	अचलिष्यत्	चलयति	चल्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
चि (५ उ०, चुनना)	प०-	चिनोति	चिचाय	चेता	चेष्यति	चिनोतु
	आ०-	चिनुते	चिच्ये	चेता	चेष्यते	चिनुताम्
चित् (१ प०, समझना)		चेतति	चिचेत	चेतिता	चेतिष्यति	चेततु
चित् (१० उ०, सोचना)		चेतयते	चेतयांचक्रे	चेतयिता	चेतयिष्यते	चेतयताम्
चित्र् (१० उ०, चित्र बनाना)		चित्रयति	चित्रयांचकार	चित्रयिता	चित्रयिष्यति	चित्रयतु
चिन्त् (१० उ०, सोचना)		चिन्तयति	चिन्तयांचकार	चिन्तयिता	चिन्तयिष्यति	चिन्तयतु
	आ०-	—ते	—चक्रे	,,	—ते	—ताम्
चिह्न् (१० उ०, चिह्न लगाना)		चिह्नयति	चिह्नयांचकार	चिह्नयिता	चिह्नयिष्यति	चिह्नयतु
चुद् (१० उ०, प्रेरणा देना)		चोदयति	चोदयांचकार	चोदयिता	चोदयिष्यति	चोदयतु
चुम्ब् (१ प०, चूमना)		चुम्बति	चुचुम्ब	चुम्बिता	चुम्बिष्यति	चुम्बतु
चुर् (१० उ०, चुराना)		चोरयति	चोरयांचकार	चोरयिता	चोरयिष्यति	चोरयतु
	आ०-	—ते	—चक्रे	,,	—ते	—ताम्
चूर्ण् (१० उ०, चूर करना)		चूर्णयति	चूर्णयांचकार	चूर्णयिता	चूर्णयिष्यति	चूर्णयितु
चूष् (१ प०, चूसना)		चूषति	चुचूष	चूषिता	चूषिष्यति	चूषतु
चेष्ट् (१ आ०, चेष्टा करना)		चेष्टते	चिचेष्टे	चेष्टिता	चेष्टिष्यते	चेष्टताम्
छद् (१० उ०, ढकना)	आ+	छादयति	छादयांचकार	छादयिता	छादयिष्यति	छादयतु
छिद् (७ उ०, काटना)		छिनत्ति	चिच्छेद	छेत्ता	छेत्स्यति	छिनत्तु
छुर् (६ प०, काटना)		छुरति	चुच्छोर	छुरिता	छुरिष्यति	छुरतु
छो (४ प०, काटना)		छ्यति	चच्छौ	छाता	छास्यति	छ्यतु
जन् (४ आ०, पैदा होना)		जायते	जज्ञे	जनिता	जनिष्यते	जायताम्
जप् (१ प०, जपना)		जपति	जजाप	जपिता	जपिष्यति	जपतु
जल्प् (१ प०, बात करना)		जल्पति	जजल्प	जल्पिता	जल्पिष्यति	जल्पतु
जागृ (२ प०, जागना)		जागर्ति	जजागार	जागरिता	जागरिष्यति	जागर्तु
जि (१ प०, जीतना)		जयति	जिगाय	जेता	जेष्यति	जयतु
जीव् (१ प०, जीना)		जीवति	जिजीव	जीविता	जीविष्यति	जीवतु
जुष् (१० उ०, प्रसन्न होना)		जोषयति	जोषयांचकार	जोषयिता	जोषयिष्यति	जोषयतु
जृम्भ् (१ आ०, जँभाई लेना)		जृम्भते	जजृम्भे	जृम्भिता	जृम्भिष्यते	जृम्भताम्
जॄ (४ प०, वृद्ध होना)		जीर्यति	जजार	जरिता	जरिष्यति	जीर्यतु
ज्ञा (९ उ०, जानना)	प०-	जानाति	जज्ञौ	ज्ञाता	ज्ञास्यति	जानातु
	आ०-	जानीते	जज्ञे	ज्ञाता	ज्ञास्यते	जानीताम्

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अचिनोत्	चिनुयात्	चीयात्	अचैषीत्	अचेष्यत्	चाययति	चीयते
अचिनुत	चिन्वीत	चेषीष्ट	अचेष्ट	अचेष्यत	,,	,,
अचेतत्	चेतेत्	चित्यात्	अचेतीत्	अचेतिष्यत्	चेतयति	चित्यते
अचेतयत	चेतयेत	चेतयिषीष्ट	अचीचितत	अचेतयिष्यत	,,	चेत्यते
अचित्रयत्	चित्रयेत्	चित्र्यात्	अचिचित्रत्	अचित्रयिष्यत्	चित्रयति	चित्र्यते
अचिन्तयत्	चिन्तयेत्	चिन्त्यात्	अचिचिन्तत्	अचिन्तयिष्यत्	चिन्तयति	चिन्त्यते
—यत	—येत	चिन्तयिषीष्ट	—न्तत	—ष्यत	,,	,,
अचिह्नयत्	चिह्नयेत्	चिह्न्यात्	अचिचिह्नत्	अचिह्नयिष्यत्	चिह्नयति	चिह्न्यते
अचोदयत्	चोदयेत्	चोद्यात्	अचूचुदत्	अचोदयिष्यत्	चोदयति	चोद्यते
अचुम्बत्	चुम्बेत्	चुम्ब्यात्	अचुम्बीत्	अचुम्बिष्यत्	चुम्बयति	चुम्ब्यते
अचोरयत्	चोरयेत्	चोर्यात्	अचूचुरत्	अचोरयिष्यत्	चोरयति	चोर्यते
—त	—त	चोरयिषीष्ट	—रत	—त	,,	,,
अचूर्णयत्	चूर्णयेत्	चूर्ण्यात्	अचुचूर्णत्	अचूर्णयिष्यत्	चूर्णयति	चूर्ण्यते
अचूषत्	चूषेत्	चूष्यात्	अचूषीत्	अचूषिष्यत्	चूषयति	चूष्यते
अचेष्टत	चेष्टेत	चेष्टिषीष्ट	अचेष्टिष्ट	अचेष्टिष्यत	चेष्टयति	चेष्ट्यते
अच्छादयत्	छादयेत्	छाद्यात्	अचिच्छदत्	अच्छादयिष्यत्	छादयति	छाद्यते
अच्छिनत्	छिन्द्यात्	छिद्यात्	अच्छैत्सीत्	अच्छेत्स्यत्	छेदयति	छिद्यते
अच्छुरत्	छुरेत्	छुर्यात्	अच्छुरीत्	अच्छुरिष्यत्	छोरयति	छुर्यते
अच्छ्यत्	छ्येत्	छायात्	अच्छात्	अच्छास्यत्	छाययति	छायते
अजायत	जायेत	जनिषीष्ट	अजनिष्ट	अजनिष्यत	जनयति	जन्यते
अजपत्	जपेत्	जप्यात्	अजपीत्	अजपिष्यत्	जापयति	जप्यते
अजल्पत्	जल्पेत्	जल्प्यात्	अजल्पीत्	अजल्पिष्यत्	जल्पयति	जल्प्यते
अजागः	जागृयात्	जागर्यात्	अजागरीत्	अजागरिष्यत्	जागरयति	जागर्यते
अजयत्	जयेत्	जीयात्	अजैषीत्	अजेष्यत्	जापयति	जीयते
अजीवत्	जीवेत्	जीव्यात्	अजीवीत्	अजीविष्यत्	जीवयति	जीव्यते
अजोषयत्	जोषयेत्	जोष्यात्	अजूजुषत्	अजोषयिष्यत्	जोषयति	जोष्यते
अजृम्भत	जृम्भेत	जृम्भिषीष्ट	अजृम्भिष्ट	अजृम्भिष्यत	जृम्भयति	जृम्भ्यते
अजीर्यत्	जीर्येत्	जीर्यात्	अजरीत्	अजरिष्यत्	जरयति	जीर्यते
अजानात्	जानीयात्	ज्ञेयात्	अज्ञासीत्	अज्ञास्यत्	ज्ञापयति	ज्ञायते
अजानीत	जानीत	ज्ञासीष्ट	अज्ञास्त	अज्ञास्यत	,,	,,

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
ज्ञा	(१० उ०, आज्ञा देना)आ+	ज्ञापयति	ज्ञापयांचकार	ज्ञापयिता	ज्ञापयिष्यति	ज्ञापयतु
ज्वर्	(१ प०, रुग्ण होना)	ज्वरति	जज्वार	ज्वरिता	ज्वरिष्यति	ज्वरतु
ज्वल्	(१ प०, जलना)	ज्वलति	जज्वाल	ज्वलिता	ज्वलिष्यति	ज्वलतु
टंक्	(१० उ०, चिह्न लगाना)	टंकयति	टंकयांचकार	टंकयिता	टंकयिष्यति	टंकयतु
डी	(१ आ०, उड़ना) उत्+	डयते	डिड्ये	डयिता	डयिष्यते	डयताम्
डी	(४ आ०, ,,) उत् +	डीयते	,,	,,	,,	डीयताम्
ढौक्	(१ आ०, पहुँचना)	ढौकते	डुढौके	ढौकिता	ढौकिष्यते	ढौकताम्
तक्ष्	(१ पा०, छीलना)	तक्षति	ततक्ष	तक्षिता	तक्षिष्यति	तक्षतु
तड्	(१० उ०, पीटना)	ताडयति	ताडयांचकार	ताडयिता	ताडयिष्यति	ताडयतु
तन्	(८ उ०, फैलाना)प०-	तनोति	ततान	तनिता	तनिष्यति	तनोतु
	आ०-	तनुते	तेने	तनिता	तनिष्यते	तनुताम्
तन्त्र्	(१० आ०, पालन०)	तन्त्रयते	तन्त्रयांचक्रे	तन्त्रयिता	तन्त्रयिष्यते	तन्त्रयताम्
तप्	(१ प०, तपना)	तपति	तताप	तप्ता	तप्स्यति	तपतु
तर्क्	(१० उ०. सोचना)	तर्कयति	तर्कयांचकार	तर्कयिता	तर्कयिष्यति	तर्कयतु
तर्ज्	(१ प०, डांटना)	तर्जति	ततर्ज	तर्जिता	तर्जिष्यति	तर्जतु
तर्ज्	(१० आ०, डांटना)	तर्जयते	तर्जयांचक्रे	तर्जयिता	तर्जयिष्यते	तर्जयताम्
तंस्	(१० उ०, सजाना)अव+	तंसयति	तंसयांचकार	तंसयिता	तंसयिष्यति	तंसयतु
तिज्	(१ आ०, क्षमा करना)	तितिक्षते	तितिक्षांचक्रे	तितिक्षिता	तितिक्षिष्यते	तितिक्षताम्
तुद्	(६ उ०, दुःख देना)	तुदति-ते	तुतोद	तोत्ता	तोत्स्यति	तुदतु
तुरण्	(११ प०, जल्दी करना)	तुरण्यति	तुरणांचकार	तुरणिता	तुरणिष्यतिं	तुरण्यतु
तुल्	(१० उ०, तोलना)	तोलयति	तोलयांचकार	तोलयिता	तोलयिष्यति	तोलयतु
तुष्	(४ प०, तुष्ट होना)	तुष्यति	तुतोष	तोष्टा	तोक्ष्यति	तुष्यतु
तृप्	(४ प०, तृप्त होना)	तृप्यति	ततर्प	तर्पिता	तर्पिष्यति	तृप्यतु
तृष्	(४ प०, प्यासा होना)	तृष्यति	ततर्ष	तर्षिता	तर्षिष्यति	तृष्यतु
तॄ	(१ प०, तैरना)	तरति	ततार	तरिता	तरिष्यति	तरतु
त्यज्	(१ प०, छोड़ना)	त्यजति	तत्याज	त्यक्ता	त्यक्ष्यति	त्यजतु
त्रप्	(१ आ०, लजाना)	त्रपते	त्रेपे	त्रपिता	त्रपिष्यते	त्रपताम्
त्रस्	(४ प०, डरना)	त्रस्यति	तत्रास	त्रसिता	त्रसिष्यति	त्रस्यतु
त्रुट्	(६ प०, टूटना)	त्रुटति	तुत्रोट	त्रुटिता	त्रुटिष्यति	त्रुटतु
त्रुट्	(१० आ०, तोड़ना)	त्रोटयते	त्रोटयांचक्रे	त्रोटयिता	त्रोटयिष्यते	त्रोटयताम्

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अज्ञापयत्	ज्ञापयेत्	ज्ञाप्यात्	अजिज्ञपत्	अज्ञापयिष्यत्	ज्ञापयति	ज्ञाप्यते
अज्वरत्	ज्वरेत्	ज्वर्यात्	अज्वारीत्	अज्वरिष्यत्	ज्वरयति	ज्वर्यते
अज्वलत्	ज्वलेत्	ज्वल्यात्	अज्वालीत्	अज्वलिष्यत्	ज्वालयति	ज्वल्यते
अटंकयत्	टंकयेत्	टंक्यात्	अटटंकत्	अटंकयिष्यत्	टंकयति	टंक्यते
अडयत	डयेत	डयिषीष्ट	अडयिष्ट	अडयिष्यत	डाययति	डीयते
अडीयत	डीयेत	,,	,,	,,	,,	,,
अढौकत	ढौकेत	ढौकिषीष्ट	अढौकिष्ट	अढौकिष्यत	ढौकयति	ढौक्यते
अतक्षत्	तक्षेत्	तक्ष्यात्	अतक्षीत्	अतक्षिष्यत्	तक्षयति	तक्ष्यते
अताडयत्	ताडयेत्	ताड्यात्	अतीतडत्	अताडयिष्यत्	ताडयति	ताड्यते
अतनोत्	तनुयात्	तन्यात्	अतानीत्	अतनिष्यत्	तानयति	तन्यते
अतनुत	तन्वीत	तनिषीष्ट	अतनिष्ट	अतनिष्यत	,,	,,
अतन्त्रयत	तन्त्रयेत	तन्त्रयिषीष्ट	अततन्त्रत	अतन्त्रयिष्यत	तन्त्रयति	तन्त्र्यते
अतपत्	तपेत्	तप्यात्	अताप्सीत्	अतप्स्यत्	तापयति	तप्यते
अतर्कयत्	तर्कयेत्	तर्क्यात्	अततर्कत्	अतर्कयिष्यत्	तर्कयति	तर्क्यते
अतर्जत्	तर्जेत्	तर्ज्यात्	अतर्जीत्	अतर्जिष्यत्	तर्जयति	तर्ज्यते
अतर्जयत	तर्जयेत	तर्जयिषीष्ट	अततर्जत	अतर्जयिष्यत	,,	,,
अतंसयत्	तंसयेत्	तंस्यात्	अततंसत्	अतंसयिष्यत्	तंसयति	तंस्यते
अतितिक्षत	तितिक्षेत	तितिक्षिषीष्ट	अतितिक्षिष्ट	अतितिक्षिष्यत	तेजयति	तितिक्ष्यते
अतुदत्	तुदेत्	तुद्यात्	अतौत्सीत्	अतोत्स्यत्	तोदयति	तुद्यते
अतुरण्यत्	तुरण्येत्	तुरण्यात्	अतुरणीत्	अतुरणिष्यत्	तुरणयति	तुरण्यते
अतोलयत्	तोलयेत्	तोल्यात्	अतूतुलत्	अतोलयिष्यत्	तोलयति	तोल्यते
अतुष्यत्	तुष्येत्	तुष्यात्	अतुषत्	अतोक्ष्यत्	तोषयति	तुष्यते
अतृप्यत्	तृप्येत्	तृप्यात्	अतृपत्	अतर्पिष्यत्	तर्पयति	तृप्यते
अतृष्यत्	तृष्येत्	तृष्यात्	अतृषत्	अतर्षिष्यत्	तर्षयति	तृष्यते
अतरत्	तरेत्	तीर्यात्	अतारीत्	अतरिष्यत्	तारयति	तीर्यते
अत्यजत्	त्यजेत्	त्यज्यात्	अत्याक्षीत्	अत्यक्ष्यत्	त्याजयति	त्यज्यते
अत्रपत	त्रपेत	त्रपिषीष्ट	अत्रपिष्ट	अत्रपिष्यत	त्रपयति	त्रप्यते
अत्रस्यत्	त्रस्येत्	त्रस्यात्	अत्रसीत्	अत्रसिष्यत्	त्रासयति	त्रस्यते
अत्रुटत्	त्रुटेत्	त्रुट्यात्	अत्रुटीत्	अत्रुटिष्यत्	त्रोटयति	त्रुट्यते
अत्रोटयत	त्रोटयेत	'त्रोटयिषीष्ट	अतुत्रुटत	अत्रोटयिष्यत	,,	त्रोट्यते

धातु अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
त्रै (१ आ०, बचाना)	त्रायते	तत्रे	त्राता	त्रास्यते	त्रायताम्
त्वक्ष् (१ प०, छीलना)	त्वक्षति	तत्वक्ष	त्वक्षिता	त्वक्षिष्यति	त्वक्षतु
त्वर् (१ आ०, जल्दी करना)	त्वरते	तत्वरे	त्वरिता	त्वरिष्यते	त्वरताम्
त्विष् (१ उ०, चमकना)	त्वेषति-ते	तित्वेष	त्वेष्टा	त्वेक्ष्यति	त्वेषतु
दण्ड् (१० उ०, दण्ड देना)	दण्डयति-ते	दण्डयांचकार	दण्डयिता	दण्डयिष्यति	दण्डयतु
दम् (४ प०, दमन करना)	दाम्यति	ददाम	दमिता	दमिष्यति	दाम्यतु
दम्भ् (५ प०, धोखा देना)	दभ्नोति	ददम्भ	दम्भिता	दम्भिष्यति	दभ्नोतु
दय् (१ आ०, दया करना)	दयते	दयांचक्रे	दयिता	दयिष्यते	दयताम्
दंश् (१ प०, डँसना)	दशति	ददंश	दंष्टा	दंक्ष्यति	दशतु
दह् (१ प०, जलाना)	दहति	ददाह	दग्धा	धक्ष्यति	दहतु
दा (१ प०, देना)	यच्छति	ददौ	दाता	दास्यति	यच्छतु
दा (२ प०, काटना)	दाति	,,	,,	,,	दातु
दा (३ उ०, देना) प०-	ददाति	,,	,,	,,	ददातु
आ०-	दत्ते	ददे	,,	दास्यते	दत्ताम्
दिव् (४ प०, चमकना आदि)	दीव्यति	दिदेव	देविता	देविष्यति	दीव्यतु
दिव् (१०आ०, रुलाना)	देवयते	देवयांचक्रे	देवयिता	देवयिष्यते	देवयताम्
दिश् (६ उ०, देना, कहना	दिशति-ते	दिदेश	देष्टा	देक्ष्यति	दिशतु
दीक्ष् (१ आ०, दीक्षा देना)	दीक्षते	दिदीक्षे	दीक्षिता	दीक्षिष्यते	दीक्षताम्
दीप् (४ आ०, चमकना)	दीप्यते	दिदीपे	दीपिता	दीपिष्यते	दीप्यताम्
दु (५ प०, दुःखित होना)	दुनोति	दुदाव	दोता	दोष्यति	दुनोतु
दुष् (४ प०, बिगड़ना)	दुष्यति	दुदोष	दोष्टा	दोक्ष्यति	दुष्यतु
दुह् (२ उ०, दुहना) प०-	दोग्धि	दुदोह	दोग्धा	धोक्ष्यति	दोग्धु
आ०-	दुग्धे	दुदुहे	,,	-ते	दुग्धाम्
दू (४ आ०, दुःखित होना)	दूयते	दुदुवे	दविता	दविष्यते	दूयताम्
दृ (६ आ०, आदर करना)	आ+आद्रियते	आदद्रे	आदर्ता	आदरिष्यते	आद्रियताम्
दृप् (४ प०, गर्व करना)	दृप्यति	ददर्प	दर्पिता	दर्पिष्यति	दृप्यतु
दृश् (१ प०, देखना)	पश्यति	ददर्श	द्रष्टा	द्रक्ष्यति	पश्यतु
दॄ (९ प०, फाड़ना)	दृणाति	ददार	दरिता	दरिष्यति	दृणातु
दो (४ प०, काटना)	द्यति	ददौ	दाता	दास्यति	द्यतु
द्युत् (१ आ०, चमकना)	द्योतते	दिद्युते	द्योतिता	द्योतिष्यते	द्योतताम्

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अत्रायत	त्रायेत	त्रासीष्ट	अत्रास्त	अत्रास्यत	त्रापयति	त्रायते
अत्वक्षत्	त्वक्षेत्	त्वक्ष्यात्	अत्वक्षीत्	अत्वक्षिष्यत्	त्वक्षयति	त्वक्ष्यते
अत्वरत	त्वरेत	त्वरिषीष्ट	अत्वरिष्ट	अत्वरिष्यत	त्वरयति	त्वर्यते
अत्वेषत्	त्वेषेत्	त्विष्यात्	अत्विक्षत्	अत्वेक्ष्यत्	त्वेषयति	त्विष्यते
अदण्डयत्	दण्डयेत्	दण्ड्यात्	अददण्डत्	अदण्डयिष्यत्	दण्डयति	दण्ड्यते
अदाम्यत्	दाम्येत्	दम्यात्	अदमत्	अदमिष्यत्	दमयते	दम्यते
अदभ्नोत्	दभ्नुयात्	दभ्यात्	अदम्भीत्	अदम्भिष्यत्	दम्भयति	दभ्यते
अदयत	दयेत	दयिषीष्ट	अदयिष्ट	अदयिष्यत	दाययति	दय्यते
अदशत्	दशेत्	दश्यात्	अदाङ्क्षीत्	अदंक्ष्यत्	दंशयति	दश्यते
अदहत्	दहेत्	दह्यात्	अधाक्षीत्	अधक्ष्यत्	दाहयति	दह्यते
अयच्छत्	यच्छेत्	देयात्	अदात्	अदास्यत्	दापयति	दीयते
अदात्	दायात्	दायात्	अदासीत्	,,	,,	दायते
अददात्	दद्यात्	देयात्	अदात्	,,	,,	दीयते
अदत्त	ददीत	दासीष्ट	अदित	अदास्यत	,,	,,
अदीव्यत्	दीव्येत्	दीव्यात्	अदेवीत्	अदेविष्यत्	देवयति	दीव्यते
अदेवयत	देवयेत	देवयिषीष्ट	अदीदिवत	अदेवयिष्यत	देवयति	देव्यते
अदिशत्	दिशेत्	दिश्यात्	अदिक्षत्	अदेक्ष्यत्	देशयति	दिश्यते
अदीक्षत	दीक्षेत	दीक्षिषीष्ट	अदीक्षिष्ट	अदीक्षिष्यत	दीक्षयति	दीक्ष्यते
अदीप्यत	दीप्येत	दीपिषीष्ट	अदीपिष्ट	अदीपिष्यत	दीपयति	दीप्यते
अदुनोत्	दुनुयात्	दूयात्	अदौषीत्	अदोष्यत्	दावयति	दूयते
अदुष्यत्	दुष्येत्	दुष्यात्	अदुषत्	अदोक्ष्यत्	दूषयति	दुष्यते
अधोक्	दुह्यात्	दुह्यात्	अधुक्षत्	अधोक्ष्यत्	दोहयति	दुह्यते
अदुग्ध	दुहीत	धुक्षीष्ट	अधुक्षत	-क्ष्यत	,,	,,
अदूयत	दूयेत	दविषीष्ट	अदविष्ट	अदविष्यत	दावयति	दूयते
आद्रियत	आद्रियेत	आदृषीष्ट	आदृत	आदरिष्यत	आदारयति	आद्रियते
अदृप्यत्	दृप्येत्	दृप्यात्	अदृपत्	अदर्पिष्यत्	दर्पयति	दृप्यते
अपश्यत्	पश्येत्	दृश्यात्	अद्राक्षीत्	अद्रक्ष्यत्	दर्शयति	दृश्यते
अदृणात्	दृणीयात्	दीर्यात्	अदारीत्	अदरिष्यत्	दारयति	दीर्यते
अद्यत्	द्येत्	देयात्	अदात्	अदास्यत्	दापयति	दीयते
अद्योतत	द्योतेत	द्योतिषीष्ट	अद्योतिष्ट	अद्योतिष्यत	द्योतयति	द्युत्यते

धातु अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
द्रा (२ प०, सोना) नि+	निद्राति	निदद्रौ	निद्राता	निद्रास्यति	निद्रातु
द्रु (१ प०, पिघलना)	द्रवति	दुद्राव	द्रोता	द्रोष्यति	द्रवतु
द्रुह् (४ प०, द्रोह करना)	द्रुह्यति	दुद्रोह	द्रोहिता	द्रोहिष्यति	द्रुह्यतु
द्विष् (२ उ०, द्वेष करना)	द्वेष्टि	दिद्वेष	द्वेष्टा	द्वेक्ष्यति	द्वेष्टु
धा (३ उ०, धारण करना) प०-	दधाति	दधौ	धाता	धास्यति	दधातु
आ०-	धत्ते	दधे	,,	धास्यते	धत्ताम्
धाव् (१ उ०, दौड़ना, धोना)	धावति-ते	दधाव	धाविता	धाविष्यति	धावतु
धु (५ उ०, हिलाना)	धुनोति	दुधाव	धोता	धोष्यति	धुनोतु
धुक्ष् (१ आ०, जलना)	धुक्षते	दुधुक्षे	धुक्षिता	धुक्षिष्यते	धुक्षताम्
धू (५ उ०, हिलाना)	धूनोति	दुधाव	धोता	धोष्यति	धूनोतु
धूप् (१ प०, सुखाना)	धूपायति	धूपायांचकार	धूपायिता	धूपायिष्यति	धूपायतु
धृ (१ उ०, रखना)	धरति-ते	दधार	धर्ता	धरिष्यति	धरतु
धृ (१० उ०, रखना)	धारयति-ते	धारयांचकार	धारयिता	धारयिष्यति	धारयतु
धृष् (१० उ०, दबाना)	धर्षयति-ते	धर्षयांचकार	धर्षयिता	धर्षयिष्यति	धर्षयतु
धे (१ प०, पीना, चूसना)	धयति	दधौ	धाता	धास्यति	धयतु
ध्मा (१ प०, फूँकना)	धमति	दध्मौ	ध्माता	ध्मास्यति	धमतु
ध्यै (१ प०, सोचना)	ध्यायति	दध्यौ	ध्याता	ध्यास्यति	ध्यायतु
ध्वन् (१ प०, शब्द करना)	ध्वनति	दध्वान	ध्वनिता	ध्वनिष्यति	ध्वनतु
ध्वंस् (१ आ०, नष्ट होना)	ध्वंसते	दध्वंसे	ध्वंसिता	ध्वंसिष्यते	ध्वंसताम्
नद् (१ प०, नाद करना)	नदति	ननाद	नदिता	नदिष्यति	नदतु
नन्द् (१ प०, प्रसन्न होना)	नन्दति	ननन्द	नन्दिता	नन्दिष्यति	नन्दतु
नम् (१ प०, झुकना) प्र+	नमति	ननाम	नन्ता	नंस्यति	नमतु
नश् (४ प०, नष्ट होना)	नश्यति	ननाश	नशिता	नशिष्यति	नश्यतु
नह् (४ उ०, बाँधना)	नह्यति-ते	ननाह	नद्धा	नत्स्यति	नह्यतु
निज् (३ उ०, धोना)	नेनेक्ति	निनेज	नेक्ता	नेक्ष्यति	नेनेक्तु
निन्द् (१ प०, निन्दा०)	निन्दति	निनिन्द	निन्दिता	निन्दिष्यति	निन्दतु
नी (१ उ०, ले जाना) प०-	नयति	निनाय	नेता	नेष्यति	नयतु
आ०-	नयते	निन्ये	,,	नेष्यते	नयताम्
नु (२ प०, स्तुति०)	नौति	नुनाव	नविता	नविष्यति	नौतु
नुद् (६ उ०, प्रेरणा देना)	नुदति-ते	नुनोद	नोत्ता	नोत्स्यति	नुदतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
न्यद्रात्	निद्रायात्	निद्रायात्	न्यद्रासीत्	न्यद्रास्यत्	निद्रापयति	निद्रायते
अद्रवत्	द्रवेत्	द्रूयात्	अदुद्रुवत्	अद्रोष्यत्	द्रावयति	द्रूयते
अद्रुह्यत्	द्रुह्येत्	द्रुह्यात्	अद्रुहत्	अद्रोहिष्यत्	द्रोहयति	द्रुह्यते
अद्वेट्	द्विष्यात्	द्विष्यात्	अद्विक्षत्	अद्वेक्ष्यत्	द्वेषयति	द्विष्यते
अदधात्	दध्यात्	धेयात्	अधात्	अधास्यत्	धापयति	धीयते
अधत्त	दधीत	धासीष्ट	अधित	अधास्यत	,,	,,
अधावत्	धावेत्	धाव्यात्	अधावीत्	अधाविष्यत्	धावयति	धाव्यते
अधुनोत्	धुनुयात्	धूयात्	अधौषीत्	अधोष्यत्	धावयति	धूयते
अधुक्षत	धुक्षेत	धुक्षिषीष्ट	अधुक्षिष्ट	अधुक्षिष्यत	धुक्षयति	धुक्ष्यते
अधूनोत्	धूनुयात्	धूयात्	अधावीत्	अधोष्यत्	धूनयति	धूयते
अधूपायत्	धूपायेत्	धूपाय्यात्	अधूपायीत्	अधूपायिष्यत्	धूपाययति	धूपाय्यते
अधरत्	धरेत्	ध्रियात्	अधार्षीत्	अधरिष्यत्	धारयति	ध्रियते
अधारयत्	धारयेत्	धार्यात्	अदीधरत्	अधारयिष्यत्	,,	धार्यते
अधर्षयत्	धर्षयेत्	धर्ष्यात्	अदधर्षत्	अधर्षयिष्यत्	धर्षयति	धर्ष्यते
अधयत्	धयेत्	धेयात्	अधात्	अधास्यत्	धापयते	धीयते
अधमत्	धमेत्	ध्मायात्	अध्मासीत्	अध्मास्यत्	ध्मापयति	ध्मायते
अध्यायत्	ध्यायेत्	ध्यायात्	अध्यासीत्	अध्यास्यत्	ध्यापयति	ध्यायते
अध्वनत्	ध्वनेत्	ध्वन्यात्	अध्वानीत्	अध्वनिष्यत्	ध्वनयति	ध्वन्यते
अध्वंसत	ध्वंसेत	ध्वंसिषीष्ट	अध्वंसिष्ट	अध्वंसिष्यत	ध्वंसयति	ध्वस्यते
अनदत्	नदेत्	नद्यात्	अनादीत्	अनदिष्यत्	नादयति	नद्यते
अनन्दत्	नन्देत्	नन्द्यात्	अनन्दीत्	अनन्दिष्यत्	नन्दयति	नन्द्यते
अनमत्	नमेत्	नम्यात्	अनंसीत्	अनंस्यत्	नमयति	नम्यते
अनश्यत्	नश्येत्	नश्यात्	अनशत्	अनशिष्यत्	नाशयति	नश्यते
अनह्यत्	नह्येत्	नह्यात्	अनात्सीत्	अनत्स्यत्	नाहयति	नह्यते
अनेनेक्	नेनिज्यात्	निज्यात्	अनिजत्	अनेक्ष्यत्	नेजयति	निज्यते
अनिन्दत्	निन्देत्	निन्द्यात्	अनिन्दीत्	अनिन्दिष्यत्	निन्दयति	निन्द्यते
अनयत्	नयेत्	नीयात्	अनैषीत्	अनेष्यत्	नाययति	नीयते
अनयत	नयेत	नेषीष्ट	अनेष्ट	अनेष्यत	,,	,,
अनौत्	नुयात्	नूयात्	अनावीत्	अनविष्यत्	नावयति	नूयते
अनुदत्	नुदेत्	नुद्यात्	अनौत्सीत्	अनोत्स्यत्	नोदयति	नुद्यते

धातु अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
नृत् (४ प०, नाचना)	नृत्यति	ननर्त	नर्तिता	नर्तिष्यति	नृत्यतु
पच् (१ उ०, पकाना) प०–	पचति	पपाच	पक्ता	पक्ष्यति	पचतु
आ०–	पचते	पेचे	,,	पक्ष्यते	पचताम्
पठ् (१ प०, पढ़ना)	पठति	पपाठ	पठिता	पठिष्यति	पठतु
पण् (१ आ०, खरीदना)	पणते	पेणे	पणिता	पणिष्यते	पणताम्
पत् (१ प०, गिरना)	पतति	पपात	पतिता	पतिष्यति	पततु
पद् (४ आ०, जाना)	पद्यते	पेदे	पत्ता	पत्स्यते	पद्यताम्
पश् (१० उ०, बाँधना)	पाशयति–ते	पाशयांचकार	पाशयिता	पाशयिष्यति	पाशयतु
पा (१ प०, पीना)	पिबति	पपौ	पाता	पास्यति	पिबतु
पा (२ प०, रक्षा करना)	पाति	पपौ	,,	,,	पातु
पाल् (१० उ०, पालना)	पालयति–ते	पालयांचकार	पालयिता	पालयिष्यति	पालयतु
पिष् (७ प०, पीसना)	पिनष्टि	पिपेष	पेष्टा	पेक्ष्यति	पिनष्टु
पीड् (१० उ०, दुःख होना)	पीडयति–ते	पीडयांचकार	पीडयिता	पीडयिष्यति	पीडयतु
पुष् (४ प०, पुष्ट करना)	पुष्यति	पुपोष	पोष्टा	पोक्ष्यति	पुष्यतु
पुष् (९ प०, ,,)	पुष्णाति	,,	पोषिता	पोषिष्यति	पुष्णातु
पुष् (१० उ०, पालना)	पोषयति–ते	पोषयांचकार	पोषयिता	पोषयिष्यति	पोषयतु
पू (१ आ०, पवित्र०)	पवते	पुपुवे	पविता	पविष्यते	पवताम्
पू (९ उ०, पवित्र०)	पुनाति	पुपाव	पविता	पविष्यति	पुनातु
पूज् (१० उ०, पूजना)	पूजयति–ते	पूजयांचकार	पूजयिता	पूजयिष्यति	पूजयतु
पूर् (१० उ०, भरना)	पूरयति–ते	पूरयांचकार	पूरयिता	पूरयिष्यति	पूरयतु
पृ (३ प०, पालना)	पिपर्ति	पपार	परिता	परिष्यति	पिपर्तु
पृ (१० उ०, पालना)	पारयति–ते	पारयांचकार	पारयिता	पारयिष्यति	पारयतु
प्यै (१ आ०, बढ़ना) आ+	प्यायते	पप्ये	प्याता	प्यास्यते	प्यायताम्
प्रच्छ् (६ प०, पूछना)	पृच्छति	पप्रच्छ	प्रष्टा	प्रक्ष्यति	पृच्छतु
प्रथ् (१ आ०, फैलना)	प्रथते	पप्रथे	प्रथिता	प्रथिष्यते	प्रथताम्
प्री (४ आ०, प्रसन्न होना)	प्रीयते	पिप्रिये	प्रेता	प्रेष्यते	प्रीयताम्
प्री (९ उ०, प्रसन्न करना)	प्रीणाति	पिप्राय	प्रेता	प्रेष्यति	प्रीणातु
प्री (१० उ०, ,,)	प्रीणयति	प्रीणयांचकार	प्रीणयिता	प्रीणयिष्यति	प्रीणातु
प्लु (१ आ०, कूदना)	प्लवते	पुप्लुवे	प्लोता	प्लोष्यते	प्लवताम्
प्लुष् (१ प०, जलाना)	प्लोषति	पुप्लोष	प्लोषिता	प्लोषिष्यति	प्लोषतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अनृत्यत्	नृत्येत्	नृत्यात्	अनर्तीत्	अनर्तिष्यत्	नर्तयते	नृत्यते
अपचत्	पचेत्	पच्यात्	अपाक्षीत्	अपक्ष्यत्	पाचयति	पच्यते
अपचत	पचेत	पक्षीष्ट	अपक्त	अपक्ष्यत	,,	,,
अपठत्	पठेत्	पठ्यात्	अपाठीत्	अपठिष्यत्	पाठयति	पठ्यते
अपणत	पणेत	पणिषीष्ट	अपणिष्ट	अपणिष्यत	पाणयति	पण्यते
अपतत्	पतेत्	पत्यात्	अपप्तत्	अपतिष्यत्	पातयति	पत्यते
अपद्यत	पद्येत	पत्सीष्ट	अपादि	अपत्स्यत	पादयति	पद्यते
अपाशयत्	पाशयेत्	पाश्यात्	अपीपशत्	अपाशयिष्यत्	पाशयति	पाश्यते
अपिबत्	पिबेत्	पेयात्	अपात्	अपास्यत्	पाययति	पीयते
अपात्	पायात्	पायात्	अपासीत्	,,	पालयति	पायते
अपालयत्	पालयेत्	पाल्यात्	अपीपलत्	अपालयिष्यत्	,,	पाल्यते
अपिनट्	पिंष्यात्	पिष्यात्	अपिषत्	अपेक्ष्यत्	पेषयति	पिष्यते
अपीडयत्	पीडयेत्	पीड्यात्	अपिपीडत्	अपीडयिष्यत्	पीडयति	पीड्यते
अपुष्यत्	पुष्येत्	पुष्यात्	अपुषत्	अपोक्ष्यत्	पोषयति	पुष्यते
अपुष्णात्	पुष्णीयात्	,,	अपोषीत्	अपोषिष्यत्	,,	,,
अपोषयत्	पोषयेत्	पोष्यात्	अपूपुषत्	अपोषयिष्यत्	,,	पोष्यते
अपवत	पवेत	पविषीष्ट	अपविष्ट	अपविष्यत	पावयति	पूयते
अपुनात्	पुनीयात्	पूयात्	अपावीत्	अपविष्यत्	,,	,,
अपूजयत्	पूजयेत्	पूज्यात्	अपूपुजत्	अपूजयिष्यत्	पूजयति	पूज्यते
अपूरयत्	पूरयेत्	पूर्यात्	अपूपुरत्	अपूरयिष्यत्	पूरयति	पूर्यते
अपिपः	पिपूर्यात्	पूर्यात्	अपारीत्	अपरिष्यत्	पारयति	पूर्यते
अपारयत्	पारयेत्	पार्यात्	अपीपरत्	अपारयिष्यत्	पारयति	पार्यते
अप्यायत	प्यायेत	प्यासीष्ट	अप्यास्त	अप्यास्यत	प्यापयति	प्यायते
अपृच्छत्	पृच्छेत्	पृच्छ्यात्	अप्राक्षीत्	अप्रक्ष्यत्	प्रच्छयति	पृच्छ्यते
अप्रथत	प्रथेत	प्रथिषीष्ट	अप्रथिष्ट	अप्रथिष्यत	प्रथयति	प्रथ्यते
अप्रीयत	प्रीयेत	प्रेषीष्ट	अप्रेष्ट	अप्रेष्यत	प्राययति	प्रीयते
अप्रीणात्	प्रीणीयात्	प्रीयात्	अप्रैषीत्	अप्रेष्यत्	प्रीणयति	,,
अप्रीणयत्	प्रीणयेत्	प्रीण्यात्	अपिप्रीणत्	अप्रीणयिष्यत्	,,	प्रीण्यते
अप्लवत	प्लवेत	प्लोषीष्ट	अप्लोष्ट	अप्लोष्यत	प्लावयति	प्लूयते
अप्लोषत्	प्लोषेत्	प्लुष्यात्	अप्लोषीत्	अप्लोषिष्यत्	प्लोषयति	प्लुष्यते

धातु अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
फल् (१ प०, फलना)	फलति	पफाल	फलिता	फलिष्यति	फलतु
बध् (१आ०, बीभत्स होना)	बीभत्सते	बीभत्सांचक्रे	बीभत्सिता	बीभत्सिष्यते	बीभत्सताम्
बध् (१० उ०, बाँधना)	बाधयति	बाधयांचकार	बाधयिता	बाधयिष्यति	बाधयतु
बन्ध् (९ प०, बाँधना)	बध्नाति	बबन्ध	बन्द्धा	भन्त्स्यति	बध्नातु
बाध् (१ आ०, पीडा देना)	बाधते	बबाधे	बाधिता	बाधिष्यते	बाधताम्
बुध् (१ उ०, समझना)	बोधति-ते	बुबोध	बोधिता	बोधिष्यति	बोधतु
बुध् (४ आ०, जानना)	बुध्यते	बुबुधे	बोद्धा	भोत्स्यते	बुध्यताम्
ब्रू (२ उ०, बोलना) पा०-	ब्रवीति	उवाच	वक्ता	वक्ष्यति	ब्रवीतु
आ०-	ब्रूते	ऊचे	,,	वक्ष्यते	ब्रूताम्
भक्ष् (१० उ०, खाना) प०-	भक्षयति	भक्षयांचकार	भक्षयिता	भक्षयिष्यति	भक्षयतु
आ०-	भक्षयते	भक्षयांचक्रे	,,	-ते	-ताम्
भज् (१ उ०, सेवा करना)	भजति-ते	बभाज	भक्ता	भक्ष्यति	भजतु
भञ्ज् (७ प०, तोड़ना)	भनक्ति	बभञ्ज	भंक्ता	भंक्ष्यति	भनक्तु
भण् (१ प०, कहना)	भणति	बभाण	भणिता	भणिष्यति	भणतु
भर्त्स् (१० आ०, डाँटना)	भर्त्सयते	भर्त्सयांचक्रे	भर्त्सयिता	भर्त्सयिष्यते	भर्त्सयताम्
भा (२ प०, चमकना)	भाति	बभौ	भाता	भास्यति	भातु
भाष् (१ आ०, कहना)	भाषते	बभाषे	भाषिता	भाषिष्यते	भाषताम्
भास् (१ आ०, चमकना)	भासते	बभासे	भासिता	भासिष्यते	भासताम्
भिक्ष् (१ आ०, माँगना)	भिक्षते	बिभिक्षे	भिक्षिता	भिक्षिष्यते	भिक्षताम्
भिद् (७ उ०, तोड़ना)	भिनत्ति	बिभेद	भेत्ता	भेत्स्यति	भिनत्तु
भी (३ प०, डरना)	बिभेति	बिभाय	भेता	भेष्यति	बिभेतु
भुज् (७ प०, पालना)	भुनक्ति	बुभोज	भोक्ता	भोक्ष्यति	भुनक्तु
भुज् (७ आ०, खाना)	भुङ्क्ते	बुभुजे	,,	-ते	भुङ्क्ताम्
भू (१ प०, होना)	भवति	बभूव	भविता	भविष्यति	भवतु
भूष् (१० उ०, सजाना)	भूषयति-ते	भूषयांचकार	भूषयिता	भूषयिष्यति	भूषयतु
भृ (१ उ०, पालना)	भरति-ते	बभार	भर्ता	भरिष्यति	भरतु
भृ (३ उ०, पालना)	बिभर्ति	,,	,,	,,	बिभर्तु
भ्रम् (१ प०, घूमना)	भ्रमति	बभ्राम	भ्रमिता	भ्रमिष्यति	भ्रमतु
भ्रम् (४ प०, घूमना)	भ्राम्यति	,,	,,	,,	भ्राम्यतु
भ्रंश् (१ आ०, गिरना)	भ्रंशते	बभ्रंशे	भ्रंशिता	भ्रंशिष्यते	भ्रंशताम्

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्मवाच्य
अफलत्	फलेत्	फल्यात्	अफालीत्	अफलिष्यत्	फालयति	फल्यते
अबीभत्सत	बीभत्सेत	बीभत्सिषीष्ट	अबीभत्सिष्ट	अबीभत्सिष्यत	बीभत्सयति	बीभत्स्यते
अबाधयत्	बाधयेत्	बाध्यात्	अबीबधत्	अबाधयिष्यत्	बाधयति	बाध्यते
अबध्नात्	बध्नीयात्	बध्यात्	अभान्त्सीत्	अभन्त्स्यत्	बन्धयति	बध्यते
अबाधत	बाधेत	बाधिषीष्ट	अबाधिष्ट	अबाधिष्यत	बाधयति	बाध्यते
अबोधत्	बोधेत्	बुध्यात्	अबुधत्	अबोधिष्यत्	बोधयति	बुध्यते
अबुध्यत	बुध्येत	भुत्सीष्ट	अबोधि	अभोत्स्यत	,,	,,
अब्रवीत्	ब्रूयात्	उच्यात्	अवोचत्	अवक्ष्यत्	वाचयति	उच्यते
अब्रूत	ब्रुवीत	वक्षीष्ट	अवोचत	अवक्ष्यत	,,	,,
अभक्षयत्	भक्षयेत्	भक्ष्यात्	अबभक्षत्	अभक्षयिष्यत्	भक्षयति	भक्ष्यते
–यत	–येत	भक्षयिषीष्ट	–क्षत	–ष्यत	,,	,,
अभजत्	भजेत्	भज्यात्	अभाक्षीत्	अभक्ष्यत्	भाजयति	भज्यते
अभनक्	भञ्ज्यात्	भज्यात्	अभाङ्क्षीत्	अभंक्ष्यत्	भञ्जयति	भज्यते
अभणत्	भणेत्	भण्यात्	अभाणीत्	अभणिष्यत्	भाणयति	भण्यते
अभर्त्सयत	भर्त्सयेत	भर्त्सयिषीष्ट	अबभर्त्सत	अभर्त्सयिष्यत	भर्त्सयति	भर्त्स्यते
अभात्	भायात्	भायात्	अभासीत्	अभास्यत्	भापयति	भायते
अभाषत	भाषेत	भाषिषीष्ट	अभाषिष्ट	अभाषिष्यत	भाषयति	भाष्यते
अभासत	भासेत	भासिषीष्ट	अभासिष्ट	अभासिष्यत	भासयति	भास्यते
अभिक्षत	भिक्षेत	भिक्षिषीष्ट	अभिक्षिष्ट	अभिक्षिष्यत	भिक्षयति	भिक्ष्यते
अभिनत्	भिन्द्यात्	भिद्यात्	अभिदत्	अभेत्स्यत्	भेदयति	भिद्यते
अबिभेत्	बिभीयात्	भीयात्	अभैषीत्	अभेष्यत्	भाययति	भीयते
अभुनक्	भुञ्ज्यात्	भुज्यात्	अभौक्षीत्	अभोक्ष्यत्	भोजयति	भुज्यते
अभुङ्क्त	भुञ्जीत	भुक्षीष्ट	अभुक्त	–त	,,	,,
अभवत्	भवेत्	भूयात्	अभूत्	अभविष्यत्	भावयति	भूयते
अभूषयत्	भूषयेत्	भूष्यात्	अबुभूषत्	अभूषयिष्यत्	भूषयति	भूष्यते
अभरत्	भरेत्	भ्रियात्	अभार्षीत्	अभरिष्यत्	भारयति	भ्रियते
अबिभः	बिभृयात्	,,	,,	,,	,,	,,
अभ्रमत्	भ्रमेत्	भ्रम्यात्	अभ्रमीत्	अभ्रमिष्यत्	भ्रमयति	भ्रम्यते
अभ्राम्यत्	भ्राम्येत्	,,	अभ्रमत्	,,	,,	,,
अभ्रंशत	भ्रंशेत	भ्रंशिषीष्ट	अभ्रंशिष्ट	भ्रंशिष्यति	भ्रंशयति	भ्रश्यते

धातु अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
भ्रस्ज् (६ उ०, भूनना)	भृज्जति-ते	बभ्रज्ज	भ्रष्टा	भ्रक्ष्यति	भृज्जतु
भ्राज् (१ आ०, चमकना)	भ्राजते	बभ्राजे	भ्राजिता	भ्राजिष्यते	भ्राजताम्
मण्ड् (१० उ०, सजाना)	मण्डयति-ते	मण्डयांचकार	मण्डयिता	मण्डयिष्यति	मण्डयतु
मथ् (१ प०, मथना)	मथति	ममाथ	मथिता	मथिष्यति	मथतु
मद् (४ प०, प्रसन्न होना)	माद्यति	ममाद	मदिता	मदिष्यति	माद्यतु
मन् (४ आ०, मानना)	मन्यते	मेने	मन्ता	मंस्यते	मन्यताम्
मन् (८ आ०, मानना)	मनुते	,,	मनिता	मनिष्यते	मनुताम्
मन्त्र् (१० आ०, मंत्रणा०)	मन्त्रयते	मन्त्रयांचक्रे	मन्त्रयिता	मन्त्रयिष्यते	मन्त्रयताम्
मन्थ् (९ प०, मथना)	मथ्नाति	ममन्थ	मन्थिता	मन्थिष्यति	मथ्नातु
मस्ज् (६ प०, डूबना)	मज्जति	ममज्ज	मङ्क्ता	मङ्क्ष्यति	मज्जतु
मा (१ प०, नापना)	माति	ममौ	माता	मास्यति	मातु
मा (३ आ०, नापना)	मिमीते	ममे	माता	मास्यते	मिमीताम्
मान् (१ आ०, जिज्ञासा०)	मीमांसते	मीमांसांचक्रे	मीमांसिता	मीमांसिष्यते	मीमांसताम्
मान् (१० उ०, आदर०)	मानयति-ते	मानयांचकार	मानयिता	मानयिष्यति	मानयतु
मार्ग् (१० उ०, ढूँढ़ना)	मार्गयति-ते	मार्गयांचकार	मार्गयिता	मार्गयिष्यति	मार्गयतु
मार्ज् (१०उ०,साफ करना)	मार्जयति-ते	मार्जयांचकार	मार्जयिता	मार्जयिष्यति	मार्जयतु
मिल् (६ उ०, मिलना)	मिलति-ते	मिमेल	मेलिता	मेलिष्यति	मिलतु
मिश्र् (१० उ०, मिलना)	मिश्रयति-ते	मिश्रयांचकार	मिश्रयिता	मिश्रयिष्यति	मिश्रयतु
मिह् (१ प०, गीला करना)	मेहति	मिमेह	मेढा	मेक्ष्यति	मेहतु
मील् (१ प०, आँख मीचना)	मीलति	मिमील	मीलिता	मीलिष्यति	मीलतु
मुच् (६ उ०, छोड़ना) प०-	मुञ्चति	मुमोच	मोक्ता	मोक्ष्यति	मुञ्चतु
आ०-	मुञ्चते	मुमुचे	,,	मोक्ष्यते	मुञ्चताम्
मुच् (१० उ०, मुक्त करना)	मोचयति-ते	मोचयांचकार	मोचयिता	मोचयिष्यति	मोचयतु
मुद् (१ आ०, प्रसन्न होना	मोदते	मुमुदे	मोदिता	मोदिष्यते	मोदताम्
मुर्च्छ् (१ प०, मूर्छित होना)	मूर्च्छति	मुमूर्च्छ	मूर्च्छिता	मूर्च्छिष्यति	मूर्च्छतु
मुष् (९ प०, चुराना)	मुष्णाति	मुमोष	मोषिता	मोषिष्यति	मुष्णातु
मुह् (४ प०, मोह में पड़ना)	मुह्यति	मुमोह	मोहिता	मोहिष्यति	मुह्यतु
मृ (६ आ०, मरना)	म्रियते	ममार	मर्ता	मरिष्यति	म्रियताम्
मृग् (१० आ०, ढूँढ़ना)	मृगयते	मृगयांचक्रे	मृगयिता	मृगयिष्यते	मृगयताम्
मृज् (२ प०, साफ करना)	मार्ष्टि	ममार्ज	मर्जिता	मर्जिष्यति	मार्ष्टु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अभृज्जत्	भृज्जेत्	भृज्ज्यात्	अभ्राक्षीत्	अभ्रक्ष्यत्	भ्रज्जयति	भृज्ज्यते
अभ्राजत	भ्राजेत	भ्राजिषीष्ट	अभ्राजिष्ट	अभ्राजिष्यत	भ्राजयति	भ्राज्यते
अमण्डयत्	मण्डयेत्	मण्ड्यात्	अममण्डत्	अमण्डयिष्यत्	मण्डयति	मण्ड्यते
अमथत्	मथेत्	मथ्यात्	अमथीत्	अमथिष्यत्	माथयति	मथ्यते
अमाद्यत्	माद्येत्	मद्यात्	अमदीत्	अमदिष्यत्	मदयति	मद्यते
अमन्यत	मन्येत	मंसीष्ट	अमंस्त	अमंस्यत	मानयति	मन्यते
अमनुत	मन्वीत	मनिषीष्ट	अमत	अमनिष्यत	,,	,,
अमन्त्रयत	मन्त्रयेत	मन्त्रयिषीष्ट	अममन्त्रत	अमन्त्रयिष्यत	मन्त्रयतिं	मन्त्र्यते
अमथ्नात्	मथ्नीयात्	मथ्यात्	अमन्थीत्	अमन्थिष्यत्	मन्थयति	मथ्यते
अमज्जत्	मज्जेत्	मज्ज्यात्	अमाङ्क्षीत्	अमङ्क्ष्यत्	मज्जयति	मज्ज्यते
अमात्	मायात्	मेयात्	अमासीत्	अमास्यत्	मापयति	मीयते
अमिमीत	मिमीत	मासीष्ट	अमास्त	अमास्यत	,,	,,
अमीमांसत	मीमांसेत	मीमांसिषीष्ट	अमीमांसिष्ट	अमीमांसिष्यत	मीमांसयति	मीमांस्यते
अमानयत्	मानयेत्	मान्यात्	अमीमनत्	अमानयिष्यत्	मानयति	मान्यते
अमार्गयत्	मार्गयेत्	मार्ग्यात्	अममार्गत्	अमार्गयिष्यत्	मार्गयति	मार्ग्यते
अमार्जयत्	मार्जयेत्	मार्ज्यात्	अममार्जत्	अमार्जयिष्यत्	मार्जयति	मार्ज्यते
अमिलत्	मिलेत्	मिल्यात्	अमेलीत्	अमेलिष्यत्	मेलयति	मिल्यते
अमिश्रयत्	मिश्रयेत्	मिश्र्यात्	अमिमिश्रित्	अमिश्रयिष्यत्	मिश्रयति	मिश्र्यते
अमेहत्	मेहेत्	मिह्यात्	अमिक्षत्	अमेक्ष्यत्	मेहयति	मिह्यते
अमीलत्	मीलेत्	मील्यात्	अमेलीत्	अमीलिष्यत्	मीलयति	मील्यते
अमुञ्चत्	मुञ्चेत्	मुच्यात्	अमुचत्	अमोक्ष्यत्	मोचयति	मुच्यते
अमुञ्चत	मुञ्चेत	मुक्षीष्ट	अमुक्त	अमोक्ष्यत	,,	,,
अमोचयत्	मोचयेत्	मोच्यात्	अमूमुचत्	अमोचयिष्यत्	मोचयति	मोच्यते
अमोदत	मोदेत	मोदिषीष्ट	अमोदिष्ट	अमोदिष्यत	मोदयति	मुद्यते
अमूर्च्छत्	मूर्च्छेत्	मूर्च्छ्यात्	अमूर्च्छीत्	अमूर्च्छिष्यत्	मूर्च्छयति	मूर्च्छ्यते
अमुष्णात्	मुष्णीयात्	मुष्यात्	अमोषीत्	अमोषिष्यत्	मोषयति	मुष्यते
अमुह्यत्	मुह्येत्	मुह्यात्	अमुहत्	अमोहिष्यत्	मोहयति	मुह्यते
अम्रियत	म्रियेत	मृषीष्ट	अमृत	अमरिष्यत्	मारयति	म्रियते
अमृगयत	मृगयेत	मृगयिषीष्ट	अममृगत	अमृगयिष्यत	मृगयति	मृग्यते
अमार्ट्	मृज्यात्	मृज्यात्	अमार्जीत्	अमार्जिष्यत्	मार्जयति	मृज्यते

धातु अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
मृज् (१०उ०, साफ करना)	मार्जयति-ते	मार्जयांचकार	मार्जयिता	मार्जयिष्यति	मार्जयतु
मृष् (१० उ०, क्षमा करना)	मर्षयति-ते	मर्षयांचकार	मर्षयिता	मर्षयिष्यति	मर्षयतु
म्ना (१ प०, मानना) आ +	मनति	मम्नौ	म्नाता	म्नास्यति	मनतु
म्लै (१ प०, मुरझाना)	म्लायति	मम्लौ	म्लाता	म्लास्यति	म्लायतु
यज् (१ उ०, यज्ञ करना)	यजति-ते	इयाज	यष्टा	यक्ष्यति	यजतु
यत् (१ आ०, यत्न करना)	यतते	येते	यतिता	यतिष्यते	यतताम्
यन्त्र् (१० उ०, नियमित०)	यन्त्रयति	यन्त्रयांचकार	यन्त्रयिता	यन्त्रयिष्यति	यन्त्रयतु
यम् (१ प०, रोकना) नि+	यच्छति	ययाम	यन्ता	यंस्यति	यच्छतु
यस् (४ प०, यत्न करना)	यस्यति	ययास	यसिता	यसिष्यति	यस्यतु
या (२ प०, जाना)	याति	ययौ	याता	यास्यति	यातु
याच् (१ उ०, माँगना) प०-	याचति	ययाच	याचिता	याचिष्यति	याचतु
आ०-	याचते	ययाचे	,,	-ते	-ताम्
यापि (या+णिच्, बिताना)	यापयति	यापयांचकार	यापयिता	यापयिष्यति	यापयतु
युज् (४ आ०, ध्यान लगाना)	युज्यते	युयुजे	योक्ता	योक्ष्यते	युज्यताम्
युज् (७ उ०, मिलाना)	युनक्ति	युयोज	,,	योक्ष्यति	युनक्तु
युज् (१० उं०, लगाना)	योजयति-ते	योजयांचकार	योजयिता	योजयिष्यति	योजयतु
युध् (४ आ०, लड़ना)	युध्यते	युयुधे	योद्धा	योत्स्यते	युध्यताम्
रक्ष् (१ प०, रक्षा करना)	रक्षति	ररक्ष	रक्षिता	रक्षिष्यति	रक्षतु
रच् (१० उ०, बनाना)	रचयति-ते	रचयांचकार	रचयिता	रचयिष्यति	रचयतु
रञ्ज् (४ उ०, प्रसन्न होना)	रज्यति-ते	ररञ्ज	रङ्क्ता	रङ्क्ष्यति	रज्यतु
रट् (१ प०, रटना)	रटति	रराट	रटिता	रटिष्यति	रटतु
रम् (१ आ०, रमना)	रमते	रेमे	रन्ता	रंस्यते	रमताम्
(वि+रम्, पर०)	विरमति	विरराम	विरन्ता	विरंस्यति	विरमतु
रस् (१० उ०, स्वाद लेना)	रसयति-ते	रसयांचकार	रसयिता	रसयिष्यति	रसयतु
राज् (१ उ०, चमकना) प०-	राजति	रराज	राजिता	राजिष्यति	राजतु
आ०-	राजते	रेजे	,,	-ते	-ताम्
राध् (५ प०, पूरा करना)	राध्नोति	रराध	राद्धा	रात्स्यति	राध्नोतु
रु (२ प०, शब्द करना)	रौति	रुराव	रविता	रविष्यति	रौतु
रुच् (१ आ०, अच्छा लगना)	रोचते	रुरुचे	रोचिता	रोचिष्यते	रोचताम्
रुद् (२ प०, रोना)	रोदिति	रुरोद	रोदिता	रोदिष्यति	रोदितु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अमार्जयत्	मार्जयेत्	मार्ज्यात्	अममार्जत्	अमार्जयिष्यत्	मार्जयति	मार्ज्यते
अमर्षयत्	मर्षयेत्	मर्ष्यात्	अममर्षत्	अमर्षयिष्यत्	मर्षयति	मर्ष्यते
अमनत्	मनेत्	म्नायात्	अम्नासीत्	अम्नास्यत्	म्नापयति	म्नायते
अम्लायत्	म्लायात्	म्लायात्	अम्लासीत्	अम्लास्यत्	म्लापयति	म्लायते
अयजत्	यजेत्	इज्यात्	अयाक्षीत्	अयक्ष्यत्	याजयति	इज्यते
अयतत	यतेत	यतिषीष्ट	अयतिष्ट	अयतिष्यत	यातयति	यत्यते
अयन्त्रयत्	यन्त्रयेत्	यन्त्र्यात्	अययन्त्रत्	अयन्त्रयिष्यत्	यन्त्रयति	यन्त्र्यते
अयच्छत्	यच्छेत्	यम्यात्	अयंसत्	अयंस्यत्	नियमयति	नियम्यते
अयस्यत्	यस्येत्	यस्यात्	अयसत्	अयसिष्यत्	यासयति	यस्यते
अयात्	यायात्	यायात्	अयासीत्	अयास्यत्	यापयति	यायते
अयाचत्	याचेत्	याच्यात्	अयाचीत्	अयाचिष्यत्	याचयति	याच्यते
-त	याचेत	याचिषीष्ट	अयाचिष्ट	-त	,,	,,
अयापयत्	यापयेत्	याप्यात्	अयीयपत्	अयापयिष्यत्	यापयति	याप्यते
अयुज्यत	युज्येत	युक्षीष्ट	अयुक्त	अयोक्ष्यत	योजयति	युज्यते
अयुनक्	युञ्ज्यात्	युज्यात्	अयुजत्	अयोक्ष्यत्	,,	,,
अयोजयत्	योजयेत्	योज्यात्	अयूयुजत्	अयोजयिष्यत्	,,	योज्यते
अयुध्यत	युध्येत	युत्सीष्ट	अयुद्ध	अयोत्स्यत	योधयति	युध्यते
अरक्षत्	रक्षेत्	रक्ष्यात्	अरक्षीत्	अरक्षिष्यत्	रक्षयति	रक्ष्यते
अरचयत्	रचयेत्	रच्यात्	अररचत्	अरचयिष्यत्	रचयति	रच्यते
अरज्यत्	रज्येत्	रज्यात्	अराङ्क्षीत्	अरङ्क्ष्यत्	रञ्जयति	रज्यते
अरटत्	रटेत्	रट्यात्	अरटीत्	अरटिष्यत्	राटयति	रट्यते
अरमत	रमेत	रंसीष्ट	अरंस्त	अरंस्यत	रमयति	रम्यते
व्यरमत्	विरमेत्	विरम्यात्	व्यरंसीत्	व्यरंस्यत्	विरमयति	विरम्यते
अरसयत्	रसयेत्	रस्यात्	अररसत्	अरसयिष्यत्	रसयति	रस्यते
अराजत्	राजेत्	राज्यात्	अराजीत्	अराजिष्यत्	राजयति	राज्यते
-त	-त	राजिषीष्ट	अराजिष्ट	अराजिष्यत	,,	,,
अराध्नोत्	राध्नुयात्	राध्यात्	अरात्सीत्	अरात्स्यत्	राधयति	राध्यते
अरौत्	रुयात्	रूयात्	अरावीत्	अरविष्यत्	रावयति	रूयते
अरोचत	रोचेत	रोचिषीष्ट	अरोचिष्ट	अरोचिष्यत	रोचयते	रुच्यते
अरोदीत्	रुद्यात्	रुद्यात्	अरुदत्	अरोदिष्यत्	रोदयति	रुद्यते

धातु अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
रुध् (७ उ०, रोकना) प०-	रुणद्धि	रुरोध	रोद्धा	रोत्स्यति	रुणद्धु
आ०-	रुन्धे	रुरुधे	,,	-ते	रुन्धाम्
रुह् (१ प०, उगना)	रोहति	रुरोह	रोढा	रोक्ष्यति	रोहतु
रूप् (१० उ०, रूप बनाना)	रूपयति-ते	रूपयांचकार	रूपयिता	रूपयिष्यति	रूपयतु
लक्ष् (१० उ०, देखना)	लक्षयति-ते	लक्षयांचकार	लक्षयिता	लक्षयिष्यति	लक्षयतु
लग् (१ प०, लगना)	लगति	ललाग	लगिता	लगिष्यति	लगतु
लङ्घ् (१ आ०, लाँघना) उत्+	लङ्घते	ललंघे	लंघिता	लंघिष्यते	लंघताम्
लङ्घ् (१० उ०, लाँघना)	लंघयति-ते	लंघयांचकार	लंघयिता	लंघयिष्यति	लंघयतु
लड् (१० उ०, प्यार करना)	लाडयति-ते	लाडयांचकार	लाडयिता	लाडयिष्यति	लाडयतु
लप् (१ प०, बोलना)	लपति	ललाप	लपिता	लपिष्यति	लपतु
लभ् (१ आ०, पाना)	लभते	लेभे	लब्धा	लप्स्यते	लभताम्
लम्ब् (१ आ०, लटकना)	लम्बते	ललम्बे	लम्बिता	लम्बिष्यते	लम्बताम्
लष् (१ उ०, चाहना)	लषति-ते	ललाष	लषिता	लषिष्यति	लषतु
लस् (१ प०, शोभित होना) वि+	लसति	ललास	लसिता	लसिष्यति	लसतु
लस्ज् (लज्ज्, ६ आ०, लज्जित०)	लज्जते	ललज्जे	लज्जिता	लज्जिष्यते	लज्जताम्
लिख् (६ प०, लिखना)	लिखति	लिलेख	लेखिता	लेखिष्यति	लिखतु
लिङ्ग् (आ+, १ प०, आलिंगन करना)	आलिंगति	आलिलिंग	आलिं-गिता	आलिं-गिष्यति	आलिंगतु
लिप् (६ उ०, लीपना)	लिम्पति-ते	लिलेप	लेप्ता	लेप्स्यति	लिम्पतु
लिह् (२ उ०, चाटना)	लेढि	लिलेह	लेढा	लेक्ष्यति	लेढु
ली (४ आ०, लीन होना)	लीयते	लिल्ये	लेता	लेष्यते	लीयताम्
लुट् (१ प०, लोटना)	लोटति	लुलोट	लोटिता	लोटिष्यति	लोटतु
लुड् (१ प०, बिलोना) आ+	लोडति	लुलोड	लोडिता	लोडिष्यति	लोडतु
लुप् (४ प०, लुप्त होना)	लुप्यति	लुलोप	लोपिता	लोपिष्यति	लुप्यतु
लुप् (६ उ० नष्ट करना)	लुम्पति-ते	,,	लोप्ता	लोप्स्यति	लुम्पतु
लुभ् (४ प०, लोभ करना)	लुभ्यति	लुलोभ	लोभिता	लोभिष्यति	लुभ्यतु
लू (९ उ०, काटना)	लुनाति	लुलाव	लविता	लविष्यति	लुनातु
लोक् (१०उ०, देखना) आ+	लोकयति-ते	लोकयांचकार	लोकयिता	लोकयिष्यति	लोकयतु
लोच् (१०उ०, देखना) आ+	लोचयति	लोचयांचकार	लोचयिता	लोचयिष्यति	लोचयतु
वच् (१० उ०, बाँचना)	वाचयति	वाचयांचकार	वाचयिता	वाचयिष्यति	वाचयतु
वञ्च् (१० आ०, ठगना)	वञ्चयते	वञ्चयांचक्रे	वञ्चयिता	वञ्चयिष्यते	वञ्चयताम्
वद् (१ प०, बोलना)	वदति	उवाद	वदिता	वदिष्यति	वदतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अरुणत्	रुन्ध्यात्	रुध्यात्	अरुधत्	अरोत्स्यत्	रोधयति	रुध्यते
अरुन्ध	रुन्धीत	रुत्सीष्ट	अरुद्ध	-त	,,	,,
अरोहत्	रोहेत्	रुह्यात्	अरुक्षत्	अरोक्ष्यत्	रोहयति	रुह्यते
अरूपयत्	रूपयेत्	रूप्यात्	अरुरूपत्	अरूपयिष्यत्	रूपयति	रूप्यते
अलक्षयत्	लक्षयेत्	लक्ष्यात्	अललक्षत्	अलक्षयिष्यत्	लक्षयति	लक्ष्यते
अलगत्	लगेत्	लग्यात्	अलगीत्	अलगिष्यत्	लगयति	लग्यते
अलंघत	लंघेत	लंघिषीष्ट	अलंघिष्ट	अलंघिष्यत	लंघयति	लंघ्यते
अलंघयत्	लंघयेत्	लंघ्यात्	अललंघत्	अलंघयिष्यत्	,,	,,
अलाडयत्	लाडयेत्	लाड्यात्	अलीलडत्	अलाडयिष्यत्	लाडयति	लाड्यते
अलपत्	लपेत्	लप्यात्	अलपीत्	अलपिष्यत्	लापयति	लप्यते
अलभत	लभेत	लप्सीष्ट	अलब्ध	अलप्स्यत	लम्भयति	लभ्यते
अलम्बत	लम्बेत	लम्बिषीष्ट	अलम्बिष्ट	अलम्बिष्यत	लम्बयति	लम्ब्यते
अलषत्	लषेत्	लष्यात्	अलषीत्	अलषिष्यत्	लाषयति	लष्यते
अलसत्	लसेत्	लस्यात्	अलसीत्	अलसिष्यत्	लासयति	लस्यते
अलज्जत	लज्जेत	लज्जिषीष्ट	अलज्जिष्ट	अलज्जिष्यत	लज्जयति	लज्ज्यते
अलिखत्	लिखेत्	लिख्यात्	अलेखीत्	अलेखिष्यत्	लेखयति	लिख्यते
आलिंगत्	आलिंगेत्	आलिंग्यात्	आलिंगीत्	आलिंगिष्यत्	आलिंगयति	आलिंग्यते
अलिम्पत्	लिम्पेत्	लिप्यात्	अलिपत्	अलेप्स्यत्	लेपयति	लिप्यते
अलेट्	लिह्यात्	लिह्यात्	अलिक्षत्	अलेक्ष्यत्	लेहयति	लिह्यते
अलीयत	लीयते	लेषीष्ट	अलेष्ट	अलेष्यत	लाययति	लीयते
अलोटत्	लोटेत्	लुट्यात्	अलोटीत्	अलोटिष्यत्	लोटयति	लुट्यते
अलोडत्	लोडेत्	लुड्यात्	अलोडीत्	अलोडिष्यत्	लोडयति	लुड्यते
अलुप्यत्	लुप्येत्	लुप्यात्	अलुपत्	अलोपिष्यत्	लोपयति	लुप्यते
अलुम्पत्	लुम्पेत्	,,	,,	अलोप्स्यत्	,,	,,
अलुभ्यत्	लुभ्येत्	लुभ्यात्	अलोभीत्	अलोभिष्यत्	लोभयति	लुभ्यते
अलुनात्	लुनीयात्	लूयात्	अलावीत्	अलविष्यत्	लावयति	लूयते
अलोकयत्	लोकयेत्	लोक्यात्	अलुलोकत्	अलोकयिष्यत्	लोकयति	लोक्यते
अलोचयत्	लोचयेत्	लोच्यात्	अलुलोचत्	अलोचयिष्यत्	लोचयति	लोच्यते
अवाचयत्	वाचयेत्	वाच्यात्	अवीवचत्	अवाचयिष्यत्	वाचयति	वाच्यते
अवञ्चयत	वञ्चयेत	वञ्चयिषीष्ट	अववञ्चत	अवञ्चयिष्यत	वञ्चयति	वञ्च्यते
अवदत्	वदेत्	उद्यात्	अवादीत्	अवदिष्यत्	वादयति	उद्यते

धातु अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
वन्द् (१ आ०, प्रणाम०)	वन्दते	ववन्दे	वन्दिता	वन्दिष्यते	वन्दताम्
वप् (१ उ०, बोना)	वपति-ते	उवाप	वप्ता	वप्स्यति	वपतु
वम् (१ प०, उगलना)	वमति	ववाम	वमिता	वमिष्यति	वमतु
वस् (१ प०, रहना)	वसति	उवास	वस्ता	वत्स्यति	वसतु
वह् (१ उ०, ढोना)	वहति-ते	उवाह	वोढा	वक्ष्यति	वहतु
वा (२ प०, हवा चलना)	वाति	ववौ	वाता	वास्यति	वातु
वाञ्छ् (१ प०, चाहना)	वाञ्छति	ववाञ्छ	वाञ्छिता	वाञ्छिष्यति	वाञ्छतु
विद् (२ प०, जानना)	वेत्ति	विवेद	वेदिता	वेदिष्यति	वेत्तु
विद् (४ आ०, होना)	विद्यते	विविदे	वेत्ता	वेत्स्यते	विद्यताम्
विद् (६ उ०, पाना)	विन्दति-ते	विवेद	वेदिता	वेदिष्यति	विन्दतु
विद् (१० आ०, कहना) नि+	वेदयते	वेदयांचक्रे	वेदयिता	वेदयिष्यते	वेदयताम्
विश् (६ प०, घुसना) प्र+	विशति	विवेश	वेष्टा	वेक्ष्यति	विशतु
वीज् (१०उ०, पंखा हिलाना)	वीजयति-ते	वीजयांचकार	वीजयिता	वीजयिष्यति	वीजयतु
वृ (५ उ०, चुनना)	वृणोति	ववार	वरिता	वरिष्यति	वृणोतु
वृ (९ आ०, छाँटना)	वृणीते	वव्रे	वरिता	वरिष्यते	वृणीताम्
वृ (१०उ०, हटाना, ढकना)	वारयति-ते	वारयांचकार	वारयिता	वारयिष्यति	वारयतु
वृज् (१० उ०, छोड़ना)	वर्जयति-ते	वर्जयांचकार	वर्जयिता	वर्जयिष्यति	वर्जयतु
वृत् (१ आ०, होना)	वर्तते	ववृते	वर्तिता	वर्तिष्यते	वर्तताम्
वृध् (१ आ०, बढ़ना)	वर्धते	ववृधे	वर्धिता	वर्धिष्यते	वर्धताम्
वृष् (१ प०, बरसना)	वर्षति	ववर्ष	वर्षिता	वर्षिष्यति	वर्षतु
वे (१ उ०, बुनना)	वयति-ते	ववौ	वाता	वास्यति	वयतु
वेप् (१ आ०, काँपना)	वेपते	विवेपे	वेपिता	वेपिष्यते	वेपताम्
वेष्ट् (१ आ०, घेरना)	वेष्टते	विवेष्टे	वेष्टिता	वेष्टिष्यते	वेष्टताम्
व्यथ् (१आ०, दुःखित होना)	व्यथते	विव्यथे	व्यथिता	व्यथिष्यते	व्यथताम्
व्यध् (४ प०, बींधना)	विध्यति	विव्याध	व्यद्धा	व्यत्स्यति	विध्यतु
व्रज् (१ प०, जाना) परि+	व्रजति	वव्राज	व्रजिता	व्रजिष्यति	व्रजतु
शक् (५ प०, सकना)	शक्नोति	शशाक	शक्ता	शक्ष्यति	शक्नोतु
शङ्क् (१ आ०, शंका करना)	शङ्कते	शशंके	शङ्किता	शङ्किष्यते	शङ्कताम्
शप् (१ उ०, शाप देना)	शपति-ते	शशाप	शप्ता	शप्स्यति	शपतु
शम् (४ प०, शान्त होना)	शाम्यति	शशाम	शमिता	शमिष्यति	शाम्यतु
शंस् (१ प०, प्रशंसा करना) प्र+	शंसति	शशंस	शंसिता	शंसिष्यति	शंसतु
शान् (१ उ०, तेज करना)	शीशांसति	शीशांसांचकार	शीशांसिता	शीशांसिष्यति	शीशांसतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अवन्दत	वन्देत	वन्दिषीष्ट	अवन्दिष्ट	अवन्दिष्यत	वन्दयति	वन्द्यते
अवपत्	वपेत्	उप्यात्	अवाप्सीत्	अवप्स्यत्	वापयति	उप्यते
अवमत्	वमेत्	वम्यात्	अवमीत्	अवमिष्यत्	वमयति	वम्यते
अवसत्	वसेत्	उष्यात्	अवात्सीत्	अवत्स्यत्	वासयति	उष्यते
अवहत्	वहेत्	उह्यात्	अवाक्षीत्	अवक्ष्यत्	वाहयति	उह्यते
अवात्	वायात्	वायात्	अवासीत्	अवास्यत्	वापयति	वायते
अवाञ्छत्	वाञ्छेत्	वाञ्छ्यात्	अवाञ्छीत्	अवाञ्छिष्यत्	वाञ्छयति	वाञ्छ्यते
अवेत्	विद्यात्	विद्यात्	अवेदीत्	अवेदिष्यत्	वेदयति	विद्यते
अविद्यत	विद्येत	वित्सीष्ट	अवित्त	अवेत्स्यत	,,	,,
अविन्दत्	विन्देत्	विद्यात्	अविदत्	अवेदिष्यत्	,,	,,
अवेदयत	वेदयेत	वेदयिषीष्ट	अवीविदत	अवेदयिष्यत	,,	वेद्यते
अविशत्	विशेत्	विश्यात्	अविक्षत्	अवेक्ष्यत्	वेशयति	विश्यते
अवीजयत्	वीजयेत्	वीज्यात्	अवीविजत्	अवीजयिष्यत्	वीजयति	वीज्यते
अवृणोत्	वृणुयात्	व्रियात्	अवारीत्	अवरिष्यत्	वारयति	व्रियते
अवृणीत	वृणीत	वृषीष्ट	अवरिष्ट	अवरिष्यत	,,	,,
अवारयत्	वारयेत्	वार्यात्	अवीवरत्	अवारयिष्यत्	,,	वार्यते
अवर्जयत्	वर्जयेत्	वर्ज्यात्	अवीवृजत्	अवर्जयिष्यत्	वर्जयति	वर्ज्यते
अवर्तत	वर्तेत	वर्तिषीष्ट	अवर्तिष्ट	अवर्तिष्यत	वर्तयति	वृत्यते
अवर्धत	वर्धेत	वर्धिषीष्ट	अवर्धिष्ट	अवर्धिष्यत	वर्धयति	वृध्यते
अवर्षत्	वर्षेत्	वृष्यात्	अवर्षीत्	अवर्षिष्यत्	वर्षयति	वृष्यते
अवयत्	वयेत्	ऊयात्	अवासीत्	अवास्यत्	वाययति	ऊयते
अवेपत	वेपेत	वेपिषीष्ट	अवेपिष्ट	अवेपिष्यत	वेपयति	वेप्यते
अवेष्टत	वेष्टेत	वेष्टिषीष्ट	अवेष्टिष्ट	अवेष्टिष्यत	वेष्टयति	वेष्ट्यते
अव्यथत	व्यथेत	व्यथिषीष्ट	अव्यथिष्ट	अव्यथिष्यत	व्यथयति	व्यथ्यते
अविध्यत्	विध्येत्	विध्यात्	अव्यात्सीत्	अव्यत्स्यत्	व्यधयति	विध्यते
अव्रजत्	व्रजेत्	व्रज्यात्	अव्राजीत्	अव्रजिष्यत्	व्राजयति	व्रज्यते
अशक्नोत्	शक्नुयात्	शक्यात्	अशकत्	अशक्ष्यत्	शाकयति	शक्यते
अशंकत	शंकेत	शंकिषीष्ट	अशंकिष्ट	अशंकिष्यत	शंकयति	शंक्यते
अशपत्	शपेत्	शप्यात्	अशाप्सीत्	अशप्स्यत्	शापयति	शप्यते
अशाम्यत्	शाम्येत्	शम्यात्	अशमत्	अशमिष्यत्	शमयति	शम्यते
अशंसत्	शंसेत्	शंस्यात्	अशंसीत्	अशंसिष्यत्	शंसयति	शस्यते
अशीशांसत्	शीशंसेत्	शीशांस्यात्	अशीशांसीत्	अशीशांसिष्यत्	शीशांसयति	शीशांस्यते

धातु	अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
शास्	(२ पा०, शिक्षा देना)	शास्ति	शशास	शासिता	शासिष्यति	शास्तु
शिक्ष्	(१ आ०, सीखना)	शिक्षते	शिशिक्षे	शिक्षिता	शिक्षिष्यते	शिक्षताम्
शी	(२ आ०, सोना)	शेते	शिश्ये	शयिता	शयिष्यते	शेताम्
शुच्	(१ प०, शोक करना)	शोचति	शुशोच	शोचिता	शोचिष्यति	शोचतु
शुध्	(४ प०, शुद्ध होना)	शुध्यति	शुशोध	शोद्धा	शोत्स्यति	शुध्यतु
शुभ्	(१ आ०, चमकना)	शोभते	शुशुभे	शोभिता	शोभिष्यते	शोभताम्
शुष्	(४ प०, सूखना)	शुष्यति	शुशोष	शोष्टा	शोक्ष्यति	शुष्यतु
शृ	(९ प०, नष्ट करना)	शृणाति	शशार	शरिता	शरिष्यति	शृणातु
शो	(४ प०, छीलना)	श्यति	शशौ	शाता	शास्यति	श्यतु
श्चुत्	(१ प०, चूना)	श्चोतति	चुश्चोत	श्चोतिता	श्चोतिष्यति	श्चोततु
श्रम्	(४ प०, श्रम करना)	श्राम्यति	शश्राम	श्रमिता	श्रमिष्यति	श्राम्यतु
श्रि	(१ उ०, आश्रय लेना)	आ+श्रयति-ते	शिश्राय	श्रयिता	श्रयिष्यति	श्रयतु
श्रु	(१ प०, सुनना)	शृणोति	शुश्राव	श्रोता	श्रोष्यति	शृणोतु
श्लाघ्	(१आ०, प्रशंसा करना)	श्लाघते	शश्लाघे	श्लाघिता	श्लाघिष्यते	श्लाघताम्
श्लिष्	(४ प०, आलिंगन०)	श्लिष्यति	शिश्लेष	श्लेष्टा	श्लेक्ष्यति	श्लिष्यतु
श्वस्	(२ प०, साँस लेना)	श्वसिति	शश्वास	श्वसिता	श्वसिष्यति	श्वसितु
ष्ठिव्	(१ प०, थूकना) नि+	ष्ठीवति	तिष्ठेव	ष्ठेविता	ष्ठेविष्यति	ष्ठीवतु
सञ्ज्	(१ प०, मिलना)	सजति	ससञ्ज	सङ्क्ता	सङ्क्ष्यति	सजतु
सद्	(१ प०, बैठना) नि+	सीदति	ससाद	सत्ता	सत्स्यति	सीदतु
सह्	(१ आ०, सहना)	सहते	सेहे	सहिता	सहिष्यते	सहताम्
साध्	(५ प०, पूरा करना)	साध्नोति	ससाध	साद्धा	सात्स्यति	साध्नोतु
सान्त्व्	(१० उ०, धैर्य बँधाना)	सान्त्वयति	सान्त्वयांचकार	सान्त्वयिता	सान्त्वयिष्यति	सान्त्वयतु
सि	(५ उ०, बाँधना)	सिनोति	सिषाय	सेता	सेष्यति	सिनोतु
सिच्	(६ उ०, सींचना)	सिंचति-ते	सिषेच	सेक्ता	सेक्ष्यति	सिंचतु
सिध्	(४ प०, पूरा होना)	सिध्यति	सिषेध	सेद्धा	सेत्स्यति	सिध्यतु
सिव्	(४ प०, सीना)	सीव्यति	सिषेव	सेविता	सेविस्यति	सीव्यतु
सु	(५ उ०, निचोड़ना)	सुनोति	सुषाव	सोता	सोष्यति	सुनोतु
सू	(२ आ०, जन्म देना)	सूते	सुषुवे	सविता	सविष्यते	सूताम्
सूच्	(१० उ०, सूचना देना)	सूचयति	सूचयांचकार	सूचयिता	सूचयिष्यति	सूचयतु
सूत्र्	(१० उ०, संक्षिप्त करना)	सूत्रयति	सूत्रयांचकार	सूत्रयिता	सूत्रयिष्यति	सूत्रयतु
सृ	(१ प०, सरकना)	सरति	ससार	सर्ता	सरिष्यति	सरतु
सृज्	(६ प० बनाना)	सृजति	ससर्ज	स्रष्टा	स्रक्ष्यति	सृजतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
अशात्	शिष्यात्	शिष्यात्	अशिषत्	अशासिष्यत्	शासयति	शिष्यते
अशिक्षत	शिक्षेत	शिक्षिषीष्ट	अशिक्षिष्ट	अशिक्षिष्यत	शिक्षयति	शिक्ष्यते
अशेत	शयीत	शयिषीष्ट	अशयिष्ट	अशयिष्यत	शाययति	शय्यते
अशोचत्	शोचेत्	शुच्यात्	अशोचीत्	अशोचिष्यत्	शोचयति	शुच्यते
अशुध्यत्	शुध्येत्	शुध्यात्	अशुधत्	अशोत्स्यत्	शोधयति	शुध्यते
अशोभत	शोभेत	शोभिषीष्ट	अशोभिष्ट	अशोभिष्यत	शोभयति	शुभ्यते
अशुष्यत्	शुष्येत्	शुष्यात्	अशुषत्	अशोक्ष्यत्	शोषयति	शुष्यते
अशृणात्	शृणीयात्	शीर्यात्	अशारीत्	अशारिष्यत्	शारयति	शीर्यते
अश्यत्	श्येत्	शायात्	अशासीत्	अशास्यत्	शाययति	शायते
अश्चोतत्	श्चोतेत्	श्चुत्यात्	अश्चोतीत्	अश्चोतिष्यत्	श्चोतयति	श्चुत्यते
अश्राम्यत्	श्राम्येत्	श्रम्यात्	अश्रमत्	अश्रमिष्यत्	श्रमयति	श्रम्यते
अश्रयत्	श्रयेत्	श्रीयात्	अशिश्रियत्	अश्रयिष्यत्	श्राययति	श्रीयते
अशृणोत्	शृणुयात्	श्रूयात्	अश्रौषीत्	अश्रोष्यत्	श्रावयति	श्रूयते
अश्लाघत	श्लाघेत	श्लाघिषीष्ट	अश्लाघिष्ट	अश्लाघिष्यत	श्लाघयति	श्लाघ्यते
अश्लिष्यत्	श्लिष्येत्	श्लिष्यात्	अश्लिक्षत्	अश्लेक्ष्यत्	श्लेषयति	श्लिष्यते
अश्वसीत्	श्वस्यात्	श्वस्यात्	अश्वसीत्	अश्वसिष्यत्	श्वासयति	श्वस्यते
अष्ठीवत्	ष्ठीवेत्	ष्ठीव्यात्	अष्ठेवीत्	अष्ठेविष्यत्	ष्ठेवयति	ष्ठीव्यते
असजत्	सजेत्	सज्यात्	असाङ्क्षीत्	असङ्क्ष्यत्	सञ्जयति	सज्यते
असीदत्	सीदेत्	सद्यात्	असदत्	असत्स्यत्	सादयति	सद्यते
असहत	सहेत	सहिषीष्ट	असहिष्ट	असहिष्यत	साहयति	सह्यते
असाध्नोत्	साध्नुयात्	साध्यात्	असात्सीत्	असात्स्यत्	साधयति	साध्यते
असान्त्वयत्	सान्त्वयेत्	सान्त्व्यात्	अससान्त्वत्	असान्त्वयिष्यत्	सान्त्वयति	सान्त्व्यते
असिनोत्	सिनुयात्	सीयात्	असैषीत्	असेष्यत्	साययति	सीयते
असिंचत्	सिंचेत्	सिच्यात्	असिचत्	असेक्ष्यत्	सेचयति	सिच्यते
असिध्यत्	सिध्येत्	सिध्यात्	असिधत्	असेत्स्यत्	सेधयति	सिध्यते
असीव्यत्	सीव्येत्	सीव्यात्	असेवीत्	असेविष्यत्	सेवयति	सीव्यते
असुनोत्	सुनुयात्	सूयात्	असावीत्	असोष्यत्	सावयति	सूयते
असूत	सुवीत	सविषीष्ट	असविष्ट	असविष्यत	,,	,,
असूचयत्	सूचयेत्	सूच्यात्	असूसुचत्	असूचयिष्यत्	सूचयति	सूच्यते
असूत्रयत्	सूत्रयेत्	सूत्र्यात्	असुसूत्रत्	असूत्रयिष्यत्	सूत्रयति	सूत्र्यते
असरत्	सरेत्	स्त्रियात्	असार्षीत्	असरिष्यत्	सारयति	स्त्रियते
असृजत्	सृजेत्	सृज्यात्	अस्राक्षीत्	अस्रक्ष्यत्	सर्जयति	सृज्यते

धातु अर्थ	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
सेव् (१ आ०, सेवा करना)	सेवते	सिषेवे	सेविता	सेविष्यते	सेवताम्
सो (४ प०, नष्ट होना)अव+	स्यति	ससौ	साता	सास्यति	स्यतु
स्खल् (१ प०, गिरना)	स्खलति	चस्खाल	स्खलिता	स्खलिष्यति	स्खलतु
स्तु (२ उ०, स्तुति करना)	स्तौति	तुष्टाव	स्तोता	स्तोष्यति	स्तौतु
स्तृ (९ उ०, ढकना, फैलाना)	स्तृणाति	तस्तार	स्तरिता	स्तरिष्यति	स्तृणातु
स्था (१ प०, रुकना)	तिष्ठति	तस्थौ	स्थाता	स्थास्यति	तिष्ठतु
स्ना (२ प०, नहाना)	स्नाति	सस्नौ	स्नाता	स्नास्यति	स्नातु
स्निह् (४ प०, स्नेह करना)	स्निह्यति	सिष्णेह	स्नेहिता	स्नेहिष्यति	स्निह्यतु
स्पन्द् (१ आ०, फड़कना)	स्पन्दते	पस्पन्दे	स्पन्दिता	स्पन्दिष्यते	स्पन्दताम्
स्पर्ध् (१ आ०,स्पर्धा करना)	स्पर्धते	पस्पर्धे	स्पर्धिता	स्पर्धिष्यते	स्पर्धताम्
स्पृश् (६ प०, छूना)	स्पृशति	पस्पर्श	स्प्रष्टा.	स्प्रक्ष्यति	स्पृशतु
स्पृह् (१० उ०, चाहना)	स्पृहयति	स्पृहयांचकार	स्पृहयिता	स्पृहयिष्यति	स्पृहयतु
स्फुट् (६ प०, खिलना)	स्फुटति	पुस्फोट	स्फुटिता	स्फुटिष्यति	स्फुटतु
स्फुर् (६ प०, फड़कना)	स्फुरति	पुस्फोर	स्फुरिता	स्फुरिष्यति	स्फुरतु
स्मि (१ आ०, मुस्कराना)	स्मयते	सिस्मिये	स्मेता	स्मेष्यते	स्मयताम्
स्मृ (१ प०, सोचना)	स्मरति	सस्मार	स्मर्ता	स्मरिष्यति	स्मरतु
स्यन्द् (१ आ०, बहना)	स्यन्दते	सस्यन्दे	स्यन्दिता	स्यन्दिष्यते	स्यंन्दताम्
स्रंस् (१ आ०, सरकना)	स्रंसते	सस्रंसे	स्रंसिता	स्रंसिष्यते	स्रंसताम्
स्रु (१ प०, चूना, निकलना)	स्रवति	सुस्राव	स्रोता	स्रोष्यति	स्रवतु
स्वद् (१ उ०, स्वाद लेना)आ+	स्वादयति	स्वादयांचकार	स्वादयिता	स्वादयिष्यति	स्वादयतु
स्वप् (२ प०, सोना)	स्वपिति	सुष्वाप	स्वप्ता	स्वप्स्यति	स्वपितु
हन् (२ प०, मारना)	हन्ति	जघान	हन्ता	हनिष्यति	हन्तु
हस् (१ प०, हँसना)	हसति	जहास	हसिता	हसिष्यति	हसतु
हा (३ प०, छोड़ना)	जहाति	जहौ	हाता	हास्यति	जहातु
हिंस् (७ प०, हिंसा करना)	हिनस्ति	जिहिंस	हिंसिता	हिंसिष्यति	हिनस्तु
हु (३ प०, यज्ञ करना)	जुहोति	जुहाव	होता	होष्यति	जुहोतु
हृ (१ उ०, ले जाना, चुराना)	हरति-ते	जहार	हर्ता	हरिष्यति	हरतु
हृष् (४ प०, खुश होना)	हृष्यति	जहर्ष	हर्षिता	हर्षिष्यति	हृष्यतु
ह्नु (२ आ०, छिपाना)अप+	ह्नुते	जुह्नुवे	ह्नोता	ह्नोष्यते	ह्नुताम्
ह्रस् (१ प०, कम होना)	ह्रसति	जह्रास	ह्रसिता	ह्रसिष्यति	ह्रसतु
ह्री (३ प०, लज्जा करना)	जिह्रेति	जिह्राय	ह्रेता	ह्रेष्यति	जिह्रेतु
ह्वे (१ उ०, बुलाना) आ+	आह्वयति	आजुहाव	आह्वाता	आह्वास्यति	आह्वयतु

लङ्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्	लुङ्	लृङ्	णिच्	कर्म०
असेवत	सेवेत	सेविषीष्ट	असेविष्ट	असेविष्यत	सेवयति	सेव्यते
अस्यत्	स्येत्	सेयात्	असासीत्	असास्यत्	साययति	सीयते
अस्खलत्	स्खलेत्	स्खल्यात्	अस्खालीत्	अस्खलिष्यत्	स्खलयति	स्खल्यते
अस्तौत्	स्तुयात्	स्तूयात्	अस्तावीत्	अस्तोष्यत्	स्तावयति	स्तूयते
अस्तृणात्	स्तृणीयात्	स्तीर्यात्	अस्तारीत्	अस्तरिष्यत्	स्तारयति	स्तीर्यते
अतिष्ठत्	तिष्ठेत्	स्थेयात्	अस्थात्	अस्थास्यत्	स्थापयति	स्थीयते
अस्नात्	स्नायात्	स्नायात्	अस्नासीत्	अस्नास्यत्	स्नपयति	स्नायते
अस्निह्यत्	स्निह्येत्	स्निह्यात्	अस्निहत्	अस्नेहिष्यत्	स्नेहयति	स्निह्यते
अस्पन्दत	स्पन्देत	स्पन्दिषीष्ट	अस्पन्दिष्ट	अस्पन्दिष्यत	स्पन्दयति	स्पन्द्यते
अस्पर्धत	स्पर्धेत	स्पर्धिषीष्ट	अस्पर्धिष्ट	अस्पर्धिष्यत	स्पर्धयति	स्पर्ध्यते
अस्पृशत्	स्पृशेत्	स्पृश्यात्	अस्प्राक्षीत्	अस्प्रक्ष्यत्	स्पर्शयति	स्पृश्यते
अस्पृहयत्	स्पृहयेत्	स्पृह्यात्	अपस्पृहत्	अस्पृहयिष्यत्	स्पृहयति	स्पृह्यते
अस्फुटत्	स्फुटेत्	स्फुट्यात्	अस्फुटीत्	अस्फुटिष्यत्	स्फोटयति	स्फुट्यते
अस्फुरत्	स्फुरेत्	स्फूर्यात्	अस्फुरीत्	अस्फुरिष्यत्	स्फारयति	स्फूर्यते
अस्मयत	स्मयेत	स्मेषीष्ट	अस्मेष्ट	अस्मेष्यत	स्माययति	स्मीयते
अस्मरत्	स्मरेत्	स्मर्यात्	अस्मार्षीत्	अस्मरिष्यत्	स्मारयति	स्मर्यते
अस्यन्दत	स्यन्देत	स्यन्दिषीष्ट	अस्यन्दिष्ट	अस्यन्दिष्यत	स्यन्दयति	स्यद्यते
अस्रंसत	स्रंसेत	स्रंसिषीष्ट	अस्रंसिष्ट	अस्रंसिष्यत	स्रंसयति	स्रस्यते
अस्रवत्	स्रवेत्	स्रूयात्	असुस्रुवत्	अस्रोष्यत्	स्रावयति	स्रूयते
अस्वादयत्	स्वादयेत्	स्वाद्यात्	असिष्वदत्	अस्वादयिष्यत्	स्वादयति	स्वाद्यते
अस्वपीत्	स्वप्यात्	सुप्यात्	अस्वाप्सीत्	अस्वप्स्यत्	स्वापयति	सुप्यते
अहन्	हन्यात्	वध्यात्	अवधीत्	अहनिष्यत्	घातयति	हन्यते
अहसत्	हसेत्	हस्यात्	अहसीत्	अहसिष्यत्	हासयति	हस्यते
अजहात्	जह्यात्	हेयात्	अहासीत्	अहास्यत्	हापयति	हीयते
अहिनत्	हिंस्यात्	हिंस्यात्	अहिंसीत्	अहिंसिष्यत्	हिंसयति	हिंस्यते
अजुहोत्	जुहुयात्	हूयात्	अहौषीत्	अहोष्यत्	हावयति	हूयते
अहरत्	हरेत्	ह्रियात्	अहार्षीत्	अहरिष्यत्	हारयति	ह्रियते
अहृष्यत्	हृष्येत्	हृष्यात्	अहृषत्	अहर्षिष्यत्	हर्षयति	हृष्यते
अह्नुत	ह्नुवीत	ह्नोषीष्ट	अह्नोष्ट	अह्नोष्यत	ह्नावयति	ह्नूयते
अह्रसत्	ह्रसेत्	ह्रस्यात्	अह्रासीत्	अह्रसिष्यत्	ह्रासयति	ह्रस्यते
अजिह्रेत्	जिह्रीयात्	ह्रीयात्	अह्रैषीत्	अह्रेष्यत्	ह्रेपयति	ह्रीयते
आह्वयत्	आह्वयेत्	आहूयात्	आह्वत्	आह्वास्यत्	आह्वाययति	आहूयते

(१) अकर्मक धातुएँ

लज्जासत्तास्थितिजागरणं वृद्धिक्षयभयजीवतिमरणम्।
शयनक्रीडारुचिदीप्त्यर्थं धातुगणं तमकर्मकमाहुः॥

इन अर्थों वाली धातुएँ अकर्मक (कर्म-रहित) होती है :— लज्जा, होना, रुकना या बैठना, जागना, बढ़ना, घटना, डरना, जीना, मरना, सोना, खेलना, अच्छा लगना, चमकना।

(२) अनिट् धातुएँ (जिनमें बीच में इ नहीं लगता)

ऊ ॠदन्त औ' शी श्रि डी को छोड़कर एकाच् सब।
शक् पच् वच मुच् सिच् प्रच्छ् त्यज् भज्, भुज् यज सृज् मस्ज युज॥
अद् पद्य खिद् छिद् विद्य तुद् नुद् भिद् सद क्रुध् क्षुध् बुध।
बन्ध् युध् रुध् साध् व्यध् शुध्, सिध् मन्य हन् क्षिप् आप तप॥ १ ॥
तृप्य् दृप् लिप् लुप् वप स्वप्, शप् सृप रभ् लभ् गम।
नम् यम् रम क्रुश् दंश् दिश् दृश्, मृश् विश स्पृश् पुष्य दुष॥
कृष् तुष् द्विष श्लिष् शुष्य शिष् वस्, दह् दिह् लिह औ' रुह् वह।
धातु ये सब अनिट् हैं, परिगणन इनका है यह ॥ २॥

सूचना—अन्त्याक्षरों के क्रम से ये धातुएँ पद्यबद्ध हैं। दिवादिगणी धातुओं में, इस प्रकार की अन्य धातुओं से अन्तर के लिए, अन्त में य लगा है। पहले क् अन्तवाली शक् धातु, बाद में च् अन्तवाली, इसी प्रकार क्रमशः धातुएँ हैं। अज्न्त धातुओं में ऊकारान्त और दीर्घ ॠकारान्त तथा शी श्रि डी धातु सेट् हैं, शेष अनिट् हैं। जैसे—चि, जि, कृं, ह, धृ, भृ आदि। केवल विशेष प्रचलित धातुओं का ही संग्रह है। अप्रचलित ३० धातुओं का संग्रह नहीं है। सेट् धातुओं में धातु और प्रत्यय के बीच में इ लगता है। इट् का अर्थ है 'इ'। सेट् का अर्थ है, स+इट् अर्थात् 'इ' वाली। इसी प्रकार अनिट् का अर्थ है, अन् +इट् अर्थात् 'इ-नहीं' वाली धातुएँ।

(५) प्रत्यय-विचार

(१) क्त (२) क्तवतु प्रत्यय (देखो अभ्यास ३७, ३८, ३९)

सूचना—क्त और क्तवतु प्रत्यय भूतकाल में होते हैं। क्त का त और क्तवतु का तवत् शेष रहता है। क्त कर्मवाच्य या भाववाच्य में होता है, क्तवतु कर्तृवाच्य में। धातु को गुण या वृद्धि नहीं होती है। संप्रसारण होता है। अन्य नियमों के लिए देखो अभ्यास ३७-३९। क्त प्रत्ययान्त के रूप पुंलिंग में रामवत्, स्त्रीलिंग में आ लगाकर रमावत् और नपुंसकलिंग में गृहवत् चलेंगे। यहाँ केवल पुंलिंग के ही रूप दिए गये हैं। क्त-प्रत्ययान्त का क्तवतु-प्रत्ययान्त रूप बनाने का सरल प्रकार यह है कि क्त -प्रत्ययान्त के बाद में 'वत्' और जोड़ दें। अभ्यास ३९ में दिए नियमानुसार तीनों लिंगों के रूप चलाएँ। **धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।**

अद्	जग्धः	कृष्	कृष्टः	घ्रा	घ्रातः	त्यज्	त्यक्तः
	(अन्नम्)	कॄ	कीर्णः		घ्राणः	त्रै	त्रातः
अधि+इ	अधीतः	क्रन्द्	क्रन्दितः	चर्	चरितः	दंश्	दष्टः
अर्च्	अर्चितः	क्रम्	क्रान्तः	चल्	चलितः	दण्ड्	दण्डितः
अस् (२प.)	भूतः	क्री	क्रीतः	चि	चितः	दम्	दान्तः
आप्	आप्तः	क्रीड्	क्रीडितः	चिन्त्	चिन्तितः	दय्	दयितः
आ+रभ्	आरब्धः	क्रुध्	क्रुद्धः	चुर्	चोरितः	दह्	दग्धः
आलम्ब्	आलम्बितः	क्षि	क्षीणः	चेष्ट्	चेष्टितः	दा	दत्तः
आ+ह्वे	आहूतः	क्षिप्	क्षिप्तः	छिद्	छिन्नः	दिव्	द्यूनः, द्यूतः
इ	इतः	क्षुभ्	क्षुब्धः	जन्	जातः	दिश्	दिष्टः
इष्	इष्टः	खन्	खातः	जि	जितः	दीप्	दीप्तः
ईक्ष्	ईक्षितः	खाद्	खादितः	जीव्	जीवितः	दुह्	दुग्धः
उत्+डी	उड्डीनः	गण्	गणितः	जॄ	जीर्णः	दृश्	दृष्टः
कथ्	कथितः	गम्	गतः	ज्ञा	ज्ञातः	दो (दा)	दितः
कम्	कान्तः	गर्ज्	गर्जितः	ज्वल्	ज्वलितः	द्युत्	द्योतितः
कम्प्	कम्पितः	गॄ	गीर्णः	तन्	ततः	धा	हितः
कुप्	कुपितः	गै (गा)	गीतः	तप्	तप्तः	धाव्	धावितः
कूर्द्	कूर्दितः	ग्रस्	ग्रस्तः	तुष्	तुष्टः	धृ	धृतः
कृ	कृतः	ग्रह्	गृहीतः	तृप्	तृप्तः	ध्मा	ध्मातः

ध्यै	ध्यातः	भुज्	भुक्तः	लिख्	लिखितः	श्रु	श्रुतः
ध्वंस्	ध्वस्तः	भू	भूतः	लिह्	लीढः	श्लिष्	श्लिष्टः
नम्	नतः	भृ	भृतः	लुभ्	लुब्धः	सद्	सन्नः
नश्	नष्टः	भ्रम्	भ्रान्तः	वच् (ब्रू)	उक्तः	सन्	सातः
निन्द्	निन्दितः	मद्	मत्तः	वद्	उदितः	सह्	सोढः
नी	नीतः	मन्	मतः	वन्द्	वन्दितः	साध्	साधितः
नृत्	नृत्तः	मन्थ्	मन्थितः	वप्	उप्तः	सिच्	सिक्तः
पच्	पक्वः	मा	मितः	वस्	उषितः	सिध्	सिद्धः
पठ्	पठितः	मिल्	मिलितः	वह्	ऊढः	सिव्	स्यूतः
पत्	पतितः	मुच्	मुक्तः	वा	वातः	सृज्	सृष्टः
पद्	पन्नः	मुद्	मुदितः	वि+कस्	विकसितः	सेव्	सेवितः
पलाय्	पलायितः	मुह्	मुग्धः, मूढः	विद् (२प.)	विदितः	सो (सा)	सितः
पा (१ प०)	पीतः	मूर्च्छ्	मूर्च्छितः	विद् (१०)	वेदितः	स्तु	स्तुतः
पाल्	पालितः	मृज्	मृष्टः	विश्	विष्टः	स्था	स्थितः
पुष्	पुष्टः	यज्	इष्टः	वृत्	वृत्तः	स्ना	स्नातः
पूज्	पूजितः	यत्	यतितः	वृध्	वृद्धः	स्निह्	स्निग्धः
पॄ	पूर्णः	यम्	यतः	वे	उतः	स्पृश्	स्पृष्टः
प्रच्छ्	पृष्टः	या	यातः	व्यथ्	व्यथितः	स्वप्	सुप्तः
प्रथ्	प्रथितः	याच्	याचितः	व्यध्	विद्धः	स्वाद्	स्वादितः
प्र+हि	प्रहितः	युज्	युक्तः	शंक्	शंकितः	स्विद्	स्विन्नः
प्रेर्	प्रेरितः	युध्	युद्धः	शक्	शक्तः	हन्	हतः
बन्ध्	बद्धः	रक्ष्	रक्षितः	शप्	शप्तः	हस्	हसितः
बुध्	बुद्धः	रच्	रचितः	शम्	शान्तः	हा (३प०)	हीनः
ब्रू	उक्तः	रञ्ज्	रक्तः	शास्	शिष्टः	हा (३आ०)	हानः
भक्ष्	भक्षितः	रम्	रतः	शिक्ष्	शिक्षितः	हिंस्	हिंसितः
भज्	भक्तः	रुच्	रुचितः	शी	शयितः	हु	हुतः
भञ्ज्	भग्नः	रुद्	रुदितः	शुच्	शुचितः	हृ	हृतः
भण्	भणितः	रुध्	रुद्धः	शुभ्	शोभितः	हृष्	हृष्टः
भाष्	भाषितः	रुह्	रूढः	शुष्	शुष्कः	ह्रस्	ह्रसितः
भिद्	भिन्नः	लभ्	लब्धः	शॄ	शीर्णः	ह्री	ह्रीतः, ह्रीणः
भी	भीतः	लष्	लषितः	श्रि	श्रितः	ह्वे	हूतः

(३) शतृ प्रत्यय (देखो अभ्यास ४०)

सूचना—परस्मैपदी धातुओं के लट् के स्थान पर शतृ होता है। शतृ का अत् शेष रहता है। पुंलिंग में पठत् के तुल्य,, स्त्रीलिंग में ई लगाकर नदी के तुल्य और नपुंसकलिंग में जगत् के तुल्य रूप चलेंगे। यहाँ पर केवल पुंलिंग के रूप दिये गए हैं। रूप बनाने के नियमों के लिए देखें अभ्यास ४०। **धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।**

अद्	अदन्	चल्	चलन्	पत्	पतन्	व्यध्	विध्यन्
अर्च्	अर्चन्	चि	चिन्वन्	पा (१५०)	पिबन्	शक्	शक्नुवन्
अस् (२५०)	सन्	छिद्	छिन्दन्	पाल्	पालयन्	शप्	शपन्
आप्	आप्नुवन्	जप्	जपन्	पूज्	पूजयन्	शम्	शाम्यन्
आ+रुह्	आरोहन्	जि	जयन्	प्रच्छ्	पृच्छन्	शुष्	शुष्यन्
आ+ह्वे	आह्वयन्	जीव्	जीवन्	प्रेर्	प्रेरयन्	श्रि	श्रयन्
इ	यन्	ज्वल्	ज्वलन्	बन्ध्	बध्नन्	श्रु	शृण्वन्
इष्	इच्छन्	तप्	तपन्	भक्ष्	भक्षयन्	सद्	सीदन्
कुप्	कुप्यन्	तुद्	तुदन्	भज्	भजन्	सिच्	सिञ्चन्
कृ	कुर्वन्	तुष्	तुष्यन्				
कृष्	कर्षन्	तॄ	तरन्	भिद्	भिन्दन्	सिव्	सीव्यन्
कॄ	किरन्	त्यज्	त्यजन्	भृ	भरन्	सृ	सरन्
क्रन्द्	क्रन्दन्	दण्ड्	दण्डयन्		सृज्	सृजन्	
क्रम्	क्राम्यन्	दह्	दहन्	भू	भवन्	सृप्	सर्पन्
क्रीड्	क्रीडन्	त्यज्	त्यजन्	भ्रम्	भ्रमन्, भ्राम्यन्	स्तु	स्तुवन्
क्रुध्	क्रुध्यन्	दिव्	दीव्यन्	मिल्	मिलन्	स्था	तिष्ठन्
क्षम्	क्षाम्यन्	दिश्	दिशन्	रक्ष्	रक्षन्	स्पृश्	स्पृशन्
क्षिप्	क्षिपन्	दुह्	दुहन्	रच्	रचयन्	स्मृ	स्मरन्
खन्	खनन्	दृश्	पश्यन्	रुद्	रुंदन्	स्वप्	स्वपन्
खाद्	खादन्	धाव्	धावन्	लष्	लषन्	हन्	हनन्
गण्	गणयन्	धृ	धरन्	लिख्	लिखन्	हस्	हसन्
गम्	गच्छन्	ध्यै	ध्यायन्	लिह्	लिहन्	हा (३ प०)	जहत्
गर्ज्	गर्जन्	नम्	नमन्	वद्	वदन्	हिंस्	हिंसन्
गॄ	गिरन्	नश्	नश्यन्	वस्	वसन्	हु	जुह्वत्
गै	गायन्	निन्द्	निन्दन्	वह्	वहन्	हृ	हरन्
घ्रा	जिघ्रन्	नृत्	नृत्यन्	विश्	विशन्	हृष्	हृष्यन्
चर्	चरन्	पठ्	पठन्	वृष्	वर्षन्	ह्वे	ह्वयन्

(४) शानच् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४१)

सूचना—आत्मनेपदी धातुओं के लट् के स्थान पर शानच् होता है। उभयपदी धातुओं के लट् के स्थान पर शतृ और शानच् दोनों होते हैं। शानच् का आन शेष रहता है। शानच् प्रत्ययान्त के रूप पुं० में रामवत्, स्त्री० में आ लगाकर रमावत् और नपुं० में गृहवत् चलेंगे। यहाँ पर पुंलिंग के ही रूप दिए हैं। **धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।**

आत्मनेपदी धातुएँ				उभयपदी धातुएँ		
अधि+इ	अधीयानः	मन्	मन्यमानः	कथ्	कथयन्	कथयमानः
आ+रभ्	आरभमाणः	मुद्	मोदमानः	कृ	कुर्वन्	कुर्वाणः
आ+लम्ब्	आलम्बमानः	मृ	म्रियमाणः	क्री	क्रीणन्	क्रीणानः
आस्	आसीनः	यत्	यतमानः	ग्रह्	गृह्णन्	गृह्णानः
ईक्ष्	ईक्षमाणः	याच्	याचमानः	चि	चिन्वन्	चिन्वानः
ईह्	ईहमानः	युध्	युध्यमानः	चिन्त्	चिन्तयन्	चिन्तयमानः
उद्+डी	उड्डयमानः	रुच्	रोचमानः	चुर्	चोरयन्	चोरयमाणः
कम्प्	कम्पमानः	लभ्	लभमानः	ज्ञा	जानन्	जानानः
कूर्द्	कूर्दमानः	वन्द्	वन्दमानः	तन्	तन्वन्	तन्वानः
गाह्	गाहमानः	वि+राज्	विराजमानः	दा	ददत्	ददानः
ग्रस्	ग्रसमानः	वृत्	वर्तमानः	धा	दधत्	दधानः
चेष्ट्	चेष्टमानः	वृध्	वर्धमानः	नी	नयन्	नयमानः
जन्	जायमानः	व्यथ्	व्यथमानः	पच्	पचन्	पचमानः
त्रै	त्रायमाणः	शंक्	शंकमानः	ब्रू	ब्रुवन्	ब्रुवाणः
त्वर्	त्वरमाणः	भिक्ष्	भिक्षमाणः	भुज्	भुञ्जन्	भुञ्जानः
दय्	दयमानः	शी	शयानः	मुच्	मुञ्चन्	मुञ्चमानः
द्युत्	द्योतमानः	शुच्	शोचमानः	यज्	यजन्	यजमानः
ध्वंस्	ध्वंसमानः	शुभ्	शोभमानः	यज्	युञ्जन्	युञ्जानः
पलाय्	पलायमानः	श्लाघ्	श्लाघमानः	रुध्	रुन्धन्	रुन्धानः
प्रथ्	प्रथमानः	सं+पद्	संपद्यमानः	वह्	वहन्	वहमानः
बाध्	बाधमानः	सह्	सहमानः	श्रि	श्रयन्	श्रयमाणः
भास्	भासमानः	सेव्	सेवमानः	सु	सुन्वन्	सुन्वानः
भिक्ष्	भिक्षमाणः	स्मि	स्मयमानः	हृ	हरन्	हरमाणः

(५) तुमुन्, (६) तव्यत्, (७) तृच् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४२, ४५, ४८)

सूचना—(क) तुमुन् प्रत्यय 'को' 'के लिए' अर्थ में होता है। तुमुन् का तुम् शेष रहता है। तुमुन्-प्रत्ययान्त अव्यय होता है, अतः रूप नहीं चलते। धातु को गुण होता है। विशेष नियमों के लिए देखें अभ्यास ४२। (ख) तव्यत् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि तुम् प्रत्ययवाले रूप में तुम् के स्थान पर तव्य लगा दें। तव्यत् प्रत्यय 'चाहिये' अर्थ में होता है। तव्यत् का तव्य शेष रहता है। पुं० में तव्य-प्रत्ययान्त के रूप रामवत्, स्त्री० में आ लगाकर रमावत्, नपुं० में गृहवत् चलेंगे। विशेष नियमों के लिए देखें अभ्यास ४५। (ग) तृच् प्रत्यय कर्ता या 'करनेवाला' अर्थ में होता है। तृच् का तृ शेष रहता है। तृच् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि तुम् प्रत्ययवाले रूप में तुम् के स्थान पर तृ लगा दें। तृच् प्रत्ययान्त के रूप पुं० में कर्तृ के तुल्य, स्त्री० में ई लगाकर नदी के तुल्य और नपुं० में कर्तृ नपुं० के तुल्य चलेंगे। तृच् प्रत्यय के विशेष नियमों के लिए देखें अभ्यास ४८। उदाहरणार्थ—तुम्, तव्य, तृ लगाकर इन धातुओं के ये रूप होंगे। कृ-कर्तुम्, कर्तव्य, कर्तृ। हृ-हर्तुम्, हर्तव्य, हर्तृ। लिख्-लेखितुम्, लेखितव्य, लेखितृ। तव्य और तृच् में तुम् के तुल्य ही सन्धि के कार्य होंगे। **धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।**

अद्	अत्तुम्	ईक्ष्	ईक्षितुम्	क्री	क्रेतुम्	ग्रस्	ग्रसितुम्
अधि+इ	अध्येतुम्	कथ्	कथयितुम्	क्रीड्	क्रीडितुम्	ग्रह्	ग्रहीतुम्
अर्च्	अर्चितुम्	कम्	कमितुम्	क्रुध्	क्रोद्धुम्	घ्रा	घ्रातुम्
अस् (२ प०)	भवितुम्	कम्प्	कम्पितुम्	क्षम्	क्षमितुम्	चर्	चरितुम्
आप्	आप्तुम्	कुप्	कोपितुम्	क्षिप्	क्षेप्तुम्	चल्	चलितुम्
आ+रभ्	आरब्धुम्	कूर्द्	कूर्दितुम्	खन्	खनितुम्	चि	चेतुम्
आ+रुह्	आरोढुम्	कृ	कर्तुम्	खाद्	खादितुम्	चिन्त्	चिन्तयितुम्
आ+लप्	आलपितुम्	कृप्	कल्पितुम्	गण्	गणयितुम्	चुर्	चोरयितुम्
आस्	आसितुम्	कृष्	कर्ष्टुम्	गम्	गन्तुम्	चेष्ट्	चेष्टितुम्
आ+ह्वे	आह्वातुम्	कॄ	करितुम्	गर्ज्	गर्जितुम्	छिद्	छेत्तुम्
इ	एतुम्	क्रन्द्	क्रन्दितुम्	गॄ	गरितुम्	जन्	जनितुम्
इष्	एषितुम्	क्रम्	क्रमितुम्	गै (गा)	गातुम्	जप्	जपितुम्

जि	जेतुम्	पद्	पत्तुम्	याच्	याचितुम्	शप्	शप्तुम्
जीव्	जीवितुम्	पलाय्	पलायितुम्	युज्	योक्तुम्	शम्	शमितुम्
ज्ञा	ज्ञातुम्	पा(१,२ पं०)	पातुम्	युध्	योद्धुम्	शिक्ष्	शिक्षितुम्
ज्वल्	ज्वलितुम्	पाल्	पालयितुम्	रक्ष्	रक्षितुम्	शी	शयितुम्
डी	डयितुम्	पुष्	पोषितुम्	रच्	रचयितुम्	शुच्	शोचितुम्
तप्	तप्तुम्	पूज्	पूजयितुम्	रम्	रन्तुम्	शुभ्	शोभितुम्
तृप्	तर्पितुम्	प्रच्छ्	प्रष्टुम्	राज्	राजितुम्	श्रि	श्रयितुम्
तॄ	तरितुम्	प्रेर्	प्रेरयितुम्	रुच्	रोचितुम्	श्रु	श्रोतुम्
त्यज्	त्यक्तुम्	बन्ध्	बन्द्धुम्	रुद्	रोदितुम्	श्लिष्	श्लेष्टुम्
त्रै	त्रातुम्	बाध्	बाधितुम्	रुध्	रोद्धुम्	सह्	सोढुम्
दंश्	दंष्टुम्	बुध्	बोद्धुम्	लभ्	लब्धुम्	सिच्	सेक्तुम्
दह्	दग्धुम्	ब्रू	वक्तुम्	लम्ब्	लम्बितुम्	सिध्	सेद्धुम्
दा	दातुम्	भक्ष्	भक्षयितुम्	लष्	लषितुम्	सिव्	सेवितुम्
दिश्	देष्टुम्	भज्	भक्तुम्	लिख्	लेखितुम्	सु	सोतुम्
दीक्ष्	दीक्षितुम्	भाष्	भाषितुम्	लिह्	लेढुम्	सृ	सर्तुम्
दुह्	दोग्धुम्	भिद्	भेत्तुम्	लुभ्	लोभितुम्	सृज्	स्रष्टुम्
द्युत्	द्योतितुम्	भी	भेतुम्	वच्	वक्तुम्	सृप्	सर्प्तुम्
द्रुह्	द्रोग्धुम्	भुज्	भोक्तुम्	वद्	वदितुम्	सेव्	सेवितुम्
धा	धातुम्	भू	भवितुम्	वन्द्	वन्दितुम्	स्तु	स्तोतुम्
धाव्	धावितुम्	भृ	भर्तुम्	वप्	वप्तुम्	स्था	स्थातुम्
धृ	धर्तुम्	भ्रम्	भ्रमितुम्	वस्	वस्तुम्	स्ना	स्नातुम्
ध्यै	ध्यातुम्	मन्	मन्तुम्	वह्	वोढुम्	स्पर्ध्	स्पर्धितुम्
ध्वंस्	ध्वंसितुम्	मा	मातुम्	विद् (४,६,७)	वेत्तुम्	स्पृश्	स्प्रष्टुम्
नम्	नन्तुम्	मिल्	मेलितुम्	विश्	वेष्टुम्	स्मृ	स्मर्तुम्
नश्	नशितुम्	मुच्	मोक्तुम्	वृ (१०)	वारयितुम्	हन्	हन्तुम्
निन्द्	निन्दितुम्	मुद्	मोदितुम्	वृत्	वर्तितुम्	हस्	हसितुम्
नी	नेतुम्	मृ	मर्तुम्	वृध्	वर्धितुम्	हा	हातुम्
नृत्	नर्तितुम्	यज्	यष्टुम्	वृष्	वर्षितुम्	हिंस्	हिंसितुम्
पच्	पक्तुम्	यत्	यतितुम्	वे	वातुम्	हु	होतुम्
पठ्	पठितुम्	यम्	यन्तुम्	शंक्	शंकितुम्	हृ	हर्तुम्
पत्	पतितुम्	या	यातुम्	शक्	शक्तुम्	हृष्	हर्षितुम्

(८) क्त्वा, (९) ल्यप् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४३, ४४)

सूचना— 'कर' या 'करके' अर्थ में क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय होते हैं। क्त्वा का त्वा और ल्यप् का य शेष रहता है। धातु से पहले उपसर्ग नहीं होगा तो क्त्वा होगा। यदि उपसर्ग पहले होगा तो ल्यप् होगा। दोनों प्रत्ययान्त शब्द अव्यय होते हैं, अतः इनके रूप नहीं चलते। दोनों प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के नियमों के लिए देखें अभ्यास ४३, ४४। जिन उपसर्गों के साथ ल्यप् वाले रूप अधिक प्रचलित हैं, वही यहाँ दिए गए हैं। **धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।**

अद्	जग्ध्वा	प्रजग्ध्य
अधि+इ	—	अधीत्य
अर्च्	अर्चित्वा	समर्च्य
अस् (२ प०)	भूत्वा	सम्भूय
अस् (४ प०)	असित्वा	प्रास्य
आ+दृ	—	आदृत्य
आप्	आप्त्वा	प्राप्य
आस्	आसित्वा	उपास्य
इ	इत्वा	प्रेत्य
इष्	इष्ट्वा	समिष्य
ईक्ष्	ईक्षित्वा	समीक्ष्य
उत्+डी	—	उड्डीय
कम्	कमित्वा	संकाम्य
कूर्द्	कूर्दित्वा	प्रकूर्द्य
कृ	कृत्वा	उपकृत्य
कृष्	कृष्ट्वा	आकृष्य
कॄ	कीर्त्वा	विकीर्य
क्रन्द्	क्रन्दित्वा	आक्रन्द्य
क्रम्	क्रमित्वा, क्रान्त्वा	संक्रम्य
क्री	क्रीत्वा	विक्रीय
क्रीड्	क्रीडित्वा	प्रक्रीड्य
क्रुध्	क्रुद्ध्वा	संक्रुध्य

क्षम्	क्षमित्वा	संक्षम्य
क्षिप्	क्षिप्त्वा	प्रक्षिप्य
क्षुभ्	क्षुभित्वा	प्रक्षुभ्य
खन्	खनित्वा, खात्वा	उत्खन्य, उत्खाय
गण्	गणयित्वा	विगणय्य
गम्	गत्वा	आगम्य, आगत्य
गॄ	गीर्त्वा	उद्गीर्य
गै (गा)	गीत्वा	प्रगाय
ग्रस्	ग्रसित्वा	संग्रस्य
ग्रह्	गृहीत्वा	संगृह्य
घ्रा	घ्रात्वा	आघ्राय
चर्	चरित्वा	आचर्य
चल्	चलित्वा	प्रचल्य
चि	चित्वा	संचित्य
चिन्त्	चिन्तयित्वा	संचिन्त्य
चुर्	चोरयित्वा	संचोर्य
छिद्	छित्त्वा	उच्छिद्य
जन्	जनित्वा	संजाय
जप्	जपित्वा	संजप्य
जि	जित्वा	विजित्य
जीव्	जीवित्वा	संजीव्य

ज्ञा	ज्ञात्वा	विज्ञाय	पलाय् (परा+अय्)	–	पलाय्य
ज्वल्	ज्वलित्वा	प्रज्वल्य	पा (१ प०)	पीत्वा	निपाय
तन्	तनित्वा	वितत्य	पाल्	पालयित्वा	संपाल्य
तप्	तप्त्वा	संतप्य	पुष्	पुष्ट्वा	संपुष्य
तुष्	तुष्ट्वा	संतुष्य	पूज्	पूजयित्वा	संपूज्य
तॄ	तीर्त्वा	उत्तीर्य	पॄ	पूर्त्वा	आपूर्य
त्यज्	त्यक्त्वा	परित्यज्य	प्रच्छ्	पृष्ट्वा	संपृच्छ्य
दंश्	दष्ट्वा	संदश्य	बन्ध्	बद्ध्वा	आबध्य
दह्	दग्ध्वा	संदह्य	बुध्	बुद्ध्वा	प्रबुध्य
दा	दत्त्वा	आदाय	ब्रू	उक्त्वा	प्रोच्य
दिव्	देवित्वा	संदीव्य	भक्ष्	भक्षयित्वा	संभक्ष्य
दिश्	दिष्ट्वा	उपदिश्य	भज्	भक्त्वा	विभज्य
दीप्	दीपित्वा	संदीप्य	भञ्ज्	भङ्क्त्वा	विभज्य
दुह्	दुग्ध्वा	संदुह्य	भाष्	भाषित्वा	संभाष्य
दृश्	दृष्ट्वा	संदृश्य	भिद्	भित्त्वा	प्रभिद्य
द्युत्	द्योतित्वा	विद्युत्य	भी	भीत्वा	संभीय
धा	हित्वा	विधाय	भुज्	भुक्त्वा	उपभुज्य
धाव्	धावित्वा	प्रधाव्य	भू	भूत्वा	संभूय
धृ	धृत्वा	आधृत्य	भृ	भृत्वा	संभृत्य
ध्मा	ध्मात्वा	आध्माय	भ्रंश्	भ्रष्ट्वा	प्रभ्रश्य
ध्यै	ध्यात्वा	संध्याय	भ्रम्	भ्रमित्वा }	संभ्रम्य
नम्	नत्वा	प्रणम्य		भ्रान्त्वा }	
नश्	नष्ट्वा	विनश्य	मथ्	मथित्वा	विमथ्य
नि+वृ	–	निवृत्य	मन्	मत्वा	अनुमत्य
नी	नीत्वा	आनीय	मा	मित्वा	प्रमाय
नुद्	नुत्त्वा	प्रणुद्य	मिल्	मिलित्वा	संमिल्य
नृत्	नर्तित्वा	प्रनृत्य	मुच्	मुक्त्वा	विमुच्य
पच्	पक्त्वा	संपच्य	मुह्	मुग्ध्वा	संमुह्य
पठ्	पठित्वा	संपठ्य	यज्	इष्ट्वा	समिज्य
पत्	पतित्वा	निपत्य	यम्	यत्वा	संयम्य
पद्	पत्त्वा	संपद्य	या	यात्वा	प्रयाय

याच्	याचित्वा	अनुयाच्य	शम्	शान्त्वा	निशम्य
युज्	युक्त्वा	प्रयुज्य	शास्	शिष्ट्वा	अनुशिष्य
युध्	युद्ध्वा	प्रयुध्य	शी	शयित्वा	संशय्य
रक्ष्	रक्षित्वा	संरक्ष्य	शुष्	शुष्ट्वा	परिशुष्य
रच्	रचयित्वा	विरचय्य	श्रि	श्रित्वा	आश्रित्य
रभ्	रब्ध्वा	आरभ्य	श्रु	श्रुत्वा	संश्रुत्य
रम्	रत्वा	विरम्य	श्लिष्	श्लिष्ट्वा	आश्लिष्य
रुद्	रुदित्वा	विरुद्य	श्वस्	श्वसित्वा	विश्वस्य
रुध्	रुद्ध्वा	विरुध्य	सद्	सत्त्वा	निषद्य
रुह्	रूढ्वा	आरुह्य	सह्	सोढ्वा	संसह्य
लप्	लपित्वा	विलप्य	साध्	साद्ध्वा	प्रसाध्य
लभ्	लब्ध्वा	उपलभ्य	सिच्	सिक्त्वा	अभिषिच्य
लम्ब्	लम्बित्वा	आलम्ब्य	सिध्	सिद्ध्वा	निषिध्य
लष्	लषित्वा	अभिलष्य	सिव्	सेवित्वा	संसीव्य
लिख्	लिखित्वा	आलिख्य	सृज्	सृष्ट्वा	विसृज्य
लिह्	लीढ्वा	आलिह्य	सेव्	सेवित्वा	निषेव्य
ली	लीत्वा	निलीय	सो	सित्वा	अवसाय
लुभ्	लुब्ध्वा	प्रलुभ्य	स्तु	स्तुत्वा	प्रस्तुत्य
वद्	उदित्वा	अनूद्य	स्था	स्थित्वा	प्रस्थाय
वन्द्	वन्दित्वा	अभिवन्द्य	स्ना	स्नात्वा	प्रस्नाय
वप्	उप्त्वा	समुप्य	स्निह्	स्निग्ध्वा	उपस्निह्य
वस्	उषित्वा	उपोष्य	स्पृश्	स्पृष्ट्वा	संस्पृश्य
वह्	ऊढ्वा	प्रोह्य	स्मृ	स्मृत्वा	विस्मृत्य
विद् (२ प०)	विदित्वा	संविद्य	स्वप्	सुप्त्वा	संषुप्य
विद् (१०)	वेदयित्वा	निवेद्य	हन्	हत्वा	निहत्य
विश्	विष्ट्वा	प्रविश्य	हस्	हसित्वा	विहस्य
वृत्	वर्तित्वा	निवृत्य	हा (३ प०)	हित्वा	विहाय
वृध्	वर्धित्वा	संवृध्य	हु	हुत्वा	आहुत्य
वृष्	वर्षित्वा	प्रवृष्य	हृ	हृत्वा	प्रहृत्य
व्यध्	विद्ध्वा	आविध्य	हृष्	हृषित्वा	प्रहृष्य
शप्	शप्त्वा	अभिशप्य	ह्वे	हूत्वा	आहूय

(१०) ल्युट्, (११) अनीयर् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४५, ४९)

सूचना— (क) ल्युट् प्रत्यय भाववाचक शब्द बनाने के लिए धातु से लगता है। ल्युट् का 'अन' शेष रहता है। धातु को गुण होता है। ल्युट्-प्रत्ययान्त शब्द नपुंसकलिंग होता है। अन्य नियमों के लिए देखें अभ्यास ४९। (ख) 'चाहिए' अर्थ में अनीयर् प्रत्यय होता है। अनीयर् का 'अनीय' शेष रहता है। अनीयर् प्रत्यय वाला रूप बनाने का सरल उपाय यह है कि ल्युट् के अन के स्थान पर अनीय लगा दें। अन्य नियमों के लिए देखें अभ्यास ४५। जैसे—कृ का करण, करणीय। दा-दान, दानीय। पठ्-पठन, पठनीय। **धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।**

अद्	अदनम्	कूर्द्	कूर्दनम्	ग्रस्	ग्रसनम्	त्रै (त्रा)	त्राणम्
अधि+इ	अध्ययनम्	कृ	करणम्	ग्रह्	ग्रहणम्	दंश्	दंशनम्
अन्विष्	अन्वेषणम्	कृप्	कल्पनम्	घ्रा	घ्राणम्	दण्ड्	दण्डनम्
अर्च्	अर्चनम्	कृष्	कर्षणम्	चर्	चरणम्	दम्	दमनम्
अर्ज्	अर्जनम्	कॄ	करणम्	चल्	चलनम्	दह्	दहनम्
अस् (२)	भवनम्	क्रन्द्	क्रन्दनम्	चि	चयनम्	दा	दानम्
अस् (४)	असनम्	क्रम्	क्रमणम्	चिन्त्	चिन्तनम्	दिव्	देवनम्
आ+क्रम्	आक्रमणम्	क्री	क्रयणम्	चुर्	चोरणम्	दिश्	देशनम्
आ+चर्	आचरणम्	क्रीड्	क्रीडनम्	चेष्ट्	चेष्टनम्	दीप्	दीपनम्
आ+रभ्	आरभणम्	क्रुध्	क्रोधनम्	छिद्	छेदनम्	दुह्	दोहनम्
आ+रुह्	आरोहणम्	क्लिश्	क्लेशनम्	जन्	जननम्	दृश्	दर्शनम्
आ+लप्	आलपनम्	क्षम्	क्षमणम्	जप्	जपनम्	द्युत्	द्योतनम्
आस्	आसनम्	क्षिप्	क्षेपणम्	जि	जयनम्	द्रुह्	द्रोहणम्
आ+ह्वे	आह्वानम्	खन्	खननम्	जीव्	जीवनम्	धा	धानम्
इ	अयनम्	खाद्	खादनम्	ज्ञा	ज्ञानम्	धाव्	धावनम्
इष्	एषणम्	गण्	गणनम्	ज्वल्	ज्वलनम्	धृ	धरणम्
ईक्ष्	ईक्षणम्	गम्	गमनम्	डी	डयनम्	ध्यै (ध्या)	ध्यानम्
उद्+डी	उड्डयनम्	गर्ज्	गर्जनम्	तप्	तपनम्	ध्वंस्	ध्वंसनम्
कथ्	कथनम्	गाह्	गाहनम्	तुष्	तोषणम्	नन्द्	नन्दनम्
कम्	कमनम्	गॄ	गरणम्	तृप्	तर्पणम्	नम्	नमनम्
कम्प्	कम्पनम्	गै (गा)	गानम्	तॄ	तरणम्	नश्	नशनम्
कुप्	कोपनम्	ग्रन्थ्	ग्रन्थनम्	त्यज्	त्यजनम्	नि+गॄ	निगरणम्

निन्द्	निन्दनम्	भुज्	भोजनम्	लभ्	लभनम्	शम्	शमनम्
नि+यम्	नियमनम्	भू	भवनम्	लम्ब्	लम्बनम्	शास्	शासनम्
नि+वस्	निवसनम्	भृ	भरणम्	लष्	लषणम्	शिक्ष्	शिक्षणम्
नि+विद्	निवेदनम्	भ्रंश्	भ्रंशनम्	लस्	लसनम्	शी	शयनम्
नि+सिध्	निषेधनम्	भ्रम्	भ्रमणम्	लिख्	लेखनम्	शुभ्	शोभनम्
नी	नयनम्	मद्	मदनम्	लिह्	लेहनम्	शुष्	शोषणम्
नृत्	नर्तनम्	मन्	मननम्	ली	लयनम्	श्रि	श्रयणम्
पच्	पचनम्	मन्थ्	मन्थनम्	लुट्	लोटनम्	श्रु	श्रवणम्
पठ्	पठनम्	मा	मानम्	लुप्	लोपनम्	सं+मिल्	संमेलनम्
पत्	पतनम्	मिल्	मेलनम्	लुभ्	लोभनम्	सद्	सदनम्
पलाय्	पलायनम्	मुच्	मोचनम्	लोक्	लोकनम्	सह्	सहनम्
पा (१,२)	पानम्	मुद्	मोदनम्	लोच्	लोचनम्	साध्	साधनम्
पाल्	पालनम्	मुष्	मोषणम्	वच्	वचनम्	सिच्	सेचनम्
पुष्	पोषणम्	मुह्	मोहनम्	वञ्च्	वञ्चनम्	सिव्	सेवनम्
पूज्	पूजनम्	मृ	मरणम्	वद्	वदनम्	सु	सवनम्
प्र+काश्	प्रकाशनम्	यज्	यजनम्	वन्द्	वन्दनम्	सृ	सरणम्
प्रच्छ्	प्रच्छनम्	यत्	यतनम्	वप्	वपनम्	सृज्	सर्जनम्
प्र+आप्	प्रापणम्	यम्	यमनम्	वर्ण्	वर्णनम्	सृप्	सर्पणम्
प्र+विश्	प्रवेशनम्	या	यानम्	वह्	वहनम्	सेव्	सेवनम्
प्र+हस्	प्रहसनम्	याच्	याचनम्	वि+किस्	विकसनम्	स्तु	स्तवनम्
प्रेर् (प्र+ईर्)	प्रेरणम्	युज्	योजनम्	विद्	वेदनम्	स्था	स्थानम्
प्रेष्	प्रेषणम्	युध्	योधनम्	वि + धा	विधानम्	स्ना	स्नानम्
बन्ध्	बन्धनम्	रंज्	रंजनम्	वि + नश्	विनशनम्	स्निह्	स्नेहनम्
बाध्	बाधनम्	रक्ष्	रक्षणम्	वि + लप्	विलपनम्	स्पृश्	स्पर्शनम्
बुध्	बोधनम्	रच्	रचनम्	वि + श्वस्	विश्वसनम्	स्मृ	स्मरणम्
ब्रू	वचनम्	रम्	रमणम्	वृ	वरणम्	स्रंस्	स्रंसनम्
भंज्	भंजनम्	राज्	राजनम्	वृत्	वर्तनम्	स्वप्	स्वपनम्
भक्ष्	भक्षणम्	रुच्	रोचनम्	वृध्	वर्धनम्	हन्	हननम्
भज्	भजनम्	रुद्	रोदनम्	वृष्	वर्षणम्	हु	हवनम्
भाष्	भाषणम्	रुध्	रोधनम्	वेप्	वेपनम्	हृ	हरणम्
भिद्	भेदनम्	लप्	लपनम्	शप्	शपनम्	हृष्	हर्षणम्

(१२) घञ् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४७)

सूचना—भाव अर्थ में घञ् प्रत्यय होता है। घञ् का 'अ' शेष रहता है। घञन्त शब्द पुंलिंग होता है। घञ् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने के नियमों के लिए देखें अभ्यास ४७। घञ् - प्रत्ययान्त शब्द उपसर्गों के साथ बहुत प्रचलित हैं। उपसर्ग लगाकर स्वयं अन्य रूप बनावें। **धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।**

अधि+इ	अध्याय:	चर्	चार:	प्र+भू	प्रभाव:	वि+लप्	विलाप:
अभि+लष्	अभिलाष:	चल्	चाल:	प्र+विश्	प्रवेश:	वि+वह्	विवाह:
अव+तॄ	अवतार:	चि	काय:	प्र+सद्	प्रसाद:	वि+श्रम्	विश्राम:
अव+लिह्	अवलेह:	चुर्	चोर:	प्र+सृ	प्रसार:	वि+श्वस्	विश्वास:
अस् (२ प०)	भाव:	छिद्	छेद:	प्र+स्तु	प्रस्ताव:	वि+सृज्	विसर्ग:
आ+क्षिप्	आक्षेप:	जप्	जाप:	प्र+हृ	प्रहार:	वृष्	वर्ष:
आ+गम्	आगम:	तप्	ताप:	बुध्	बोध:	शप्	शाप:
आ+चर्	आचार:	त्यज्	त्याग:	भज्	भाग:	शम्	शम:
आ+दृश्	आदर्श:	दह्	दाह:	भिद्	भेद:	शुच्	शोक:
आ+धृ	आधार:	दा	दाय:	भुज्	भोग:	शुष्	शोष:
आ+मुद्	आमोद:	दिव्	देव:	मिल्	मेल:	श्रि	श्राय:
आ+रुह्	आरोह:	दुह्	दोह:	मुह्	मोह:	श्रु	श्राव:
आ+वृत्	आवर्त:	द्रुह्	द्रोह:	मृज्	मार्ग:	श्लिष्	श्लेष:
आ+हन्	आघात:	धा	धाय:	यज्	याग:	सं+कृ	संस्कार:
उत्+पद्	उत्पाद:	नश्	नाश:	युज्	योग:	सं+तन्	सन्तान:
उत्+सह्	उत्साह:	नि+इ	न्याय:	युध्	योध:	सं+तुष्	सन्तोष:
उप+दिश्	उपदेश:	नि+वस्	निवास:	रञ्ज्	राग:	सं+मन्	संमान:
कम्	काम:	नि+सिध्	निषेध:	रम्	राम:	सं+यम्	संयम:
कुप्	कोप:	पच्	पाक:	रुध्	रोध:	सिच्	सेक:
कृ	कार:	पठ्	पाठ:	लभ्	लाभ:	सृज्	सर्ग:
कृष्	कर्ष:	पत्	पात:	लिख्	लेख:	स्निह्	स्नेह:
क्षिप्	क्षेप:	पुष्	पोष:	लुभ्	लोभ:	स्पृश्	स्पर्श:
क्षुभ्	क्षोभ:	प्र+काश्	प्रकाश:	वद्	वाद:	स्वप्	स्वाप:
गम्	गम:	प्र+कृ	प्रकार:	वि+कस्	विकास:	हस्	हास:
ग्रस्	ग्रास:	प्र+कृष्	प्रकर्ष:	वि+कृप्	विकल्प:	हृ	हार:
ग्रह	ग्राह:	प्र+नम्	प्रणाम:	विद्	वेद:	हृष्	हर्ष:

(१३) ण्वुल् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४९)

सूचना—कर्ता या 'करने वाला' अर्थ में ण्वुल् प्रत्यय होता है। ण्वुल् के स्थान पर 'अक' शेष रहता है। धातु को गुण या वृद्धि होगी। कर्ता के अनुसार तीनों लिंग होते हैं। विशेष नियम के लिए देखें अभ्यास ४९। **धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।**

अध्यापि	अध्यापकः	द्विष्	द्वेषकः	प्र+विश्	प्रवेशकः	रुध्	रोधकः
अन्विष्	अन्वेषकः	धा	धायकः	प्र+सृ	प्रसारकः	लिख्	लेखकः
उद्+पद्	उत्पादकः	धाव्	धावकः	प्र+स्तु	प्रस्तावकः	वच्	वाचकः
उद्+धृ	उद्धारकः	धृ	धारकः	प्रेर् (प्र+ईर्)	प्रेरकः	वह्	वाहकः
उत्+मद्	उन्मादकः	ध्यै	ध्यायकः	बन्ध्	बन्धकः	वि+कस्	विकासकः
उप+दिश्	उपदेशकः	ध्वंस्	ध्वंसकः	बाध्	बाधकः	वि+आप्	व्यापकः
उप+आस्	उपासकः	नश्	नाशकः	बुध्	बोधकः	वि +धा	विधायकः
कृ	कारकः	निन्द्	निन्दकः	ब्रू	वाचकः	वि+भज्	विभाजकः
कृष्	कर्षकः	नि+विद्	निवेदकः	भक्ष्	भक्षकः	वि+स्कम्भ्	विष्कम्भकः
क्रीड्	क्रीडकः	नि+वृ	निवारकः	भज्	भाजकः	वृध्	वर्धकः
खाद्	खादकः	नि+सिध्	निषेधकः	भाष्	भाषकः	वृष्	वर्षकः
गण्	गणकः	नी	नायकः	भिद्	भेदकः	शास्	शासकः
गम्	गमकः	नृत्	नर्तकः	भुज्	भोजकः	शिक्ष्	शिक्षकः
गै	गायकः	पच्	पाचकः	भू	भावकः	शुष्	शोषकः
ग्रह्	ग्राहकः	पठ्	पाठकः	मुच्	मोचकः	श्रु	श्रावकः
चि	चायकः	पत्	पातकः	मुद्	मोदकः	सं+चल्	संचालकः
चिन्त्	चिन्तकः	परि+ईक्ष्	परीक्षकः	मुह्	मोहकः	सं+तप्	संतापकः
छिद्	छेदकः	पा	पायकः	मृ	मारकः	सं+युज्	संयोजकः
जन्	जनकः	पाल्	पालकः	यज्	याजकः	सं+हृ	संहारकः
तॄ	तारकः	पुष्	पोषकः	यम्	यमकः	साध्	साधकः
दह्	दाहकः	पूज्	पूजकः	याच्	याचकः	सिच्	सेचकः
दीप्	दीपकः	प्र+काश्	प्रकाशकः	युज्	योजकः	सेव्	सेवकः
दुह्	दोहकः	प्र+क्षिप्	प्रक्षेपकः	युध्	योधकः	स्था	स्थापकः
दृश्	दर्शकः	प्र+चर्	प्रचारकः	रंज्	रंजकः	स्मृ	स्मारकः
द्युत्	द्योतकः	प्रच्छ्	प्रच्छकः	रक्ष्	रक्षकः	हन्	घातकः
द्रुह्	द्रोहकः	प्र+दा	प्रदायकः	रुच्	रोचकः	हृष्	हर्षकः

(१४) क्तिन् , (१५) यत् प्रत्यय (देखो अभ्यास ४६, ५१)

सूचना— (क) भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए धातु से क्तिन् प्रत्यय होता है। क्तिन् का 'ति' शेष रहता है। 'ति' प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिंग होते हैं। विशेष नियमों के लिए देखें अभ्यास ५१। (ख) 'चाहिए' अर्थ में अजन्त धातुओं से यत् प्रत्यय होता है। यत् का 'य' शेष रहता है। तीनों लिंगों के रूप चलते हैं। विशेष नियमों के लिए देखें अभ्यास ४६। **धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।**

क्तिन् प्रत्यय						यत् प्रत्यय	
अधि+इ	अधीतिः	तृप्	तृप्तिः	यम्	यतिः	अधि+इ	अध्येयम्
अस् (२ प०)	भूतिः	दीप्	दीप्तिः	युज्	युक्तिः	आ+ख्या	आख्येयम्
आप्	आप्तिः	दृश्	दृष्टिः	रम्	रतिः	उप+मा	उपमेयम्
आ+संज्	आसक्तिः	धृ	धृतिः	रुह्	रूढिः	क्री	क्रेयम्
आ+सद्	आसत्तिः	नम्	नतिः	वि+आप्	व्याप्तिः	क्षि	क्षेयम्
आ+हु	आहुतिः	नी	नीतिः	वि+नश्	विनष्टिः	गै (गा)	गेयम्
इष्	इष्टिः	पच्	पक्तिः	वि+श्रम्	विश्रान्तिः	घ्रा	घ्रेयम्
उप+लभ्	उपलब्धिः	पा (१ प०)	पीतिः	वृत्	वृत्तिः	चि	चेयम्
ऋध्	ऋद्धिः	पुष्	पुष्टिः	वृध्	वृद्धिः	जि	जेयम्
कम्	कान्तिः	पॄ	पूर्तिः	वृष्	वृष्टिः	ज्ञा	ज्ञेयम्
कृ	कृतिः	प्र+आप्	प्राप्तिः	शक्	शक्तिः	दा	देयम्
कृष्	कृष्टिः	प्री	प्रीतिः	शम्	शान्तिः	धा	धेयम्
कॄ	कीर्तिः	बुध्	बुद्धिः	शुध्	शुद्धिः	ध्यै (ध्या)	ध्येयम्
कृत्	कीर्तिः	ब्रू	उक्तिः	श्रु	श्रुतिः	नी	नेयम्
क्रम्	क्रान्तिः	भज्	भक्तिः	सं+पद्	संपत्तिः	पा (१ प०)	पेयम्
क्षम्	क्षान्तिः	भी	भीतिः	सं+सृ	संसृतिः	भू	भव्यम्
गम्	गतिः	भुज्	भुक्तिः	सं+हृ	संहृतिः	मा	मेयम्
गै	गीतिः	भू	भूतिः	सिध्	सिद्धिः	वि+धा	विधेयम्
चि	चितिः	भ्रम्	भ्रान्तिः	सृज्	सृष्टिः	श्रु	श्रव्यम्
छिद्	छित्तिः	मन्	मतिः	स्तु	स्तुतिः	सु	सव्यम्
जन्	जातिः	मा	मितिः	स्था	स्थितिः	स्था	स्थेयम्
ज्ञा	ज्ञातिः	मुच्	मुक्तिः	स्मृ	स्मृतिः	हा	हेयम्
तुष्	तुष्टिः	यज्	इष्टिः	स्वप्	सुप्तिः	हु	हव्यम्

(६) सन्धि-विचार

(क) स्वर-सन्धि

(१) (इको यणचि) इ ई को य्, उ ऊ को व्, ऋ, ॠ को र्, लृ को ल् हो जाता है, यदि बाद में कोई स्वर हो तो। सवर्ण (वैसा ही) स्वर हो तो नहीं। जैसे—

(१) प्रति + एकः = प्रत्येकः	(२) पठतु + एकः = पठत्वेकः	(३) पितृ + आ = पित्रा
इति + अत्र = इत्यत्र	अनु + अयः = अन्वयः	मातृ + ए = मात्रे
इति + आह = इत्याह	मधु + अरिः = मध्वरिः	धातृ+अंशः= धात्रंशः
यदि + अपि = यद्यपि	गुरु + आज्ञा= गुर्वाज्ञा	कर्तृ + आ = कर्त्रा
सुधी + उपास्यः = सुध्युपास्यः	पठतु + अत्र = पठत्वत्र	कर्तृ + ई =कर्त्री
	वधू + औ = वध्वौ	(४) लृ+आकृतिः=लाकृतिः

(२) (एचोऽयवायावः) ए को अय्, ओ को अव्, ऐ को आय् और औ को आव् हो जाता है, बाद में कोई स्वर हो तो। (पदान्त ए या ओ के बाद अ होगा तो नहीं)। जैसे—

(१) हरे + ए = हरये	(२) भो + अति = भवति	(३) नै + अकः = नायकः
कवे + ए = कवये	पो + अनः = पवनः	गै + अकः = गायकः
ने + अनम् = नयनम्	विष्णो + ए = विष्णवे	गै + अति = गायति
जे + अः = जयः	भानो + ए= भानवे	(४) पौ + अकः =पावकः
संचे + अः = संचयः	भो + अनम् = भवनम्	द्वौ + एतौ =द्वावेतौ

(३) (क) (वान्तो यि प्रत्यये) ओ को अव्, औ को आव् हो जाता है, बाद में य से प्रारम्भ होनेवाला कोई प्रत्यय हो तो। **(ख) (गोर्यूतौ, अध्वपरिमाणे च)** गो शब्द के ओ को अव् होता है बाद में यूति शब्द हो तो, मार्ग की लम्बाई के अर्थ में। **(ग) (धातोस्तन्निमित्तस्यैव)** धातु के ओ को अव् और औ को आव् होता है यकारादि प्रत्यय बाद में हो तो। यह तभी होगा जब ओ या औ प्रत्यय के कारण हुआ हो। जैसे—

(क) गो + यम् = गव्यम्	(ख) गो + यूतिः = गव्यूतिः	(ग) लो + यम् = लव्यम्
नौ + यम् = नाव्यम्		भौ + यम् = भाव्यम्

(४) (आद्गुणः) (१) अ या आ के बाद इ या ई हो तो दोनों को 'ए' होगा। (२) अ या आ के बाद उ या ऊ हो तो दोनों को 'ओ' होगा। (३) अ या आ के बाद ऋ या ॠ हो तो दोनों को 'अर्' होगा। (४) अ या आ के बाद लृ होगा तो दोनों को 'अल्' होगा। जैसे—

(१) महा+ईशः = महेशः	(२) पर+उपकारः = परोपकारः	(३) महा+ऋषिः = महर्षिः
गण+ईशः = गणेशः	महा+उत्सवः = महोत्सवः	राज+ऋषिः = राजर्षिः
उप+इन्द्रः = उपेन्द्रः	गंगा+उदकम् = गंगोदकम्	ग्रीष्म+ऋतुः = ग्रीष्मर्तुः
रमा+ईशः = रमेशः	हित+उपदेशः = हितोपदेशः	(४) तव+लृकारः = तवल्कारः

(५) (वृद्धिरेचि) (१) अ या आ के बाद ए या ऐ हो तो दोनों को 'ऐ' होगा। (२) अ या आ के बाद ओ या औ हो तो दोनों को 'औ' होगा।

(१) अत्र+एक: = अत्रैक:	(२) तण्डुल+ओदनम् = तण्डुलौदनम्
कृष्ण+एकत्वम् = कृष्णैकत्वम्	गङ्गा+ओघ: = गङ्गौघ:
सा+एषा = सैषा	देव+औदार्यम् = देवौदार्यम्
देव+ऐश्वर्यम् = देवैश्वर्यम्	कृष्ण+औत्कण्ठ्यम् = कृष्णौत्कण्ठ्यम्

(६) (क) (एत्येधत्यूठ्सु) अ या आ के बाद एकारादि इ धातु या एध् धातु हो या ऊठ् (ऊ) हो तो दोनों को मिलकर एक वृद्धि अक्षर (ऐ या औ) होता है। अ या आ + ए = ऐ। अ या आ + ओ या ऊ = औ। उप + एति = उपैति। अप + एति = अपैति। उप + एधते = उपैधते। प्रष्ठ + ऊह: = प्रष्ठौह:। विश्व + ऊह: = विश्वौह:। (ख) (अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्) अक्ष + ऊहिनी में वृद्धि होकर 'अक्षौहिणी' रूप बनता है। (ग) (स्वादीरेरिणो:) स्व के बाद ईर या ईरिन् होगा तो वृद्धि होगी। स्व + ईर: = स्वैर:। स्व + ईरिन् = स्वैरिन्, स्वैरी। स्व = ईरिणी = स्वैरिणी। (घ) (प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु) प्र के बाद ऊह, ऊढ, ऊढि, एष और एष्य हो तो वृद्धि होती है। प्र + ऊह: = प्रौह:। प्र + ऊढ: = प्रौढ:। प्र + ऊढि: = प्रौढि:। प्र + एष: = प्रैष:। प्र + एष्य: = प्रैष्य:।

(७) (एङ: पदान्तादति) पद (अर्थात् सुबन्त या तिङन्त) के अन्तिम ए या ओ के बाद अ हो तो उसको पूर्वरूप (अर्थात् ए या ओ जैसा रूप) हो जाता है। (अ हटा है, इस बात के सूचनार्थ ऽ (अवग्रहचिह्न) लगा दिया जाता है। जैसे—

(१) हरे+अव = हरेऽव	(२) विष्णो+अव = विष्णोऽव
लोके+अस्मिन् = लोकेऽस्मिन्	रामो+अधुना = रामोऽधुना
विद्यालये+अस्मिन् = विद्यालयेऽस्मिन्	लोको+अयम् = लोकोऽयम्

(८) (एङि पररूपम्) उपसर्ग के अ के बाद धातु का ए या ओ हो तो दोनों के स्थान पर पररूप (अर्थात् ए या ओ जैसा रूप) हो जाता है। अर्थात् (१) अ + ए = ए, (२) अ + ओ = ओ। जैसे—

(१) प्र + एजते = प्रेजते	(२) उप + ओषति = उपोषति

(९) (शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्) शकन्धु आदि शब्दों में टि (अर्थात् अन्तिम स्वर-सहित अगला अंश) को पररूप हो जाता है। शक + अन्धु: = शकन्धु:। कर्क + अन्धु: = कर्कन्धु:। मनस् + ईषा = मनीषा। कुल + अटा = कुलटा। पतत् + अञ्जलि: = पतञ्जलि:। मार्त + अण्ड: = मार्तण्ड:। (क) (सीमन्त: केशवेशे) सीम + अन्त: = सीमन्त: (बालों में माँग)। अन्यत्र सीमान्त: (हद)। (ख) (सारङ्ग: पशुपक्षिणो:) सार + अङ्ग: = सारङ्ग: (पशु, पक्षी)। अन्यत्र साराङ्ग:। (ग) (आत्वोष्ठयो: समासे वा) समास में विकल्प से ओतु, ओष्ठ को पररूप। स्थूल + ओतु: = स्थूलोतु:, स्थूलौतु:। बिम्ब + ओष्ठ: = बिम्बोष्ठ:, बिम्बौष्ठ:।

(१०) (उपसर्गादृति धातौ) अकारान्त उपसर्ग के बाद कोई ऋ से प्रारम्भ होनेवाली धातु हो तो दोनों को आर् वृद्धि हो जायेगी। अ+ऋ = आर्। उप+ऋच्छति = उपार्च्छति। प्र+ऋच्छति = प्रार्च्छति।

(११) (अचो रहाभ्यां द्वे) किसी स्वर के बाद र् या ह् हो और उसके बाद कोई यर् (ह् को छोड़कर कोई व्यंजन) हो तो उसे विकल्प से द्वित्व हो जाता है। जैसे—कार्+यम् = कार्य्यम्, कार्यम्। कर् + तव्यम् = कर्त्तव्यम्, कर्तव्यम्। कर् +मं = कर्म्म, कर्म।

(१२) (ओमाङोश्च) अ के बाद ओम् या आङ् (आ) हो तो पररूप अर्थात् दोनों को ओम् या आ होता है। शिवाय+ओं नंमः = शिवायों नमः। शिव+एहि (आ+इहि) = शिवेहि।

(१३) (अकः सवर्णे दीर्घः) अ इ उ ऋ के बाद कोई सवर्ण (सदृश) अक्षर हो तो दोनों के स्थान पर उसी वर्ण का दीर्घ अक्षर हो जाता है। अर्थात् (१) अ या आ+अ या आ = आ। (२) इ या ई+इ या ई = ई। (३) उ या ऊ+उ या ऊ = ऊ। (४) ऋ+ ऋ = ॠ।

(१) हिम+आलयः = हिमालयः	(२) गिरि+ईशः = गिरीशः	(३) गुरु+उपदेशः = गुरूपदेशः
विद्या+आलयः = विद्यालयः	श्री+ईशः = श्रीशः	विष्णु+उदयः = विष्णूदयः
दैत्य+अरिः = दैत्यारिः	इति+इदम् = इतीदम्	(४) होत+ऋकारः = होतॄकारः

(१४) (सर्वत्र विभाषा गोः) गो शब्द के बाद अ हो तो विकल्प से उसे प्रकृतिभाव (वैसा ही रहना) होता है। गो + अग्रम् = गोअग्रम्, गोऽग्रम्।

(१५) (अवङ् स्फोटायनस्य) स्वर बाद में हो तो गो शब्द के ओ को अवङ् (अव) हो जाता है विकल्प से। गो + अग्रम् = गवाग्रम्। गो + अक्षः = गवाक्षः।

(१६) (इन्द्रे च) गो के ओ को अवङ् (अव) होगा, इन्द्र बाद में हो तो। गो + इन्द्रः = गवेन्द्रः।

(१७) (ऋत्यकः) ह्रस्व या दीर्घ अ इ उ के बाद ऋ हो तो विकल्प से प्रकृतिभाव होगा। जहाँ सन्धि नहीं होगी वहाँ यदि शब्द का अन्तिम अक्षर दीर्घ होगा तो वह ह्रस्व हो जायेगा। ब्रह्मा + ऋषिः = ब्रह्मऋषिः, ब्रह्मर्षिः। सप्त + ऋषीणाम् = सप्तऋषीणाम्, सप्तर्षीणाम्।

(१८) (प्रत्यभिवादेऽशूद्रे) अभिवादन के प्रत्युत्तर में वाक्य के अन्तिम अक्षर को प्लुत (३) हो जाता है और वह उदात्त होता है। आयुष्मानेधि देवदत्त३।

(१९) (दूराद्धूते च) दूर से सम्बोधन में वाक्य के अन्तिम अक्षर को प्लुत होगा। आगच्छ देवदत्त३।

(२०) (ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्) शब्द या धातु के द्विवचन के ई, ऊ और ए के साथ कोई सन्धि नहीं होगी। हरी + एतौ = हरी एतौ। विष्णू + इमौ = विष्णू इमौ। गङ्गे = अमू = गङ्गे अमू। पचेते + इमौ = पचेते इमौ।

(२१) (अदसो मात्) अदस् शब्द के म् के बाद ई या ऊ होंगे तो उसके साथ कोई सन्धि नहीं होगी। अमी + ईशाः = अमी ईशाः। अमू + आसाते = अमू आसाते।

(ख) हल्-सन्धि (व्यंजन-सन्धि)

(२२) (स्तोः श्चुना श्चुः) स् या तवर्ग से पहले या बाद में श् या चवर्ग कोई भी हो तो स् को श् और तवर्ग को चवर्ग होगा। त् > च्, द् > ज्, न् > ञ्, स् > श्। जैसे—

रामस्+च = रामश्च	सत्+चित् = सच्चित्	सद्+जनः = सज्जनः
कस्+चित् = कश्चित्	सत्+चरित्रः = सच्चरित्रः	उद्+ज्वलः = उज्ज्वलः
हरिस्+शेते = हरिश्शेते	उत्+चारणम् = उच्चारणम्	शार्ङ्गिन्+जय = शार्ङ्गिञ्जय

(२३) (शात्) श् के बाद तवर्ग को चवर्ग नहीं होगा। (नियम २२ का अपवाद सूत्र)। प्रश्+नः = प्रश्नः। विश्+नः = विश्नः।

(२४) (ष्टुना ष्टुः) स् या तवर्ग से पहले या बाद में ष् या टवर्ग कोई भी हो तो स् को ष् और तवर्ग को टवर्ग होगा। त् > ट्, द् > ड्, न् > ण्, स् > ष्। जैसे—

रामस्+षष्ठः = रामष्षष्ठः	इष्+तः = इष्टः	उद्+डीनः = उड्डीनः
रामस्+टीकते = रामष्टीकते	दुष्+तः = दुष्टः	विष्+नुः = विष्णुः
पेष्+ता = पेष्टा	तत्+टीका = तट्टीका	कृष्+नः = कृष्णः

(२५) (क) (न पदान्ताट्टोरनाम्) पद के अन्तिम टवर्ग के बाद स् और तवर्ग को ष् और टवर्ग नहीं होते, नाम् को छोड़कर। (नियम २४ का अपवाद)। षट् + सन्तः = षट् सन्तः। षट् + ते = षट् ते।

(ख) (अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्) टवर्ग के बाद नाम्, नवति, नगरी हों तो नियम २४ के अनुसार इनके न को ण होगा। (बाद में नियम २९ के अनुसार ड् को ण् होगा)। षड् + नाम् = षण्णाम्। षड् + नवतिः = षण्णवतिः। षड् + नगर्यः = षण्णगर्यः।

(२६) (तोः षि) तवर्ग के बाद ष हो तो तवर्ग को टवर्ग नहीं होगा। सन् + षष्ठः = सन् षष्ठः।

(२७) (झलां जशोऽन्ते) झलों (वर्ग के १, २, ३, ४ और ऊष्म) को जश् (३ अर्थात् अपने वर्ग के तृतीय अक्षर) होते हैं, झल् पद के अन्तिम अक्षर हों तो। (पद का अर्थ है सुबन्त शब्द या तिङन्त धातुएँ)। जैसे—

दिक्+अम्बरः = दिगम्बरः	चित्+आनन्दः = चिदानन्दः	षट्+एव = षडेव
दिक्+गजः = दिग्गजः	जगत्+ईशः = जगदीशः	षट्+आननः = षडाननः
अच्+अन्तः = अजन्तः	उत्+देश्यम् = उद्देश्यम्	सुप्+अन्तः = सुबन्तः

(२८) (झलां जश् झशि) झलों (वर्ग के १, २, ३, ४ और उष्म) को जश् (३ अर्थात् अपने वर्ग के तृतीय अक्षर) होते हैं, बाद में झश् (वर्ग के ३, ४) हों तो। (विशेष—यह नियम पद के बीच में लगता है और नियम २७ पद के अन्त में। यही दोनों में भेद है) जैसे—

दघ्+धः = दग्धः	बुध्+धिः = बुद्धिः	लभ्+धः = लब्धः
दुघ्+धम् = दुग्धम्	सिध्+धिः = सिद्धिः	क्षुभ्+धः = क्षुब्धः
द्रोघ्+धा = द्रोग्धा	वृध्+धिः = वृद्धिः	आरभ्+धम् = आरब्धम्

(२९) (क) (यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा) पदान्त यर् (ह् के अतिरिक्त सभी व्यंजन) के बाद अनुनासिक (वर्ग का पंचम अक्षर) हो तो यर् को अपने वर्ग का पंचम अक्षर हो जायगा। यह नियम ऐच्छिक है। (ख) **(प्रत्यये भाषायां नित्यम्)** यदि प्रत्यय का 'म' इत्यादि बाद में होगा तो यह नियम ऐच्छिक नहीं होगा, अपितु नित्य लगेगा।

दिक्+नागः = दिङ्नागः	सद्+मतिः = सन्मतिः	तत्+मात्रम् = तन्मात्रम्
तत्+न = तन्न	पद्+नगः = पन्नगः	तत्+मयम् = तन्मयम्
एतत्+मुरारिः = एतन्मुरारिः	षट्+मुखः = षण्मुखः	वाक्+मयम् = वाङ्मयम्

(३०) (तोर्लि) तवर्ग के बाद ल हो तो तवर्ग को भी ल् हो जाता है। अर्थात् (१) त् या द् + ल = ल्ल, (२) न् + ल = ँल्ल । जैसे—

तत्+लयः = तल्लयः	उद्+लेखः = उल्लेखः
तत्+लीनः = तल्लीनः	विद्वान्+लिखति = विद्वाँल्लिखति

(३१) (उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य) उद् के बाद स्था या स्तम्भ् धातु हो तो उसे पूर्वसवर्ण होता है अर्थात् स्था और स्तम्भ् के स् को थ् होगा। बाद में नियम ३२ के अनुसार थ् का लोप हो जायेगा। उद्+स्थानम् = उत्थानम्। उद् + स्तम्भनम् = उत्तम्भनम्। द् को नियम ३४ से त्।

(३२) (झरो झरि सवर्णे) व्यंजन के बाद झर् (वर्ग के १, २, ३, ४ और श ष स) का विकल्प से लोप होता है, बाद में सवर्ण (वैसा ही) झर् हो तो। उद्+थ् थानम् = उत्थानम्। रुन्ध्+धः = रुन्धः। कृष्णर्द्+धिः = कृष्णर्धिः।

(३३) (झयो होऽन्यतरस्याम्) झय् (वर्ग के १, २, ३, ४) के बाद ह् हो तो उसे विकल्प से पूर्वसवर्ण होता है अर्थात् पूर्व अक्षर के वर्ग का चतुर्थ अक्षर हो जाता है। क् या ग् +ह = ग्घ, त् या द्+ह = द्ध। वाग्+हरिः = वाग्घरिः, वाग्हरिः। तद्+हितः = तद्धितः।

(३४) (खरि च) झलों (१, २, ३, ४ ऊष्म) को चर् (१, उसी वर्ग के प्रथम अक्षर) होते हैं, बाद में खर् (१, २, श, ष, स) हों तो। ग् > क्, ज् > च्, द् > त्।

सद्+कारः = सत्कारः	तद्+परः = तत्परः	तज्+छिवः = तच्छिवः
उद्+पन्नः = उत्पन्नः	उद्+साहः = उत्साहः	दिग्+पालः = दिक्पालः

(३५) (क) (शश्छोऽटि) पदान्त झय् (वर्ग के १, २, ३, ४) के बाद श् हो तो उसको छ् हो जाता है। यदि उस श् के बाद अट् (स्वर, ह्, य्, व्, र्) हो तो। श् को छ् होने पर पूर्ववर्ती द् को नियम २२ से ज् और ज् को नियम ३४ से च्। पूर्ववर्ती त् हो तो नियम २२ से च्। यह नियम विकल्प से लगता है।

तद् (तत्)+शिवः = तच्शिवः तच्छिवः	सत्+शीलः = सच्छीलः
,, ,, +शिला = तच्शिला, तच्छिला	उत्+श्रायः = उच्छ्रायः

(ख) (छत्वममीति वाच्यम्) श् के बाद अम् (स्वर, ह, अन्तःस्थ, वर्ग का ५) हो तो भी श् को विकल्प से छ् होगा। तत्+श्लोकेन = तच्छ्लोकेन, तच्श्लोकेन।

(३६) (मोऽनुस्वारः) पदान्त म् को अनुस्वार (ं) हो जाता है, बाद में कोई हल् (व्यंजन) हो तो। बाद में स्वर होगा तो अनुस्वार कदापि नहीं होगा। जैसे—

हरिम्+वन्दे = हरिं वन्दे	सत्यम्+वद = सत्यं वद
कार्यम्+कुरु = कार्यं कुरु	धर्मम्+चर = धर्मं चर

(३७) (नश्चापदान्तस्य झलि) अपदान्त न् और म् को अनुस्वार (ं) हो जाता है, बाद में झल् (वर्ग के १, २, ३, ४ ऊष्म) हो तो। जैसे—यशान् + सि = यशांसि। पयान्+सि = पयांसि। नम्+स्यति = नंस्यति। आक्रम्+स्यते = आक्रंस्यते। यह नियम पद के बीच में लगता है।

(३८) (अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः) अनुस्वार के बाद यय् (श, ष, स, ह को छोड़कर सभी व्यंजन) हो तो अनुस्वार को परसवर्ण (अगले वर्ण का पंचम अक्षर) हो जाता है। जैसे—

अं+कः = अङ्कः	अं+चितः = अञ्चितः	शां+तः = शान्तः
शं+का = शङ्का	गुं+फितः = गुम्फितः	गुं+फति = गुम्फति

(३९) (वा पदान्तस्य) पद के अन्तिम अनुस्वार के बाद यय् (श, ष, स, ह को छोड़कर सभी व्यंजन) हो तो अनुस्वार को परसवर्ण विकल्प से होगा। यह नियम पदान्त में लगता है। त्वं+करोषि = त्वङ्करोषि, त्वं करोषि। सम्+गच्छध्वम् = सङ्गच्छध्वम्, संगच्छध्वम्।

(४०) (मो राजि समः क्वौ) सम् के बाद राज् शब्द हो तो सम् के म् को म् ही रहता है। उसको अनुस्वार नहीं होता। सम् + राट् = सम्राट्। सम्राजौ, सम्राजः।

(४१) (ङ्णोः कुक् टुक् शरि) ङ् या ण् के बाद शर् (श, ष, स) हो तो विकल्प से बीच में क् या ट् जुड़ जाते हैं। ङ् के बाद क् और ण् के बाद ट्। प्राङ् +षष्ठः = प्राङ्क्षष्ठः, प्राङ्षष्ठः। सुगण्+षष्ठः = सुगण्ट्षष्ठः, सुगण्षष्ठः।

(४२) (डः सि धुट्) ड् के बाद स हो बीच में ध् विकल्प से जुड़ जाता है। नियम ३४ से ध् को त् और पूर्ववर्ती ड् को ट्। षड् +सन्तः = षट्त्सन्तः षट्सन्तः।

(४३) (नश्च) न् के बाद स हो तो बीच में विकल्प से ध् जुड़ जाता है। नियम ३४ से ध् को त्। सन् + सः = सन्त्सः, सन्सः।

(४४) (शि तुक्) पदान्त न् के बाद श् हो तो विकल्प से बीच में त् जुड़ जाता है। नियम ३५ से श् को छ्। सन् + शम्भुः = सञ्च्छम्भुः, सञ्छम्भुः।

(४५) (ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्) ह्रस्व स्वर के बाद ङ् ण् न् हों और बाद में कोई स्वर हो तो बीच में एक ङ्, ण्, न् और जुड़ जाता है। जैसे—प्रत्यङ्+आत्मा = प्रत्यङ्ङात्मा। सुगण्+ईशः = सुगण्णीशः। सन्+अच्युतः = सन्नच्युतः।

(४६) (क) (रषाभ्यां नो णः समानपदे) र्, ष्, या ऋ ॠ के बाद न् को ण् हो जाता है। जैसे—कीर्+नः = कीर्णः, पूर्+नः = पूर्णः। पूष्+ना = पूष्णा। पितॄ+नाम् = पितॄणाम्। (ख) (अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि) र् और ष् के बाद न् को ण् होगा, बीच में स्वर, ह, अन्तस्थ, कवर्ग, पवर्ग, आ, न् हो तो भी। रामेन=रामेण। (ग) (पदान्तस्य) पद के अन्तिम न् को ण् नहीं होता। रामान् का रामान् ही रहेगा।

(४७)(क)(अपदान्तस्य मूर्धन्यः, इण्कोः, आदेशप्रत्यययोः) अ आ को छोड़कर सभी स्वर, ह, अन्तःस्थ और कवर्ग के बाद स् को ष् होता है, यदि वह किसीके स्थान पर आदेश हुआ हो या प्रत्यय का स् हो। पद के अन्तिम स् को ष् नहीं होगा। जैसे—रामे+सु=रामेषु, हरि+सु=हरिषु। अधुक्+सत्=अधुक्षत्। (ख) (नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि) इण् (अ आ से भिन्न स्वर, ह, अन्तःस्थ) और कवर्ग के बाद स् को ष् होता है, यदि बीच में नुम् (न्), विसर्ग (:) और श् ष् स् में से कोई एक हो तो भी। धनून्+सि = धनूंषि। पिपठीष्+सु = पिपठीष्षु। पिपठीः+सु = पिपठीःषु।

(४८)(समः सुटि, संपुंकानां सो वक्तव्यः) सम्+स्कर्ता में म् के स्थान पर र् होकर स् हो जाता है और उससे पहले अनुस्वार (ं) या अनुनासिक (ँ) लग जाता है। बीच् के एक स् का लोप भी हो जायेगा। सम्+स्कर्ता = सँस्कर्ता, संस्कर्ता। सम्+कृ धातु होने पर इसी प्रकार स् लगाकर सन्धि होगी। संस्करोति, संस्कृतम्, संस्कारः आदि।

(४९)(पुमः खय्यम्परे) पुम् के म् को र् होकर नियम ४८ के अनुसार स् हो जायेगा, बाद में कोकिलः, पुत्रः आदि शब्द हों तो। स् से पहले ं या ँ लग जाएँगे। पुम्+कोकिलः = पुंस्कोकिलः। पुम्+पुत्रः = पुंस्पुत्रः।

(५०)(नश्छव्यप्रशान्) पद के अन्तिम न् को रु (:, स्) होता है, यदि छव् (च्, छ्, ट्, ठ्, त्, थ्) बाद में हो और छव् के बाद अम् (स्वर, ह, अन्तःस्थ, वर्ग के पंचम अक्षर) हो तो। प्रशान् शब्द में नियम नहीं लगेगा। न् को स् होने पर उससे पहले ं या ँ लग जाएँगे। इस नियम का रूप होगा—न्+छव् = ँ स्+छव् या ं स्+छव्। नियम २२ के अनुसार श्चुत्व प्राप्त होगा तो होगा।

कस्मिन्+चित् = कस्मिंश्चित्	शार्ङ्गिन्+छिन्धि = शार्ङ्गिंश्छिन्धि
धीमान्+च= धीमांश्च	चक्रिन्+त्रायस्व = चक्रिंस्त्रायस्व
तस्मिन्+तरौ = तस्मिंस्तरौ	तस्मिन्+तथा = तस्मिंस्तथा

(५१)(कानाम्रेडिते) कान् +कान् में पहले कान् के न् को र् होकर स् होगा और उससे पहले ँ या ं होगा। कान् + कान् = काँस्कान्, कांस्कान्।

(५२)(क)(छे च) ह्रस्व स्वर के बाद छ हो तो बीच में त् लग जाता है। नियम २२ से त् को च् हो जाएगा। स्व+छाया = स्वच्छाया। शिव+छाया = शिवच्छाया। स्व+छन्दः = स्वच्छन्दः। (ख) (दीर्घात्) दीर्घ स्वर के बाद छ हो तो भी बीच में त् लगेगा। त् को च् पूर्ववत्। चे+छिद्यते=चेच्छिद्यते। (ग) (पदान्ताद् वा) पद के अन्तिम दीर्घ अक्षर के बाद छ हो तो विकल्प से त् लगेगा। लक्ष्मी+छाया = लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मीछाया। (घ) (आङ्माङोश्च) आ और मा के बाद छ होगा तो त् नित्य लगेगा। त् को च् पूर्ववत्। आ+छादयति = आच्छादयति। मा+छिदत् = माच्छिदत्।

(ग) विसर्ग-सन्धि (स्वादि-सन्धि)

(५३) (ससजुषो रुः) पद के अन्तिम स् को रु (र्) होता है। सुजुष् शब्द के ष् को भी रु होता है। (सूचना—इस रु को साधारणतया नियम ५४ से विसर्ग होकर विसर्ग : ही शेष रहता है। जैसे—राम+स् = रामः, कृष्ण+स् = कृष्णः। इसको ही नियम ६६, ६७, ६८ से उ या य् होता है। जहाँ उ या य् नहीं होगा, वहाँ र् शेष रहता है। अतः अ आ के अतिरिक्त अन्य स्वरों के बाद स् या विसर्ग का र् शेष रहता है, बाद में कोई स्वर या व्यंजन (वर्ग के ३, ४, ५ हों तो)। जैसे—

हरिः+अवदत् = हरिरवदत्	वधूः+एषा = वधूरेषा
शिशुः+आगच्छत् = शिशुरागच्छत्	गुरोः+भाषणम् = गुरोर्भाषणम्
पितुः+इच्छा = पितुरिच्छा	हरेः+द्रव्यम् = हरेर्द्रव्यम्

(५४) (खरवसानयोर्विसर्जनीयः) र् को विसर्ग होता है, बाद में खर् (वर्ग के १, २, श ष स) हो या कुछ न हो तो। पुनर्+पृच्छति = पुनः पृच्छति। राम+स् (र्) = रामः। (सूचना— पुं० शब्दों के प्रथमा एक० में जो विसर्ग दीखता है, वह स् का ही विसर्ग है। उसको नियम ५३ से रु (र्) होता है और नियम ५४ से र् को विसर्ग (:)।

(५५) (विसर्जनीयस्य सः) विसर्ग के बाद खर् (वर्ग के १, २, श ष स) हो तो विसर्ग को स् हो जाता है। (श् या चवर्ग बाद में हो तो नियम २२ के श्चुत्व सन्धि भी)। जैसे—

हरिः+त्रायते = हरिस्त्रायते	विष्णुः+त्राता = विष्णुस्त्राता
रामः+तिष्ठति = रामस्तिष्ठति	बालः+चलति = बालश्चलति
कः+चित् = कश्चित्	जनाः+तिष्ठन्ति = जनास्तिष्ठन्ति

(५६) (वा शरि) विसर्ग के बाद शर् (श, ष, स) हो तो विसर्ग को विसर्ग और स् दोनों होते हैं। श्चुत्व या ष्टुत्व (नियम २२, २४) यदि प्राप्त होंगे तो लगेंगे। जैसे—

हरिः+शेते = हरिःशेते, हरिश्शेते	रामः+षष्ठः = रामष्षष्ठः
रामः+शेते = रामःशेते, रामश्शेते	बालः+स्वपिति = बालस्स्वपिति

(५७) (कस्कादिषु च) कस्क आदि शब्दों में विसर्ग से पहले अ या आ होगा तो विसर्ग को स् होगा, यदि इण् (इ, उ) होगा तो ष् होगा। कः+कः = कस्कः। कौतः+कुतः = कौतस्कुतः। सर्पिः+कुण्डिका = सर्पिष्कुण्डिका। धनुः+कपालम् = धनुष्कपालम्। भाः+करः = भास्करः।

(५८) (सोऽपदादौ, पाशकल्पककाम्येष्विति०) पाश, कल्प, क और काम्य प्रत्यय बाद में हों तो विसर्ग को स् हो जाएगा। पयः+पाशम् = पयस्पाशम्। यशः+कल्पम् = यशस्कल्पम्। यशः+कम् = यशस्कम्। यशस्काम्यति।

(५९) (इणः षः) पाश, कल्प, क, काम्य प्रत्यय बाद में हो तो विसर्ग को ष् हो जायेगा, यदि वह विसर्ग इ, उ के बाद होगा तो। सर्पिष्पाशम्, सर्पिष्कल्पम्, सर्पिष्कम्।

(६०) (नमस्पुरसोर्गत्योः) गतिसंज्ञक नमस् और पुरस् के विसर्ग को स् होता है, बाद में कवर्ग या पवर्ग हो तो। (कृ धातु बाद में होती है तो नमस्, पुरस् गतिसंज्ञक होते हैं) नमः+करोति = नमस्करोति। पुरः+करोति = पुरस्करोति।

(६१) (इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य) उपधा (अन्तिम से पूर्ववर्ण) में इ या उ हो तो उसके विसर्ग को ष् होता है, बाद में कवर्ग या पवर्ग हो तो। यह विसर्ग प्रत्यय का नहीं होना चाहिए। निः+प्रत्यूहम् = निष्प्रत्यूहम्। निः+क्रान्तः = निष्क्रान्तः। आविः+कृतम् = आविष्कृतम्। दुः+कृतम् = दुष्कृतम्।

(६२) (तिरसोऽन्यतरस्याम्) तिरस् के विसर्ग को विकल्प से ष् होता है, कवर्ग या पवर्ग बाद में हो तो। तिरः+करोति = तिरस्करोति, तिरः करोति। तिरः+कृतम् = तिरस्कृतम्।

(६३) (इसुसोः सामर्थ्ये) इस् और उस् के विसर्ग को विकल्प से ष् होता है, कवर्ग या पवर्ग बाद में हो तो। दोनों पदों में मिलने की सामर्थ्य होनी चाहिए, तभी ष् होगा। सर्पिः+करोति = सर्पिष्करोति, सर्पिः करोति। धनुः+करोति = धनुष्करोति, धनुःकरोति।

(६४) (नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य) समास होने पर इस् और उस् के विसर्ग को नित्य ष् होगा, कवर्ग या पवर्ग बाद में हो तो। इस् और उस् वाला शब्द उत्तरपद (बाद के पद) में नहीं होना चाहिए। सर्पिः+कुण्डिका = सर्पिष्कुण्डिका।

(६५) (अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य) अ के बाद विसर्ग को स् नित्य होता है, समास में, बाद में कृ कम् आदि हों तो। यह विसर्ग अव्यय का नहीं होना चाहिएं और उत्तरपद में न हो। अयः+कारः = अयस्कारः। अयः+कामः = अयस्कामः। इसी प्रकार अयस्कंसः, अयस्कुम्भः, अयस्पात्रम्, अयस्कुशा, अयस्कर्णी।

(६६) (अतो रोरप्लुतादप्लुते) ह्रस्व अ के बाद रु (स् के र् या :) को उ हो जाता है, बाद में ह्रस्व अ हो तो। (सूचना—इस उ को पूर्ववर्ती अ के साथ सन्धिनियम ४ से गुण करके ओ हो जाता है और बाद के अ को सन्धि नियम ७ से पूर्वरूप सन्धि होती है। अतएव अर् या अः+अ = ओऽ होता है।) जैसे—

शिवः (शिव र्)+अर्च्यः = शिवोऽर्च्यः	कः+अयम् = कोऽयम्
रामः (राम र्)+अस्ति = रामोऽस्ति	रामः+अवदत् = रामोऽवदत्
कः (क र्)+अपि = कोऽपि	देवः+अधुना = देवोऽधुना

(६७) (हशि च) ह्रस्व अ के बाद रु (स् के र् या :) को उ हो जाता है, बाद में हश् (वर्ग के ३, ४, ५ ह, अन्तःस्थ) हो तो। (सूचना—सन्धिनियम ६६ बाद में अ हो तब लगता है, यह बाद में हश् हो तो। उ करने के बाद सन्धिनियम ४ से अ+उ को गुण होकर ओ होगा। अतः अः+हश् = ओ+हश् होगा, अर्थात् अः को ओ होगा।)

शिवः (शिव र्)+वन्द्यः = शिवो वन्द्यः	देवः+गच्छति = देवो गच्छति
रामः (राम र्)+वदति = रामो वदति	बालः+हसति = बालो हसति

(६८) (भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि) भोः, भगोः, अघोः शब्द और अ या आ के बाद रु (स् का र् या :) को य् होता है, यदि बाद में अश् (स्वर, ह, अन्तःस्थ, वर्ग के ३, ४, ५) हो तो। सूचना--इसके उदाहरण आगे नियम ७० में देखें।

(६९) (हलि सर्वेषाम्) भोः, भगोः, अघोः और अ या आ के बाद य् का लोप अवश्य हो जाता है, बाद में व्यंजन हो तो। सूचना—इसके उदाहरण आगे नियम ७० में देखें।

(७०) (लोपः शाकल्यस्य) अ या आ पहले हो तो पदान्त य् और व् का लोप विकल्प से होता है, बाद में अश् (स्वर, ह, अन्तःस्थ, वर्ग के ३, ४, ५) हो तो। (सूचना—नियम ६८ के य् के बाद व्यंजन होगा तो नियम ६९ से य् का लोप अवश्य होगा। य् के बाद यदि कोई स्वर आदि होगा तो नियम ७० से य् का लोप ऐच्छिक होगा। य् का लोप होने पर कोई दीर्घ, गुण आदि सन्धि नहीं होगी। अर्थात् अः या आः+अश् = अ या आ+अश्।)

भोः (भोय्)+देवाः = भो देवाः	नराः+हसन्ति = नरा हसन्ति
देवाः (देवाय्)+नम्याः = देवा नम्याः	देवाः+इह = देवा इह, देवायिह
देवाः (देवाय्)+यान्ति = देवा यान्ति	पुत्रः+आगच्छति = पुत्र आगच्छति

(७१) (क) (रोऽसुपि) अहन् के न् को र् होता है, बाद में कोई सुप् (विभक्ति) न हो तो । अहन्+अहः = अहरहः। अहन्+गणः = अहर्गणः। (ख) (रूपरात्रिरथन्तरेषु रुत्वं वाच्यम्) रूप, रात्रि, रथन्तर बाद में हो तो अहन् के न् को रु होगा। उसको नियम ६७ से उ होगा और नियम ४ से गुण होकर ओ होगा। अहन्+रूपम् = अहोरूपम्, अहन्+रात्रः = अहोरात्रः। इसी प्रकार अहोरथन्तरम्। (ग) (अहरादीनां पत्यादिषु वा रेफः) अहर् आदि के र् के बाद पति आदि हों तो र् को र् विकल्प से रहता है। अहर् +पतिः = अहर्पतिः। इसी प्रकार गीर्पतिः, धूर्पतिः। अन्यत्र विसर्ग।

(७२) (रो रि) र् के बाद र् हो तो पहले र् का लोप हो जाता है।

(७३) (ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः) ढ् या र् लोप हुआ हो तो उससे पूर्ववर्ती उ, इ, उ को दीर्घ हो जाता है। उढ्+ढः = ऊढः, लिढ्+ढः = लीढः।

पुनर्+रमते = पुना रमते	शम्भुर्+राजते = शम्भू राजते
हरिर्+रम्यः = हरी रम्यः	अन्तर्+राष्ट्रियः = अन्ताराष्ट्रियः

(७४) (एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि) सः और एषः के विसर्ग या स् का लोप होता है, बाद में कोई व्यंजन हो तो। (सकः, एषकः, असः, अनेषः के विसर्ग का लोप नहीं होगा।) (सूचना—सः, एषः के बाद अ होगा तो सन्धिनियम ६६ से 'ओऽ' होगा। अन्य स्वर बाद में होंगे तो नियम ६८ और ७० से विसर्ग का लोप होगा)।

(१) सः (सस्)+पठति = स पठति	(२) सः+अयम् = सोऽयम्
एषः (एषस्)+विष्णुः = एष विष्णुः	सः+इच्छति = स इच्छति

(७५) (सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्) सः के विसर्ग का लोप हो जाता है, यदि बाद में स्वर हो और लोप करने से श्लोक के पाद की पूर्ति हो। सः+एषः = सैष दाशरथी रामः।

(७) प्रत्यय-परिचय

आवश्यक निर्देश

१. पुस्तक में मुख्य रूप से प्रयुक्त १०० धातुओं से क्त आदि प्रत्यय लगाकर बने हुए रूपों का विवरण इस प्रत्यय-परिचय में सारणी (चार्ट) के रूप में प्रस्तुत किया गया। धातुएँ अकारादि-क्रम से दी गई हैं।

२. धातुओं के मूलरूप कोष्ठ में दिए गए हैं। कतिपय धातुओं के प्रारम्भ या अन्त में कुछ अनुबन्ध लगे हुए हैं। इन अनुबन्धों के लोप से धातु में कुछ विशेष कार्य होते हैं। जैसे—डुकृञ् (कृ) धातु के डु के हटने से धातु से क्त्रि (त्रि) और मप् (म) प्रत्यय। (ड्वितः क्त्रिः, ३-३-८८, क्त्रेर्मम्नित्यम्, ४-४-२०)। कृत्या निर्वृत्तं कृत्रिमम्, कृ+त्रि+म = कृत्रिमम्। इसी प्रकार डुपचष् (पच्) का पक्त्रिमम् और डुवप् (वप्) का उप्त्रिमम् बनता है। डुकृञ् में ञ् हटने से अर्थात् ञित् होने से धातु उभयपदी है। स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले (१-३-७२)। सभी ञित् धातुएँ उभयपदी होती हैं। जैसे—डुदाञ् (दा), डुधाञ् (धा) आदि। सभी ङित् (जिसमें ङ् हटा है) धातुएँ आत्मनेपदी होती हैं। अनुदात्तङित आत्मनेपदम् (१-३-१२)। जैसे—चक्षिङ् (चक्ष्), शीङ् (शी), दीङ् (दी), देङ् (दे) आदि धातुएँ। धातु का अन्तिम उ हटने से क्त्वा (त्वा) प्रत्यय होने पर इ विकल्प से होता है। जैसे—दिवु (दिव्) का देवित्वा द्यूत्वा, सिवु (सिव्) का सेवित्वा-स्यूत्वा, शमु (शम्) का शमित्वा-शान्त्वा। टु हटने से धातु से अथुच् (अथु) प्रत्यय होता है। ट्वितोऽथुच् (३-३-८९)। टुवेपृ (वेप्) का वेपथुः, टुओश्वि (श्वि) का श्वयथुः।

३. उभयपदी धातुओं के शतृ प्रत्यय के रूप सारणी में दिए गये हैं। शानच् प्रत्यय करने पर ये रूप होंगेः—कथ्—कथयमानः, कृ—कुर्वाणः, क्री—क्रीणानः, क्षिप्—क्षिपमाणः, ग्रह्—गृह्णानः, चि—चिन्वानः, चिन्त्—चिन्तयमानः, चुर्—चोरयमाणः, ज्ञा—जानानः, तन्—तन्वानः, तुद्—तुद्मानः, छिद्—छिन्दानः, दा—ददानः, दुह्—दुहानः, धा—दधानः, नी—नयमानः, पच्—पचमानः, ब्रू—ब्रुवाणः, भक्ष्—भक्षयमाणः, भञ्ज्—भञ्जानः, भिद्—भिन्दानः, भुज्—भुञ्जानः, भृ—बिभ्राणः, मुच्—मुञ्चमानः, याच्-याचमानः, युज्-युञ्जानः, रुध्-रुन्धानः, लिह्-लिहानः, वह्-वहमानः, सु—सुन्वानः, हृ—हरमाणः।

प्रत्यय-परिचय (धातु का मूलरूप कोष्ठ में है)

धातु	अर्थ	क्त	क्तवतु	शतृ। शानच्	क्त्वा	ल्यप्
अद् (अद, २ प०, खाना)		जग्धः	जग्धवान्	अदन्	जग्ध्वा	प्रजग्ध्य
अश् (अशू, ५आ०, व्याप्त०)		अष्टः	अष्टवान्	अश्नुवानः	अशित्वा	समश्य
अस् (अस, २ प०, होना)		भूतः	भूतवान्	सन्	भूत्वा	संभूय
आप् (आप्लृ, ५ प०, पाना)		आप्तः	आप्तवान्	आप्नुवन्	आप्त्वा	प्राप्य
आस् (आस, २आ०, बैठना)		आसितः	आसितवान्	आसीनः	आसित्वा	उपास्य
इ (इण्, २ प०, जाना)		इतः	इतवान्	यन्	इत्वा	प्रेत्य
इ, अधि+(इङ्, २आ०, पढ़ना)		अधीतः	अधीतवान्	अधीयानः	—	अधीत्य
इष् (इष, ६प०, चाहना)		इष्टः	इष्टवान्	इच्छन्	इष्ट्वा	समिष्य
ईक्ष् (ईक्ष, १ आ०, देखना)		ईक्षितः	ईक्षितवान्	ईक्षमाणः	ईक्षित्वा	समीक्ष्य
कथ् (कथ, १० उ०, कहना)		कथितः	कथितवान्	कथयन्	कथयित्वा	संकथ्य
कुप् (कुप, ४ प०, क्रोध करना)		कुपितः	कुपितवान्	कुप्यन्	कोपित्वा	प्रकुप्य
कृ (डुकृञ्, ८ उ०, करना)		कृतः	कृतवान्	कुर्वन्	कृत्वा	उपकृत्य
कृष् (कृष, १ प०, जोतना)		कृष्टः	कृष्टवान्	कर्षन्	कृष्ट्वा	प्रकृष्य
कॄ (कॄ, ६ प०, बखेरना)		कीर्णः	कीर्णवान्	किरन्	कीर्त्वा	प्रकीर्य
क्री (डुक्रीञ्, ९ उ०, खरीदना)		क्रीतः	क्रीतवान्	क्रीणन्	क्रीत्वा	विक्रीय
क्षिप् (क्षिप, ६ उ०, फेंकना)		क्षिप्तः	क्षिप्तवान्	क्षिपन्	क्षिप्त्वा	प्रक्षिप्य
गम् (गम्लृ, १ प०, जाना)		गतः	गतवान्	गच्छन्	गत्वा	आगत्य
गॄ (गॄ, ६ प०, निगलना)		गीर्णः	गीर्णवान्	गिरन्	गीर्त्वा	उद्गीर्य
ग्रह् (ग्रह, ९ उ०, लेना)		गृहीतः	गृहीतवान्	गृह्णन्	गृहीत्वा	संगृह्य
घ्रा (घ्रा, १ प०, सूँघना)		घ्रातः	घ्रातवान्	जिघ्रन्	घ्रात्वा	आघ्राय
चि (चिञ्, ५ उ०, चुनना)		चितः	चितवान्	चिन्वन्	चित्वा	संचित्य
चिन्त् (चिति, १० उ०, सोचना)		चिन्तितः	चिन्तितवान्	चिन्तयन्	चिन्तयित्वा	संचिन्त्य
चुर् (चुर, १० उ०, चुराना)		चोरितः	चोरितवान्	चोरयन्	चोरयित्वा	संचोर्य
छिद् (छिदिर्, ७ उ०, काटना)		छिन्नः	छिन्नवान्	छिन्दन्	छित्त्वा	संछिद्य
जन् (जनी, ४ आ०, पैदा होना)		जातः	जातवान्	जायमानः	जनित्वा	संजाय
जि (जि, १ प०, जीतना)		जितः	जितवान्	जयन्	जित्वा	विजित्य
ज्ञा (ज्ञा, ९ उ०, जानना)		ज्ञातः	ज्ञातवान्	ज़ानन्	ज्ञात्वा	विज्ञाय
तन् (तनु, ८ उ०, फैलाना)		ततः	ततवान्	तन्वन्	तनित्वा	वितत्य
तुद् (तुद, ६ उ०, दुःख देना)		तुन्नः	तुन्नवान्	तुदन्	तुत्त्वा	संतुद्य
त्यज् (त्यज, १ प०, छोड़ना)		त्यक्तः	त्यक्तवान्	त्यजन्	त्यक्त्वा	परित्यज्य
दा (डुदाञ्, ३ उ०, देना)		दत्तः	दत्तवान्	ददत्	दत्त्वा	आदाय
दिव् (दिवु, ४ प०, चमकना)		द्यूतः	द्यूतवान्	दीव्यन्	देवित्वा	संदीव्य

तुमुन्	तव्यत्	तृच्	ल्युट्	कर्म०	णिच्	सन्
अत्तुम्	अत्तव्यम्	अत्ता	अदनम्	अद्यते	आदयति	जिघत्सति
अशितुम्	अशितव्यम्	अशिता	अशनम्	अश्यते	आशयति	अशिशिषते
भवितुम्	भवितव्यम्	भविता	भवनम्	भूयते	भावयति	बुभूषति
आप्तुम्	आप्तव्यम्	आप्ता	आपनम्	आप्यते	आपयति	ईप्सति
आसितुम्	आसितव्यम्	आसिता	आसनम्	आस्यते	आसयति	आसिसिषते
एतुम्	एतव्यम्	एता	अयनम्	ईयते	गमयति	जिगमिषति
अध्येतुम्	अध्येतव्यम्	अध्येता	अध्ययनम्	अधीयते	अध्यापयति	अधिजिगांसते
एषितुम्	एषितव्यम्	एषिता	एषणम्	इष्यते	एषयति	एषिषति
ईक्षितुम्	ईक्षितव्यम्	ईक्षिता	ईक्षणम्	ईक्ष्यते	ईक्षयति	ईचिक्षिषते
कथयितुम्	कथयितव्यम्	कथयिता	कथनम्	कथ्यते	कथयति	चिकथयिषति
कोपितुम्	कोपितव्यम्	कोपिता	कोपनम्	कुप्यते	कोपयति	चुकोपिषति
कर्तुम्	कर्तव्यम्	कर्ता	करणम्	क्रियते	कारयति	चिकीर्षति
कर्ष्टुम्	कर्ष्टव्यम्	कर्ष्टा	कर्षणम्	कृष्यते	कर्षयति	चिकृक्षति
करितुम्	करितव्यम्	करिता	करणम्	कीर्यते	कारयति	चिकरिषति
क्रेतुम्	क्रेतव्यम्	क्रेता	क्रयणम्	क्रीयते	क्रापयति	चिक्रीषति
क्षेप्तुम्	क्षेप्तव्यम्	क्षेप्ता	क्षेपणम्	क्षिप्यते	क्षेपयति	चिक्षिप्सति
गन्तुम्	गन्तव्यम्	गन्ता	गमनम्	गम्यते	गमयति	जिगमिषति
गरितुम्	गरितव्यम्	गरिता	गरणम्	गीर्यते	गारयति	जिगरिषति
ग्रहीतुम्	ग्रहीतव्यम्	ग्रहीता	ग्रहणम्	गृह्यते	ग्राहयति	जिघृक्षति
घ्रातुम्	घ्रातव्यम्	घ्राता	घ्राणम्	घ्रायते	घ्रापयति	जिघ्रासति
चेतुम्	चेतव्यम्	चेता	चयनम्	चीयते	चापयति	चिचीषति
चिन्तयितुम्	चिन्तयितव्यम्	चिन्तयिता	चिन्तनम्	चिन्त्यते	चिन्तयति	चिचिन्तयिषति
चोरयितुम्	चोरयितव्यम्	चोरयिता	चोरणम्	चोर्यते	चोरयति	चुचोरयिषति
छेत्तुम्	छेत्तव्यम्	छेत्ता	छेदनम्	छिद्यते	छेदयति	चिच्छित्सति
जनितुम्	जनितव्यम्	जनिता	जननम्	जायते	जनयति	जिजनिषते
जेतुम्	जेतव्यम्	जेता	जयनम्	जीयते	जापयति	जिगीषति
ज्ञातुम्	ज्ञातव्यम्	ज्ञाता	ज्ञानम्	ज्ञायते	ज्ञापयति	जिज्ञासते
तनितुम्	तनितव्यम्	तनिता	तननम्	तन्यते	तानयति	तितंसति
तोत्तुम्	तोत्तव्यम्	तोत्ता	तोदनम्	तुद्यते	तोदयति	तुतुत्सति
त्यक्तुम्	त्यक्तव्यम्	त्यक्ता	त्यजनम्	त्यज्यते	त्याजयति	तित्यक्षति
दातुम्	दातव्यम्	दाता	दानम्	दीयते	दापयति	दित्सति
देवितुम्	देवितव्यम्	देविता	देवनम्	दीव्यते	देवयति	दिदेविषति

धातु अर्थ	क्त	क्तवतु	शतृ। शानच्	क्त्वा	ल्यप्
दुह् (दुह्, २ उ०, दुहना)	दुग्धः	दुग्धवान्	दुहन्	दुग्ध्वा	संदुह्य
दृश् (दृशिर्, १ प०, देखना)	दृष्टः	दृष्टवान्	पश्यन्	दृष्ट्वा	संदृश्य
धा (डुधाञ्, ३ उ०, धारण०)	हितः	हितवान्	दधत्	हित्वा	विधाय
नम् (णम, १ प०, झुकना)	नतः	नतवान्	नमन्	नत्वा	प्रणम्य
नश् (णश, ४ प०, नष्ट होना)	नष्टः	नष्टवान्	नश्यन्	नशित्वा	विनश्य
नी (णीञ्, १ उ०, ले जाना)	नीतः	नीतवान्	नयन्	नीत्वा	आनीय
नृत् (नृती, ४ प०, नाचना)	नृत्तः	नृत्तवान्	नृत्यन्	नर्तित्वा	प्रनृत्य
पच् (डुपचष्, १ उ०, पकना)	पक्वः	पक्ववान्	पचन्	पक्त्वा	संपच्य
पठ् (पठ, १ प०, पढ़ना)	पठितः	पठितवान्	पठन्	पठित्वा	संपठ्य
पद् (पद, ४ आ०,जाना)	पन्नः	पन्नवान्	पद्यमानः	पत्त्वा	विपद्य
पा (पा, १प०, पीना)	पीतः	पीतवान्	पिबन्	पीत्वा	निपाय
पा (पा, २ प०, रक्षा करना)	पातः	पातवान्	पान्	पात्वा	प्रपाय
प्रच्छ् (प्रच्छ, ६ प०, पूछना)	पृष्टः	पृष्टवान्	पृच्छन्	पृष्ट्वा	संपृच्छ्य
बन्ध् (बन्ध, ९ प०, बाँधना)	बद्धः	बद्धवान्	बध्नन्	बद्ध्वा	संबध्य
ब्रू (ब्रूञ्, २ उ०, बोलना)	उक्तः	उक्तवान्	ब्रुवन्	उक्त्वा	प्रोच्य
भक्ष् (भक्ष, १० उ०, खाना)	भक्षितः	भक्षितवान्	भक्षयन्	भक्षयित्वा	संभक्ष्य
भञ्ज् (भञ्जो, ७ प०, तोड़ना)	भग्नः	भग्नवान्	भञ्जन्	भक्त्वा	विभज्य
भिद् (भिदिर्, ७ उ०, तोड़ना)	भिन्नः	भिन्नवान्	भिन्दन्	भित्वा	संभिद्य
भी (ञिभी, ३ प०, डरना)	भीतः	भीतवान्	बिभ्यत्	भीत्वा	संभीय
भुज् (भुज, ७ उ०, पालना, खाना)	भुक्तः	भुक्तवान्	भुञ्जानः	भुक्त्वा	संभुज्य
भू (भू, १ प०, होना)	भूतः	भूतवान्	भवन्	भूत्वा	संभूय
भृ (डुभृञ्, ३ प०, पालना)	भृतः	भृतवान्	बिभ्रत्	भृत्वा	संभृत्य
भ्रम् (भ्रमु, ४ प०, घूमना)	भ्रान्तः	भ्रान्तवान्	भ्राम्यन्	भ्रान्त्वा	संभ्रम्य
मन्थ् (मन्थ, ९ प०, मथना)	मथितः	मथितवान्	मथ्नन्	मन्थित्वा	संमथ्य
मा (माङ् ३ आ०, नापना)	मितः	मितवान्	मिमानः	मित्वा	उपमीय
मुच् (मुच्लृ, ६ उ०, छोड़ना)	मुक्तः	मुक्तवान्	मुञ्चन्	मुक्त्वा	विमुच्य
मुद् (मुद, १ आ०, प्रसन्न०)	मुदितः	मुदितवान्	मोदमानः	मुदित्वा	प्रमुद्य
मृ (मृङ् ६ आ०, मरना)	मृतः	मृतवान्	म्रियमाणः	मृत्वा	प्रमृत्य
या (या, २ प०, जाना)	यातः	यातवान्	यान्	यात्वा	प्रयाय
याच् (टुयाचृ, १ उ०, माँगना)	याचितः	याचितवान्	याचमानः	याचित्वा	प्रयाच्य
युज् (युजिर्, ७ उ०, मिलाना)	युक्तः	युक्तवान्	युञ्जन्	युक्त्वा	प्रयुज्य
युध् (युध, ४ उ०, लड़ना)	युद्धः	युद्धवान्	युध्यमानः	युद्ध्वा	प्रयुध्य
रक्ष् (रक्ष, १ प०, रक्षा०)	रक्षितः	रक्षितवान्	रक्षन्	रक्षित्वा	संरक्ष्य
रुद् (रुदिर्, २ प०, रोना)	रुदितः	रुदितवान्	रुदन्	रुदित्वा	प्ररुद्य

तुमुन्	तव्यत्	तृच्	ल्युट्	कर्म०	णिच्	सन्
दोग्धुम्	दोग्धव्यम्	दोग्धा	दोहनम्	दुह्यते	दोहयति	दुधुक्षति
द्रष्टुम्	द्रष्टव्यम्	द्रष्टा	दर्शनम्	दृश्यते	दर्शयति	दिदृक्षते
धातुम्	धातव्यम्	धाता	धानम्	धीयते	धापयति	धित्सति
नन्तुम्	नन्तव्यम्	नन्ता	नमनम्	नम्यते	नमयति	निनंसति
नशितुम्	नशितव्यम्	नशिता	नशनम्	नश्यते	नाशयति	निनशिषति
नेतुम्	नेतव्यम्	नेता	नयनम्	नीयते	नाययति	निनीषति
नर्तितुम्	नर्तितव्यम्	नर्तिता	नर्तनम्	नृत्यते	नर्तयति	निनर्तिषति
पक्तुम्	पक्तव्यम्	पक्ता	पचनम्	पच्यते	पाचयति	पिपक्षति
पठितुम्	पठितव्यम्	पठिता	पठनम्	पठ्यते	पाठयति	पिपठिषति
पत्तुम्	पत्तव्यम्	पत्ता	पदनम्	पद्यते	पादयति	पित्सते
पातुम्	पातव्यम्	पाता	पानम्	पीयते	पाययति	पिपासति
पातुम्	पातव्यम्	पाता	पानम्	पायते	पालयति	पिपासति
प्रष्टुम्	प्रष्टव्यम्	प्रष्टा	प्रच्छनम्	पृच्छ्यते	प्रच्छयति	पिप्रच्छिषति
बन्धुम्	बन्धव्यम्	बन्धा	बन्धनम्	बध्यते	बन्धयति	बिभन्त्सति
वक्तुम्	वक्तव्यम्	वक्ता	वचनम्	उच्यते	वाचयति	विवक्षति
भक्षयितुम्	भक्षयितव्यम्	भक्षयिता	भक्षणम्	भक्ष्यते	भक्षयति	बिभक्षयिषति
भङ्क्तुम्	भङ्क्तव्यम्	भङ्क्ता	भञ्जनम्	भज्यते	भञ्जयति	बिभङ्क्षति
भेत्तुम्	भेत्तव्यम्	भेत्ता	भेदनम्	भिद्यते	भेदयति	बिभित्सति
भेतुम्	भेतव्यम्	भेता	भयनम्	भीयते	भाययति	बिभीषति
भोक्तुम्	भोक्तव्यम्	भोक्ता	भोजनम्	भुज्यते	भोजयति	बुभुक्षति-ते
भवितुम्	भवितव्यम्	भविता	भवनम्	भूयते	भावयति	बुभूषति
भर्तुम्	भर्तव्यम्	भर्ता	भरणम्	भ्रियते	भारयति	बुभूर्षति
भ्रमितुम्	भ्रमितव्यम्	भ्रमिता	भ्रमणम्	भ्रम्यते	भ्रमयति	बिभ्रमिषति
मन्थितुम्	मन्थितव्यम्	मन्थिता	मन्थनम्	मथ्यते	मन्थयति	मिमन्थिषति
मातुम्	मातव्यम्	माता	मानम्	मीयते	माययति	मित्सते
मोक्तुम्	मोक्तव्यम्	मोक्ता	मोचनम्	मुच्यते	मोचयति	मुमुक्षते
मोदितुम्	मोदितव्यम्	मोदिता	मोदनम्	मुद्यते	मोदयति	मुमुदिषते
मर्तुम्	मर्तव्यम्	मर्ता	मरणम्	म्रियते	मारयति	मुमूर्षति
यातुम्	यातव्यम्	याता	यानम्	यायते	यापयति	यियासति
याचितुम्	याचितव्यम्	याचिता	याचनम्	याच्यते	याचयति	यियाचिषति
योक्तुम्	योक्तव्यम्	योक्ता	योजनम्	युज्यते	योजयति	युयुक्षति-ते
योद्धुम्	योद्धव्यम्	योद्धा	योधनम्	युध्यते	योधयति	युयुत्सते
रक्षितुम्	रक्षितव्यम्	रक्षिता	रक्षणम्	रक्ष्यते	रक्षयति	रिरक्षिषति
रोदितुम्	रोदितव्यम्	रोदिता	रोदनम्	रुद्यते	रोदयति	रुरुदिषति

धातु अर्थ	क्त	क्तवतु	शतृ। शानच्	क्त्वा	ल्यप्
रुध् (रुधिर्, ७ उ०, रोकना)	रुद्धः	रुद्धवान्	रुन्धन्	रुद्ध्वा	विरुध्य
लभ् (डुलभष्, १ आ०, पाना)	लब्धः	लब्धवान्	लभमानः	लब्ध्वा	उपलभ्य
लिख् (लिख, ६ प०, लिखना)	लिखितः	लिखितवान्	लिखन्	लिखित्वा	आलिख्य
लिह् (लिह, २ उ०, चाटना)	लीढः	लीढवान्	लिहन्	लीढ्वा	संलिह्य
वद् (वद, १ प०, बोलना)	उदितः	उदितवान्	वदन्	उदित्वा	अनूद्य
वस् (वस, १ प०, रहना)	उषितः	उषितवान्	वसन्	उषित्वा	प्रोष्य
वह् (वह, १ उ०, ढोना)	ऊढः	ऊढवान्	वहन्	ऊढ्वा	प्रोह्य
विद् (विद, २ प०, जानना)	विदितः	विदितवान्	विदन्	विदित्वा	संविद्य
वृत् (वृतु, १ आ०, होना)	वृत्तः	वृत्तवान्	वर्तमानः	वर्तित्वा	निवृत्य
वृध् (वृधु, १ आ०, बढ़ना)	वृद्धः	वृद्धवान्	वर्धमानः	वर्धित्वा	संवृध्य
शक् (शक्लृ, ५ प०, सकना)	शक्तः	शक्तवान्	शक्नुवन्	शक्त्वा	संशक्य
शास् (शासु, २ प०, शिक्षा०)	शिष्टः	शिष्टवान्	शासत्	शिष्ट्वा	अनुशिष्य
शी (शीङ् २ आ०, सोना)	शयितः	शयितवान्	शयानः	शयित्वा	संशय्य
शो (शो, ४ प०, छीलना)	शातः	शातवान्	श्यन्	शात्वा	संशाय
श्रम् (श्रमु, ४ प०, श्रम०)	श्रान्तः	श्रान्तवान्	श्राम्यन्	श्रमित्वा	परिश्रम्य
श्रु (श्रु, १ प०, सुनना)	श्रुतः	श्रुतवान्	शृण्वन्	श्रुत्वा	संश्रुत्य
सद् (षद्लृ, १ प०, बैठना)	सन्नः	सन्नवान्	सीदन्	सत्त्वा	निषद्य
सह् (षह, १ आ०, सहना)	सोढः	सोढवान्	सहमानः	सोढ्वा	संसह्य
सिव् (षिवु, ४ प०, सीना)	स्यूतः	स्यूतवान्	सीव्यन्	सेवित्वा	संसीव्य
सु (षुञ्, ५ उ०, निचोड़ना)	सुतः	सुतवान्	सुन्वन्	सुत्वा	प्रसुत्य
सेव् (षेवृ, १ आ०, सेवा०)	सेवितः	सेवितवान्	सेवमानः	सेवित्वा	संसेव्य
सो (षो, ४ प०, नष्ट होना)	सितः	सितवान्	स्यन्	सित्वा	अवसाय
स्तु (ष्टुञ्, २ उ०, स्तुति०)	स्तुतः	स्तुतवान्	स्तुवन्	स्तुत्वा	प्रस्तुत्य
स्था (ष्ठा, १ प०, रुकना)	स्थितः	स्थितवान्	तिष्ठन्	स्थित्वा	प्रस्थाय
स्पृश् (स्पृश, ६ प०, छूना)	स्पृष्टः	स्पृष्टवान्	स्पृशन्	स्पृष्ट्वा	संस्पृश्य
स्मृ (स्मृ, १ प०, स्मरण०)	स्मृतः	स्मृतवान्	स्मरन्	स्मृत्वा	विस्मृत्य
स्वप् (ञिष्वप्, २ प०, सोना)	सुप्तः	सुप्तवान्	स्वपन्	सुप्त्वा	संसुप्य
हन् (हन, २प०, मारना)	हतः	हतवान्	घ्नन्	हत्वा	निहत्य
हस् (हसे, १ प०, हँसना)	हसितः	हसितवान्	हसन्	हसित्वा	विहस्य
हा (ओहाक्, ३ प०, छोड़ना)	हीनः	हीनवान्	जहत्	हित्वा	विहाय
हिंस् (हिंसि, ७ प०, हिंसा०)	हिंसितः	हिंसितवान्	हिंसन्	हिंसित्वा	विहिंस्य
हु (हु, ३ प०, हवन करना)	हुतः	हुतवान्	जुह्वत्	हुत्वा	आहुत्य
हृ (हृ, १ उ०, हरण०)	हृतः	हृतवान्	हरन्	हृत्वा	प्रहृत्य
ह्री (ह्री, ३ प०, लजाना)	ह्रीणः	ह्रीणवान्	जिह्रियत्	ह्रीत्वा	संह्रीय

तुमुन्	तव्यत्	तृच्	ल्युट्	कर्म०	णिच्	सन्
रोद्धुम्	रोद्धव्यम्	रोद्धा	रोधनम्	रुध्यते	रोधयति	रुरुत्सति
लब्धुम्	लब्धव्यम्	लब्धा	लभनम्	लभ्यते	लम्भयति	लिप्सते
लेखितुम्	लेखितव्यम्	लेखिता	लेखनम्	लिख्यते	लेखयति	लिलिखिषति
लेढुम्	लेढव्यम्	लेढा	लेहनम्	लिह्यते	लेहयति	लिलिक्षति-ते
वदितुम्	वदितव्यम्	वदिता	वदनम्	उद्यते	वादयति	विवदिषति
वस्तुम्	वस्तव्यम्	वस्ता	वसनम्	उष्यते	वासयति	विवत्सति
वोढुम्	वोढव्यम्	वोढा	वहनम्	उह्यते	वाहयति	विवक्षति-ते
वेदितुम्	वेदितव्यम्	वेदिता	वेदनम्	विद्यते	वेदयति	विविदिषति
वर्तितुम्	वर्तितव्यम्	वर्तिता	वर्तनम्	वृत्यते	वर्तयति	विवर्तिषते
वर्धितुम्	वर्धितव्यम्	वर्धिता	वर्धनम्	वृध्यते	वर्धयति	विवर्धिषते
शक्तुम्	शक्तव्यम्	शक्ता	शकनम्	शक्यते	शाकयति	शिक्षति
शासितुम्	शासितव्यम्	शासिता	शासनम्	शिष्यते	शासयति	शिशासिषति
शयितुम्	शयितव्यम्	शयिता	शयनम्	शय्यते	शाययति	शिशयिषते
शातुम्	शातव्यम्	शाता	शानम्	शायते	शाययति	शिशासति
श्रमितुम्	श्रमितव्यम्	श्रमिता	श्रमणम्	श्राम्यते	श्रमयति	शिश्रमिषति
श्रोतुम्	श्रोतव्यम्	श्रोता	श्रवणम्	श्रूयते	श्रावयति	शुश्रूषते
सत्तुम्	सत्तव्यम्	सत्ता	सदनम्	सद्यते	सादयति	सिसत्सति
सोढुम्	सोढव्यम्	सोढा	सहनम्	सह्यते	साहयति	सिसहिषते
सेवितुम्	सेवितव्यम्	सेविता	सेवनम्	सेव्यते	सेवयति	सिसेविषति
सोतुम्	सोतव्यम्	सोता	सवनम्	सूयते	सावयति	सुसूषति
सेवितुम्	सेवितव्यम्	सेविता	सेवनम्	सेव्यते	सेवयति	सिसेविषते
सातुम्	सातव्यम्	साता	सानम्	सीयते	साययति	सिषासति
स्तोतुम्	स्तोतव्यम्	स्तोता	स्तवनम्	स्तूयते	स्तावयति	तुष्टूषति
स्थातुम्	स्थातव्यम्	स्थाता	स्थानम्	स्थीयते	स्थापयति	तिष्ठासति
स्रष्टुम्	स्रष्टव्यम्	स्रष्टा	स्पर्शनम्	स्पृश्यते	स्पर्शयति	पिस्पृक्षति
स्मर्तुम्	स्मर्तव्यम्	स्मर्ता	स्मरणम्	स्मर्यते	स्मारयति	सुस्मूर्षते
स्वप्तुम्	स्वप्तव्यम्	स्वप्ता	स्वपनम्	सुप्यते	स्वापयति	सुषुप्सति
हन्तुम्	हन्तव्यम्	हन्ता	हननम्	हन्यते	घातयति	जिघांसति
हसितुम्	हसितव्यम्	हसिता	हसनम्	हस्यते	हासयति	जिहसिषति
हातुम्	हातव्यम्	हाता	हानम्	हीयते	हापयति	जिहासति
हिंसितुम्	हिंसितव्यम्	हिंसिता	हिंसनम्	हिंस्यते	हिंसयति	जिहिंसिषति
होतुम्	होतव्यम्	होता	हवनम्	हूयते	हावयति	जुहूषति
हर्तुम्	हर्तव्यम्	हर्ता	हरणम्	ह्रियते	हारयति	जिहीर्षति
हेतुम्	हेतव्यम्	हेता	हयणम्	हीयते	हेपयति	जिहीषति

(८) वाक्यार्थक-शब्द (वाक्यार्थ-बोधक शब्द)

सूचना—यहाँ पर उदाहरणार्थ कतिपय वाक्यार्थ-बोधक शब्दों का संग्रह किया गया है। निम्नलिखित पद्धति को अपनाकर सैकड़ों इस प्रकार के शब्द बनाए जा सकते हैं।

(१) समास

(क) अव्ययीभाव समास—अव्ययीभाव समास करने से बहुत से वाक्यार्थक शब्द बनते हैं। इसमें कुछ अव्यय हैं, उनसे वाक्यांश का बोध होता है। जैसे—कृष्ण के समीप—**उपकृष्णम्**, मद्र देश की समृद्धि—**सुमद्रम्**, यवनों का क्षय—**दुर्यवनम्**, मक्खियों का अभाव—**निर्मक्षिकम्**, इस समय सोना उचित नहीं है—**अतिनिद्रम्**, गंगा के किनारे-किनारे—**अनुगङ्गम्**, शक्ति का उल्लंघन न करके या शक्ति के अनुसार—**यथाशक्ति**, आँख के संमुख—**प्रत्यक्षम्**, आँख से ओझल—**परोक्षम्**, हर घर की ओर—**प्रतिगृहम्**, तिनके को भी न छोड़कर—**सतृणम्**।

(ख) तत्पुरुष समास—१. (मयूरव्यंसकादि) जैसे—जिसके पास कुछ नहीं है—**अकिंचनः**, जहाँ केवल खाने-पीने की ही बात चलती है—**अश्नीतपिबता**, खाओ और मस्त रहो, जहाँ पर यही प्रसंग रहता है—**खादतमोदता**, जिसको कहीं से कोई डर नहीं है—**अकुतोभयः**। २. (पात्रेसमितादि) केवल खाने के साथी—**पात्रेसमिताः**, अपने घर कुत्ता भी शेर होता है—**गेहेशूरः, गेहेनर्दी**। ३. (प्रादिसमास) प्रकृष्ट आचार्य—**प्राचार्यः**, माला को अतिक्रमण करनेवाला—**अतिमालः**, पढ़ाई से तंग आया हुआ—**पर्यध्ययनः**, कौशम्बी से निकला हुआ—**निष्कौशाम्बिः**। दो अंगुल नाप की—**द्व्यङ्गुलं दारु** (लकड़ी)।

(ग) बहुव्रीहि—जिसको जल मिल गया है—**प्राप्तोदकः**, जिसने रथ ढोया है, ऐसा बैल—**ऊढरथः अनड्वान्**, जिसके वस्त्र पीले हैं, ऐसे विष्णु—**पीताम्बरः हरिः**, जिसमें वीर पुरुष रहते हैं, ऐसा गाँव—**वीरपुरुषकः ग्रामः**, जिसके पत्ते गिर गए हैं, ऐसा वृक्ष—**प्रपर्णः वृक्षः**, जिसके कोई पुत्र नहीं है—**अपुत्रः**, जिसके पास चितकबरी गाएँ हैं—**चित्रगुः**, जो स्त्री के वचन को ही प्रमाण मानता है—**स्त्रीप्रमाणः**, जिसने सोने की अँगूठी पहनी हुई है—**हैममुद्रिकः**, बीस के करीब—**आसन्नविंशाः**, दो या तीन—**द्वित्राः**, पाँच या छः—**पञ्चषाः**, बाल खींचकर झगड़ा हुआ—**केशाकेशि**, हाथापाई करके झगड़ा हुआ—**मुष्टीमुष्टि**, जिसकी पत्नी जवान है—**युवजानिः**, दो पैरोंवाला—**द्विपात्**, चार पैरोंवाला—**चतुष्पात्**, पुष्ट छातीवाला—**व्यूढोरस्कः**।

(घ) एकशेष—माता और पिता—**पितरौ**, भाई और बहन—**भ्रातरौ**, हंस और हंसी—**हंसौ**, पुत्र और पुत्री—**पुत्रौ**, सास और ससुर—**श्वशुरौ**।

(२) तद्धित प्रत्यय

(क) अपत्यार्थक—(पुत्र या पुत्री अर्थ में अण्, इञ् आदि प्रत्यय) वसुदेव का पुत्र—**वासुदेवः**, शिव का पुत्र—**शैवः**। इसी प्रकार विश्वामित्र > **वैश्वामित्रः**, दशरथ > **दाशरथिः**, (राम), सुमित्रा > **सौमित्रिः** (लक्ष्मण), द्रोण > **द्रौणिः** (अश्वत्थामा), विनता > **वैनतेयः** (गरुड़), बहन का पुत्र—**भागिनेयः** (भानजा), कुन्ती > **कौन्तेयः**, माद्री > **माद्रेयः**, पृथा > **पार्थः** पाण्डु के पुत्र—**पाण्डवाः**, कुरु के पुत्र या वंशज > **कौरवाः**, राधा का पुत्र—**राधेयः** (कर्ण), दिति के पुत्र—**दैत्याः**, दनु के पुत्र—**दानवाः**, अदिति के पुत्र—**आदित्याः**। (राजा अर्थ में अण् आदि प्रत्यय) पञ्चाल देश का राजा—**पाञ्चालः**, पुरु जनपद का राजा—**पौरवः**, अंग देश का राजा—**आङ्गः**, बंग का राजा—**बाङ्गः**, मगध का राजा—**मागधः**, कम्बोज का राजा—**काम्बोजः**।

(ख) चातुरर्थिक—१. (रक्तार्थक या रंग से रँगने अर्थ में अण् आदि प्रत्यय) गेरु से रँगा हुआ वस्त्र—**काषायम्**, मँजीठ से रँगा हुआ—**माञ्जिष्ठम्**, नील से रँगा हुआ—**नीलम्**, पीले रंग से रँगा हुआ—**पीतकम्**, हल्दी से रँगा हुआ—**हारिद्रम्**। २. (देवतार्थक अण् आदि) इन्द्र जिसका देवता है—**ऐन्द्रं हविः**। इसी प्रकार पशुपति > **पाशुपतम्**, सोम > **सौम्यम्**, वायु > **वायव्यम्**, अग्नि > **आग्नेयम्**, ३. (समूह अर्थ में अण् आदि) कौओं का समूह—**काकम्**, बकों का समूह > **बाकम्**। इसी प्रकार भिक्षा > **भैक्षम्**, युवति > **यौवनम्**, जन > **जनता**, ग्राम > **ग्रामता**, बन्धु > **बन्धुता**। ४. (पढ़ने या जाननेवाला अर्थ में अण् आदि प्रत्यय) व्याकरण पढ़ने या जाननेवाला—**वैयाकरणः**। इसी प्रकार न्याय > **नैयायिकः**, मीमांसा > **मीमांसकः**, पुराण > **पौराणिकः**, इतिहास > **ऐतिहासिकः**।

(ग) शैषिक—१. (होना आदि अर्थों में अण् आदि प्रत्यय) आँख से देखने योग्य—**चाक्षुषं रूपम्**, कान से सुनने योग्य—**श्रावणः शब्दः**। राष्ट्र में होनेवाला > **राष्ट्रियः**, गाँव में रहनेवाला > **ग्राम्यः**, **ग्रामीणः**, दक्षिण में रहनेवाला > **दाक्षिणात्यः**. पश्चिम में रहनेवाला—**पाश्चात्त्यः** पूर्व में रहनेवाला—**पौरस्त्यः**, समीप रहनेवाला—**अमात्यः**। मास में होनेवाला—**मासिकम्**, वर्ष > **वार्षिकम्**, दिन > **दैनिकम्**। शाम को होनेवाला—**सायन्तनम्**, पहले होने वाला—**पुरातनम्**। २. (उत्पन्न होना अर्थ में अण् आदि) हिमालय से उत्पन्न होनेवाली—**हैमवती गङ्गा**। ३. (ग्रन्थ-निर्माण अर्थ में अण् आदि) शकुन्तला-विषयक ग्रन्थ—**शाकुन्तलम्**। वासवदत्ता > **वासवदत्ता**। ४. (कृति अर्थ में अण् आदि) पाणिनि की कृति—**पाणिनीयम्**। वररुचि > **वाररुचम्**। ५. (मार्ग, निवास, इसका यह, आदि अर्थों में अण् आदि) स्रुघ्न का निवासी—**स्रौघ्नः**, शरद्-सम्बन्धी—**शारदम्**।

(घ) मत्वर्थक—(वाला या मुतुप् के अर्थ में मत्, इन् आदि प्रत्यय) गुणों से युक्त—गुणवान्। इसी प्रकार धन > धनवान्, विद्या > विद्यावान्, धी > धीमान्, श्री > श्रीमान्, बुद्धि > बुद्धिमान्, रूप > रूपवती स्त्री। गुणों से युक्त—गुणिन्, धन से युक्त > धनिन्। दण्ड > दण्डिन्, कर > करिन्। धनवाला—धनिकः। माया > मायिकः। लोमवाला—लोमशः, सुन्दर अङ्गोंवाली—अङ्गना। तारों से युक्त—तारकितं नभः। इसी प्रकार पुष्प > पुष्पितः, कुसुम > कुसुमितः, दुःख > दुःखितः, क्षुधा > क्षुधितः, अङ्कुर > अङ्कुरितः। (युक्त अर्थ में विन् प्रत्यय) यशवाला—यशस्वी। इसी प्रकार तेजस् > तेजस्वी, माया > मायावी, मेधा > मेधावी, ओजस् > ओजस्वी। अत्युत्तम वाणी (बोलने) वाला—वाग्मी, बकवाद करनेवाला—वाचालः, वाचाटः। बड़े दाँतवाला—दन्तुरः, बड़ी तोंदवाला—तुन्दिलः।

(ङ) (प्रमाण या नाप-तोल अर्थ में द्वयस, दघ्न, मात्र प्रत्यय) कमर तक—कटिमात्रम्। घुटने तक—जानुदघ्नम्। जाँघ तक—ऊरुद्वयसम्, ऊरुदघ्नम्, ऊरुमात्रम्।

(च) (विकार अर्थ में अण् आदि) मिट्टी का बना हुआ—मार्तिकम्। पत्थर का बना हुआ—आश्मः, राँगा का बना हुआ—जातुषम्। इसी प्रकार गो > गव्यम्, पयस् > पयस्यम्।

(छ) (विविध अर्थों में तद्धित प्रत्यय) पाशों से खेलनेवाला—आक्षिकः। दही से बना हुआ—दाधिकम्। नाव से पार करनेवाला—नाविकः। उडुप > औडुपिकः। हाथी की सवारी करनेवाला—हास्तिकः। समाज की रक्षा करनेवाला—सामाजिकः। रथ को ढोनेवाला—रथ्यः। धुरा को ढोनेवाला—धुर्यः, धौरेयः। सभा में शिष्टता से रहनेवाला—सभ्यः। शरणागतों पर सज्जन—शरण्यः, अतिथियों पर सज्जन—आतिथेयः। दाँतों के लिए हितकर—दन्त्यम्, गले के लिए हितकर—कण्ठ्यम्। अपने लिए हितकर—आत्मनीनम्। ७० रु० में खरीदा—साप्ततिकम्। खान में काम करनेवाला—आकरिकः। एक गुरु से पढ़नेवाले—सतीर्थ्याः। एक माता से उत्पन्न—सोदर्यः, समानोदर्यः।

(ज) (तस्येदम्, इसका यह अर्थ में अण् आदि) देवों का—दैविकम्, भूतों का—भौतिकम्, आत्मा-सम्बन्धी—आध्यात्मिकम्। देवता और असुरों का—दैवासुरम्। उपगु का > औपगवम्।

(झ) (जैसा न हो, वैसा होना या वैसा करना अर्थ में च्वि प्रत्यय) काले को सफेद करता है—शुक्लीकरोति। काला करता है—कृष्णीकरोति। इसी प्रकार ग्राम > ग्रामीकरोति, भस्मन् > भस्मीकरोति, भस्मीभवति।

(३) तिङ् प्रत्यय

(क) (उपसर्ग+धातु) धातुओं से पहले उपसर्ग आदि लगाने से पूरे वाक्य का अर्थ निकलता है। जैसे—उपकार करता है—**उपकरोति**, उपकार किया—**उपाकरोत्, उपकृतम्।** इसी प्रकार प्रहार करता है—**प्रहरति**, विहार करता है—**विहरति**, संहार करता है—**संहरति**, अनुकरण करता है—**अनुकरोति**, प्रणाम करता है—**प्रणमति**, संस्कार करता है—**संस्करोति**, अनुभव करता है—**अनुभवति**, तिरस्कार करता है—**तिरस्करोति**, उत्पन्न करता है—**उत्पादयति**, संवाद करता है—**संवदति**, अनुग्रह करता है—**अनुगृह्णाति**।

(ख) (करवाना अर्थ में णिच् प्रत्यय) पढ़ाता या पढ़वाता है—**पाठयति**, करवाता है—**कारयति**, भेजता है—**गमयति**, डरता है—**भाययति**, खरीदवाता है—**क्रापयति**, समझाता है—**अधिगमयति**, विश्वास दिलाता है—**प्रत्याययति**, साफ करता है—**मार्जयति**।

(ग) (इच्छा करना या चाहना अर्थ में सन् प्रत्यय) पढ़ना चाहता है—**पिपठिषति**। सन्-प्रत्ययान्त से उ लगाकर संज्ञा-शब्द भी बनते हैं। जैसे—पढ़ने का इच्छुक—**पिपठिषुः**। करना चाहता है, करने का इच्छुक—**चिकीर्षति, चिकीर्षुः**। जाना चाहता है, जाने का इच्छुक—**जिगमिषति, जिगमिषुः**। इसी प्रकार युध् > **युयुत्सते, युयुत्सुः**, हन् > **जिघांसति, जिघांसुः**। प्रच्छ् > **पिपृच्छिषति, पिपृच्छिषुः**, मृ > **मुमूर्षति, मुमूर्षुः**, आप् > **ईप्सति, ईप्सुः**, दृश् > **दिदृक्षते, दिदृक्षुः**। देना चाहता है, देने का इच्छुक—**दित्सति, दित्सुः**, प्राप्त करना चाहता है, प्राप्त करने का इच्छुक—**लिप्सते, लिप्सुः**। काम करना चाहता है, करने का इच्छुक—**विधित्सति, विधित्सुः**।

(घ) (बार-बार करना अर्थ में यङ् प्रत्यय) बार-बार नाचता है—**नरीनृत्यते**। बार-बार जीतता है—**जेगीयते**, बार-बार पढ़ता है—**पापठ्यते**, बार-बार घूमता है—**बंभ्रम्यते**, बार-बार करता है—**चेक्रीयते**।

(ङ) (नामधातु प्रत्यय) अपने लिए पुत्र चाहता है—**पुत्रीयति, पुत्र-काम्यति**। शिष्य को पुत्रवत् मानता है—**पुत्रीयति छात्रम्**। कृष्णवत् आचरण करता है—**कृष्णायते**। अप्सरा के तुल्य आचरण करती है—**अप्सरायते**। सूत्र बनाता है—**सूत्रयति**। पटपट शब्द करता है—**पटपटायते**। खटखट करता है—**खटखटाकरोति**।

(४) कृत्-प्रत्यय

(क) (चाहिए या योग्य अर्थ में तव्य और अनीय प्रत्यय) करना चाहिए—**कर्तव्यम्, करणीयम्**। देना चाहिए—**दातव्यम्, दानीयम्**। लिखना चाहिए—**लेखितव्यम्, लेखनीयम्**। हँसना चाहिए—**हसितव्यम्, हसनीयम्**। गाना चाहिए—**गातव्यम्, गानीयम्**। पीना चाहिए—**पातव्यम्, पानीयम्**। स्मरण करना चाहिए—**स्मर्तव्यम्, स्मरणीयम्**। जाना चाहिए—**गन्तव्यम्, गमनीयम्**। बुलाना चाहिए—**आह्वातव्यम्, आह्वानीयम्**। खरीदना चाहिए—**क्रेतव्यम्, क्रयणीयम्**। बेचना चाहिए—**विक्रेतव्यम्, विक्रयणीयम्**। उठना चाहिए—**उत्थातव्यम्, उत्थानीयम्**।

(ख) (चाहिए या योग्य अर्थ में यत् और ण्यत् प्रत्यय) देने योग्य—**देयम्**। गाने योग्य—**गेयम्**। पीने योग्य—**पेयम्**। रुकना चाहिए—**स्थेयम्**। छोड़ना चाहिए—**हेयम्**। जीतना चाहिए—**जेयम्**। इकट्ठा करना चाहिए—**चेयम्**। सुनना चाहिए—**श्रव्यम्**। करने योग्य—**कार्यम्**। हरने योग्य—**हार्यम्**। रखने योग्य—**धार्यम्**। छोड़ने योग्य—**त्याज्यम्**। खाने योग्य—**भोज्यम्**। उपभोग के योग्य—**भोग्यम्**।

(ग) (करनेवाला अर्थ में अण्, क, ट आदि प्रत्यय) घड़ा बनानेवाला—**कुम्भकारः**। माला बनानेवाला—**मालाकारः**। जल लानेवाला—**कहारः**। धन देनेवाला—**धनदः**। जल देनेवाला—**जलदः**। सुख देनेवाला—**सुखदः**। दुःख देनेवाला—**दुःखदः**। धूप से बचानेवाला—**आतपत्रम्**। यश को करनेवाली—**यशस्करी विद्या**। आज्ञा-पालन करनेवाला—**वचनकरः**। काम करनेवाला नौकर—**कर्मकरः**। चित्र बनानेवाला—**चित्रकरः**। सेना में घूमनेवाला—**सेनाचरः**।

(घ) (करनेवाला अर्थ में इष्णु और क्विप्) सजकर रहनेवाला—**अलंकरिष्णुः**। सहन करनेवाला—**सहिष्णुः**। प्रभुत्व करनेवाला—**प्रभविष्णुः**। मंत्र बनानेवाला—**मन्त्रकृत्**। सोम तैयार करनेवाला—**सोमकृत्**। पृथ्वी का पालन करनेवाला—**भूभृत्**।

(ङ) (स्वभाव अर्थ में णिनि) शाकाहार करनेवाला—**शाकाहारी, निरामिषभोजी**। मांसाहार स्वभाववाला—**मांसाहारी, आमिषभोजी**। झूठ बोलने वाला—**मिथ्यावादी**। गर्म खानेवाला—**उष्णभोजी**। शराब पीनेवाला—**सुरापायी, मद्यपः**। अपने-आपको पंडित माननेवाला—**पण्डितमानी, पण्डितंमन्यः**।

(९) पत्रादि-लेखन-प्रकारः

आवश्यक निर्देश

पत्रों के लेखन में निम्नलिखित बातों का अवश्य ध्यान रखें:—

(१) पत्र-लेखन बहुत सरल और स्पष्ट भाषा में होना चाहिए। इसमें प्रायः वार्तालाप में व्यवहृत भाषा का ही रूप अपनाया जाता है, जिससे पत्र का भाव सरलता से हृदयंगम हो सके।

(२) पत्रों में अनावश्यक विशेषणों का परित्याग करना चाहिए। पाण्डित्य-प्रदर्शन का प्रयत्न पत्र में अनुचित है, यह निबन्ध आदि में कुछ अंश तक शिष्टसम्मत है।

(३) जिस उद्देश्य से पत्र लिखा गया है, उसका स्पष्ट उल्लेख करना चाहिये।

(४) पत्र यथासम्भव संक्षिप्त होना चाहिए। उसमें आवश्यक बातों का ही उल्लेख करना चाहिए। अनावश्यक बातों का उल्लेख और विस्तार उचित नहीं है।

(५) साधारणतया पत्रों को ४ श्रेणी में बाँट सकते हैं। तदनुसार ही उनका लेखन होता है। (क) अतिपरिचित व्यक्तियों को। (ख) सामान्य परिचित व्यक्तियों को। (ग) अपरिचित व्यक्तियों को। (घ) केवल व्यावहारिक पत्र।

(क) (१) पिता, पुत्र, माता, मित्र, पत्नी, पति आदि के लिए ऐसे पत्र होते हैं। इनमें प्रारम्भ में ऊपर दाहिनी ओर स्व-स्थान-नाम तथा तिथि या दिनांक देना चाहिए। (२) उसके नीचे सम्बोधनपूर्वक अपने से बड़ों को प्रणामः, नमस्कारः, नमस्ते आदि लिखें। समान आयुवालों को नमस्ते, छोटों को स्वस्ति, आशीर्वादः आदि। (३) पत्र के अन्त में बड़ों के लिए 'भवदाज्ञाकारी', 'भवत्कृपाकांक्षी' आदि, समान आयुवालों को 'भवदीयः', 'भावत्कः' आदि, छोटों को 'शुभाकांक्षी', 'शुभचिन्तकः' आदि लिखना चाहिये। (४) पत्र का पता लिखने में पहली पंक्ति में व्यक्ति का नाम लिखना चाहिए। उसके नीचे उपाधि आदि। दूसरी पंक्ति में ग्राम-नाम, मुहल्ला या सड़क आदि का नाम। तीसरी पंक्ति में पोस्ट ऑफिस (डाकखाना) का नाम। चौथी पंक्ति में जिले का नाम। यदि दूसरे प्रान्त या देश के लिए हो तो अन्त में प्रान्त या देश का नाम लिखें।

(ख) सामान्य परिचित में सम्बोधन में व्यक्ति का नाम निर्देश करें। शेष पूर्ववत्।

(ग) अपरिचितों को सम्बोधन में 'श्रीमन्', 'महोदय' आदि लिखें। अन्त में 'भवदीयः' या 'भावत्कः'। शेष पूर्ववत्। इसमें काम की बात ही मुख्यरूप से लिखें।

(घ) केवल व्यावहारिक पत्रों में—(१) प्रारम्भ में अधिकारी, व्यक्ति या कम्पनी आदि का नाम एवं कार्यालय-सम्बन्धी पता लिखें। (२) तदनन्तर सम्बोधन में 'श्रीमन्' या 'महोदय'। (३) प्रणामः, नमस्ते आदि न लिखें। (४) अन्त में 'भवदीयः' (५) केवल कार्य-सम्बन्धी बात लिखें। पारिवारिक या वैयक्तिक नहीं।

(१) पित्रे पत्रम्

प्रयाग-विश्वविद्यालय:

तिथि:—श्रावण-शुक्ला १०, २०२१ वि०

श्रीमतो माननीयस्य पितृवर्यस्य चरणारविन्दयो: ! सादरं प्रणतितति: ।

अत्र शं तत्रास्तु। समधिगतं मया भावत्कं कृपापत्रम्। अवगतं च निखिलं वृत्तम्। अद्यत्वेऽध्ययनकर्मण्येव नितरां व्यापृतोऽस्मि। एम०ए० संस्कृतविषये प्रवेशमवाप्यातितरां मुदमावहे। वेदानां गुणगरिमा, उपनिषदां हृदयावर्जकत्वम्, कालिदासादि-महाकवीनां कलाकौशलम्, भारतीयसंस्कृते: साधिष्ठता, भाषाविज्ञानस्य वैज्ञानिकी सरणिर्मनोज्ञता च स्वान्तं मे प्रतिपलं प्रसादयति। आशासे कृतभूरिपरिश्रम: सद्य एव समेष्वपि विषयेषु दाक्षिण्यमासादयितास्मि। मान्याया मातुश्चरणयो: प्रणतिर्वाच्या।

भवदाज्ञाकारी सूनु:—भारतेन्दु:

(२) सुहृदे पत्रम्

नैनीतालत:

दिनाङ्क: २१-४-१९६५ ईसवीय:

प्रियमित्र श्यामलाल यादव! सप्रणयं नमस्ते।

अत्र कुशलं तत्रास्तु। भवत्प्रेमपत्रं प्राप्य मानसं मेऽतीव मोदमावहति। परिवारे सर्वेषामपि कुशलतामवगत्य हृष्टोऽस्मि। ऐषमस्तने संवत्सरे ग्रीष्मर्तौ सपरिवारं नैनीतालागमनाय मतिर्विधेया। नगरमेतत् प्राकृतिकसुषमाया: सर्वस्वम्, पर्वतमालापरिवृतम्, शीतलाच्छोदसंभृतसरसा सनाथम्, वन्यवृक्षवीरुद्विराजितम्, कृत्रिमाकृत्रिमोभयोपकरणसंकुलम्, सततशीतलसदागतिमनोहरं रमणीयं च। आशासेऽत्रागमनेनानुग्रहीष्यन्ति माम्। कुशलमन्यत्। ज्येष्ठेभ्यो नम:, कनिष्ठेभ्यश्च स्वस्ति। पत्रोत्तरप्रदानेनानुग्राह्योऽहम्।

भवद्बन्धु:—सुरेन्द्रनाथो दीक्षित:

(३) भ्रात्रे पत्रम्

गुरुकुल-महाविद्यालय-ज्वालापुरत:

दिनाङ्क: २०-६-१९६५ ई०

प्रिय बन्धुवर विजयकुमार! सस्नेहं नमस्ते।

अत्र कुशलं तत्रास्तु। एतदवगत्य भवान्नूनं हर्षमनुभविष्यति यदहं संवत्सरेऽस्मिन् शास्त्रिपरीक्षामुत्तीर्ण:। तत्र च प्रथमा श्रेणि: संप्राप्ता। साम्प्रतमहं संस्कृतविषये एम०ए० परीक्षां दित्सामि। आशासे परेशप्रसादात् तत्रापि साफल्यमाप्स्यामि। सर्वेऽपि गुरवो मयि कृपापरा:। शिष्टं विशिष्टं स्व:। परिचितेभ्यो नम:।

भवद्बन्धु: — रामचन्द्र: शर्मा

(४) अवकाशार्थं प्रार्थनापत्रम्

श्रीमन्तः प्रधानाचार्यमहोदयाः,
राजकीय-महाविद्यालयः, नैनीतालः।

मान्यवर!

अहमद्य दिनद्वयाद् शीतज्वरेण पीडितोऽस्मि। ज्वरकृततापेन भृशं कार्श्यमुपगतोऽस्मि। अतो विद्यालयमागन्तुं न प्रभवामि। कृपया दिवसद्वयस्यावकाशं स्वीकृत्य मामनुग्रहीष्यन्ति श्रीमन्तः।

भवतामाज्ञानकारी शिष्यः
हरगोविन्दो जोशी

(५) पुस्तकप्रेषणार्थं प्रकाशकाय आदेशः

श्री प्रबन्धकमहोदयाः,
विश्वविद्यालय-प्रकाशनम्, भैरवनाथः, वाराणसी।

श्रीमन्तः,

दृष्टिपथमुपागतं मे भवत्प्रकाशितं "प्रौढ-रचनानुवादकौमुदी" नामकं पुस्तकम्। ग्रन्थस्यास्योपयोगितां समीक्ष्य नितरां हतहृदयोऽस्मि। कृपया पुस्तकपञ्चकम् अधोनिर्दिष्टस्थाने वी०पी०पी० द्वारा शीघ्रं संप्रेष्यानुग्रहीतव्यम्।

दिनाङ्कः—३०-६-१९६५ ई०
भवदीयः—डॉ० सुरेन्द्रनाथ-दीक्षितो व्याकरणाचार्यः, एम०ए०, पी-एच०डी०,
हिन्दी-प्राध्यापकः, एल० एस० कॉलेजः मुजफ्फरपुरम्।

(६) निमन्त्रणपत्रम्

श्रीमन्महोदय!

एतद् विज्ञाय नूनं भवन्तो हर्षमनुभविष्यन्ति यत् परेशस्य महत्याऽनुकम्पया मम ज्येष्ठाया दुहितुर्विमलादेव्याः शुभपाणिग्रहणसंस्कारो वाराणसी-वास्तव्यस्य श्रीमतो रामचन्द्रप्रसादगुप्तस्य ज्येष्ठपुत्रेण एम०ए० इत्युपाधिविभूषितेन श्रीसुरेन्द्रप्रसादगुप्तेन सह दिनाङ्के २-७-१९६५ ईसवीये रात्रौ दशवादने सम्पत्स्यते। सर्वेऽपि भवन्तः सादरं सविनयं च प्रार्थ्यन्ते यत् सपरिवारं निर्दिष्टसमये समागत्य वरवधूयुगलं स्वाशीर्वादप्रदानेनानुग्रहीष्यन्त्यस्मान्।

भवद्दर्शनाभिलाषी
बैजनाथप्रसादगुप्तः

१०११, मुट्ठीगंजः,
प्रयागः
दिनाङ्कः—२६-६-१९६५ ई०

(स्वीकृति-सूचनयाऽनुग्राह्यः)

(७) परिषदः सूचना

श्रीमन्तो मान्याः,

सविनयमेतद् निवेद्यते यद् आस्माकीनाया महाविद्यालयीयसंस्कृतपरिषदः साप्ताहिक-मधिवेशनम् आगामिनि शुक्रवासरे (दिनाङ्कः-२६-२-१९६५ ई०) सायंकाले चतुर्वादने महाविद्यालयस्य महाकक्षे भविष्यति। सर्वेषामपि विद्यार्थिनामुपाध्यायानां चोपस्थितिः सादरं सविनयं प्रार्थ्यते।

दिनाङ्कः-२३-२-१९६५ ई०

निवेदिका-

(कु०) माया त्रिपाठी (मन्त्रिणी)

(८) प्रस्तावः, अनुमोदनम्, समर्थनं च

(१) (क) आदरणीयाः सभासदः, प्रिया विद्यार्थिबान्धवाश्च !

सौभाग्यमेतदस्माकं यदद्य······ (कर्णपुरस्थ-डी० ए० वी० कॉलेज-संस्थायाः संस्कृतविभागस्याध्यक्षवर्याः श्रीमन्तो डॉ० हरिदत्तशास्त्रिणः, नवतीर्थाः, व्याकरणवेदान्ताचार्याः, एम०ए०, पी-एच०डी० आदि-विविधोपाधिविभूषिताः) अत्र समायाताः सन्ति। अतः प्रस्तौमि यत् श्रीमन्तो मान्या विद्वद्वरेण्या आचार्यवर्या अद्यतन्याः सभाया अस्याः सभापतित्वं स्वीकृत्यास्मान् अनुग्रहीष्यन्तीति। आशासे एतेषां सभापतित्वे सदसोऽस्य सर्वमपि कार्यकलापं सुचारुतया सम्पत्स्यते इति। आशासे अन्येऽपि सभासदः प्रस्तावस्यास्यानुमोदनं समर्थनं च करिष्यन्ति।

(२) (क) मान्या सभासदः !

अहमेतस्याः सभाया मन्त्रिपदार्थं (सभापतिपदार्थम्, उपसभापतिपदार्थम्, कोषाध्यक्षपदार्थम्) श्रीमतः······नाम प्रस्तवीमि।

(ख) अहं प्रस्तावस्यास्य हृदयेनानुमोदनं करोमि।

(ग) अहं प्रस्तावस्यास्य हार्दिकं समर्थनं करोमि।

(९) पुरस्कार-वितरणम्

श्रीयुताय·········(रामचन्द्रशर्मणे), (एम०ए०) कक्षायाः (द्वितीय) ······वर्षस्थाय······ (व्याख्यान-प्रतियोगितायां सर्वप्रथमस्थानप्राप्त्यर्थं) निमित्तं·········(प्रथमं) पारितोषिकमिदं सहर्षं प्रदीयते।

···················	···················	·························
मन्त्री	दिनाङ्कः	सभासंचालकः (सभाध्यक्षः, प्रधानः)

(१०) जयन्ती-समारोहः

एतत् संसूचयन्त्या मया भूयान् प्रहर्षोऽनुभूयते यदागामिनि शुक्रवासरे गुरुपूर्णिमादिवसे (आषाढ-पूर्णिमा वि० २०१७) दिनाङ्के ८-७-१९६० ईसवीये महाविद्यालयस्य महाकक्षे सायंकाले चतुर्वादने व्यास-जयन्ती समारोहः संयोजयिष्यते। समेषामपि संस्कृतज्ञानां संस्कृतप्रेमिणां च समुपस्थितिः प्रार्थ्यते। आशासे यत् सर्वैरपि यथासमयं समागत्य महाकवये श्रीमते व्यासाय श्रद्धाञ्जलिं समर्प्य, तद्गुणग्रामं समाकर्ण्य, तद्विरचितानि हृद्यानि पद्यानि निशम्य, गूढभावावलिविभूषितां तदीयामाध्यात्मिकविद्यां च श्रावं श्रावं स्वान्तःसुखमनुभविष्यते इति।

दिनाङ्कः ६-७-१९६० ई० कु० रश्मि-कोचरः

सभा-संयोजिका

(११) दर्शनार्थं समय-याचना

श्रीमन्तो मुख्यमन्त्रिमहोदयाः डॉ० सम्पूर्णानन्दमहाभागाः.

उत्तर प्रदेशः, लक्ष्मणपुरम् (लखनऊ)

श्रीमन्तः परमसंमाननीयाः,

अहं कालिदास-जयन्ती-समारोहविषयमाश्रित्यात्रभवद्भिः सह किञ्चिदालपितुकामोऽस्मि। आशासे भवन्तो दशकलामात्रसमयप्रदानेन मामनुग्रहीष्यन्ति। भवन्निर्दिष्टसमये भवतां सविधे समागत्य भवद्दर्शनेन भवत्परामर्शेन चात्मानं कृतकृत्यं मंस्ये।

दिनाङ्कः ६-७-१९६० ई० भवद्दर्शनाभिलाषी

प्रेमनाथः

(१२) व्याख्यानम्

श्रीमन्तः परमसंमाननीयाः परिषत्पतयः! आदरणीयाः सभासदश्च!

अद्याहं भवतां समक्षे........(विद्या, अहिंसा, देश-सेवा, समाज-सुधार-) विषयमङ्गीकृत्य किंचिद् वक्तुकामोऽस्मि। संस्कृतभाषाभाषणस्यानभ्यासवशाद् न संभाव्यते साधीयस्या भावाभिव्यक्त्या भाषितुम्। पदे पदे स्खलनमपि च संभाव्यते। 'गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः। हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः'। अतः प्रमादप्रभूतास्त्रुटयो मे भवद्भिः क्षन्तव्याः परिमार्जनीयाश्च।........(तदनन्तरं व्याख्यानस्य प्रारम्भः)।

(१०) निबन्ध-माला

आवश्यक निर्देश

(१) किसी विषय पर अपने विचारों और भावों को सुन्दर, सुगठित, सुबोध एवं क्रमबद्ध भाषा में लिखने को निबन्ध कहते हैं। निबन्ध के लिए दो बातों की आवश्यकता होती है :— १. निबन्ध की सामग्री। २. निबन्ध की शैली।

निबन्ध की सामग्री एकत्र करने के ३ साधन हैं—१. निरीक्षण अर्थात् प्रकृति को स्वयं देखना और ज्ञान एकत्र करना। २. अध्ययन अर्थात् पुस्तकों आदि से उस विषय का ज्ञान प्राप्त करना। ३. मनन अर्थात् स्वयं उस विषय पर विचार या चिन्तन करना।

(२) निबन्ध-लेखन में इन बातों का सदा ध्यान रखें—(क) प्रस्तावना या आरम्भ—प्रारम्भ में विषय का निर्देश, उसका लक्षण आदि रखें। (ख) विवेचन—बीच में विषय का विस्तृत विवेचन करें। उस वस्तु के लाभ, हानि, गुण, अवगुण, उपयोगिता, अनुपयोगिता आदि का विस्तृत विचार करें। अपने कथन की पुष्टि में सूक्ति, पद्य या श्लोक उद्धरणरूप में दे सकते हैं। (ग) उपसंहार—अन्त में अपने कथन का सारांश संक्षेप में। प्रस्तावना और उपसंहार एक या दो सन्दर्भ (पैराग्राफ) में ही हों। अधिक स्थान विवेचन में दें।

(३) निबन्ध की शैली के विषय में इन बातों का ध्यान रखें :—१. भाषा व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध हो। २. भाषा प्रारम्भ से अन्त तक एक-सी हो। ३. भाषा में प्रवाह हो। स्वाभाविकता हो। ४. उपयुक्त और असंदिग्ध शब्दों का प्रयोग करें। ५. भाषा सरल, सुबोध और आकर्षक हो। ६. लोकोक्ति और अलंकारों को भी स्थान दें। ७. अनावश्यक विस्तार, पुनरुक्ति, अधिक पाण्डित्य-प्रदर्शन तथा क्लिष्टता का त्याग करें।

(४) निबन्ध के मुख्यतया तीन भेद हैं :—

(क) वर्णनात्मक निबन्ध—इसमें पशु, पक्षी, नदी, ग्राम, नगर, पर्वत, समुद्र, ऋतु-वर्णन, यात्रा, पर्व, रेल, तार, विमान आदि का स्पष्ट एवं विस्तृत वर्णन होता है।

(ख) विवरणात्मक निबन्ध—इनमें घटित घटनाओं, युद्धों, प्राचीन कथाओं, ऐतिहासिक वर्णनों, जीवन-चरितों आदि का संग्रह होता है।

(ग) विचारात्मक निबन्ध—इनमें आध्यात्मिक, मनोविज्ञान-सम्बन्धी, सामाजिक, राजनीतिक तथा अमूर्त विषयों चिन्ता, क्रोध, अहिंसा, सत्य, परोपकार आदि का संग्रह होता है। इन निबन्धों में इन विषयों के गुण, दोष, लाभ, हानि आदि का विचार होता है।

उदाहरण के लिए २० निबन्ध अतिप्रसिद्ध विषयों पर प्रौढ संस्कृत में दिए गए हैं।

१. वेदानां महत्त्वम्

वेदशब्दार्थः—'विद ज्ञाने' इति ज्ञानार्थकाद् विद्धातोर्घञि प्रत्यये कृते वेद इति रूपं निष्पद्यते। एवं वेदशब्दो ज्ञानार्थकः। ज्ञानराशिर्वेद इति वक्तुं शक्यते। विद सत्तायाम्, विद विचारणे, विद्लृ लाभे, विद चेतनाख्याननिवासेषु इति धातुभ्योऽपि घञि वेदरूपं निष्पद्यते। वेदा ज्ञानराशित्वात् शाश्वतस्थायिनः, ज्ञाननिधयः, मानवहितप्रापकाः, मनुज-कर्तव्य-बोधका इति विविधधात्वर्थग्रहणाद् ज्ञायते।

वेदानां वैशिष्ट्यम्—वेदार्थानुशीलनाद् ज्ञायते यद् वेदा हि विविधज्ञानविज्ञान-राशयः, संस्कृतेराधाररूपाः, कर्तव्याकर्तव्यावबोधकाः, शुभाशुभनिदर्शकाः, जीवनस्योन्नायकाः, विश्वहितसंपादकाः, आचार-संचारकाः, सुखशान्तिसाधकाः, ज्ञानालोकप्रसारकाः, सत्यतायाः सरणयः, कलाकलापप्रेरकाः, आशाया आश्रयाः, नैराश्य-विनाशकाः, चतुर्वर्गावाप्तिसोपान-स्वरूपाश्च सन्ति।

वेदानां महत्त्वविचारचिन्तायां कतिपयेऽनुयोगाः पुरतोऽवतिष्ठन्ते। कति वेदाः? किं वेदानां महत्त्वम्? किं वेदानां वेदत्वम्? किं तत्र विशिष्टं ज्ञानम्? किं तेषां व्यावहारिकी उपयोगिता? किं वेदाध्ययनस्य जीवने उपयोगित्वम्? किं च समस्याबहुले जगति समस्या-निराकरणत्वं वेदानाम्? किं च वेदानां धार्मिकं राजनीतिकम् आर्थिकं भाषा-वैज्ञानिकम् ऐतिहासिकं काव्यशास्त्रीयं शास्त्रीयं सामाजिकं सांस्कृतिकं च महत्त्वम्? इत्येवात्र समासतो विव्रियते प्रस्तूयते च।

वैदिकं साहित्यम्—मुख्यत्वेन वेदशब्दः ऋग्यजुःसामाथर्वनामभिः प्रचलितानां चतसृणां वेदसंहितानां बोधकः। एतेषामेव चतुर्णां वेदानां व्याख्यानभूता ब्राह्मणग्रन्थाः सन्ति, येषु वैदिककर्मकाण्डस्य विशदं वर्णनमस्ति। एतेषु वेदानाम् आध्यात्मिकी व्याख्याऽपि प्रस्तूयते। एतेषां परिशिष्टरूपेण आरण्यकग्रन्थाः सन्ति। एषु अध्यात्मविद्याया विवेचनं प्राप्यते। उपनिषत्सु च तस्या एवाध्यात्मविद्यायाश्चरमोत्कर्षः संलक्ष्यते। वैदिकसाहित्यशब्देन समग्रोऽपि मन्त्र-ब्राह्मण-आरण्यक-उपनिषत्-संग्रहरूपो निधिर्गृह्यते। अतएव 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' (आप० श्रौत० ३१) इति निर्दिश्यते।

वेदानां धार्मिकं महत्त्वम्—वेदा मन्वादिभिः ऋषिभिः परमप्रमाणत्वेनोपन्यस्ताः। 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' (मनुस्मृति २.६) इति समुद्घोषयता मनुना समग्रस्यापि वेदनिधेर्धर्माधाररूपेण प्रतिष्ठा विहिता। मानवस्याखिलं कृत्यजातं कर्तव्याकर्तव्यं च वेदेषु विशदतया निरूप्यते। अतएव वेदा आचारसंहिता-रूपेण प्रमाणीक्रियन्ते।

यः कश्चित् कस्यचिद् धर्मो मनुना परिकीर्तितः ।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः ॥ (मनु० २.७)

सर्वेऽपि विद्वत्तल्लजा भारतीया दार्शनिकाः, आचारशिक्षणप्रवणाः स्मृतिकाराः, शब्दतत्त्वमीमांसादक्षा वैयाकरणाः, अन्ये च शास्त्रकारा वेदानां परमप्रामाण्यं प्रतिपदम् उद्घोषयन्ति। अतएव महर्षिणा पतञ्जलिना कर्तव्यत्वेन समादिश्यते यत्–

ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्ययो ज्ञेयश्च।
(महाभाष्य, आह्निक १)

स्मृतिकारैर्न एतावतैव विरम्यते, अपितु निर्दिश्यते यद् ब्राह्मणेन एकनिष्ठया वेदाध्ययनं संपाद्यम्। एतद् ब्राह्मणस्य परमं तपः। यश्च वेदाध्ययनम् अवमत्य शास्त्रान्तरे कृतमतिः, स जीवन्नेव सपरिवारः शूद्रत्वम् उपयाति।

वेदमेव सदाऽभ्यस्येत् तपस्तप्यन् द्विजोत्तमः ।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ॥ (मनु० २.१६६)
योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥ (मनु० २.१६८)

वेदानां सांस्कृतिकं महत्त्वम्—भारतीयायाः संस्कृतेर्मूलस्रोतोऽनुसंधीयते चेत् तर्हि वेदा एव तन्मूलस्रोतस्त्वेनोपतिष्ठन्ति। वेदेष्वेव प्रत्नतमा भारतीया संस्कृतिर्वर्णिताऽस्ति। भारतीयायाः संस्कृतेर्मूलरूपं वेदेष्वेवोपलभ्यते। वेदेष्वेव प्राक्तनभारतीयानां जीवनदर्शनं, कार्यकलापः, आचार-विचाराः, नैतिकं सामाजिकं च चरितं प्राप्यते। मानवानां विविधकर्तव्यादिनिर्धारणं तत्रैवोपलभ्यते। उक्तं च मनुना—

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥ मनु० १.२१

लोकमान्य-तिलकमहाभागास्तु वेदेषु प्रामाण्यबुद्धिमेव आर्यत्वस्य लक्षणं व्यादिशन्ति— 'प्रामाण्यवुद्धिर्वेदेषु', वेदेष्वेवार्याणां संस्कृतेर्विशुद्धं रूपं विस्तरशः प्राप्यते। आर्याणां यज्ञेषु दृढविश्वासः, एकेश्वरवादेन सहैव बहुदेवतावादस्यापि स्वीकरणम्, अनासक्तभावनया कर्मविधिः, ईश्वरस्य सर्वव्यापकत्वम्, ज्ञानकर्मणोः समन्वयः, भौतिकवादं प्रत्यनास्था, पुनर्जन्मनि विश्वासः, मोक्षस्य जीवनोद्देश्यत्वं चेत्यादितथ्यानि वेदेष्वेव प्राप्यन्ते।

विश्वसंस्कृतेरैतिह्यं गवेषितं चेत् तर्हि वेदा एव सर्वप्रमुखत्वेन दृष्टिपथम् अवतरन्ति। अस्मिन् संसारे संस्कृतेः सभ्यतायाश्च कथमिव विकासोऽभूदित्यर्थं वेदानुशीलनम् अनिवार्यम् आपद्यते। तत एव क्रमिकविकासस्य प्रक्रिया प्राप्यते। अतएव यजुर्वेदे प्राप्यते—'सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा' (यजु० ७.१४), वैदिकी संस्कृतिः प्रथमा संस्कृतिरासीत्।

शास्त्रीयं महत्त्वम्—वेदानां शास्त्रीयं महत्त्वं सर्वतोमुख्यं वर्तते। 'सर्वज्ञानमयो हि सः' इति वदता मनुना वेदानां सर्वविधज्ञाननिधानत्वम् उरीकृतम्। यति विचारदृशा समीक्ष्यते तर्हि वेदेषु बीजरूपेण दार्शनिकाः सिद्धान्ताः, राजनीतिः, समाजशास्त्रम्, अध्यात्मम्, मनोविज्ञानम्, आयुर्वेदः, गणितम्, अर्थशास्त्रम्, नाट्यशास्त्रम्, काव्यशास्त्रम्, कामशास्त्रम्, अन्याश्च विविधाः कलास्तत्र तत्र वर्ण्यन्ते। वैदिकं दर्शनम् अध्यात्मतत्त्वं चोपादाय उपनिषदो विविधानि दर्शनानि च प्रवृत्तानि। तथ्यमेतद् निदर्शनरूपेण नाट्यशास्त्रकृतो भरतमुनेर्विवेचनेन विशदीभवति।

जग्राह पाठ्यम् ऋग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च ।
यजुर्वेदादभिनयान्   रसानाथर्वणादपि ॥   नाट्यशास्त्र १.१७

नैतिकं महत्त्वम्—वेदानाम् आचारशिक्षा-दृष्ट्या, नैतिक-दर्शनरूपेण चातीव महत्त्वं वर्तते। कर्तव्योद्बोधनरूपेण तेषां परमं प्रामाण्यं वर्तते। किं कर्म, किम् अकर्मेति चिन्तायां वेदा एवादर्शरूपेण प्रस्तूयन्ते। अतएव मनुनोच्यते—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम् ॥   मनु० २.१२
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मम् अनुतिष्ठन् हि मानवः ।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥   मनु० २.९

धर्मचिन्तायां कर्तव्यविचारणे च वेदाः परमप्रमाणभूताः सन्ति।

धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ।
मनु० २.१३

सामाजिकं महत्त्वम्—समाजशास्त्रीयदृष्ट्याऽपि वेदा अत्यन्तं महत्त्वपूर्णाः सन्ति। समाजस्य विकासस्य, सभ्यतायाः समुन्नतेः, वर्णानां विविधवृत्तिपराणां नराणां च कर्मकलापस्य सामाजिक्या व्यवस्थायाश्च महत्त्वपूर्णम् इतिवृत्तं वेदेषूपलभ्यते। प्राक्तनस्य समाजस्य किं स्वरूपमासीदित्यपि तत एवाप्तुं पार्यते।

आर्थिकं महत्त्वम्—अर्थशास्त्रदृष्ट्याऽपि वेदानां महत्त्वम् अस्ति। वेदेषु प्रत्नाया अर्थव्यवस्थायाः स्वरूपं स्फुटं समवाप्यते। आदान-प्रदानस्य, क्रय-विक्रयस्य, व्यापारस्य वाणिज्यस्य च, गवादिपशूनाम्, कृषि-धान्यादीनां च का व्यवस्थाऽवस्था चासीदित्यपि तत्र प्राप्तुं शक्यते। आदान-प्रदानस्य महत्त्वं यजुर्वेदे वर्ण्यते :—

देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे ।
निहारं च हरासि मे निहारं निहराणि ते ॥   यजु० ३.५०

राजनीतिक महत्त्वम्—राजनीतिशास्त्रदृष्ट्यापि वेदानां महत्वं नावमूल्ययितुं शक्यते। वेदेषु राज्ञः प्रजायाश्च कर्माणि, राजतन्त्रस्य विविधं स्वरूपम्, राज्ञो वरणम्, सभायाः समितेश्च संस्थापना, मन्त्रिपरिषदो मनोनयनम्, राजतन्त्रीया प्रजातन्त्रीया च शासनव्यवस्था, शत्रु-संहारः, सामदण्डादिविधीनां प्रयोगः समुपलभ्यन्ते। वेदेषु राज्ञो निर्वाचनस्य प्रजातन्त्रीयाया राज्य-व्यवस्थायाश्चापि समुल्लेखो विविधेषु स्थलेषु उपलभ्यते। तद्यथा—

विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु० (अथर्व० ६.८७.१)
त्वां विशो वृणतां राज्याय॥ (अथर्व० ३.४.२)
महते जानराज्याय०। (यजु० ९.४०)

भाषावैज्ञानिकं महत्त्वम्—तुलनात्मकभाषाविज्ञानस्याध्ययनाय वेदानाम् अतीव महत्त्वं विद्यते। वेदा विश्वस्य प्राचीनतमाः समुपलब्धाः ग्रन्थाः। तत्रापि ऋग्वेदस्य प्राचीनतमत्वेन भाषायाः प्राचीनतमं रूपं प्राप्यते। पारसीकधर्मग्रन्थ-जेन्दावेस्ता-(छन्दोऽवस्था)-ग्रन्थेन सह तुलनायाम् अवेस्ता-भाषया सह वैदिकभाषाया घनिष्ठः संबन्धो दृश्यते। ऋग्वेदीया मन्त्रा अवेस्ताभाषायाम् अवेस्ता-मन्त्राश्च वैदिकमन्त्रेषु च परिवर्तयितुं शक्यन्ते। तुलनात्मक-भाषाविज्ञानस्य दृष्ट्या विशेषतो वेदानाम् अध्ययनं पाश्चात्यदेशेषु प्रवृत्तम्। वैदिक-संस्कृतभाषाया लौकिक-संस्कृतस्य, ततश्च भाषाणाम् अन्यासां जनिक्रमस्यावबोधाय वेदानाम् अध्ययनम् अनिवार्यम्।

ऐतिहासिकं महत्त्वम्—वेदेषु कतिपये ऐतिह्यावबोधकाः सन्दर्भा अपि तत्र तत्रोपलभ्यन्ते। तानाश्रित्य संदर्भान् विद्वद्भिः प्राचीनतमम् ऐतिह्यं प्रस्तूयते। तत्र गङ्गादीनां नदीनाम् (ऋग्० १०.७५.५), दाशराज्ञयुद्धस्य (ऋग्० ६.८३.७), पञ्च जनानाम् (ऋग्० ३.३७.९), विविधानां वर्णानां वृत्तीनां च (यजु० ३०.५-२२) उल्लेखः प्राप्यते।

काव्यशास्त्रीयं साहित्यिकं च महत्त्वम्—काव्यशास्त्रीयदृष्ट्याऽपि वेदानां महत्त्वं प्रशस्यम्। तत्र अनुप्रास—यमक-रूपकादीनाम् अलंकाराणां प्रयोगोऽनेकत्र प्राप्यते। उषःसूक्ते उषसो वर्णने कवित्वस्य स्फुटं दर्शनं जायते। सुन्दरी युवतिः स्ववस्त्राणीव उषाः स्वीयं सौन्दर्यं विस्तारयति। सकलेऽपि भुवने तस्याः सौन्दर्यम् आह्लादकारि व्याप्नोति।

अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी।
स्वर्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्ताद् दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः।
(ऋग्० ३.६१.४)

एवं वेदाध्ययनं जीवनं पावयति, चिन्ताकुलं जगत् चिन्तायास्त्रायते, लोकानां विविधाः समस्या निवारयति, जीवनम् उन्नमयति, सद्भावांश्च प्रेरयति, इति सर्वथा वेदानां महत्त्वं सिध्यति।

वेदानां महत्त्वम् अङ्गीकृत्यैव भारतीयैः पाश्चात्यैश्च विपश्चिद्भिः वेदाध्ययने स्वजीवनं यापितम्। तद् यथा—सायणाचार्य-वेंकटमाधव-महर्षिदयानन्द-मधुसूदन ओझा-मोतीलाल शर्मा-वासुदेवशरण अग्रवाल-मैक्समूलर-रुडोल्फ रोठ-विल्सन-ग्रिफिथ-मैकडानल-प्रभृतयो विद्वत्तल्लजाः।

२. वेदाङ्गानि, तेषां वेदार्थबोधोपयोगिता:

वेदार्थावबोधाय तत्स्वराद्यवगमाय तद्विनियोगज्ञानाय चासीद् महत्यावश्यकता केषाञ्चित् सहायकग्रन्थानाम्। एतदभावपूर्तये एव जनिरभवद् वेदाङ्गानाम्। षडिमानि वेदाङ्गानि। १. शिक्षा, २. व्याकरणम्. ३. छन्दः, ४. निरुक्तम्, ५. ज्योतिषम्, ६. कल्पः। तथा चोच्यते—'शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दसां चयः। ज्योतिषामयनं चैव वेदाङ्गानि षडेव तु'। षडिमान्यङ्गानि वेदार्थबोधादिविधौ उपकुर्वन्तीति निरूप्यतेऽत्र। षण्णामेतेषां महत्त्वं निरीक्ष्यैव प्रतिपाद्यते पाणिनीयशिक्षायाम् :— "छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते। ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।। शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्। तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते"॥ (श्लो० ४१-४२)

वेदाङ्गानामेतेषां विवरणं तेषां वेदार्थबोधोपयोगिता च समासतोऽत्र प्रस्तूयते।

(१) **शिक्षा**—शिक्षाग्रन्था वर्णोच्चारणविधिं विशेषतो वर्णयन्ति। कथं वर्णा उच्चारणीयाः, किं तेषां स्थानम्, कश्च तत्र यत्नः, कण्ठताल्वादीनामुच्चारणे किं महत्त्वम्, कति वर्णाः, कथं कायमारुतो वर्णत्वेन विपरिणमते, कति स्थानानि, कति स्वराः, कथं च ते प्रयोज्या इत्यादयो विषयाः शिक्षाग्रन्थेषु विविच्यन्ते। वर्णोच्चारणादिविधिज्ञानमन्तरेण न शक्यो वेदानां विशुद्धः पाठोऽर्थावगमश्चेति शिक्षाग्रन्थानां विशिष्टं महत्त्वम्। साम्प्रतं केचन शिक्षाग्रन्था उपलभ्यन्ते। तेषां सम्बन्धश्च केनचिद् विशिष्टेन वेदेन वर्तते। तद्यथा— ऋग्वेदादेः पाणिनीयशिक्षा, शुक्लयजुर्वेदस्य याज्ञवल्क्यशिक्षा, कृष्णयजुर्वेदस्य व्यासशिक्षा, सामवेदस्य नारदीयशिक्षा, अथर्ववेदस्य माण्डूकीशिक्षा। अन्येऽपि केचन शिक्षाग्रन्थाः सन्ति। यथा—भरद्वाजशिक्षा, वसिष्ठशिक्षादयः। (२) **व्याकरणम्**—व्याकरणे प्रकृतिप्रत्ययस्य विचारः, उदात्तादिस्वरविचारः, उदात्तादिस्वरसंचारनियमाः, सन्धि-नियमाः, शब्दरूपधातु-रूपादिनिर्माणनियमाः, प्रकृतेः प्रत्ययस्य च स्वरूपावधारणं तदर्थनिर्धारणं चेति विविधा विषया विविच्यन्ते। वेदेषु प्रकृति-प्रत्ययविचारस्य स्वरस्य च महन्महत्त्वमिति तत्र व्याकरणमेव साहाय्यमनुतिष्ठतीति षडङ्गेषु व्याकरणमेव प्रधानम्। संस्कृतव्याकरणं प्रातिशाख्यमूलकमेव। वेदानां प्रतिशाखामाश्रित्य व्याकरणग्रन्था आसन्, ते च प्रातिशाख्यग्रन्था इति पप्रथिरे। केचन एव प्रातिशाख्यग्रन्थाः साम्प्रतमुपलभ्यन्ते। ते कमप्येकं वेदमाश्रित्य वर्तन्ते। तद्यथा—ऋग्वेदस्य शाकलशाखायाः शौनकप्रणीतम् ऋक्प्रातिशाख्यम्। एतदेव पार्षदसूत्रमित्यप्यभिधीयते। शुक्लयजुर्वेदस्य माध्यन्दिनशाखायाः कात्यायनविरचितं शुक्लयजुःप्रातिशाख्यम्। कृष्णयजुर्वेदस्य तैत्तिरीयशाखायाः तैत्तिरीयप्रातिशाख्यम्। सामवेदस्य सामप्रातिशाख्यं (पुष्पसूत्रं वा), पञ्चविधसूत्रं च। अथर्ववेदस्य अथर्वप्रातिशाख्यं (चातुरध्यायिकं वा)। संस्कृतव्याकरणावबोधाय च पाणिनेरष्टाध्यायी सर्वप्रमुखा। अन्ये

प्राचीना व्याकरणग्रन्था लुप्तप्राया एव। (३) छन्दः—वेदेषु मन्त्राः प्रायशश्छन्दोबद्धा एव। अतो वृत्तज्ञानाय छन्दःशास्त्रमनिवार्यम्। छन्दःशास्त्रविषयको मुख्यो ग्रन्थः पिंगलप्रणीतं छन्दःसूत्रमेवोपलभ्यते। प्रातिशाख्यग्रन्थेष्वपि वृत्तविचारः प्राप्यते। (४) निरुक्तम्—निरुक्ते क्लिष्टवैदिकशब्दानां निर्वचनं प्राप्यते। विषयेऽस्मिन् यास्कप्रणीतं निरुक्तमेव प्रमुखो ग्रन्थः। अत्र मन्त्राणां निर्वचनमूलाया व्याख्यायाः प्रथमः प्रयासः समासाद्यते। वैदिकशब्दानां संग्रहात्मको ग्रन्थो निघण्टुरिति कथ्यते। तस्यैव व्याख्यानभूतं निरुक्तमेतत्। यास्को निरुक्ते स्वपूर्ववर्तिनः सप्तदश निरुक्तकारान् परिगणयति। निरुक्ते काण्डत्रयं नैघण्टुककाण्डं नैगमकाण्डं दैवतकाण्डं चेति। (५) ज्योतिषम्—शुभं मुहूर्तमाश्रित्यैव विशिष्टोऽध्वरः प्रावर्ततेति शुभमुहूर्ताकलनाय ज्योतिषस्योदयोऽभूत्। अत्र सूर्यचन्द्रमसोर्ग्रहाणां नक्षत्राणां च गतिर्निरीक्ष्यते परीक्ष्यते विविच्यते च। सौरमासश्चान्द्रमासश्चोभयं परिगण्यतेऽत्र। मखमुहूर्त-निर्धारणे चान्द्रमासस्य प्रधानत्वं परिलक्ष्यते। विषयेऽस्मिन् आचार्यलगधप्रणीतं 'वेदाङ्गज्योतिषम्' इति ग्रन्थ एव साम्प्रतमुपलभ्यते। (६) कल्पः—कल्पसूत्रेषु विविधाध्वराणां संस्कारादीनां च वर्णनं प्राप्यते। मन्त्राणां विविधकर्मसु विनियोगश्च तत्र प्रतिपाद्यते। कल्पसूत्राणि चतुर्धा विभज्यन्ते— (क) श्रौतसूत्रम्, (ख) गृह्यसूत्रम्, (ग) धर्मसूत्रम्, (घ)शुल्बसूत्रं च। (क) श्रौतसूत्रम्—श्रौतसूत्रेषु श्रुतिप्रतिपादितानां सप्त हविर्यज्ञानां सप्त सोमयज्ञानामेवं चतुर्दशयज्ञानां विधानं विधिर्विनियोगादिकं च प्रतिपाद्यते। तत्र प्रमुखाणि श्रौतसूत्राणि सन्ति—आश्वलायनश्रौतसूत्रम्, शांखायनश्रौतसूत्रम्, बौधायन०, आपस्तम्ब०, कात्यायन०, मानव०, हिरण्यकेशी०, लाट्यायन०, द्राह्यायण०, वैतानश्रौतसूत्रं च। श्रौतसूत्राणीमानि कमप्येकं वेदमाश्रित्य वर्तन्ते। (ख) गृह्यसूत्रम्—गृह्यसूत्रेषु षोडशसंस्काराणां पञ्चमहायज्ञानां सप्तपाकयज्ञानामन्येषां च गृह्यकर्मणां सविशेषं वर्णनमाप्यते। गृह्यसूत्राण्यपि कमप्येकं वेदमाश्रित्य वर्तन्ते। तत्र प्रमुखाणि सन्ति—आश्वलायनगृह्यसूत्रम्, पारस्कर०, शांखायन०, बौधायन० आपस्तम्ब०, मानव०, हिरण्यकेशी, भारद्वाज०, वाराह०, काठक०, लौगाक्षि०, गोभिल०, द्राह्यायण०, जैमिनीय०, खदिरगृह्यसूत्रं च। (ग) धर्मसूत्रम्—धर्मसूत्रेषु मानवानां कर्तव्यं नीतिर्धर्मो रीतयश्चतुर्वर्णाश्रमाणां कर्तव्यादिकमन्यच्च सामाजिक-नियमादिकं वर्ण्यते। तत्र प्रमुखा ग्रन्थाः सन्ति—बौधायनधर्मसूत्रम्, आपस्तम्ब०, हिरण्यकेशी०, वसिष्ठ०, मानव०, गौतमधर्मसूत्रं च। (घ) शुल्बसूत्रम्—शुल्बसूत्रेषु यज्ञवेद्या मानादिकं वेदीनिर्माणविध्यादिकं च वर्ण्यते। तत्र मुख्या ग्रन्थाः सन्ति—बौधायनशुल्बसूत्रम्, आपस्तम्ब०, कात्यायन०, मानवशुल्बसूत्रं च। एवं षडिमानि वेदाङ्गानि वेदार्थबोधे तत्क्रियाकलापवर्णने चोपयुक्तानि सन्ति।

३. सर्वोपनिषदो गावो, दोग्धा गोपालनन्दनः। पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता, दुग्धं गीतामृतं महत्॥

कस्य न विदितं विपश्चितो भगवद्गीताया गुणगौरवम्। गीतेयं न केवलं प्रस्तवीति सर्वासामप्युपनिषदां सारभागम्, अपि तु श्रुतिसारमपि प्रस्तौतितराम्। सांख्ययोगदर्शनयोः सिद्धान्तानां वैशद्येन विवेचनात् प्रतिपादनाच्च दर्शनसारसंग्रहोऽप्यत्रोपलभ्यते। वेदान्तदर्शन-प्रतिपादितस्य तत्त्वमसीति महावाक्यस्याप्यत्रोपलम्भाद् वेदान्तावगाहित्वमप्यस्य लक्ष्यते। सेयं सरलया भावाभिव्यक्तिप्रक्रियया, भूयिष्ठयाऽर्थगभीरतया, प्रेष्ठया पद्धत्या, श्रेष्ठया विवृतिसरण्या, साधिष्ठया योगसाधनादीक्षया, वरिष्ठयाऽऽत्मविशुद्धिशिक्षया सर्वस्यापि लोकस्यादृतिमनुभवति। एतदेवात्र समासत उपस्थाप्यते विव्रियते च।

गीतायां ये भावाः सिद्धान्ताश्च प्रतिपाद्यन्ते, ते क्वचित् समासतः क्वचिच्च विस्तरश उपनिषत्सु वेदेषु च समुपलभ्यन्ते। गीतायां विषय-क्रमेण, हृद्येन भावाभिव्यञ्जनप्रकारेण, साधिष्ठया विवृत्या च ते भावाः समासाद्यन्त इति प्रमुखं गीताया महत्त्वम्। गीतेयं प्रसादगुणसंयोगात्, अल्पीयोभिः शब्दैर्भूयिष्ठस्यार्थावबोधस्य संकलनात् तथा प्रीणयति चेतः सचेतसां यथा न ग्रन्थान्तरम्। (१) निष्कामकर्मयोगस्य वर्णनं महत्या विवृत्या समुपलभ्यते गीतायाम्। तद्यथा—कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥ (गीता, २.४७)। विहायासक्तिं फलप्रेप्सामनास्थाय कर्मणि प्रवर्तितव्यम्। निष्कामकर्मकरणेन चेतः प्रसीदति, धीर्विकसति, मानसमानन्दमनुभवति, न कर्माणि बध्नन्ति मानवम्, न विषया विमोहयन्ति मानसम्, न पतति जीवः स्वलक्ष्यात्, न च मोहो मनो मोहयति। निष्कामकर्मयोगप्रतिपादकाः केचन श्लोका अत्र दिङ्मात्रं निर्दिश्यन्ते। योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय (२.४८), कर्मयोगेन योगिनाम् (३.३), न कर्मणामनारम्भात् नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते (३.४), कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वैः प्रकृतिजैर्गुणैः (३.५), यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन। कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते॥ (३.७), नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः। (३.८), तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर। (३.१९), कर्मणैव हि संसिद्धिम् आस्थिता जनकादयः। (३.२०), सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत। कुर्याद् विद्वांस्तथाऽसक्तश्चिकीषुर्लोकसंग्रहम्॥ (३.२५), कुरु कर्मैव तस्मात् त्वं० (४.१५), कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं० (४.१७), कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः। (४.१८), त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं .... कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित् करोति सः। (४-२०), कर्मयोगो विशिष्यते (५.२)। निष्कामकर्मयोगस्य वर्णनं मूलरूपेण यजुर्वेदे चत्वारिंशत्तमेऽध्याये ईशोपनिषदि च समासाद्यते। तद्यथा—कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे (यजु० ४०.२, ईश० २)। जगत्यस्मिन् जीवः कर्म कुर्वन्नेव जीवितुमभिलष्येत्। एवं मानवस्य लक्ष्यनाशो न भवति, न च स कर्मभिर्बध्यते। (२) गीतायां यज्ञस्य महत्त्वं तस्यावश्यककर्तव्यता च निरूप्यते। तद्यथा—सहयज्ञाः प्रजाः० (३.१०), देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः। (३.११), इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।

(३.१२), यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः। (३.१३), अन्नाद् भवन्ति भूतानि ...... यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः। (३.१४,१५), एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः। ...... मोघं पार्थ स जीवति। (३.१६), दैवमेवापरे यज्ञं० (४.२५-२७), द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे। स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च० (४.२८), यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्। (४.३१-३३)। यतिनाऽपि नोज्झितव्यो यागः। यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्० (१८.५)। यज्ञस्य महत्त्वं तदुपयोगिता तत्फलादिकं च शतशो मन्त्रेषु यजुर्वेदे वर्ण्यते। तद् दिङ्मात्रमिह निर्दिश्यते—श्रेष्ठतमाय कर्मणे० (यजु० १.१), यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म (शत० ब्रा० १.७.१.५), पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम् (यजु० २.६), समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्०। (यजु० ३.१-५), देवान् दिवमगमन् यज्ञः० (यजु० ८.६०), आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पताम्०। (यजु० ९.२१), भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः०। (यजु० १५.३८-३९), उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि० (यजु० १५.५४-५५), अशीतिर्होमाः समिधो ह तिस्रः। ...... सप्त होतार ऋतुशो यजन्ति। (यजु० २३.५८), अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः (यजु० २३.६२), तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्०। (३१.६-९), वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः। (३१.१४), यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवांस्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। (३१.१६)। यज्ञमहत्त्वप्रतिपादका अन्ये मन्त्राः सन्ति। तद्यथा—ऊर्ध्वमिममध्वरं० (यजु० ६.२५), य इमं यज्ञं स्वधया ददन्ते (यजु० ८.६१), प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय (यजु० ९.१), सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः (यजु० १२.४४)। (३) कर्मकाण्डस्य ब्रह्मज्ञानापेक्षया गौणत्वं प्रतिपाद्यते गीतायाम्। यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः। ...... कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्। (२.४२-४३)। विषयोऽयं विस्तरशो वर्ण्यते मुण्डकोपनिषदि। तद्यथा—प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपाः ...... एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति। इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः। (मुण्डक० १.२.७-१०)। (४) आत्मनोऽजरत्वममरत्वमनादित्वादिकं च महता विस्तरेण गीतायां सम्प्राप्यते। तद्यथा—अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः। (२.१८), य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्। (२.१९), न जायते म्रियते वा कदाचित् ...... अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो० (२.२०), वासांसि जीर्णानि यथा विहाय ...... तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही। (२.२२), नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः (२.२३), अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च० (२.२४), देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत० (२.३०)। आत्मनो नित्यत्वमीशोपनिषदि कठोपनिषदि च विस्तरतो वर्णितमस्ति। तद्यथा—स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणं० (ईश० ८), अनेजदेकं मनसो जवीयो० (ईश० ४), तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः (ईश० ५), अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे। अणोरणीयान् महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्०। (कठ० १.२.१८-२१)। (५) गीतायां द्वितीये चतुर्थे चाध्याये ज्ञानयोगस्य विस्तरशो वर्णनमाप्यते। मूलमेतस्येशोपनिषदि लभ्यते—विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा

विद्ययाऽमृतमश्नुते। (ईश० ९.११)। मन्त्रत्रयेऽस्मिन् विद्यामार्गेण ज्ञानमार्गोऽविद्यामार्गेण च कर्ममार्गो गृह्यते। सांख्याभिमतोऽयं पन्था: सांख्यदर्शने विशेषतो विव्रियते। (६) पञ्चमाध्याये षष्ठाध्याये च गीतायां योगो वर्ण्यते। तस्य स्वरूपं साधनाविध्यादिकं च तत्र प्राप्यते। वर्णनमेतद् वेदान्तदर्शनं योगदर्शनं चाश्रित्य वर्तते। मुण्डकोपनिषदि माण्डूक्योपनिषदि चायं विषय उपलभ्यते। तद्यथा—धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं संधयीत०। (मु० २.२-३), प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्। (मु० २.२-४), यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि। (मु० २.२-७), सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्० (मु० ३.३-५), यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्। (मा० ५)। (७) अक्षरब्रह्मणो वर्णनं तदनुध्यानेन मोक्षाधिगमश्चाष्टमाध्याये गीतायां वर्ण्यते। मुण्डकोपनिषदि, छान्दोग्ये बृहदारण्यके च ब्रह्मणो वर्णनं प्रणवानुध्यानेन मोक्षावाप्तेश्च वर्णनं विस्तरश उपलभ्यते। (८) नवमेऽध्याये गीतायामीश्वरार्पणमीश्वरप्राप्तिसाधनत्वेनोपदिश्यते। भावोऽयं मुण्डकोपनिषदि मुख्यत्वेनोपलभ्यते। नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्। नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो० (मु० ३.२.३-४)। (९) गीतायां दशमेऽध्याये विभोर्विभूतीनां वर्णनमासाद्यते। कठोपनिषदि विस्तरशो विभोर्विभूतिवर्णनं निरीक्ष्यते। तद्यथा— रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च। (कठ० २.५.८-११), तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति (कठ० २.५.१५), भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः। भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः (कठ० २.६.३)। (१०) गीतायामेकादशेऽध्याये विराड्रूपदर्शनमुपलभ्यते। विभोर्विराड्रूपस्य वर्णनं यजुर्वेदे पुरुषसूक्ते ३१तमे अध्याये प्राप्यते। तद्यथा—सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं सर्वत स्पृत्वात्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम्०। (यजु० ३१.१-१३)। (११) द्वादशेऽध्याये भक्तियोगवर्णनं गीतायाम्। कैवल्योपनिषदि भक्तियोगो ध्यानयोगश्च वर्ण्येते। तद्यथा-श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवैहि। न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः। (कैव० १.२-३)। (१२) त्रयोदशेऽध्याये क्षेत्रक्षेत्रज्ञवर्णनं सांख्यदर्शनानुसारि ज्ञातव्यम्। सांख्याभिमतं प्रकृतिपुरुषवर्णनमिहोपलभ्यते। (१३) चतुर्दशेऽध्याये गुणत्रयवर्णनमपि सांख्यदर्शनानुसार्येव बोद्धव्यम्। श्वेताश्वतरोपनिषद्यपि गुणत्रयवर्णनमुपलभ्यते। तद्यथा—अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः० (श्वेता० ४.५), स विश्वरूपस्त्रिगुणः० (श्वेता० ५.७)। सप्तदशेऽष्टादशे चाध्याये श्रद्धाया ज्ञानादिकस्य च सात्त्विकादिभेदो वर्ण्यते। तदपि सांख्यानुसार्येवावगन्तव्यम्। (१४) पञ्चदशेऽध्यायेऽश्वत्थवर्णनं कठोपनिषदमाश्रित्य वर्तते। तद्यथा—ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः। तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते। (कठ० २.६.१)। तत्र वर्णिता क्षराक्षरद्वयी श्वेताश्वतरोपनिषदि प्राप्यते। तद्यथा—क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः। (श्वेता० १.१०)। विशदीभवत्येतस्माद्यद् गीतेयं सर्वासामुपनिषदां समेषां दर्शनानां श्रुतीनां च सारं सरलया सरण्या प्रस्तवीतीति।

४. भासनाटकचक्रम्

महाकवेर्भासस्य कृतित्वेन त्रयोदश नाटकरत्नानि समुपलभ्यन्ते। 'भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्' इति राजशेखरभणितिमाश्रित्य भासनाटकचक्रमिति तत्कृतनाटकानां नाम व्यवह्रियते। नाटकत्रयोदशस्य परिचयः समासतोऽत्र प्रस्तूयते। (१) **प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्**— अङ्कचतुष्टयमत्र। उदयनस्य वासवदत्तया सह प्रणयः परिणयश्चेह वर्ण्येते। यौगन्धरायणप्रयत्नतः प्रद्योतप्रासादादुदयनस्य मोक्षः। (२) **स्वप्नवासवदत्तम्**—अङ्कषट्कमत्र। वासवदत्ताऽग्निदाहेन दग्धेति प्रवादं प्रचार्य यौगन्धरायणप्रयत्नात् पद्मावत्या सहोदयनस्योपयमोऽपहृतराज्यावाप्तिश्च वर्ण्येते। (३) **ऊरुभङ्गम्**—नाटकमेतदेकाङ्कि। पाञ्चालीपरिभवप्रतिक्रियार्थं भीमेन गदायुद्धे दुर्योधनोरुभञ्जनं वस्तु प्रतिपाद्यते। निखिलेऽपि संस्कृतवाङ्मये दुःखान्तमेतदेव नाटकम्। (४) **दूतवाक्यम्**—एकाङ्कि नाटकम्। महाभारताहवात् प्राक् पाण्डवार्थं दुर्योधनसंसदि श्रीकृष्णस्य दूतत्वेन गमनं प्रयत्नवैफल्यं चात्र वर्ण्येते। (५) **पञ्चरात्रम्**—अङ्कत्रयमत्र। यज्ञान्ते द्रोणो दक्षिणास्वरूपं पाण्डवेभ्यो राज्यार्धं ययाचे दुर्योधनम्। पञ्चरात्राभ्यन्तरे पाण्डवानामुदन्त उपलभ्यते चेद्राज्यार्धं दास्यते मयेति दुर्योधनोक्तिः। पञ्चरात्राभ्यन्तरे पाण्डवानां प्राप्तिर्दुर्योधनकृतराज्यार्धप्रदानं च। (६) **बालचरितम्**—अङ्कपञ्चकमत्र। बालस्य श्रीकृष्णस्य जन्मारभ्य कंसवधान्तं चरितमिह वर्ण्यते। (७) **दूतघटोत्कचम्**—एकाङ्कि नाटकमदः। अभिमन्युनिधनानन्तरं श्रीकृष्णप्रेरणया घटोत्कचस्य दौत्यमाश्रित्य धृतराष्ट्रान्तिकं गमनम्। दुर्योधनकृतस्तस्यावमानः। दुर्योधनोक्तिश्च— 'प्रतिवचो दास्यमि ते सायकैरिति'। (८) **कर्णभारम्**—नाटकमिदमेकाङ्कि। ब्राह्मणवेषधारिणे शक्राय कर्णस्य कवचकुण्डलार्पणम्। (९) **मध्यमव्यायोगः**—नाटकमिदमेकाङ्कि। मध्यमः पाण्डवो भीमो मध्यमनामानं ब्राह्मणसूनुमेकं घटोत्कचात् त्रायते। अपत्यदर्शनेन भीमस्यानन्दावाप्तिः पत्न्या हिडम्बया च समागमः। (१०) **प्रतिमानाटकम्**—अङ्कसप्तकमिह। रामवनवासादारभ्य रावणवधान्ता कथाऽत्र वर्णिता। दशरथप्रतिमां प्रेक्ष्य भरतः पितुर्निधनमवगच्छति। (११) **अभिषेकनाटकम्**—अङ्कषट्कमत्र। किष्किन्धाकाण्डादारभ्य युद्धकाण्डान्ता रामकथाऽत्र वर्णिता। रावणवधानन्तरं रामस्य राज्येऽभिषेकः। (१२) **अविमारकम्**—अङ्कषट्कमत्र। राजकुमारस्याविमारकस्य राज्ञः कुन्तिभोजस्य दुहित्रा कुरङ्ग्या सह प्रणयपरिणयोऽत्र वर्णितः। (१३) **चारुदत्तम्**—वितीर्णविपुलवित्तेनोदारचित्तेन चारुदत्तेन सह वसन्तसेनानामवाराङ्गनायाः प्रणयोपयमोऽत्र वर्णितः।

नाटकानामेतेषां प्रणेता भास एवान्यो वेति विविधा विप्रतिपत्तिर्विषयेऽस्मिन्। भास एवैतेषां नाटकानां प्रणेतेति विद्वद्भिरधिकैरुरीक्रियते। एक एवैतेषां प्रणेतेत्यवगम्यतेऽन्तःसाक्ष्यादिना। (१) नाटकानि सर्वाण्यपि सूत्रधारप्रवेशादारभन्ते। 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' इति वाक्येन ग्रन्थारम्भः सर्वत्र। (२) नाटकभूमिकार्थं प्रस्तावनाशब्दस्थाने 'स्थापना'-शब्दप्रयोगः। (३) प्ररोचनाभावोऽर्थात् नाटककृत्परिचयाभावः स्थापनायाम्। (४) नाटकपञ्चके (स्वप्न०, प्रतिज्ञा०, प्रतिमा०, पञ्च०, ऊरु०) मुद्रालंकारप्रयोगोऽर्थात् प्रथमश्लोके प्रमुखनाटकीयपात्राणां नामोल्लेखः। (५) भरतवाक्यं प्रायशः सममेव सर्वत्र। 'इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः।' (६) भूमिका संक्षिप्ततमा। संवादारम्भोऽपि प्रायः साम्यमेव। यथा—एवमार्यमिश्रान्

विज्ञापयामि। (७) पात्रनामसाम्यमपि। यथा—काञ्चुकीयो बादरायणः, प्रतीहारी विजया च कतिपयेषु नाटकेषु। (८) अप्रचलितवृत्तानां प्रयोगो यथा—सुवदना, दण्डकादयः। (९) बहुषु नाटकेषु पताकास्थानकप्रयोगः। (१०) नाटकेषु सर्वेषु भाषासाम्यं रीतिसाम्यं च। (११) अपाणिनीयप्रयोगाश्च सर्वेष्वेव नाटकेषु। (१२) अन्योन्यसंबद्धानि नाटकानि यथा—स्वप्न० प्रतिज्ञायौगन्धरायणस्योत्तरभाग एव। प्रतिमाऽभिषेकनाटके च तथा।

बाणो हर्षचरिते 'सूत्रधारकृतारम्भैः०' इति भासनाटकवैशिष्ट्यमाचष्टे। तच्च सर्वत्रेहावाप्यते। राजशेखरोऽभिधते—'भासनानाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्। स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः।' एतस्मात् भासकृतनाटकबहुत्वस्य स्वप्नवासवदत्तस्य च तत्कृतित्वेनावगतिर्भवति। भोजदेवो रामचन्द्रगुणचन्द्रौ च स्वप्नवासवदत्तं भासकृतिमामनन्ति। अतो भास एव सर्वेषां प्रणेतेत्यवगम्यते।

भासस्य जनिकालश्च ४५० ई० पूर्वादनन्तरं ३७० ई० पूर्वात्प्राक् च स्वीक्रियते।

साम्प्रतकालं यावदुपलब्धं संस्कृतवाङ्मयं परीक्ष्यते चेद् भास एव नाटककृदग्रणीरिति शक्यं वक्तुम्। त्रयोदशनाटकानां प्रणेता स इति प्रतिपादितमेव। नाटकानां बाहुल्येन विषयवैविध्येनाभिनयोपयोगित्वेन च तस्य नाट्यनैपुण्यं नाटकनिर्मितौ वैशारद्यं चावधार्यते। नाटकेषु तस्य मुख्या विशेषताः सन्त्येताः — भाषायां सरलता, अकृत्रिमा शैली, वर्णनेषु यथार्थता, चरित्रचित्रणे वैयक्तिकत्वं, घटनासंयोजने सौष्ठवं, कथाप्रसङ्गस्याविच्छिन्नश्च प्रवाहः। सर्वाण्येव नाटकान्यभिनयोपयोगीनीति तस्य महनीयतामभिवर्धयन्ति। नाटकेषु मौलिकता कल्पनावैचित्र्यं च विशेषत उपलभ्यते। स एव सर्वाग्रणीरेकाङ्किनाटकप्रणयने। नाटकपञ्चकमस्यैकाङ्कि। पताकास्थानकमपि मधुरं प्रयुङ्क्ते। शैली चेद् विविच्यते तस्य तर्हि प्रसादमाधुर्यौजसां त्रयाणामपि गुणानां समन्वयस्तत्रावेक्ष्यते। भाषा तस्य सरला, सुबोध, सरसा, नैसर्गिकी, सप्रवाहा च। उपमारूपकोत्प्रेक्षार्थान्तरन्यासालंकाराणां प्रयोगो विशेषतोऽवाप्यते तस्य कृतिषु। अनुप्रासादिकं विशेषतः प्रियं तस्य। यथा—हा वत्स राम जगतां नयनाभिराम (प्रतिमा० २.४)। मनोवैज्ञानिकविवेचने नितरां निपुणः सः। यथा—दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः० (स्वप्न० ४.६), प्रद्वेषो बहुमानो वा० (स्वप्न० १.७), शरीरेऽरिः प्रहरति० (प्रतिमा० १.१२)। भारतीया भावाः सविशेषं रोचन्ते तस्मै। यथा—पितृभक्तिः पातिव्रत्यं भ्रातृप्रेमादिकम्। 'भर्तृनाथा हि नार्यः' (प्रतिमा० १.२५), कुतः क्रोधो विनीतानाम्० (प्रतिमा० ६.९), अयुक्तं परपुरुषसकीर्तन श्रोतुम् (स्वप्न० अंक ३)। भाषायां सरलता रम्यता च लोकप्रियत्वस्य कारणं तस्य। रसभावानुकूलं शैल्यां परिवर्तनमपि प्राप्यते। यथा—मद्भुजाकृष्ट० (प्रतिमा० ५.२२), पक्षाभ्यां परिभूय० (प्रतिमा० ६.३)। विस्तारमनादृत्य समासं साधीयान्मनुते। कमप्यर्थं ....अनुक्त्वैव वनं गताः। (प्रतिमा० २.१७)। चित्रयति तथा भावान् यथा मूर्तवत्ते उपतिष्ठन्ति। व्यङ्ग्यप्रयोगस्तस्यासाधारणो मार्मिकश्च। यथा—अनपत्या० (प्रतिमा० २.८)। उपमाप्रयोगेऽपि दक्षः। यथा—सूर्य इव गतो रामः० (प्रतिमा० २.७), विचेष्टमानेव० (प्रतिमा० ६.२)। व्याकरणादिवैदग्ध्यमपि प्रदर्शयति यथावसरम्। यथा—स्वरपद० (प्रतिमा० ५.७), घनः स्पष्टो धीरः० (प्रतिमा० ४.७)। विविधरसवर्णने, छन्दःप्रयोगे, अर्थान्तरन्यासप्रयोगे च प्रभूतं दाक्षिण्यमुपलभ्यते तस्य।

५. कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञानशाकुन्तलम्

महाकवेः कालिदासस्य जनिकालमनुरुध्य कतिपयानि मतान्युपस्थाप्यन्ते मतिमतां वरिष्ठैः। मतद्वयं च मुख्यतः प्रचरिष्णु। (१) विक्रमसंवत्सरसंस्थापकस्य विक्रमादित्यस्य राज्यकाले खिस्ताब्दात्पूर्वं प्रथमशताब्द्याम्, (२) ईसवीयचतुर्थशताब्द्यां गुप्तकाले। प्रथमं मतं भारतीयैरधिकं स्वीक्रियते, द्वितीयं च पाश्चात्त्यैः। कृतयस्तस्य प्राधान्यतः सप्तैव स्वीक्रियन्ते। (क) नाट्यग्रन्थाः—(१) अभिज्ञानशाकुन्तलम्। (२) विक्रमोर्वशीयम्, (३) मालविकाग्निमित्रम्। (ख) काव्यद्वयम्—(४) रघुवंशम्, (५) कुमारसम्भवम्। (ग) गीतिकाव्यद्वयम्—(६) मेघदूतम्, (७) ऋतुसंहारम्। कृतिष्वेतासु शाकुन्तलमेव कवेः प्रतिभायाः परिपाकेन, रचनाकौशलेन, प्रकृतिचित्रणे पाटवेन, रसपरिपाकेन, नीरसाख्याने सरसताऽऽधानेन, मूलकथापरिवर्तने वैशारद्येन, करुणादिरससंचारेण च सर्वातिशायीति तदेव कालिदासस्य सर्वस्वभिमन्यते। अतो निगदितं केनापि—'काव्येषु नाटकं रम्यं नाटकेषु शकुन्तला। तथापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम्'। एतदेवात्र विविच्यते विव्रियते च। विषयोऽयं महता विस्तरेण वर्णितो विशदीकृतश्च मत्कृतशाकुन्तलभूमिकायाम्। विस्तरस्तत एवावगन्तव्यः। श्लोकाङ्कादिकं मत्संपादित-शाकुन्तसंस्करणानुसारि।

कालिदासस्य नाट्यकलाकौशले सन्त्येते विशेषाः। घटनासंयोजने सौष्ठवं, वर्णनानां सार्थकता स्वाभाविकता ध्वन्यात्मकता च, चरित्रचित्रणे वैयक्तिकत्वं, कवित्वं रसपरिपाकश्चेति। अभिनयार्हतया चैतेषां नाटकानां महत्त्वं नितरामभिवर्धते। घटनासंयोजने सौष्ठवं यथा—द्वितीयेऽङ्के आश्रमं प्रवेष्टुकामे सति दुष्यन्ते ऋषिकुमारद्वयस्य नृपाह्वानार्थं प्रवेशः। पञ्चमे हंसपदिकागीतम्, षष्ठेऽङ्गुलीयकोपलब्धिः, सप्तमे पुत्रदर्शनं शकुन्तलावाप्तिश्च। वर्णनेषु स्वाभाविकता यथा—प्रथमेऽङ्के मृगप्लुतिवर्णनम्, द्वितीयेऽवनिपविदूषकसंलापः, चतुर्थे शकुन्तलाविप्रयोगवर्णनम्, पञ्चमे शकुन्तलाप्रत्याख्यानम्, सप्तमेऽपत्यंक्रीडावर्णनं च। वर्णनानां ध्वन्यात्मकता यथा-'दिवसाः परिणामरमणीयाः' (१.३) नाटकस्य सुखावसायित्वं सूचयति। सूत्रधारकथनम्—'अस्मिन् क्षणे विस्मृतं खलु मया' (पृष्ठ १४) नाटके विस्मरणस्य महिमानं द्योतयति। 'यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनाम्, आविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः, (४.२) सुखदुःखक्रमस्यानिवार्यत्वम्। हंसपदिकागीतम्—'अभिनवमधुलोलुपस्त्वं तथा परिचुम्ब्य०' (५.१) राज्ञो विस्मरणम्। चरित्रचित्रणे वैयक्तिकता यथा—ऋषित्रये कण्वः साधुप्रकृतिर्नियतः शकुन्तलायां पितृवन्मृदुहृदयः, मरीचो वीतरागः, दुर्वासाश्च रोषप्रकृतिः।

रसनिरूपणेऽपि महती विदग्धताऽवाप्यते। बीभत्सरसं विहाय प्रायः समेऽप्यन्ये रसाः समुपलभ्यन्तेऽत्र। शृङ्गाररसश्च सर्वानतिशेते। (क) संभोगशृङ्गारो यथा—शकुन्तलां समीक्ष्य नृपोक्तिः—अहो मधुरमासां दर्शनम् (पृष्ठ ४२), शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य। (१.१७)। शकुन्तलालावण्यवर्णनम्—इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति। (१.१८), सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं .... किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्। (१.२०), अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू (१.२१), चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं० (१.२४)। शकुन्तलामुपेत्य नृपोक्तिः—इदमनन्यपरायणमन्यथा हृदयसन्निहिते हृदयं मम० (३.१६), किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातान्० (३.१८), अपरिक्षतकोमलस्य यावत् .... सदयं सुन्दरि गृह्यते रसोऽस्य (३.२१), उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणी योगम्

(७.२२), (ख) विप्रलम्भशृङ्गारो यथा—द्वितीयेऽङ्के शकुन्तलास्मरणं तच्चेष्टावर्णनं च—कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शनाश्वासि० (२.१), स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने मत् प्रेरयन्त्या तया० (२.२), चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा० (२.९), अनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्० (२.१०) अभिमुखे मयि संहृतमीक्षितं ....न विवृतो मदनो न च संवृतः (२.११), दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे तन्वी स्थिता० (२.१२)। चन्द्रादीनां तापहेतुत्वम्—तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दोः० (३.३)। विरहक्षामगात्रायाः शकुन्तलाया वर्णनम्—स्तनन्यस्तोशीरं प्रशिथिलमृणालैकवलयं० (३.६), क्षामक्षामकपोलमाननमुरः काठिन्यमुक्तस्तनं० (३.७)। राज्ञो विरहावस्थावर्णनम्—इदमशिशिरैरन्तस्तापाद् विवर्णमणीकृतं० (३.१०)। (ग) करुणरसो यथा—शकुन्तलाप्रस्थानसमये आश्रमावस्था—यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया० (४.६), पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या० (४.९), उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः० (४.१२), यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां० (४.१४), अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे० (४.१९), शममेष्यति मम शोकः कथं नु वत्से त्वया रचितपूर्वम् (४.२१), (घ) वीररसो यथा—अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाऽप्याश्रमे सर्वभोग्ये० (२.१४), नैतच्चित्रं यदयमुदधिश्यामसीमां धरित्रीं० (२.१५), का कथा बाणसन्धाने ज्याशब्देनैव दूरतः० (३.१), कुमुदान्येव शशाङ्कः सविता बोधयति पङ्कजान्येव० (५.२८)। (ङ) अद्भुतरसो यथा—दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः० (४.४), क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं० (४.५), शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी० (७.८), वल्मीकार्धनिमग्नमूर्तिरुरसा सन्दष्टसर्पत्वचा० (७.११), प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षे वने० (७.१२)। (च) हास्यरसो यथा—अत्र पयोधरविस्तारयितृ आत्मनो यौवनमुपालभस्व (पृ० ४९), किं मोदकखादिकायाम् (पृ० १०९), यथा कस्यापि पिण्डखर्जूरैरुद्वेजितस्य तिन्तिण्यामभिलाषो भवेत् (पृ० १३२), त्रिशङ्कुरिवान्तरा तिष्ठ० (पृ० १४२), एष मां कोऽपि प्रत्यवनतशिरोधरमिक्षुमिव त्रिभङ्गं करोति० (पृ० ४१०), बिडालगृहीतो मूषक इव निराशोऽस्मि जीविते संवृत्तः (पृ० ४१३)। (छ) शान्तरसो यथा—स्वर्गादधिकतरं निर्वृतिस्थानम् (पृ० ४३८), प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता० (७.१२)।

काव्यसौन्दर्यविवेचनदृशा दृश्यते चेत्समग्रमेव शाकुन्तलं सौन्दर्यपरीतम्। (क) करुणरसव्याप्लुतत्वाच्चतुर्थोऽङ्कोऽतिशायी। तत्र चोत्कृष्टं श्लोकचतुष्टयं मन्मत्या वर्तते—यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया० (४.६), शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने० (४.१८), पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या० (४.९), अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मनः० (४.१७)। (ख) अन्तःप्रकृतेर्बाह्यप्रकृत्या समन्वयो दृश्यते। खिन्ना शकुन्तला कुमुदिनी च भर्तृवियोगेन। अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे० (४.३)। शकुन्तलावियोगेन सर्वोऽप्याश्रमो विषीदति। आश्रमस्थैः पशुपक्षिभिरपि भोजनादिकं परित्यक्तम्। पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं० (४.९), उद्गलितदर्भकवला मृग्यः० (४.१२)। (ग) बाह्यप्रकृत्याऽऽत्मीयत्वम्—अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येषु (पृ० ४५), लतासनाथ इवायं केसरवृक्षकः

प्रतिभाति (पृ० ५३), न नमयितुमधिज्यमस्मि शक्तो धनुरिदमाहितसायकं मृगेषु० (२.३), क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं० (४.५), उद्गलितदर्भकवला मृग्यः० (४.१२)। (घ) प्रेमचित्रणं लावण्यवर्णनं च। मतमेतन्महाकवेर्यत् सौन्दर्यं नाहार्यं गुणमपेक्षते। अतस्तेनोच्यते—इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति० (१.१८), सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं·········किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् (१.२०), अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम् (पृ० ३५७)। नैसर्गिकत्वादेव निर्दोषत्वं शकुन्तलालावण्यस्य। इदमुपनतमेवं रूपमक्लिष्टकान्ति० (५.१९)। पुष्पिता लतेव लावण्यमयी शकुन्तला। अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू। कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु संनद्धम् (१.२१)। तस्य मतमेदत् 'यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति'। सुन्दरीसौन्दर्यं त्रपयैव, नान्यथा। अतो व्यादिश्यते तेन—वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः० (१.३१), अभिमुखे मयि संहृतमीक्षितं० (२.११)। स्त्री-सौन्दर्यं सच्चारित्र्येण तपसा च। यथा—शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने० (४.१८), इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरत्मनः (कुमार० ५.२)। तपःपूतमेव प्रेम प्रसीदति प्रशस्यते च। तपःपूतैव शकुन्तला प्रियमनुविन्दति।

कालिदासस्य शैली—कालिदासो वैदर्भीरीत्याः सर्वाग्रणीः कविरित्यत्र न कस्यापि विप्रतिपत्तिः। (क) तस्य शैल्यां प्रसादमाधुर्यौजसां त्रयाणामपि गुणानां समन्वयोऽवलोक्यते। प्रसादगुणो यथा—भव हृदय साभिलाषं संप्रति सन्देहनिर्णयो जातः० (१.८८), क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो मृगशावैः सममेधितो जनः० (२.१८), अयं स ते तिष्ठति संगमोत्सुको विशङ्कसे भीरु यतोऽवधीरणाम्० (३.११), अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः० (४.२२)। माधुर्यगुणो यथा—सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्० (१.२०), अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू० (१.२१), स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु० (६.१०)। ओजोगुणो यथा—तीव्राघातप्रतिहततरुस्कन्धलग्नैकदन्तः० (१.३३), अनवरतधनुर्ज्या० (२.४)। (ख) तस्य भाषायामसाधारणोऽधिकारः। मनोज्ञान् भावान् मधुरैः शब्दैरभिव्यनक्ति। तद्यथा—अनाघातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहैः० (२.१०) अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः० (४.८), त्रिस्रोतसं वहति० (७.६)। (ग) वर्णने संक्षेपो ध्वन्यात्मकता च दृश्यते। तद्यथा—अये लब्धं नेत्रनिर्वाणम् (पृ० १५३), इत्यनेन दर्शनानन्दावाप्तेः। किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातान्० (३.१८) इत्यनेन दयिताराधनस्य वर्णनम्। (घ) वर्णनेऽनुपमं कौशलं समीक्ष्यते। स प्रत्येकं वस्तु सजीववत् प्रस्तवीति। यथा—विरहविषण्णयोर्दुष्यन्तशकुन्तलयोर्वर्णनम्। चतुर्थेऽङ्के शकुन्तलावियोगखिन्नस्याश्रमपदस्य वर्णनम्। (ङ) तस्य संलापेषु सर्वत्र संक्षेपो रम्यता चावाप्यते। (च) सोऽलंकाराणां प्रयोगेऽनुपमः पटुः। प्रायश्चत्वारिंशदलंकारास्तेन प्रयुक्ताः। (छ) उपमा कालिदासस्य। वर्णितमेतदन्यत्र। अर्थान्तरन्यासप्रयोगेऽप्यसमः पटुः। तद्यथा—सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः (१.२२), स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् (५.१२), अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र (१.१६)। (ज) चतुर्विंशतिश्छन्दांसि प्रयुक्तानि तेन शाकुन्तले।

६. उपमा कालिदासस्य

कविताकामिनीकान्तः कालिदासः कस्य नावर्जयति चेतः सचेतसः। तस्य काव्यसौन्दर्यं प्रेक्षं-प्रेक्षं प्रशंसन्ति सहृदयाः सुधियस्तस्य कलाकौशलम्। तस्य सूक्तयः सुधासिक्ता मञ्जर्य इव चेतोहराः सन्ति। अत उच्यते बाणभट्टेन हर्षचरिते 'निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु। प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते'। कालिदासोऽतिशेते सर्वानपि महाकवीनौपम्ये। अतः साधूच्यते—'उपमा कालिदासस्य'। एतदेवात्र विविच्यते।

का नामोपमा? कथं चैषोपकर्त्री काव्यस्य? विश्वनाथानुसारं 'साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः' (सा० दर्पण १०.१४)। वस्तुद्वयस्य वैधर्म्यं विहाय साम्यमात्रं चेदुच्यते वाक्यैक्ये तर्हि सोपमा। उपमैषा सौदामिनीव विद्योतते विपुले वाङ्मये। काव्यशरीरे समादधाति महतीं मञ्जुलताम्। कालिदासस्योपमाप्रयोगेऽपूर्वं वैशारद्यम्। उपमासु न केवलं रम्यता, यथार्थता, पूर्णता, विविधता च, अपि तु सर्वत्रैव लिङ्गसाम्यमौचित्यं च। लिङ्गसाम्यस्यौचित्यस्य च समाश्रयणेन काचिदपूर्वा सम्पद्यते चारुतोपमासु। शतशः सन्त्युपमाप्रयोगस्थलानि तस्य काव्यादिषु। रघुवंशे तूपमाप्रयोगः सर्वातिशायी।

उपमाप्रयोगे चातुर्येणैव स 'दीपशिखा-कालिदासः' इति प्रसिद्धिमाप। पतिंवरा इन्दुमती दीपशिखेव व्यराजत। तद् यथा—'संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ, यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा। नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे, विवर्णभावं स स भूमिपालः'। (रघु० ६.६७)। कामदेवो दीप इवात्ते, रतिश्च कामविहीना दीपदशेव भृशं दुःखमाप। 'गत एव न ते निवर्तते, स सखा दीप इवानिलाहतः। अहमस्य दशेव पश्य मामविषह्यव्यसनेन धूमिताम्। (कुमार० ४.३०)।

शास्त्रीया उपमास्तावत् प्राङ् निर्दिश्यन्ते। (१) शास्त्रीया उपमाः—(क) वेदविषयकाः—मनुस्तथैव नृपाणामग्रिमोऽभवद्यथा मन्त्राणामोंकारः। 'आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव' (रघु० १.११)। सुदक्षिणा नन्दिन्या मार्गं तथैवान्वगच्छद्यथा स्मृतिः श्रुतेरर्थम्। 'श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्' (रघु० २.२)। (ख) दर्शनविषयकाः—यथा बुद्धेः कारणमव्यक्तं मूलप्रकृतिर्वा तथा सरय्वा नद्याः कारणं मानसं सरः। 'ब्राह्मं सरः कारणमाप्तवाचो बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति' (रघु० १३.६०)। दिलीपस्य कृतिविशेषाः प्राक्तनाः संस्कारा इव फलानुमेया आसन्। 'फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव' (रघु० १.२०)। गम्भीराया नद्याः पयो निर्मलं मानसमिव वर्तते, मेघश्च छायात्मेव। 'चेतसीव प्रसन्ने, छायात्मापि०' (मेघ० १.४३)। यतिर्यथेन्द्रियारातीन् बाधते तथा रघुः पारसीकान् जेतुं प्रतस्थे। 'इन्द्रियाख्यानिव रिपूंस्तत्त्वज्ञानेन संयमी' (रघु० ४.६०)। (ग) यज्ञविषयकाः—नृपो दुष्यन्तः शकुन्तला भरतोऽपत्यं च त्रयमेतत् क्रमशो विधिः श्रद्धा वित्तं चेति त्रयाणां समन्वयो वर्तते। 'श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रितयं तत् समागतम्' (शा० ७.२९)। शकुन्तलाऽनुरूपं भर्तारं गता यथा

धूमावृतलोचनस्य यजमानस्य वह्नावाहुतिः। 'दिष्ट्या धूमाकुलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता' (शा० अंक ४)। यज्ञस्य दक्षिणेव सुदक्षिणा दिलीपभार्याऽभूत्। 'अध्वरस्येव दक्षिणा' (रघु० १.३०)। स्वाहया युक्तोऽग्निरिव वसिष्ठोऽरुन्धत्या समेतोऽभूत्। 'स्वाहयेव हविर्भुजम्' (रघु० १.५६)। दिलीपानुगता नन्दिनी विधियुक्ता श्रद्धेव बभौ। 'श्रद्धेव साक्षाद् विधिनोपपन्ना' (रघु० २.१६)। रामादिभ्रातृचतुष्टयस्य विनीतत्वं तथैवावर्धत यथा हविषाऽग्निः। 'हविषेव हविर्भुजाम्' (रघु० १०.७९)। (घ) विद्याविषयकाः—विद्याऽभ्यासेन यथा चकास्ति तथा नन्दिनी सेवया प्रसादनीया। 'विद्यामभ्यसनेनेव प्रसादयितुमर्हसि।' (रघु० १.८८)। दुष्यन्तपरिणीता शकुन्तला सुशिष्यप्रदत्ता विद्येवाशोचनीयाऽभूत्। 'सुशिष्यपरिदत्ता विद्येवाशोचनीयाऽस्ति संवृत्ता' (शा० अंक ४)। (ङ) व्याकरणविषयकाः—अपवादनियमो यथोत्सर्गं बाधते तथा शत्रुघ्नो लवणासुरं बबाधे। 'अपवाद इवोत्सर्गं व्यावर्तयितुमीश्वरः' (रघु० १५.७)। अध्ययनार्थकादिङ्धातोः प्राग् अधिरुपसर्गो यथा शोभाकृद् व्यर्थश्च तथा शत्रुघ्नेन समं सेना। 'पश्चादध्ययनार्थस्य धातोरधिरिवाभवत्' (रघु० १५.९)। (च) राजनीतिविषयकाः—प्रभावशक्तिर्मन्त्रशक्तिरुत्साहशक्तिश्चेति त्रयं यथाऽर्थमक्षयं सूते तथा सुदक्षिणा पुत्रं रघुमसूत। 'त्रिसाधना शक्तिरिवार्थमक्षयम्' (रघु० ३.१३)। (छ) ज्योतिषविषयकाः—चन्द्रग्रहणानन्तरं यथा रोहिणी शशिनमुपैति तथा शकुन्तला दुष्यन्तमुपगता। 'उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणी योगम्' (शा० ७.२२)।

(२) मूर्तस्यामूर्तरूपेण—दिलीपः क्षात्रधर्म इवासीत्। 'क्षात्रो धर्म इवाश्रितः' (रघु० १.१३)। स धवलं क्षीरं यशसोपमिमीते—'शुभ्रं यशो मूर्तमिवातितृष्णः' (रघु० २.६९)। रथं मनोरथेनोपमिमीते-'स्वेनेव पूर्णेन मनोरथेन' (रघु० २.७२)। रामादयश्चत्वारश्चतुर्वर्ग इवाशोभन्त। 'धर्मार्थकाममोक्षाणामवतार इवाङ्गभाक्' (रघु० १०.८४)। क्वचित् निर्जीवस्य सजीवेन सहौपम्यम्—सिप्रावातः चाटुकारो जन इवास्ते। 'सिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः' (मेघ० १.३१)।

(३) प्रकृतिसंबद्धाः—अत्र संकेतमात्रं निर्दिश्यन्त उपमाः, ता यथायथं विवेच्याः। (क) सूर्यसंबद्धाः—सूर्यमिव तेजोमय सुतं जनय। 'तनयमचिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनम्' (शा० ४.१९)। रामपरशुरामौ शशिदिवाकराविवाशोभेताम्। 'पार्वणौ शशिदिवाकराविव' (रघु० ११.८२)। (ख) चन्द्रसंबद्धाः—शोकविकला यक्षपत्नी विधुकलेवालक्ष्यत। 'प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः' (मेघ० २.२९)। पार्वती दिवा विधुलेखेवाम्लायत्। 'शशाङ्कलेखामिव पश्यतो दिवा०' (कुमार० ५.४८)। सन्ध्या शशिनमिव नन्दिनी श्वेतरोमाङ्कं दधे। 'सन्ध्येव शशिनं नवम्' (रघु० १.८३)। अन्याश्चन्द्रसंबद्धा उपमाः, यथा—मनुवंशे दिलीपः, सिन्धौ चन्द्र इव जज्ञे। 'इन्दुः क्षीरनिधाविव' (रघु० १.१२), सुदक्षिणादिलीपौ चित्राचन्द्रमसाविवास्ताम्। 'हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव' (रघु० १.४६)। मगधाधिपः परन्तपो राजा साक्षात् चन्द्र

इवासीत्। 'कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये ...... ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः'। (रघु० ६.२२)। सीतावियुक्तो रामस्तुषारवर्षी चन्द्र इवारोदीत्। 'बभूव: रामः सहसा सबाष्पस्तुषारवर्षीव सहस्य-चन्द्रः'। (रघु० १४.८४)। चन्द्रसंबद्धाश्चान्या उपमाः—दिलीपं चन्द्रमिवावालोकयन् जनाः। 'नेत्रैः पपुस्तृप्तिमनाप्नुवद्भिर्नवोदयं नाथमिवौषधीनाम्'। (रघु० २.७३)। रघुश्चन्द्र इव वृद्धिमाप। 'पुपोष वृद्धिं हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः'। (रघु० ३.२२)। वाल्मीकिना जानकी तापसीभ्योऽर्पिता, यथा चन्द्रकला ओषधीभ्यो दत्ता। 'निर्विष्टसारां पितृभिर्हिमांशोरन्त्यां कलां दर्श इवौषधीषु'। (रघु० १४.८०)। (ग) वृक्षादिसंबद्धाः-शकुन्तलायाः कमनीयं कलेवरं लतामिवानुचकार। 'अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू। कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम्' (शा० १.२१)। वल्कलावृता शकुन्तला शैवलावृतं कमलमिव, लक्ष्म्यान्वितः सुधांशुरिवाशोभत। 'सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्०' (शा० १.२०)। वृक्षादिसंबद्धाश्चान्या उपमाः-पार्वती लतेवासीत्, 'पर्याप्तपुष्पस्तबकावनम्रा संचारिणी पल्लविनी लतेव'। (कुमार० ३.५४)। शकुन्तला माधवीलतेवाशुष्यत्, 'पत्राणामिव शोषणेन मरुता स्पृष्टा लता माधवी' (शा० ३.७)। गर्भवती शकुन्तला शमीवाभवत्। 'अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भां शमीमिव' (शा० ४.४)। सीता लतेव भूमौ पपात। 'स्वमूर्तिलाभप्रकृतिं धरित्रीं लतेव सीता सहसा जगाम' (रघु० १४.५४)। (घ) पुष्पसंबद्धाः—खिन्ना यक्षपत्नी साभ्रे दिवसे स्थलकमलिनीव म्लानाऽभूत्। 'साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम्' (मेघ० २.३०), मृगः पुष्पराशिरिवास्ते, न च वध्यः। 'न खलु ...... मृदुनि मृगशरीरे पुष्पराशाविवाग्निः' (शा० १.१०)। पुष्पसंबद्धाश्चान्या उपमाः—'पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं, शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः' (कुमार० ५.४)। 'न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते' (कुमार० ५.९)। रघुरतीव जनप्रियोऽभूत्। 'फलेन सहकारस्य पुष्पोद्गम इव प्रजाः' (रघु० ४.९)। शकुन्तलायाः शरीरं कुसुममिवासीत्। 'वपुरभिनवमस्याः पुष्यति स्वां न शोभां, कुसुममिव पिनद्धं पाण्डुपत्रोदरेण' (शा० १.१९)। शकुन्तला नवमालिकाकुसुममिवाभूत्। 'अर्कस्योपरि शिथिलं च्युतमिव नवमालिकाकुसुमम्'। (शा० २.८)। शकुन्तलाऽनाघ्रातं पुष्पमिवासीत्। 'अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहैः'। (शा० २.१०)। 'स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया' (शा० ७.२४)। 'अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः' (शा० ४.१२)। 'जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम्'। (मेघ० २.२०)। स्थानाभावादन्या उपमाः संकेतमात्रमुपस्थाप्यन्ते। (ङ) पशु-संबद्धाः—रेवा गजशरीरे भूतिरिवास्ति। 'रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां, भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य' (मेघ० १.१९)। 'पत्रश्यामा दिनकरहयस्पर्धिनो यत्र वाहाः, शैलोदग्रास्त्वमिव करिणो वृष्टिमन्तः प्रभेदात्' (मेघ० २.१३)। दुष्यन्तो गज इवासीत्। 'यूथानि संचार्य रविप्रतप्तः, शीतं दिवा स्थानमिव द्विपेन्द्रः' (शा० ५.५)।

'अरुन्तुदमिवालानमनिर्वाणस्य दन्तिनः' (रघु० १.७१), 'जुगोप गां रूपधरामिवोर्वीम्' (रघु० २.३),'अन्तर्मदावस्थ इव द्विपेन्द्रः' (रघु० २.७)। दशरथ ऐरावत इवासीत्। 'सुरगज इव दन्तैर्भग्नदैत्यासिधारैः'। (रघु० १०.८६)।(च) नद्यादिसंबद्धाः—प्रयागे संगमवर्णनम्।'क्वचित् प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा। अन्यत्र माला सितपङ्कजानामिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव॥ क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छायाविलीनैः शबलीकृतेव। अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभःप्रदेशा'॥ (रघु० १३.५४, ५६)। दिलीपः सागर इवासीत्। 'अधृष्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः'। (रघु० १.१६)। 'क्षणमात्रमृषिस्तस्थौ सुप्तमीन इव ह्रदः'। (रघु० १.७३)। 'लिपेर्यथावद्ग्रहणेन वाङ्मयं नदीमुखेनेव समुद्रमाविशत्'। (रघु० ३.२८)। 'बभौ हरजटाभ्रष्टां गङ्गामिव भगीरथः'। (रघु० ४.३२)। 'तमेव चतुरन्तेशं रत्नैरिव महार्णवाः'। (रघु० १०.८५)। (छ) पर्वतादिसंबद्धाः—'पाण्ड्योऽयमंसार्पितलम्बहारः .... सनिर्झरोद्गार इवाद्रिराजः'। (रघु० ६.६०)। 'स्थितः सर्वोन्नतेनोर्वी क्रान्त्वा मेरुरिवात्मना'। (रघु० १.१४)। 'प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोक इवाचलः'। (रघु० १.६८)। 'अधित्यकायामिव धातुमय्यां लोध्रद्रुमं सानुमतः प्रफुल्लम्'। (रघु० २.२९)। 'शङ्कास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशा जालमार्गैः' (मेघ० २.८)। 'त्वत्संपर्कात् पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः'। (मेघ० १.२५)।(ज) पृथ्वीसंबद्धाः—'ऊधस्यमिच्छामि तवोपभोक्तुं षष्ठांशमुर्व्या इव रक्षितायाः'। (रघु० २.६६)। 'कल्पिष्यमाणा महते फलाय वसुन्धरा काल इवोप्तबीजा'। (शा० ६.२४)। (झ) द्युसंबद्धाः—'अथ नयनसमुत्थं ज्योतिरत्रेरिव द्यौः, सुरसरिदिव तेजो वह्निनिष्ठ्यूतमैशम्'। (रघु० २.७५)।(ञ) वायुसंबद्धाः—रघु० ४.८, १०.८२।(ट) अग्निसंबद्धाः—रघु० ११.८१; शा० ५.१०।(ठ) मासदिनादिसंबद्धाः— रघु० ११.७, १०.८३, २.२०।(ड) वर्षादिसंबद्धाः—कु० ४.३९, ५.६१; रघु० १.३६, ४.६१; शा० ३.९, ३.२४।(ढ) खगादिसंबद्धाः—रघु० ४.६३, १४.६८।

(४) विविधविषयसंबद्धाः—(क) देवसंबद्धाः—अथैनमद्रेस्तनया शुशोच, सेनान्यमालीढमिवासुरास्त्रैः। (रघु० २.३७)। जडीकृतस्त्र्यम्बकवीक्षणेन, वज्रं मुमुक्षन्निव वज्रपाणिः। (रघु० २.४२)।(ख) पुरुषसंबद्धाः—तेन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते, बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः। (मेघ० १.१५)। शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः। (मेघ० १.३२)। धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन् मुखानि। (मेघ० १.५१)। अंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव। (मेघ० १.६२)। प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः। (रघु० १.३)। (ग) स्त्रीसंबद्धाः—मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम्। (मेघ० १.६६)। अवाकिरन् बाललताः प्रसूनैराचारलाजैरिव पौरकन्याः। (रघु० २.१०)। प्राप्ता शरन्नववधूरिव रूपरम्या। (ऋतु० ३.१)।

७. भारवेरर्थगौरवम्

महाकविर्भारविः षष्ठ्यां शताब्द्यामीसवीयाब्दस्य जनिमापेति ६३४ ईसवीये लिखितेन 'ऐहोल'-शिलालेखेन निर्विवादं निर्णीयते। तथा चोदीर्यते रविकीर्तिना, 'येनायोजि नवेऽश्मस्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म। स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदास-भारविकीर्तिः'। अवन्तिसुन्दरीकथामनुसृत्य निर्णीयते यत् कविवरोऽयं दाक्षिणात्यः, पुलकेशिद्वितीयस्यानुजस्य विष्णुवर्धनस्य सदसः कविवर इति। भारविर्नाम कविवरोऽयं गीर्वाणगिरो गगने भा रवेरिव चकास्ति। समधिगतमनेनानुपमं यशः स्वकीयेनार्थगौरवसमन्वितेन किरातार्जुनीयनामधेयेन महाकाव्येन। महाकाव्यमेतस्य गुणत्रयेण माधुर्येण प्रसादेनौजसा च परिपूर्णम्। कविवरोऽयं न केवलमासीद् व्याकरणपारङ्गतोऽपि तु नीतिशास्त्रेऽलंकारशास्त्रेऽपि महद् वैचक्षण्यं समासादयत्। कृतिरियं तस्यार्थभारभरितेति दर्शं-दर्शं विपश्चिद्भिः 'भारवेरर्थगौरवम्' इति सादरमुदीर्यते। महाकाव्यस्यैतस्य टीकाकृत् श्रीमल्लिनाथः काव्यमेतद् नारिकेलफलेनोपमिमीते। अभिधत्ते च—'नारिकेलफलसंमितं वचो भारवेः सपदि तद्विभज्यते। स्वादयन्तु रसगर्भनिर्भरं सारमस्य रसिका यथेप्सितम्।'

भारवेः कीर्तिर्महाकाव्यं किरातार्जुनीयमवलम्ब्यैव वरीवर्ति। ग्रन्थरत्नमेतदेकमेव तस्योपलभ्यते। प्रशस्तैः स्वीयैर्गुणैर्महाकाव्यमेतत् संस्कृतसाहित्ये प्रमुखं स्थानमाश्रयते। संस्कृतमहाकाव्येषु बृहत्त्रय्यामन्यतमं गण्यते। बृहत्त्रय्यामितरे स्तः-माघविरचितं शिशुपालवधं, श्रीहर्षप्रणीतं नैषधीयचरितं च। समग्रेऽपि संस्कृतसाहित्ये नैतादृशमोजोगुणसमन्वितं काव्यान्तरम्। अष्टादशात्र सर्गाः। किरातवेषधारिणा शिवेन सहार्जुनस्य संगरोऽत्र वर्ण्यते। वीररसोऽत्र प्रधानः, रसाश्चान्ये गौणाः। श्रीसमन्वितं काव्यमेतदिति संसूचनाय 'श्री' शब्देन महाकाव्यमारभते, प्रतिसर्गान्ते च 'लक्ष्मी'-शब्दं प्रयुङ्क्ते। तद्यथा-'श्रियः कुरूणामधिपस्य पालनीम्० (१.१), 'दिनकृतमिव लक्ष्मीस्त्वां समभ्येतु भूयः' (१.४६)। न केवलमर्थगौरवान्वितपदप्रयोग एव निष्णातोऽयम्, अपि तु प्रकृतिवर्णने विविधालंकारप्रयोगे चित्रालंकारप्रयोगे व्याकरण-काव्यशास्त्र-नीतिशास्त्रादिपाण्डित्यप्रदर्शनेऽप्यनुपम एवायम्। शतशः सन्ति सूक्तिमुक्ताः प्रकृतिवर्णनादिवैदग्ध्यप्रतिपादिकाः। शरद्वर्णनं यथा—तुतोष पश्यन् कलमस्य सोऽधिकं, सवारिजे वारिणि रामणीयकम्। सुदुर्लभे नार्हति कोऽभिनन्दितुं, प्रकर्षलक्ष्मीमनुरूपसंगमे। (४.४)। चित्रालंकारप्रदर्शनं यथा—एकाक्षरात्मकः श्लोकः-'न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु। नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत्' (१५.१४)। सर्वतोभद्रप्रयोगो यथा—'देवाकानिनि कावादे, वाहिकास्वस्वकाहि वा। काकारेभभरे काका निस्वभव्यव्यभस्वनि'। (१५.२५)। विभिन्नचतुरर्थकबोधकपदप्रयोगो यथा—'विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा, विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणाः। विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा, विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणाः' (१५.५२)। जलक्रीडावर्णनं यथा—'करौ धुनाना नवपल्लवाकृती, पयस्यगाधे किल जातसंभ्रमा। सखीषु निर्वाच्यमधार्ष्ट्यदूषितं, प्रियाङ्गसंश्लेषमवाप मानिनी। (८.४८)। 'विहस्य पाणौ विधृते धृताम्भसि, प्रियेण वध्वा मदनार्द्रचेतसः। सखीव काञ्ची पयसा घनीकृता, बभार वीतोच्चयबन्धमंशुकम् (८.५१)।

किं नामार्थगौरवम्? कथं चैतेदुपकरोति महाकाव्यस्य? कथं च गुणेनैतेनानुत्तमं यशो भारवेः? इत्येतदत्र विवच्यते। अर्थगौरवं नाम भावगाम्भीर्यं सद्भावभूषाभूषितत्वं च। भावमूलकत्वाद् महाकाव्यस्य, भावभूषया च काव्यगौरवस्य संमभिवृद्धेरर्थगौरवं महदुपकारि महाकाव्यस्य।

पदे-पदे समुपलभ्यन्ते महाकाव्येऽस्मिन् अर्थभारभरिता विविधविषयका: सूक्तय:। अनुमीयते चैतेन भारवेर्वैदुष्यम्। शतशोऽत्र सूक्तिमुक्ता: समुपलभ्यन्ते। तासां दिङ्मात्रमिह प्रस्तूयते।

अर्थगौरवस्य महत्त्वमुदीरयता भारविनैव सम्यक् प्रतिपाद्यते यत्तस्य काव्ये सर्वत्र स्फुटताऽर्थगौरवं भावसांकर्याभाव: सामर्थ्यं च प्राप्स्यते। यथोच्यते—स्फुटता न पदैरपाकृता, न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्। रचिता पृथगर्थता गिरां, न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित्। (किराता० २.२७)। सा चैतादृशी भावगाम्भीर्यभरिता भारती सततकृतपुण्यकर्मभिरेव प्रवर्तते, नान्यथा। 'प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती' (कि० १४.३)। किं नाम वाग्मित्वम्, कथं च सभ्येषु तद् विशेषत आद्रियते, इति विवेचयता तेन साधु प्रतिपाद्यते यन्मनोगतस्य गभीरस्यार्थस्य परिष्कृतया प्राञ्जलया च वाचा प्रकाशनेन वाग्मित्वं समासाद्यते। 'भवन्ति ते सभ्यतमा विपश्चितां, मनोगतं वाचि निवेशयन्ति ये। नयन्ति तेष्वप्युपपन्ननैपुणा गभीरमर्थं कतिचित्प्रकाशताम्'। (कि० १४.४)। भाषणेऽपि च केचनार्थगौरवमाद्रियन्ते, केचन भाषासौष्ठवमपरे माधुर्यमन्ये भावप्रकाशनशैलीम्, इति महति विरोधे वर्तमाने सर्वमन:प्रसादिनी गी: सुदुर्लभा। अतस्ते-नोक्तम्—'सुदुर्लभा: सर्वमनोरमा गिर:' (१४.५)। विदुषां कीदृश: स्वभाव इति विवेचयन्नाह विद्वांसो गुणग्रहणे धृतधियो भवन्ति। 'गुणगृह्या वचने विपश्चित:' (२.५)। विद्वांसो हि परेङ्गितज्ञा भवन्ति। इङ्गितज्ञश्च न विषीदति काले। 'न ह्रीङ्गित- ज्ञोऽवसरेऽवसीदति' (४.२०)।

प्रेम्णो गौरवं प्रतिपादयता तेनोच्यते—'वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि' (८.३७)। स्नेहप्राचुर्यमेव गुणानां निधानं, न वस्तुसौन्दर्यमात्रम्। प्रेमी सदैव प्रियस्यानिष्टवारणाय यतते चिन्तयति च । तदाह—'प्रेम पश्यति भयान्यपदेऽपि' (९.७०)। मित्रलाभश्च लाभोऽपूर्व: तदाचष्टे—'मित्रलाभमनु लाभसम्पद:' (१३.५२)। विनय: सुशीलता च किमित्युररीकरणीयेति प्रतिपादयन्नाह विनयेनैव योगिनो मुक्तिं समधिगच्छन्ति। 'योगिनां परिणमन् विमुक्तये, केन नास्तु विनय: सतां प्रिय:' (१३.४४), शीलयन्ति यतय: सुशीलताम् (१३.४३)। मनोविज्ञानसम्बन्धि सूक्ष्मनिरीक्षणं कुर्वता तेनोच्यते चेतोभावा एव हितैषिणं रिपुं वा प्रकटयन्ति। 'विमलं कलुषीभवच्च चेत:, कथयत्येव हितैषिणं रिपुं वा' (१३.६)। अविज्ञातमपि प्रियमिष्टं वा प्रेक्ष्य जनस्य हृदयं प्रसीदति। 'अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात् प्रह्लादते मन:' (११.८)।

भौतिकविषयाणां स्वरूपविचारे साधु तेन प्रतिपाद्यते यद् विषया: परिणामे दु:खदा:। 'आपातरम्या विषया: पर्यन्तपरितापिन:' (११.१२)। अतएव कामानां हेयत्वं प्रतिपादयति। तेषां स्वरूपं च विवृणोति। 'श्रद्धेया विप्रलब्धार:, प्रिया विप्रियकारिण:। सदुस्त्यजास्त्यजन्तोऽपि कामा: कष्ट हि शत्रव:' (११.३५)। भोगा भुजङ्गफणसदृशा:, भोगप्रवृत्तस्य च विपदवाप्ति: सुनिश्चिता। 'भोगान् भोगानिवाहेयान्, अध्यास्यापन्न दुर्लभा' (११.२३)। अतो विषयान् विहाय गुणार्जने मनो निधेयम्। 'सुलभा रम्यता लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम्' (११.११)। गुणैरेव गौरवं प्राप्यते। 'गुरुतां नयन्ति हि गुणा न संहति:' (१२.१०)। गुणैरेव प्रियत्वं प्राप्यते, न तु परिचयमात्रेण। 'गुणा: प्रियत्वेऽधिकृता न संस्तव:' (४.२५)। गुणैरेव सर्वं जगद् वशीकर्तुं पार्यते। 'कमिवेशते रमयितुं न गुणा:' (६.२४)।

स्वाभिमानस्य महत्वं प्रतिपादयता साध्वभिधीयते तेन यत्स्वाभिमानरहितस्तृणवदगण्य:। 'जन्मिनो मानहीनस्य तृणस्य च समा गति:' (११.५९)। नहि तेजस्विनं कृशानुवद् भान्तं कश्चिदवज्ञातुमर्हति। 'ज्वलितं न हिरण्यरेतसं चयमास्कन्दति भस्मनां जन:' (२.२०)। पुरुष: स एव यो मानेन जीवति। 'पुरुषस्तावदेवासौ यावन्मानान्न हीयते' (११.६१)। मनस्विना यदेवेप्स्यते तदेवाधिगम्यते। 'किमिवास्ति यन्न सुकरं मनस्विभि:' (१२.६)। नीतिविषयकान्यनेकानि

सुभाषितान्युपलभ्यन्ते। तान्यतिसूक्ष्मतयोल्लिख्यन्ते। तानि च यथायथं विवेक्तव्यानि। 'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः' (१.४)। सद्भिरेव मैत्रीं विरोधं च कुर्वीत, नासद्भिः। 'समुन्नयन् भूतिमनार्य-संगमाद्, वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः' (१.८)। न बलीयसा युध्येत। 'अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता' (१.२३)। अवन्ध्यकोपस्योदारसत्त्वस्यैव च सर्वत्रादरो भवति। 'अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां, भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः। अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना, न जातहार्देन न विद्विषादरः। (१.३३)। सदा विचार्यैव कर्मणि प्रवर्तिव्यम्, न सहसा कृतिमनुतिष्ठेत्। 'सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्। वृणुते हि विमृश्यकारिणं, गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः (२.३०)।

एवं राजनीतिकविषयका बहवोऽत्र सूक्तयः समुपलभ्यन्ते। शठे शाठ्यमेवाचरेत्। 'व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं, भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः' (१.३०)। युद्धे जयश्रीरुत्कर्षशालिनमेव श्रयते। 'प्रकर्षतन्त्रा हि रणे जयश्रीः' (३.१७)। शत्रोरुत्सादनं परमं कर्तव्यम्। 'परमं लाभमरातिभङ्गमाहुः' (१३.१२)। नोत्कृष्टेन सह विग्रहो नयसंमतः। 'प्रार्थनाऽधिकबले विपत्फला' (१३.६१)। विक्रमार्जितसत्त्वस्य न कोऽपि दोषः। 'न दूषितः शक्तिमतां स्वयंग्रहः' (१४.२०)। नीतिमुत्सृजतो नृपस्य न प्रजा प्रसीदति। 'नयहीनादपरज्यते जनः' (२.४९)। नृपस्यामात्यानां च सांमनस्यमेव श्रेयसे भवति। 'सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं, नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः' (१.५)। राज्ञां कृते शममार्गो न शोभनः। 'व्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहाः, शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः' (१-४२)।

कानिचिदन्यानि हृद्यानि सूक्तानि प्रस्तूयन्तेऽत्र तानि यथायथं विवेच्यानि। स्वपौरुषं परममालम्बनम्। 'विनिपातनिवर्तनक्षमं, मतमालम्बनमात्मपौरुषम्' (२.१३)। महीयांसो न परकृपाजीविनः। 'लघयन् खलु तेजसा जगन्न महानिच्छति भूतिमन्यतः' (२.१८)। मानिनं श्रीः स्वयमनुगच्छति। 'अभिमानधनस्य गत्वरैरसुभिः स्थास्नु यशश्चिचीषतः। अचिरांशुविलासचञ्चला, ननु लक्ष्मीः फलमानुषङ्गिकम्' (२.१९)। महान् नान्यसमुन्नतिं सहते। 'प्रकृतिः खलु सा महीयसः, सहते नान्यसमुन्नतिं यया' (२.२१)। सद्भावाविर्भावाय क्रोधोऽपनेयः। 'अविभिद्य निशाकृतं तमः, प्रभया नांशुमताऽप्युदीयते' (२.३६)। अजितेन्द्रियैः श्रियो न रक्षितुं शक्यन्ते। 'शरदभ्रचला-श्चलेन्द्रियैरसुरक्षा हि बहुच्छलाः श्रियः' (२.३९)। दुर्जनसंगति सदैव दोषाय। 'असाधुयोगा हि जयान्तरायाः, प्रमाथिनीनां विपदां पदानि' (३.१४)। खलाः साधुष्वपि दोषदर्शिनः। 'मात्सर्यरागोपहतात्मनां हि, स्खलन्ति साधुष्वपि मानसानि' (३.५३)। सत्यवसरे भाषणं शोभते। 'मुखरताऽवसरे हि विराजते' (५.१६)। स्वभावसुन्दरं वस्तु न कृत्रिमतामपेक्षते। 'न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम्' (४.२३)। सविघ्नैव सुखावाप्तिः। 'श्रेयांसि लब्धुमसुखानि विनाऽन्तरायैः' (५.४९)। मित्रवियोगो दुःसहः। 'संधत्ते भृशमरतिं हि सद्वियोगः' (५.५१)। मनस्विनो न खिद्यन्ते। 'किमिवावसादकरमात्मवताम्' (६.१९) सुन्दरं वस्तु विकृतमपि शोभते। 'रम्याणां विकृतिरपि श्रियं तनोति' (७.५)। लक्ष्मीः परोपकारार्थमेव भवति। 'सा लक्ष्मीरुपकुरुते यया परेषाम्' (७.२८)। सर्वोऽपि निर्बाधं वस्तुकामः। 'वस्तुमिच्छति निरापदि सर्वः' (९.१६)। कामः सदा वामः। 'वाम एव सुरतेष्वपि कामः' (९.४९)। भवति योग्येषु पक्षपातः। 'भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः' (३.१२)। न मानिनो धनवन्तः। 'न मानिता चास्ति भवन्ति च श्रियः (१४.१३)। न गजा गोमायुसखाः। 'भवन्ति गोमायुसखा न दन्तिनः' (१४.२२)। लोके गुणार्जनं दुष्करम्। 'सुलभा रम्यता लोके, दुर्लभं हि गुणार्जनम्' (११.११)

एवं प्रतिपदमर्थगौरवमुद्दीप्यैव 'भारवेरर्थगौरवम्' इति सहर्षमुद्घोष्यते।

८. दण्डिनः पदलालित्यम्

महाकवेर्दण्डिनो जनिकालविषये सन्ति बहवो विप्रतिपत्तयः। समासतः पक्षद्वयं मुख्यत्वेनाङ्गीक्रियते। केचनेसवीयाब्दस्य षष्ठशताब्द्या अन्तिमे चरणेऽस्य जनिमुरीकुर्वन्त्यन्ये च सप्तमशताब्द्या उत्तरार्धे। राजशेखरेण कविरसौ प्रबन्धत्रयस्य प्रणेतेति प्रतिपाद्यते। विषयेऽस्मिन्नपि प्रचुरो विवादः। काव्यादर्शो दशकुमारचरितं चेति ग्रन्थद्वयं तु सर्वैरेव स्वीक्रियते दण्डिनः कृतित्वेन। अवन्तिसुन्दरीकथेति खण्डश उपलब्धा कृतिस्तृतीयेति मन्यते मनीषिभिः कैश्चित्।

दशकुमारचरितमाश्रित्यैवास्य महती महनीयतेति नात्र विप्रतिपत्तिर्विदुषाम्। गद्यकाव्यस्यैतस्य गौरवं पदलालित्यं च प्रेक्षं प्रेक्षं प्रेक्षावतां प्राप्यन्ते प्रभूतानि प्रचुरप्रशस्तिपूर्णानि पद्यानि। 'कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशयः'। केचन वाल्मीकेर्व्यासस्य चानन्तरं दण्डिनमेव महाकवित्वेनाकलयन्ति। 'जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत्। कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि'। मथुराविजयमहाकाव्यस्य रचयित्री गङ्गादेवी (१३८० ई०) तु दण्डिनो वाचं सरस्वत्या मणिदर्पणमेव मनुते। 'आचार्य-दण्डिनो वाचामाचान्तामृतसम्पदाम्। विकासो वेधसः पत्न्या विलासमणिदर्पणम्'।

किं नाम पदलालित्यम्? कथं चैतेन काव्यस्य महत्त्वमभिवर्धते? सुप्तिङन्तं पदमिति सुबन्तं तिङन्तं च पदमित्यभिधीयते। ललितस्य भावो लालित्यं माधुर्यमिति। यत्र पदेषु वाक्येषु शब्दसंघटनायां वा माधुर्यं श्रुतिसुखदत्वं वा समुपलभ्यते, तत्र पदलालित्यमिति मन्यते। पदलालित्यं शब्दसौष्ठवं चावर्जयति सचेतसां चेतांसीति गुणोऽयं गरिमाणं तनुते काव्यस्य। दशकुमारचरिते दृश्यते गुणस्यैतस्य गौरवम्। तच्चेह समासतो व्याचिख्यासितम्।

मृद्वीकारसभारभरितेव भारती दण्डिन आचार्यस्य सुधीभिरास्वादनीयं समीक्षणीयं चैतस्या माधुर्यम्। राजहंसस्येव राज्ञो राजहंसस्य सुषमां समवलोकयन्तु सन्तः। 'अनवरतयागदक्षिणारक्षितशिष्टविशिष्टविद्यासंभारभासुरभूसुरनिकरः, ... राजहंसो नाम घनदर्पकन्दर्पसौन्दर्यसोदर्यहृद्यनिरवद्यरूपो भूपो बभूव' (पूर्वपीठिका, उच्छ्वास १)। राजहंसस्य महिषी वसुमती ललनाकुलललामभूताऽभूत्। 'तस्य वसुमती नाम सुमती लीलावती कुलशेखरमणी रमणी बभूव' (पू० उ० १)। मालवेश्वरस्य प्रस्थानवर्णनं कुर्वताऽभिधीयते तेन— 'मालवनाथोऽप्यनेकानेकपयूथसनाथो विग्रहः सविग्रह इव साग्रहोऽभिमुखीभूय भूयो निर्जगाम' (पू० उ० १)। राजहंसश्च मालवराजचमूं स्वसैन्यसहितोऽवारुणत्। 'राजहंसस्तु प्रशस्तवीतदैन्यसैन्यसमेतस्तीव्रगत्या निर्गत्याधिकरुषं द्विषं रुरोध' (पू० उ० १)

विजयार्थं प्रस्थातुकामानां कुमाराणां यमकालंकारालंकृतं वर्णनमदो दण्डिनो वाग्वैभवमेवाविर्भावयति। 'कुमारा माराभिरामा रामाद्यपौरुषा रुषा भस्मीकृतारयो रयोपहसितसमीरणा रणाभियानेन यानेनाभ्युदयाशंसं राजानमकार्षुः।' (पू० उ० २)। ऐन्द्रजालिककृतेन्द्रजालप्रदर्शनरूपेण

फणिनां वर्णनमेतत्–'तदनु विषमं विषमुल्बणं वमन्तः फणालंकरणा रत्नराजिनीराजितराजमन्दिराभोगा भोगिनो भयं जनयन्तो निश्चेरुः' (पू० उ० १)

आस्तरणमधिशयानाया राजकन्याया वर्णनमेतद् दण्डिनः सूक्ष्मेक्षिकयेक्षणं वर्णनवैदग्ध्यं चाविष्करोति। 'अवगाह्य कन्यान्तःपुरं प्रज्वलत्सु मणिप्रदीपेषु......कुसुमलवच्छुरितपर्यन्ते पर्यंकतले......ईषद्विवृतमधुरगुल्मसंधि, आभुग्नश्रोणिमण्डलम्, अतिश्लिष्टचीनांशुकान्तरीयम्, अनतिवलिततनुतरोदरम्, अर्धलक्ष्याधरकर्णपाशनिभृतकुण्डलम्, आमीलितलोचनेन्दीवरम्, अविभ्रान्तभ्रूपताकम्......चिरविलसनखेदनिश्चलां शरदम्भोधरोत्सङ्गशायिनीमिव सौदामिनीं राजकन्यामपश्यत्।' (उत्तर० उ० २)

राज्ञो धर्मवर्धनस्य दुहितरमुपवर्णयति। 'तस्य दुहिता प्रत्यादेश इव श्रियः, प्राणा इव कुसुमधन्वनः, सौकुमार्यविडम्बितनवमालिका, नवमालिका नाम कन्यका।' (उ० उ० ५)। गिरिवरं च वर्णयन्नाह—'अहो रमणीयोऽयं पर्वतनितम्बभागः, कान्ततरेयं गन्धपाषाणवत्युपत्यका, शिशिरमिदमिन्दीवरारविन्दमकरन्दबिन्दु चन्द्रकोत्तरं गोत्रवारि, रम्योऽयमनेकवर्णकुसुममञ्जरीभरस्तरुवनाभोगः।'

उत्तरपीठिकायां समग्रः सप्तमोच्छ्वास ओष्ठ्यवर्णरहितः। एतादृशं निबन्धनमपूर्वमदृष्टचरं च विशालेऽपि विश्ववाङ्मये। ओष्ठ्यवर्णपरिहारेऽपि न परिहीयतेऽत्र शब्दसौष्ठवं पदलालित्यं च। यथा—'आर्य, कदर्यस्यास्य कदर्थनान्न कदाचिन्निद्रायाति नेत्रे।' 'सखे, सैषा सज्जनाचरिता सरणिः, यदणीयसि कारणेऽनणीयानादरः संदृश्यते'। 'असत्येन नास्यास्यं संसृज्यते'। 'चिरं चरितार्था दीक्षा'। 'न तस्य शक्यं शक्तेरियत्ताज्ञानम्'। 'दिष्ट्या दृष्टेष्टसिद्धिः। इह जगति हि न निरीहदेहिनं श्रियः संश्रयन्ते। श्रेयांसि च सकलान्यनलसानां हस्ते संनिहितानि'। 'असिद्धिरेषा सिद्धिः, यदसन्निधिरिहार्याणाम्। कष्टा चेयं निःसङ्गता, या निरागसं दासजनं त्याजयति। न च निषेधनीया गरीयसां गिरः'। 'तच्छरीरं छिद्रे निधाय नीरान्निरयासिषम्'। 'दृश्यतां शक्तिरार्षी, यत्तस्य यतेरजेयस्येन्द्रियाणां संस्कारेण नीरजसा नीरजसांनिध्यशालिनि सहर्षालिनि सरसि सरसिजदलसंनिकाशच्छायस्याधिकतरदर्शनीयस्याकारान्तरस्य सिद्धिरासीत्'। 'बहुश्रुते विश्रुते विकचराजीवसदृशं दृशं चिक्षेप देवो राजवाहनः'। (उत्तर० उ० ७)

'न मां स्निग्धं पश्यति, न स्मितपूर्वं भाषते, न रहस्यानि विवृणोति, न हस्ते स्पृशति, न व्यसनेष्वनुकम्पते, नोत्सवेष्वनुगृह्णाति......'। मृगयालाभांश्च निर्दिशति। शाकुन्तले द्वितीयाङ्के वर्णितेन मृगयालाभेन साम्यमेतद्भजते।'यथा मृगया ह्यौपकारिकी, न तथान्यत्। मेदोऽपकर्षादङ्गानां स्थैर्यकार्कश्यातिलाघवादीनि, शीतोष्णवातवर्षक्षुत्पिपासासहत्वम्, सत्त्वानामवस्थान्तरेषु चित्तचेष्टितज्ञानम्'। (उ० उ० ८)।

एवं संलक्ष्यते दण्डिनः कृतौ शब्दयोजनसौष्ठवमनुप्रासमाधुर्यं यमकयोजनं वर्णनवैशद्यमोष्ठ्यवर्णपरिहाराञ्चितं रम्यं वर्णनं युक्तिप्रत्युक्तिप्रशस्तं पदे पदे पदलालित्यम्। सर्वमदस्तस्य कृतौ कमनीयतामादधाति।

९. माघे सन्ति त्रयो गुणाः

माघस्य कवित्वम्—महाकविर्माघः सुरगवी-काव्याकाशे विद्योतमानं स्वप्रभानिरस्तान्यतेजःप्रसरम् अनुपमं नक्षत्रम्। तस्यापूर्वा कान्तिः समग्रमपि वाङ्मयं रोचयतितमाम्। तस्य विविधशास्त्रावगाहिनी सूक्ष्मेक्षिका प्रतिभा सुसूक्ष्मपि तथ्यम् आत्मसात्कृत्वा पुरः स्फुरदिव प्रस्तौति। कविरयं न केवलं काव्यशास्त्रस्यैव पारदृश्वा, अपि तु व्याकरणशास्त्रस्य, राजनीतेः, अर्थशास्त्रस्य, धर्मशास्त्रस्य, कामशास्त्रस्य, दर्शनानाम्, ज्योतिषस्य, संगीतस्य, पाकशास्त्रस्य, हस्तिविद्यायाः, अश्वशास्त्रस्य, पुराणीदीनां च सारविदनुपमो मनीषी। अस्य चमत्कृतिकरं पाण्डित्यं प्रेक्षं प्रेक्षं प्रेक्षावन्तोऽस्य कवित्वं प्रशंसन्ति।

माघस्य गौरवम्—केचन माघस्य कवित्वं तथाऽऽह्लादकरं मन्वते यत्ते तदर्थं स्वजीवनसमर्पणमपि सुन्दरं मन्यन्ते। अतएव साधूच्यते—'मेघे माघे गतं वयः' अर्थात् मेघदूतस्य शिशुपालवधस्य चानुशीलने आयुर्व्यतीतम्। काव्येऽस्मिन् तस्य विशालं शब्दकोशमुद्वीक्ष्य केनापि निगद्यते-'नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते' अर्थात् शिशुपालवधस्य नवसर्गाणां समाप्तौ न नवीनः शब्दोऽवशिष्यते। तेन नवसर्गेषु तथा नवनवाः शब्दाः प्रयुक्ताः, यथा तत्र शब्दकोश-राशिरुपलभ्यते। तस्य काव्ये प्रतिपदं पदलालित्यं माधुर्यं च प्रेक्ष्य विपश्चिद्भिरुदाह्रियते यत्—'काव्येषु माघः' इति। अनर्घराघवनाटककृतो मुरारेः पाण्डित्यपरिपूर्णं नाटकं प्रेक्ष्य केनाप्यभिधीयते यद् मुरारिर्जिज्ञासितश्चेद् माघे मन आधेयम्। 'मुरारिपदचिन्ता चेत् तदा माघे रतिं कुरु'। भारविं सर्वतोभावेन भावावल्याऽतिशयानं माघं प्रेक्ष्य केनापि निगद्यते—'तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः'।

माघस्य कृतित्वम्—कवेरेतस्य गौरवाधायकं ग्रन्थरत्नम् एकमेव 'शिशुपालवध'-नामकम् उपलभ्यते। अस्मिन् महाकाव्ये विंशतिः सर्गाः, १६४५ श्लोकाश्च विद्यन्ते। १५ सर्गे क्षेपकाः श्लोकाः ३४, ग्रन्थान्ते च कविवंशवर्णनश्लोकाः ५, तेषामपि समाहारे श्लोकसंख्या १६८४ भवति।

माघस्य वैशिष्ट्यम्—विपश्चिद्भिः महाकवेः कालिदासस्य कृतिषु उपमानां प्राधान्यम्, भारवेः कृतौ किरातार्जुनीये अर्थगौरवस्य वैशिष्ट्यम्, दण्डिनः कृतौ दशकुमारचरिते पदलालित्यम्, माघस्य च कृतौ शिशुपालवधे त्रयाणामपि पूर्वोक्तानां गुणानां समन्वयं समीक्ष्य साह्लादम् उद्घोष्यते यद्—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

एतदत्रावधेयं यद् माघो यद्यपि त्रयाणामपि गुणानां स्वकाव्ये समाहारं विधत्ते, तत्र तत्र च वैशिष्ट्यं सौन्दर्यं माधुर्यं चापि धत्ते, तथापि नोपमाप्रयोगे स कालिदासम् अतिशेते, अर्थगौरवे च भारविम्। पदलालित्ये नूनं स दण्डिनम् अतिशेते। तस्य पदमाधुर्यं सर्वातिशायि। माघः त्रयाणामपि गुणानां संकलने नितरां साफल्यम् अवापेत्येव तस्य महत्त्वम्। तस्य च तादृशं प्रावीण्यं यथा नानाविधवर्णने तस्याप्रतिहता प्रतिभा।

माघस्य शैली—महाकवेर्माघस्य भावपक्षापेक्षया कलापक्षः प्रशस्यतरः। यद्यपि भावपक्षस्यापि मनोज्ञत्वं माधुर्यं हृद्यत्वं च पदे पदेऽवलोक्यते, तथापि नात्र कस्यापि सुधियो

विप्रतिपत्तिः यन्माघः कलापक्षाश्रयणे कवीन् अन्यान् अतिशेते। क्वचित् अलंकारप्रयोगाः, विशेषतश्चित्रालंकारप्रयोगाः, क्वचिद् व्याकरण-नैपुण्य-प्रदर्शनम्, क्वचिद् छन्दोरचना-दक्षतोपयोगः, क्वचित् यमकाद्यलंकाराणां प्रयोगबाहुल्यम्, क्वचित् कोमल-कान्त-पदावल्याः संधानम्, क्वचित् शास्त्रीय-पाटव-प्रदर्शनम्, तस्य कलात्मिक्या रुचेः परिचायिकानि सन्ति। महाकविर्भारविस्तस्य आदर्शरूपोऽभूत्। तस्य सरणिमनुसृत्य सोऽपि कलात्मक-पाण्डित्य-प्रदर्शने कृतमतिरभूत्। भारवेः स्वोत्कर्षं साधयितुं स तदीयां सरणिम् अनुसृत्य तत्रोत्कर्षम् अवाप। कलापक्षाश्रयणे स न केवलं भारविमेव, अपि तु महाकविं भट्टिमपि अतिक्रामति।

माघस्योपमा-वैशिष्ट्यम्—माघे सुरुचिपूर्णाः शतश उपमाः समुपलभ्यन्ते। तत्र क्वचित् शास्त्रीयं ज्ञानम्, क्वचित् काव्यगौरवम्, क्वचिद् नीतिशास्त्रतत्त्वम्, क्वचिच्च विविधविद्याविशारदत्वं तस्य गरिमाणं प्रथयति। संगीतशास्त्रस्य काव्यशास्त्रस्य च महत्त्वं वैचित्र्यं चोपमया प्रकटयति यद् वाङ्मये कतिपये एव वर्णाः सन्ति, संगीतशास्त्रे च सप्त स्वराः, परं तेषामुपादानेन कथमिव वैचित्र्यजनकं शास्त्रम् उदेति।

वर्णैः कतिपयैरेव ग्रथितस्य स्वरैरिव।
अनन्ता वाङ्मयस्याहो गेयस्येव विचित्रता॥

शिशु० २.७२

भाग्यपुरुषकारयोर्द्वयोरपि परस्परापेक्षित्वम् अनिवार्यत्वेनाङ्गीकरणं च तथैवावश्यकं यथा सत्कवये शब्दार्थयोर्द्वयोरपि संग्रहः। उपमया साध्विदं विशदयति सः।

नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते॥

शि० २.८६

उपमाप्रयोगे काव्यशास्त्रीयं ज्ञानं संपुष्णता तेनोच्यते यद् यथा संचारिभावाः स्थायिभावं पोषयन्ति, तथैव विजिगीषुं नृपमन्ये सहायकाः।

स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावाः संचारिणो यथा।
रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभृतः॥

शि० २.८७

नीतिशास्त्रविदग्धतां विशदयता तेनोच्यते यद् यथा स्वक्षेमकामेन वृद्धिं प्राप्नुवन् रोगो नोपेक्ष्यः, तथैव एधमानोऽरातिरपि नोपेक्षामर्हति।

उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता।
समौ हि शिष्टैराम्नातौ वत्स्र्यन्तावामयः स च॥

शि० २.१०

स्वकवित्वस्य कल्पनामनोज्ञत्वस्य च संकलनं विदधता तेनोच्यते यद् यथा स्वल्पवयस्का बाला मातरम् अन्वेति, तथैव प्रातःकालिकी सन्ध्या रजनिम् अनुगच्छति।

अनुपतति विरावैः पत्रिणां व्याहरन्ती
रजनिमचिरजाता पूर्वसन्ध्या सुतेव॥

शि० ११.४०

उपमा-प्रयोगे शास्त्रीयस्य पाण्डित्यस्यापि अपूर्वः समन्वयो दृश्यते। सांख्यदर्शनानुसारं पुरुष उदासीनोऽकर्ता च, परं बुद्धिकृतकर्मणां फलभाग् भवति, तथैव साक्षिमात्रोऽपि कृष्णः सेनाकृतविजयस्य फलभोक्ता भविष्यति।

विजयस्त्वयि सेनायाः साक्षिमात्रेऽपदिश्यताम्।
फलभाजि समीक्ष्योक्ते बुद्धेर्भोग इवात्मनि॥

शि० २.५९

उपमाप्रयोगे मनोज्ञायाः कल्पनाया अपि सदुपयोगः प्रशस्यः। कृष्णं दिदृक्षमाणायाः कस्याश्चिद् रमण्या गवाक्षगतं वदनकमलम् उदयाद्रिकन्दरास्थितसुधांशुमण्डलमिव व्यराजत।

अधिरुक्ममन्दिरगवाक्षमुल्लसत् सुदृशो रराज मुरजिद्दिदृक्षया।
वदनारविन्दमुदयाद्रिकन्दराविवरोदरस्थितमिवेन्दुमण्डलम्॥

शि० १३.३५

नारदश्रीकृष्णयोः सितासिते कान्ती तथैवारोचतां यथा रात्रौ पत्रान्तरगोचराः सुधांशोर्मरीचयः।

रथाङ्गपाणेः पटलेन रोचिषाम् ऋषित्विषः संवलिता विरेजिरे।
चलत्पलाशान्तरगोचरास्तरोस्तुषारमूर्तेरिव नक्तमंशवः॥

शि० १.२१

माघस्यार्थगौरवम्—माघेऽर्थगौरवान्वितानां श्लोकानां महती परम्परा। यद्यप्यर्थगौरवं पदे पदे प्रेक्ष्यते, तथापि द्वितीयः सर्गः सर्वातिशायी। तत्र प्रतिपदम् अर्थगौरवं दृग्गोचरताम् उपयाति। कतिपये एव श्लोका उदाहरणार्थम् अत्र प्रस्तूयन्ते। अत्रापि तस्य विविधशास्त्रज्ञता, कल्पनाकाम्यत्वम्, भावोत्कर्षः, सूक्ष्मेक्षणदक्षता, नीतिज्ञता, व्यवहारपाटवम्, लोकाराधनक्षमत्वं च समीक्ष्यते। तस्य कतिपयानि हृद्यानि पद्यानि सुभाषितरूपेण प्रयुज्यन्ते। कृष्ण एव रक्षोनिकरं विनाशयितुं क्षमो यथा भास्करस्तमोनिचयम्।

ऋते रवेः क्षालयितुं क्षमेत कः, क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः। *शि०१.३८*

मनस्विता जीवनोन्नयिका। मानहीनस्य जीवनं तृणमिव तुच्छम्। अनेकशो मनस्वितायाः स्वाभिमानस्य च गुणगौरवं वर्ण्यते कविना।

पादाहतं यदुत्थाय मूर्धानम् अधिरोहति।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद् वरं रजः॥

शि० २.४६

सदाभिमानैकधना हि मानिनः।

शि० १.६७

स्वीयं दर्शनशास्त्रवैदग्ध्यं प्रकटयता तेन दार्शनिकभावानुबद्धा बहवः श्लोका उपन्यस्ताः। तद्यथा—

सतीव योषित् प्रकृतिः सुनिश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि।

शि० १.७२

श्रीकृष्णवर्णने सांख्योक्तपुरुषवर्णनं तेन प्रस्तूयते यद्—

उदासितारं निगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथंचन।
बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग् विदुः पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः ॥

शि० १.३३

रामणीयकस्य लक्षणं तस्य बुद्धिवैशारद्यं सूचयति—

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः। *शि० ४.१७*

अर्थगौरववन्तोऽन्ये केचन श्लोका दिङ्मात्रम् उदाह्रियन्ते। तद्यथा—सर्वेषां स्वार्थसिद्धिरेवाभीष्टा। 'सर्वः स्वार्थं समीहते' (२.६५)। सुकविः स्वीये काव्ये गुणत्रयमेवाश्रयते। 'नैकमोजः प्रसादो वा रसभावविदः कवेः' (२.८३)। सामसहितैव दण्डनीतिः साधीयसी। 'मृदुव्यवहितं तेजो भोक्तुमर्थान् प्रकल्पते' (२.८५)। सत्काव्येऽर्थगौरवाधानम् अनिवार्यम्। 'अनुज्झितार्थसंबन्धः प्रबन्धो दुरुदाहरः' (२.७३)। महान्तो महद्भिरेव विवदन्ते नाधमैः। 'अनुहुंकुरुते घनध्वनिं नहि गोमायुरुतानि केसरी' (१६.२५)। अरातिकृता तिरस्क्रिया दुःसहा। 'परिभवोऽरिभवो हि सुदुःसहः' (६.४५)। कट्वपि भेषजं गदहारि। 'अरुच्यमपि रोगघ्नं निसर्गादेव भेषजम्' (१९.८९)। सन्तः सतामेव गृहाणि अनुगृह्णन्ति। 'गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः' (१.१४)। कवयो महीपाश्चार्थमेव चिन्तयन्ति। 'कवय इव महीपाश्चिन्तयन्त्यर्थजातम्' (११.६)। स्त्रीणां रोदनं बलम्। 'रुदितमुदितमस्त्रं योषितां विग्रहेषु' (११.३५)। दैवदुर्विपाको दुर्निवारः। 'हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः' (११.६४)।

माघस्य पदलालित्यम्—माघे पदलालित्यं पदे पदे प्राप्यते। पदसौकुमार्यम्, वर्ण-माधुर्यम्, भाषायाः संगीतात्मकत्वम्, भावानुसारि भाषाश्रयणम्, भाषायाम् आरोहावरोहक्रमश्च पदलालित्यं समेधयति। भाषायाः संगीतात्मकत्वं यथा—

मधुरया मधुबोधितमाधवी-मधुसमृद्धितसमेधितमेधया।
मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मद-ध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे॥ *(६.२०)*

यमकालंकारालंकृतभाषाश्रयणेन माधुर्यम्। यथा—

नवपलाशपलाशवनं पुरः, स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्, स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः॥ *(६.२)*

भावानुसारि भाषाश्रयणेन सौकुमार्यम्। यथा—

वदनसौरभलोभपरिभ्रमद् - भ्रमरसंभ्रमसंभृतशोभया।
चलितया विदधे कलमेखला-कलकलोऽलकलोलदृशाऽन्यया॥ *(६.१४)*

अन्ये च पदलालित्यवन्तः श्लोका दिङ्मात्रम् उदाह्रियन्ते। यथा— 'अचूचुरच्चन्द्रमसोऽभिरामताम्' (१.१६), 'न रौहिणेयो न च रोहिणीशः' (३.६०), 'प्रभावनीके तनवै जयन्तीः——प्रभावनी केतनवैजयन्तीः' (६.६९) 'विकचकमलगन्धैरन्धयन् भृङ्गमालाः, सुरभितमकरन्दं मन्दमावाति वातः' (११.१९)।

एवं गुणत्रयेऽपि माघस्य वैशारद्यम्।

१०. बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्

निखिलेऽपि संस्कृतवाङ्मये कविकुलगुरुः कालिदासो यथा रचनाचातुर्येण कल्पनावैचित्र्येण च पद्यबन्धे गरिष्ठो वरिष्ठश्च, तथैव गद्यकाव्यनिबन्धने कविवरो बाणोऽतिशेतेऽन्यान् सर्वानप्यभिरूपान्। पद्यरचनायां केषुचिदेव पद्येषूक्तिवैचित्र्येण भावगाम्भीर्येण कृतिकौशलेन वाऽपूर्वा छटा संजायतेऽखिलेऽपि काव्ये। परं नैतावतैव संभाव्यते गद्यकाव्येऽपि तादृश्यनुपमा कान्तिः। गद्यकाव्ये तु भूयान् श्रमोऽपेक्ष्यते। पदे पदे वाग्वैचित्र्यमर्थगाम्भीर्यं भाववैभवं कल्पनाकाम्यत्वं च दुर्निवारम्। अतः साधूच्यते—'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'। गद्यकाव्यबन्धे दण्डी सुबन्धुश्चेति द्वावेवैतौ बाणेन समं सनामग्राहमुल्लेख्यौ। परं बाणो गरिष्ठो वरिष्ठश्चैतेषां भूयिष्ठया भावाभिव्यक्त्या, साधिष्ठया शैल्या, म्रदिष्ठया मनोहरतया, श्रेष्ठया साधुतया, प्रेष्ठया पदपरिष्कृत्या च। अतः सोड्ढलेन 'बाणः कवीनामिह चक्रवर्ती' इत्युक्तम्। धर्मदासेन तरुणीलावण्यमस्य कृतौ दृश्यते। 'रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति। सा किं तरुणी ? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य'। गङ्गादेव्या सरस्वतीवीणाध्वनिरेव कृतिष्वस्य निशम्यते।'वीणापाणिपरामृष्टवीणानिक्वाणहारिणीम्। भावयन्ति कथं वाऽन्ये भट्टबाणस्य भारतीम्।' जयदेवो बाणं पञ्चबाणेन कामेनोपमिमीते। 'हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः।' श्रीचन्द्रदेवोऽमुं कविकुञ्जरगण्डभेदकं सिंहं गणयति। 'आः सर्वत्र गभीरधीरकविताविन्ध्याटवीचातुरी-संचारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः।'

महाकवेर्बाणस्य जनिकालविषये वंशादिविषये च न काचन विप्रतिपत्तिः। हर्षचरितस्यादौ तेन वंशादिविवरणं महता विस्तरेणोपस्थाप्यते। जनकोऽस्य चित्रभानुर्जननी राजदेवी च। सम्राजो हर्षस्य समकालीनत्वात् जनिकालोऽस्येसवीयसप्तमशताब्द्याः पूर्वार्धोऽङ्गीक्रियते। हर्षचरितं कादम्बरी चेति ग्रन्थद्वयमस्य प्रधानतः कृतित्वेनाङ्गीक्रियते। कृतयोऽन्या विवादविषया एव विदुषाम्।

बाणस्य वस्तुविवृतौ वर्णने चापूर्वं वैशारद्यं वीक्ष्य मन्त्रमुग्धत्वमनुभवन्ति मनीषिणः। वर्ण्यस्य वस्तुनोऽणुतमामपि विवृतिं न विजहाति, न किञ्चिदुज्झति परस्मै यत्तेन शक्यं वर्णयितुम्। वर्णनानां व्यापित्वात् सर्वाङ्गीणत्वात् सूक्ष्मतमविवरणसमन्वितत्वाच्च 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' इति भूयोभूयो व्यादिश्यते। एतदेवात्र समासतः समुपस्थाप्यते।

हर्षचरिते कवेर्वर्णनचातुरी बहुशोऽवलोक्यते। तेषु मुख्यत उल्लेख्यः प्रसङ्गाः सन्ति—मुमूर्षोर्नृपस्य प्रभाकरस्य वर्णनम्, वैधव्यदुःखपरिहाराय सतीत्वमाश्रयन्त्या यशोवत्या वर्णनम्, सिंहनादस्योपदेशः, दिवाकरमित्रस्य राज्यश्रीसान्त्वनम्। कवेर्गरिमा कमनीयां कादम्बरीमेवाश्रित्याऽवतिष्ठते इत्यत्र नास्ति विप्रतिपत्तिर्विदुषाम्। यत्र तत्र साङ्गोपाङ्गं वर्णनं महता श्रमेण बाणेनोपस्थाप्यते, तेऽत्र प्रसङ्गा नामग्राहं दिङ्मात्रं प्रस्तूयन्ते। तद्यथा—शूद्रकवर्णनम्, चाण्डालकन्यावर्णनम्, विध्याटवीवर्णनम्, पम्पासरोवर्णनम्, प्रभातवर्णनम्, शबरसेनापतिवर्णनम्, हारीतवर्णनम्, जाबाल्याश्रमवर्णनम्, जाबालिवर्णनम्, सन्ध्यावर्णनम्, उज्जयिनीवर्णनम्, तारापीडवर्णनम्, इन्द्रायुधवर्णनम्, राजभवनवर्णनम्, अच्छोदसरोवर्णनम्, सिद्धायतनवर्णनम्, महाश्वेतावर्णनम्, कादम्बरीवर्णनं च।

समासतः कानिचिदुदाहरणान्यत्र प्रस्तूयन्ते। सन्ध्यावर्णनं यथा—'अनेन य समयेन परिणतो दिवसः। स्नानोत्थितेन मुनिजनेनार्घविधिमुपपादयता यः क्षितितले दत्तस्तमम्बरतलगतः साक्षादिव रक्तचन्दनाङ्गरागं रविरुदवहत्।......उद्यत्सप्तर्षिसार्थस्पर्शपरिजिहीर्षयेव संहृतपादः

पारावतचरणपाटलरागो रविरम्बरतलादलम्बत।......विहाय धरणितलमुन्मुच्य कमलिनीवनानि शकुनय इव दिवसावसाने तपोवनशिखरेषु पर्वताग्रेषु च रविकिरणाः स्थितिमकुर्वत।' प्रभातवर्णनं यथा—'एकदा तु प्रभातसन्ध्यारागलोहिते गगनतलकमलिनीमधुरक्तपक्षसंपुटे वृद्धहंस इव मन्दाकिनीपुलिनादपरजलनिधितटमवतरति चन्द्रमसि,......सन्ध्यामुपासितुमुत्तराशावलम्बिनि मानससरस्तीरमिवावतरति सप्तर्षिमण्डले,......इतस्ततः संचरत्सु वनचरेषु, विजृम्भमाणे श्रोत्रहारिणि पम्पासरःकलहंसकोलाहले,......क्रमेण च गगनतलमार्गमवतरतो दिवसकरवारणस्यावचूल-चामरकलाप इवोपलक्ष्यमाणे मञ्जिष्ठारागलोहिते किरणजाले, शनैः शनैरुदिते भगवति सवितरि०। कादम्बरीवर्णनं यथा—'पृथिवीमिव समुत्सारितमहाकुलभूभृद्व्यतिकरां शेषभोगेषु निषण्णाम्, गौरीमिव श्वेतांशुकरचितोत्तमाङ्गाभरणाम्, इन्दुमूर्तिमिवोद्दाममन्मथविलास- गृहीतगुरुकलत्राम्, आकाशकमलिनीमिव स्वच्छाम्बरदृश्यमानमृणालकोमलोरुमूलाम्, कल्पतरुलतामिव कामफलप्रदाम्,......कादम्बरीं ददर्श'। अच्छोदसरोवर्णनं यथा—'प्रविश्य च तस्य तरुखण्डस्य मध्यभागे मणिदर्पणमिव त्रैलोक्यलक्ष्म्याः, स्फटिकभूमिगृहमिव वसुन्धरादेव्याः, निर्गमनमार्गमिव सागराणाम्, निस्यन्दमिव दिशाम्, अंशावतारमिव गगनतलस्य, कैलासमिव द्रवतामापन्नम्, तुषारगिरिमिव विलीनम्, चन्द्रातपमिव रसतामुपेतम्, हराट्टहासमिव जलीभूतम्......मदनध्वजमिव मकराधिष्ठितम्,......मलयमिव चन्दनशिशिरवनम्, असत्साधन- मिवादृष्टान्तम्, अतिमनोहरम्, आह्लादनं दृष्टेः, अच्छोदं नाम सरो दृष्टवान्'। जाबालिवर्णनं यथा—'स्थैर्येणाचलानां गाम्भीर्येण सागराणां तेजसा सवितुः प्रशमेन तुषाररश्मेर्निर्मलतयाऽम्बरतलस्य संविभागमिव कुर्वाणम्,......शरत्कालमिव क्षीणवर्षम्, शन्तनुमिव प्रियसत्यव्रतम्,......वाडवानलमिव सततपयोभक्षम्, शून्यनगरमिव दीनानाथविपन्नशरणम्, पशुपतिमिव भस्मपाण्डुरोमाश्लिष्टशरीरं भगवन्तं जाबालिमपश्यम्'।

पाञ्चाली रीतिर्बाणस्य। 'शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते' इति बाणोक्तौ शब्दार्थयोर्मञ्जुलः समन्वयः समीक्ष्यते। विषयानुरूपमेव तस्य शब्दावल्यपि विलोक्यते। यथा—विन्ध्याटवीवर्णने ओजःसमासभूयस्त्वम्। 'उन्मदमातङ्गकपोलस्थलगलितसलिलसिक्तेनेवानवरतमेलावनेन मदगन्धिनान्धकारिता, प्रेताधिपनगरीव सदासन्निहितमृत्युभीषणा महिषाधिष्ठिता च, कात्यायनीव प्रचलितखड्गभीषणा रक्तचन्दनालंकृता च'। वसन्तवर्णने च माधुर्यमिश्रितत्वम्। 'कोमलमलयमारुतावतारतरङ्गितानङ्गध्वजांशुकेषु, मधुकरकुलकलङ्ककालीकृतकालेयक-कुसुमकुड्मलेषु, मधुमासदिवसेषु'।

तस्य वर्णनानि वनितामिव विभूषणानि विभूषयन्त्यलंकरणैरलंकाराः। उपमारूपकोत्प्रेक्षा-श्लेषविरोधाभासपरिसंख्यैकावल्यादयोऽलंकाराः पदे पदे प्राप्यन्ते तत्तत्प्रसङ्गेषु। परिसंख्या यथा शूद्रकवर्णने—'यस्मिंश्च राजनि जितजगति पालयति महीं चित्रकर्मसु वर्णसंकराः, रतेषु केशग्रहाः, काव्येषु दृढबन्धाः, शास्त्रेषु चिन्ता'। विरोधाभासो यथा शूद्रकवर्णने—'आयतलोचनमपि सूक्ष्मदर्शनम्, महादोषमपि सकलगुणाधिष्ठानम्, कुपतिमपि कलत्रवल्लभम्, अत्यन्तशुद्धस्वभावमपि कृष्णचरितम्'। श्लेषमूलोपमा यथा चाण्डालकन्यावर्णने—'नक्षत्रमालामिव चित्रश्रवणाभरणभूषिताम्, मूर्छामिव मनोहारिणीम्, दिव्ययोषितमिवाकुलीनाम्, निद्रामिव लोचनग्राहिणीम्, अमूर्तामिव स्पर्शवर्जिताम्'। विन्ध्याटवीवर्णने उपमा यथा—'चन्द्रमूर्तिरिव सततमृक्षसार्थानुगता हरिणाध्यासिता च, जानकीव प्रसूतकुशलवा निशाचरपरिगृहीता च'। विरोधाभासो यथा विन्ध्याटवीवर्णने—

'अपरिमितबहुलपत्रसंचयापि सप्तपर्णोपशोभिता, क्रूरसत्त्वापि मुनिजनसेविता, पुष्पवत्यपि पवित्रा'। विरोधाभासो यथा शबरसेनापतिवर्णने—'अभिनवयौवनमपि क्षपितबहुवयसम्, कृष्णमप्यसुदर्शनम्, स्वच्छन्दचारमपि दुर्गैकशरणम्'। उत्प्रेक्षा यथा सन्ध्यावर्णने—'अपरसागराम्भसि पतिते दिनकरे पतनवेगोत्थितमम्भःसीकरनिकरमिव तारागणमम्बरमधारयत्'। श्लेषो यथा राजभवनवर्णने—'उत्कृष्टकविगद्यमिव विविधवर्णश्रेणिप्रतिपाद्यमानाभिनवार्थसंचयम्, नाटकमिव पताकाङ्क-शोभितम्, पुराणमिव विभागावस्थापितसकलभुवनकोशम्, व्याकरणमिव प्रथममध्यमोत्तम-पुरुषविभक्तिस्थितानेकादेशकारकाख्यातसंप्रदानक्रियाव्ययप्रपंचसुस्थितम्'। श्लेषः सन्ध्या-वर्णने यथा—'क्रमेण च रविरस्तमुपागत इत्युदन्तमुपलभ्य जातवैराग्यो धौतदुकूलवल्कलधवलाम्बरः सतारान्तःपुरः पर्यन्तस्थितनुतिमिरतमालवनलेखं सप्तर्षिमण्डलाध्युषितम् अरुन्धतीसंचरण-पवित्रम् उपहिताषाढम् आलक्ष्यमाणमूलम् एकान्तस्थितचारुतारकमृगम् अमरलोकाश्रममिव गगनतलम्.........अमृतदीधितिरध्यतिष्ठत्'। एकावली यथा महाश्वेताजन्मवर्णने—'क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन नवयौवनेन पदम्'। परिसंख्या यथा जाबाल्याश्रमवर्णने—'यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु, मुखरागः शुकेषु न कोपेषु, तीक्ष्णता कुशाग्रेषु न स्वभावेषु, चञ्चलता कदलीदलेषु न मनःसु, चक्षूरागः कोकिलेषु न परकलत्रेषु,.........मेखलाबन्धो व्रतेषु नेर्ष्याकलहेषु,.......रामानुरागो रामायणेन न यौवनेन, मुखभङ्गविकारो जरया न धनाभिमानेन'। 'यत्र च महाभारते शकुनिवधः, पुराणे वायुप्रलपितं,.........शिखण्डिनां नृत्यपक्षपातो, भुजङ्गमानां भोगः, कपीनां श्रीफलाभिलाषः, मूलानामधोगतिः'।

बाणः श्लिष्टसमस्तदीर्घवाक्यप्रयोगमनु प्रयुङ्क्ते लघुपदन्यासां वाक्यावलीम्। स यथैव दक्षो दीर्घवाक्यरचनायां तथैव पटुर्लघुवाक्यप्रयोगेऽपि। यत्र भावगाम्भीर्यमर्थगौरवं च तत्र सरला लघुपदा वाक्यावली, इतरत्र च श्लिष्टा समस्ता दीर्घा च। यथा शुकनासोपदेशेऽर्थगौरवत्वात् लघुपदप्रयोगः—'मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्यः, न पूजयन्ति द्विजातीन्, न मानयन्ति मान्यान्, नार्चयन्त्यर्चनीयान्, नाभ्युत्तिष्ठन्ति गुरून्'। महाश्वेताविलापे, कपिञ्जलकृताक्रन्दने च सन्ति लघूनि वाक्यानि। तद्यथा—कपिञ्जलकृतं रोदनम्—'हा हतोऽस्मि, हा दग्धोऽस्मि, हा वञ्चितोऽस्मि, हा किमिदमापतितम्, किं वृत्तम्, उत्सन्नोऽस्मि,.........हा धर्म निष्परिग्रहोऽसि, हा तपो निराश्रयोऽसि, हा सरस्वति विधवासि, हा सत्यम् अनाथमसि, हा सुरलोक शून्योऽसि.........इत्येतानि चान्यानि च विलपन्तं कपिञ्जलमश्रौषम्'। जाबालिवर्णने लघुपदविन्यासो यथा—'प्रवाहः करुणरसस्य, संतरणसेतुः संसारसिन्धोः, आधारः क्षमाम्भसाम्,.......सागरः सन्तोषामृतस्य, उपदेष्टा सिद्धिमार्गस्य,.....सखा सत्यस्य, क्षेत्रम् आर्जवस्य, प्रभवः पुण्यसंचयस्य०॥ शुकनासोपदेशे लक्ष्मीस्वरूपवर्णने लघुपदविन्यासो यथा—'न परिचयं रक्षसि। नाभिजनम् ईक्षते। न रूपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते। न शीलं पश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति। न श्रुतमाकर्णयति। न धर्ममनुरुध्यते। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञतां विचारयति'। उज्जयिनीवर्णने, राजभवनवर्णने, शुकनासोपदेशे, पुण्डरीकाय कपिञ्जलोपदेशे च संलक्ष्यते बाणस्यापूर्वा वर्णनचातुरी। स तथा प्रस्तवीति प्रत्येकं वस्तु यथा चित्रपटे स्वतः सन्दृश्यमाना काचित् कथा घटना वोपतिष्ठति। एवं ज्ञायते यत् तस्य वर्णनचातुरी सर्वातिशायिनी। कवीनामन्येषां वर्णनं च बाणोच्छिष्टमेव।

११. कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते

श्रीभवभूतिः कान्यकुब्जेश्वरस्य श्रीमतो यशोवर्मण आश्रितो महाकविरित्यत्र सर्वेषां सुधियामैकमत्यम्। महाकविना बाणेन हर्षचरिते महाकविगणनाप्रसङ्गे नास्याभिधानमभ्यधायीति महाकवेर्बाणात् पूर्वं जनिकालमस्य नेति निर्णीयते। एवं भवभूतेर्जनिकालः ७०० ईसवीस्य सन्निधौ स्वीक्रियते। विदर्भ (बरार)-प्रदेशस्थपद्मपुरनगरवास्तव्योऽयं श्रीकण्ठपदलाञ्छनो भवभूतिनामाऽभवत्। पितामहोऽस्य भट्टगोपालो, जनको नीलकण्ठो, जननी जातुकर्णी, गुरुश्च ज्ञाननिधिर्नाम। नाटकत्रयमस्य समुपलभ्यते—महावीरचरितम्, मालतीमाधवम्, उत्तररामचरितं च। व्याकरणन्यायमीमांसाशास्त्रेषु निष्णातत्वादेव 'पदवाक्यप्रमाणज्ञ' इत्युपाधिसमलंकृतोऽभूत्। वेदेष्वन्येषु च शास्त्रेष्वस्याव्याहता गतिः। वाग्देवी वश्येव समन्ववर्ततेति तथ्यं स्वयमेवोद्घोष्यते तेन। 'यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते (उत्तर० १.२)।

करुणरसनिस्यन्दे नातिशेतेऽन्यो महाकविर्महाकविममुम्। अतः साधूच्यते—'कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते'। करुणरसोद्रेकमालोक्यैव कवेरेतस्य कृतिषु कृतिभिः कृतानि कतिपयानि प्रशंसापद्यानि। आर्यासप्तशत्यां (१.३६) श्रीगोवर्धनाचार्यो भवभूतेर्भारतीं भूधरसुतया गौर्योपमिमीते। तत्कृतकारुण्ये ग्रावाणोऽपि रुदन्त्यन्येषां तु का कथा। 'भवभूतेः संबन्धाद् भूधरभूरेव भारती भाति। एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा'। कारुण्ये कालिदासादप्यतिरिच्यते। अत उच्यते—'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते'।

करुणरसप्रवाहपरीक्षया परीक्ष्यते चेन्नाटकत्रयमस्य तर्हि उत्तररामचरितमेव सर्वातिशायि। यथाऽत्र कारुण्यरसनिस्यन्दो, न तथाऽन्यत्र। किं कारुण्यम्? करुणरसस्य प्रवाह एव कारुण्यमिति। इदमत्रावधेयम्। भवभूतिः करुणरसं रसत्वेनैव नातिष्ठतेऽपि तु रसानां समेषां मूलभूतत्वेन करुणमेवैकं रसं मनुते। रसा अन्येऽस्यैव विवर्तरूपेण परिणामरूपेण वा परिणमन्ते इति करुणरसस्य महत्त्वमातिष्ठते। आह च—'एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्, भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्। आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारान्, अम्भो यथा सलिलमेव हि तत् समग्रम्'। (उत्तर० ३.४७)। उत्तररामचरिते चोदाह्रियतेऽनेन यत्कथमन्ये रसाः करुणरसमूलका इति एतदेवात्र विविच्यते उदाह्रियते च।

उत्तररामचरितस्य प्रथमेऽङ्के आदावेव पितृवियोगविषण्णां जानकीमाश्वासयति दाशरथिः। गृहस्थधर्मस्य विघ्नव्याप्तत्वं व्याचष्टे। 'संकटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता' (उ० १.८)। बन्धुजनवियोगस्य सन्तापकारित्वं सीतैवाभिधत्ते। 'सन्तापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति' (अंक १)। रामश्च संसारस्यारुन्तुदत्वं विशदयति। 'एते हि हृदयमर्मच्छिदः संसारभावाः' (अंक १)। चित्रवीथ्यां चित्रितानि वृत्तानि वीक्ष्य समुज्जृम्भते तेषां कारुण्यवृत्तिः। जानक्या अग्निपरीक्षायाश्चित्रणं निरीक्ष्य विषण्णां वैदेहीमाश्वासयति रामः—'क्लिष्टो जनः किल जनैरनुरञ्जनीयस्तन्नो यदुक्तमशिवं नहि तत्क्षमं ते'। (१.१४)। जानकीपरिणयचित्रणं प्रेक्ष्य दिवंगतं तातं दशरथं चिन्तयतो विषीदति चेतो रघूद्वहस्य। 'जीवत्सु तातपादेषु——ते हि नो दिवसा गताः' (१.१९)। संभोगशृङ्गारमपि करुणरसमूलकं व्याचष्टे। यथा—कष्टसहस्रसंकुलं काननं विचरतां तेषां जनस्थानमध्यगे प्रस्रवणे गिरौ यामिनीयापनं वर्णयति—'किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगात्——अविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्' (१.२७)। चित्रे रावण-कृतजानकीहरणवृत्तं वीक्ष्य खिद्यते चेतश्चारुचरितस्य राघवस्य। जनस्थाने सति सीताहरणे कथमतप्यत राम इति लक्ष्मणो वर्णयति तस्य कारुण्यपूर्णां स्थितिम्।

तस्य विक्लवत्वं विलोक्य ग्रावाणोऽप्यरुदन्, वज्रस्यापि हृदयं व्यदलत्। 'अथेदं रक्षोभिः कनकहरिणछद्मविधिना, तथा वृत्तं पापैर्व्यथयति यथा क्षालितमपि। जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितैरपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्' (१.२८)। सीताहरणचित्रदर्शनेन विषण्णस्य विलपतश्च दाशरथेरवस्थां वर्णयति बाष्पप्रसरं च मुक्ताहारेणोपमिमीते। 'अयं तावद् बाष्पस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो विसर्पन् धाराभिर्लुठति धरणीं जर्जरकणः। निरुद्धोऽप्यावेगः स्फुरदधरनासापुटतया, परेषामुन्नेयो भवति चिरमाध्मातहृदयः' (१.२९)। प्रियवियोगजन्मा दुःखाग्निः कथं पीडयति मानसमिति व्याहरति—दुःखाग्निर्मनसि पुनर्विपच्यमानो हृन्मर्मव्रण इव वेदनां तनोति' (१.३०)। माल्यवन्नामके गिरौ स्वीयां मोहावस्थां स्मारं स्मारं सीदति स्वान्तं भूयोऽपि राघवस्य। 'विरम विरमातः परं न क्षमोऽस्मि, प्रत्यावृत्तः पुनरिव स मे जानकीविप्रयोगः' (१.३३)। रामबाहुमुपधानत्वेनाश्रित्य यदैव निःशङ्कं स्वपिति सीता, तावदेव समुपतिष्ठते जनप्रवादजन्यो विषमो विषादहेतुर्विप्रयोगः। 'हा हा धिक् परगृहवासदूषणं यद्, वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः। एतत्तत्पुनरपि दैवदुर्विपाकादालर्कं विषमिव सर्वतः प्रसृप्तम्' (१.४०)। वैदेह्या वने प्रवासनं व्याधाय शकुन्तसमर्पण प्रतीयते। 'शैशवात् प्रभृति पोषितां प्रियां, सौहृदाद- पृथगाश्रयामिमाम्। छद्मना परिददामि मृत्यवे, सौनिके गृहशकुन्तिकामिव' (१.४५)। पिशाचेभ्यो बलिवितरणमिव चैतत्कर्म। 'विस्रम्भादुरसि निपत्य जातनिद्राम्, उन्मुच्य प्रियगृहिणीं गृहस्य लक्ष्मीम्।...... क्रव्याद्भ्यो बलिमवि दारुणः क्षिपामि' (१.४९)। सीताप्रवासनेनासह्यां व्यथामनुभवति रामभद्रः। 'दुःखसंवेदनायैव रामे चैतन्यमाहितम्। मर्मोपघातिभिः प्राणैर्वज्रकीलयितं हृदि' (१.४७)।

शम्बूकप्रसङ्गेन दण्डकारण्यं पञ्चवटीं च प्राप्य जानकीसहवासं स्मारं स्मारं खिद्यतेतमां मनो मनस्विनो रामस्य। रामोऽभिधत्ते—'चिराद् वेगारम्भी प्रसृत इव तीव्रो विषरसः, कुतश्चित् संवेगात् प्रचल इव शल्यस्य शकलः। व्रणो रूढग्रन्थिः स्फुटित इव हृन्मर्मणि पुनः, पुराभूतः शोको विकलयति मां नूतन इव' (२.२६)। सीताप्रवासनेन पापिनमात्मानं गणयन् पञ्चवटीदर्शनापात्रं मन्यते। 'यस्यां ते दिवसास्तया सह मया नीता यथा स्वे गृहे,......एकः संप्रति नाशितप्रियतमस्तामेव रामः कथं, पापः पञ्चवटीं विलोकयतु वा गच्छत्वसंभाव्य वा' (२.२८)। मुरला चित्रयति रामावस्थाम्, कथं पुटपाकवद् व्यथयति रामं सीताविवासनशोकः। 'अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः। पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः' (३.१)। तमसा दुःखक्षामां जानकीं करुणस्य मूर्तिमेव गणयति। 'करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी, विरहव्यथेव वनमेति जानकी' (३.४)। दीर्घशोकः शोषयति शरीरं सीतायाः। 'किसलयमिव मुग्धं बन्धनाद् विप्रलूनं, हृदयकमलशोषी दारुणो दीर्घशोकः। ग्लपयति परिपाण्डु क्षाममस्याः शरीरं, शरदिज इव घर्मः केतकीगर्भपत्रम्' (३.५)। रामः पञ्चवटीदर्शनेन भूयोऽपि मोहमापद्यते। दुःखाग्निरुत्पीडयति तम्। 'अन्तर्लीनस्य दुःखाग्नेरद्योद्दामं ज्वलिष्यतः। उत्पीड इव धूमस्य, मोहः प्रागावृणोति माम्' (३.९)। शोकाग्निपीडितो नाभिज्ञायते रामः स्वकार्श्यात्। 'नवकुवलयस्निग्धै......विकलकरणः पाण्डुच्छायः शुचा परिदुर्बलः, कथमपि स इत्युन्नेतव्यस्तथापि दृशोः प्रियः' (३.२२)। वासन्ती सोत्प्रासं सीताया उदन्तं पृच्छति रामम्। 'अयि कठोर यशः किल ते प्रियं, किमयशो ननु घोरमतः परम्। किमभवद् विपिने हरिणीदृशः, कथय नाथ कथं बत मन्यसे' (३.२७)। सशोकमुत्तरति रामः क्रव्याद्भिस्तस्या भक्षणम्। 'त्रस्तैकहायनकुरङ्गविलोलदृष्टेस्तस्याः परिस्फुरितगर्भभरालसायाः। ज्योत्स्नामयीव मृदुबालमृणाल-

कल्पा, क्रव्याद्भिरङ्गलतिका नियतं विलुप्ता (३.३८)। शोकक्षोभे विलपनमेव चित्तनिग्रहोपायः प्रस्तूयते कविना। 'पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाहः प्रतिक्रिया। शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते.' (३.२९)। रामः स्वावस्थां वर्णयति—कथमन्तस्तापस्तापयति तनूं, न तु हरति जीवितम्। 'दलति हृदयं शोकोद्वेगाद् द्विधा तु न भिद्यते, वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम्। ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्, प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम्'। (३.३१)।

अन्ये च करुणरसाप्लुताः प्रमुखाः श्लोका दिङ्मात्रमत्र निर्दिश्यन्ते। ते यथायथं विवेच्याः। सीतापरित्यागविषण्णो रामोऽशरणो रोदितितराम्। 'न किल भवतां देव्याः स्थानं गृहेऽभिमतं तत–स्तृणमिव वने शून्ये त्यक्ता न चाप्यनुशोचिता। चिरपरिचितास्ते भावास्तथा द्रवयन्ति माम्, इदमशरणैरद्यास्माभिः प्रसीदत रुद्यते' (३.३२)।

जानकीवियोगजः शोकस्तिरश्चीनं शल्यमिव विषमयो दन्त इव च पीडयति। 'यथा तिरश्चीनमलातशल्यं, प्रत्युप्तमन्तः सविषश्च दन्तः। तथैव तीव्रो हृदि शोकशङ्कुर्मर्माणि कृन्तन्नपि किं न सोढः' (३.३५)। शोकप्रसारो निवारितोऽपि नं विरमति। 'वेलोल्लोल······भित्त्वा भित्त्वा प्रसरति बलात् कोऽपि चेतोविकार–स्तोयस्येवाप्रतिहतरयः सैकतं सेतुमोघः' (३.३६)। दुःखपीडितं रामं जगन्निर्जनमिवाभाति। 'हा हा देवि स्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः, शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि' (३.३८)। पूर्वो वियोगो रावणविनाशावधिरभूत्, अयं च निरवधिः। 'उपायानां भावाद······वियोगो मुग्धाक्ष्याः स खलु रिपुघातावधिरभूत्, कटुस्तूष्णीं सह्यो निरवधिरयं तु प्रविलयः' (३.४४)। पुत्रीनाशविषण्णो जनको न धृतिमावहति। 'अपत्ये यत्तादृग्······पटुर्धारावाही नव इव चिरेणापि हि न मे, निकृन्तन्मर्माणि क्रकच इव मन्युर्विरमति' (४.३)। संबन्धिवियोगजानि दुःखानि प्रियजनदर्शने नितरां वर्धन्ते। 'सन्तानवाहीन्यपि मानुषाणां, दुःखानि संबन्धिवियोगजानि। दृष्टे जने प्रेयसि दुःसहानि, स्रोतःसहस्रैरिव संप्लवन्ते' (४.८)। शोके सर्वमपि दुःखायैव। 'अलं वा तत् स्मृत्वा दहति यदवस्कन्द्य हृदयम्' (४.१४)। लवदर्शनेन सीतां संस्मृत्य जनको नितरां विषीदति। 'वत्सायाश्च······हा हा देवि किमुत्पथैर्मम मनः पारिप्लवं धावति' (४.२२)। वनवासे संत्रस्तया त्वया नूनं जनकोऽसकृत् स्मृतः 'नूनं त्वया.......क्रव्याद्गणेषु परितः परिवारयत्सु, संत्रस्तया शरणमित्यसकृत् स्मृतोऽहम्' (४.२३)। प्रियनाशे जगदरण्यमिव प्रतीयते। 'विना सीतादेव्या किमिव हि न दुःखं रघुपतेः, प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति' (६.३०)। प्रियावियोगे जगदतितरां दुःखायैव भवति। 'जगज्जीर्णारण्यं भवति च कलत्रे ह्युपरते, कुकूलानां राशौ तदनु हृदयं पच्यत इव' (६.३८)। नृपं जनकमुद्वीक्ष्य रामस्य हृदयं त्रपया विदीर्यत इव। 'पश्यन्नीदृशमीदृशः पितृसखं वृत्ते महावैशसे, दीर्ये किं न सहस्रधाऽहमथवा रामेण किं दुष्करम्' (६.४०)। शुचा निष्प्रभं रामं वीक्ष्य मातरः प्रमोहमुपयान्ति। 'अनुभावमात्रसमवस्थितश्रियं, सहसैव वीक्ष्य रघुनाथमीदृशम्।······विधुराः प्रमोहमुपयान्ति मातरः' (६.४१)। सीतापरित्यागाद् राम आत्मानं दयापात्रं न मनुते। 'जनकानां रघूणां च, यत् कृत्स्नं गोत्रमङ्गलम्। तत्राप्यकरुणे पापे, वृथा वः करुणा मयि' (६.४२)। प्राक्कृतकर्मजं दुःखं सुतरां दुर्निवारम्। 'सोढश्चिरं राक्षसमध्यवासस्त्यागो द्वितीयस्तु सुदुःसहोऽस्याः। को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तुर्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे' (७.४)।

पूर्वकृतालोचनया सिध्यत्यदो यद् भवभूतिः करुणरसवर्णने सर्वानतिशेते महाकवीन्।

१२. नैषधं विद्वदौषधम्

श्रीश्रीहर्षमहाकवेः कृतिर्नैषधचरितं कस्य न कृतिनो मानसमावर्जयति। बृहत्त्रय्यामन्यतमैषा कृतिः। भारवेः किरातार्जुनीयं माघस्य शिशुपालवधं श्रीहर्षस्य नैषधचरितं चेति त्रयमेतद् बृहत्त्रय्यां गण्यते। उत्तरोत्तरमेषामुत्कर्षश्चोररीक्रियते। एतद्भावात्मकमेवैतदुद्गीर्यते—'तावद् भा भारवेर्भाति, यावन्माघस्य नोदयः। उदिते नैषधे काव्ये, क्व माघः क्व च भारविः॥'

महाकवेरेतस्य जनकः श्रीहीरो जननी मामल्लदेवी च। तथा हि—'श्रीहर्षं कविराजराजि-मुकुटालंकारहीरः सुतं, श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्'। (नैषध० १.१४५)। कान्यकुब्जेश्वरस्य जयचन्द्रस्याश्रयमशिश्रियत् कविरयम्, तदादृतिमविन्दत च। 'ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्' (नै० २२.१५३)। अतोऽस्य जनिकालो द्वादशशताब्द्या उत्तरार्धोऽङ्गीक्रियते। श्रीहर्षो महाकविर्महायोगी च। उभयत्रापि चरमोत्कर्षं लेभे। 'यः साक्षात्कुरुते समाधिषु परं ब्रह्म प्रमोदार्णवम्। यत्काव्यं मधुवर्षि०' (नै० २२.१५२)। सर्गान्तश्लोकेषु ग्रन्थाष्टकस्यान्यस्य नामग्राहं गृह्यते तेन। तत्र चाद्वैतवेदान्तप्रतिपादकः खण्डनखण्डखाद्यमेवैको ग्रन्थः साम्प्रतमुपलभ्यतेऽन्ये च लुप्तप्राया एव। सायासमेतत् तस्य महाकाव्यं, ग्रन्थयश्चात्र विन्यस्तास्तेन महता श्रमेण। अतः श्रमसाध्य एव महाकाव्यस्यैतस्यार्थावगमोऽपि। 'ग्रन्थे ग्रन्थिरिह क्वचित् क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया। प्राज्ञंमन्यमना हठेन पठिती माऽस्मिन् खलः खेलतु। श्रद्धाराद्धगुरुश्लथीकृतदृढग्रन्थिः समासादयत्वेतत्काव्यरसोर्मिमज्जनसुखव्यासज्जनं सज्जनः'। (नै० २२.१५२)। रमणीलावण्यं हरति चेतः सचेतसो यून एव, न तु किशोराणाम्, तथैव श्रीहर्षकृतिः सुधीभिरेवास्वादनीया, न तु प्राज्ञंमन्यैः। 'यथा यूनस्तद्वत् परमरमणीयापि रमणी, कुमाराणा-मन्तःकरणहरणं नैव कुरुते। मदुक्तिश्चेदन्तर्मदयति सुधीभूय सुधियः, किमस्या नाम स्यादरस-पुरुषानादरभरैः'। (नै० २२.१५०)।

श्रीहर्षो महाकविर्महादार्शनिको महावैयाकरणश्चेत्यादिविविधविरुद्धगुणगणसमन्वयादतिशेते सर्वानन्यान् महाकवीन् पाण्डित्यप्रदर्शने वाग्वैभवे रुचिररचनायां भावाभिव्यक्तौ साधुशब्दसंकलने विद्यावैशारद्ये वक्रोक्तिव्यवहारे च। अनुपमवैदुष्यवैभवाविर्भावात् पाण्डित्यपुटपरिपाकप्रतीकाशः प्रतीयते प्रबन्धोऽस्य। नैकशास्त्रनिष्णातस्यानुपहता गतिरत्रेति 'नैषधं विद्वदौषधम्' इति साह्लादमुद्घोष्यते यशोऽस्य सुधीभिः। प्रतिपदं पदलालित्यावेक्षणात् 'नैषधे पदलालित्यम्' इत्यप्यभिधीयते। एतदेव समासतोऽत्र प्रस्तूयते। विवृतिश्च विद्वद्भिः स्वयेवाभ्यूह्या।

पदलालित्यवन्तः केचन श्लोका अत्र दिङ्मात्रमुदाह्रियन्ते। अधारि पद्मेषु तदङ्घ्रिणा घृणा क्व तच्छयच्छायलवोऽपि पल्लवे। तदास्यदास्येऽपि गतोऽधिकारितां न शारदः पार्विकशर्वरीश्वरः। (नैषध० १.२०), मनोरथेन स्वपतीकृतं नलं निशि क्व सा न स्वपती स्म पश्यति। अदृष्टमप्यर्थम-दृष्टवैभवात्० (नै० १.३९), अहो अहोभिर्महिमा हिमागमेऽप्यभिप्रपेदे प्रति तां स्मरा र्दिताम्।……विभावरीभिर्बिभरांबभूविरे। (नै० १.४१), अलं नलं रोद्धुममी किलाभवन्……स्मरः-स्म रत्यामनिरुद्धमेव यत्, सृजत्ययं सर्गनिसर्ग ईदृशः। (नै० १.५४), चलन्नलंकृत्य महारयं हयं स्ववाहवाहोचितवेषपेशलः। (नै० १.६६), दिने दिने त्वं तनुरेधि रेऽधिकं पुनः पुनर्मूर्च्छ च तापमृच्छ च। (नै० १.९०), मदेकपुत्रा जननी जरातुरा नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी। (नै० १.१३५), मुहूर्तमात्रं भवनिन्दया दयासखाः सखायः स्रवदश्रवो मम। (नै० १.१३६), नलिनं मलिनं विवृण्वती

पृषतीमस्पृशती तदीक्षणे। अपि खञ्जनमञ्जनाञ्चिते० (२.२३), धन्यासि वैदर्भि गुणैरुदारैर्यया समाकृष्यत नैषधोऽपि। (३.११६), सकलया कलया किल दंष्ट्रया समवधाय यमाय विनिर्मितः। (४.७२), लोकेशकेशवशिवानपि यश्चकार शृङ्गारसान्तरभृशान्तरशान्तभावान्। (११.२५), कुमुदमुदमुदेष्यतीमसोढा रविरविलम्बितुकामतामतानीत्। (२१.१४६), शृङ्गारभृङ्गारसुधाकरेण वर्णस्रजानूपय कर्णकूपौ। (२२.५७)।

विविधविद्यापारदृश्वा श्रीहर्षः। विविधदर्शनसिद्धान्तानां व्याकरणादिशास्त्रराद्धान्तानां चोल्लेखात् संजायते नैषधचरिते महत् काठिन्यम्। अतो विद्वदौषधमेतत् काव्यमुच्यते। एतदेवात्रातिसमासतो निरूप्यते विव्रियते च। (१) श्लेषप्रयोगः—चेतो नलं कामयते मदीयम्० (३.६७), श्लेषमूलकमर्थत्रयमेतस्य। तद्यथा—मदीयं चेतः नलं कामयते, ० न लंकाम् अयते, ० चेतः अनलं कामयते। त्रयोदशसर्गे पञ्चनलीवर्णने (१३.२.३४) सर्वेऽपि श्लोका द्व्यर्थकास्त्र्यर्थका वा। देवः पतिर्विदुषि नैषधराजगत्या निर्णीयते न किमु न व्रियते भवत्या। (१३.३४), पञ्चार्थकमेतत्पद्यम्। अन्ये च केचन श्लेषमूलाः श्लोकाः—विदर्भजाया मदनस्तथा मनो नलावरुद्धं वयसैव वेशितः (१.३२), वयोतिपातोद्गतवातवेपिते० (१.७७), वियोगिनीमैक्षत दाडिनीमसौ (१.८३), रथाङ्गभाजा कमलानुषङ्गिणा० (१.१११), स्यादस्या नलदं विना न दलने तापस्य कोऽपि क्षमः (४.११६)। (२) व्याकरणसिद्धान्तवर्णनम्—'क्रियेत चेत्साधुविभक्तिचिन्ता व्यक्तिस्तदा सा प्रथमाभिधेया। या स्वौजसां साधयितुं विलासैः०' (३.२३) इत्यत्र 'अपदं न प्रयुञ्जीत' इत्यस्य वर्णनम्। 'किं स्थानिवद्भावमधत्त दुष्टं तादृक्कृतव्याकरणः पुनः सः।' (१०.१३६) इत्यत्र स्थानिवदादेशो० (१.१.५६) इति सूत्रस्य वर्णनम्। 'अपवर्गे तृतीयेति भणतः पाणिनेरपि' (१७.७०) इत्यत्र 'अपवर्गे तृतीया' (२.३.६) इति सूत्रस्य वर्णनम्। 'भण फणिभवशास्त्रे तातङः स्थानिनौ काविति विहिततुहीवागुत्तरः कोकिलोऽभूत्' (१९.६०), इत्यत्र तुह्योस्तातङ्० (७.१.३५) इति सूत्रस्य वर्णनम्। 'अधीतिबोधाचरणप्रचारणैर्दशाश्चतस्रः प्रणयन्नुपाधिभिः' (१.४) इत्यनेन 'चतुर्भिः प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति०' (महाभाष्य, प्रथमाह्निक) इत्यस्य वर्णनम्। एकशेष-वर्णनम्—हस्ते तवास्ते द्वयमेकशेषः। (३.८२), मुखेन्दुमस्थापयदेकशेषम् (७.५९)। आदेशः—भुवः स्वरादेशमथाचरामो० (८.९६), स्वं नैषधादेशमहो विधाय (१०.१३६)। अपादानम्—आगच्छतामपादानं० (१७.११८)। घु-संज्ञा—घोषयन् यो घुसंज्ञां० (१९.६१)। तमप्—मधुराधारस्तमप्प्रत्ययः (२१.१५२)। आम्रेडितम्—भवदुपविपिनाम्रे ताभिराम्रेडितेन (२१.१५६)। (३) सांख्यसिद्धान्तवर्णनम्—सत्कार्यवादः—नास्ति जन्यजनकव्यतिभेदः० (५.९४)। (४) योगसिद्धान्तवर्णनम्—सम्प्रज्ञातसमाधिः—सम्प्रज्ञातवासिततमः समपादि (२१.११८)। (५) न्याय-वैशेषिकसिद्धान्तवर्णनम्—परमाणुवादः—आदाविव द्व्यणुककृत्परमाणुयुग्मम् (३.१२५), मनसोऽणुत्वम्—मनोभिरासीदनणुप्रमाणैः (३.३७), न्यायस्य षोडशपदार्थत्वम्—द्विधोदितैः षोडशभिः पदार्थैः (१०.८२)। कारणगुणपूर्वकं हि कार्यम्, 'अन्नानुरूपां तनुरूपऋद्धिं कार्यं निदानाद्धि गुणानधीते' (३.१७)। न्यायाभिमतमोक्षस्य परिहासः—मुक्तये यः शिलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम्। गोतमं तमवेक्ष्यैव यथा वित्थ तथैव सः। (१७.७५)। वैशेषिकाभिमततमः-स्वरूपपरिहासः-ध्वान्तस्य वामोरु विचारणायां, वैशेषिकं चारु मतं मतं मे। औलूकमाहुः खलु

दर्शनं तत्, क्षमं तमस्तत्त्वनिरूपणाय॥ (२२.३५)। (६) **मीमांसासिद्धान्तवर्णनम्**—देवानामरूपित्वं मन्त्ररूपित्वं य—विश्वरूपकलनादुपपन्नं, तस्य जैमिनि-मुनित्वमुदीये। विग्रहं मखभुजामसहिष्णु० (५.३९), प्रत्यक्षलक्ष्यामवलम्ब्य मूर्तिं हुतानि यज्ञेषु तवोपभोक्ष्ये।......मखं हि मन्त्राधिकदेवभावे॥ (१४.७३)। स्वतःप्रामाण्यम्—स्वत एव सतां परार्थता ग्रहणानां हि यथा यथार्थता। (२.६१)। मानवस्य कर्माधीनत्वमीश्वराधीनत्वं वा—अनादिधाविस्वपरम्पराया हेतुस्त्रजः स्रोतसि वेश्वरे वा। आयत्तधीरेष जनस्तदार्याः किमीदृशः पर्यनुयोगयोग्यः। (६.१०२)। श्रुतीनां प्रामाण्यम्—श्रुतिं श्रद्धत्थ विक्षिप्ताः प्रक्षिप्तां ब्रूथ च स्वयम्। मीमांसामांसलप्रज्ञास्तां यूपद्विपदापिनीम्। (१७.६१)। (७) **वेदान्तसिद्धान्तवर्णनम्**—ब्रह्मसाक्षात्कारः- प्रापुस्तमेकं निरुपाख्यरूपं ब्रह्मेव चेतांसि यतव्रतानाम् (३.३)। मुक्तदशा—सा मुक्तसंसारिदशारसाभ्यां द्विस्वादमुल्लासमभुङ्क्त मिष्टम् (८.१५)। लिङ्गशरीरम्—न तं मनस्तच्च न कायवायवः (९.९४)। अद्वैतवादस्य तात्त्विकत्वम्—श्रद्धां दधे निषधराड् विमतौ मतानाम्। अद्वैततत्त्व इव सत्यतरेऽपि लोकः (१३.३६)। (८) **बौद्धसिद्धान्तवर्णनम्**—बौद्धाभिमतः शून्यवादो विज्ञानवादः साकारतावादश्च—'या सोमसिद्धान्तमयाननेव, शून्यात्मतावादमयोदरेव। विज्ञानसामस्त्यमयान्तरेव, साकारतासिद्धिमयाखिलेव'। (१०.८८)। (९) **जैनसिद्धान्तवर्णनम्**—जैनाभिमतरत्नत्रयम्— 'न्यवेशि रत्नत्रितये जिनेन यः, स धर्मचिन्तामणिरुज्झितो यया। कपालिकोपानलभस्मनः कृते, तदेव भस्म स्वकुले स्तृतं तया'। (९.७१)। (१०) **चार्वाकसिद्धान्तवर्णनम्**—वर्णनमेतस्य सप्तदशे सर्गे (१७.३६-८३) विस्तरशः प्राप्यते। तद्यथा—न कश्चनेश्वरः। 'देवश्चेदस्ति सर्वज्ञः, करुणाभागवन्ध्यवाक्। तत् किं वाग्व्ययमात्रान्नः कृतार्थयति नार्थिनः' (१७.७७)। अग्निहोत्रादिकं निष्फलम्। 'अग्निहोत्रं त्रयीतन्त्रं त्रिदण्डं भस्मपुण्ड्रकम्। प्रज्ञापौरुषनिःस्वानां जीविकेति बृहस्पतिः' (१७.३९)। भोगोपभोगार्थं शरीरमिदम्। 'सुकृते वः कथं श्रद्धा, सुरते च कथं न सा। तत्कर्म पुरुषः कुर्याद् येनान्ते सुखमेधते'। (१७.४८)। न मृतस्य पुनर्जन्म। 'कः शमः क्रियतां प्राज्ञाः, प्रियाप्रीतौ परिश्रमः। भस्मीभूतस्य भूतस्य पुनरागमनं कुतः' (१७.६९)। एवमेव वेदानां वेदाङ्गानामन्येषां च विषयाणामत्र प्रतिपदं वर्णनं प्राप्यते।

उपर्युक्तेन वर्णनेन विशदीभवत्येतद् यद् श्रीहर्षः कविताकामिनीकान्तो भाषाप्रयोगविदग्धो विविधशास्त्रपारदृश्वा रससिद्धः कवीश्वरो वर्तते। तस्य काव्यं प्रतिपदं तस्य व्याकरणज्ञतां भावगाम्भीर्यं पदमाधुर्यं भाषासौष्ठवं रसपरिपाकं च प्रकटयति। अनुपमस्तस्य समग्रेऽपि संस्कृतवाङ्मयेऽधिकारः। गीर्वाणवाणी वाणीश्वरमिव तं सेवते। स भाषां पुत्तालिकामिव प्रनर्तयितुं प्रभवति। तदीहासमकालमेव समुपतिष्ठन्ति रसा भावाः कान्ता पदावली विविधाश्चालंकाराः। गूढातिगूढभावान्वितानि श्लिष्टानि च पद्यानि स तेनैव सारल्येन रचयितुमलं यथा सरलानि सरसानि प्रसादगुणोपेतानि हृद्यानि पद्यानि। तस्य पद्यानि नारिकेलफलोपमानानि सन्ति बहिः कठोराणि अन्तः माधुर्योपेतानि च। रसिकैः सहृदयैर्विविधशास्त्रनिष्णातैरेव तत्काव्यगौरवम् अवधारयितुं पार्यते। विविधशास्त्रादिसिद्धान्तवर्णनादेवास्य महाकाव्यस्य प्रतिपदं क्लिष्टत्वमालक्ष्यते। अतः साधूच्यते—नैषधं विद्वदौषधम्।

१३. भारतीया संस्कृतिः

भारतीयसंस्कृतेर्विवृतिविचारे बहवोऽनुयोगाः समापतन्ति चेतसि। तेषां समासतोऽत्र विवरणमुपस्थाप्यते। का नाम संस्कृतिः? कथमिवैषोपकरोत्यात्मनो मनसो जनस्यं देशस्य संसृतेर्वा? हेयोपादेयोपेक्ष्या वैषा? उपादेया चेदियं किं स्यात् स्वरूपमस्याः साम्प्रतिक्यां लोकसंस्थितौ? कास्तावत् प्रातिस्विक्यो भारतीयसंस्कृतेः? किमिव हि साध्यं क्षेममिह लोकस्य संस्कृत्याऽनया? कानि च सन्ति कारणानि विश्वसंस्कृतावादृतेरस्याः? इत्यादयः। संस्करणं परिष्करणं चेतस आत्मनो वा संस्कृतिरिति समभिधीयते। सा नाम संस्कृतिर्या व्यपनयति मलं मनसश्चाश्चल्यं चेतसोऽज्ञानावरणमात्मनश्च। पापापनयपूर्वकमेषा प्रसादयति स्वान्तं, दुर्भावदमनपूर्वकं संस्थापयति स्थैर्यं चेतसि, मनःशुद्धिपुरःसरं पावयत्यात्मानम्, अपहरति च चित्तभ्रमम्। संस्कृतिरेवैषा चेतः प्रसादयति, मनोऽमलीकुरुते, दुर्भावान् दमयते, दुर्गुणान् दारयति. पापान्यपाकुरुते, दुःखद्वन्द्वानि दहति, ज्ञानज्योतिर्ज्वलयति, अविद्यातमोऽपहन्ति, भूतिं भावयति, सुखं साधयति, धृतिं धारयति, गुणानागमयति, सत्यं स्थापयति, शान्तिं समादधाति च। न केवलमेषोकपत्री व्यष्टेरेवापि तु समष्टेरपि जीवनभूता। उपकरोति चैषाऽऽत्मानो मनसो लोकस्य राष्ट्रस्य संसृतेश्च। अजस्रमेषोपादेया सर्वैरेव स्वसुखमभीप्सुभिः। स्वोन्नतिमभीप्सता न शक्या केनाप्येषा हातुमुपेक्षितुं वा। उज्झितोपेक्षिता वैषा परिणंस्यते स्वात्मविनाशाय लोकाहिताय च। अङ्गीकृतेऽस्या उपादेयत्वं तदेव स्यादस्याः स्वरूपं यत् साम्प्रतिक्या लोकसंस्थित्या नातितरां संभिद्येत। विविधाचारविचारवादव्याकुले विश्वेऽस्मिन् सैव संस्कृतिरुपादेयतामाप्स्यति या समेषां स्वान्तेषु सद्भावाविर्भावपुरःसरं विश्वहितं विश्वबन्धुत्वं विश्वोपकरणं चादर्शत्वेनोररीकुर्यात्। अतः सिध्यत्यदो यद् विश्वजनीना संस्कृतिरेव साम्प्रतमुपादानमर्हति, सैव च तापत्रयसन्तप्तं जगत् तापापनयनेन सुखनिधानं सम्पादयितुं प्रभवति।

भारतीयसंस्कृतेः काश्चन प्रातिस्विक्यो मुख्या विशेषा वाऽत्र प्रस्तूयन्ते। (१) **धर्मप्राधान्यम्**—मानवेषु धर्मप्राधान्यमेव तान् व्यवच्छेदयति पशुभ्यः। अत उक्तम्—'धर्मो हि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः'। नहि धर्मपदेन कश्चन सम्प्रदायविशेषोऽत्र विवक्षितः। जगद्धारकाणि मूलतत्त्वानि यमाख्यया व्याख्यातानि शास्त्रेषु धर्मपदवाच्यानि। तदेवोच्यते—'धारणाद् धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः। यः स्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः'। यमास्तु व्याख्याता योगदर्शने—'अहिंसा-सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः' (योग० २.३०)। अहिंसायाः समाश्रयणम्, सत्यस्य परिपालनम्, अस्तेयवृत्त्या आश्रयः, ब्रह्मचर्यव्रतस्यानुष्ठानम्, अपरिग्रहव्रतस्य पालनं च यम इत्युच्यते। एतेषां व्रतानामाश्रयेण मानवः समाजो देशो जगदिदं च सततमुन्नतिं लप्स्यत इति तानि विश्वजनीनधर्मपदेन वाच्यनि। एत एव यमाः शाश्वतिकाः सार्वभौमा महाव्रतमित्युच्यन्ते—'जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः

सार्वभौमा महाव्रतम्' (योग० २.३१)। यश्चैहिकमामुष्मिकं चोभयं क्षेममावहति च धर्म इति व्यवस्थापितं वैशेषिकदर्शनकृता कणादेन। 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः'। यतोऽभ्युदयोऽर्थात् ऐहिकी लौकिकी भौतिकी वा समुन्नतिः समुपलभ्यते, निःश्रेयसावाप्तिर्मोक्षाधिगमश्च भवति पारलौकिकं च सुखमाप्यते, स एव धर्मपदेन वाच्यः। एतदेव मनसिकृत्य मनुना धृत्यादयो दश गुणा धर्मनाम्ना व्याख्याताः। तद्यथा—'धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्' (मनु० ६.९२)। (२) आध्यात्मिकी भावना—जीवनमेतन्न केवलं भोगार्थमेव, अपि त्वात्मोन्नतेः प्रमुखं साधनम्। आध्यात्मिकी भावना मानवं देवत्वं प्रापयति। स सर्वेष्वपि जीवेष्वेकत्वं समीक्षते। समग्रमपि प्राणिजातं परेशेनैवोत्पादितमिति विचारं विचारं तत्रैकत्वमनुभवति। जगदिदं परमात्मना व्याप्तम् 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किं च जगत्यां जगत्' (ईशोपनिषद् १)। 'यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते' (ईशोप० ६)। 'यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' (ईशोप० ७)। अध्यात्मप्रवृत्त्या जीवनमुन्नतं भवति। सर्वत्रैकत्वदर्शनेन न मानवः शोकाद्यभिभूतो भवति। स प्रतिपदमानन्दमनुभवति। निखिलमपि संस्कृतवाङ्मयं व्याप्तं भावनयाऽनया। भावनैषा चेतः प्रसादयति, आत्मानं मोक्षाधिगमं प्रति प्रेरयति। उपनिषत्सु गीतायां चास्या भावनाया वर्णितं विविधं महत्त्वम्। अध्यात्मप्रवृत्त्या प्रवर्तते मनसि सहृदयता सहानुभूतिरौदार्यादिकं च। (३) पारलौकिकी भावना—जगदिदं विनश्वरं, कीर्तिरेवैकाऽविनाशिनी। भौतिका विषया इमे आपातरम्याः पर्यन्तपरितापिनश्च। 'आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः' (किराता० ११-१२)। एषामाश्रयणेन पतनं सुलभं, दुःखावाप्तिः सुलभा, सुखं तु नितरां दुर्लभम्। एतस्मादेव हेतोर्धीरा वीराः सुकृतिनश्च कर्तव्यं प्रमुखं मन्वाना विषयसुखानि विहाय प्राणान् तृणवद् गणयन्तः समरादिषु वीरगतिं लेभिरे। (४) सदाचारपालनम्—'आचारः परमो धर्मः' इति सिद्धान्तमाश्रित्य सदाचारः सर्वोत्तमं तप इति स पालनीयः। अत उक्तं महाभारते—'वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च। अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः'। ब्रह्मचर्यादिपालनेनेन्द्रियनिग्रहो मनसो दमश्च साधनीयौ। सदाचारपालने ब्रह्मचर्यस्य विशिष्टं महत्त्वम्। ब्रह्मचर्यव्रतस्याश्रयणेन न केवलं शारीरिकी समुन्नतिरवाप्यते, अपितु मानसिकी बौद्धिकी आध्यात्मिकी चापि समुन्नतिः सुतरां सुलभा। देवा ब्रह्मचर्यव्रतपालनेनैव मृत्युमपि वशीकृतवन्तः। 'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत' (अथर्व०)। देवा ब्रह्मचर्येणैवानन्दमधिगतवन्तः। 'इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्' (अथर्व०)। चरित्ररक्षा शीलरक्षा संयमो दमो मनसो वशीकरणमिन्द्रियाणां नियमनं चेत्यादिगुणाः सदाचारपालने विशेषतोऽवधेयाः। (५) वर्णव्यवस्था—ब्राह्मणक्षत्रिय-

वैश्यशूद्राश्चत्वार इमे वर्णाः। वेदानां वेदाङ्गानां चाध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं विद्याया धनस्य च दानं धनादिदानस्य स्वीकरणं च ब्राह्मणस्य कर्तव्यम्। 'अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा। दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् (मनु० १.८८)। 'शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च। ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्' (गीता १८.४२)। देशस्य समाजस्य च रक्षणं क्षत्रियस्य परमो धर्मः। स विपत्तेः क्षताद् वा लोकं त्रायते। अतः साधु निगदितं कविवरेण्येन कालिदासेन—'क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः' (रघु०)। 'शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाऽप्यपलायनम्। दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्' (गीता १८.४३)। देशस्य जनतायाश्च मनोरञ्जनत्वादेव राजा राजते। 'राजा प्रकृतिरञ्जनात्'। कृषिर्गोरक्षा वाणिज्यं च वैश्यस्य प्रमुखं कर्म। 'कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्' (गीता १८.४४)। एषु कर्मसु वैश्यैः समुन्नतिः कार्या। श्रमसाध्यं शारीरिकं च कार्यं शूद्रस्य प्रधानं कर्तव्यम्। 'परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्' (गीता १८.४४)। यो यादृशं कर्म कुरुते तादृशं वर्णमवाप्नोति। सर्वे वर्णाः स्वं स्वं कर्म विदधीरन्। इदमिहावधेयम्—आर्यसंस्कृतौ वर्णव्यवस्था स्वीक्रियते, न तु जातिप्रथा। जन्मना जातिरिति, कर्मणा वर्ण इति। वर्णो वृणोतेः। जनो यत्कर्म वृणोति स तस्य वर्णः। जातिप्रथा सदोषा हेयोपेक्ष्या च, परं वर्णव्यस्था निर्दोषोपादेया च। **(६) आश्रमव्यवस्था**—ब्रह्मचर्यगृहस्थवानप्रस्थसंन्यासाश्चत्वार एते आश्रमाः। स्ववयोऽनुरूपमाश्रममाश्रयेत्, तदाश्रमनिर्दिष्टनियमान् पालयेच्च। आपञ्चविंशतिवर्षं ब्रह्मचर्याश्रमः। विद्याध्ययनं तपोमयजीवनयापनं सर्वविधगुणानां संग्रहश्चाश्रमेऽस्मिन् प्रधानं कर्तव्यम्। आपश्चाशद्वर्षं गृहस्थाश्रमः। भौतिकी शारीरिकी मानसिकी च समुन्नतिः, भौतिकविषयाणामुपभोगः, दाम्पत्यजीवनयापनं वंशप्रतिष्ठायै सन्तानोत्पत्तिश्चाश्रमेऽस्मिन् विशिष्टं कर्म। पञ्चाशद्वर्षानन्तरं वानप्रस्थाश्रमे प्रवेशः। सपत्नीकेनेश्वराराधनं, संयमपालनं, योगादिकर्मसु विशिष्टा प्रवृत्तिश्च तत्र प्रमुखं कर्म। षष्टिवर्षानन्तरं यदैव वैराग्यभावना समुत्पद्यते, तदैव संन्यासाश्रम आश्रयणीयः। 'यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्'। भौतिकविषयान् परित्यज्य योगाभ्यासे रतिः, पुण्यार्जने प्रवृत्तिः, समाधौ मनसः स्थितिः, लोकोपकरणे च विनियुक्तिः परिव्राजकानां प्रथमं कर्तव्यम्। **(७) कर्मवादः**—मनुष्येण सदाऽनासक्तिभावनया कर्म कार्यमिति। कृतस्य कर्मणः फलावाप्तिः सुनिश्चिता। सत्कर्मणा पुण्यं दुष्कर्मणा पापं चाप्नोति। 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'। 'पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेनैवेति (बृहदारण्यकम्)। मानवः कर्मानुसारं शुभं वाऽशुभं वा जन्म लभते। सुकृतं क्रियते चेत् सत्फलं लभते, दुष्कृतं क्रियते चेत् कुफलं प्राप्यते। सर्वास्ववस्थासु कर्मणां फलमवश्यमवाप्यते। अतस्तादृशं कार्यं कार्यं यथा जीवने दुःखावाप्तिर्न स्यात्। **(८) पुनर्जन्मवादः**—कर्मानुरूपं सर्वस्यापि जन्तोः पुनर्जन्म भवति। 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं

जन्म मृतस्य च' (गीता २-२७)। यो हि जायते तस्य मरणं ध्रुवमेवास्ति। मृतस्य च कर्मानुसारं पुनर्जन्म सुनिश्चितम्। यः पूर्वजन्मनि यादृशं कर्म कुरुते, सोऽस्मिन् जन्मनि तादृश एव कुले परिवारे च जन्म लभते। प्रतिभादिवैशिष्ट्यं विशिष्टगुणादिसमन्वितत्वं तद्वैपरीत्यं च पूर्वजन्मकृतकर्मविपाक एवेत्यवगन्तव्यम्। ज्ञानाग्निदग्धकर्माणः केचन यतयो निःश्रेयसमधिगच्छन्ति। (९) मोक्षः—मोक्षावाप्तिः परमः पुरुषार्थः। मोक्षमधिगम्य न च पुनरावर्तन्ते मुनयः। केषांचित् मतेन नियतकालं निःश्रेयससुखमुपभुज्य तेऽप्यावर्तन्त इति। ज्ञानाग्निना सर्वकर्मप्रदाहे मोक्षावाप्तिर्भवतीति। (१०) श्रुतीनां प्रामाण्यम्—वेदाश्चत्वारः स्वतःप्रमाणस्वरूपाः, ग्रन्था अन्ये तु तन्मूलकं प्रामाण्यं लभन्तेऽतस्ते परतःप्रमाणरूपाः। श्रुत्युक्तदिशा कर्मानुष्ठानेन श्रेयोऽवाप्तिस्तदन्यथाऽऽचरणेन दुःखाधिगमश्च। (११) यज्ञस्य महत्त्वम्—सर्वैरेव जनैः पञ्च यज्ञाः दैनिक-कर्तव्यत्वेनानुष्ठेयाः। यज्ञानुष्ठानेनात्म-प्रसादनं देवप्रसादनं चोभयं क्रियते। पञ्च यज्ञाः सन्ति—***(क) ब्रह्मयज्ञः***—सन्ध्योपासनमीश्वरोपासनं च, ***(ख) देवयज्ञः***—दैनिकयागस्यावश्यकर्तव्यता, ***(ग) पितृयज्ञः***—मातुः पितुश्च सततं परिचर्या, तयोराज्ञापालनं च, ***(घ) बलिवैश्वदेवयज्ञः***—परिपक्वस्य भोजनस्याल्पेनांशेन मन्त्रपूर्वकमग्नावाहुतिः, कीटादिभ्योऽन्नप्रदानं च, ***(ङ) अतिथियज्ञः***—'अतिथिदेवो भव' इति शास्त्रमनुसृत्यातिथीनां शुश्रूषा सत्करणं च। (१२) सत्यपरिपालनम्—मनसा वाचा कर्मणा सत्यमुरीकुर्यादनुतिष्ठेच्च। सर्वथा सत्यं व्यवहरेन्नासत्यम्। सत्यमेव शाश्वतं विजयं लभते नासत्यम्। तथोक्तम्—'सत्यमेव जयते नानृतम्'। (१३) अहिंसापालनम्—'अहिंसा परमो धर्मः' इत्यहिंसैव श्रेष्ठधर्मत्वेनाङ्गीक्रियते। अहिंसयैव साध्या विश्वशान्तिः। जनहितं विश्वहितं चेप्सताऽजस्रं मनसा वाचा कर्मणा चाहिंसाधर्मः पालनीयः। (१४) त्यागमहत्त्वम्—अनासक्तेनात्मना जगति व्यवहरेत्। न परस्वममीप्सेत्। पुरुषार्थोपार्जितमेवोपभुञ्जीत। तथा चोक्तं वेदे—'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्' (यजु० ४०.१)। (१५) तपोमयं जीवनम्—तपसैव शुध्यति जीवनं मनश्च प्रसीदति। भोगवासनाभिर्विषीदति स्वान्तम्। मनसो बुद्ध्याश्च परिष्काराय सततं तपोमयं जीवनं यापयेत्। (१६) मातृपितृगुरुभक्तिः—मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, इत्येषां देववत्पूज्यत्वमाख्यायते। शुश्रूषयैवैषां सिध्यति सकलमिह संसृतौ। मातुः पितुर्गुरूणां चादेशोऽनवरतं पालनीयः। त एव मानवस्य सर्वोत्तमं शुभचिन्तकाः। तेषामाज्ञानुसारमेव व्यवहर्तव्यम्।

विश्वहितस्य विश्वोन्नतेश्च सर्वा एव मूलभूता भावनाः संस्कृतावस्यामुपलभ्यन्ते। एतासामाश्रयणेन सर्वविधा समुन्नतिः सुलभा राष्ट्रस्य विश्वस्य च। गुणवैशिष्ट्यमेवैतस्याः समीक्ष्य समाद्रियते विश्वसंस्कृतावियम्।

१४. संस्कृतस्य रक्षार्थं प्रसारार्थं चोपायाः

सुविदितमेतत् समेषामपि शेमुषीमतां यद् भारतीया संस्कृतिर्नाधिगन्तुं पार्यते संस्कृतज्ञानमन्तरा। संस्कृतिमन्तरेण निर्जीवं जीवनं जीविनः। संस्कृतिर्हि स्वान्तस्य संस्कर्त्री, सद्भावानां भावयित्री, गुणगणस्य ग्राहयित्री, धैर्यस्य धारयित्री, दमस्य दात्री, सदाचारस्य संचारयित्री, दुर्गुणगणस्य दमयित्री, अविद्यान्धतमसस्यापनोदयित्री, आत्मावबोधस्यावगमयित्री, सुखस्य साधयित्री, शान्तेः सन्धात्री च काचिदनुत्तमा शक्तिः। सेयं संस्कृतिरजस्रं रक्षणीया पालनीया परिवर्धनीयेति भारतीयसंस्कृतेः समुद्धारायावबोधाय च संस्कृतज्ञानमनिवार्यम्। समग्रमपि पुरातनं भारतीयं वाङ्मयं संस्कृतमाश्रित्यावतिष्ठते, इति सुविदितम्। न केवलं भारतीय-संस्कृतिसंरक्षणार्थमेवावश्यकं संस्कृतमपि तु संस्कृतमेतत् विविधसंस्कृतिप्रसारसाधनम्, भारतीयभाषाणामभिवृद्धिहेतुः, राष्ट्रभाषायाः समुन्नतेः साधकम्, आर्यभाषाया गौरवस्य प्राणभूतम्, विश्ववाङ्मयस्य मार्गप्रदर्शकम्, जीवनदर्शनस्य दर्शकम्, आचारशास्त्रस्य शिक्षकम्, पुरुषार्थस्य प्रयोजकम्, विविधविरुद्धसंस्कृतिसमाहारसाधकम्, प्रान्तीयानां प्रादेशिकानां च विकृतीनां विवादानां संघर्षाणां च प्रशमनम्, राष्ट्रीयभावनायाः सद्वृत्ततायाश्चाभिवृद्धेर्मूलम्, वैदिकवाङ्मयालोकस्य प्रसारहेतुः, आध्यात्मिक्या भौतिक्याश्च समुन्नतेः साधनमिति सुतरामवधेया। संस्कृत्या वाङ्मयेन च विहीनस्य देशस्य जातेश्चाधःपतनमनिवार्यम्। द्वयोरेवैतयोः संरक्षणेन संवर्धनेन च समेधते श्रीः सर्वस्या अपि संसृतेः इत्येतदेवावधार्य संस्कृतस्य संरक्षणस्य प्रचारस्य प्रसारस्य च भूयस्यावश्यकताऽनुभूयते साम्प्रतम्। तद्रक्षणप्रचारप्रसारोपायाश्च समासतोऽत्र विविच्यन्ते समुपस्थाप्यन्ते च।

(१) संस्कृतकाठिन्यापनोदनम्—क्लिष्टा दुरूहा दुर्बोधा चेयं गीर्वाणगीरिति लोकानां विचारः प्रशमं नेयः। सरला सुबोधा प्रसादगुणोपेता चेयं प्रयोज्या व्यवहार्या च। सरला सुबोधैव च भाषा प्रचरति प्रसरति चेत्यवगन्तव्यम्। (२) संस्कृतव्याकरणस्य सरलीकरणम्—संस्कृतस्य प्रचारे प्रसारे च संस्कृतव्याकरणस्य काठिन्यं महद् बाधकम्। व्याकरणं सरलं कार्यम्। सूत्राणां कण्ठस्थीकरणे न बलमाधेयम्। व्याकरणनियमा अनुवादद्वारा प्रयोगशैल्या च शिक्षणीयाः। प्रयोगशैल्याऽवगता नियमास्तथा बद्धमूला भवन्ति, यथा नान्येनोपायेन। (३) नवशब्दानामात्मसात्करणम्—विविधासु भाषासु प्रयुज्यमाना नवभावावबोधका नव्याः शब्दाः संस्कृशब्दावल्यां संस्कृतस्वरूपप्रदानद्वारा आत्मसात्करणीयाः। संसृतौ व्यवह्रियमाणाः सर्वा एव प्रमुखा भाषाः शैलीमिमामाश्रयन्ते। प्रकारेणैतेन तासां भाषाणां प्रगतिरुद्गतिर्जागृतिश्च संसूच्यते। समादृताऽऽसीत् शैलीयं प्राक् संस्कृतेऽपि। (४) नवभावावबोधनम्—विश्वसाहित्ये प्रयुज्यमानाः सर्वेऽपि भावाः सहर्षमाश्रयणीया प्रयोज्याश्च। नवभावावबोधनार्थं नूतना शब्दावली

प्रयोज्या निर्मातव्या वा। विदेशीयनवशब्दग्रहणेऽपि न संकोच-प्रवृत्तिरास्थेया। (५) **संस्कृत-भाषाव्यवहारः**—जीविता जागृता च सैव भाषा या लोके व्यवह्रियते प्रयुज्यते च। संस्कृतभाषायाः प्रचाराय प्रसाराय चानिर्वायमेतद् यत् संस्कृतज्ञाः संस्कृतमाश्रित्यैव व्यवहरेयुः। भाषणे लेखने वादे विवादे संलापे पत्रादिव्यवहारे च संस्कृतमेव प्रयुञ्जीरन्। (६) **नवग्रन्थरचना**—नवीनान् विषयानाश्रित्य संस्कृते नवग्रन्थरचना स्यात्। साम्प्रतिके काले प्रचलिताः सर्वेऽपि विषयाः संस्कृतमाध्यमेन सुलभाः स्युः। एतदर्थं विविधविद्यानिष्णाताः संस्कृतज्ञाः सविशेषमुत्तरदायित्वं भजन्ते। तेषां चैतत्पावनं कर्म। (७) **नवविषयाध्ययनम्**—संस्कृतज्ञानां कृतेऽनिवार्यमेतद् यत्ते संस्कृताध्ययनेन सहैव भूगोलमैतिह्यं विज्ञानादिविषयान् विदेशीया भाषाश्चाधीयीरन्। विविधविद्याऽध्ययनमन्तरेणाशक्यं धियो विस्फुरणम्। (८) **अन्वेषणकार्यम्**—संस्कृतेऽन्वेषणकार्यस्य महत्यावश्यकता। अन्वेषणकार्यमेव गौरवाधायि। अन्वेषणेनैव वाङ्मयस्य महत्त्वमुत्कर्षश्चावगम्यते। एतदर्थं महान् श्रमोऽपेक्ष्यते। (९) **संस्कृतग्रन्थानामनुवादः**—संस्कृतस्य प्रचारार्थं प्रसारार्थं चावश्यकमदो यत् सर्वेषामपि प्रमुखानां संस्कृतग्रन्थानां न केवलं भारतीयासु भाषास्वेव प्रामाणिकोऽनुवादः स्यादपि तु विश्वस्य सर्वास्वेव प्रधानासु भाषासु तेषामनुवादः स्यात्। कार्यं चैतत् सर्वकारप्रयत्नेन तत्सहयोगेन च सम्भवति। (१०) **सुलभग्रन्थमालाप्रकाशनम्**—सर्वेषामेव प्रमुखानामुपयोगिनां च संस्कृतग्रन्थानां सानुवादोऽल्पमूल्यकं संस्करणं प्रकाशितं स्यात्। महार्घाणां चाकरग्रन्थानां सारांशरूपं संस्करणं सानुवादं प्रचारार्थं प्रकाशितं स्यात्। (११) **वैज्ञानिकशैली-समाश्रयणम्**—वैज्ञानिकी शैलीं समाश्रित्य संस्कृतं प्रारिप्सूनां बालानां संस्कृतप्रेमिणां च कृते सुबोधा हृद्याश्च ग्रन्थाः प्रणेयाः। (१२) **संस्कृतस्यानिवार्यशिक्षणम्**—आर्य (हिन्दी)-भाषया सहैव संस्कृतमपि सर्वेषु विद्यालयेष्वनिवार्यं स्यात्। संस्कृतमूलकमेव हिन्दीभाषाज्ञानं श्रेयोवहमिति समेषां सुधियामत्रैकमत्यम्। (१३) **पठनपाठनपद्धतिपरिष्कारः**—संस्कृतस्य प्रचारार्थमावश्यकमेतद् यत् संस्कृतस्य पठनपाठनप्रणाली साम्प्रतिकीं वैज्ञानिकीं पद्धतिमनुसरेत्। तत्र च स्यादावश्यकः परिष्कारः। (१४) **विलुप्तग्रन्थोद्धारः**—संस्कृतस्यानेके महार्घा ग्रन्था विलुप्ता विलुप्तप्राया जीर्णाः शीर्णा वा यत्र तत्रोपलभ्यन्ते। तेषामभ्युद्धार आवश्यकः। (१५) **सर्वकारसहयोगः**—सर्वमुपरिष्टादभिहितं सर्वकारसहयोगेनैव सम्भवति। सर्वकारस्य कर्तव्यमेतद् यत् स संस्कृतज्ञान् आद्रियेत, संस्कृतवाङ्मयप्रसारे साहाय्यमाचरेत्, राजकीयवृत्तिषु संस्कृतज्ञानमनिवार्यं कुर्यात्, संस्कृतशिक्षोद्धारे प्रयतेत च।

१५. कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा (मेघ० उत्तर० ४९)

निखिलं जगदिदं परिवर्तनशालि। प्रतिक्षणं प्रतिपलं सर्वोऽपि भूतग्रामः स्वात्मनि परिवृत्तिमनुभवति। परिवृत्तिधर्मत्वमेवास्य भुवनस्य विलोकं विलोकं विपश्चिद्भिः 'गच्छतीति जगत्' इति निर्वचनमाश्रित्य जगदिति नामधेयं विहितम्। 'संसरति गच्छति चलति वेति संसारः संसृतिर्वा' इति व्युत्पत्तिनिमित्तकं संसारः संसृतिरिति च नामद्वयं प्रवर्तितं कोविदैः। जगत्, संसारः, संसृतिरित्यादयः शब्दाः समुद्घोषयन्ति संसारस्य परिवर्तनशालित्वम्। नेह किञ्चिद् वस्तु शाश्वतं स्थिरमपरिवर्तनशीलं वा। यदा सर्वस्य लोकस्येदृश्यवस्था, तदा न सम्भवति मानवजीवनस्यापरिवृत्तित्वम्, तत्रापि च सुखस्य दुःखस्य वा समावस्थया समवस्थानम्।

जगति यथर्तवः परिवर्तन्ते, यथा सवितास्तमेति उदेति विधुरस्तमेति, निशाकरश्चोदयं याति प्रभाकरश्चास्तमुपगच्छति, यथा रात्रेरनन्तरं दिनं दिवसानन्तरं च विभावरी, तथैव सुखानन्तरं दुःखं दुःखानन्तरं च सुखम्, सम्पदनन्तरं विपद् विपदनन्तरं च सम्पदिति। सर्वमेतत् परिवर्तनस्य क्रममात्रम्। एतदेव तथ्यं समीक्ष्य सन्दिशति शाकुन्तले कविकुलगुरुः कालिदासः। 'यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनाम्, आविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः। तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां, लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु'॥ (शाकु० ४.२)। उत्थानं पतनम्, उत्कर्षोऽपकर्षः, जन्म मृत्युः, सम्पत्तिर्विपत्तिः, सुखं दुःखमिति च परिवृत्तेरवस्थान्तराण्येव नान्यत्। यथा शैशवं तदनु यौवनं तदनु वार्धकं तदनु देहावसानं तदनु जन्मान्तरं तदनु पुनः शैशवम्, एवमेव जीवने सुखदुःखे परिवर्तेते, परिवृत्तेरवश्यम्भावित्वाद् अनिवार्यत्वाच्च।

सम्भवति परिवर्तनेऽस्मिन् केषामप्यापत्तिरनिष्टापत्तिर्वा। परं निपुणं विचार्यते तर्हि प्रतीयते परिवृत्तेः सुतरामावश्यकतोपयोगिता च। भुवनेऽस्मिन् नाभविष्यत् परिवर्तनं चेन्नाभविष्यत् प्रगतिरुन्नतिरभ्युदयश्च लोकानाम्। ऋतूनां परिवृत्तिमन्तरेण नाभविष्यद् वसन्तो ग्रीष्मो वर्षा वा। न चेदभविष्यत् सुवृष्टिर्नाभविष्यत् सुभिक्षम्। नाभविष्यच्चेद् दुःखं नानुभूतमभविष्यत् सुखम्। दुःखस्य सत्तैव सुखमनुभावयति, सुखस्य सत्ता च दुःखम्। सुखदुःखस्य समवस्थानमावश्यकम्। यद्येको यावज्जीवं सुखं सम्पत्तिमेवानुभवेदन्यश्च दुःखं विपत्तिमेव वा, तर्हि न प्रचलिष्यति लोकस्थितिः। कर्मणामावश्यकतोपयोगिता चानुभूयते सर्वैरेव। कर्मविपाकोऽपि नियतोऽतः कर्मानुरूपं कश्चित् स्वकृतसुकृतपरिपाकरूपेण सुखमधिगच्छति, तद्विपर्ययेण च दुःखम्। सुखदुःखं परिवर्तमानमेतत् सुतरां शिक्षयति निखिलं जगत् सुकृत्यस्य सत्परिणामित्वं दुष्कृत्यस्य च दुष्परिणामित्वम्।

परिवृत्तेरेतस्य महत्त्वमालोक्यैव महाकविभिर्विविधाः सूक्तयो विषयेऽस्मिन् वर्णिताः। यथा च—(क) 'कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा। नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा

चक्रनेमिक्रमेण'। (मेघ० २.४९)। (ख) 'अतोऽपि नैकान्तसुखोऽस्ति कश्चिन्नैकान्तदुःखः पुरुषः पृथिव्याम्'। (बुद्धचरितम् ११.४३)। (ग) 'कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना, चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः'। (स्वप्न० १.४)। (घ) 'भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति'। (मृच्छ० १.१३)। (ङ) 'चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च'। (हितो० १.१७३)

किं नाम सुखं, किञ्च दुःखमिति। सुखदुःखस्य बहूनि लक्षणानि वर्ण्यन्ते विविधैः शास्त्रकारैः। भगवान् मनुरत्र निर्दिशति यत् सर्वमात्माधीनं सुखम्, आत्मायत्तत्वं वा सुखत्वमिति, परायत्तत्वं च दुःखमिति। तदाह—'सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्। एतद् विद्यात् समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः'। (मनु० ४.१६०)। केचन चान्ये सुखदुःखयोर्लक्षणं निगदन्ति। सु सुष्ठु सुखकरं वा खेभ्य इन्द्रियेभ्य इति सुखम्, ज्ञानेन्द्रियेभ्यः सुखकरं यत् तत्सुखमिति। एवमेव ज्ञानेन्द्रियेभ्यो दुःखकरं यत् तद्दुःखमिति। मन्मत्या तु लक्षणान्तरमपि शब्दयोरनयोः सम्भवति। सुष्ठु खानि सुखानि, दुष्टानि खानि दुःखानीति। इन्द्रियाणि चेत् संयतानि तर्हि सर्वमपि विषयजातं सुखत्वमापद्यते। दुष्टानि चेदिन्द्रियाणि तर्हि सर्वोऽपि विषयग्रामो दुःखत्वेनापतति। इत्थं सुखदुःखशब्दद्वयमेवेन्द्रियसंयमस्य महत्त्वमुपदिशति।

सुखवद् दुःखस्यापि जीवनेऽनल्पं महत्त्वम्। दुःखनिशीथिनीं धृत्यैवोत्तीर्यैव धीराः श्री-कौमुदीमाकाङ्क्षन्ति। अननुभूय दुःखं न सुखं साधूपभुज्यते। अतः साधूच्यते—'सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते' (मृच्छ० १.१०), 'यदेवोपनतं दुःखात् सुखं तद्रसवत्तरम्' (विक्रमो० ३.२१)। समीक्ष्यते चैतत्प्रत्यहं यत्र सुखं सुलभं दुःखानुभूतिमन्तरा प्रत्यवायमन्तरेण च। दुःखमनुभूय प्रत्यूहान् निरस्य च श्रेयः सुलभम्। अत एवाभिधीयते—'श्रेयांसि लब्धुमसुखानि विनान्तरायैः' (किराता० ५.४९), 'विघ्नवत्यः प्रार्थितार्थसिद्धयः' (शाकु० अंक ३)।

कर्मविपाकस्य बलीयस्त्वात् समापतति चेद् दुःखं तर्हि किं नु विधेयं वराकेण विपद्ग्रस्तेन। दुःखोदधौ निमग्नेन धैर्यमेवावलम्बनीयम्। धैर्यमाश्रित्यैव धीरा विपत्पारावारमुत्तरन्ति। पारावारे पोतभङ्गेऽपि सांयात्रिको धृतिमवष्टभ्य तितीर्षत्येव। उक्तं च—'त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि काले, धैर्यात् कदाचिद् गतिमाप्नुयात् सः। याते समुद्रेऽपि च पोतभङ्गे, सांयात्रिको वाञ्छति तर्तुमेव'॥ घोरे दुःखेऽपि नर आत्मशक्तिमाश्रयते चेत् स दुःखप्रहाणिं कर्तुं प्रभवति। नहि किञ्चिदसाध्यमात्मशक्त्या। आत्मशक्तिर्हि सर्वोदयस्य मूलम्। सा दुःखविभावरीं स्वप्रखरांशुभिः सद्यः संहरति। अत उच्यते—'उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्। आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः'॥ 'धैर्यधना हि साधवः'। ते सम्पदि न हृष्यन्ति, न च विपदि विषीदन्ति। अतः सुखदुःखे समे कृत्वा प्रवर्तेत। सम्पदि विपदि च महतामेकरूपतैव लक्ष्यते। यथा चोच्यते—'उदेति सविता ताम्रस्ताम्र एवास्तमेति च। सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता'॥ अतः सम्पदि न हृष्येत्, न च विपदि विषीदेत्। विपदि धैर्यमाधाय चेतसि स्वीयं कर्तव्यमनुतिष्ठेत्।

१६. नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे। शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते॥ (शिशु० २.८६)

दैवस्योद्योगस्य च गुरुलाघवं बलाबलं च निश्चिन्वतां विपश्चितामस्ति गरीयसी विप्रतिपत्तिर्विषयेऽस्मिन्। केचन दिष्ट्या दैवस्य वा महात्म्यमुद्घोषयन्ति, ते दैष्टिका इत्यभिधीयन्ते। अन्ये पौरुषस्य महत्त्वमाचक्षाणाः पुरुषार्थमेव सिद्धेः सोपानत्वेनाङ्गीकुर्वन्ति। ईदृशे महति विरोधे वर्तमाने केचन मनीषिणो द्वयोरेव समन्वयं श्रेयस्करमाचक्षते। विचारणीयं तावदेतद् यत्कतमा सरणिरिह साधीयसी। यामलम्ब्य सकलो लोको भुवनेऽस्मिन् भव्यां भूतिं समासाद्य चिरसञ्चितपुण्यपरिपाकसम्प्राप्तस्य मानवजीवनस्यास्य चरितार्थतां सम्पादयन् ऐहिकमामुष्मिकं चोभयं क्षेममधिगच्छति।

विमृश्यते तावद् दिष्ट्या एव बलाबलत्वं प्राक्। का नाम दिष्टिः, कथं च प्रभवत्येषा जीवलोकस्योदयास्तमयस्योत्कर्षापकर्षस्य पातोत्पातस्य वा। यदि विचारदृशा निपुणं परीक्ष्यते तर्हि न भूयान् भेदोऽनयोः। प्राक्कृतस्य कर्मण एव नामान्तरं दिष्टिरिति दैवमिति भाग्यमिति वा। अतः साधूच्यते—'पूर्वजन्मकृतं कर्म तद् दैवमिति कथ्यते'। दिष्टिरेव साधकत्वेन बाधकत्वेन वोपतिष्ठते निखिलेषु क्रियमाणेषु कर्मसु। अतः कर्मणां सिद्धिरसिद्धिर्वा दैवाधीनेति व्यवह्रियते। प्राक्कृत-कर्मफलपरिपाको नियतोऽतो नियतिरिति च दैवस्य नामान्तरं भवति। न च नियतिः साम्प्रतिकैः कर्मभिरन्यथा भवितुमर्हतीति नियतेर्नियोगोऽधृष्य इति गण्यते। अत्र दैष्टिका उदाहरन्ति—सूर्याचन्द्रमसौ तेजसां वरिष्ठौ नियत्यधीनत्वादेवास्तं समुपगच्छतः। विद्यां पौरुषं चाननुरुध्य लोको दैवानुरूपमेव फलमश्नुते। सुरासुरकृतसमुद्रमन्थने समेऽपि भागे प्राप्तव्ये हरिर्लक्ष्मीं लेभे, हरस्तु हालाहलमेव। उक्तं च—"दैवं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम्। समुद्रमथनाल्लेभे हरिर्लक्ष्मीं हरो विषम्॥"

प्रतिकूलतामुपगते हि दैवे न मनागपि सिध्यति साध्यम्। अतएवाह माघः— "प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता। अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यतः करसहस्रमपि।" तादृशं दैवस्य प्राबल्यं यज्जनस्य चेतश्चेतयते तदेव यद् दैवमभिलष्यति। अत आह श्रीहर्षः—"अवश्यभव्येष्वनवग्रहग्रहा यया दिशा धावति वेधसः स्पृहा। तृणेन वात्येव तयाऽनुगम्यते जनस्य चित्तेन भृशावशात्मना।" विरुद्धे हि विधौ श्रमसहस्रमपि वितथं स्यात्। भाग्येऽनुकूले दोषा अपि गुणत्वमायान्ति। उक्तं च—"गुणोऽपि दोषतां याति वक्रीभूते विधातरि। सानुकूले पुनस्तस्मिन् दोषोऽपि च गुणायते।" दुःखानि सुखानि च भाग्यानुसारमेव सम्भवन्ति। उच्यते च—'भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति'। दैवानुसारमेव मनुष्यस्य बुद्धिवृत्तिरपि सम्पद्यते। विधिश्चाघटितघटनापटुर्घटितस्य विघटने च दक्षः। 'अघटितघटितं घटयति, सुघटित-

घटितानि दुर्घटीकुरुते। विधिरेव तानि घटयति, यानि पुमान्नैव चिन्तयति।' सिद्धिरसिद्धिश्च दिष्ट्यनुरूपमेव परिणमतः।

अवितथमेतद्यद् दैवं फलति, सिद्धिश्च दैवाधीना। परन्त्ववगन्तव्यमेतद् यत् पूर्वकृतकर्मपरिपाक एव दैवमिति, नान्यत्। यदि सुनिश्चितमेतदवधारितं तर्हि भाग्यमनुकूलयितुं भवतितराम् आवश्यकता सुविचारितस्य कर्मणः कठिनस्य श्रमस्य च। अतएवावितथमाह श्रीकृष्णो गीतायाम्—'नियतं कुरु कर्म त्वं, कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः। शरीरयात्रापि च ते न प्रसिध्येदकर्मणः'। कर्म च कर्मफलासक्तिं विहायैव कार्यम्। तदेव साफल्यं लम्भयति। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि'। सत्फलं तपसा श्रमेण सुचरितेन च लभ्यम्। तदेव च परिणमति काले। 'भाग्यानि पूर्वतपसा किल सञ्चितानि, काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः'। भाग्याद् गुरुतरं कर्म, तदेव फलति, तदेव चोपास्यम्। 'नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति'।

जगति समेषामपि सत्त्वानां नैसर्गिकी इयमभिवाञ्छा यत् स्याद् दुःखात्ययः सुखाधिगमश्च। का नु वरीयसी सृतिरिह स्वीकार्या साध्यमेतत् साधयितुम्। शान्तेन स्वान्तेन चिन्त्यते चेत्तर्हि पुरुषार्थमन्तरा न साधनान्तरं दृष्टिपथमुपयाति। धीरा वा, वीरा वा, मनीषिणो वा, वाग्वैभवसम्पन्ना वाग्मिनो वा, कविताकामिनीकान्ताः कविवरा वा, सर्वेऽपि पौरुमाश्रित्यैवाभीष्टां सिद्धिमधिजग्मुः। अकर्मण्यताऽऽलस्यं पौरुषहीनत्वं दैष्टिकता चाऽत्र प्रत्यवायरूपेणावतिष्ठन्ते। यद्यस्ति हार्दिकी सुखलिप्सा, अभीष्टमात्महितं, चिकीर्षितं परहितं, काङ्क्षितं कुलहितं, वाञ्छितं विश्वहितं, समीहितं समाजसुखं वा तर्हि आलस्यं नाम रिपुरपनेयश्चेतसोऽपहरणीयाऽकर्मण्यता-ऽपहस्तयितव्यं चापौरुषत्वम्। उद्यम उद्योगोऽध्यवसायो वा मानवस्यानुपमो बन्धुः। यमवष्टभ्य यदभिलषितं तदधिगम्यते। तथा चोच्यते—'आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः। नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति'। योगवासिष्ठेऽप्यभिधीयते—'पौरुषाद् दृश्यते सिद्धिः पौरुषाद् धीमतां क्रमः'। यावज्जीवं जीवः कर्मनिरतोऽध्यवसायपरश्च स्यात्, कर्मफलासक्तिं च परिहरेन्मनसेत्यादिशति वेदः। पथाऽनेनैवाभीप्सितमखिलं सिध्यति सताम्। 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ँ समाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे' (यजु० ४०.२)। या काऽपि सिद्धिरभीष्टा, साऽविकला शक्यते लब्धुमुद्यमेनैवेति चेच्चेतसि क्रियते तर्हि नालभ्यं किञ्चिदस्ति जगति। अतः साधूक्तम्—'उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः'। 'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः'। अध्यवसायिन एव साहाय्यमाचरति विभुरपि। यथा चोक्तम्—'उद्यमः साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः। षडेते यत्र वर्तन्ते तत्र देवः सहायकृत्'।

पक्षद्वयस्य बलाबलत्वविवेचनेन सिध्यत्यदो यत् सुविचार्य कृतमवदातं कर्म साधयति साध्यमिह जगति। तदेव च संस्काररूपेणावशिष्टं दैवमिति भवति, प्रवर्तयति च भाविकर्मजातम्। अत उभयस्याश्रयणं न्याय्यम्।

१७. सहसा विदधीत न क्रियाम् (किराता० २.३०)

महाकवेर्भारवेर्महाकाव्ये किरातार्जुनीये सन्ति शतशः सूक्तिमुक्ताः। तत्रापि द्वित्राः सन्ति सूक्तयो याश्चकासति तरणिश्रियमिव। तास्वप्यन्यतमैषा सूक्तिः। सूक्तं तेन महाकविना यन्न जनः कोऽपि सहसा किमपि विधेयं विदधीत, यतो ह्यविवेकः परमापदां पदमस्ति। ये च विमृश्यकारिणो भवन्ति त एव श्रियः श्रयन्ते। तथोक्तं तेन—'सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्। वृणते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धा स्वयमेव सम्पदः।'

को नाम विवेकः? कश्चाविवेकः? क उपयोगो विवेकस्य? किमिह साध्यं विवेकेन? यदि नोपादीयतेऽयं कथमिव विपदां निदानत्वेन परिणमते? विवेचनमेव विवेक इति। सदसतोः पुण्यापुण्ययोः कर्तव्याकर्तव्ययोर्हेयोपादेययोश्च येन विधिवद् विवेचनं क्रियते स विवेक इत्यभिधीयते। इतरश्चाविवेक इत्याख्यायते। विवेकस्य महत्युपयोगिता जीवनेऽस्मिन्। विवेक एव सदसतोः पापपुण्ययोः कर्माकर्मणोश्च फलाफलं गुरुलाघवं च चिन्तयति। स एव किं ग्राह्यं किं हेयं किञ्चोपेक्ष्यमिति सन्दिशति। विवेक एवेह जगति ज्ञानमिति, बुद्धिरिति, धीरिति च व्यवह्रियते। विवेकमन्तरेण न भूयान् भेदो मनुष्येषु पशुषु च। अस्ति मानवे विवेकशक्तिः। यया सोऽर्थमनर्थं च बहुधा विभाव्यार्थसाधकमुपादत्तेऽनर्थसाधकं चोज्झति। जीवने हि सर्वस्येष्टं सुखम्। सर्वो हि यतते सुखावाप्तये। नहि दुर्जनोऽपि खलोऽपि मूढोऽपि हीनेन्द्रियोऽपि दुःखमिष्टत्वेन गणयति। सोऽपि सुखमेव कामयते, यतते च तल्लाभाय। अङ्गीकृतायामीदृश्यामवस्थायां को नु मार्गो यः सुखसाधकत्वेन प्रवर्तेत। विचारचक्षुषा चिन्त्यते चेद् विवेकस्य महत्त्वं स्फुटं प्रतीयते। सर्वमपि साध्यं साध्यते विवेकेनैव। विवेकपूर्वा कृतिरेव लम्भयति श्रियम्। विवेकः सुखस्य मूलम्, शान्तेर्विधानम्, धृत्या निदानम्, श्रिय आश्रयः, गुणानामागारम्, विभवस्य भूमिः, उन्नतेः साधनम्, सत्कर्मणामाकरः, विनयस्य कारणम्, शीलस्य सन्धायकश्च। विवेक उपादत्तश्चेद् न जीवनेऽवसादावसरः। अनुपादत्तश्चेदयं प्रतिपलं प्रतिपदं चोपतिष्ठन्ते विपदो दुःखानि प्रत्यूहाश्च।

ये हि विपश्चितो विचारशीलाश्च ते प्रतिपदं सम्यगवधार्य वस्तुस्थितिं शान्तेन स्वान्तेन कर्तव्यस्याकर्तव्यस्य च गुरुलाघवं विमृश्य यद् हितसाधकं सुखकारकं च तदेवोपाददते। नहि भयाद् वा ह्रिया वा सहसा वा किञ्चित्तेऽनुतिष्ठन्ति। यत्कर्म सुविचार्य क्रियते तत् सत्फलमादधाति। अत उच्यते—'सुचिन्त्य चोक्तं सुविचार्य यत्कृतं, सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम्' (हितोपदेशः १.२२)। ये चाविचार्य कर्मणि प्रवर्तन्ते, तेषां प्रवृत्तिरज्ञानमूला। अज्ञानं हि सर्वासामापदामास्पदम्। अज्ञानावृतत्वात् तेषां कर्मणां दुःखावाप्तिरेव सुलभा। तादृशा जना दिङ्मूढा इव सुखं दुःखमिति मन्यन्ते, दुःखं च सुखम्, पापं सुखसाधनमिति, पुण्यं च दुःखसाधनमिति। एवं ते व्यसनशतशरव्यतामुपगच्छन्ति, प्रत्यहमवनतिं चोपगच्छन्ति। अत उक्तं भर्तृहरिणा—'विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः' (नीति० १०)।

विपश्चितो हि विचार्य सर्वमपि क्रियाकलापं कर्मणि प्रवर्तन्ते। सुधियाम् अवनिभृतां चैष परमो गुणो यद् विमृश्य ते कर्मसु प्रवृत्तिमादधते। भूभृतां मन्त्रशक्तिर्विचारमूलैव। किं कार्यं कश्च

तस्योपाय इति भृशं विविच्य ते कर्तव्यं कर्म निश्चिन्वन्ति। यद्यविचार्यैव निश्चीयते किञ्चित् तर्हि तत्फलं दुःखावहमेव भविता। एवं विद्वांसोऽपि यत् किञ्चिदपि स्यात् कर्तव्यं तत्र परिणतिं प्रधानतोऽवधारयन्ति। नहि ते सहसा कर्तव्यमकर्तव्यं वा विनिश्चित्य कर्मसु प्रवर्तन्ते। सहसा विहितं विधेयं दुःखं लम्भयति, चेतसि च शल्यतुल्यमाघातं विधत्ते। अतः साधूक्तं केनापि—'गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यमादौ, परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन। अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्तेर्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः'।

एष एवाभिप्रायश्चरकसंहितायामप्युपलभ्यते—'परीक्ष्यकारिणो हि कुशला भवन्ति'। 'नापरीक्षितमभिनिविशेत' 'सम्यक्प्रयोगनिमित्ता हि सर्वकर्मणां सिद्धिरिष्टा। व्यापच्चासम्यक्-प्रयोगनिमित्ता'। भगवता चरकेनापि कर्तव्यस्य कर्मणः परीक्षणमनिवार्यत्वेन गण्यते। यदि सम्यग् विचार्य कर्तव्यं निर्धार्यते तर्हि तस्य साफल्यमपि प्रागेवानुमातुं पार्यते। अविचार्य कृते कर्मणि न केवलमसाफल्यमेव, विपद् शरीरक्लेशः साधनात्ययः प्रत्यवायावाप्तिश्च। महाभारतेऽपि व्यासेन सुविचार्य कर्मप्रवृत्तिरुपदिष्टा। विमृश्यकारी सुखमेधते, श्रियमश्नुते, प्रत्यूहानपहन्ति, विपद् विदारयति, साध्यं साधयति। उक्तं च महाभारते—'चिरकारक भद्रं ते, भद्रं ते चिरकारक'।

अनालोच्य शुभाशुभं जनो यत् कर्मणि प्रवर्तते, तस्य मूलमज्ञानमेव। अज्ञानावृतचेतसो हि मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराः प्राज्ञंमन्याः कर्तव्याकर्तव्यविवेचनमप्यात्मप्रज्ञापरिभवत्वेनाकलयन्ति, न शुश्रूषन्ते साधूनामुपदिष्टम्, क्रियाविलम्बमन्तरायान्तरणमवगच्छन्ति, क्षिप्रकारित्वं च श्रियः साधनं गणयन्ति। एवंविधयाऽऽत्मविडम्बनया विप्रलब्धास्तेऽतिरभसकारित्वाद् न केवलं विपत्पारावार एव निमज्जन्ति, अपितु सर्वलोकस्योपहास्यतामवाप्य दुःखदुःखेन कालमतिवाहयन्ति। केचन हतबुद्धित्वाद् अज्ञानतमःप्रसरेण च पीड्यमाना यथैवोपदिश्यते परैस्तथैवाचर्यते तैः। न ते स्वविवेकोपयोगेन साध्वसाधु वा निर्णेतुमध्यवस्यन्ति। परिणतिस्तु तस्य विपदुपताप एव। अतो निगदितं कालिदासेन—'सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते। मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः'।

विवेकमूलः सुविचारश्चेदाश्रीयते आश्रयत्वेन, नह्यसाध्यमिह किञ्चिज्जगति। प्रत्यहं समीक्ष्यते सर्वस्यां संसृतौ देशैरनेकैः स्वराष्ट्रोद्धाराय प्रवर्त्यमाना विविधा योजनाः। भारतेऽपि पञ्चवर्षीया योजनाः प्रयुक्तचराः प्रयुज्यमानाः प्रयोक्ष्यमाणाश्चावेक्ष्यन्ते। विवेकमूलत्वादेवैतासां साफल्यमिष्यते, सम्भाव्यते च। विपश्चितोऽपि विवेकजीवित्वात् जीवनस्य कार्यक्रमं विमृश्यावधारयन्ति। अध्यवसायावसिक्तेन मनसा मुहुर्मुहुर्यतमानास्ते स्वाभीप्सितमाश्रयन्ते।

भारतीयैतिह्यमीक्ष्यते चेत् तत्राप्यविचार्यकारित्वादेव विविधा विपदो वीक्ष्यन्ते। दाशरथी रामः सुवर्णमृगं प्रेक्ष्याविचार्यकारित्वादेव तमन्वधावत्। तत्कृत्यं च तस्य जानकीहरणत्वेन परिणेमे। गुरुलाघवमविमृश्यैव रावणोऽपि सीताहरणे प्रवृत्तो निधनमवाप्तश्च सबान्धवः। अविवेकमाश्रित्यैव दुर्योधनोऽपि सूच्यग्रमात्रभूप्रदानेऽपि कार्पण्यं भेजे। तद्विपाकत्वेन महाभारतसमरे सपरिवारः सपरिजनः स्वेष्टजनसहितः सकलामवनिं विहाय दिवमशिश्रियत्। अतो विचार्यैव कृतिरनुष्ठेया, अतिरभसत्वं च विपन्मूलकत्वेन परिहरणीयम्।

१८. ज्वलितं न हिरण्यरेतसं चयमास्कन्दति भस्मनां जनः

(किराता० २.२०)

सूक्तिमुक्तेयमुपलभ्यते महाकवेर्भारवेः कृतौ किरातार्जुनीये। कविरिहोपदिशति तेजस्विताया मानितायाश्च महत्त्वम्। प्रज्वलितमग्निमाक्रमितुं नोत्सहते धृष्टोऽपि कश्चित्, परं भस्मनां पुञ्जं लघुरपि जनः प्रभवत्याक्रमितुम्। कोऽत्र भेदः? प्रदीप्तोऽग्निर्दाहगुणसमवेतस्तेजसा समन्वितश्च प्रभवति दग्धुं निखिलं जगदिदम्। तत्तेजस्तनोति साध्वसमतुलं स्वान्तेऽपि सन्त्रासकस्य। न धृष्णोति धृष्टोऽपि धाष्ट्र्यमाधातुं मनसि कृशानुधर्षणस्य। भस्मानि तु निस्तेजांसि। नानुभवन्ति तानि मानावमानम्। अतस्तेषां धर्षणं शक्यम्। एवमेव मानिनोऽपि सहर्षमसूनुज्झन्ति, न तु स्वतेजस्त्यजन्ति। अतो निगद्यते भारविणा—'ज्वलितं न हिरण्यरेतसं चयमास्कन्दति भस्मनां जनः। अभिभूतिभयादसूनतः सुखमुज्झन्ति न धाम मानिनः' (किराता० २.२०)

किं नाम जीवनम्? किं नाम पुरुषत्वम्? के गुणास्ते ये जीवनं साफल्यं लम्भयन्ति, पुरुषे पौरुषञ्चादधति? तदेव जीवनं येन स्थास्नु यशश्चीयते, सुखमुपभुज्यते, शान्तिः स्थिरीक्रियते। तदेव पुरुषत्वं यत्र तेजः स्वाभिमानिता पौरुषं च प्राधान्येनाश्रयं लभन्ते। तेजस्विता मानिता गुणार्जनं श्रीसंग्रहश्चेति गुणाः सर्वेषामेव जीवनानि सफलयन्ति, पुरुषे पौरुषमाविष्कुर्वन्ति च। भारविर्लक्षयति पुरुषत्वं यन्मानित्वमेव प्रधानं पुरुषस्य लक्षणम्, मानविहीनो न नरः। 'पुरुषस्तावदेवासौ यावन्मानान्न हीयते' (कि० ११.६१)। विजहाति चेन्मानं स तृणवदगण्यो निरर्थकं च तस्य जन्म। 'जन्मिनो मानहीनस्य तृणस्य च समा गतिः' (कि० ११.५९)।

मानश्चेदभीप्सितः, कस्तदवाप्त्युपायः? भारविस्तदवाप्तिसाधनमभिदधाति तेज इति। 'स्थिता तेजसि मानिता' (कि० १५.२१)। तेजस्वितागुणमेवावष्टभ्य मानिता प्रवर्तते प्रवर्धते च। यत्र तेजस्विता तत्रैव यशः श्रीर्गुणगणाश्च। तेजस्विनो हि विराजन्ते तरणिवदाभया। ते दुष्करमपि सुकरं दुर्गममपि सुगमं दुर्लभमपि सुलभं दुःसहमपि सुसहं सम्पादयन्ति। न तेषां वयो विचार्यते। बाल एव रामः खरदूषणवधं विधातुमशकत्। अत आह कालिदासः—'तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते' (रघु० ११.१)। यश्च तेजसा परिहीयते परिक्षीयते तत्र मानिता। मानपरिक्षये च सर्वे गुणा अपि तत्र क्षयमेव भजन्ते। निर्वाणे तु दीपके ज्योतिरपि तदाश्रयमुज्झति। तदाह— 'तेजोविहीनं विजहाति दर्पः, शान्तार्चिषं दीपमिव प्रकाशः' (कि० १७.१६)। निस्तेजाः सर्वत्रैवावगण्यते परिभूयते धिक् क्रियते धृष्यते च। तस्य निस्तेजस्त्वमजस्रमवमानमावहति। अतो निगदितं भासेन—'मृदुः परिभूयते' (प्रतिमा० १.१८)। उक्तं च मृच्छकटिके शूद्रकेण— 'निस्तेजाः परिभूयते' (१.१४)। तेजसा सममेव समेधते स्वावलम्बनस्य साधीयसी साधना। तेजस्विनो न पराश्रयमपेक्षन्ते, न च परसाहाय्यमेव समीहन्ते। ते स्वतेजसा जगद् व्याप्नुवन्ति। तदुच्यते—'लघयन् खलु तेजसा जगन्न महानिच्छति भूतिमन्यतः' (किराता० २.१८)।

महाकविना माघेनापि तेजस्विताया मानितायाश्च महत्त्वं बहुधा वर्णितम्। मानिनोऽवमन्तॄन् समूलमुन्मूल्यैव शान्तिं श्रयन्ते, यथा सप्तसप्तिः समस्तं नैशं तिमिरमपाकृत्यैवोदेति। 'समूलघातमघ्नन्तः परान्नोद्यन्ति मानिनः। प्रध्वंसितान्धतमसस्तत्रोदाहरणं रविः'। (शिशु०

२.३३) परावमानं यः सहते, न स पुंशब्दभाक्। तादृशस्य नराधमस्याजनिरेव श्रेयसी। स केवलं मातृक्लेशकारी। 'मा जीवन् यः परावज्ञादुःखदग्धोऽपि जीवति'। (शि० २.४५)। पादाहतं रजोऽप्युत्थाय मूर्धानमारोहति। योऽपमानेऽपि गतव्यथः स रजसोऽपि हीनः। 'पादाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति। स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद् वरं रजः'। (शि० २.४६)। तिग्मता प्रतापाय म्रदिमा परिभवाय चेति स्फुटं समीक्ष्यते। राहुर्द्रुतं ग्रसते चन्द्रम्, भानुं च चिरेण। 'तुल्येऽपराधे······तन्म्रदिम्नः स्फुटं फलम्' (शि० २.४९)।

महाकविना कालिदासेनापि तेजस्विताया महिमोररीक्रियतेऽभिधीयते च। ऋषयः शान्तिसमन्विता अपि तेजोमयाः। सति चाभिभवे सूर्यकान्तमणिवद् उद्‌गिरन्ति तेजः। न ते सहन्तेऽभिभवं जातु। 'शमप्रदानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः०'। (शाकु० २.७)। सत्यभिभवे प्रज्वलति जातवेदाः, सति च परिभवे तेजस्विनोऽपि स्वमुग्रं रूपं धारयन्ति।'ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते। प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात् प्रतिपद्यते हि जनः'। (शा० ६.३१)।

सन्तः सदैव श्रेयस्करमाचक्षते यश एव। विनश्वरे जगति यश एवैकं स्थास्नु। यशसे एव जीवन्ति म्रियन्ते च साधवः। यश एव परमं धनं मन्वते मानिनः। उच्यते च—'यशोधनानां हि यशो गरीयः' 'कीर्तिर्यस्य स जीवति'। श्रीरनुयाति तादृशान् मानिनो यशस्विनश्च। मानिनो गत्वरैरसुभिः स्थायि यशश्चिचीषन्ति। तथोक्तं भारविणा—'अभिमानधनस्य गत्वरैरसुभिः स्थास्नु यशश्चिचीषतः। अचिरांशुविलासचञ्चला ननु लक्ष्मीः फलमानुषङ्गिकम्'। (कि० २.१९)। अवधेयमिह चैतत्। ये हि मानिनो मानमेव प्रधानतो गणयन्ति, न ते जात्वभिलषन्ति श्रियम्। ते श्रियमवमत्य मानमाद्रियन्ते। मानस्य सम्पदश्चैकत्रावस्थानं सुदुर्लभम्। तदुच्यते भारविणा—'न मानिता चास्ति भवन्ति च श्रियः' (कि० १४.१३)।

तेजोऽवाप्तये सम्पद्यतेतरामावश्यकता गुणार्जनस्य। नान्तरेण गुणसंग्रहं मानिता तेजस्विता वा सम्भवति। गुणार्जनं मूलं मानितायास्तेजस्वितायाश्च। गुणैरेवावाप्यते यशो महिमा च। गुणैरेव गौरवावाप्तिरादरास्पदत्वं च। उक्तं च भारविणा—'गुरुतां नयन्ति हि गुणा न संहतिः' (कि० १२.१०)। गुणार्जनस्य महत्त्वमन्यत्रापि श्रूयते। 'गुणेषु क्रियतां यत्नः किमाटोपैः प्रयोजनम्'। भवभूतिरपि गुणानामेव पूज्यत्वमाचष्टे, न तु वय आदीनाम्। 'गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः' (उत्तर० ४.११)। गुणैरेव स्थायिनी कीर्तिः सुलभा, शरीरं तु गत्वरम्। यशःसिद्ध्यै एव सिध्यन्ति साधूनां सच्चरितानि। तदुच्यते—'शरीरस्य गुणानां च दूरमत्यन्तमन्तरम्। शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पान्तस्थायिनो गुणाः'। (हितोपदेशः १.४९)।

तेजस्विन एव नामाभिनन्दन्ति रिपवोऽपि। स एव सत्यं पुंशब्दाभिधेयः। 'नाम यस्याभिनन्दन्ति द्विषोऽपि स पुमान् पुमान्' (किराता० ११.७३)। क्षणमपि तेजःसहितं जीवितं श्रेयो न च चिरं सावमानम्। तेजस्वितैव तत्त्वं जीवितस्य। अतः साधूच्यते महाभारते—'मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम्'।

१९. आशा बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान्।

(वेणी० ५.२३)

का नामाशा ? कथं चाचरतीयं विप्रियं सुप्रियं वा सर्वस्य लोकस्य ? अस्ति किमावश्यकता जीवने आशाया उपादानस्य परिहारस्य वा ? उपादत्ता चेत् किमिति किंचित् साधयति साध्यमिह जगति ? निरस्ता चेत् किं सुफला विफला कुफला वा भवति ? आशाया नामग्राहेण समकालमेव समुपतिष्ठन्ते बहवोऽनुयोगाः। ते क्रमशोऽत्र विविच्यन्ते। तेषामौचित्यमनौचित्यं वाऽवधारयिष्यते सयुक्तिकम्। प्राक् तावद् विचार्यते—का नामाशा? आ समन्ताद् व्याप्नोति मानवानां चेतांसीत्याशा। आङ्पूर्वकाद्अश्धातोरच्प्रत्ययेनैतद् रूपं निष्पद्यते।

वेदेषूपलभ्यते सर्वत्राशावादस्य प्रवाहः। श्रुतयो मुहुर्मुहुरादिशन्ति मानवमाशामवलम्ब्य समुन्नत्यै समृद्ध्यै प्रगत्यै च। उच्यते च—(क) वयं स्याम पतयो रयीणाम् (यजु० १०.२०), (ख) अग्ने नय सुपथा राये० (यजु० ४०.१६), (ग) कृधी न ऊर्ध्वान् चरथाय जीवसे (ऋग्० १.३६.१४)। (घ) अदीनाः स्याम शरदः शतम् (यजु० ३६-२४)। (ङ) भूत्यै जागरणम्, अभूत्यै स्वपनम् (यजु० ३०.१७)। (च) उच्छ्रयस्व महते सौभगाय (अथर्व० ३.१२.२)। (छ) मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमाम्० (यजु० ३२.१६)। (ज) मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रः (ऋग्० १०.१२८.१)। आशैव जीवने धृतिं स्फूर्तिं शक्तिं चादधाति। तामाश्रित्यैव सर्वविधा समुन्नतिः सुलभा।

आशा नामैषा मानवजीवनस्यास्त्याधारशिला। मानवजीवने यः संचारः प्रगतिरुद्गतिरुन्नतिर्वाऽवलोक्यते तस्य मूलत्वेनाशायाः संचार एव जीवनेऽवगन्तव्यः। यदि नाम न स्यादाशा जीवने तत्प्रेरकत्वेन, न स्याज्जीवनं प्रगतिशीलमुन्नतिपथमारूढमभ्युन्नतं च। आशा नाम जीवनेऽनुपमा स्फूर्तिप्रदायिनी काचिदपूर्वा शक्तिः। सैव मुमूर्षावपि जीवनाशां संचारयति। सैव वीरे वीराभिमानित्वं शूरे शौर्यं विदुषि वैदुष्यं धीरे धैर्यं साधौ साधुत्वं च प्रसारयति। सैव दीने हीने खिन्ने विषण्णे विपन्नेऽपि च धैर्यमादधाति, दुःसह-दुःखसहनशक्तिं चाविष्करोति चेतसि। नैराश्यस्य घोरायां तमिस्रायामपि सैषाऽऽविर्भावयति जीवनशक्तिप्रदं जाज्वल्यमानं ज्योतिः। न ज्योतिरेतच्चला चपलेव क्षणभङ्गुरम्। जागर्त्यदोऽहर्निशं शान्तेऽपि स्वान्ते साधकस्य। ज्योतिरेतदेव प्रेरयति मुमुक्षुं मोक्षाधिगमाय, साधकं साधनासिद्ध्यै, वाग्मिनं वाग्-वैशारद्याय, गुणिनं गुणग्रहणाय, विपश्चितं विद्यावैभवाय, कविं काव्यकौशलाय, शूरं शौर्याय, धीरं धैर्याय च। अजस्रमेतदाचरति सुप्रियं सर्वलोकस्य।

आशा नामेयं नितरामावश्यकी जीवनेऽस्मिन्। उपादेया चेयमुन्नतिमभिविधित्सुभिः। अस्ति चेच्चेतसि धैर्यस्याऽऽधित्सा तर्हि नूनमियमाधेया। विपन्ने विषण्णे च मानसे

धैर्यमादधात्याशैव। नहि विपच्छाश्वती, तदत्ययो ध्रुवः, निशावसानं नियतम्, निशात्यये उषस उद्‌गमोऽनिवार्यः, एव विपदां क्षयोऽपि ध्रुवः, क्रमशः सम्पदां समुपस्थितिश्च सुनिश्चितेति विचारं विचारं धीर्धैर्यं धारयति।

उपादत्ता चेदियं साधयत्यसाध्यमपि साध्यं साधूनाम्। परहितनिरता हि साधवः पीड्यन्ते पापिष्ठैः पुरुषैः। अज्ञानसंभारसंक्षीणसद्‌भावा ह्यसाधवो न चिन्तयन्ति चारुचेतसां चरितानि। अपगते चाज्ञानमले त एव साधूनां सच्चरितानि चिन्तयन्ति, प्रशंसन्ति च तेषां परहितनिरतत्वम्। धृत्या आश्रयणेनैव साधवोऽसाधून् विजयन्ते। प्रोषिते हि भर्तरि वियोगदुःखविधुरा वामा न लभन्ते जातु शान्तिम्। आशैव त्रायते तासां जीवनम्। सैव साहयति गुर्वपि विरहदुःखम्। अत आह कालिदासः—गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति (शा० ४.१६)। अतिमृदुलं हि मानसं भवति मनस्विनीनाम्। आशाबन्धमन्तरेण न शक्यं ताभिर्विप्रयोगदुःखं सोढुम्। अत उच्यते—आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां, सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि। (मेघ० पूर्व० ९)।

आशामवष्टभ्यैव वीतरागभयक्रोधाः संसारासारत्वोपदेशदक्षा ऋषयो मुनयश्च मुमुक्षवस्तीक्ष्णं तपस्तप्यन्ते। आशामाश्रित्यैवान्तेवासिनो महच्छ्रममनुष्ठाय परीक्षोदधिमुत्तीर्य जीवने साफल्यं भजन्ते। महाभारतयुद्धे गते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे च देवभूमिं गते आशामाश्रित्यैव शल्यं सैनापत्येऽभ्यषेचयन् कौरवाः। अत एवोच्यते—'गते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे च विनिपातिते। आशा बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान्।' देशाभ्युदयः समाजोन्नतिश्चाशाश्रयणेनैव संभवति। भारतवर्षे विविधाः पञ्चवर्षीया योजना देशाभ्युदयस्याशयैव प्रवर्त्यन्ते। अवगम्यते एवमाशाया महत्त्वम्।

इदं चात्रावधेयम्। सूक्तं केनापि—'अति सर्वत्र वर्जयेत्'। यद्याशैवैषा तृष्णारूपेण परिणमते चेद् भवत्येषैव विपदां निदानम्। नहि शाम्यति तृष्णा, तदुपकरणानि तु शाम्यन्ति। तावत्येवाशा श्रेयस्करी सुखसाधनस्वरूपा च यावदियं नोल्लङ्घते स्वीयां मर्यादाम्। मर्यादातिक्रमे तु सर्वमेव दुःखात्मकतां भजते इत्यत्र न कस्यापि विपश्चितो विप्रतिपत्तिः। एतच्चेतसि कृत्वैव क्रियते कोविदैराशायास्तिरस्क्रिया, सन्तोषस्य च सत्क्रिया। उच्यते च—'आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्'। न स्याज्जात्वाशाया वशंवदः, अपि त्वाशामेव वशंवदां विदधीत। आशा चेद् वशगा तर्हि सर्वोऽपि लोको वशगो भवेत्। अत उच्यते—'आशाया ये दासास्ते दासाः सर्वलोकस्य। आशा येषां दासी तेषां दासायते लोकः'। आशावशगस्य न भवति मोक्षः स्थविरत्वेऽपि। अतः साधूच्यते—'अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम्। वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशा पिण्डम्'। 'कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः'। तदेवं सिध्यत्यदो यत् तृष्णात्वेन नाश्रयेदाशाम्। आशां वशगां विधाय तामाश्रित्य च साधयेत् सकलं साध्यम्।

२०. स्त्रीशिक्षाया आवश्यकतोपयोगिता च।

शिक्षा नाम जीवने शुभाशुभावबोधनी पुण्यापुण्यविवेचनी हिताहितनिदर्शनी कृत्याकृत्यनिर्देशनी समुन्नतिसाधिकाऽवनतिनाशनी सद्भावाविर्भावयित्री दुर्भावतिरोधात्री आत्मसंस्कृतिहेतुर्मनसः प्रसादयित्री, धियः परिष्कर्त्री, संयमस्य साधयित्री, दमस्य दात्री, धैर्यस्य धात्री, शीलस्य शीलयित्री, सदाचारस्य संचारयित्री, पुण्यप्रवृत्तेः प्रेरयित्री, दुष्प्रवृत्तेर्दमयित्री, समग्रसुखनिधाना, शान्तेः सरणिः, पौरुषस्य पावनी काचिदपूर्वा शक्तिरिह निखिलेऽपि भुवने। समाश्रित्यैवैतां सुधियो विश्वहितं देशहितं समाजहितं जातिहितं च चिकीर्षन्ति, लोकस्य दुःखदावाग्निं संजिहीर्षन्ति, दीनानुपचिकीर्षन्ति, सद्भावानाधित्सन्ति, दुर्भावान् जिहासन्ति, सत्कर्म विधित्सन्ति, दुष्कर्म जिहीर्षन्ति, आत्मानं मुमुक्षन्ते च। यथेयं नराणां हितसाधयित्री सुखसाधनी च, तथैव स्त्रीणामपि कृतेऽनिवार्या सुखशान्तिसाधिका समुन्नतिमूला च। यथा च नान्तरेण शिक्षां पुरुषैरभ्युदयावाप्तिः सुलभा सुकरा च, तथैव स्त्रीणां कृतेऽपि समधिगन्तव्यम्। नरश्च नारी च द्वावेवैतौ सद्गृहस्थसुरथस्य चक्रद्वयम्। यथा चक्रेणैकेन न रथस्य गतिर्भवित्री, एवं सर्वार्थसाधिनीं स्त्रियमन्तरेण न गृहस्थरथस्य प्रगतिः सुकरा। सति विदुषि नरे सहधर्मचारिणी चेत् सच्छिक्षापरिहीणा, न दाम्पत्यं सुखावहम्। द्वयोरेव गुणैर्धर्मेण ज्ञानेन विद्यया शीलेन सौजन्येन च गार्हस्थ्यं सुखमावहतीत्यवगन्तव्यम्। यथा नरेण ज्ञानमन्तरा समुन्नतिदुर्लभा, तथैव स्त्रियाऽपि। एतर्हि पुरुषशिक्षावत् स्त्रीशिक्षाप्यनिवार्याऽऽवश्यकी च।

यदि विचारदृशा विमृश्यते परीक्ष्यते चेद् भूयस्यावश्यकताऽनुभूयते स्त्रीशिक्षायाः। स्त्रिय एवैता मातृशक्तेः प्रतीकभूताः। निसर्गादेवैतासु पतत्युत्तरदायित्वं शिशोर्भरणस्य पोषणस्य च, गृहस्य संचालनस्य संस्थापनस्य च, गृहस्थजीवनस्य सुखस्य शान्तेश्च, परिवारप्रपुष्टेः कुटुम्बभरणस्य च, श्वशुरश्वश्र्वोः शुश्रूषायाः परिचर्यायाश्च, शिशोः शैशवे शिक्षणस्य प्रशिक्षणस्य च, शिशौ सत्संस्काराधानस्य सच्छीलनिधानस्य च, भर्तुः सहयोगस्य सद्भावोन्नयनस्य च, अभ्यागतसपर्याया लोकहितसम्पादनस्य च। अनासाद्य वैदुष्यं न संभाव्यते स्त्रीभिः स्वीयोत्तरदायित्वपरिपालनम्। वैदुष्यलाभाय च न केवलं विविधग्रन्थपरिशीलनमेव पर्याप्तम्, अपितु व्यावहारिकीणां विविधानां विद्यानां विज्ञानानां च परिज्ञानमपि तेषां कृतेऽनिवार्यम्। विविधकलाकलापकौशलमवाप्यैव पार्यते दाम्पत्यजीवनं मधुरं सुखावहमानन्दरसावसिक्तं च सम्पादयितुम्। विशदीभवत्येतस्माद् यन्मानवशिक्षणवन्नारीशिक्षाऽपि नितरामावश्यकी। ज्ञानविज्ञानकौशलमधिगच्छति चेद् द्वय्यपि नरनार्योस्तर्हि न केवलं तेषामेव जीवनं सुखशान्तिसमन्वितं भविताऽपि तु समाजहितं राष्ट्रहितं विश्वहितं च संभाव्यते युगलेन सम्पादयितुम्।

ऊरीक्रियते चेत् स्त्रीशिक्षाया आवश्यकता तर्हि बहवोऽनुयोगाः पुरुतोऽवतिष्ठन्ते। तद्यथा—किं स्यात् स्त्रीशिक्षायाः स्वरूपम्? कीदृशी शिक्षा तासां हितकरी भवितुमर्हति? कुमाराणां कुमारीणां च सहशिक्षा श्रेयस्करी न वेति? विषयेष्वेषु नैकमत्यं मतिमताम्। कुमारीणां शिक्षा कुमाराणां शिक्षावदेव स्यात्। तत्र नोचितः कश्चन प्रतिबन्धः। जीवनसंग्रामे साम्यमूला स्यात् तासु व्यवहृतिरित्येके आतिष्ठन्ते। अन्ये तु नरनार्योर्नैसर्गिको भेदोऽपौरुषेयः, तेषां कार्यशक्तिरसमा, तेषां व्यवहारक्षेत्रं विपरीतम्, तेषां वृत्तिभेद इत्यास्थाय शिक्षायामपि वैविध्यं हितकरमाकलयन्ति। उचितं चैतत् प्रतिभाति। नार्यो हि मातृशक्तेः प्रतीकभूता इत्युक्तपूर्वम्। तासां कृते सैव शिक्षा श्रेयो वितनितुं प्रभवति या मातृशक्तिमूलभूतान् गुणान् उन्नयेत्। तासु शीलं सौकुमार्यं सद्भावं स्नेहं वात्सल्यं सच्चारित्र्यं द्वन्द्वसहिष्णुत्वं कर्तव्यनिष्ठतामास्तिक्यं चोत्पादयेत्। गुणानामेतेषामभावश्चेत् तासु, तर्हि सकलकलानिष्णाततत्वमपि तासां निष्प्रयोजनम्। अतस्तादृशी शिक्षा हितकरी या सच्छीलादिगुणाधानपूर्वकं तासु गृहकलावैशारद्यं कर्मनिष्ठतां सद्गृहिणीत्वबुद्धिमुत्पादयेत्। "स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्" इत्यत्र न श्रद्दधति सुधियः साम्प्रतम्। लोकव्यवहारज्ञानविहीनानां केषामप्युक्तिरिति तेषां मतम्।

कुमाराणां कुमारीणां च सहशिक्षाविषये वैमत्यमधुनाऽपि संलक्ष्यते विदुषाम्। शैशवे सहशिक्षा संभवति। न तत्र व्यावहारिकी क्लिष्टता। यौवनेऽपि सहशिक्षा श्रेयस्करीति न वक्तुं सुकरम्। व्यवहारदृशा दृश्यते चेत् समापतति यद् यौवने सहशिक्षा न तथा हितसाधनी, यथाऽहितसाधनी। अतो यावच्छक्यं तावद् यौवने पृथक् शिक्षैव प्रशस्या।

सुशिक्षितैव स्त्री सद्गृहिणी सती साध्वी सत्कर्मपरायणा वंशप्रतिष्ठास्वरूपा च भवितुमर्हति। सैव सद्वृत्तादिसद्गुणगणान्वितां सन्ततिं विधातुमीष्टे। स्त्रिय एव मातृभूताः सद्वंशं सद्राष्ट्रं च निर्मातुं प्रभवन्ति। आह्निकक्रियाकलापविकलो मानवो न तथाऽपत्येषु सत्संस्काराधाने प्रभवति, यथा मातरः। अतः मातृशक्तेः शास्त्रेषु महद् गौरवमनुश्रूयते। उक्तं च मनुना—'यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवताः'। अन्यत्र चोच्यते—'मातृदेवो भव', 'सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते', 'पितुर्दशगुणं माता गौरवेणातिरिच्यते'। गृहाधिष्ठातृदेवतात्वात् सा गृहिणी, गृहस्वामिनी, गृहलक्ष्मीरित्यादिशब्दैः संस्तूयते। तत्सत्त्वादेव गृहं गृहमित्युच्यते। उच्यते च—'न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते'। ऋग्वेदेऽपि 'जायेदस्तम्' गृहिण्येव गृहमिति प्रतिपाद्यते। एवं मातरः स्त्रियश्च सर्वत्रैव समादरमर्हन्ति। देशस्य समाजस्य च समुन्नत्यै स्त्रीशिक्षा नितरामावश्यकीत्यवगन्तव्यम्।

(११) अनुवादार्थ गद्य-संग्रह

(१) बढ़े चलो, बढ़े चलो (ऐतरेय ब्राह्मण, अ० ३३, खण्ड ३)

हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित को इन्द्र ने उपदेश किया कि—(क) हे रोहित, हमने सुना है कि कठोर परश्रिम करके थके बिना ऐश्वर्य नहीं मिलता। परावलम्बी मनुष्य पापी होता है। परमात्मा परिश्रमी का साथी होता है, अतः बढ़े चलो। (ख) बैठे हुए का ऐश्वर्य बैठ जाता है। उठते हुए का उठता है, सोते हुए का सोता है और चलते हुए का बढ़ता है, अतः बढ़े चलो। (ग) सोता हुआ कलियुग होता है, अँगड़ाई लेता हुआ द्वापर होता है, उठता हुआ त्रेता होता है और चलता हुआ सतयुग होता है, अतः बढ़े चलो। (घ) चलता हुआ मधु पाता है, चलता हुआ स्वादिष्ट भोगों को पाता है। सूर्य की श्रेष्ठता को देखो जो चलता हुआ कभी आलस्य नहीं करता, अतः बढ़े चलो।

(२) अभिमान से पतन (शतपथ ब्राह्मण, कांड ९, प्र० १, ब्रा० १)

देवता और असुर दोनों प्रजापति के पुत्र हैं। दोनों में स्पर्धा हुई। तब असुरों ने दुरभिमान से सोचा कि हम किसमें हवन करें? उन्होंने स्वार्थ-बुद्धि से अपने ही मुँह में आहुति दी और अपनी ही उदरपूर्ति करते हुए विचरण करने लगे। वे दुरभिमान के कारण ही पराजित हुए। अतएव दुरभिमान न करे। दुरभिमान पतन का कारण है। देवों ने स्वार्थ-बुद्धि को छोड़कर एक-दूसरे के मुँह में आहुति दी और परोपकार करते हुए विचरण करने लगे। प्रजापति ने अपने-आपको उन्हें समर्पण किया। उनको यज्ञ दिया। यज्ञ देवों का अन्न है।

संकेत—(१) (क) नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति रोहित शुश्रुम। पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरतः सखा। चरैवेति। (ख) आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः। शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगः (ग) कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः। उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन्। (घ) चरन् वै मधु विन्दन्ति चरन् स्वादुमुदुम्बरम्। सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्। (२) देवाश्च वा असुराश्च। उभये प्राजापत्याः पस्पृधिरे। कस्मिन्नु वयं जुहुयामेति। स्वेष्वेवास्येषु जुह्वतश्चेरुः। तेऽतिमानेनैव पराबभूवुः। तस्मान्नातिमन्येत। पराभवस्य हैतन्मुखं यदभिमानः। अन्योन्यस्मिन्नेव जुह्वतश्चेरुः। तेभ्यः प्रजापतिरात्मानं प्रददौ। यज्ञो हैषामास। यज्ञो हि देवानामन्नम्।

(३) याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी-संवाद (बृहदारण्यक उप०, अ० ४, ब्रा० ५)

याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ थीं, मैत्रेयी और कात्यायनी। मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी और कात्यायनी सामान्य स्त्री-बुद्धिवाली। याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से कहा—मैं संन्यास लेना चाहता हूँ और तुम्हें कुछ बताना चाहता हूँ। मैत्रेयी ने कहा—यदि यह सारी पृथ्वी धन से पूर्ण हो जाय तो क्या मैं अमर हो जाऊँगी? याज्ञवल्क्य ने कहा—नहीं, नहीं। जैसा अन्य सांसारिक लोगों का जीवन हैं, वैसे ही तुम्हारा जीवन होगा। धन से अमरत्व की कोई आशा नहीं है। मैत्रेयी ने कहा—जिससे मैं अमर नहीं हो सकती, उसको लेकर मैं क्या करूँगी? जिससे अमरत्व प्राप्त हो, वह बात मुझे बताइए। याज्ञवल्क्य ने कहा—पति, स्त्री, पुत्र, धन, पशु, ब्राह्मण, क्षत्रिय, जनता, देवता, वेद और प्राणियों के हित के लिए ये प्रत्येक वस्तुएँ प्रिय नहीं होती हैं, अपितु अपनी आत्मा की भलाई के लिए ये वस्तुएँ प्रिय होती हैं। अतः आत्मा को देखो, सुनो, मनन और उसका ध्यान करो। आत्मा के देखने, सुनने, मनन और जानने पर सब कुछ ज्ञात हो जाता है।

(४) सत्य को जानो और अपनाओ (छान्दोग्य उप० अध्याय ७)

सत्य को जानना चाहिए। मनुष्य जब वस्तु-स्वरूप को जानता है, तभी सत्य बोलता है। बिना जाने सत्य नहीं बोलता, जानते हुए ही सत्य बोलता है, अतः ज्ञान और विज्ञान को जानना चाहिए। मनुष्य जब मनन करता है, तभी जानता है। बिना मनन किए नहीं जानता, मनन करने से जानता है, अतः मनन करना चाहिए। मनुष्य को जब किसी वस्तु पर श्रद्धा होती है, तभी मनन करता है। बिना श्रद्धा के मनन नहीं करता, श्रद्धा होने पर मनन करता है, अतः श्रद्धा को जानना चाहिए। मनुष्य में जब निष्ठा होती है, तभी किसी वस्तु पर श्रद्धा करता है। बिना निष्ठा के श्रद्धा नहीं होती। मनुष्य जब कर्म करता है तभी किसी कार्य में उसकी निष्ठा होती है। बिना कर्म किये निष्ठा नहीं होती। मनुष्य को जब किसी कार्य से सुख मिलता है, तभी वह उस काम को करता है। दुःख मिलने पर उस कार्य को नहीं करता। अतः जानना चाहिए कि सुख क्या है? जो महान् है, वह सुख है, थोड़े में सुख नहीं होता। ब्रह्म महान् है, वह सुखरूप है, उसे जानो।

संकेत—(३) प्रव्रजिष्यन् अस्मि। स्यां न्वहं तेनामृता। अमृतत्वस्य तु नाशाऽस्ति वित्तेन। कामाय। आत्मनस्तु कामाय। आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः। आत्मनि दृष्टे-श्रुते मते विज्ञाते इदं सर्वं विदितम्। (४) सत्यं त्वेव विजिज्ञासितव्यम्। यदा वै विजानात्यथ सत्यं वदति, अविजानन्। यदा वै मनुतेऽथ विजानाति, अमत्वा। यदा वै श्रद्दधात्यथ मनुते, अश्रद्दधत्, श्रद्दधत्। यदा वै निस्तिष्ठत्यथ श्रद्दधाति। अनिस्तिष्ठन्। नाकृत्वा निस्तिष्ठति। नासुखं लब्ध्वा करोति। यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति।

(५) जगत्कर्ता ब्रह्म

(ब्रह्मसूत्र, शांकरभाष्य २.१.२४)

चेतन ब्रह्म एक और अद्वितीय जगत् का कारण है, यह आपका कथन ठीक नहीं है, क्योंकि संसार में सर्वत्र साधन-समूह के संग्रह से कार्य की सत्ता दृष्टिगोचर होती है। घट पट आदि के बनानेवाले कुम्हार आदि मिट्टी, चाक, डंडा, धागा आदि अनेक साधनों को लेकर घटादि को बनाते हैं। ब्रह्म असहाय है, अतः वह अन्य साधनों के अभाव में कैसे संसार को बना सकता है? इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्म जगत् का कर्ता नहीं है। आपकी पूर्वोक्त युक्ति युक्तियुक्त नहीं है। द्रव्य के विशिष्ट स्वभाव के कारण ऐसा हो सकता है। जैसे दूध दही के रूप में परिणत होता है और जल बर्फ के रूप में। उसी प्रकार ब्रह्म जगत् के रूप में परिणत होता है। उष्णता आदि दूध से दही बनने में सहायक मात्र होते हैं। दूध से ही दही बनेगी, जल से ही बर्फ, अन्य वस्तु से नहीं। इससे ज्ञात होता है कि वस्तु-विशेष से ही वस्तु-विशेष बनती है। अन्य वस्तुएँ उसमें सहायकमात्र होती हैं। ब्रह्म सर्वसाधन-सम्पूर्ण है, अतः विचित्र शक्तियों के योग से एक ब्रह्म से ही विचित्र परिणामयुक्त यह जगत् उत्पन्न होता है।

(६) सांख्य-दर्शन

इस दर्शन के संस्थापक कपिल मुनि माने जाते हैं। इस दर्शन के अनुसार व्यक्त (प्रकट जगत्), अव्यक्त (मूल प्रकृति) और ज्ञ (पुरुष) के ज्ञान से सांसारिक दुःखों की समाप्ति होती है। इस दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ये तीन प्रमाण हैं। इस संसार में प्रकृति और पुरुष ये दोनों स्वतन्त्र और अविनाशी सत्ताएँ हैं। प्रकृति में तीन गुण हैं—सत्त्व, रजस् और तमस्। इनकी साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। जब इस त्रिगुण की साम्यवस्था में अन्तर पड़ता है, तब सृष्टि का प्रारम्भ होता है। प्रकृति से महत् या बुद्धि उत्पन्न होती है। महत् से अहंकार और अहंकार से १६ पदार्थ अर्थात् ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ और मन तथा ५ तन्मात्राएँ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) उत्पन्न होती हैं। ५ तन्मात्राओं से ५ स्थूल भूत उत्पन्न होते हैं। कार्य के विषय में इस दर्शन का मत है कि कार्य कारण में सदा अव्यक्त रूप में विद्यमान रहता है। इस सिद्धान्त को सत्कार्यवाद कहते हैं। कारण कार्य के रूप में प्रकट होता है। कारण का कार्यरूप में तात्त्विक विकार होता है। इस सिद्धान्त को परिणामवाद कहते हैं।

संकेत—(५) इति यदुक्तं तन्नोपपद्यते, कस्मादुपसंहारदर्शनात्। चक्रम्। साधनान्तरानुपसंग्रहे। द्रव्यस्वभावविशेषादुपपद्यते। दधिरूपेण परिणमते, हिमरूपेण। योगात्। (६) व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्। सत्ताद्वयी वर्तते। सत्त्वं रजस्तम इति। पञ्च तन्मात्राः।

(७) महाभाष्य-नवनीत (महाभाष्य नवाह्निक आ० १,२)

(क) जिसके उच्चारण करने से तत्तद्गुणादि विशिष्ट वस्तु का बोध हो, उसे शब्द कहते हैं। (ख) रक्षा, ऊह (तर्क), आगम, लघुत्व और असन्देह, ये व्याकरणाध्ययन के प्रयोजन हैं। वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण पढ़ना चाहिए। वेद के मन्त्रों में यथास्थान विभक्ति आदि के परिवर्तनार्थ व्याकरण पढ़ना चाहिए। यह परम्परागत आदेश भी है कि—ब्राह्मण को निःस्वार्थभाव से धर्मस्वरूप षडङ्ग वेद पढ़ना और जानना चाहिए। व्याकरण के द्वारा ही अत्यन्त लघु उपाय से शब्दज्ञान हो सकता है। व्याकरण के द्वारा शब्दार्थ में सन्देह नहीं रहता कि इस शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है। (ग) चार प्रकार से विद्या का उपयोग होता है—विद्याभ्यास के द्वारा, स्वाध्याय-काल के द्वारा, प्रवचन-काल के द्वारा और व्यवहार-काल के द्वारा। (घ) द्रव्य नित्य है, आकृति अनित्य है। यह कैसे ज्ञात होता ? संसार में ऐसा देखा जाता है कि मिट्टी एक आकृति से युक्त होकर पिण्ड होती है। उसको बिगाड़कर घड़े आदि बनाए जाते हैं। इसी प्रकार सोने की बनी वस्तु की एक आकृति को बिगाड़कर अनेक आभूषण बनाये जाते हैं। आकृति बार-बार बदलती जाती है, किन्तु द्रव्य वही रहता है। आकृति के नष्ट होने पर द्रव्य ही शेष रहता है। अथवा आकृति भी नित्य है, क्योंकि वस्तु की कोई-न-कोई आकृति शेष रहती ही है। (ङ) चार प्रकार के शब्द होते हैं—जातिवाचक, गुणवाचक, क्रियावाचक और यदृच्छा शब्द।

(८) वाक्यपदीय-सुभाषित (वाक्यपदीय कांड १ और २)

(क) संसार में ऐसा कोई ज्ञान नहीं है जो शब्दज्ञान के बिना हो। सारा ज्ञान शब्द से मिश्रित होकर ही प्रकाशित होता है। (ख) शब्द और अर्थ ये दोनों एक ही आत्मा के अपृथक् रहनेवाले भेद हैं। (ग) अनेकार्थक शब्दों के अर्थों का निर्णय इन साधनों से होता है—संयोग, वियोग, साहचर्य, विरोध, प्रयोजन, प्रकरण, चिह्न-विशेष, अन्य शब्दों का सान्निध्य, सामर्थ्य, औचित्य, देश, काल, लिंग-विशेष, स्वर आदि।

संकेत—(७) (ख) रक्षोहागमलघ्वसंदेहाः प्रयोजनम्। आगमः खल्वपि—ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च। (ग) चतुर्भिः प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति—आगमकालेन, स्वाध्यायकालेन, प्रवचनकालेन, व्यवहारकालेनेति। (घ) द्रव्यं हि नित्यम्, आकृतिरनित्या। कथं ज्ञायते ? पिण्डः। उपमृद्य। क्रियन्ते। आकृतिरन्या चान्या च भवति। आकृत्युपमर्देन। अथवा नित्याऽऽकृतिः। (ङ) चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः—जातिशब्दा गुणशब्दाः क्रियाशब्दा यदृच्छाशब्दाः। (८) (क) न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते। अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते। (ख) एकस्यैवात्मनो भेदौ शब्दार्थावपृथक्स्थितौ। (ग) संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता। अर्थः प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्यान्यस्य संनिधिः। सामर्थ्यमौचिती देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः। शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः॥

(९) परम्पासर-वर्णन (वा० रामायण, किष्किन्धा० सर्ग १)

हे लक्ष्मण! यह पम्पा सरोवर पन्ने के तुल्य स्वच्छ जल से युक्त है। चारों ओर कमल खिले हैं और अनेक वृक्षों से शोभित है। पम्पा का वन भी दर्शनीय है। यहाँ ऊँचे-ऊँचे वृक्ष शिखरयुक्त पर्वतों के तुल्य प्रतीत होते हैं। यह कमलों से व्याप्त है और दर्शनीय है। वृक्षों की चोटियाँ फूलों के बोझ से लदी हुई हैं और वृक्ष पुष्पित लताओं से आश्लिष्ट हैं। वन पुष्पित वृक्षों से युक्त हैं और वृक्ष फूलों की वर्षा इस प्रकार कर रहे हैं जैसे बादल जल की वर्षा करते हैं। पत्थरों पर उगे हुए अनेक वनवृक्ष हवा से कम्पित होकर पृथ्वी पर फूलों की वर्षा कर रहे हैं। वायु गिरे हुए, गिरनेवाले और वृक्षों पर लगे हुए फूलों के साथ क्रीड़ा-सी कर रही है। पर्वत की कन्दराओं से निकली हुई वायु वृक्षों को नचाती हुई-सी, मत्त कोकिलों की ध्वनि से गान-सी कर रही है। सुगन्धित कमल जल में तरुण सूर्य के तुल्य चमक रहे हैं। वायु एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर और एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर घूमती हुई अनेक रसों का आस्वादन करके आनन्दित-सी घूम रही है। भौंरा फूलों का रसास्वादन कर प्रेममत्त हो फूलों में ही लीन है। भौरों की ध्वनि से युक्त वृक्ष एक-दूसरे को बुलाते हुए-से प्रतीत होते हैं।

(१०) नलोपाख्यान (महाभारत, वनपर्व)

राजा नल वीरसेन का सुपुत्र था और निषध देश का राजा था। वह सुन्दर, सुशील, वीर, योद्धा, वेद-शास्त्रज्ञ, अश्वविद्या-विशेषज्ञ और पाकशास्त्र-प्रवीण था। उसके राज्य के समीप ही विदर्भ का राज्य था। वहाँ राजा भीमसेन राज्य करता था। उसकी पुत्री दमयन्ती सर्वगुणों से युक्त और सर्वसुन्दरी थी। चारणों ने एक-दूसरे के समक्ष दोनों की प्रशंसा की। फलस्वरूप नल और दमयन्ती एक-दूसरे को बिना देखे ही प्रेम करने लगे। एक दिन उद्यान में भ्रमण करते समय नल ने एक सुनहरे पंखवाला हंस देखा। उसने उस हंस को पकड़ लिया। हंस की प्रार्थना पर नल ने उसे छोड़ दिया। हंस ने निवेदन किया कि मैं आपकी एक उत्तम सेवा करूँगा। हंस उड़कर विदर्भ पहुँचा और वहाँ उसने दमयन्ती के समक्ष नल के गुणों की प्रशंसा की। दमयन्ती ने नल से विवाह का निश्चय किया। हंस ने सारी सूचना नल को दी। दमयन्ती के विवाहार्थ स्वयंवर का आयोजन हुआ। सभी राजा और राजकुमार स्वयंवर में पहुँचे। इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम भी स्वयंवर में आए। दिक्पालों ने नल के द्वारा प्रयत्न किया कि दमयन्ती उनमें से एक को छाँट ले। परन्तु दमयन्ती ने ऐसा करना स्वीकार नहीं किया। स्वयंवर में उसने नल को ही पति चुना। चारों दिक्पालों ने उसके हृदय की पवित्रता देखकर उसे वर दिए।

संकेत—(९) वैदूर्यविमलोदका। उत्तुङ्गाः। शिखराणि, पुष्पभारसमृद्धानि, उपगूढानि। पुष्पवर्षाणि। उद्भूताः, पुष्पैरवकिरन्ति गाम्। पतितैः, पतमानैः, पादपस्थैः। नर्तयन्निव, गायतीव। सूर्यवत् प्रकाशन्ते। पादपाद् पादपम्, गच्छन्, आस्वाद्य, वाति। आह्वयन्त इव भान्ति। (१०) जातरूपच्छदम्। वृणुयात्।

(११) आचार-शिक्षा (चरकसंहिता)

जो अपना हित चाहता है, वह सदाचार का पालन करे। इससे दो लाभ होते हैं— आरोग्य और जितेन्द्रियता। देवता, ब्राह्मण, गुरुओं, वृद्धों और आचार्य की पूजा करे। सुन्दर वेश रखे, बालों को ठीक सँवारे, प्रसन्नमुख रहे, समय पर हितकर, स्वल्प और मधुर बात कहे। इन्द्रियों को वश में रखे, धर्मात्मा, निर्भीक, आस्तिक, बुद्धिमान्, उत्साही और क्षमाशील हो। असत्य न बोले। पर-धन को न ले। झगड़ा पसन्द न करे, पाप न करे। दूसरे के दोषों को न कहे। दूसरों की गुप्त बात न बतावे। अधार्मिकों के साथ न बैठे। बहुत जोर से न हँसे। नाक न खोदे, दाँत न कटकटावे, भूमि न कुरेदे, तिनका न तोड़े। न अधिक जागे, न अधिक सोवे और न अधिक खावे-पीए। श्रेष्ठ लोगों से विरोध न करे। रात में दही न खावे। स्त्रियों का अपमान न करे। सज्जनों और गुरुओं की निन्दा न करे। अपनी प्रतिज्ञा को न तोड़े। अपने समय को नष्ट न करे। अपने नियम को न तोड़े। लोभी और मूर्खों से मित्रता न करे। गुप्त बात प्रकट न करे। किसीका अपमान न करे। अभिमान न करे। समय को हाथ से न जाने दे। शोक के वश में न हो। धैर्य और पराक्रम को न छोड़े।

(१२) कालमृत्यु और अकालमृत्यु (चरकसंहिता)

कालमृत्यु और अकालमृत्यु कैसे होती है ? भगवान् आत्रेय ने अग्निवेश से कहा कि— जैसे रथ की धुरी विशेषताओं से युक्त होती है और वह उत्तम तथा सर्वगुणसम्पन्न होने पर भी चलते-चलते समयानुसार अपनी शक्ति के क्षीण हो जाने से नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार बलवान् मनुष्य के शरीर में आयु स्वभावतः धीरे-धीरे उपयोग में आने पर अपनी शक्ति के क्षीण होने पर नष्ट हो जाती है। जैसे वही धुरी बहुत बोझ से लदने से, ऊँचे-नीचे मार्ग पर चलने से, पहिए के टूटने से, कील निकल जाने से और तेल न देने से बीच में ही टूट जाती है, उसी प्रकार शक्ति से अधिक काम करने से उचित रूप से भोजन न करने से, हानिकारक भोजन खाने से, इन्द्रियों के असंयम से, कुसंगति से, विषादि के खाने से और अनशन आदि से बीच में ही आयु समाप्त हो जाती है। इसको अकालमृत्यु कहते हैं। इसी प्रकार रोगों की ठीक चिकित्सा न होने से भी अकालमृत्यु होती है।

संकेत—(११) आत्महितं चिकीर्षता सद्वृत्तमनुष्ठेयम्। प्रसाधितकेशः स्यात्। काले हितमितमधुरार्थवादी स्यात्। न वैरं रोचयेत्। नान्यरहस्यमागमयेत्। कुष्णीयात्, विघट्टयेत्, विलिखेत्, छिन्द्यात्। न विरुध्येत। न स्त्रियमवजानीत। न परिवदेत्, न गुह्यं विवृणुयात्। न कार्यकालमतिपातयेत्। जह्यात्। (१२) अक्षः, यथाकालम्, स्वशक्तिक्षयात्। अतिभाराधिष्ठितत्वात्, विषमपथात्, चक्रभङ्गात्, कीलमोक्षात्, तैलादानात्, अन्तरा व्यसनमापद्यते। अयथाबलमारम्भात्। मिथ्योपचारात्।

(१३) सन्ध्या-वर्णन

(सुबन्धुकृत वासवदत्ता)

इसके बाद सूर्य अस्ताभिमुख हुआ। वह अस्ताचलरूपी कल्पवृक्ष के फूल के गुच्छे के समान सुन्दर प्रतीत हो रहा था। वह सिन्दूर-पंक्ति से शोभित ऐरावत के गण्ड-स्थल की शोभा धारण किए हुए था। वह आकाशरूपी लक्ष्मी के विकसित पुष्पस्तवक के तुल्य, आकाशरूपी अशोक वृक्ष के गुलदस्ते के तुल्य और पश्चिमदिशारूपी अंगना के स्वर्ण-दर्पण के तुल्य प्रतीत होता था। इस प्रकार विद्रुमलता-तुल्य आकृति-युक्त भगवान् सूर्य पश्चिम समुद्र के जल में मग्न हो गये। वृक्षों की चोटियों पर चिड़ियाँ शब्द करने लगीं, कौवे अपने घोसलों की ओर जाने लगे, वासगृहों में अगर की धूपबत्तियाँ जलने लगीं, वृद्धाएँ लोरियाँ गाकर और थपथपाकर बच्चों को सुलाने लगीं, सज्जनवृन्द सन्ध्या-वन्दन करने लगे, कपि-वृन्द उद्यान-वृक्षों पर आश्रय लेने लगे, जीर्ण वृक्षों के कोटरों से उल्लू निकलने लगे, अन्धकार को भगाने के लिए दीपशिखाएँ चमकने लगीं। उस समय पश्चिम-समुद्र की विद्रुम लता के तुल्य, आकाशरूपी सरोवर की रक्त-कमलिनी के तुल्य, कामदेव के रथ की स्वर्णपताका के तुल्य, आकाशरूपी महल की लाल पताका के तुल्य, पीले तारों से युक्त सन्ध्या दिखाई पड़ी।

(१४) वर्षा-वर्णन

(सुबन्धुकृत वासवदत्ता)

कुछ समय बाद वर्षा ऋतु आई। उस समय आकाशरूपी सरोवर में कामदेव की स्वर्ण और रत्न-जटित नौका की तरह, आकाशरूपी महल के मुख्यद्वार की रत्न-माला के तुल्य, आकाशरूपी कल्पवृक्ष की सुन्दर कली के तुल्य, कामदेव की रत्न-जटित क्रीडायष्टि के तुल्य, इन्द्रधनुषरूपी लता शोभित हुई। क्यारीरूपी खानों में उछलते हुए पीले हरे मेढकरूपी मोहरों से मानो वर्षा ऋतु बिजली के साथ शतंरज खेल रही थी। बादलरूपी लकड़ी पर बिजलीरूपी आरे के चलने से गिरते हुए बुरादे के तुल्य बूँदें शोभित हो रही थीं। दिग्वधुओं के टूटे हुए हार के मोतियों के तुल्य ओले शोभित हो रहे थे।

संकेत—(१३) अस्तगिरिमन्दारस्तबकसुन्दरः, बिभ्राणः, नभःश्रियः, गगनाशोकतरोः, पुष्पगुच्छ इव, दिनमणिरपराकूपारपयसि ममज्ज, कलविङ्ककुलकलकलवाचालशिखरेषु शिखरिषु, ध्वाङ्क्षेषु, अगुरुधूपपरिमलोद्गारेषु, आलोलिकाभिरतिलघुकरताडनैः शिशयिषमाणे शिशुजने, निर्जिगमिषति, स्फुरन्तीषु, गगनहर्म्यस्य, कपिलतारका। (१४) कनकरत्ननौकेव, नभःसौधतोरणरत्नमालिकेव, कलिकेव, रत्नमयी, इन्द्रधनुर्लता, केदारिकाकोष्ठिकासु समुत्पतद्भिः पीतहरितैर्दर्दुरैर्नयद्यूतैरिव चिक्रीड विद्युता समं घनकालः। जलददारुणि तडिल्लताकरपत्रदारिते, चूर्णनिकरा इव, जलकणाः। विच्छिन्नदिग्वधूहारमुक्तानिकरा इव करकाः।

(१५) धर्म त्रिवर्ग का सार (दशकुमारचरित, उत्तरपीठिका, उ० २)

धर्म के बिना अर्थ और काम की उत्पत्ति ही नहीं हो पाती। इसलिए कहा जा सकता है कि धर्म, काम और अर्थ की अपेक्षा नहीं करता। यह धर्म ही मोक्ष-सुख की उत्पत्ति का मूल कारण है और चित्त की एकाग्रतामात्र से यह सिद्ध हो जाता है। धर्म, अर्थ और काम की तरह बाह्य साधनों के अधीन नहीं रहता। तत्त्वज्ञान से उत्कर्ष को प्राप्त धर्म किसी भी प्रकार से अनुष्ठित अर्थ और काम से बाधित नहीं होता। यदि अर्थ और काम से बाधित भी हो जाए तो थोड़े-से प्रयत्न से ठीक होकर उस दोष को नष्ट करके महान् कल्याण का साधन बन जाता है। धर्म से पवित्र मन में रजोगुण का समावेश उसी प्रकार नहीं होता जैसे आकाश में धूल नहीं रुकती। अतः मेरा विश्वास है कि अर्थ और काम धर्म की सौवीं कला को भी नहीं पहुँच सकते।

(१६) राजनीति के मूल-तत्त्व (दशकुमारचरित, उत्तरपीठिका, उच्छ्वास ८)

राज्य तीन शक्तियों के अधीन होता है। वे तीन शक्तियाँ हैं—मंत्र, प्रभाव और उत्साह। तीनों परस्पर एक-दूसरे से सम्बद्ध होकर कार्य-साधन करती हैं। मन्त्र से कर्तव्य-कर्म का ज्ञान होता है। प्रभाव अर्थात् प्रभुशक्ति से कार्य में प्रवृत्ति होती है और उत्साह-शक्ति से कार्यसिद्धि होती है। सहाय, साधन, उपाय, देश-काल का विभाग और विपत्ति का प्रतीकार, ये पाँच अंग कहे जाते हैं। ये ही पाँच अंग नीतिरूपी वृक्ष के मूल हैं। कोष और दण्ड का प्रभाव उक्त वृक्ष का स्कन्ध है। कर्तव्य अर्थ के लिए स्थिर प्रयत्न को उत्साह कहते हैं। साम, दाम, दण्ड और भेद ये चारों गुण उसकी शाखाएँ हैं। स्वामी, अमात्य, सुहृद्, कोष, राष्ट्र, दुर्ग, सेना और पुरवासी, इन आठ राज्य के अंगों के भेद और प्रभेद से नीतिवृक्ष के ७२ पत्ते होते हैं। सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध और समाश्रय, ये ही नीतिवृक्ष के किसलय हैं। मन्त्र, प्रभाव, उत्साह और इनकी सिद्धियाँ इसके पुष्प और फल हैं। यह नीतिरूपी वृक्ष राजा का बराबर उपकार करता रहता है। इनकी रक्षा के लिए अनेक सहायकों की आवश्यकता होती है, अतः सहायकों से हीन के द्वारा इसकी रक्षा नहीं हो सकती।

संकेत—(१५) निवृत्तिसुखप्रसूतिहेतुः, आत्मसमाधानमात्रसाध्यश्च। तत्त्वदर्शनोपबृंहितः, स न बाध्यते। अल्पायासप्रतिसमाहितः, श्रेयसेऽनल्पाय कल्पते। मन्ये, शततमीमपि कलां न स्पृशतः। (१६) राज्यं नाम शक्तित्रयायत्तम्। एते परस्परानुगृहीताः कृत्येषु क्रमन्ते। मन्त्रेण विनिश्चयोऽर्थानाम्। असहायेन दुरुपजीव्यः।

(१७) जाबाल्याश्रम-वर्णन

(कादम्बरी, पूर्वभाग)

मैंने जाबालि का पवित्र आश्रम देखा। जहाँ पर निरन्तर यज्ञ हो रहा है, छात्रवृन्द अध्ययन में लगे हुए हैं, अनेक तोता और मैना वेद का पाठ कर रहे हैं, देवों और पितरों की पूजा की जा रही है, अतिथियों की सेवा हो रही है, यज्ञ-विद्या की व्याख्या हो रही है, धर्मशास्त्रों की आलोचना हो रही है, अनेक धार्मिक पुस्तकें बाँची जा रही हैं, समस्त शास्त्रों के अर्थों पर विचार हो रहा है, यति-लोग ध्यान लगा रहे हैं, मन्त्रों की साधना कर रहे हैं और योग का अभ्यास कर रहे हैं। यहाँ न कलिकाल है, न असत्य है और न काम-विकार है। यह त्रिलोक से वन्दित है, गायों से अधिष्ठित है नदी स्रोत और प्रपातों से युक्त है, पवित्र है, उपद्रव-रहित है, घने वृक्षों से अन्धकारित है और ब्रह्मलोक के तुल्य अति रमणीय है। यहाँ मलिनता हवि-धूम में है, चरित्र में नहीं। मुख की लालिमा तोतों में है, क्रोध में नहीं। तीक्ष्णता कुशाग्रों में है, स्वभाव में नहीं। चंचलता कदली-दलों में है, मनों में नहीं। अग्नि-प्रदक्षिणा में भ्रमण (भ्रान्ति) है, शास्त्रों के विषय में भ्रान्ति नहीं। मुख-विकार वृद्धावस्था के कारण है, धन के अभिमान से नहीं।

(१८) सन्ध्या-वर्णन

(कादम्बरी, पूर्वभाग)

इस समय दिन ढलने लगा। स्नान करके निकले हुए मुनियों ने पूजा करते हुए जो लाल चन्दन का अंगराग पृथ्वी पर दिया, मानो सूर्य ने वस्तुतः उसे धारण कर लिया। धूप का पान करनेवाले ऋषियों ने मानो सूर्य की उष्णता पी ली, अतएव सूर्य निस्तेज हो गया। सूर्य की किरणें और पक्षि-गण पृथ्वी और कमलवनों को छोड़कर अब पर्वतशिखरों और तरुशिखरों पर पहुँच गये। सूर्य के अस्त होने पर मूँगों की लता के तुल्य लाल सन्ध्या दिखाई पड़ी। दिनभर कहीं घूमकर मानो अब दिनान्त के समय लाल तारों से युक्त सन्ध्या लौटकर आई है। अब कमलिनी सूर्यरूपी पति से मिलन के लिए मानो व्रत कर रही है। पश्चिम समुद्र के जल में सूर्य के वेग से गिरने से जो छींटे ऊपर उठे हैं, वही मानो तारागण के रूप में आकाश में शोभित हो रहे हैं। सिद्ध-कन्याओं के द्वारा पूजार्थ डाले हुए पुष्पों के तुल्य तारों से युक्त आकाश दिखाई पड़ने लगा। क्रमशः चन्द्रमा उदित हुआ। चन्द्रमा के अन्दर विद्यमान कलंक ऐसा ही प्रतीत हुआ मानो चन्द्रमारूपी तालाब में चाँदनीरूपी जल के पान के लोभ से आया हुआ और अमृतरूपी कीचड़ में फँस जाने से निश्चल मृग हो।

संकेत—(१७) अनवरतप्रवृत्ताध्वरम्, अध्ययनमुखरवटुजनम्, अनेकशुकसारिकोद्घुष्यमाणसुब्रह्मण्यम्, पूज्यमान०, उपचर्यमाण०, व्याख्यायमान०, आबध्यमानध्यानम्। यत्र मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु। मुखरागः शुकेषु न कोपेषु। जरया, न धनाभिमानेन। (१८) परिणतो दिवसः, उदवहत्, ऊष्मपैः, स्थितिमकुर्वत। विद्रुमलतेव पाटला। विहृत्य। लोहिततारका। परावर्तिष्ट। दिनपतिसमागमव्रतमिवाचरत्। अम्भः सीकरनिकरम्। अलक्ष्यत। हिमकरसरसि चन्द्रिका-जलपानलोभादवतीर्णः, अमृतपङ्कलग्नः।

(१९) उज्जयिनी-वर्णन (कादम्बरी पूर्वभाग)

राजा तारापीड की उज्जैन नामक राजधानी थी। वह समस्त त्रिभुवन की तिलकरूपी थी। वह गहरी खाई से घिरी हुई थी, सफेदी पुते हुए परकोटे से परिवेष्टित थी, बड़ी-बड़ी बाजार की सड़कों से शोभित थी, चौराहों पर बने हुए देव-मन्दिरों से अलंकृत थी, वेद-ध्वनियों से निष्पाप थी, असंख्यों तालाबों से युक्त थी। वहाँ पर लोग वीर, विनयी, सत्यवादी, सुन्दर, धर्मतत्पर, महापराक्रमी, समस्त ज्ञान-विज्ञानवेत्ता, दानी, चतुर, मधुरभाषी, प्रसन्नमुख, स्वच्छवेषधारी, सभी भाषाओं के ज्ञाता, सभी लिपियों के वेत्ता, शान्त और सरलहृदय थे। उस नगरी में मणिद्वीपों में ही अनिर्वाण था, चकवा-चकवी के जोड़े में ही वियोग होता था, सोने की ही वर्णपरीक्षा होती थी, ध्वजाओं में ही अस्थिरता थी, कुमुदों में ही मित्रद्वेष (सूर्यद्वेष) था, अन्यत्र नहीं।

(२०) शुकनासोपदेश (कादम्बरी, पूर्वभाग)

जन्मसिद्ध प्रभुत्व, नव यौवन, अनुपम सौन्दर्य और असाधारण शक्ति, ये चारों महान् अनर्थ के कारण हैं। इनमें से एक-एक भी सभी अविनयों के कारण हैं, सभी एकत्र हों तो कहना ही क्या। यौवन के आरम्भ में प्रायः शास्त्ररूपी जल से धोने से निर्मल बुद्धि भी कलुषित हो जाती है। विषय-भोगरूपी मृगतृष्णा इन्द्रियरूपी मृगों को हरनेवाली है और भयंकर दुष्परिणामवाली है। निर्मल मन में उपदेश की बातें उसी प्रकार सरलता से प्रविष्ट हो जाती हैं, जैसे स्फटिक मणि में चन्द्रमा की किरणें। गुरुजनों का उपदेश मनुष्यों के समस्त मलों को धोने में समर्थ बिना जल का स्नान है, बालों की सफेदी आदि विरूपता को न करनेवाला वृद्धत्व है, चर्बी आदि को न बढ़ाने वाला गौरव है, असाधारण तेजवाला प्रकाश है। लक्ष्मी को ही देखो। यह मिलने पर भी बड़े कष्ट से सुरक्षित होती है। गुणरूपी पाशों के बन्धन से निश्चेष्ट बनाने पर भी नष्ट हो जाती है। यह न परिचय को मानती है, न कलीनता को देखती है, न सौन्दर्य को देखती है, न कुलपरम्परा को मानती है, न शील को देखती है, न चतुरता को कुछ गिनती है, न त्याग का आदर करती है। न विशेषज्ञता का विचार करती है, न सत्य को कुछ समझती है और न आचार का ही पालन करती है। इसको पाकर लोग सभी अविनयों के स्थान हो जाते हैं। वे न देवताओं को प्रणाम करते हैं, न माननीयों का मान करते हैं और न गुरुओं का सत्कार करते हैं।

संकेत—(१९) ललामभूता, गभीरेण परिखावलयेन परिवृता, सुधासितेन प्राकारमण्डलेन, महाविपणिपथैः, शृङ्गाटकेषु, निष्कल्मषा। अनिवृत्तिर्मणिप्रदीपानाम्, द्वन्द्ववियोगः, कनकानाम्, कुमुदानां मित्रद्वेषः। (२०) किमुत समवायः। इन्द्रियहरिणहारिणी, अतिदुरन्ता। उपदेशगुणाः सुखं विशन्ति। अखिलमलप्रक्षालनक्षमम्, अजलम्, अनुपजातपलितादिवैरूप्यम्, अनारोपित-मेदोदोषम्, अतीतज्योतिरालोकः। लब्धाऽपि, गुणपाशसन्दाननिष्पन्दीकृताऽपि। गणयति, आद्रियते, अनुबुध्यते।

(२१) मरणासन्न पिता के समीप हर्ष (हर्षचरित)

एक बार हर्ष ने रात्रि के चौथे पहर स्वप्न में देखा कि एक महासिंह भयंकर दावाग्नि में जल रहा है और सिंहिनी भी अपने बच्चों को छोड़कर अग्नि में कूद रही है। यह देखकर उसके मन में आया कि संसार में लोहे से भी दृढ़ प्रेम का बन्धन होता है, जिसके कारण पशु-पक्षी भी ऐसा करते हैं। अगले ही दिन उसने कुरङ्गक नामक दूत से पिता की रुग्णता का समाचार सुना। समाचार पाते ही वह घुड़सवारों के साथ लौट पड़ा और अगले दिन राजद्वार पर पहुँचा। वहाँ उसने निःशब्द, किवाड़ों के खुलने और बन्द होने की खटखट से रहित, खिड़कियाँ बन्द होने से हवा के झोंके से रहित, कुछ प्रेमी जनों से युक्त, तीव्र ज्वर से भयभीत वैद्यों से युक्त, खिन्न मन्त्रियों से अधिष्ठित महल में विद्यमान, काल की जिह्वा के अग्र भाग पर वर्तमान, क्षीण वाणीवाले, चंचल चित्त, शारीरिक व्याकुलता से युक्त, दीर्घ साँस लेते हुए और पास में बैठी हुई निरन्तर रोती हुई माता यशोवती के द्वारा बार-बार शिर और छाती पर हाथ फेरे जाते हुए पिता को देखा।

(२२) मानवचरित-समीक्षा (प्रबन्धमंजरी, उद्भिज्जपरिषत्)

सभापति अश्वत्थदेव मानवचरित-समीक्षा करते हुए अपने बन्धु वृक्षों से कहते हैं कि— मनुष्यों की हिंसावृत्ति की सीमा नहीं है। पशुहत्या उनके लिए खेल है। वे खिन्न मन के विनोद के लिए महावन में आकर इच्छानुसार और निर्दयतापूर्वक पशुवध करते हैं। जिस प्रकार ऐहिक सुख की इच्छा से मनुष्य उत्साहपूर्वक जीवहिंसा करके अपने हृदय की अतिनिष्ठुर क्रूरता को प्रकट करते हैं, उसी प्रकार पारलौकिक सुख की आशा से वे महोत्सवपूर्वक निरपराध पशुओं को इष्टदेवता के आगे बलि देकर अपनी नृशंसता का परिचय देते हैं। वस्तुतः इनके पशुबलि के कार्य को देखकर हम जड़ों का भी हृदय विदीर्ण हो जाता है। ये निरन्तर अपनी उन्नति को चाहते हुए प्रतिक्षण सर्वथा स्वार्थसिद्धि के लिए प्रयत्न करते हैं। ये न धर्म को मानते हैं, न सत्य का अनुष्ठान करते हैं, अपितु तृणवत् स्नेह की उपेक्षा करते हैं, स्वच्छता को छोड़ देते हैं, विश्वासघात करते हैं, पापाचरण से थोड़ा भी नहीं डरते, झूठ बोलने में नहीं लज्जित होते, सर्वथा अपने स्वार्थ को सिद्ध करना चाहते हैं।

संकेत—(२१) तुरीये यामे, आत्मानं पातयति। आसीच्चास्य चेतसि। लोके हि लोहेभ्यः कठिनतराः खलु स्नेहमया बन्धनपाशाः, यदाकृष्टास्तिर्यञ्चोऽप्येवमाचरन्ति। समधिगत्यैवोदन्तम्। परिहृतकपाटरटिते, घटितगवाक्षरक्षितमरुति, भिषजि, दुर्मनायमानमन्त्रिणि, धवलगृहे स्थितम्, विरलं वाचि, चलितं चेतसि, विह्वलं वपुषि, सन्ततं श्वसिते, वक्षसि च स्पृश्यमानम्। (२२) निरवधिः। आक्रीडनम्। प्रकटयन्ति। विदीर्यते। उपेक्षन्ते, बिभ्यति, लज्जन्ते, सिसाधयिषन्ति।

(२३) आर्यावर्त-वर्णन (नलचम्पू)

यह आर्यावर्त देवों के द्वारा भी सेव्य है, धन-धान्य से सम्पन्न है, नदी-नहरों से युक्त है, सब विषयों में संसार का अग्रणी है, समस्त संसार का सार है, पुण्यात्माओं को शरण देता है, धर्म का धाम है, सम्पत्तियों का सदन है, पुण्यों का आधार है, सद्व्यवहाररूपी रत्नों की खान है और आर्यमर्यादाओं का निकेतन है। यहाँ प्रजा संसार के सभी सुखों से सम्पन्न है, सभी पूर्ण आयु तक जीते हैं, सभी धर्म-कर्म में लग्न हैं, अतः आधि-व्याधियों से मुक्त हैं। सभी ग्राम गाय, घोड़े आदि पशुओं से युक्त हैं, सभी नगर गगनचुम्बी महलों से सुशोभित हैं, सभी लोग सदाचारी हैं तथा धन का दान और उपभोग करते हैं, वन सुन्दर और फलदायी वृक्षों से युक्त हैं, वाटिकाएँ मनोहर फल-फूलों से युक्त हैं, कुलीन स्त्रियाँ सूर्य के तुल्य तेजयुक्त और पतिव्रता हैं। वह स्वर्ग से भी बढ़कर है। घर-घर में सुन्दर स्त्रियाँ हैं, सारी प्रजा समृद्ध है, सभी धनी, दानी और मानी हैं।

(२४) कवित्व और राजत्व (शिवराजविजय)

भूषण कवि बादशाह औरंगजेब का दरबार छोड़कर महाराज शिवाजी का आश्रय प्राप्त करने के लिए उनकी नगरी में पहुँचे। शिवाजी से मिलने से पूर्व वे एक शिवमन्दिर में रुके और वहाँ के पुजारी से बातचीत की। मन्दिर की खिड़की से शिवाजी ने भूषण की यह बात सुनी— मैं चिरकाल तक दिल्लीश्वर की छत्र-छाया में रहा हूँ। किन्तु हम कवि लोग किसीके राजत्व, वीरता, तेजस्विता और धनाढ्यता की परवाह नहीं करते हैं। हम लोग किसीके साभिमान भ्रूभंग को और कोपयुक्त गर्व की बर्बरता को नहीं सहन करते हैं। उसका पृथ्वी पर ऐसा राज्य नहीं है, जैसा कि हमारा साहित्य-जगत् पर। उसके खरीदे हुए गुलाम भी उसकी इच्छा होते ही हाथ जोड़कर उसके सामने खड़े नहीं हो जाते, जैसे कि हमारे सामने इच्छा होते ही पद, वाक्य, छन्द, अलंकार, रीतियाँ, गुण और रस उपस्थित हो जाते हैं। वह अशर्फी देकर भी दूसरों को उतना सन्तुष्ट नहीं कर सकता, जितना कि हम केवल कविता से सन्तुष्ट कर सकते हैं। हमारी वीररस की कविता को सुनकर मरता हुआ भी युद्ध में खड़ा हो जाता है। जिसके भाग्य में चिरस्थायिनी कीर्ति होती है, वह हमारा आदर करता है। यह सुनकर कवि का परिचय प्राप्त करने के लिए शिवाजी ने मन्दिर में प्रवेश किया।

संकेत—(२३) शरण्यः, आकरः, पुरुषायुषजीविन्यः, अभ्रंलिहैः प्रासादैः, विशिष्यते। (२४) सम्राजः, द्वारम्, शिवराजस्य। अध्यतिष्ठत्, मन्दिराध्यक्षेन सह, गवाक्षात्, नाऽपेक्षामहे, साभिमानभ्रूभङ्गम्, कोपाञ्चितगर्वबर्बरतां न सहामहे, तादृशम्, सारस्वतसृष्टौ, क्रीतदासा अपि, तदीहासमकालमेव, नाऽवतिष्ठन्ते, छन्दांसि, रीतयः, दीनारसंभाररैरपि, न तथा तोषयितुमलम्, म्रियमाणोऽपि।

(२५) वैदिक साहित्य

वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। ऋग्वेद में मन्त्र हैं, जिनको ऋचा कहते हैं। ये पद्य में हैं। ऋग्वेद की पाँच शाखाओं में से केवल शाकल शाखा ही प्राप्य है। यजुर्वेद की दो शाखाएँ हैं—शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद। शुक्ल यजुर्वेद की दो संहिताएँ प्राप्त होती हैं—काण्व और माध्यन्दिन। कृष्ण यजुर्वेद की चार संहिताएँ प्राप्य हैं—काठक, कापिष्ठल, मैत्रायणी और तैत्तिरीय। सामवेद गानात्मक वेद है। यह दो भागों में विभक्त है—आर्चिक, उत्तरार्चिक। अथर्ववेद की दो संहिताएँ प्राप्त होती हैं—शौनक और पैप्पलाद। प्रत्येक वेद चार भागों में विभक्त है—संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्। प्रत्येक वेद के ब्राह्मण आदि हैं। ऋग्वेद के दो ब्राह्मण-ग्रन्थ हैं—ऐतरेय ब्राह्मण, कौषीतकि ब्राह्मण। शुक्ल यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण है और कृष्ण यजुर्वेद का तैत्तिरीय ब्राह्मण। सामवेद के ब्राह्मण हैं—ताण्ड्य ब्राह्मण, षड्विंश ब्राह्मण। अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण है। ऋग्वेद के दो आरण्यक हैं—ऐतरेयाण्यक, कौषीतक्यारण्यक। अन्य आरण्यक ब्राह्मण-ग्रन्थों के साथ ही सम्बद्ध हैं। आजकल १२० उपनिषद् उपलब्ध हैं। इनमें से निम्नलिखित ११ ही मुख्य और प्रामाणिक मानी जाती हैं—ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक और श्वेताश्वतर।

(२६) वेदाङ्ग

वेदाङ्ग ६ हैं—१. शिक्षा (ध्वनिविज्ञान), २. व्याकरण, ३. छन्द, ४. निरुक्त (वेदों की निर्बचनात्मक व्याख्या), ५. ज्योतिष, ६. कल्प (कर्मकाण्ड की विधि)। इनके द्वारा वेदों के अर्थों का ज्ञान होता है और मन्त्रों का यज्ञादि में विनियोग भी ज्ञात होता है। शिक्षा और ध्वनिविज्ञान का वर्णन प्रातिशाख्यों और शिक्षा-ग्रन्थों में है। इनमें मुख्य ये हैं—ऋक्प्रातिशाख्य, शुक्लयजु:प्रातिशाख्य, तैत्तिरीय प्रातिशाख्य, सामप्रातिशाख्य, पुष्पसूत्र, अथर्वप्रातिशाख्य। भारद्वाज, व्यास, याज्ञवल्क्य और पाणिनि आदि के शिक्षा-ग्रन्थ हैं। व्याकरण में पाणिनि की अष्टाध्यायी सबसे मुख्य है। इस पर कात्यायन ने वार्तिक और पतंजलि ने महाभाष्य लिखा है। इसके आधार पर काशिका, सिद्धान्तकौमुदी आदि व्याकरण-ग्रन्थ लिखे गये हैं। छन्द विषय पर पिंगल का छन्दःसूत्र प्राचीन ग्रन्थ है। निरुक्त में यास्क का निरुक्त ही प्राप्य है। ज्योतिष विषय पर लगध का वेदांग-ज्योतिष नामक एक प्राचीन ग्रन्थ है। कल्पसूत्र चार भागों में विभक्त हैं—(क) श्रौतसूत्र—इनमें विशेष यज्ञों की विधियाँ वर्णित हैं। इनमें मुख्य आश्वलायनश्रौतसूत्र, कात्यायनश्रौतसूत्र, बौधायनश्रौतसूत्र आदि हैं। (ख) गृह्यसूत्र—इनमें १६ संस्कारों का वर्णन है। गृह्यसूत्र अनेक हैं। ये बौधायन, आपस्तम्ब, गोभिल आदि के हैं। (ग) धर्मसूत्र—इनमें नीति, धर्म, कर्तव्य आदि का वर्णन है। ये भी अनेक हैं। (घ) शुल्बसूत्र—इनमें यज्ञवेदी के निर्माण और नाप आदि का वर्णन है।

(२७) भाषा और भाषण (भाषाविज्ञान, श्यामसुन्दरदास)

मनुष्य और मनुष्य के बीच, वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि-संकेतों का जो व्यवहार होता है, उसे भाषा कहते हैं। भाषा विचारों को व्यक्त करती है, पर विचारों से अधिक सम्बन्ध उसके वक्ता के भाव, इच्छा, प्रश्न आदि मनोभावों से रहता है। भाषा सदा किसी न किसी वस्तु के विषय में कुछ कहती है, वह वस्तु चाहे बाह्य भौतिक जगत् की हो अथवा सर्वथा आध्यात्मिक और मानसिक। यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि भाषा एक सामाजिक वस्तु है। भाषा का शरीर प्रधानतः उन व्यक्त ध्वनियों से बना है, जिन्हें वर्ण कहते हैं। इसके अतिरिक्त संकेत, मुख-विकृति और स्वर-विकार भी भाषा के अङ्ग माने जाते हैं। स्वर, बल-प्रयोग और उच्चारण का वेग या प्रवाह भी भाषा के विशेष अङ्ग हैं। 'बोली' से अभिप्राय स्थानीय और घरेलू बोली से है, जो तनिक भी साहित्यिक नहीं होती और बोलनेवालों के मुख में ही रहती है। 'विभाषाओं' का क्षेत्र बोली से विस्तृत होता है। एक प्रान्त अथवा उपप्रान्त की बोलचाल तथा साहित्यिक रचना की भाषा 'विभाषा' कहलाती है। इसे प्रान्तीय भाषा भी कहते हैं। कई विभाषाओं में व्यवहृत होनेवाली एक शिष्ट-परिगृहीत विभाषा ही 'भाषा' कहलाती है। विभाषा ही भाषा बनती है और वह धार्मिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक कारणों से प्रोत्साहन पाकर अपना क्षेत्र अधिक-से-अधिक व्यापक और विस्तृत बनाती है।

(२८) अर्थ-विकास (अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन)

यास्क ने निरुक्त में सर्वप्रथम इस बात पर ध्यान आकृष्ट किया है कि किस प्रकार वस्तुओं के नाम पड़ते हैं और आगे चलकर किस प्रकार उनके अर्थों में विस्तार या संकोच होता है। पतंजलि ने महाभाष्य में और भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में इस विषय पर विस्तृत विचार किया है। अर्थविकास की तीन धाराएँ हैं—अर्थसंकोच, अर्थविस्तार और अर्थादेश। एक शब्द जो अपने यौगिक या निर्वचनात्मक अर्थ के आधार पर नानार्थक और व्यापक होना चाहिए था, उसके अर्थों में संकोच हो जाने से उसका व्यापक रूप से प्रयोग नहीं हो सकता है। जैसे—गो, अश्व, परिव्राजक, जीवन आदि में अर्थसंकोच होने से इनका निर्वचनात्मक अर्थ में प्रयोग नहीं हो सकता है। जहाँ शब्द का मूल अर्थ विस्तृत होकर अन्य अर्थों का भी बोध कराता है, वहाँ अर्थविस्तार होता है। जैसे—प्रवीण, कुशल, तैल, गोशाला आदि शब्दों के अर्थों में विस्तार हो गया है। जहाँ पर शब्द अपने मूल अर्थ को छोड़कर नए अर्थ को अपना लेता है, वहाँ अर्थादेश होता है। जैसे—सह् धातु वेद में जीतने अर्थ में है, पर अब उसका अर्थ सहना हो गया है।

संकेत—(२७) परिवारेषूपयुज्यमानया गिरा, नाममात्रमपि। (२८) अर्थान्तराण्यवगमयति। अभिनवमर्थमात्मसात् करोति। जयार्थे वर्तते, मर्षणार्थे व्यवह्रियते।

(२९) (क) नाटक की संक्षिप्त रूपरेखा (दशरूपक और साहित्यदर्पण)

धनंजय के अनुसार नाटक में तीन तत्त्व होते हैं, जिनके आधार पर उनका विभाजन होता है—वस्तु, नेता और रस। वस्तु को कथावस्तु भी कहते हैं। वस्तु को दो भागों में विभक्त किया गया है—(१) आधिकारिक—वह कथावस्तु है जो मुख्य कथा होती है। (२) प्रासंगिक—वह कथा है जो गौणरूप से हो और मुख्य कथा का अंग हो। सम्पूर्ण कथावस्तु को तीन भागों में विभाजित किया गया है—(१) प्रख्यात—जो इतिहास पर अवलम्बित हो। (२) उत्पाद्य—कवि-कल्पित हो (३) मिश्र—कुछ अंश ऐतिहासिक हो और कुछ कवि-कल्पित। नाटक में पाँच अर्थप्रकृतियाँ, पाँच अवस्थाएँ और पाँच सन्धियाँ होती हैं। अर्थप्रकृतियाँ नाटकीय कथा-वस्तु के पाँच तत्त्व हैं। ये प्रयोजन की सिद्धि के कारण होते हैं। (१) बीज—वह तत्त्व है, जो प्रारम्भ में संक्षेप में निर्दिष्ट हो और आगे उसका ही विस्तार हो। (२) बिन्दु—यह अवान्तर कथा से मूल कथा के टूटने पर उसे जोड़ता और आगे बढ़ाता है। (३) पताका—वह प्रासंगिक कथा जो मुख्य कथा के साथ दूर तक चली जाती है। (४) प्रकरी—वह प्रासंगिक कथा जो मुख्य कथा के साथ थोड़ी ही दूर तक चलती है। (५) कार्य—जो साध्य या लक्ष्य होता है, उसे कार्य कहते हैं।

(३०) (ख) नाटक की संक्षिप्त रूपरेखा

नाटकीय कार्य की प्रगति के विभिन्न विश्रामों को अवस्थाएँ कहते हैं। ये पाँच हैं—(१) आरम्भ—मुख्य फल की सिद्धि के लिए नायक में जो उत्सुकता होती है, उसे आरम्भ कहते हैं। (२) यत्न—फल की प्राप्ति के लिए नायक जो बड़े वेग से प्रयत्न करता है, उसे यत्न कहते हैं। (३) प्राप्त्याशा—अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों के द्वारा फल-प्राप्ति की कभी सम्भावना और कभी असम्भावना, इस संदिग्ध अवस्था को प्राप्त्याशा कहते हैं। (४) नियताप्ति—इसमें विघ्नों के हट जाने से फल-प्राप्ति निश्चित जान पड़ती है। (५) फलागम—जब इष्ट फल की प्राप्ति हो जाती है। पाँचों अर्थप्रकृतियों को क्रमशः पाँचों अवस्थाओं से जो सम्बद्ध करती हैं, उन्हें सन्धियाँ कहते हैं। ये पाँच हैं—(१) मुख—बीज और आरम्भ को मिलाकर मुख-सन्धि होती है। (२) प्रतिमुख-सन्धि—बिन्दु और यत्न को मिलाकर। (३) गर्भ-सन्धि—पताका और प्राप्त्याशा को मिलाकर। (४) विमर्श-सन्धि—प्रकरी और नियताप्ति को मिलाकर। (५) उपसंहृति या निर्वहण-सन्धि—कार्य और फलागम को मिलाकर। नाटक में अभिनय चार प्रकार का होता है—(१) आङ्गिक—शरीर के अंगों के द्वारा। (२) वाचिक—वाणी के द्वारा। (३) आहार्य—वेषभूषा के द्वारा। (४) सात्त्विक—स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, अश्रु आदि के द्वारा।

संकेत—(२९) अल्पमात्रं समुद्दिष्टं बहुधा यद् विसर्पति। अवान्तरार्थ-विच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्। व्यापि प्रासङ्गिकं वृत्तं पताकेत्यभिधीयते। प्रासङ्गिकं प्रदेशस्थं चरितं प्रकरी मता। समापनं तु यत् सिद्ध्यै तत्कार्यमिति सम्मतम्।

(३१) (ग) नाटक की संक्षिप्त रूपरेखा

रंगमंच पर प्रदर्शित करने की दृष्टि से कथा-वस्तु के दो विभाग किये गये हैं—(१) सूच्य—नीरस या अनुचित घटनाएँ, जिनकी केवल सूचना दे दी जाती है। (२) दृश्य श्रव्य—दर्शनीय और श्रवणीय वस्तुएँ, जिनका प्रदर्शन किया जाता है। सूच्य वस्तुओं को जिन उपायों से सूचित किया जाता है, उन्हें अर्थोपक्षेपक कहते हैं। वे पाँच हैं—(१) विष्कम्भक—भूत और भावी घटनाओं की सूचना मध्यम श्रेणी के पात्रों के द्वारा दी जाती है। एक या दो मध्यम कोटि के पात्र हों तो 'शुद्ध विष्कम्भक', नीच और मध्यम दोनों कोटि के पात्र हों तो उसे 'मिश्र विष्कम्भक' कहते हैं। इनकी भाषा संस्कृत या शौरसेनी प्राकृत होती है। (२) प्रवेशक—भूत और भावी घटनाओं की सूचना निम्न श्रेणी के पात्रों के द्वारा दी जाती है। इनकी भाषा केवल प्राकृत ही होती है। (३) चूलिका—पर्दे के पीछे से वस्तु या घटना की सूचना देना। जैसे—नेपथ्य से कथन। (४) अंकास्य—अंक के समाप्ति के समय जाते हुए पात्रों के द्वारा अगले अंक की घटना की सूचना देना। (५) अंकावतार—अंक की समाप्ति के पहले ही अगले अंक की कथावस्तु का प्रारम्भ करना।

(३२) (घ) नाटक की संक्षिप्त रूपरेखा

सुनाने या न सुनाने की दृष्टि से कथावस्तु के तीन विभाग किये गये हैं—(१) सर्वश्राव्य या प्रकाश—जो बात सबको सुनाने योग्य है। (२) अश्राव्य या स्वगत—जो बात सुमाने के योग्य न हो और मन-ही-मन कही जाए। (३) नियतश्राव्य—जो बात कुछ लोगों को ही सुनानी होती है। इसके दो विभाग हैं—(क) जनान्तिक—हाथ की ओट करके दो पात्रों का वार्तालाप करना कि अन्य पात्र उसे न सुन पावें। (ख) अपवारित—मुँह फेरकर किसी दूसरे पात्र की गुप्त बात कहना। एक और भेद आकाशभाषित है, ऊपर मुँह करके स्वयं ही अकेले बात करना। नाटक में चार वृत्तियाँ या शैलियाँ होती हैं— (१) कैशिकी वृत्ति—यह शृंगारप्रधान नाटकों के उपयुक्त है। इसमें मनोहर वेषभूषा, स्त्रियों की अधिकता, नृत्य-गीत का बाहुल्य और शृंगाररस की मुख्यता होती है। (२) सात्त्वती वृत्ति—यह वीररस-प्रधान नाटकों के योग्य है। इसमें सत्त्व, शौर्य, त्याग, दया, ऋजुता आदि गुणों का बाहुल्य होता है; शोक का अभाव और हर्ष का विस्तार होता है। (३) आरभटी वृत्ति—यह रौद्र और बीभत्सरसों के योग्य है। इसमें माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध, वध, बन्धन आदि कार्य मुख्य होते हैं। (४) भारती वृत्ति—इसका सभी रसों में उपयोग होता है। इसमें संस्कृत का प्रयोग अधिक होता है, स्त्रियाँ नहीं होती हैं, वाचिक कार्य अधिक होता है।

संकेत—(३१) अन्तर्जवनिकासंस्थैः सूचनार्थस्य चूलिका। (३२) (१) सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्। (२) अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम्। (क) त्रिपताककरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम्। अन्योन्यामन्त्रणं यत् स्यात् तज्जनान्ते जनान्तिकम्। (ख) तद् भवेदपवारितम्। रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाश्यते।

(३३) भाव या मनोविकार

(रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि)

नाना विषयों के बोध का विधान होने पर ही उनसे सम्बन्ध रखनेवाली इच्छा की अनेकरूपता के अनुसार अनुभूति के वे भिन्न-भिन्न योग संघटित होते हैं, जो भाव या मनोविकार कहलाते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि सुख और दुःख की मूल अनुभूति ही विषय-भेद के अनुसार प्रेम, हास, उत्साह, आश्चर्य, क्रोध, भय, करुणा, घृणा इत्यादि मनोविकारों का जटिल रूप धारण करती है। मनोविकारों या भावों की अनुभूतियाँ परस्पर तथा सुख या दुःख की मूल अनुभूति से ऐसी ही भिन्न होतीं हैं, जैसे रासायनिक मिश्रण परस्पर तथा अपने संयोजक द्रव्यों से भिन्न होते हैं। समस्त मानव-जीवन के प्रवर्तक भाव या मनोविकार ही होते हैं। मनुष्य की प्रवृत्तियों की तह में अनेक प्रकार के भाव ही प्रेरक के रूप में पाये जाते हैं। शील या चरित्र का मूल भी भावों के विशेष प्रकार के संघटन में ही समझना चाहिए। लोक-रक्षा और लोक-रंजन की सारी व्यवस्था का ढाँचा इन्हीं पर ठहराया गया है।

(३४) श्रद्धा-भक्ति

(चिन्तामणि)

किसी मनुष्य में जन-साधारण से विशेष गुण या शक्ति का विकास देख उसके सम्बन्ध में जो एक स्थायी आनन्द-पद्धति हृदय में स्थापित हो जाती है, उसे श्रद्धा कहते हैं। श्रद्धा महत्त्व की आनन्दपूर्ण स्वीकृति के साथ-साथ पूज्य-बुद्धि का संचार है। प्रेम और श्रद्धा में अन्तर यह है कि प्रेम प्रिय के स्वाधीन कार्यों पर ही निर्भर नहीं। कभी-कभी किसी का रूप मात्र, जिसमें उसका कुछ भी हाथ नहीं, उसके प्रति प्रेम उत्पन्न होने का कारण होता है। पर श्रद्धा ऐसी नहीं है। प्रेम के लिए इतना ही बस है कि कोई मनुष्य हमें अच्छा लगे; पर श्रद्धा के लिए आवश्यक यह है कि कोई मनुष्य किसी बात में बढ़ा हुआ होने के कारण हमारे सम्मान का पात्र हो। श्रद्धा का व्यापारस्थल विस्तृत है, प्रेम का एकान्त। प्रेम में घनत्व अधिक है और श्रद्धा में विस्तार। प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागरण। प्रेम में केवल दो पक्ष होते हैं, श्रद्धा में तीन। प्रेम एकमात्र अपने ही अनुभव पर निर्भर रहता है, पर श्रद्धा दूसरों के अनुभव पर भी जगती है।

संकेत—(३३) मूले, प्रेरकत्वेनोपलभ्यन्ते, अवगन्तव्यम्, आधारः, उपस्थाप्यते। (३४) पर्याप्तमेतदेव, रोचेत, कमपि विषयमवलम्ब्य समुन्नत्या, एकान्तम्, उद्बुध्यते।

(३५) कविता क्या है ? (चिन्तामणि)

जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आयी है, उसे कविता कहते हैं। इस साधना को हम भावयोग कहते हैं और कर्मयोग और ज्ञानयोग का समकक्ष मानते हैं। कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ-सम्बन्धों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक-सामान्य भाव-भूमि पर ले जाती है, जहाँ जगत् की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है। इस भूमि पर पहुँचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता। वह अपनी सत्ता को लोक-सत्ता में लीन किये रहता है। उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होती है या हो सकती है। इस अनुभूति-योग के अभ्यास से हमारे मनोविकारों का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है।

(३६) काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था (चिन्तामणि)

सत्, चित् और आनन्द—ब्रह्म के इन तीन स्वरूपों में से काव्य और भक्तिमार्ग 'आनन्द' स्वरूप को लेकर चले। विचार करने पर लोक में इस आनन्द की अभिव्यक्ति की दो अवस्थाएँ पाई जाएँगी—साधारणावस्था और सिद्धावस्था। आनन्द की साधनावस्था प्रयत्न-पक्ष को लेकर चलती है और सिद्धावस्था उपभोग-पक्ष को लेकर। साधनावस्था को लेकर चलनेवाले काव्य हैं—रामायण, महाभारत, रघुवंश, शिशुपालवध, किरातार्जुनीय आदि। सिद्धावस्था को लेकर चलनेवाले काव्य हैं—आर्यासप्तशती, अमरुशतक, गीतगोविन्द आदि। लोक में फैली दुःख की छाया को हटाने में ब्रह्म की आनन्दकला जो शक्तिमय रूप धारण करती है, उसकी भीषणता में भी अद्भुत मनोहरता, कटुता में भी अपूर्व मधुरता, प्रचण्डता में भी गहरी आर्द्रता साथ लगी रहती है। विरुद्धों का यही सामंजस्य कर्मक्षेत्र का सौन्दर्य है। भीषणता और सरसता, कोमलता और कठोरता, कटुता और मधुरता, प्रचण्डता और मृदुता का सामंजस्य ही लोकधर्म का सौन्दर्य है। धर्म और मंगल की यह ज्योति अधर्म और अमंगल की घटा को फाड़ती हुई फूटती है। काव्य में सारे भाव, सारे रूप और सारे व्यापार आनन्द-कला के विकास में ही योग देते हैं।

संकेत—(३५) समकक्षत्वेन मन्यामहे। आक्षिप्य। भूमिमेतामारूढस्य मनुजस्य, आत्मावबोधोऽपि न जायते। विलाययति। (३६) आश्रित्य प्रवृत्तौ। अनुशीलनेन, अवस्थाद्वयमुपलप्स्यते। अवलम्ब्य प्रवर्तते। प्रवृत्तानि। प्रसृताम्, अपहर्तुम्, गभीरा। संगच्छते (सम्+गम् आत्मनेपदी)। ज्योतिरिदम्, विदारयत् प्रस्फुरति। साहाय्यमादधति।

(३७) साधारणीकरण और व्यक्ति-वैचित्र्यवाद (चिन्तामणि)

जब तक किसी भाव का कोई विषय इस रूप में नहीं लाया जाता कि वह सामान्यतः सबसे उसी भाव का आलम्बन हो सके, तब तक उसमें रसोद्बोधन की पूर्ण शक्ति नहीं आती। इसी रूप में लाया जाना हमारे यहाँ 'साधारणीकरण' कहलाता है। सच्चा कवि वही है, जिसे लोक-हृदय की पहचान हो, जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच मनुष्य-जाति के सामान्य हृदय को देख सके। इसी लोक-हृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम रस-दशा है। भाव और विभाव दोनों पक्षों के सामंजस्य के बिना पूरी और सच्ची रसानुभूति हो नहीं सकती। काव्य का विषय सदा 'विशेष' होता है, 'सामान्य' नहीं; वह 'व्यक्ति' सामने लाता है, 'जाति' नहीं। काव्य का काम है कल्पना में बिम्ब या मूर्त भावना उपस्थित करना, बुद्धि के सामने कोई विचार लाना नहीं। 'बिम्ब' जब होगा तब विशेष या व्यक्ति का ही होगा, सामान्य या जाति का नहीं।

(३८) रसात्मक-बोध के विविध स्वरूप (चिन्तामणि)

संसार-सागर की रूप-तरंगों से मनुष्य की कल्पना का निर्माण और इसीकी रूप-गति से उसके भीतर विविध भावों या मनोविकारों का विधान हुआ है। सौन्दर्य, माधुर्य, विचित्रता, भीषणता, क्रूरता आदि की भावनाएँ बाहरी रूपों और व्यापारों से ही निष्पन्न हुई हैं। हमारे प्रेम, भय, आश्चर्य, क्रोध, करुणा आदि भावों की प्रतिष्ठा करनेवाले मूल आलम्बन बाहर ही के हैं। रूप-विधान तीन प्रकार के हैं—(१) प्रत्यक्ष रूप-विधान, (२) स्मृत रूप-विधान, (३) कल्पित रूप-विधान। (१) प्रत्यक्ष रूप-विधान भावुकता की प्रतिष्ठा करनेवाले मूल आधार या उपादान हैं। इन प्रत्यक्ष रूपों की मार्मिक अनुभूति जिनमें जितनी ही अधिक होती है, वे उतने ही रसानुभूति के उपयुक्त होते हैं। (२) स्मृति दो प्रकार की होती है—(क) विशुद्ध स्मृति—वह स्मृति जो हमारी मनोवृत्ति को शुद्ध मुक्त भावभूमि में ले जाती है। जैसे—प्रिय-स्मरण, बाल्यकाल या यौवनकाल के अतीत जीवन का स्मरण। (ख) प्रत्यभिज्ञान—यह प्रत्यक्ष-मिश्रित स्मरण है। प्रत्यभिज्ञान में थोड़ा-सा अंश प्रत्यक्ष होता है और बहुत-सा अंश उसीके सम्बन्ध में स्मरण द्वारा उपस्थित होता है। जैसे—'यह वही है' के द्वारा व्यक्ति को देखकर यह वही झगड़ालू व्यक्ति है, जो उस दिन झगड़ा कर रहा था, यह स्मरण करना। (३) कल्पना—काव्य-वस्तु का सारा रूप-विधान इसी क्रिया से होता है। वचनों द्वारा भाव-व्यंजना के क्षेत्र में कल्पना को पूरी स्वच्छन्दता रहती है।

संकेत—(३७) नैतद्रूपं प्राप्यते, भवेत्, न भवति। एतद्रूपतां प्रापणमेव। हृदयं परिचिनोति। लयस्य। वास्तविकी। उपस्थापयति। उपस्थापनम्, आहरणम्। (३८) बाह्यरूपेभ्यः निष्पन्नाः। प्रतिष्ठापकानि। बाह्यान्येव। नयति। स्तोकांशः, भूयानंशः। कलहप्रियः। विवदमानोऽभवत्। कल्पना पूर्णस्वातन्त्र्यमनुभवति।

(३९) विराग या अनुराग **(चित्रलेखा)**

विराग मनुष्य के लिए असम्भव है, क्योंकि विराग नकारात्मक है। विराग का आधार शून्य है—कुछ नहीं है। ऐसी अवस्था में जब कोई कहता है कि वह विरागी है, गलत कहता है, क्योंकि उस समय वह यह कहना चाहता है कि उसका संसार के प्रति विराग है। पर साथ ही किसीके प्रति उसका अनुराग अवश्य है, और उसके अनुराग का केन्द्र है ब्रह्म। जीवन का कार्यक्रम है रचनात्मक, विनाशात्मक नहीं। मनुष्य का कर्तव्य है अनुराग, विराग नहीं। 'ब्रह्म से अनुराग' के अर्थ होते हैं—ब्रह्म से पृथक् वस्तु की उपेक्षा, अथवा उसके प्रति विराग। पर वास्तव में देखा जाए तो विरागी कहलानेवाला व्यक्ति वास्तव में विरागी नहीं, अपितु ईश्वरानुरागी होता है। क्या संसार से विराग और ब्रह्म से अनुराग—ये दोनों एक चीज हैं?

(४०) पाप और पुण्य **(चित्रलेखा)**

संसार में पाप कुछ भी नहीं है, वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है। प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष प्रकार की मनःप्रवृत्ति लेकर उत्पन्न होता है। प्रत्येक व्यक्ति इस संसार के रंगमंच पर एक अभिनय करने आता है। अपनी मनः-प्रवृत्ति से प्रेरित होकर अपने पाठ को वह दुहराता है—यही मनुष्य का जीवन है। जो कुछ मनुष्य करता है, वह उसके स्वभाव के अनुकूल होता है, और स्वभाव प्राकृतिक है। मनुष्य अपना स्वामी नहीं है, वह परिस्थितियों का दास है, विवश है। वह कर्ता नहीं है, वह केवल साधन है। फिर पुण्य और पाप कैसा?

मनुष्य में ममत्व प्रधान है। प्रत्येक मनुष्य सुख चाहता है। परन्तु व्यक्तियों के सुख के केन्द्र भिन्न होते हैं। कुछ सुख को धन में देखते हैं, कुछ सुख को मदिरा में देखते हैं, कुछ सुख को सत्कर्म में देखते हैं और कुछ दुष्कर्म में, कुछ सुख को त्याग में देखते हैं और कुछ संग्रह में, पर सुख प्रत्येक व्यक्ति चाहता है। कोई भी व्यक्ति संसार में अपनी इच्छानुसार ऐसा काम नहीं करेगा, जिससे दुःख मिले। यही मनुष्य की मन-प्रवृत्ति है और उसके दृष्टिकोण की विषमता है। संसार में इसीलिए पाप की एक परिभाषा नहीं हो सकी और न हो सकती है। हम न पाप करते हैं और न पुण्य करते हैं, हम वही करते हैं जो हमें करना पड़ता है।

संकेत—(३९) असद्रूपः सः, स विरक्त इति, मृषाऽभिधानं तत्, परमार्थतः, विरक्त इति, ईश्वरानुरक्तः, किमुभयमेतत् पर्यायत्वेन गणनीयम्। (४०) अवनिरङ्गे, आवर्तयति, स्वस्य प्रभुः, साधनमात्रं सः, न भूता न भविष्यति, यद् विवशत्वेन विधेयं भवति।

(१२) सुभाषित-मुक्तावली

सूचना—(१) सुभाषित विषयानुसार अकारादि-क्रम से दिये गये हैं। (२) सुभाषितों के आगे ग्रन्थ-नाम संक्षेप में दिया गया है, जिस ग्रन्थ से वह सुभाषित संकलित किया गया है। (३) जिन सुभाषितों का विवरण अज्ञात या सन्दिग्ध है, उनके आगे गन्थ-नाम नहीं दिया गया है। (४) सुभाषित वर्गों और उपवर्गों में विषय के आधार पर विभाजित किये गये हैं। (५) संक्षेप के लिए ग्रन्थों के निम्नलिखित संकेत दिये गये हैं।

संकेत-सूची

अ०=अनर्घराघव	च०=चरकसंहिता	मृ०=मृच्छकटिक
उ०=उत्तररामचरित	चा०=चाणक्यनीति	मे०=मेघदूत
ऋग्०=ऋग्वेद	चौ०=चौरपंचाशिका	यजु०=यजुर्वेद
क०=कथासरित्सागर	द०=दशकुमारचरित	यो०=योगवासिष्ठ
का०=कादम्बरी	दृ०=दृष्टान्तशतक	र०=रघुवंश
का०नी०=कामन्दकीयनीति	नै०=नैषधीयचरित	रा०=रामायण (वाल्मीकीय)
काव्या०=काव्यादर्श	प०=पञ्चतन्त्र	वि०=विक्रमोर्वशीय
कि०=किरातार्जुनीय	प्र०=प्रसन्नराघव	शा०=अभिज्ञानशाकुन्तलं (शाकुन्तल)
कु०=कुमारसम्भव	भ०=भर्तृहरिशतकत्रय	
कुव०=कुवलयानन्द	भा०=भागवतपुराण	शा०प०=शार्ङ्गधरपद्धति
गी०=भगवद्गीता	म०=मनुस्मृति	शि०=शिशुपालवध
गु०=गुणरत्न	महा०=महाभारत	ह०=हर्षचरित
घ०=घटखर्परकाव्य	मा०=मालतीमाधव	हि०=हितोपदेश

(१) भारत-प्रशंसा

(क) भारत-प्रशंसा

१. दुर्लभं भारते जन्म मानुष्यं तत्र दुर्लभम्।

(ख) भूमि-प्रशंसा

१. बहुरत्ना वसुन्धरा। २. बह्वाश्चर्या हि मेदिनी (क०)।

(ग) जन्मभूमि-प्रशंसा

१. जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। २. प्राणिनां हि निकृष्टाऽपि जन्मभूमिः परा प्रिया (क०)।

(२) अध्यात्म

(क) अध्यात्म

१. अमृतायते हि सुतपः सुकर्मणाम् (कि०)। २. इति त्याज्ये भवे भव्यो मुक्तावुत्तिष्ठते जनः (कि०)। ३. उदिते परमानन्दे नाहं न त्वं न वै जगत्। ४. एकाग्रो हि बहिर्वृत्तिनिवृत्तस्तत्त्वमीक्षते । ५. किमिवास्ति यन्न तपसामदुष्करम् (कि०)। ६. छाया न मूर्च्छति मलोपहतप्रसादे, शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा (शा०)। ७. जपतो नास्ति पातकम्। ८. ज्ञानमार्गे ह्यहंकारः परिघो दुरतिक्रमः (क०)। ९. तपःसीमा मुक्तिः। १०. तपोऽधीनानि श्रेयांसि ह्युपायोऽन्यो न विद्यते (क०)। ११. तपोधीना हि संपदः (क०)। १२. दृष्टतत्त्वश्च न पुनः कर्मजालेन बध्यते (क०)। १३. धन्यास्ते भुवि ये निवृत्तमनसो धिग् दुःखितान् कामिनः। १४. न मुक्तेः परमा गतिः (यो०)। १५. न वैराग्यात् परं भाग्यम्। १६. न शान्तेः परमं सुखम्। १७. नहि महतां सुकरः समाधिभङ्गः (कि०)। १८. निरुत्सुकानामभियोगभाजां समुत्सुकेवाङ्कमुपैति सिद्धिः (क०)। १९. निवृत्तपापसंपर्काः सन्तो यान्ति हि निर्वृतिम् (क०)। २०. निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् (हि०)। २१. निस्पृहस्य तृणं जगत्। २२. बोधे बोधे सच्चिदानन्दभासः। २३. मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः (शाट्या० उप०)। २४. लब्धदिव्यरसास्वादः को हि रज्येद् रसान्तरे (क०)। २५. वाञ्छारत्नं परमपदवी। २६. विरक्तस्य तृणं जगत्। २७. विरक्तस्य तृणं भार्या। २८. शीलयन्ति यतयः सुशीलताम् (कि०)। २९. साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः (निरुक्त)। ३०. साक्षात्कृतधर्माणो महर्षयः (उ०)। ३१. साधने हि नियमोऽन्यजनानां योगिनां तु तपसाऽखिलसिद्धिः (नै०)। ३२. सुखमास्ते निःस्पृहः पुरुषः। ३३. स्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः (शा०)।

(ख) कर्मफल

१. अयि खलु विषमः पुराकृतानां, भवति हि जन्तुषु कर्मणां विपाकः। २. आत्मकृतानां हि दोषाणां नियतमनुभवितव्यं फलमात्मनैव (का०)। ३. कर्म कः स्वकृतमत्र न भुङ्क्ते (नै०)। ४. कर्मदोषाद् दरिद्रता। ५. कर्मानुगो गच्छति जीव एकः (भा०)। ६. कर्मायत्तं फलं पुंसाम्। ७. गहना कर्मणो गतिः (गी०)। ८. चित्रा गतिः कर्मणाम्। ९. जन्मान्तरकृतं हि कर्म फलमुपनयति पुरुषस्येह जन्मनि (का०)। १०. प्राचीनकर्म बलवन्मुनयो वदन्ति (महा०)। ११. भद्रकृत् प्राप्नुयाद् भद्रमभद्रं चाप्यभद्रकृत् (क०)। १२. भद्रमभद्रं वा कृतमात्मनि कल्प्यते (क०)। १३. स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः।

(ग) दर्शन

१. अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात् प्रह्लादते मनः (कि०)। २. भस्मीभूतस्य जीवस्य पुनरागमनं कुतः (नै०)। ३. भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः। ४. मनोरथानामगतिर्न विद्यते (कु०)। ५. मनो हि जन्मान्तरसंगतिज्ञम् (र०)। ६. यस्यामेव वेलायां चित्तवृत्तिः, सैव वेला सर्वकार्येषु (का०)। ७. वक्ति जन्मान्तरप्रीतिं मनः स्निग्धदकारणम् (क०)। ८. विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः (कि०)। ९. विचित्राः खलु वासनाः। १०. विमलं कलुषीभवच्च चेतः कथयत्येव हितैषिणं रिपुं वा (कि०)। ११. सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः (शा०)। १२. सदा स्याद्योऽत्र यच्चित्तस्तन्मयत्वमुपैति सः (क०)। १३. सर्वश्चित्तप्रमाणेन सदसद् वाऽभिवाञ्छति (क०)। १४. सिद्धिं वा यदि वाऽसिद्धिं चित्तोत्साहो निवेदयेत् (प०)।

(घ) देव-कृपा

१. अमोघो देवतानां च प्रसादः किं न साधयेत् (क०)। २. देवा हि नान्यद् वितरन्ति किन्तु प्रसद्य ते साधुधियं ददन्ते (नै०)। ३. दोषोऽपि गुणतां याति, प्रभोर्भवति चेत्कृपा। ४. न देवा यष्टिमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्। यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संयोजयन्ति तम् (महा०)। ५. प्रसन्ने हि किमप्राप्यमस्तीह परमेश्वरे (क०)। ६. विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया (र०)। ७. सानुकूले जगन्नाथे विप्रियः सुप्रियो भवेत्।

(ङ) दैव-स्वरूप (दैवप्रशंसा, दैवनिन्दा, भाग्य, भाग्यहीन)

१. अनतिक्रमणीया हि नियतिः (का०)। २. अपि धन्वन्तरिर्वैद्यः किं करोति गतायुषि। ३. अभद्रं भद्रं वा विधिलिखितमुन्मूलयति कः। ४. असंभाव्या अपि नृणां भवन्तीह समागमाः (क०)। ५. असाध्यं साधयत्यर्थं हेलयाऽभिमुखो विधिः (क०)। ६. अहह कष्टपण्डितता विधेः (भ०)। ७. अहो दैवाभिशप्तानां प्राप्तोऽप्यर्थः पलायते (क०)। ८. अहो नवनवाश्चर्यनिर्माणे रसिको विधिः (क०)। ९. अहो विधेरचिन्त्यैव गतिरद्भुतकर्मणाम् (क०)। १०. अहो विधौ विपर्यस्ते न विपर्यस्यतीह किम् (क०)। ११. ईदृशी भवितव्यता (कि०)। १२. कल्पवृक्षोऽप्यभव्यानां प्रायो याति पलाशताम् (क०)। १३. कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं, दुःखमेकान्ततो वा। नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण (मे०)। १४. किं हिं न भवेदीश्वरेच्छया (क०)। १५. को जानाति जनो जनार्दनमनोवृत्तिः कदा कीदृशी। १६. को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तुर्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे (उ०) । १७. को हि स्वशिरसश्छायां विधेश्चोल्लंघयेद् गतिम् (क०)। १८. क्रुद्धे विधौ भजति मित्रममित्रभावम्। १९. दैवो दुर्बलघातकः। २०. दैवमेव हि साहाय्यं कुरुते सत्त्वशालिनाम् (क०)। २१. दैवी विचित्रा गतिः। २२. दैवे दुर्जनतां गते तृणमपि प्रायेण वज्रायते। २३. दैवे निरुन्धति निबन्धनतां वहन्ति, हन्त प्रयासपरुषाणि न पौरुषाणि (नै०)। २४. दैवेनैव

हि साध्यन्ते सदर्थाः शुभकर्मणाम् (क०)। २५. न च दैवात् परं बलम्। २६. ननु दैवमेव शरणं धिग् धिग् वृथा पौरुषम्। २७. न भविष्यति हन्त साधनं किमिवान्यत् प्रहरिष्यतो विधेः (र०)। २८. न ह्यलमतिनिपुणोऽपि पुरुषो नियतिलिखितां लेखामतिक्रमितुम् (द०)। २९. नाभाव्यं भवतीह कर्मवशतो भाव्यस्य नाशः कुतः। ३०. नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण (मे०)। ३१. नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलम् (भ०)। ३२. नैवान्यथा भवति यल्लिखितं विधात्रा। ३३. प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता (शि०)। ३४. प्रायः समापन्नविपत्तिकाले धियोऽपि पुंसां मलिनीभवन्ति (हि०)। ३५. प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः (भ०)। ३६. फलं भाग्यानुसारतः (महा०)। ३७. बलवति सति दैवे बन्धुभिः किं विधेयम्। ३८. बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा (महा०)। ३९. भवितव्यता बलवती (शा०)। ४०. भवितव्यं भवत्येव कर्मणामीदृशी गतिः (महा०)। ४१. भवितव्यस्य नासाध्यं दृश्यते बत दृश्यताम् (क०)। ४२. भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र (शा०)। ४३. यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः (हि०)। ४४. यदभावि न तद्भावि, भावि चेन्न तदन्यथा (हि०)। ४५. लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः। ४६. वक्रे विधौ वद कथं व्यवसायसिद्धिः। ४७. वामे विधौ नहि फलन्त्यभिवाञ्छितानि। ४८. विधिरहो बलवानिति मे मतिः (भा०)। ४९. विधिरुच्छृंखलो नृणाम्। ५०. विधिर्हि घटयत्यर्थानचिन्त्यानपि संमुखः (क०)। ५१. विधिलिखितं बुद्धिरनुसरति। ५२. विधेर्विचित्राणि विचेष्टितानि। ५३. विधेर्विलासानब्धेश्च तरङ्गान् को हि तर्कयेत् (क०)। ५४. शक्या हि केन निश्चेतुं दुर्ज्ञाना नियतेर्गतिः (क०)। ५५. शिरसि लिखितं लंघयति कः। ५६. साध्यासाध्यविचारं हि नेक्षते भवितव्यता (क०)।

(च) धर्म-चर्चा

१. अचिन्त्यो बत दैवेनाप्यापातः सुखदुःखयोः (क०)। २. अधर्मविषवृक्षस्य पच्यते स्वादु किं फलम् (क०)। ३. अनपायि निबर्हणं द्विषां, न तितिक्षासममस्ति साधनम् (कि०)। ४. अप्यप्रसिद्धं यशसे हि पुंसामनन्यसाधारणमेव कर्म (कु०)। ५. को धर्मः कृपया विना। ६. क्षमया किं न सिध्यति। ७. क्षान्तितुल्यं तपो नास्ति। ८. चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि य (यो०)। ९. त्रैलोक्ये दीपको धर्मः। १०. धर्मः कीर्तिर्द्वयं स्थिरम् (महा०)। ११. धर्मः सत्येन वर्धते। १२. धर्मः स नो यत्र न सत्यमस्ति। १३. धर्मसंरक्षणार्थैव प्रवृत्तिर्भुवि शार्ङ्गिणः (र०)। १४. धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम् (महा०)। १५. धर्मस्य त्वरिता गतिः (प०)। १६. धर्मेण चरतां सत्ये नास्त्यनभ्युदयः क्वचित् (क०)। १७. धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः (हि०)। १८. धर्मो मित्रं मृतस्य च। १९. धर्मो हि सान्निध्यं कुरुते सताम् (क०)। २०. न च धर्मो

दयापरः। २१. न दयासदृशं ज्ञानम्। २२. न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते (कु०)। २३. न धर्मसदृशं मित्रम्। २४. न धर्मात् परमं मित्रम्। २५. नाधर्मश्चिरमृद्धये (क०)। २६. नानृतात् पातकं परम्। २७. नास्ति सत्यसमो धर्मः (महा०)। २८. निसर्गविरोधिनी चेयं पयःपावकयोरिव धर्मक्रोधयोरेकत्र वृत्तिः (महा०)। २९. पथः श्रुतेर्दर्शयितार ईश्वरा मलीमसामाददते न पद्धतिम् (र०)। ३०. प्रमाणं परमं श्रुतिः (महा०)। ३१. भवन्त्येव हि भद्राणि धर्मादेव यदादरात् (क०)। ३२. महेश्वरमनाराध्य न सन्तीप्सितसिद्धयः (क०)। ३३. यतः सत्यं ततो धर्मः। ३४. यतो धर्मस्ततो जयः। ३५. योगिनां परिणमन् विमुक्तये, केन नाऽस्तु विनयः सतां प्रियः (कि०)। ३६. वचोभूषा सत्यम्। ३७. वित्तेन रक्ष्यते धर्मो, विद्या योगेन रक्ष्यते (चा०)। ३८. व्यक्तिमायाति महतां माहात्म्यमनुकम्पया (क०)। ३९. श्रवणपुटरत्नं हरिकथा। ४०. श्रीर्मङ्गलात् प्रभवति (महा०)। ४१. श्रेयंसि केन तृप्यते (शि०)। ४२. सत्यं सम्यक् कृतोऽल्पोऽपि, धर्मो भूरिफलो भवेत् (क०)। ४३. सत्यं कण्ठस्य भूषणम्। ४४. सत्यं न तद् यच्छलमभ्युपैति। ४५. सत्यमेव जयते नानृतम्। ४६. सत्येन धार्यते पृथ्वी। ४७. स धार्मिको यः परमर्म न स्पृशेत्। ४८. सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् (चा०)। ४९. स्वधर्मे निधनं श्रेयः, परधर्मो भयावहः (गी०)।

(३) अर्थ (धन)

(क) धन-निन्दा

१. अकाण्डपातोपनता न कं लक्ष्मीर्विमोहयेत् (क०)। २. अकालमेघवद् वित्तम-कस्मादेति याति च (क०)। ३. आये दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थाः कष्टसंश्रयाः (प०)। ४. ऋद्धिश्चित्तविकारिणी। ५. कोऽर्थान् प्राप्य न गर्वितः (प०)। ६. जलबुद्बुदसमाना विराजमाना संपत् तडिल्लतेव सहसैवोदेति, नश्यति च (द०)। ७. धनोष्मणा म्लायत्यलं लतेव मनस्विता (ह०)। ८. मूर्च्छन्त्यमी विकाराः प्रायेणैश्वर्यमत्तेषु (शा०)। ९. यत्रास्ति लक्ष्मीर्विनयो न तत्र। १०. शरदभ्रचलाश्चलेन्द्रियैरसुरक्षा हि बहुच्छलाः श्रियः (कि०)। ११. सम्पत्कणिकामपि प्राप्य तुलेव लघुप्रकृतिरुन्नतिमायाति (ह०)। १२. साधुवृत्तानपि क्षुद्रा विक्षिपन्त्येव सम्पदः (कि०)।

(ख) धन-प्रशंसा

१. अर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः। २. अर्थेन बलवान् सर्वः। ३. को न तृप्यति वित्तेन। ४. चाण्डालोऽपि नरः पूज्यो यस्यास्ति विपुलं धनम्। ५. द्रव्येण सर्वे वशाः। ६. धनं सर्वप्रयोजनम्। ७. निर्गलिताम्बुगर्भं, शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि (र०)। ८. पात्रत्वाद् धनमाप्नोति। ९. पुनर्धनाढ्यः पुनरेव भोगी। १०. पूज्यं वाक्यं समृद्धस्य। ११. भोगो भूषयते

धनम्। १२. मातर्लक्ष्मि तव प्रसादवशतो दोषा अपि स्युर्गुणाः। १३. लक्ष्मीर्यस्य गृहे स एव भजति प्रायो जगद्वन्द्यताम्। १४. लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं, श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत् (शा०)। १५. सा लक्ष्मीरुपकुरुते यया परेषाम् (कि०)।

(ग) निर्धनता (निर्धन)

१. अवज्ञासोदर्यं दारिद्र्यम् (द०)। २. उत्पद्यन्ते विलीयन्ते दरिद्राणां मनोरथाः। ३. कष्टं निर्धनिकस्य जीवितमहो दारैरपि त्यज्यते। ४. कृशे कस्यास्ति सौहृदम् (प०)। ५. क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति (प०)। ६. दरिद्रता धीरतया विराजते। ७. दारिद्र्यदोषेण करोति पापम्। ८. दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी (घ०)। ९. दारिद्र्यं परमाञ्जनम् (भा०)। १०. न दरिद्रस्तथा दुःखी लब्धक्षीणधनो यथा। ११. निर्धनता सर्वापदामास्पदम् (मृ०)। १२. निर्धनस्य कुतः सुखम्। १३. पुनर्दरिद्री पुनरेव पापी। १४. पुष्पं पर्युषितं त्यजन्ति मधुपाः। १५. बुभुक्षितः किं न करोति पापम् (प०)। १६. बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित्। १७. बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते। १८. रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय (मे०)। १९. विषं गोष्ठी दरिद्रस्य। २०. वृक्षं क्षीणफलं त्यजन्ति विहगाः। २१. सर्वं शून्यं दरिद्रस्य (प०)। २२. सर्वशून्या दरिद्रता।

(४) काम (भोगनिन्दा)

१. अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः (र०)। २. अहो अतीव भोगाशा कं नाम न विडम्बयेत् (क०)। ३. आकृष्टः कामलोभाभ्यामपायः को न पश्यति (क०)। ४. आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः (कि०)। ५. कामक्रोधौ हि विप्राणां मोक्षद्वारार्गलावुभौ (क०)। ६. कामातुराणां न भयं न लज्जा (भ०)। ७. कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु (मे०)। ८. कुतः सत्यं च कामिनाम्। ९. कोऽवकाशो विवेकस्य हृदि कामान्धचेतसः (क०)। १०. को हि मार्गममार्गं वा व्यसनान्धो निरीक्षते (क०)। ११. तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद् विन्ध्यस्तरेत् सागरम्। १२. दुर्जया हि विषया विदुषापि (नै०)। १३. न कामसदृशो रिपुः (यो०)। १४. नास्ति कामसमो व्याधिः। १५. भोगान् भोगानिवाहेयान् अध्यास्यापन्न दुर्लभा (कि०)। १६. वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणाम् (प०)। १७. विषयाकृष्यमाणा हि तिष्ठन्ति सुपथे कथम् (क०)। १८. विषयिणः कस्यापदोऽस्तं गताः। १९. श्रद्धेया विप्रलब्धारः..................कामाः कष्टा हि शत्रवः (कि० ११-३५)। २०. सङ्गात् संजायते कामः (गी०)।

(५) जगत्-स्वरूप

(क) जगत्-स्वरूप

१. असारेऽस्मिन् भवे तावद् भावाः पर्यन्तनीरसाः (क०)। २. न जाने संसारः किममृतमयः किं विषमयः। ३. परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते। ४. मधुरविधुरमिश्राः सृष्टयो हा विधातुः (प्र०)।

(ख) नश्वरता

१. अतिद्रुतवाहिनी चानित्यतानदी (ह०)। २. अस्थिरं जीवितं लोके (हि०)। ३. अस्थिराः पुत्रदाराश्च (हि०)। ४. अस्थिरे धनयौवने (हि०)। ५. क्षणविध्वंसिनः कायाः का चिन्ता मरणे रणे। ६. जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च (गी०)। ७. धिगिमां देहभृतामसारताम् (र०)। ८. न वस्तु दैवस्वरसाद् विनश्वरं सुरेश्वरोऽपि प्रतिकर्तुमीश्वरः (नै०)। ९. मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः। (र०)। १०. सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः (महा०)।

(ग) लोक-स्वभाव

१. अतिकष्टास्वप्यवस्थासु जीवितनिरपेक्षा न भवन्ति खलु जगति सर्वप्राणिनां प्रवृत्तयः (का०)। २. अहो धिग्वैषम्यं लोकव्यवहारस्य (मृ०)। ३. आत्मवर्गहितमिच्छति सर्वः (का०)। ४. गतयो भिन्नपथा हि देहिनाम्। ५. गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः। ६. जनस्य रूढप्रणयस्य चेतसः किमप्यमर्षोऽनुनये भृशायते (कि०)। ७. जनानने कः करमर्पयिष्यति (नै०)। ८. ध्रुवमभिमते को वा पूर्णे मुदा न हि माद्यति (कु०)। ९. नवा वाणी मुखे मुखे। १०. न सन्त्येव ते येषां सतामपि सतां न विद्यन्ते मित्रोदासीनशत्रवः (ह०)। ११. नहि सर्वविदः सर्वे। १२. नहि सर्वेऽपि कुर्वन्ति सभ्या युक्तिविवेचनम्। १३. पञ्च त्वानुगमिष्यन्ति यत्र यत्र गमिष्यसि। उपकार्योपकर्तारो मित्रोदासीनशत्रवः (महा०)। १४. पिण्डे-पिण्डे मतिर्भिन्ना तुण्डे-तुण्डे सरस्वती। १५. पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्। १६. प्रमादमोहितः प्रायो न विचारक्षमो जनः (क०)। १७. भिन्नरुचिर्हि लोकः। १८. सर्वः स्वार्थं समीहते (शि०)।

(घ) स्वभावो दुरतिक्रमः

१. आकण्ठजलमग्नोऽपि श्वा लिहत्येव जिह्वया। २. उत्सवप्रियाः खलु मनुष्याः (शा०)। ३. उष्णत्वमग्न्यातपसम्प्रयोगाच्छैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य (र०)। ४. या यस्य प्रकृतिः स्वभावजनिता केनापि न त्यज्यते। ५. सतां हि साधु शीलत्वात् स्वभावो न निवर्तते। ६. सुतप्तमपि पानीयं शमयत्येव पावकम् (प०)। ७. स्नापितोऽपि बहुशो नदीजलैर्गर्दभः किमु हयो भवेत् क्वचित्। ८. स्वभावो दुरतिक्रमः (प०)। ९. स्वभावो यादृशो यस्य न जहाति कदाचन (चा०)।

(६) चातुर्वर्ण्य

(क) ब्राह्मण

१. असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः (प०)। २. तुष्यन्ति भोजनैर्विप्राः। ३. ब्राह्मणा मधुरप्रियाः। ४. शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च। ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् (गी०)। ५. सिद्धं ह्येतद् वाचि वीर्यं द्विजानां, बाह्वोर्वीर्यं यत्तु तत् क्षत्रियाणाम् (उ०)।

(ख) क्षत्रिय

१. अधर्मयुद्धेन जयं को हीच्छेत् क्षत्रियो भवन् (क०)। २. कुराजान्तानि राष्ट्राणि (प०)। ३. क्षतात् किल त्रायत इत्यदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः (र०)। ४. तत्कार्मुकं कर्मसु यस्य शक्तिः। ५. राजा प्रकृतिरञ्जनात्। ६. शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्। दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् (गी०)। ७. स क्षत्रियस्त्राणसहः सतां यः। ८. संग्रामो हि शूराणामुत्सवो हि महानयम् (क०)। ९. सिद्धं ह्येतद् वाचि वीर्यं द्विजानां, बाह्वोर्वीर्यं यत्तु तत् क्षत्रियाणाम्।

(ग) वैश्य

१. कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् (गी०)।

(घ) शूद्र

१. परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् (गी०)।

(७) जीवन

(क) बाल्य

१. कस्य नोच्छृंखलं बाल्यं गुरुशासनवर्जितम् (क०)। २. लालयेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्। प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्। ३. स्वामिवत् पञ्चवर्षाणि दश वर्षाणि दासवत्। प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्।

(ख) यौवन

१. कस्य नेष्टं हि यौवनम् (क०)। २. किंचित्कालोपभोग्यानि यौवनानि धनानि च। ३. सर्वथा दुर्लभं यौवनमस्खलितम् (का०)। ४. सर्वथा न कंचिन्न खलीकरोति जीविततृष्णा। ५. स्पृशन्त्यास्तारुण्यं किमिव नहि रम्यं मृगदृशः। ६. हरति मनो मधुरा हि यौवनश्रीः (कि०)।

(ग) वार्धक्य

१. अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं, दशनविहीनं जातं तुण्डम्। वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं, तदपि न मुञ्चत्याशा पिण्डम्। २. जरा रूपं हरति। ३. न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः (हि०)। ४. वृद्धस्य तरुणी विषम्। ५. वृद्धा जना निष्करुणा भवन्ति। ६. वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम् (हि०)। ७. वृद्धा नारी पतिव्रता।

(घ) काल (अवसर)

१. कालयुक्त्या ह्यरिर्मित्रं जायते न च सर्वदा (क०)। २. काले खलु समारब्धाः फलं बध्नन्ति नीतयः (र०)। ३. काले दत्तं वरं ह्यल्पमकाले बहुनापि किम् (क०)। ४. कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः (भा०)। ५. कुर्वन्त्यकालेऽभिव्यक्तिं न कार्यापेक्षिणो बुधाः (क०)। ६. समय एव करोति बलाबलम् (शि०)। ७. समये हि सर्वमुपकारि कृतम् (शि०)।

(ङ) काल (मृत्यु)

१. कः कालस्य न गोचरान्तरगतः (म०)। २. कालस्य कुटिला गतिः। ३. कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी (मा०)। ४. मृत्योः सर्वत्र तुल्यता। ५. मृत्योर्बिभेषि किं बाले, न स भीतं विमुञ्चति। ६. लङ्घ्यते न खलु कालनियोगः (कि०)। ७. सर्वं कालवशेन नश्यति। ८. सर्वं यस्य वशादगात् स्मृतिपथं कालाय तस्मै नमः (भ०)।

(८) आरोग्य

१. अजीर्णे भोजनं विषम् (हि०)। २. अहितो देहजो व्याधिः। ३. आत्मानमेव मन्येत कर्तारं सुखदुःखयोः (च०)। ४. दृष्टश्रुताभ्यां सन्देहमवापोह्याचरेत् क्रियाः (सुश्रुत०)। ५. धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् (च०)। ६. न च व्याधिसमो रिपुः। ७. न नक्तं दधि भुञ्जीत। ८. पित्तेन दूने रसने सितापि तिक्तायते (नै०)। ९. प्रतिकारविधानमायुषः सति शेषे हि फलाय कल्पते (र०)। १०. मर्दनं गुणवर्धनम्। ११. यथौषधं स्वादु हितं च दुर्लभम्। १२. रसमूला हि व्याधयः। १३. विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भः प्रतीकारस्य (शा०)। १४. व्याधितस्यौषधं मित्रम्। १५. शरीरं व्याधिमन्दिरम्। १६. शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् (कु०)। १७. शरीरे चैव शास्त्रे च दृष्टार्थः स्याद् विशारदः (सुश्रुत०)। १८. सम्यक् प्रयोगः सर्वेषां सिद्धिमाख्याति कर्मणाम् (च०)। १९. सर्वथा न कञ्चन न स्पृशन्ति शरीरधर्माणमुपतापाः (का०)। २०. सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः (च०)। २१. स्वेद्यमामज्वरं प्राज्ञः कोऽम्भसा परिषिञ्चति (शि०)। २२. हितभुक् मितभुक् ऋतभुक्। २३. हितमारण्यमौषधम्।

(९) राजधर्मादि

(क) राजधर्म (राजकर्म)

१. अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीशा विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि (कि०)। २. अल्पीयसोऽप्यामयतुल्यवृत्तेर्महापकाराय रिपोर्विवृद्धिः (कि०)। ३. अविश्रमोऽयं लोकतन्त्राधिकारः (शा०)। ४. आपन्नस्य विषयनिवासिन आर्तिहरेण राज्ञा भवितव्यम् (शा०)।

५. आश्वस्तो वेत्ति कुसृतिं प्रभुः को हि स्वमन्त्रिणाम् (क०)। ६. ईश्वरराणां हि विनोदरसिकं मनः (कि०)। ७. ऋद्धं हि राज्यं पदमैन्द्रमाहुः (र०)। ८. को नाम राज्ञां प्रियः (प०)। ९. क्षितिपतिः को नाम नीतिं विना। १०. गणयन्ति न राज्यार्थेऽपत्यस्नेहं महीभुजः (क०)। ११. चाराज्जानन्ति राजानः। १२. नयवर्त्मगाः प्रभवतां हि धियः (कि०)। १३. नये च शौर्ये च वसन्ति सम्पदः। १४. नयेन चालंक्रियते नरेन्द्रता। १५. नरपतिहितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके, जनपदहितकर्ता द्विष्यते पार्थिवेन्द्रैः (प०)। १६. नहीश्वरव्याहृतयः कदाचित् पुष्णन्ति लोके विपरीतमर्थम् (कु०)। १७. नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्यकर्ता (प०)। १८. नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत्स एव धर्मः (र०)। १९. परमं लाभमरातिभङ्गमाहुः (कि०)। २०. पिशुनजनं खलु बिभ्रति क्षितीन्द्राः। २१. पृथिवीभूषणं राजा। २२. प्रजानामपि दीनानां राजैव सदयः पिता। २३. प्रभुचित्तमेव हि जनोऽनुवर्तते (शि०)। २४. प्रभुप्रसादो हि मुदे न कस्य (कु०)। २५. प्रभूणां हि विभूत्यन्धा धावत्यविषये मतिः (क०)। २६. प्रयोजनापेक्षितया प्रभूणां प्रायश्चलं गौरवमाश्रितेषु (कु०)। २७. प्रायेण भूमिपतयः प्रमदा लताश्च, यः पार्श्वतो भवति तं परिवेष्टयन्ति (प०)। २८. भजन्ति वैतसीं वृत्तिं राजानः कालवेदिनः (क०)। २९. मनीषिणः सन्ति न ते हितैषिणः (प०)। ३०. महीपतीनां विनयो हि भूषणम्। ३१. राजा राष्ट्रकृतं पापम्। ३२. राजा सहायवान् शूरः सोत्साहो जयति द्विषः (क०)। ३३. वसुमत्या हि नृपाः कलत्रिणः (र०)। ३४. वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा (प०)। ३५. व्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहाः, शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः (कि०)। ३६. शुचिः क्षेमकरो राजा। ३७. सर्वः प्रार्थितमर्थमधिगम्य सुखी सम्पद्यते जन्तुः। राज्ञां तु चरितार्थता दुःखोत्तरैव (शा०)। ३८. स्वदेशे पूज्यते राजा (चा०)। ३९. हतं सैन्यमनायकम् (चा०)।

(ख) सद्भृत्यं

१. अनियुक्तोऽपि च ब्रूयाद्यदीच्छेत् स्वामिनो हितम् (क०)। २. कथं हि लङ्घ्यते भृत्यैर्ग्रहिकस्य प्रभोर्वचः (क०)। ३. कालप्रयुक्ता खलु कर्मविद्भिर्विज्ञापना भर्तृषु सिद्धिमेति (कु०)। ४. न किंचिन्न कारयत्यसाधारणी स्वामिभक्तिः (ह०)। ५. नास्त्यहो स्वामिभक्तानां पुत्रे वात्मनि वा स्पृहा (क०)। ६. प्राणैरपि हि भृत्यानां स्वामिसंरक्षणं व्रतम् (क०)। ७. भृत्या अपि त एव ये संपत्तेर्विपत्तौ सविशेषं सेवन्ते (का०)। ८. संभावना ह्यधिकृतस्य तनोति तेजः (कि०)। ९. सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः (भ०)। १०. स्वामिन्यसाध्यव्यसने सुखं सन्मन्त्रिणां कुतः (क०)। ११. स्वाम्यायत्ताः सदा प्राणा भृत्यानामर्जिता धनैः (प०)।

(१०) आचार

(क) कर्तव्य-बोधन

१. अर्थमनर्थं भावय नित्यं, नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्। २. आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया

(र०)। ३. आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि (प०)। ४. उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् (गी०)। ५. उद्धरेद् दीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत्। ६. कर्तव्यं हि सतां वचः (क०)। ७. कर्तव्यो महदाश्रयः (प०)। ८. कस्यचित् किमपि नो हरणीयं, मर्मवाक्यमपि नोच्चरणीयम्। ९. गन्तव्यं राजपथे। १०. न स्वेच्छं व्यवहर्तव्यमात्मनो भूतिमिच्छता (क०)। ११. न्याय्यां वृत्तिं समाचरेत्। १२. परमार्थमविज्ञाय न भेतव्यं क्वचिन्नृभिः (क०)। १३. भवेन्न यस्य यत्कर्म, स तत्कुर्वन् विनश्यति (क०)। १४. मनःपूतं समाचरेत् (का० नी०)। १५. मौनं विधेयं सततं सुधीभिः। १६. मौनं सर्वार्थसाधकम्। १७. मौनं स्वीकृतिलक्षणम्। १८. यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयं नाकरणीयम्। १९. वचने का दरिद्रता। २०. वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् (का० नी०)। २१. विश्वासं स्त्रीषु वर्जयेत्। २२. शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि। २३. सत्यपूतां वदेद् वाणीम्। २४. सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता (उ०)। २५. सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् (कि०)। २६. सहसा हि कृतं पापं कथं मा भूद् विपत्तये (क०)। २७. सुलभो हि द्विषां भङ्गो, दुर्लभा सत्स्ववाच्यता (कि०)।

(ख) १. कुसंगति-निन्दा

१. असतां सङ्गदोषेण साधवो यान्ति विक्रियाम्। २. असाधुयोगा हि जयान्तरायाः प्रमाथिनीनां विपदां पदानि (कि०)। ३. कामं व्यसनवृक्षस्य मूलं दुर्जनसंगतिः (क०)। ४. दशाननोऽहरत् सीता बन्धं प्राप्तो महोदधिः। ५. नीचाश्रयो हि महतामपमानहेतुः। ६. पवनः परागवाही रथ्यासु वहन् रजस्वलो भवति। ७. मधुरापि हि मूर्च्छयते विषविटपिसमाश्रिता वल्ली। ८. मूर्खैर्हि सङ्गं कस्यास्ति शर्मणे (कि०)। ९. हीयते हि मतिस्तात हीनैः सह समागमात्। समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम् (हि०)।

(ख) २. सत्संगति-प्रशंसा

१. अनुसृत्य सतां वर्त्म यत् स्वल्पमपि तद् बहु। २. कस्य नाभ्युदये हेतुर्भवेत् साधुसमागमः (क०)। ३. कस्य सत्सङ्गो न भवेच्छुभः (क०)। ४. कामं न श्रेयसे कस्य संगमः पुण्यकर्मभिः (क०)। ५. किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता, तं चेत्सहस्रकरिणो धुरि नाकरिष्यत् (शा०)। ६. गुणमहतां महते गुणाय योगः (कि०)। ७. चन्द्रचन्दनयोर्मध्ये शीतला साधुसंगतिः। ८. ध्रुवं फलाय महते महतां सह संगमः (क०)। ९. पद्मपत्रस्थितं वारि धत्ते मुक्ताफलश्रियम्। १०. पुण्यैरेव हि लभ्यते सुकृतिभिः सत्संगतिर्दुर्लभा। ११. प्रायः सज्जनसंगतौ हि लभते दैवानुरूपं फलम्। १२. प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते (भ०)। १३. बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति (शि०)। १४. विश्वासयत्याशु सतां हि योगः (कि०)। १५. संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति। १६. सङ्ग सतां किमु न मङ्गलमातनोति (भा०)। १७. सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति (उ०)। १८. सतां हि सङ्गः सकलं प्रसूयते (भा०)। १९. सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्। २०. सद्भिरेव सहासीत सद्भिः कुर्वीत संगतिम्।

सद्भिर्विवादं मैत्रीं च नासद्भिः किंचिदाचरेत्। २१. समुन्नयन् भूतिमनार्यसंगमाद्, वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः (कि०)।

(ग) १. कृतघ्नता-निन्दा

१. अङ्कमारुह्य सुप्तं हि हत्वा किं नाम पौरुषम्। २. कृतघ्ना धनलोभान्धा नोपकारेक्षणक्षमाः (क०)। ३. कृतघ्नानां शिवं कुतः (क०)।

(ग) २. कृतज्ञता-प्रशंसा

१. कृतज्ञे सत्परीवारे प्रभौ सेवाऽफला कुतः (क०)। २. न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय, प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः (मे०)। ३. न तथा कृतवेदिनां करिष्यन् प्रियतामेति यथा कृतावदानः (कि०)।

(घ) १. गुण-प्रशंसा

१. अम्बुगर्भो हि जीमूतश्चातकैरभिनन्द्यते (र०)। २. अलब्धशाणोत्कषणा नृपाणां, न जातु मौलो मणयो वसन्ति (विक्रमांक०)। ३. एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः (कु०)। ४. कमिवेशते रमयितुं न गुणाः (कि०)। ५. गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः (उ०)। ६. गुणाः प्रियत्वेऽधिकृता न संस्तवः (कि०)। ७. गुणिनि गुणज्ञो रमते, नागुणशीलस्य गुणिनि परितोषः। ८. गुणी गुणं वेत्ति न वेत्ति निर्गुणः। ९. गुणेषु क्रियतां यत्नः किमाटोपैः प्रयोजनम्। १०. गुणेषु यत्नः पुरुषेण कार्यो, न किंचिदप्राप्यतमं गुणानाम्। ११. गुरुतां नयन्ति हि गुणा न संहतिः (कि०)। १२. नाम यस्याभिनन्दन्ति द्विषोऽपि स पुमान् पुमान् (कि०)। १३. पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते (र०)। १४. परिजनताऽपि गुणाय सद्गुणानाम् (कि०)। १५. प्राकाश्यं स्वगुणोदयेन गुणिनो गच्छन्ति किं जन्मना। १६. प्रायः प्रत्ययमाधत्ते स्वगुणेषूत्तमादरः (कु०)। १७. लक्ष्मीरनुसरति नयगुणसमृद्धिम्। १८. वृणते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः (कि०)। १९. सुलभा रम्यता लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम् (कि०)। २०. सुलभो हि द्विषां भङ्गो दुर्लभा सत्स्ववाच्यता (कि०)। २१. स्थिरा शैली गुणवताम् (कुवलया०)। २२. हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्। २३. हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः (शा०)।

(घ) २. दुर्गुण-निन्दा

१. अतिरोषणश्चक्षुष्मानप्यन्ध एव जनः (ह०)। २. अशीलं कस्य नाम स्यान्न खलीकारकारणम् (क०)। ३. अशीलं कस्य भूतये (क०)। ४. अशीलस्य हतं कुलम्। ५. आपदेत्युभयलोकदूषणी वर्तमानमपथे हि दुर्मतिम् (कि०)। ६. गुणैर्विहीना बहु जल्पयन्ति। ७. पुरुषा अपि बाणा अपि गुणच्युताः कस्य न भयाय। ८. मद्यपस्य कुतः सत्यम्। ९. मद्यपाः किं न जल्पन्ति।

(च) १. तेजस्विता

१. अरुन्तुदत्वं महतां ह्यगोचरः (कि०)। २. अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां, भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः (कि०)। ३. अविभिद्य निशाकृतं तमः, प्रभया नांशुमताऽप्युदीयते (कि०)। ४. अशनेरमृतस्य चोभयोर्वशिनश्चाम्बुधराश्च योनयः (कु०)। ५. इन्धनौघधगप्यग्निस्त्विषा नात्येति पूषणम् (शि०)। ६. उदिते तु सहस्रांशौ न खद्योतो न चन्द्रमाः। ७. उपहितपरमप्रभावधाम्नां, न हि जयिनां तपसामलंघ्यमस्ति (कि०)। ८. ऋते कृशानोर्नहि मन्त्रपूतमर्हन्ति तेजांस्यपराणि हव्यम्। (कु०)। ९. ऋते रवेः क्षालयितुं क्षमेत कः, क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः (शि०)। १०. कथंचिन्नहि दिव्यानां, वीर्यं भजति मोघताम् (क०)। ११. किमिवावसादकरमात्मवताम् (कि०)। १२. किमिवास्ति यन्न सुकरं मनस्विभिः (कि०)। १३. को विहन्तुमलमास्थितोदये, वासरश्रियमशीतदीधितौ (शि०)। १४. जगति बहुमताः कस्य नाभ्यर्चनीयाः। १५. ज्वलयति महतां मनांस्यमर्षे, न हि लभतेऽवसरं सुखाभिलाषः (कि०)। १६. ज्वलितं न हिरण्यरेतसं, चयमास्कन्दति भस्मनां जनः (कि०)। १७. तमस्तपति धर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति (शा०)। १८. तीव्रसत्त्वस्य न चिराद् भवन्त्येव हि सिद्धयः (क०)। १९. तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते (र०)। २०. तेजोविहीनं विजहाति दर्पः, शान्तार्चिषं दीपमिव प्रकाशः (कि०)। २१. न खलु वयस्तेजसो हेतुः (भ०)। २२. न दूषितः शक्तिमतां स्वयंग्रहः (कि०)। २३. न परेषु महौजसश्छलादपकुर्वन्ति मलिम्लुचा इव (शि०)। २४. न मानिता चास्ति भवन्ति च श्रियः (कि०)। २५. नातिपीडयितुं भग्नानिच्छन्ति हि महौजसः (कि०)। २६. निवसन्नन्तर्दारुणि लङ्घ्यो वह्निर्न तु ज्वलितः। २७. पैरनिन्द्यं चरितं मनस्विनां वयोऽनुसारोचितमेव शोभते (क०)। २८. प्रकृतिः खलु सा महीयसः, सहते नान्यसमुन्नतिं यया (कि०)। २९. मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुःखं न च सुखम् (भ०)। ३०. महतां हि धैर्यमविभाव्यवैभवम् (कि०)। ३१. महानुभावः प्रतिहन्ति पौरुषम् (कि०)। ३२. मा जीवन् यः परावज्ञादुःखदग्धोऽपि जीवति (शि०)। ३३. वशिनां न निहन्ति धैर्यमनुभावगुणः (कि०)। ३४. विलम्बितुं न खलु सदा मनस्विनो, विधित्सवः कलहमवेक्ष्य विद्विषः (शि०)। ३५. श्रेयान् हि मानिनो मृत्युर्नेदृगात्मप्रकाशनम् (क०)। ३६. संकल्पैकप्रधाना हि दिव्यानामखिलाः क्रियाः (क०)। ३७. सदाभिमानैकधना हि मानिनः (शि०)। ३८. सम्पत्सु हि सुसत्त्वानामेकहेतुः स्वपौरुषम् (क०)। ३९. संभवत्यभिजातानामभिमानो ह्यकृत्रिमः (क०)। ४०. सहते विपत्सहस्रं मानी नैवापमानलेशमपि (महा०)। ४१. सहापकृष्टैर्महतां न संगतं, भवन्ति गोमायुसखा न दन्तिनः (कि०)। ४२. सामानाधिकरण्यं हि तेजस्तिमिरयोः कुतः (शि०)। ४३. सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा (र०)। ४४. स्थिता तेजसि मानिता (कि०)। ४५. स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः (र०)। ४६. हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा (र०)।

(च) २. मित्रता

१. आकरः स्वपरभूरिकथानां प्रायशो हि सुहृदोः सहवासः (नै०)। २. आपत्काले तु सम्प्राप्ते यन्मित्रं मित्रमेव तत् (प०)। ३. आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण, लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्। दिनस्य पूर्वार्धपरार्धभिन्ना, छायेव मैत्री खलसज्जनानाम् (प०)। ४. एकं मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा (भ०)। ५. किमु चोदिताः प्रियहितार्थकृतः कृतिनो भवन्ति सुहृदाम् (शि०)। ६. कुवाक्यान्तं च सौहृदम् (प०)। ७. कृशे कस्यास्ति सौहृदम्। ८. तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः (उ०)। ९. नहि विचलति मैत्री दूरतोऽपि स्थितानाम्। १०. नालं सुखाय सुहृदो नालं दुःखाय शत्रवः (महा०)। ११. परोऽपि हितवान् बन्धुः (प०)। १२. भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि (शा०)। १३. मनोभूषा मैत्री। १४. मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः (मे०)। १५. मित्रलाभमनु लाभसम्पदः (कि०)। १६. मित्रार्थगणितप्राणा दुर्लभा हि महोदयाः (क०)। १७. यतः सतां हि संगतं, मनीषिभिः साप्तपदीनमुच्यते (कु०)। १८. विदेशे बन्धुलाभो हि, मरावमृतनिर्झरः (क०)। १९. विप्रलम्भोऽपि लाभाय, सति प्रियसमागमे (कि०)। २०. समानशीलव्यसनेषु सख्यम् (हि०)। २१. समीरणो नोदयिता भवेति, व्यादिश्यते केन हुताशनस्य (कु०)। २२. स सुहृद् व्यसने यः स्यात् (प०)। २३. स्वं जीवितमपि सन्तो न गणयन्ति मित्रार्थे (प०)। २४. स्वयमेव हि वातोऽग्नेः, सारथ्यं प्रतिपद्यते (र०)। २५. हितप्रयोजनं मित्रम्।

(छ) वीरता (धीरता), (वीर, धीर)

१. अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः (वि०)। २. अमर्षणः शोणितकाङ्क्षया किं, पदा स्पृशन्तं दशति द्विजिह्वः (र०)। ३. अयमश्वः पताकेयमथवा वीरघोषणम् (उ०)। ४. अल्पसत्त्वेषु धीराणामवज्ञैव हि शोभते (क०)। ५. अश्नुते स हि कल्याणं, व्यसने यो न मुह्यति (क०)। ६. असिद्धार्था निवर्तन्ते, न हि धीराः कृतोद्यमाः (क०)। ७. आपत्काले च कष्टेऽपि, नोत्साहस्त्यज्यते बुधैः (क०)। ८. आपत्सु धीरान् पुरुषान् स्वयमायान्ति सम्पदः (क०)। ९. आपदि स्फुरति प्रज्ञा, यस्य धीरः स एव हि (क०)। १०. आपद्यपि त्याज्यं न सत्त्वं सम्पदेषिभिः (क०)। ११. आरब्धा ह्यसमाप्तैव, किं धीरैस्त्यज्यते क्रिया (क०)। १२. आरब्धे हि सुदुष्करेऽपि महतां मध्ये विरामः कुतः (क०)। १३. उत्साहैकधने हि वीरहृदये नाप्नोति खेदोऽन्तरम् (क०)। १४. उन्नतो न सहते तिरस्क्रियाम्। १५. एकोऽप्याश्रयहीनोऽपि लक्ष्मीं प्राप्नोति सत्त्ववान् (क०)। १६. जीवन् हि धीरोऽभिमतं, किं नाम न यदाप्नुयात् (क०)। १७. ज्वलयति महतां मनांस्यमर्षे, न हि लभतेऽवसरं सुखाभिलाषः (कि०)। १८. न जात्ववसरे प्राप्ते, सत्त्ववानवसीदति (क०)। १९. ननु प्रवातेऽपि निष्कम्पा गिरयः (शा०)। २०. न शूरा विसहन्ते हि, स्त्रीनिमित्तं पराभवम् (क०)। २१. न स शक्नोति किं यस्य, प्रज्ञा नापदि हीयते (क०)। २२. नहि सत्त्वावसादेन, स्वल्पाप्यापद् विलङ्घ्यते (क०)। २३. निसर्गः स हि

धीराणां, यदापद्यधिकं दृढम् (क०)। २४. न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः (भ०)। २५. परवृद्धिमत्सरि मनो हि मानिनाम् (शि०)। २६. पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम्। २७. प्रकृतिरियं सत्त्ववताम्। २८. प्रतिपन्नसुहृत्कार्यनिर्वाहं धीरसत्त्वता (क०)। २९. प्राणव्ययाय शूराणां, जायते हि रणोत्सवः (क०)। ३०. प्राणेभ्योऽपि हि धीराणां, प्रिया शत्रुप्रतिक्रिया (नै०)। ३१. भुजे वीर्यं निवसति न वाचि (ह०)। ३२. भीता इव हि धीराणां, यान्ति दूरे विपत्तयः (क०)। ३३. महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः (शि०)। ३४. विकारहेतौ सति विक्रियन्ते, येषां न चेतांसि त एव धीराः (कु०)। ३५. विनाप्यर्थैर्धीरः स्पृशति बहुमानोन्नतिपदम् (हि०)। ३६. शतेषु जायते शूरः। ३७. शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदं च, लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः (प०)। ३८. शूरस्य मरणं तृणम्। ३९. शूरा हि प्रणतिप्रियाः (क०)। ४०. स धीरो यो न संमोहमापत्कालेऽपि गच्छति (क०)।

(ज) शिष्टाचार (सदाचार)

१. आचारः प्रथमो धर्मः (म०)। २. आत्मेश्वराणां नहि जातु विघ्नाः, समाधिभेदप्रभवो भवन्ति (कु०)। ३. उपभुक्ते हि तारुण्ये, प्रशमः सद्भिरिष्यते (क०)। ४. महाजनो येन गतः स पन्थाः (प०)। ५. विनयाद्याति पात्रताम्। ६. विनयो हि सतां व्रतम्। ७. शीलं परं भूषणम्। ८. शीलं भूषयते कुलम्। ९. शीलं हि विदुषां धनम् (क०)। १०. शीलं हि सर्वस्य नरस्य भूषणम्। ११. शुभाचारस्य कः कुर्यादशुभं हि सचेतनः (क०)। १२. सकलं शीलेन कुर्याद् वशम्। १३. सकलगुणभूषा च विनयः।

(झ) १. सज्जनप्रशंसा

१. अक्षोभ्यतैव महतां महत्त्वस्य हि लक्षणम् (क०)। २. अगम्यं मन्यते सुगम्। ३. अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति। ४. अनुगृह्णन्ति हि प्रायो देवता अपि तादृशम् (क०)। ५. अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः (वि०)। ६. अनुहुंकुरुते घनध्वनिं न हि गोमायुरुतानि केसरी (शि०)। ७. अशयोभीरवः किं न, कुर्वते बत साधवः (क०)। ८. अयातपूर्वा परिवादगोचरं, सतां हि वाणी गुणमेव भाषते (कि०)। ९. अरुन्तुदत्वं महतां ह्यगोचरः (कि०)। १०. अहह महतां निःसीमानश्चरित्रविभूतयः (भ०)। ११. आदानं हि विसर्गाय, सतां वारिमुचामिव (र०)। १२. आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् (मे०)। १३. आवेष्टितो महासर्पैश्चन्दनः किं विषायते। १४. उत्तरोत्तरशुभो हि विभूनां कोऽपि मञ्जुलतमः क्रमवादः (नै०)। १५. उत्सहन्ते न हि द्रष्टुमुत्तमाः स्वजनापदम् (क०)। १६. उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् (हि०)। १७. उदारस्य तृणं वित्तम्। १८. कण्ठे सुधा वसति वै खलु सज्जनानाम्। १९. कथमपि

भुवनेऽस्मिंस्तादृशाः संभवन्ति (मृ०)। २०. कदापि सत्पुरुषाः शोकवास्तव्या न भवन्ति (शा०)। २१. करुणार्द्रा हि सर्वस्य, सन्तोऽकारणबान्धवाः (क०)। २२. केषां न स्यादभिमताफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु (मे०)। २३. क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे (भ०)। २४. क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने, ममत्वमुच्चैःशिरसां सतीव (कु०)। २५. खलसङ्गेऽपि नैष्ठुर्यं, कल्याणप्रकृतेः कुतः। २६. ग्रहीतुमार्यान् परिचर्यया मुहुर्महानुभावा हि नितान्तमर्थिनः (शि०)। २७. घनाम्बुना राजपथे हि पिच्छिले, क्वचिद् बुधैरप्यपथेन गम्यते (नै०)। २८. घनाम्बुभिर्बहुलितनिम्नगाजलैर्जलं नहि व्रजति विकारमम्बुधेः (शि०)। २९. चित्ते वाचि क्रियायां च, साधूनामेकरूपता। ३०. जितशान्तेषु धीराणां स्नेह एवोचितोऽरिषु (क०)। ३१. ते भूमण्डलमण्डनैकतिलकाः सन्तः कियन्तो जनाः। ३२. त्यजन्त्युत्तमसत्त्वा हि, प्राणानपि न सत्पथम् (क०)। ३३. दावानलप्लोषविपत्तिमन्योऽरण्यस्य हर्तुं जलदात् प्रभुः किम् (कु०)। ३४. दुर्लक्ष्यचिह्ना महतां हि वृत्तिः (कि०)। ३५. देवद्विजसपर्या हि, कामधेनुर्मता सताम् (क०)। ३६. देहपातमपीच्छन्ति, सन्तो नाविनयं पुनः (क०)। ३७. धनिनामितरः सतां पुनर्गुणवत्संनिधिरेव संनिधिः (शि०)। ३८. न चलति खलु वाक्यं सज्जनानां कदाचित्। ३९. न प्राणान्ते प्रकृतिविकृतिर्जायते चोत्तमानाम्। ४०. न भवति पुनरुक्तं भाषितं सज्जनानाम्। ४१. न भवति महतां हि क्वापि मोघः प्रसादः। ४२. नहि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति। ४३. निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः। ४४. निर्वाहः प्रतिपन्नवस्तुषु सतामेतद् हि गोत्रव्रतम्। ४५. न्यायाधारा हि साधवः (कि०)। ४६. परदुःखेनापि दुःखिता विरलाः। ४७. परिजनताऽपि गुणाय सज्जनानाम् (कि०)। ४८. पुण्यवन्तो हि सन्तानं पश्यन्त्युच्चैः कृतान्वयम् (क०)। ४९. प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् (भ०)। ५०. प्रणामान्तः सतां कोपः। ५१. प्रणिपातप्रतीकारः संरम्भो हि महात्मनाम् (र०)। ५२. प्रतिपन्नार्थनिर्वाहं सहजं हि सतां व्रतम् (क०)। ५३. प्रयुक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव (मे०)। ५४. प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणां, प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती (कि०)। ५५. प्रसन्नानां वाचः फलमपरिमेयं प्रसुवते। ५६. प्रसादचिह्नानि पुरःफलानि (र०)। ५७. प्रह्वेष्वनिर्बन्धरुषो हि सन्तः (र०)। ५८. प्रायेण साधुवृत्तानामस्थायिन्यो विपत्तयः। ५९. प्रायेणाकारणमित्राण्यतिकरुणार्द्राणि च सदा खलु भवन्ति सतां चेतांसि (क०)। ६०. प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति (भ०)। ६१. बताश्रितानुरोधेन किं न कुर्वन्ति साधवः (क०)। ६२. ब्रुवते हि फलेन साधवो, न तु कण्ठेन निजोपयोगिताम् (नै०)। ६३. भक्त्या हि तुष्यन्ति महानुभावाः। ६४. भजन्त्यात्मंभरित्वं हि, दुर्लभेऽपि न साधवः (क०)। ६५. भवति महत्सु न निष्फलः प्रयासः (शि०)। ६६. भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम्। ६७. मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् (हि०)। ६८. महतां हि धैर्यमविभाव्यवैभवम् (कि०)। ६९. महतां हि सर्वमथवा जनातिगम् (शि०)। ७०. महतामनुकम्पा हि विरुद्धेषु प्रतिक्रिया (क०)। ७१. महतीमपि श्रियमवाप्य विस्मयः, सुजनो न विस्मरति जातु किंचन (शि०)। ७२. महते रुजन्नपि गुणाय महान् (कि०)।

७३. महान् महत्येव करोति विक्रमम् (प०)। ७४. मोघा हि नाम जायेत महत्सूपकृतिः कुतः (क०)। ७५. यथा चित्तं तथा वाचो, यथा वाचस्तथा क्रियाः। ७६. रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते (उ०)। ७७. रिपुष्वपि हि भीतेषु सानुकम्पा महाशयाः (कि०)। ७८. वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि। लोकोत्तराणां चेतांसि, को हि विज्ञातुमर्हति (उ०)। ७९. विक्रियायै न कल्पन्ते सम्बन्धाः सदनुष्ठिताः (कु०)। ८०. विप्रियमप्याकर्ण्य ब्रूते प्रियमेव सर्वदा सुजनः। ८१. विवेकधाराशतधौतमन्तः, सतां न कामः कलुषीकरोति (नै०)। ८२. व्रताभिरक्षा हि सतामलंक्रिया (कि०)। ८३. संपत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम् (भ०)। ८४. संपत्सु हि सुसत्त्वानामेकहेतुः स्वपौरुषम् (क०)। ८५. सतां महत्संमुखधावि पौरुषम् (नै०)। ८६. सतां हि चेतःशुचितात्मसाक्षिका (नै०)। ८७. सतां हि प्रियंवदता कुलविद्या (ह०)। ८८. सतां हि साधुशीलत्वात् स्वभावो न निवर्तते। ८९. सत्यनियतवचसं वचसा सुजनं जनाश्चलयितुं क ईशते (शि०)। ९०. सद्भावार्द्रः फलति चिरेणोपकारो महत्सु (मे०)। ९१. सद्भिस्तु लीलया प्रोक्तं शिलालिखितमक्षरम्। ९२. सद्य एव सुकृतां हि पच्यते, कल्पवृक्षफलधर्मि काङ्क्षितम् (र०)। ९३. सन्तः परार्थं कुर्वाणा नावेक्षन्ते प्रतिक्रियाम् (महा०)। ९४. सन्तः परीक्ष्यान्तरद् भजन्ते (मालविका०)। ९५. सुदुर्ग्रहान्तःकरणा हि साधवः (कि०)। ९६. स्वामापदं प्रोज्झ्य विपत्तिमग्नं, शोचन्ति सन्तो ह्युपकारिपक्षम् (कि०)। ९७. ह्रदे गभीरे हृदि चावगाढे, शंसन्ति कार्यावतरं हि सन्तः (नै०)।

(झ) २. दुर्जन-निन्दा

१. अकृत्यं मन्यते कृत्यम् (प०)। २. अत्युच्चैर्भवति लघीयसां हि धार्ष्ट्यम् (शि०)। ३. अनुकूलेऽपि कलत्रे, नीचः परदारलम्पटो भवति। ४. अन्यस्माल्लब्धपदो नीचः प्रायेण दुःसहो भवति। ५. अपि मुदमुपयान्तो वाग्विलासैः स्वकीयैः परभणितुषु तृप्तिं यान्ति सन्तः कियन्तः। ६. अभक्ष्यं मन्यते भक्ष्यम्। ७. अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं, द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम् (कु०)। ८. अव्यवस्थितचित्तस्य प्रसादोऽपि भयंकरः (भ०)। ९. अव्यापारेषु व्यापारं, यो नरः कुर्तुमिच्छति (प०)। १०. अश्रेयसे न वा कस्य, विश्वासो दुर्जने जने (क०)। ११. असद्वृत्तेरहोवृत्तं दुर्विभावं विधेरिव (कि०)। १२. असन्मैत्री हि दोषाय, कूलच्छायेव सेविता (कि०)। १३. अहो विश्वास्य वञ्च्यन्ते, धूर्तैश्छद्मभिरीश्वराः (क०)। १४. अहो सहन्ते बत नो परोदयम्। १५. उष्णो दहति चाङ्गारः, शीतः कृष्णायते करम् (प०)। १६. कवले पतिता सद्यो वमयति ननु मक्षिकाऽन्नभोक्तारम्। १७. कथापि खलु पापानामलमश्रेयसे यतः (शि०)। १८. किं मर्दितोऽपि कस्तूर्यां, लशुनो याति सौरभम्। १९. किमिव ह्यस्ति दुरात्मनामलङ्घ्यम्

(कि०)। २०. कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति (शा०)। २१. को वा दुर्जनवागुरासु पतितः क्षेमेण यातः पुमान् (प०)। २२. क्वाश्रयोऽस्ति दुरात्मनाम्। २३. क्षारं पिबति पयोधेर्वर्षत्यम्भोधरो मधुरमम्भः। २४. गुणार्जनोच्छ्रायविरुद्धबुद्धयः, प्रकृत्यमित्रा हि सतामसाधवः (कि०)। २५. तरुणीकच इव नीचः, कौटिल्यं नैव विजहाति। २६. दुःखान्धा हि पतन्त्येव, विपच्छ्वभ्रेषु कातराः (क०)। २७. दुग्धधौतोऽपि किं याति, वायसः कलहंसताम्। २८. दुर्जनः परिहर्तव्यो, विद्ययाऽलंकृतोऽपि सन् (भ०)। २९. दुर्जनस्य कुतः क्षमा। ३०. दुर्जनस्यार्जितं वित्तं, भुज्यते राजतस्करैः। ३१. दूरतः पर्वता रम्याः। ३२. दोषग्राही गुणत्यागी पल्लोलीव हि दुर्जनः (प०)। ३३. न परिचयो मलिनात्मनां प्रधानम् (शि०)। ३४. नासद्भिः किञ्चिदाचरेत्। ३५. निसर्गतोऽन्तर्मलिना ह्यसाधवः। ३६. नीचो वदति न कुरुते, वदति न साधुः करोत्येव। ३७. परवृद्धिषु बद्धमत्सराणां किमिव ह्यस्ति दुरात्मनामलङ्घ्यम् (कि०)। ३८. प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम्। ३९. प्रकृत्यमित्रा हि सतामसाधवः (कि०)। ४०. प्रासादशिखरस्थोऽपि काकः किं गरुडायते (प०)। ४१. बन्धुः को नाम दुष्टानाम्। ४२. भूयोऽपि सिक्तः पयसा घृतेन, न निम्ववृक्षो मधुरत्वमेति। ४३. भ्रष्टस्य का वा गतिः। ४४. मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः (भ०)। ४५. मन्ये दुर्जनचित्तवृत्तिहरणे धाताऽपि भग्नोद्यमः। ४६. मात्सर्यरागोपहतात्मनां हि, स्खलन्ति साधुष्वपि मानसानि (कि०)। ४७. ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे (भ०)। ४८. विचित्रमायाः कितवा ईदृशा एव सर्वदा (का०)। ४९. विपदन्ता ह्यविनीतसम्पदः (कि०)। ५०. विश्वासः कुटिलेषु कः (क०)। ५१. शाम्येत् प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जनः (कु०)। ५२. सरित्पूरप्रपूर्णोऽपि, क्षारो न मधुरायते (यो०)। ५३. सर्पः क्रूरः खलः क्रूरः सर्पात् क्रूरतरः खलः (चा०)। ५४. साहसं नैरपैक्ष्यं च, कितवानां निसर्गजम् (क०)। ५५. स्पृशन्ति न नृशंसानां, हृदयं बन्धुबुद्धयः (नै०)। ५६. स्पृशन्नपि गजो हन्ति (प०)। ५७. हिंसा बलमसाधूनाम् (महा०)। ५८. होतारमपि जुह्वन्तं, स्पृष्टो दहति पावकः (प०)।

(ञ) १. सत्कर्म-प्रशंसा

१. अचिन्त्यं हि फलं सूते सद्यः सुकृतपादपः (क०)। २. उप्तं सुकृतबीजं हि, सुक्षेत्रेषु महत्फलम् (क०)। ३. कुरूपता शीलतया विजायते। ४. क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति (र०)। ५. गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो, भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः (शि०)। ६. धर्मपरायणानां सदा समीपसंचारिण्यः कल्याणसंपदो भवन्ति (का०)। ७. नहि कल्याणकृत् कश्चिद्, दुर्गतिं तात गच्छति (गी०)। ८. रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि। ९. वृत्तं यत्नेन संरक्षेद्, वित्तमेति च याति च (महा०)। १०. वृत्तं हि महितं सताम्। ११. शुभकृन्नहि सीदति। १२. स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य, त्रायते महतो भयात् (गी०)।

(ञ) २. दुष्कर्म-निन्दा

१. अनार्यः परदारव्यवहारः (शा०)। २. अनार्यजुष्टेन पथा, प्रवृत्तानां शिवं कुतः (क०)। ३. अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम् (शा०)। ४. अपन्थानं तु गच्छन्तं, सोदरोऽपि विमुञ्चति। ५. कष्टो ह्यविनयक्रमः (क०)। ६. पापप्रभावात् नरकं प्रयाति। ७. पापे कर्मण्यवज्ञातहितवाक्ये कुतः सुखम् (क०)। ८. पूर्वावधीरितं श्रेयो दुःखं हि परिवर्तते (शा०)। ९. प्रतिबध्नाति हि श्रेयः, पूज्यपूजाव्यतिक्रमः (र०)। १०. भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः (भ०)। ११. वरं क्लैब्यं पुंसां न च परकलत्राभिगमनम् (भ०)। १२. वरं प्राणत्यागो न च पिशुन-वाक्येष्वभिरुचिः। १३. वरं भिक्षाशित्वं न मानपरिखण्डनम्। १४. वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतम्।

(ट) स्वावलम्बन

१. आत्मानमात्मनाऽनवसाद्यैवोद्धरन्ति सन्तः। २. उद्धरेदात्मनात्मानं, नात्मानमवसादयेत् (गी०)। ३. गुणसंहतेः समतिरिक्तमहो, निजमेव सत्त्वमुपकारि सताम् (कि०)। ४. नास्ति चात्मसमं बलम्। ५. लंघयन् खलु तेजसा जगन्न महानिच्छति भूतिमन्यतः (कि०)। ६. विनिपातनिवर्तनक्षमं, मतमालम्बनमात्मपौरुषम् (कि०)।

(११) विद्या

(क) ज्ञान

१. कर्मणो ज्ञानमतिरिच्यते। २. न ज्ञानात् परमं चक्षुः। ३. न विवेकं विना ज्ञानम् ४. नास्ति ज्ञानात् परं सुखम्। ५. प्रज्ञा नाम बलं ह्येवं, निष्प्रज्ञस्य बलेन किम् (क०)। ६. प्रज्ञाबलं च सर्वेषु, मुख्यं कार्येषु साधनम् (क०)। ७. बुद्धिः कर्मानुसारिणी (चा०)। ८. बुद्धिर्नाम च सर्वत्र, मुख्यं मित्रं च पौरुषम् (क०)। ९. बुद्धेः फलमनाग्रहः। १०. मतिरेव बलाद् गरीयसी (हि०)। ११. स तु निरवधिरेकः सज्जनानां विवेकः । १२. सुकृतः परिशुद्ध आगमः, कुरुते दीप इवार्थदर्शनम् (कि०)। १३. स्वस्थे चित्ते बुद्धयः संभवन्ति।

(ख) वाक्-प्रशंसा

१. अर्थभारवती वाणी, भजते कामपि श्रियम्। २. कः परः प्रियवादिनाम्। ३. क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् (भ०)। ४. मुखरताऽवसरे हि विराजते (कि०)। ५. सदोभूषा सूक्तिः। ६. सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः (कि०)। ७. हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः (कि०)।

(ग) वाग्मिता

१. अल्पाक्षररमणीयं यः कथयति निश्चितं स खलु वाग्मी। २. भवन्ति ते सभ्यतमा विपश्चितां, मनोगतं वाचि निवेशयन्ति ये। नयन्ति तेष्वप्युपपन्ननैपुणा, गभीरमर्थं कतिचित् प्रकाशताम् (कि०)। ३. मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता (नै०)। ४. मुखरताऽवसरे हि विराजते (कि०)। ५. वक्ता दशसहस्रेषु। ६. वक्ता श्रोता च यत्रास्ति, रमन्ते तत्र सम्पदः।

(घ) विद्या

१. अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्। २. आलस्योपहता विद्या (हि०)। ३. ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः। ४. कणशः क्षणशश्चैव विद्यामर्थं च साधयेत्। ५. कामिनश्च कुतो विद्या। ६. का विद्या कवितां विना। ७. किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या। ८. किं जीवितेन पुरुषस्य निरक्षरेण (भ०)। ९. कुतो विद्यार्थिनः सुखम्। १०. जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः। ११. ज्ञानमेव शक्तिः। १२. ज्ञानस्याभरणं क्षमा। १३. तस्य विस्तारिता बुद्धिस्तैलबिन्दुरिवाम्भसि। १४. तस्य संकुचिता बुद्धिर्घृतबिन्दुरिवाम्भसि। १५. दुरधीता विषं विद्या (हि०)। १६. धिग्जीवितं शास्त्रकलोज्झितस्य। १७. न च विद्यासमो बन्धुः। १८. पठतो नास्ति मूर्खत्वम्। १९. पूर्वपुण्यतया विद्या। २०. माता शत्रुः पिता वैरी, येन बालो न पाठितः (हि०)। २१. या लोकद्वयसाधनी तनुभृतां सा चातुरी चातुरी। २२. विद्यातुराणां न सुखं न निद्रा। २३. विद्या ददाति विनयम् (हि०)। २४. विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्। २५. विद्या नाम नरस्य रूपमधिकम्। २६. विद्या परं दैवतम्। २७. विद्या मित्रं प्रवासे च। २८. विद्या योगेन रक्ष्यते। २९. विद्या रूपं कुरूपाणाम्। ३०. विद्याविहीनः पशुः। ३१. विद्यासमं नास्ति शरीरभूषणम्। ३२. विद्या सर्वस्य भूषणम्। ३३. विद्या स्तब्धस्य निष्फला। ३४. वेदाज्जानन्ति पण्डिताः। ३५. शास्त्रं हि निश्चितधियां क्व न सिद्धिमेति (शि०)। ३६. शास्त्राद् रूढिर्बलीयसी। ३७. शोभन्ते विद्यया विप्राः। ३८. श्रोत्रस्य भूषणं शास्त्रम्। ३९. सुखार्थिनः कुतो विद्या, विद्यार्थिनः कुतः सुखम्।

(ङ) १. विद्वत्प्रशंसा

१. अगाधजलसंचारी न गर्वं याति रोहितः (प०)। २. अलब्धशाणोत्कषणा नृपाणां, न जातु मौलौ मणयो वसन्ति (विक्रमांक०)। ३. किमज्ञेयं हि धीमताम् (क०)। ४. झटिति पराशयवेदिनो हि विज्ञाः (नै०)। ५. न खलु धीमतां कश्चिदविषयो नाम (शा०)। ६. ननु वक्तृविशेषनिःस्पृहा, गुणगृह्या वचने विपश्चितः (कि०)। ७. ननु विमृश्य कृती कुरुतेऽखिलम्। ८. नहीङ्गितज्ञोऽवसरेऽवसीदति (कि०)। ९. परेङ्गितज्ञानफला हि बुद्धयः। १०. प्रतिभातश्च पश्यन्ति सर्वं प्रज्ञावतां धियः (क०)। ११. प्रस्तुतार्थविरुद्धं हि, कोऽभिदध्यादबालिशः (क०)। १२. बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः (शा०)। १३. यत्र विद्वज्जनो नास्ति, श्लाघ्यस्तत्राल्पधीरपि। १४. युक्तं न वा युक्तमिदं विचिन्त्य, वदेद् विपश्चिन्महतोऽनुरोधात्। १५. युक्तियुक्तं प्रगृह्णीयाद् बालादपि विचक्षणः। १६. वर्तमानेन कालेन वर्तयन्ति विचक्षणाः। १७. विद्वान् कुलीनो न करोति गर्वम्। १८. विद्वान् सर्वगुणेषु पूजिततनुर्मूर्खस्य नान्या गतिः। १९. विद्वान् सर्वत्र पूज्यते (चा०)। २०. संकटे हि परीक्ष्यन्ते प्राज्ञाः शूराश्च संगरे (क०)। २१. सभारत्नं विद्वान्। २२. सहस्रेषु च पण्डितः। २३. सारं गृह्णन्ति पण्डिताः। २४. स्वस्थे को वा न पण्डितः (प०)।

(ङ) २. मूर्ख-निन्दा

१. अगुणस्य हतं रूपम्। २. अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् (प०)। ३. अज्ञता कस्य नामेह, नोपहासाय जायते (क०)। ४. अज्ञानाद् मृतचेतसामतिरुषां कोऽर्थस्तिरश्चां गुणैः। ५. अनार्यसंगमाद्, वरं विरोधोऽपि समं महात्माभिः (कि०)। ६. अन्तःसारविहीनानामुपदेशो न विद्यते। ७. अन्धस्य दीपो बधिरस्य गीतम्। ८. अर्धो घटो घोषमुपैति नूनम्। ९. अल्पविद्यो महागर्वी। १०. अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन् विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम् (र०) ११. अवस्तुनि कृतक्लेशो मूर्खो यात्यवहास्यताम् (क०)। १२. आपदेत्युभयलोकदूषणी, वर्तमानमपथे हि दुर्मतिम् (कि०)। १३. उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये (प०)। १४. क्षमन्ते न विचारं हि, मूर्खा विषयलोलुपाः (क०)। १५. जायन्ते बत मूढानां संवादा अपि तादृशाः (क०)। १६. ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि नरं न रञ्जयति (भ०)। १७. दर्दुरा यत्र वक्तारस्तत्र मौनं हि शोभनम्। १८. न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् (भ०)। १९. निष्प्रज्ञो नाशयत्येव प्रभोरर्थमथात्मनः (क०)। २०. प्राप्तोऽप्यर्थः क्षणादेव हार्यते मन्दबुद्धिना (क०)। २१. बलं मूर्खस्य मौनित्वम्। २२. बहुवचनमल्पसारं यः कथयति विप्रलापी सः। २३. भवति योजयितुर्वचनीयता (प०)। २४. मदमूढबुद्धिषु विवेकिता कुतः (शि०)। २५. मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः (मालविका०)। २६. मूर्खस्य किं शास्त्रकथाप्रसङ्गः। २७. मूर्खाणां बोधको रिपुः। २८. मूर्खोऽनुभवति क्लेशं, न कार्यं कुरुते पुनः (क०)। २९. मोहान्धमविवेकं हि श्रीश्चिराय न सेवते (क०)। ३०. लोके पशुश्च मूर्खश्च निर्विवेकमती समौ (क०)। ३१. लोकोपहसिताः शश्वत् सीदन्त्येव ह्यबुद्धयः (क०)। ३२. विद्या विवादाय धनं मदाय। ३३. विद्याविहीनः पशुः। ३४. विभूषणं मौनमण्डितानाम् (भ०)। ३५. संवृणोति खलु दोषमज्ञता (कि०)। ३६. सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम् (प०)। ३७. स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया (शा०)। ३८. स्वगृहे पूज्यते मूर्खः। ३९. हितोपदेशो मूर्खस्य कोपायैव न शान्तये (क०)।

(१२) विचारात्मक

(क) आशा

१. आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला (भा०)। २. आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां, सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगो रुणद्धि (मे०)। ३. एवमाशाग्रहग्रस्तैः क्रीडन्ति धनिनोऽर्थिभिः (हि०)। ४. गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति (शा०)। ५. धिगाशा सर्वदोषभूः। ६. नास्ति तृष्णासमो व्याधिः।

(ख) उद्यम-प्रशंसा

१. अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति। २. अचिरांशुविलासचञ्चला, ननु लक्ष्मीः फलमानुषङ्गिकम् (कि०)। ३. अप्राप्यं नाम नेहास्ति धीरस्य व्यवसायिनः (क०)। ४. अर्थो हि नष्टकार्यार्थैर्नायत्नेनाधिगम्यते (रा०)। ५. इह जगति हि न निरीहदेहिनं श्रियः संश्रयन्ते (द०)। ६. उत्साहवन्तः पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु (रा०)। ७. उद्यमेन विना राजन्न सिध्यन्ति मनोरथाः (प०)। ८. उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः (प०)। ९. उद्योगः पुरुषलक्षणम्। १०. उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः (प०)। ११. क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः, पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् (कु०)। १२. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन (गी०)। १३. किं दूरं व्यवसायिनाम् (चा०)। १४. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः (यजु०)। १५. कृधी न ऊर्ध्वान् चरथाय जीवसे (ऋग्०)। १६. कोऽतिभारः समर्थानाम् (प०)। १७. गुणसंहतेः समतिरिक्तमहो निजमेव सत्त्वमुपकारि सताम् (कि०)। १८. धिग्जीवितं चोद्यमवर्जितस्य। १९. नहि दुष्करमस्तीह किंचिदध्यवसायिनाम् (क०)। २०. नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः। २१. निवसन्ति पराक्रमाश्रया न विषादेन समं समृद्धयः (कि०)। २२. प्राप्नोतीष्टमविक्लवः (क०)। २३. यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः (हि०)। २४. यदनुद्वेगतः साध्यः पुरुषार्थः सदा बुधैः (क०)। २५. यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्। २६. सत्त्वाधीना हि सिद्धयः (क०)। २७. सत्त्वानुरूपं सर्वस्य, धाता सर्वं प्रयच्छति (क०)। २८. समर्थो यो नित्यं स जयतितरां कोऽपि पुरुषः। २९. सर्वः कृच्छ्रगतोऽपि वाञ्छति जनः सत्त्वानुरूपं फलम् (भ०)। ३०. साहसे श्रीः प्रतिवसति (मृ०)। ३१. सिध्यन्ति कुत्र सुकृतानि विना श्रमेण। ३२. सुकृती चानुभूयैव दुःखमप्यश्नुते सुखम् (क०)। ३३. हतं ज्ञानं क्रियाहीनम्।

(ग) एकता

१. एकचिते द्वयोरेव किमसाध्यं भवेदिति (क०)। २. पञ्चभिर्मिलितैः किं यज्जगतीह न साध्यते (नै०)। ३. महोदयानामपि संघवृत्तितां, सहायसाध्याः प्रदिशन्ति सिद्धयः (कि०)। ४. संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् (ऋग्०)। ५. संघे शक्तिः कलौ युगे। ६. समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः (ऋग्०)। ७. समानो मन्त्रः समितिः समानी, समानं मनः सह चित्तमेषाम् (ऋग्०)।

(घ) कीर्ति

१. अनन्यगामिनी पुंसां कीर्तिरेका पतिव्रता। २. अपि स्वदेहात् किमुतेन्द्रियार्थाद्, यशोधनानां हि यशो गरीयः (र०)। ३. काकोऽपि जीवति चिराय बलिं च भुङ्क्ते (प०)। ४. कुकर्मान्तं यशो नृणाम्। ५. कुशिष्यमध्यापयतः कुतो यशः। ६. क्षितितले किं जन्म कीर्तिं विना।

७. जठरं को न बिभर्ति केवलम्। ८. पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु (र०)। ९. प्राप्यते किं यशः शुभ्रमनङ्गीकृत्य साहसम् (क०)। १०. माने म्लाने कुतः सुखम्। ११. यशः पुण्यैरवाप्यते (चा०)। १२. यशस्तु रक्ष्यं परतो यशोधनैः (र०)। १३. संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते (गी०)। १४. सर्वं रत्नमुपद्रवेण सहितं निर्दोषमेकं यशः। १५. सहते विरहक्लेशं यशस्वी नायशः पुनः (क०)।

(ङ) दान

१. आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव (र०)। २. उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम् (प०)। ३. कुपात्रदानाच्च भवेद् दरिद्रः। ४. कुप्येत् को नातियाचितः। ५. त्यागाज्जगति पूज्यन्ते, पशुपाषाणपादपाः। ६. त्यागी भवति वा न वा। ७. दानं भोगो नाशश्च तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य (प०)। ८. देशे काले च पात्रे च तद् दानं सात्त्विकं स्मृतम् (गी०)। ९. श्रद्धया देयम् (तै० उप०)। १०. श्रद्धया न विना दानम्। ११. सकलगुणसीमा वितरणम्। १२. सरित्पतिर्नहि समुपैति रिक्तताम् (शि०)। १३. हस्तस्य भूषणं दानम्।

(च) परोपकार

१. अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं शमयति परितापं छायया संश्रितानाम् (शा०)। २. अपृष्टोऽपि हितं ब्रूयाद्, यस्य नेच्छेत् पराभवम्। ३. आपन्नत्राणविकलैः किं प्राणैः पौरुषेण वा (क०)। ४. आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् (मे०)। ५. इच्छादानपरोपकार-करणं पात्रानुरूपं फलम्। ६. उपकृत्य निसर्गतः परेषामुपरोधं नहि कुर्वते महान्तः (शि०)। ७. उपदेशपराः परेष्वपि, स्वविनाशाभिमुखेषु साधवः (शि०)। ८. किमदेयमुदाराणामुपकारिषु तुष्यताम् (क०)। ९. धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् (प०)। १०. नहि प्रियं प्रवक्तु-मिच्छन्ति मृषा हितैषिणः (कि०)। ११. नास्त्यदेयं महात्मनाम्। १२. परहितनिरतानामादरो नात्मकार्ये। १३. परार्थप्रतिपन्ना हि नेक्षन्ते स्वार्थमुत्तमाः (क०)। १४. परोपकारजं पुण्यं न स्यात् क्रतुशतैरपि। १५. परोपकाराय सतां विभूतयः। १६. परोपकारार्थमिदं शरीरम्। १७. पर्याय-पीतस्य सुरैर्हिमांशोः, कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः (र०)। १८. भक्त्या कार्यधुरं वहन्ति कृतिनस्ते दुर्लभास्त्वादृशाः। १९. मिथ्यापरोपकारो हि कुतः स्यात् कस्य शर्मणे (क०)। २०. युक्तानां खलु महतां परोपकारे, कल्याणी भवति रुजत्स्वपि प्रवृत्तिः (क०)। २१. रविपीतजला तपात्यये पुनरोघेन हि युज्यते नदी (कु०)। २२. वरविभवभूषा वितरणम्। २३. साधूनां हि परोपकारकरणे नोपाध्यपेक्षं मनः। २४. स्वत एव सतां परार्थता, ग्रहणानां हि यथा यथार्थता (शि०)। २५. स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् (शि०)। २६. स्वामापदं प्रोज्झ्य विपत्तिमग्नं, शोचन्ति सन्तो ह्युपकारिपक्षम् (कि०)।

(छ) लोभ

१. अर्थार्थी जीवलोकोऽयं श्मशानमपि सेवते (प०)। २. अर्थातुराणां न गुरुर्न बन्धुः। ३. कष्टं हि बान्धवस्नेहं राज्यलोभोऽतिवर्तते (क०)। ४. कृतघ्ना धनलोभान्धा नोपकारेक्षणक्षमाः (क०)। ५. केषां हि नापदां हेतुरतिलोभान्धबुद्धिता (क०)। ६. कोऽर्थी गतो गौरवम् (प०)। ७. तृष्णैका तरुणायते (प०)। ८. प्राणेभ्योऽप्यर्थमात्रा हि कृपणस्य गरीयसी (क०)। ९. लुब्धमर्थेन गृह्णीयात् (प०)। १०. लुब्धानां याचकः शत्रुः। ११. लोभः पापस्य कारणम्। १२. लोभमूलानि पापानि।

(ज) सन्तोष

१. अन्तो नास्ति पिपासायाः सन्तोषः परमं सुखम्। २. अपां हि तृप्ताय न वारिधारा, स्वादुः सुगन्धिः स्वदते तुषारा (नै०)। ३. न तोषात् परमं सुखम्। ४. न तोषो महतां मृषा (क०)। ५. मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः। ६. सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानम्। ७. सन्तोषतुल्यं धनमस्ति नान्यत्।

(झ) सौन्दर्य

१. किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् (शा०)। २. केवलोऽपि सुभगो नवाम्बुदः, किं पुनस्त्रिदशचापलाञ्छितः (र०)। ३. क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति, तदेव रूपं रमणीयतायाः (शि०)। ४. गुणान् भूषयते रूपम्। ५. न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम् (कि०)। ६. न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं, सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते (कु०)। ७. प्रागेव मुक्ता नयनाभिरामाः, प्राप्येन्द्रनीलं किमुतोन्मयूखम् (र०)। ८. प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता (कु०)। ९. भवन्ति साम्येऽपि निविष्टचेतसां, वपुर्विशेषेष्वति गौरवाः क्रियाः (कु०)। १०. यतो रूपं ततः शीलम्। ११. यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति। १२. यदेव रोचते यस्मै भवेत्तत्तस्य सुन्दरम्। १३. रम्याणां विकृतिरपि श्रियं तनोति (कि०)। १४. सेयमाकृतिर्न व्यभिचरति शीलम् (द०)। १५. हरति मनो मधुरा हि यौवनश्रीः (कि०)।

(१३) मनोभाव

(क) करुण-रस

१. अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् (उ०)। २. अभितप्तमयोऽपि मार्दवं, भजते कैव कथा शरीरिषु (र०)। ३. इष्टमूलानि शोकानि। ४. दुःखिते मनसि सर्वमसह्यम् (कि०)। ५. प्राय सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा (मे०)। ६. प्रियबन्धुविनाशोत्थः शोकाग्निः कं न तापयेत् (क०)। ७. प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति (उ०)। ८. सन्धत्ते भृशमरतिं हि सद्वियोगः (कि०)।

(ख) क्रोध

१. क्रोधः संसारबन्धनम्। २. क्रोधो मूलमनर्थानाम् (हि०)। ३. जितक्रोधेन सर्वं हि जगदेतद् विजीयते (क०)। ४. जितक्रोधो न दुःखस्यास्पदीभवेत् (क०)। ५. धर्मक्षयकरः क्रोधः। ६. नास्ति क्रोधसमो वह्निः।

(ग) चिन्ता

१. चिता दहति निर्जीवं, चिन्ता चैव सजीवकम्। २. चिन्ता जरा मनुष्याणाम्। ३. चिन्तासमं नास्ति शरीरशोषणम्।

(घ) प्रेम (प्रेम-स्वभाव)

१. अनुरागान्धमनसां विचारः सहसा कुतः (क०)। २. अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः (र०)। ३. अपायो मस्तकस्थो हि, विषयग्रस्तचेतसाम् (क०)। ४. अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि, बलात् प्रह्लादते मनः (कि०)। ५. आशु बध्नाति हि प्रेम, प्राग्जन्मान्तरसंस्तवः (क०)। ६. आहुः सप्तपदी मैत्री। ७. गुणः खल्वनुरागस्य कारणं न बलात्कारः (मृ०)। ८. चित्तं जानाति जन्तूनां प्रेम जन्मान्तरार्जितम् (क०)। ९. जनानुरागप्रभवा हि सम्पदः। १०. तारामैत्रकं चक्षूरागः (उ०)। ११. दयितं जनः खलु गुणीति मन्यते (शि०)। १२. दयितास्वनवस्थितं नृणां, न खलु प्रेम चलं सुहृज्जने (कु०)। १३. प्रेम पश्यति भयान्यपदेऽपि (कि०)। १४. भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि (शा०)। १५. लोके हि लोहेभ्यः कठिनतराः खलु स्नेहमया बन्धनपाशाः (ह०)। १६. वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि (कि०)। १७. व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतुः (उ०)। १८. सखि साहजिकं प्रेम दूरादपि विजायते। १९. सतां.........संगतं, मनीषिभिः साप्तपदीनमुच्यते (कु०)। २०. सर्वं स्नेहात् प्रवर्तते (महा०)। २१. सर्वः कान्तमात्मीयं पश्यति (शा०)। २२. सर्वः प्रियः खलु भवत्यनुरूपचेष्टः (शि०)। २३. स्नेहमूलानि दुःखानि (महा०)।

(ङ) रुचि

१. अनपेक्ष्य गुणागुणौ जनः, स्वरुचिं निश्चयतोऽनुधावति (शि०)। २. तस्य तदेव हि मधुरं, यस्य मनो यत्र संलग्नम्।

(च) शृंगार

१. इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि (शा०)। २. प्रभवति मण्डयितुं वधूरनङ्गः (कि०)। ३. वाम एव सुरतेष्वपि कामः (कि०)। ४. सन्तापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति। ५. सन्धत्ते भृशमरतिं हि सद्वियोगः (कि०)। ६. साधनेषु हि रतेरुपधत्ते रम्यतां प्रियसमागम एव (कि०)। ७. सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम् (मे०)।

(छ) स्वाभिमान

१. जन्मिनो मानहीनस्य, तृणस्य च समा गतिः (कि०)। २. न स्पृशति पल्वलाम्भः पंजरशेषोऽपि कुंजरः क्वापि। ३. परभुक्ते हि कमले किमलेर्जायते रतिः (क०)। ४. पुरुषस्तावदेवासौ यावन्मानान्न हीयते (कि०)।

(१४) व्यवहार

(क) अतिथि-सत्कार

१. अतिथिदेवो भव (तैत्ति० उ०)। २. अभ्यागतो यत्र न तत्र लक्ष्मीः। ३. यथाशक्त्यतिथेः पूजा धर्मो हि गृहमेधिनाम् (क०)।

(ख) अति सर्वत्र वर्जयेत्

१. अतिदानाद् बलिर्बद्धः (भा०)। २. अतिपरिचयादवज्ञा, सन्ततगमनादनादरो भवति। ३. अतिभुक्तिरतीवोक्तिः सद्यः प्राणापहारिणी। ४. अतिलोभो न कर्तव्यः, चक्रं भ्रमति मस्तके (प०)। ५. सर्वमतिमात्रं दोषाय (उ०)।

(ग) अस्तेय (चोर-स्वभाव)

१. कस्यचित् किमपि नो हरणीयम्। २. चोराणामनृतं बलम्। ३. चौरे गते वा किमु सावधानम्। ४. तस्करस्य कुतो धर्मः। ५. तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम् (यजु०)।

(घ) इष्टलाभ

१. कः शरीरनिर्वापयित्रीं शारदीं ज्योत्स्नां पटान्तेन वारयति (शा०)। २. कायः कस्य न वल्लभः। ३. चकास्ति योग्येन हि योग्यसंगमः (नै०)। ४. ददाति तीव्रसत्त्वानामिष्टमीश्वर एव हि (क०)। ५. धीराश्च सोढविरहाः प्राप्नुवन्तीष्टसंगमम् (क०)।

(ङ) कलह-निन्दा

१. अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टम्। २. अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता (कि०)। ३. ईर्ष्या हि विवेकपरिपन्थिनी (क०)। ४. कलहान्तानि हर्म्याणि (प०)। ५. वाङ्मात्रोत्पादितासह्यवैरात् को नानुतप्यते (क०)।

(च) कृषि

१. अल्पबीजं हतं क्षेत्रम्। २. नाना फलैः फलति कल्पलतेव भूमिः (भ०)। ३. नास्ति धान्यसमं प्रियम्। ४. यथा बीजं तथाङ्कुरः। ५. यथा वृक्षस्तथा फलम्।

(छ) पराश्रय

१. कष्टः खलु पराश्रयः। २. कष्टादपि कष्टतरं परगृहवासः परान्नं च। ३. नैवाश्रितेषु महतां गुणदोषशंका।

(ज) याञ्चा-निन्दा

१. अभ्यर्थनाभङ्गभयेन साधुर्माध्यस्थ्यमिष्टेऽप्यवलम्बतेऽर्थे (कु०)। २. अर्थिनि जने त्यागं विना श्रीश्च का। ३. यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः (भ०)। ४. याचनान्तं हि गौरवम्। ५. याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा (मे०)। ६. वरं हि मानिनो मृत्युर्न दैन्यं स्वजनाग्रतः (क०)।

(झ) विघ्न

१. छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति (प०)। २. रन्ध्रोपनिपातिनोऽनर्थाः (शा०)। ३. विघ्नवत्यः प्रार्थितार्थसिद्धयः (शा०)। ४. श्रेयांसि लब्धुमसुखानि विनाऽन्तरायैः (कि०)। ५. सत्यः प्रवादो यत्छिद्रेष्वनर्था यान्ति भूरिताम् (क०)। ६. सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः।

(ञ) स्वार्थ

१. आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् (प०)। २. कृतार्थः स्वामिनं द्वेष्टि (प०)। ३. कृतार्थाश्च प्रयोजकम् (महा०)। ४. परसेवैकसक्तानां को हि स्नेहो निजे जने (क०)। ५. सर्वः कार्यवशाज्जनोऽभिरमते तत्कस्य को वल्लभः (भ०)। ६. सर्वः स्वार्थं समीहते (शि०)। ७. सर्वथा स्वहितमाचरणीयं किं करिष्यति जनो बहुजल्पः।

(ट) नीति

१. अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता (कि०)। २. आदौ साम प्रयोक्तव्यम् (प०)। ३. आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः (नै०)। ४. आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत्। ५. इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः। ६. इदं च नास्ति न परं च लभ्यते। ७. इष्टं धर्मेण योजयेत् (प०)। ८. उच्छ्रायं नयति यदृच्छयाऽपि योगः (क०)। ९. उपायं चिन्तयेत् प्राज्ञः (प०)। १०. उपायमास्थितस्यापि नश्यन्त्यर्थाः प्रमाद्यतः (शि०)। ११. उपायेन हि यच्छक्यं न तच्छक्यं पराक्रमैः (प०)। १२. ऋणकर्ता पिता शत्रुः (प०)। १३. एको वासः पत्तने वा वने वा (भ०)। १४. क उष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चति (शा०)। १५. कण्टकेनैव कण्टकम् (प०)। १६. के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः (मे०)। १७. को न याति वशं लोके मुखे पिण्डेन पूरितः। १८. गतं न शोचामि कृतं न मन्ये। १९. ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्। २०. चलति जयात्र जिगीषतां हि चेतः (कि०)। २१. चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन पण्डितः (शा० प०)। २२. त्यजेदेकं कुलस्यार्थे (प०)। २३. न काचस्य कृते जातु युक्ता मुक्तामणेः क्षतिः (क०)। २४. न कूपखननं युक्तं प्रदीप्ते वह्निना गृहे (हि०)। २५. न पादपोन्मूलनशक्ति रंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य (र०)। २६. न भयं चास्ति जाग्रतः। २७. नयहीनादपरज्यते जनः (कि०)। २८. नहि तापयितुं शक्यं सागराम्भस्तृणोल्कया। २९. नार्कातपैर्जलजमेति हिमैस्तु दाहम् (नै०)। ३०. नासमीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत् (शा० प०)। ३१. निपातनीया हि सतामसाधवः (शि०)। ३२. नीचैरनीचैरतिनीचनीचैः सर्वैरुपायैः फलमेव साध्यम्। ३३. नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्यकर्ता (प०)। ३४. पयःपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्धनम् (पं०)। ३५. पयो गते किं खलु सेतुबन्धः। ३६. परवृद्धिषु बद्धमत्सराणां किमिव ह्यस्ति दुरात्मनामलङ्घ्यम् (कि०)। ३७. परसदननिविष्टः को लघुत्वं न याति (भ०)। ३८. पाणौ पयसा दग्धे तक्रं फूत्कृत्य पामरः पिबति। ३९. प्रकर्षतन्त्रा

हि रणे जयश्रीः (कि०)। ४०. प्रकृत्या ह्यमणिः श्रेयान् नालंकारश्च्युतोपलः (कि०)। ४१. प्रच्छन्नमप्यूहयते हि चेष्टा (कि०)। ४२. प्रतीयन्ते न नीतिज्ञाः कृतावज्ञस्य वैरिणः (क०)। ४३. प्रभुश्च निर्विचारश्च नीतिज्ञैर्न प्रशस्यते (क०)। ४४. प्रायोऽशुभस्य कार्यस्य कालहारः प्रतिक्रिया (क०)। ४५. प्रार्थनाऽधिकबले विपत्फला (कि०)। ४६. बधिरान्मन्दकर्णः श्रेयान्। ४७. बन्धुरप्यहितः परः। ४८. बहुविघ्नास्तु सदा कल्याणसिद्धयः (क०)। ४९. भवन्ति क्लेशबहुलाः सर्वस्यापीह सिद्धयः (क०)।५०. भवन्ति वाचोऽवसरे प्रयुक्ता, ध्रुवं प्रविस्पष्टफलोदयाय (कु०)। ५१. भेदस्तत्र प्रयोक्तव्यो यतः स वशकारकः (प०)।५२. महानपि प्रसङ्गेन नीचं सेवितुमिच्छति। ५३. महोदयानामपि संघवृत्तितां, सहायसाध्याः प्रदिशन्ति सिद्धयः (कि०)।५४. मायाचारो मायया वर्तितव्यः, साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः (महा०)। ५५. मुख्यमङ्गं हि मन्त्रस्य विनिपात-प्रतिक्रिया (क०)। ५६. मुह्यत्येव हि कृच्छ्रेषु संभ्रमज्वलितं मनः (कि०)। ५७. मौनं सर्वार्थ-साधकम्। ५८. मौनं स्वीकृतिलक्षणम्। ५९. मौनिनः कलहो नास्ति। ६०. यथा देशस्तथा भाषा। ६१. यथा राजा तथा प्रजा। ६२. यदि वाऽत्यन्तमृदुता न कस्य परिभूतये (क०)। ६३. यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयं नाचरणीयम्। ६४. यान्ति न्यायप्रवृत्तस्य, तिर्यञ्चोऽपि सहायताम् (अ०)। ६५. येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत्। ६६. येनेष्टं तेन गम्यताम्। ६७. रत्नव्ययेन पाषाणं को हि रक्षितुमर्हति (क०)। ६८. वरयेत् कुलजां प्राज्ञो विरूपामपि कन्यकाम्। ६९. विक्रीते करिणि किमंकुशे विवादः। ७०. व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं, भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः (क०)। ७१. शुष्केन्धने वह्निरुपैति वृद्धिम्। ७२. श्रेयांसि लब्धुमसुखानि विनाऽन्तरायैः (कि०)। ७३. सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं, नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः (कि०)।७४. सन्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः (भ०)। ७५. सन्धिं कृत्वा तु हन्तव्यः संप्राप्तेऽवसरे पुनः (क०)। ७६. संमुखीनो हि जयो रन्ध्रप्रहारिणाम् (र०)। ७७. सर्वनाशे समुत्पन्नेऽर्धं त्यजति पण्डितः (प०)।

(१५) पुरुष-स्त्री-स्वभावादि

(क) कन्या (पुत्री)

१. अर्थो हि कन्या परकीय एव (शा०)। २. अशोच्या हि पितुः कन्या, सद्भर्तृप्रतिपादिता (कु०)। ३. कन्या नाम महद् दुःखं, धिगहो महतामपि (क०)। ४. कन्यापितृत्वं खलु नाम कष्टम्। ५. शोककन्दः क्व कन्या हि, क्वानन्दः कायवान् सुतः (क०)। ६. स्नुषात्वं पापानां फलमधनगेहेषु सुदृशाम्।

(ख) पुत्र

१. अपुत्राणां किल न सन्ति लोकाः शुभाः (क०)। २. कः सूनुर्विनयं विना। ३. कुपुत्रेण कुलं नष्टम्। ४. कोऽर्थः पुत्रेण जातेन, यो न विद्वान् न धार्मिकः (हि०)। ५. दुर्लभं क्षेमकृत् सुतः। ६. धिक् पुत्रमविनीतं च। ७. न चापत्यसमः स्नेहः। ८. न पुत्रात्परमो लाभः। ९. पुत्रः शत्रुरपण्डितः (चा०)। १०. पुत्रहीनं गृहं शून्यम्। ११. पुत्रादपि भयं यत्र तत्र सौख्यं हि कीदृशम्। १२. पुत्रोदये माद्यति का न हर्षात्। १३. मातापितृभ्यां शप्तः सन्न जातु सुखमश्नुते (क०)। १४. शोककन्दः क्व कन्या हि, क्वानन्दः कायवान् सुतः (क०)। १५. सत्पुत्र एव कुलसद्मनि कोऽपि दीपः। १६. सन्ततिः पुण्यमाख्याति। १७. सन्ततिः शुद्धवंश्या हि, परत्रेह च शर्मणे (र०)।

(ग) स्त्रीचरित-निन्दा

१. अधरेष्वमृतं हि योषितां, हृदि हालाहलमेव केवलम्। २. अनुरागपरायत्ताः कुर्वते किं न योषितः (क०)। ३. अन्तर्विषमया ह्येता बहिश्चैव मनोरमाः (प०)। ४. अविनीता रिपुर्भार्या। ५. कठिनाः खलु स्त्रियः (कु०)। ६. कष्टा हि कुटिलश्वश्रूपरतन्त्रवधूस्थितिः (क०)। ७. किं किं करोति न निरर्गलतां गता स्त्री। ८. किं न कुर्वन्ति योषितः (भ०)। ९. कुगेहिनीं प्राप्य गृहे कुतः सुखम्। १०. न स्त्री चलितचारित्रा निम्नोन्नतमवेक्षते (क०)। ११. नार्यः समाश्रितजनं हि कलङ्कयन्ति। १२. प्रत्ययः स्त्रीषु मुष्णाति विमर्शं विदुषामपि (क०)। १३. मद्ये मारैकसुहृदि प्रसक्ता स्त्री सती कुतः (क०)। १४. वञ्च्यन्ते हेलयैवेह कुस्त्रीभिः सरलाशयाः (क०)। १५. वेश्यानां च कुतः स्नेहः। १६. संनिकृष्टे निकृष्टेऽपि कष्टं रज्यन्ति कुस्त्रियः (क०)।

(घ) स्त्रीधर्म आदि

१. इहामुत्र च नारीणां परमा हि गतिः पतिः (क०)। २. उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी (शा०)। ३. कष्टं हन्त मृगीदृशां पतिगृहं प्रायेण कारागृहम्। ४. प्रमदाः पतिमार्गगा इति प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि (कु०)। ५. प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता (कु०)। ६. भर्तृनाथा हि नार्यः (प्रतिमा०)। ७. भर्तृमार्गानुसरणं स्त्रीणां हि परमं व्रतम् (क०)।

(ङ) स्त्रीशील-प्रशंसा

१. अचिन्त्यं शीलगुप्तानां चरितं कुलयोषिताम् (क०)। २. असाध्यं सत्यसाध्वीनां किमस्ति हि जगत्त्रये (क०)। ३. असारे खलु संसारे, सारं सारङ्गलोचना। ४. आपद्यपि सतीवृत्तं, किं मुञ्चन्ति कुलस्त्रियः (क०)। ५. का नाम कुलजा हि स्त्री, भर्तृद्रोहं करिष्यति (क०)। ६. किं नाम न सहन्ते हि, भर्तृभक्ताः कुलाङ्गनाः (क०)। ७. कुलवधूः का स्वामिभक्तिं विना। ८. क्रियाणां खलु धर्म्याणां सत्पत्न्यो मूलकारणम् (कु०)। ९. तस्मात् सर्वं परित्यज्य पतिमेकं भजेत् सती।

१०. धिग् गृहं गृहिणीशून्यम्। ११. न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते। १२. न पतिव्यतिरेकेण सुस्त्रीणामपरा गतिः (क०)। १३. न भार्यायाः परं सुखम्। १४. नारीणां भूषणं पतिः। १५. नारीणां भूषणं शीलम्। १६. नास्ति भर्तुः समो बन्धुः (वि०)। १७. नेर्ष्यां भर्तृहितैषिण्यो गणयन्ति हि सुस्त्रियः (क०)। १८. पुत्रप्रयोजना दाराः। १९. पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति (उ०)। २०. पेशलं हि सतीमनः (क०)। २१. भर्तारं हि विना नान्यः सतीनामस्ति बान्धवः (क०)। २२. भवन्त्यव्यभिचारिण्यो भर्तुरिष्टे पतिव्रताः (कु०)। २३. भार्या मूलं गृहस्थस्य। २४. भार्यासमं नास्ति शरीरतोषणम्। २५. भार्याहीनं गृहस्थस्य शून्यमेव गृहं मतम्। २६. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः (म०)। २७. या सौन्दर्यगुणान्विता पतिरता सा कामिनी कामिनी। २८. शुचिर्नारी पतिव्रता। २९. सतीधर्मो हि सुस्त्रीणां चिन्त्यो न सुहृदादयः (क०)। ३०. स्निग्धमुग्धा हि सत्स्त्रियः (क०)। ३१. स्फुटमभिभूषयति स्त्रियस्त्रपैव (शि०)। ३२. स्वसुखं नास्ति साध्वीनां, तासां भर्तृसुखं सुखम् (क०)।

(च) स्त्री-स्वभावादि-वर्णन

१. अहो विनेन्द्रजालेन स्त्रीणां चेष्टा न विद्यते (क०)। २. आदावसत्यवचनं पश्चाज्जाता हि कुस्त्रियः (क०)। ३. उदारसत्त्वं वृणुते, स्वयं हि श्रीरिवाङ्गना (क०)। ४. कान्ता रूपवती शत्रुः। ५. को हि वित्तं रहस्यं वा, स्त्रीषु शक्नोति गूहितुम् (क०)। ६. क्षुभ्यन्ति प्रसभमहो विनापि हेतोर्लीलाभिः किमु सति कारणे रमण्यः (शि०)। ७. जातापत्या पतिं द्वेष्टि। ८. तदेव दुःसहं स्त्रीणामिह प्रणयखण्डनम् (क०)। ९. धिक् कलत्रमपुत्रकम्। १०. नवाङ्गनानां नव एव पन्थाः। ११. न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति (महा०)। १२. न स्नेहो न च दाक्षिण्यं, स्त्रीष्वहो चापलादृते (क०)। १३. नहि नार्यो विनेर्ष्यया। १४. नहि वन्ध्याऽश्नुते दुःखं, यथा हि मृतपुत्रिणी। १५. निसर्गसिद्धो नारीणां, सपत्नीषु हि मत्सरः (क०)। १६. प्रत्युत्पन्नमति स्त्रैणम् (शा०)। १७. प्रायः श्वश्रूस्नुषयोर्न दृश्यते सौहृदं लोके। १८. प्रायः स्त्रियो भवन्तीह निसर्गविषमाः शठाः (क०)। १९. प्रायेण भूमिपतयः प्रमदा लताश्च, यः पार्श्वतो भवति तं परिवेष्टयन्ति (प०)। २०. बत स्त्रीणां चञ्चलाश्चित्तवृत्तयः (क०)। २१. युवतिजनः खलु नाप्यतेऽनुरूपः (कि०)। २२. स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यम्, देवो न जानाति कुतो मनुष्यः। २३. स्त्रियो नष्टा ह्यभर्तृकाः। २४. स्त्रीचित्तमहो विचित्रमिति (क०)। २५. स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेषः (क०)। २६. स्त्रीणां भावानुरक्तं हि, विरहासहनं मनः (क०)। २७. स्त्रीणामलीकमुग्धं हि, वचः को मन्यते मृषा (क०)। २८. स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु (मे०)। २९. स्त्री पुंवच्च प्रभवति तदा, तद्धि गेहं विनष्टम्। ३०. स्त्रीबुद्धिः प्रलयावहा (का० नी०)। ३१. स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः

(भ०)। ३२. स्त्री विनश्यति रूपेण (शा० प०)। ३३. स्त्रीषु वाक्संयमः कुतः (क०)। ३४. स्वाधीना दयिता सुतावधि।

(१६) कवि, काव्य, कविता

१. कलासीमा काव्यम्। २. कवयः किं न पश्यन्ति। ३. काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् (हि०)। ४. केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय। ५. पिपासितैः काव्यरसो न पीयते। ६. पिबामः शास्त्रौघानुत विविधकाव्यामृतरसान्। ७. सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम्। ८. स्फुटता न पदैरपाकृता, न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्। रचिता पृथगर्थता गिरां, न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित् (कि०)।

(१७) विविध

(क) कलि

१. कलौ वेदान्तिनो भान्ति, फाल्गुने बालका इव। २. पश्यन्तु लोकाः कलिकौतुकानि। ३. पश्यन्तु लोकाः कलिदोषकाणि। ४. साधुः सीदति दुर्जनः प्रभवति प्राप्ते कलौ दुर्युगे।

(ख) शकुन

१. अन्तरापाति हि श्रेयः, कार्यसम्पत्तिसूचकम् (क०)। २. अव्याक्षेपो भविष्यन्त्याः कार्यसिद्धेर्हि लक्षणम् (र०)। ३. आवेदयन्ति हि प्रत्यासन्नमानन्दमग्रपातीनि शुभानि निमित्तानि (का०)। ४. आमुखापाति कल्याणं, कार्यसिद्धिं हि शंसति (क०)। ५. भवन्त्युदयकाले हि सत्कल्याणपरम्पराः (क०)।

(ग) विविध सुभाषित

१. अधिकस्याधिकं फलम्। २. अनाश्रया न शोभन्ते पण्डिता वनिता लताः। ३. अपवाद एव सुलभो द्रष्टुर्गुणो दूरतः। ४. अपुत्रस्य गृहं शून्यम्। ५. अप्रकटीकृतशक्तिः शक्तोऽपि जनस्तिरस्क्रियां लभते। ६. अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः (प०)। ७. अभोगस्य हतं धनम् (प०)। ८. अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः। ९. अल्पश्च कालो बहवश्च विघ्नाः। १०. अशनेरमृतस्य चोभयोर्वशिनश्चाम्बुधराश्च योनयः (कु०)। ११. अहो दुर्निवारता व्यसनोपनिपातानाम् (क०)। १२. आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया (र०)। १३. इन्द्रोऽपि लघुतां याति, स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः (प०)। १४. कस्यचित् किमपि नो हरणीयं, मर्मवाक्यमपि नोच्चरणीयम्। १५. क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते (कु०)। १६. क्षुधातुराणां न रुचिर्न

पक्वम्। १७. घनाम्बुना राजपथे हि पिच्छिले, क्वचिद् बुधैरप्यपथेन गम्यते (नै०)। १८. चक्षुःपूतं न्यसेत् पादम् (चा०)। १९. जातौ जातौ नवाचाराः। २०. जामाता दशमो ग्रहः। २१. जीवो जीवस्य जीवनम्। २२. ज्येष्ठभ्राता पितुः समः। २३. दया मांसाशिनः कुतः (प०)। २४. दिशत्यपायं हि सतामतिक्रमः (कि०)। २५. दुर्लभः स गुरुर्लोके शिष्यचिन्तापहारकः। २६. दुर्लभः स्वजनप्रियः। २७. देहस्नेहो हि दुस्त्यजः (क०)। २८. नक्रः स्वस्थानमासाद्य गजेन्द्रमपि कर्षति (प०)। २९. न नश्यति तमो नाम, कृतया दीपवार्तया। ३०. ननु तैलनिषेकबिन्दुना, सह दीपार्चिरुपैति मेदिनीम् (र०)। ३१. न पादपोन्मूलनशक्ति रंहः, शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य (र०)। ३२. न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् (शा०)। ३३. न भूतो न भविष्यति। ३४. न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् (कु०)। ३५. नराणां नापितो धूर्तः (प०)। ३६. न सुवर्णे ध्वनिस्तादृग् यादृक् कांस्ये प्रजायते। ३७. नहि प्रफुल्लं सहकारमेत्य, वृक्षान्तरं कांक्षति षट्पदालिः (र०)। ३८. नहि सिंहो गजास्कन्दी भयात् गिरिगुहाश्रयः। ३९. नाकाले म्रियते जन्तुर्विद्धः शरशतैरपि (घ०)। ४०. नाल्पीयान् बहुसुकृतं हिनस्ति दोषः (कि०)। ४१. निःसारस्य पदार्थस्य प्रायेणाडम्बरो महान्। ४२. निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते (हि०)। ४३. निर्वाणदीपे किमु तैलदानम्। ४४. नैकत्र सर्वो गुणसंनिपातः। ४५. पङ्को हि नभसि क्षिप्तः क्षेप्तुः पतति मूर्धनि (क०)। ४६. परोपदेशवेलायां शिष्टाः सर्वे भवन्ति वै। ४७. परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्। ४८. प्रकृत्या ह्यमणिः श्रेयान् नालंकारश्च्युतोपलः (कि०)। ४९. प्रत्यासन्नविपत्तिमूढमनसां प्रायो मतिः क्षीयते। ५०. फणाटोपो भयंकरः (प०)। ५१. बालानां रोदनं बलम्। ५२. भवत्यपाये परिमोहिनी मतिः (कि०)। ५३. भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः (कि०)। ५४. मनोरथानामगतिर्न विद्यते (कु०)। ५५. मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना। ५६. यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्। ५७. यदध्यासितमर्हद्भिस्तद्धि तीर्थं प्रचक्षते (कु०)। ५८. यदन्नं भक्षयेन्नित्यं जायते तादृशी मतिः। ५९. यद्वा तद् वा भविष्यति। ६०. याचको याचकं दृष्ट्वा श्वानवत् गुर्गुरायते। ६१. यादृशास्तन्तवः कामं तादृशो जायते पटः (कु०)। ६२. योगस्तडित्तोयदयोरिवास्तु। ६३. यो यद् वपति बीजं हि, लभते तादृशं फलम् (क०)। ६४. रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन। ६५. रत्नाकरे युज्यत एव रत्नम् (कु०)। ६६. रिक्तपाणिर्न प्रेक्षेत राजानं देवतां गुरुम्। ६७. लाभः परं तव मुखे खलु भस्मपातः। ६८. वासः प्रधानं खलु योग्यतायाः। ६९. वासोविहीनं विजहाति लक्ष्मीः। ७०. विना मलयमन्यत्र चन्दनं न प्ररोहति। ७१. विनाशकाले विपरीतबुद्धिः। ७२. विवक्षितं ह्यनुक्तमनुतापं जनयति (शा०)। ७३. विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम् (कु०)। ७४. शस्त्राघाता न तथा सूचीक्षतवेदना यादृक्। ७५. शिष्यपापं गुरुस्तथा। ७६. शुभस्य शीघ्रम्, अशुभस्य कालहरणम्। ७७. श्यालको गृहनाशाय (चा०)। ७८. संपत्सम्पदं विपद् विपदमनुबध्नातीति (शा०)। ७९. सम्पूर्णकुम्भो न करोति शब्दम्। ८०. सागरं वर्जयित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति (शा०)। ८१. सुखमुपदिश्यते परस्य (का०)। ८२. स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः। ८३. स्वदेशजातस्य नरस्य नूनं गुणाधिकस्यापि भवेदवज्ञा।

(१३) पारिभाषिक-शब्दकोश

सूचना (१) संस्कृत-व्याकरण को ठीक-ठीक समझने के लिए आवश्यक एवं अत्युपयोगी सभी पारिभाषिक शब्दों का यहाँ पर संग्रह किया गया है। विद्यार्थी इन शब्दों को बहुत सावधानी से स्मरण कर लें। (२) पारिभाषिक शब्दों के साथ उनके मूल-नियम पाणिनि के सूत्र आदि के रूप में दिये गये हैं। (३) इस शब्दकोश में सभी शब्द अकारादि-क्रम से दिये गये हैं।

(१) अकर्मक—अकर्मक वे धातुएँ होती हैं, जिनके साथ कर्म नहीं आता। अकर्मक की साधारणतया पहचान यह है कि जिनमें किम् (किसको, क्या) का प्रश्न नहीं उठता। इन अर्थोंवाली धातुएँ अकर्मक होती हैं। 'लज्जासत्तास्थितिजागरणं, वृद्धिक्षयभयजीवतिमरणम्। शयनक्रीडारुचिदीप्त्यर्थं, धातुगणं तमकर्मकमाहुः'॥ फलव्यधिकरणव्यापारवाचकत्वं सकर्मकत्वम्। फलंसमानाधिकरणव्यापारवाचकत्वमकर्मकत्वम् ॥ इन कारणों से सकर्मकधातु अकर्मक हो जाती है—धातु का अर्थान्तर में प्रयोग, धात्वर्थ में कर्म का संग्रह, प्रसिद्धि तथा कर्म की अविवक्षा।

(२) अक्षर—(अक्षरं न क्षरं विद्याद्, अश्नोतेर्वा सरोऽक्षरम्) अविनाशी और व्यापक होने के कारण स्वर और व्यंजन वर्णों को अक्षर कहते हैं।

(३) अघोष—खय् प्रत्याहार अर्थात् वर्गों के प्रथम और द्वितीय अक्षर, जिह्वामूलीय ≍ क, उपध्मानीय ≍ प, विसर्ग और श ष स ये अघोष वर्ण हैं।

(४) अच्—स्वरों को अच् कहते हैं। वे हैं—अ से लेकर औ तक स्वर।

(५) अजन्त—(अच्+अन्त) स्वर अन्तवाले शब्द या धातु आदि।

(६) अध्याहार—(सूत्रे अश्रूयमाणत्वे सति अर्थप्रत्यायकत्वम्) सूत्र में जो शब्द या अर्थ नहीं है और वह शब्द या अर्थ अर्थवशात् लिया जाता है तो उस अंश को अध्याहार कहते हैं।

(७) अनिट्—(न+इट्) जिन धातुओं में साधारणतया बीच में 'इ' नहीं लगता। जैसे—कृ, गम् आदि। इनका विशेष विवरण पृष्ठ २६८ पर दिया है। कृ—कर्ता, कर्तुम् आदि।

(८) अनुदात्त—(नीचैरनुदात्तः, १। २। ३०) जिस स्वर को तालु आदि के नीचे भाग से बोला जाता है, या जिस पर बल नहीं दिया जाता, उसे अनुदात्त कहते हैं। वेद में अक्षर के नीचे लकीर खींचकर अनुदात्त का संकेत किया जाता है। स्वरित के बाद अनुदात्त का चिह्न नहीं लगता। बाद में उदात्त होगा तो अनुदात्त अनुदात्त रहेगा।

(९) अनुनासिक—(मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः, १। १। ८) जिन वर्णों का उच्चारण मुख और नासिका दोनों के मेल से होता है, उन्हें अनुनासिक कहते हैं। वर्गों के पंचमाक्षर ङ ञ ण म अनुनासिक ही होते हैं। अच् और य व ल अनुनासिक और अनुनासिक-रहित दोनों प्रकार के होते हैं।

(१०) **अनुबन्ध**—प्रत्ययों आदि के प्रारम्भ और अन्त में कुछ स्वर या व्यंजन इसलिए जुड़े होते हैं कि उस प्रत्यय के होने पर गुण, वृद्धि, संप्रसारण, कोई विशेष स्वर उदात्तादि, या अन्य कोई विशेष कार्य हो। ऐसे सहेतुक वर्णों को अनुबन्ध कहते हैं। ये 'इत्' होते हैं अर्थात् इनका लोप हो जाता है। जैसे—क्तवतु में क् और उ। शतृ में श् और ऋ। अतः क्तवतु को कित् कहेंगे, शतृ को शित् या उगित्।

(११) **अनुवृत्ति**—पाणिनि के सूत्रों में पहले के सूत्रों से कुछ या पूरा अंश अगले सूत्रों में आता है, इसे अनुवृत्ति कहते हैं। तभी अगले सूत्र का अर्थ पूरा होता है। विरोधी बात होने पर अनुवृत्ति नहीं होती। कुछ अधिकार-सूत्र होते हैं, उनकी पूरे प्रकरण में अनुवृत्ति होती है। जैसे—प्राग्दीव्यतोऽण् (४।१।८३), तस्यापत्यम् (४।१।९२)।

(१२) **अन्तरङ्ग**—प्राथमिकता का कार्य। धातु और उपसर्ग का कार्य अन्तरङ्ग अर्थात् मुख्य होता है।

(१३) **अन्तस्थ**—(यरलवा अन्तस्थाः) य र ल व को अन्तस्थ कहते हैं।

(१४) **अन्वादेश**—(किंचित्कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादानमन्वादेशः।) पूर्वोक्त व्यक्ति आदि के पुनः किसी काम के लिए उल्लेख करने को अन्वादेश कहते हैं। जैसे—अनेन व्याकरणमधीतम्, एनं छन्दोऽध्यापय।

(१५) **अपवाद**—विशेष नियम। यह उत्सर्ग (सामान्य) नियम का बाधक होता है।

(१६) **अपृक्त**—(अपृक्त एकाल्प्रत्ययः, १।२।४१) एक अल् (स्वर या व्यंजन) मात्र शेष प्रत्यय को अपृक्त कहते हैं। जैसे—सु का स्, ति का त्, सि का स्।

(१७) **अभ्यास**—(पूर्वोऽभ्यासः, ६।१।४) लिट् आदि में धातु के जिस अंश को द्वित्व होता है, उसके प्रथम भाग को अभ्यास कहते हैं। जैसे—चकार में च, ददर्श में द।

(१८) **अलुक्**—सुप् अर्थात् विभक्ति या सुप् का लोप न होना। अलुक्समास में पूर्व पद की सुप् विभक्तियों का लोप नहीं होता है। जैसे—आत्मनेपदम्, परस्मैपदम्, सरसिजम्।

(१९) **अल्पप्राण**—(वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमा यरलवाश्चाल्पप्राणाः) वर्गों के प्रथम, तृतीय और पंचम अक्षर तथा य र ल व अल्पप्राण कहे जाते हैं। जैसे—कवर्ग में क ग ङ। च ज ञ, ट ड ण, त द न, प ब म, य र ल व।

(२०) **अवग्रह**—(सूत्रेण विधीयमानकार्यस्य बोधकं चिह्नम्) सूत्र से किये गए कार्य के बोधक चिह्न को अवग्रह कहते हैं। ऽ = अ। ऽ यह संकेत अ हटा है, इसका बोधक है। पदों या अवयवों के विच्छेद को भी अवग्रह कहते हैं।

(२१) **अव्यय**—(स्वरादिनिपातमव्ययम्, १।१।३७) स्वर् आदि शब्द तथा सभी निपात अव्यय होते हैं। अव्यय वे हैं, जिनके रूप में कभी परिवर्तन या अन्तर नहीं होता। जैसे—प्र परा सम् आदि उपसर्ग और उच्चैः, नीचैः आदि निपात।

(२२) अष्टाध्यायी—पाणिनि के व्याकरण-ग्रन्थ को अष्टाध्यायी कहते हैं। इसमें आठ अध्याय हैं, अतः अष्टाध्यायी नाम पड़ा। प्रत्येक अध्याय में ४ पाद हैं और प्रत्येक पाद में कुछ सूत्र। सूत्रों के आगे निर्दिष्ट संख्याओं का क्रमशः यह भाव है—(१) अध्याय की संख्या, (२) पाद की संख्या, (३) सूत्र की संख्या। यथा—१।१।१, अध्याय १, पाद १ का पहला सूत्र।

(२३) असिद्ध—(पूर्वत्रासिद्धम्, ८।२।१) किसी विशेष नियम की दृष्टि में किसी नियम या कार्य को न हुआ-सा समझना। जैसे—सवा सात अध्यायों की दृष्टि में अन्तिम तीन पाद असिद्ध हैं और तीन पाद में भी पूर्व के प्रति बाद के नियम असिद्ध हैं।

(२४) आख्यात—धातु और क्रिया को आख्यात कहते हैं। 'नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च'।

(२५) आगम—शब्द या धातु के बीच या अन्त में जो अक्षर या वर्ण और जुड़ जाते हैं, उन्हें आगम कहते हैं। जैसे—पयस् > पयांसि में न् का बीच में आगम है।

(२६) आत्मनेपद—(तङानावात्मनेपदम्, १।४।१००) तङ् (ते, एते, अन्ते आदि) शानच्, कानच्, ये आत्मनेपद होते हैं। जिन धातुओं के अन्त में ते एते अन्ते आदि लगते हैं, वे धातुएँ आत्मनेपदी कहाती हैं। जैसे—सेव् धातु । सेवते सेवेते०।

(२७) आदेश, एकादेश—किसी वर्ण या प्रत्यय आदि के स्थान पर कुछ नए प्रत्यय आदि के होने को आदेश कहते हैं। जैसे—आदाय में क्त्वा को ल्यप् आदेश। पूर्व और पर दो के स्थान पर एक वर्ण होना एकादेश है। जैसे—रमेशः में आ + ई को ए गुण।

(२८) आमन्त्रित—(सामन्त्रितम्, २।३।४८) संबोधन को आमन्त्रित कहते हैं। हे अग्ने!

(२९) आम्रेडित—(तस्य परमाम्रेडितम्, ८।१।२) द्विरुक्तिवाले स्थानों पर उत्तरार्ध को आम्रेडित कहते हैं। जैसे—कान्+कान्, = कांस्कान् के बाद वाला कान्।

(३०) आर्धधातुक—(आर्धधातुकं शेषः, ३।४।११४) तिङ् (ति तः अन्ति आदि और ते एते अन्ते आदि) और शित् (श् इत्वाले, शतृ आदि) से अतिरिक्त धातुओं से जुड़नेवाले प्रत्यय आर्धधातुक कहे जाते हैं। (लिट् च, ३।४।११५, लिङाशिषि, ३।४।११६) लिट् और आशीर्लिङ् के स्थान पर होनेवाले तिङ् भी आर्धधातुक होते हैं।

(३१) इट्—(आर्धधातुकस्येड्वलादेः, ७।२।३५) इट् का इ शेष रहता है। यह धातु और प्रत्यय के बीच में होता है। वलादि आर्धधातुक को इट् (इ) होता है। जैसे—पठिष्यति, पठितुम्। इस इट् (इ) के आधार पर ही धातुएँ सेट् या अनिट् कही जाती हैं। जिन धातुओं में साधारणतया इट् (इ) होता है, उन्हें सेट् (स + इट्) अर्थात् 'इ' वाली धातुएँ कहते हैं। जिनमें इट् (इ) नहीं होता, उन्हें अनिट् (न+इट्) कहते हैं।

(३२) इत्—(तस्य लोपः, १।३।९) जिसको इत् कहेंगे, उसका लोप हो जाएगा। अनुबन्धों को इत् कहते हैं। गुण आदि के लिए प्रत्ययों के आदि या अन्त में ये लगे होते हैं। बाद

में ये हट जाते हैं। जैसे—शतृ में श् और ऋ। शतृ में श् हटा है, अतः इसे शित् कहेंगे। जो अक्षर हटा होगा, उसके आधार पर प्रत्यय कित् (क् + इत्), पित् (प्+इत्) आदि कहे जाते हैं। इत् होनेवाले अक्षर ये हैं—(१) हलन्त्यम् (१।३।३), अ इ उ ण् आदि में अन्तिम व्यंजन इत् होता है। (२) उपदेशेऽजनुनासिक इत् (१।३।२) उच्चारण में अनुनासिक-संकेतवाला स्वर। (३) चुटू (१।३।७) प्रत्यय के आदि के चवर्ग और टवर्ग। (४) लशक्वतद्धिते (१।३।८) तद्धित प्रकरण को छोड़कर प्रत्यय के आदि के ल श और कवर्ग। (५) षः प्रत्ययस्य (१।३।६) प्रत्यय के आदि का ष्। इत्यादि।

(३३) उणादि—(उणादयो बहुलम्, ३।३।१) धातुओं से उण् आदि प्रत्यय होते हैं। इस उण् प्रत्यय के आधार पर व्याकरण में इस प्रकरण को उणादि-प्रकरण कहते हैं।

(३४) उत्सर्ग—साधारण नियमों को उत्सर्ग कहते हैं। विशेष को अपवाद।

(३५) उदात्त—(उच्चैरुदात्तः, १।२।२९) जिस स्वर को तालु आदि के उच्च भाग से बोला जाता है या जिस स्वर पर बल दिया जाता है, उसे उदात्त कहते हैं।

(३६)(क) उपपद-विभक्ति—किसी पद (सुबन्त, तिङन्त) को मानकर जो विभक्ति होती है, उसे उपपद-विभक्ति कहते हैं। जैसे—गुरवे नमः में नमः पद के कारण चतुर्थी है। **(ख) कारक-विभक्ति**—क्रिया को मानकर जो विभक्ति होती है, उसे कारक-विभक्ति कहते हैं। जैसे—पाठं पठति में पठति क्रिया के आधार पर द्वितीया विभक्ति है।

(३७) उपधा—(अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा, १।१।६५)अन्तिम अल् (स्वर या व्यंजन) से पहले आनवाले वर्ण को उपधा कहते हैं। जैसे—लिख् धातु में उपधा में इ है।

(३८) उपध्मानीय—कुप्वोः ≍ क ≍ पौ च, ८।३।३७) प फ से पहले ≍ अर्धविसर्ग के तुल्य ध्वनि को उपध्मानीय कहते हैं। जैसे—नृं ≍ पाहि (नृन् पाहि)। यह विसर्ग के स्थान पर होता है।

(३९) उपसर्ग—(उपसर्गाः क्रियायोगे, १।४।५९) धातु या क्रिया से पहले लगनेवाले प्र परा आदि को उपसर्ग कहते हैं। ये २२ हैं—प्र परा अप सम् अनु अव निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु उत् अभि प्रति परि उप।

(४०) उभयपद—परस्मैपद (ति, तः आदि) और आत्मनेपद (ते, एते आदि) इन दोनों पदों के चिह्नों का लगना। जिन धातुओं मं ये चिह्न लगते हैं, उन्हें उभयपदी कहते हैं।

(४१) ऊष्म—(शषसहा ऊष्माणः) श ष स ह को ऊष्म वर्ण कहते हैं।

(४२) ओष्ठ्य—(उपूपध्मानीयानामोष्ठौ) उ, ऊ, उ३, पवर्ग और उपध्मानीय इनका उच्चारण स्थान ओष्ठ है, अतः ये ओष्ठ्य वर्ण कहलाते हैं।

(४३) कण्ठ्य—(अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः) अ, आ, अ३, कवर्ग, ह और विसर्ग (:) इनका उच्चारण-स्थान कण्ठ है, अतः ये कण्ठ्य वर्ण कहलाते हैं।

(४४) कर्मप्रवचनीय—(कर्मप्रवचनीयाः, १।४।८३) अनु, उप, प्रति, परि आदि उपसर्ग कुछ अर्थों में कर्मप्रवचनीय होते हैं। इनके साथ द्वितीया आदि होती है।

(४५) कारक—प्रथमा, द्वितीया आदि को कारक या विभक्ति कहते हैं। षष्ठी को करक नहीं माना जाता है। शास्त्रीय दृष्टि से कारक ६ हैं। संबोधन प्रथमा के अन्तर्गत है।

(४६) कृत्—(कर्तरि कृत्, ३।४।६७) धातु से होनेवाले क्त क्तवतु शतृ शानच् आदि को कृत् प्रत्यय कहते हैं। क्त और खल् को छोड़कर शेष कृत् प्रत्यय कर्तृवाच्य में होते हैं। घञ् प्रत्यय कर्ता से भिन्न कारक तथा भाव अर्थ में होता है।

(४७) कृत्य—(तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः, ३।४।७०) धातु से होनेवाले तव्य, अनीय, य आदि को कृत्य प्रत्यय कहते हैं। ये भाव और कर्मवाच्य में होते हैं।

(४८) कृदन्त—जिन शब्दों के अन्त में कृत् प्रत्यय लगे होते हैं, उन्हें कृदन्त कहते हैं।

(४९) क्रिया—धातुवाच्य और धातुरूपों को क्रिया कहते हैं। जैसे—पचनम्, पठनम्, पठति, लिखति।

(५०) गण—धातुओं को १० भागों में बाँटा गया है, उन्हें गण कहते हैं। जैसे—भ्वादिगण, अदादिगण, जुहोत्यादिगण आदि।

(५१) गणपाठ—कतिपय शब्दों से एक ही प्रत्यय लगता है। ऐसे शब्दों को एक गण (समूह) में रखा गया है। ऐसे शब्द-संग्रह को गणपाठ कहते हैं। जैसे—नद्यादिभ्यो ढक् (४।२।९७)

(५२) गति—(गतिश्च, १।४।६०) उपसर्गों को गति कहते हैं। कुछ अन्य शब्द भी गति होते हैं।

(५३) गुण—(अदेङ्गुणः, १।१।२) अ, ए ओ को गुण कहते हैं। गुण कहने पर इ ई को ए, उ ऊ को ओ, ॠ को अर् हो जाता है।

(५४) गुरु—(संयोगे गुरु, १।४।११; दीर्घं च, १।४।१२) संयुक्त वर्ण बाद में हो तो ह्रस्व वर्ण गुरु होता है। सभी दीर्घ अक्षर गुरु होते हैं।

(५५) घ—(तरसमपौ घः, १।१।२२) तरप् और तमप् प्रत्ययों को घ कहते हैं।

(५६) घि—(शेषो घ्यसखि, १।४।७) ह्रस्व इ और उ अन्तवाले शब्द घि कहलाते हैं, स्त्रीलिंग शब्दों और सखि शब्द को छोड़कर।

(५७) घु—(दाधा घ्वदाप्, १।१।२०) दा और धा धातु को तथा दा और धा रूपवाली अन्य धातुओं (दाण्, धेट् आदि) को घु कहते हैं, दाप् को छोड़कर।

(५८) घोष—अच् (स्वर) और हश् प्रत्याहार अर्थात् वर्ग के तृतीय चतुर्थ पंचम वर्ण और ह य व र ल घोष हैं।

(५९) जिह्वामूलीय—(कुप्वोः ≍ क ≍ पौ च, ८।३।३७) क ख से पहले अर्ध-विसर्ग के तुल्य ध्वनि को जिह्वामूलीय कहते हैं। क ≍ करोति (कः करोति)। यह विसर्ग के स्थान पर होता है।

(६०) टि—(अचोन्त्यादि टि, १।१।६४) शब्द के अन्तिम ओर से जहाँ स्वर मिले, वह स्वर और आगे यदि व्यंजन हो तो वह व्यंजन-सहित स्वर टि कहलाता है। जैसे—मनस् में अस्, धनुष् में उष् टि हैं।

(६१) तपर—(तपरस्तत्कालस्य, १।१।७०) किसी स्वर के बाद त् लगा देने से उसी स्वर का ग्रहण होगा, अन्य दीर्घ आदि का नहीं। जैसे—अत् का अर्थ है ह्रस्व अ। आत् दीर्घ आ।

(६२) तद्धित—शब्दों से पुत्र आदि अर्थों में होनेवाले प्रत्ययों को तद्धित प्रत्यय कहते हैं।

(६३) तालव्य—(इचुयशानां तालु) इ ई इ३, चवर्ग, य, श का उच्चारण-स्थान तालु हैं, अतः इन्हें तालव्य वर्ण कहते हैं।

(६४) तिङ्—धातु के बाद लगनेवाले ति तः आदि और ते एते आदि को तिङ् कहते हैं।

(६५) तिङन्त—ति तः आदि से युक्त पठति आदि धातुरूपों को तिङन्त पद कहते हैं।

(६६) दन्त्य—(लृतुलसानां दन्ताः) लृ, तवर्ग, ल, स का उच्चारण-स्थान दन्त है, अतः इन्हें दन्त्य वर्ण कहते हैं।

(६७) दीर्घ—आ ई ऊ ॠ को दीर्घ स्वर कहते हैं। दीर्घ कहने पर ह्रस्व के स्थान पर ये होते हैं।

(६८) द्वित्व—किसी वर्ण या वर्णसमूह को दो बार पढ़ने को द्वित्व कहते हैं। पपाठ में पठ् को द्वित्व है।

(६९) द्विरुक्ति—किसी शब्दरूप या धातुरूप को दो बार पढ़ना। स्मारं स्मारं, स्मृत्वा स्मृत्वा।

(७०) धातु—भू पठ् कृ आदि क्रियावाचक शब्दों को धातु कहते हैं।

(७१) धातुपाठ—भू आदि धातुओं को १० गणों के अनुसार संग्रह किया गया है। इस धातु-संग्रह को धातुपाठ कहा जाता है। इसमें धातुओं के साथ उनके अर्थ आदि भी दिए गए हैं।

(७२) नदी—(१) (यू स्त्र्याख्यौ नदी, १।४।३) दीर्घ ईकारान्त ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्द नदी कहलाते हैं। (२) (ङिति ह्रस्वश्च, १।४।६) इकारान्त उकारान्त स्त्रीलिंग शब्द भी ङित् विभक्तियों में विकल्प से नदी कहलाते हैं।

(७३) नपुंसकलिंग—यह तीन लिंगों में से एक लिंग है। फल, वारि, मधु आदि नपुं० शब्द हैं।

(७४) नाद—अच् (स्वर) और हश् प्रत्याहार (वर्ग के तृतीय चतुर्थ पञ्चम वर्ण, ह य व र ल) नाद वर्ण हैं।

(७५) नाम—प्रातिपदिक या संज्ञा शब्दों को नाम कहते हैं। 'नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च' निरुक्त।

(७६) निपात—(चादयोऽसत्त्वे, १।४।५७) च वा ह आदि को निपात कहते हैं। (स्वरादिनिपातमव्ययम्) सभी निपात अव्यय होते हैं, अतः वे सदा एकरूप रहते हैं।

(७७) निष्ठा—(क्तक्तवतू निष्ठा, १।१।२६) क्त और क्तवतु प्रत्ययों को निष्ठा कहते हैं।

(७८) पद—(१) (सुप्तिङन्तं पदम्, १।४।१४) सुप् (ः औ अः आदि) से युक्त शब्दों और तिङ् (ति तः अन्ति आदि) से युक्त धातुरूपों को पद कहते हैं। जैसे—रामः, पठति। (२) (स्वादिष्वसर्वनामस्थाने, १।४।१७) सु (स्) आदि प्रत्यय बाद में हों तो शब्द को पद कहते हैं। ये प्रत्यय बाद में होंगे तो नहीं—सु आदि प्रथम पाँच सुप्, यकारादि और स्वर आदि-वाले प्रत्यय।

(७९) पदान्त—नियम ७८ में उक्त पद के अन्तिम अक्षर को पदान्त कहते हैं।

(८०) पररूप—(एङि पररूपम्, ६।१।९४) सन्धि-नियमों में दो स्वरों को मिलाने पर अगले स्वर के तुल्य रूप रह जाने को पररूप कहते हैं। जैसे— प्र + एजते = प्रेजते।

(८१) परस्मैपद—(लः परस्मैपदम्, १।४।९९) लकारों के स्थान पर होनेवाले ति, तः, अन्ति आदि प्रत्ययों को परस्मैपद कहते हैं। ये जिनके अन्त में लगते हैं, उन्हें परस्मैपदी धातु कहते हैं। ते, एते, अन्ते आदि को आत्मनेपद कहते हैं। शतृ प्रत्यय परस्मैपद में होता है।

(८२) परिभाषा—विधिशास्त्र की प्रवृत्ति और निवृत्ति के नियामक शास्त्र को परिभाषा कहते हैं।

(८३) पुंलिंग—यह तीन लिंगों में से एक है। जैसे पुंलिंग शब्द—रामः, हरिः।

(८४) पूर्वरूप—(एङः पदान्तादति, ६।१।१०९) सन्धि-नियमों में दो स्वरों को मिलाने पर पहले स्वर के तुल्य रूप रह जाने को पूर्वरूप कहते हैं। जैसे—हरे + अव = हरेऽव।

(८५) (क) प्रकृति—शब्द या धातु जिससे कोई प्रत्यय होता है, उसे प्रकृति कहते हैं। इसका दूसरा पारिभाषिक नाम 'अंग' है। जैसे—रामः में राम प्रकृति है और पठति में पठ्। **(ख) प्रकृति-विकृति**—शब्द या धातु के मूलरूप के स्थान पर जो नया आदेश होता है, उसे प्रकृति-विकृति या विकार-भाव कहते हैं। जैसे—उवाच में प्रकृति ब्रू धातु है, उसको विकृति विकार या आदेश वच् हुआ है। यह पूरे शब्द या धातु को भी होता है और कहीं पर उसके एक अंश को।

(८६) प्रकृतिभाव—(प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्, ६।१।१२५) प्रकृतिभाव का अर्थ है कि वहाँ पर कोई सन्धि नहीं होती। प्लुत और प्रगृह्यवाले स्थानों पर प्रकृतिभाव होता है।

(८७) प्रगृह्य—(१) (ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्, १।१।११) प्रगृह्यवाले स्थान पर कोई सन्धि नहीं होती। ई, ऊ, ए अन्तवाले द्विवचनान्त रूप प्रगृह्य होते हैं, अतः सन्धि नहीं होगी। जैसे—हरी एतौ। (२) (अदसो मात्, १।१।१२) अदस् के म् के बाद ई, ऊ होंगे तो कोई सन्धि नहीं होगी। जैसे—अमी ईशाः। अमू आसाते।

(८८) प्रत्यय—(प्रत्ययः, ३।१।१) शब्दों और धातुओं के बाद लगनेवाले सुप्, तिङ्, कृत्, तद्धित आदि को प्रत्यय कहते हैं। कुछ प्रत्यय पहले (बहुच् आदि) और बीच में (अकच् आदि) भी लगते हैं। बहुपटुः। उच्चकैः। प्रत्ययों में विशेष कार्य के लिए अनुबन्ध भी लगे होते हैं।

(८९) प्रत्याहार—(आदिरन्त्येन सहेता, १।१।७१) प्रत्याहार का अर्थ है संक्षेप में कथन। अच्, हल्, सुप्, तिङ् आदि प्रत्याहार हैं। अच्, हल् आदि के लिए पहला अक्षर अइउण् आदि १४ सूत्रों में ढूँढ़ें और अन्तिम अक्षर उन सूत्रों के अन्तिम अक्षर में। जैसे—अच् = अइउण् के अ से लेकर ऐऔच् के च् तक, पूरे स्वर। सुप् = सु से सुप् के प् तक। तिङ् = तिप् से महिङ् तक।

(९०) प्रयत्न—वर्णों के उच्चारण में जो प्रयत्न (मनोयोगपूर्वक प्राण का व्यापार) किया जाता है, उसे प्रयत्न कहते हैं। यह दो प्रकार का है—आभ्यन्तर और बाह्य। आभ्यन्तर चार प्रकार का है—स्पृष्ट, ईषत्-स्पृष्ट, विवृत, संवृत। बाह्य ११ प्रकार का है— विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष आदि। (देखें सिद्धान्तकौमुदी संज्ञाप्रकरण)

(९१) प्रातिपदिक—(१) (अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्, १।२।४५) सार्थक शब्द को प्रातिपादिक कहते हैं। यही विभक्ति (सु आदि) लगने पर पद बनता है। (२) (कृत्तद्धितसमासाश्च, १।२।४६) कृत् और तद्धित प्रत्ययान्त तथा समास-युक्त शब्द भी प्रातिपदिक होते हैं।

(९२) प्रेरणार्थक—दूसरे से काम करवाना। जैसे—लिखना से लिखवाना। इस अर्थ में णिच् होता है।

(९३) प्लुत—ह्रस्व स्वर से तिगुनी मात्रा। अक्षर के आगे ३ लिखकर इसका संकेत करते हैं। जैसे— देवदत्त३।

(९४) बहिरङ्ग—गौण नियम। धातु और उपसर्ग का कार्य अन्तरङ्ग होता है, शेष बहिरङ्ग।

(९५) बहुलम्—विकल्प या ऐच्छिक नियम को बहुलम् कहते हैं।

(९६) भ— (यचि भम्, १।४।१८) यकारादि और स्वर-आदिवाला प्रत्यय बाद में हो तो उससे पहले के शब्द को भ कहते हैं, सु औ आदि प्रथम पाँच सुप् बाद में हों तो नहीं।

(९७) भाष्य—पतंजलि-रचित महाभाष्य को संक्षेप में भाष्य कहते हैं।

(९८) मत्वर्थक प्रत्यय—मतुप् प्रत्यय 'वाला' या 'युक्त' अर्थ में होता है। इस अर्थ में होनेवाले सभी प्रत्ययों को मत्वर्थक प्रत्यय कहते हैं। जैसे—धनवान्, धनी।

(९९) महाप्राण—(द्वितीय-चतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः) वर्गों के द्वितीय और चतुर्थ अक्षर तथा श ष स ह महाप्राण वर्ण कहलाते हैं। जैसे—ख घ, छ झ, ठ ढ।

(१००) मात्रा—स्वरों के परिमाण को मात्रा कहते हैं। ह्रस्व या लघु अक्षर की एक मात्रा मानी जाती है, दीर्घ या गुरु की दो, प्लुत की तीन।

(१०१) मुनित्रय—(यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्) पाणिनि, कात्यायन, पतंजलि इन तीनों को मुनित्रय कहते हैं। मतभेद होने पर बादवाले मुनि का कथन प्रामाणिक माना जाता है।

(१०२) मूर्धन्य—(ऋटुरषाणां मूर्धा) ऋ ॠ ऋ३, टवर्ग, र, ष का उच्चारण स्थान मूर्धा है, अतः इन्हें मूर्धन्य कहते हैं।

(१०३) योगरूढ—योगरूढ उन शब्दों को कहते हैं, जिनमें यौगिक अर्थात् प्रकृति-प्रत्यय का अर्थ निकलता है, परन्तु वे किसी विशेष अर्थ में रूढ या प्रचलित हो गये हैं। जैसे—पंकज का अर्थ है—कीचड़ में होनेवाला। पर वह कमल अर्थ में रूढ है।

(१०४) योगविभाग—पाणिनि के सूत्रों को कात्यायन आदि ने आवश्यकतानुसार विभक्त करके एक सूत्र (योग) के दो या तीन सूत्र बनाए हैं, इस सूत्र-विभाजन को योगविभाग कहते हैं।

(१०५) यौगिक—यौगिक उन शब्दों को कहते हैं, जिनमें प्रकृति और प्रत्यय का अर्थ निकलता है। जैसे—पाचकः—पच् + अकः, पकानेवाला।

(१०६) रूढ—रूढ उन शब्दों को कहते हैं, जिनमें प्रकृति और प्रत्यय का अर्थ नहीं निकलता है। जैसे—मणि, नूपुर आदि।

(१०७) लघु—(ह्रस्वं लघु, १।४।११) ह्रस्व अ इ उ ऋ को लघु वर्ण कहते हैं।

(१०८) लिंग—संस्कृत में तीन लिंग होते हैं—पुंलिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग।

(१०९) लुक्—(प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः, १।१।६१) प्रत्यय के लोप का ही दूसरा नाम लुक् है।

(११०) लुप् या श्लु—(प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः, १।१।६१) प्रत्यय के लोप को लुप् और श्लु भी कहते हैं।

(१११) लोप—(अदर्शनं लोपः, १।१।६०) वर्ण, प्रत्यय आदि के हट जाने को लोप कहते हैं।

(११२) वचन—संस्कृत में तीन वचन होते हैं—एकवचन, द्विवचन, बहुवचन। एक के लिए एकवचन, दो के लिए द्विवचन, तीन या अधिक के लिए बहुवचन।

(११३) वर्ग—व्यंजनों के कुछ विभागों को वर्ग कहते हैं। जैसे—कवर्ग—क से ङ तक, चवर्ग—च से ञ तक, टवर्ग—ट से ण तक, तवर्ग—त से न तक, पवर्ग—प से म तक।

(११४) वर्ण—अक्षरों को वर्ण भी कहते हैं। स्वर और व्यंजन ये सभी वर्ण हैं।

(११५) वाक्य—सार्थक पदों के समूह को वाक्य कहते हैं।

(११६) वाच्य—संस्कृत में ३ वाच्य (अर्थ) होते हैं—१. कर्तृवाच्य, २. कर्मवाच्य, ३. भाववाच्य। सकर्मक धातुओं के कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य में रूप चलते हैं तथा अकर्मक धातुओं के कर्तृवाच्य और भाववाच्य में। कर्तृवाच्य में कर्ता मुख्य होता है, कर्मवाच्य में कर्म और भाववाच्य में क्रिया। सकर्मक से भी भाव में घञ् होता है।

(११७) वार्तिक—कात्यायन और पतंजलि के द्वारा बनाए गए नियमों को वार्तिक कहते हैं।

(११८) विकल्प—ऐच्छिक (लगाना या न लगना) नियम को विकल्प कहते हैं।

(११९) विभक्ति—(विभक्तिश्च, १।४।१०४) सु औ आदि कारक-चिह्नों को विभक्ति या कारक कहते हैं। संबोधन-सहित ८ विभक्तियाँ हैं—प्रथमा, द्वितीया आदि।

(१२०) विभाषा—(न वेति विभाषा, १।१।४४) किसी नियम के विकल्प से लगने को विभाषा कहते हैं। इसी अर्थ में वा, अन्यतरस्याम्, बहुलम् शब्द आते हैं।

(१२१) विवार—वर्गों के प्रथम द्वितीय अक्षर (क ख, च छ, ट ठ, त थ, प फ), विसर्ग, श ष स, ये विवार वर्ण हैं। इनके उच्चारण में मुख-द्वार खुला रहता है।

(१२२) विवृत—(विवृतमूष्मणां स्वराणां च) स्वरों और ऊष्मों (श ष स ह) का आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत है। इनके उच्चारण में मुख-द्वार खुला रहता है।

(१२३) विशेषण—विशेष्य (व्यक्ति या वस्तु आदि) की विशेषता बतानेवाले गुण या द्रव्य के बोधक शब्दों को विशेषण कहते हैं। विशेषण को भेदक भी कहते हैं।

(१२४) विशेष्य—जिस (व्यक्ति या वस्तु आदि) की विशेषता बताई जाती है, उसे विशेष्य कहते हैं। विशेष्य को भेद्य भी कहते हैं।

(१२५) वीप्सा—द्विरुचि अर्थात् दो बार पढ़ने को वीप्सा कहते हैं। जैसे—स्मृत्वा स्मृत्वा, स्मारं स्मारम्।

(१२६) वृत्ति—(१) सूत्रों की व्याख्या को वृत्ति कहते हैं। (२) (परार्थाभिधानं वृत्तिः) कृत्, तद्धित, समास, एकशेष, सन् आदि से युक्त धातुरूपों को वृत्ति कहते हैं।

(१२७) **वृद्धि**—(वृद्धिरादैच्, १।१।१) आ, ऐ, औ को वृद्धि कहते हैं। वृद्धि कहने पर इ ई को ऐ होगा, उ ऊ को औ, ऋ ॠ को आर्, ए को ऐ और ओ को औ।

(१२८) **व्यंजन**—क से लेकर ह तक के वर्णों को व्यंजन या हल् कहते हैं।

(१२९) **व्यधिकरण**—एक से अधिक आधार या शब्दादि में होनेवाले कार्य को व्यधिकरण कहते हैं। वि = विभिन्न, अधिकरण = आधार। एक आधारवाला समानाधिकरण होता है, अनेक आधारवाला व्यधिकरण।

(१३०) **शब्द**—सार्थक वर्ण या वर्णसमूह को शब्द या प्रातिपदिक कहते हैं।

(१३१) **शिक्षा**—वर्णों के उच्चारण आदि की शिक्षा देनेवाले ग्रन्थों को शिक्षा कहते हैं। जैसे—पाणिनीयशिक्षा आदि ग्रन्थ। वैदिक शिक्षा और व्याकरण के ग्रन्थों को प्रातिशाख्य कहते हैं।

(१३२) **श्लु**— प्रत्यय के लोप का ही एक नाम श्लु है। जुहोत्यादि० में श्लु होने पर गुण होता है।

(१३३) **श्वास**—वर्गों के प्रथम द्वितीय अक्षर (क ख, च छ, त थ, प फ), विसर्ग, श ष स, ये श्वास वर्ण हैं। इनके उच्चारण में श्वास बिना रगड़ खाए बाहर आता है।

(१३४) **षट्**—(ष्णान्ताः षट्, १।१।२४) ष् और न् अन्तवाली संख्याओं को षट् कहते हैं।

(१३५) **संज्ञा**—व्यक्ति या वस्तु आदि के नाम को संज्ञा-शब्द कहते हैं।

(१३६) **संयोग**—(हलोऽनन्तराः संयोगः, १।१।७) व्यंजनों के बीच में स्वर वर्ण न हों तो उन्हें संयुक्त अक्षर कहते हैं। जैसे—सम्बद्ध में म् और ब, द् और ध।

(१३७) **संवार**—स्वर और हश् प्रत्याहार (वर्ग के तृतीय चतुर्थ पंचम वर्ण, ह य व र ल) संवार वर्ण हैं। इनके उच्चारण में मुख-द्वार कुछ संकुचित (सिकुड़ा) रहता है।

(१३८) **संवृत**—ह्रस्व अ बोलचाल में संवृत (मुख-द्वार संकुचित) होता है।

(१३९) **संहिता**—(परः संनिकर्षः संहिता, १।४।१०९) वर्णों की अत्यन्त समीपता को संहिता कहते हैं। संहिता की अवस्था में सभी सन्धि-नियम लगते हैं। एक पद में, धातु और उपसर्ग में, समासयुक्त पद में संहिता अवश्य होगी। वाक्य में संहिता ऐच्छिक है।

(१४०) **सकर्मक**—जिन धातुओं के साथ कर्म आता है, उन्हें सकर्मक धातु कहते हैं।

(१४१) **सत्**—(तौ सत्, ३।२।१२७) शतृ और शानच् प्रत्ययों को सत् कहते हैं।

(१४२) **सन्**—(धातोः कर्मणः०, ३।१।७) इच्छा अर्थ में धातु से सन् प्रत्यय होता है। कृ > चिकीर्षति।

(१४३) **सन्धि**—स्वरों, व्यंजनों या विसर्ग के परस्पर मिलाने को सन्धि कहते हैं।

(१४४) **समानाधिकरण**—एक आधारवाले को समानाधिकरण कहते हैं।

(१४५) **समास**—समास का अर्थ है संक्षेप। दो या अधिक शब्दों को मिलाने या जोड़ने को समास कहते हैं। समास होने पर शब्दों के बीच की विभक्ति हट जाती है। समासयुक्त

शब्द को समस्त पद कहते हैं। समस्त शब्द एक शब्द होता है। समास के ६ भेद हैं—१. अव्ययीभाव, २. तत्पुरुष, ३. कर्मधारय, ४. द्विगु, ५. बहुव्रीहि, ६. द्वन्द्व।

(१४६) समासान्त—समासयुक्त शब्द के अन्त में होनेवाले कार्यों को समासान्त कहते हैं।

(१४७) समाहार—समाहार का अर्थ है समूह। समाहार द्वन्द्व में प्रायः नपुं० एकवचन होता है। कभी स्त्रीलिंग भी होता है।

(१४८) सम्प्रसारण—(इग्यणः सम्प्रसारणम्, १।१।४५) य् को इ, व् को उ, र् को ऋ, ल् को ऌ हो जाने को सम्प्रसारण कहते हैं। सम्प्रसारण कहने पर ये कार्य होंगे।

(१४९) सर्वनाम—(सर्वादीनि सर्वनामानि, १।१।२७) सर्व, यत्, तत्, किम्, युष्मद्, अस्मद् आदि शब्दों को सर्वनाम कहते हैं। इनका सम्बोधन नहीं होता।

(१५०) सर्वनामस्थान—(सुडनपुंसकस्य, १।१।४३) प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के पहले पाँच सुप् (कारकचिह्न, स् औ अः, अम् औ) को सर्वनामस्थान कहते हैं, नपुं० में नहीं।

(१५१) सवर्ण—(तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्, १।१।९) जिन वर्णों का स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न मिलता है, उन्हें सवर्ण कहते हैं। जैसे—इ चवर्ग य श तालव्य और स्पृष्ट हैं, अतः सवर्ण हैं।

(१५२) सार्वधातुक—(तिङ् शित्सार्वधातुकम्, ३।४।११३) धातु के बाद जुड़नेवाले तिङ् (ति तः आदि) और शित् प्रत्यय (श् इत् वाले, शतृ आदि) सार्वधातुक कहलाते हैं। शेष आर्धधातुक होते हैं।

(१५३) सुप्—(स्वौजस …सुप्, ४।१।२) शब्दों के अन्त में लगनेवाले प्रथमा से सप्तमी तक के कारक-चिह्न (स् औ अः आदि) सुप् कहलाते हैं।

(१५४) सुबन्त—सुप् (स् औ आदि) जिन शब्दों के अन्त में होते हैं, उन्हें सुबन्त कहते हैं। रामः, कृष्णः।

(१५५) सूत्र—शब्दों के संस्कारक नियमों को सूत्र कहते हैं। इनके बाद निर्दिष्ट संख्याओं का क्रमशः भाव यह है—१. अध्याय-संख्या, २. पाद-संख्या, ३. सूत्र-संख्या।

(१५६) सेट्—जिन धातुओं के बीच में प्रत्यय से पहले इ लगता है, उन्हें सेट् (इट्-वाली) कहते हैं। जैसे—पठ्, लिख्।

(१५७) स्त्रीप्रत्यय—स्त्रीलिंग के बोधक टाप् (आ), ङीप् (ई) आदि स्त्रीप्रत्यय कहलाते हैं।

(१५८) स्त्रीलिंग—यह तीन लिंगों में से एक लिंग है। स्त्रीत्व का बोध कराता है। जैसे—स्त्री, नदी।

(१५९) स्थान—(अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः) उच्चारण-स्थान कण्ठ तालु आदि का संक्षिप्त नाम स्थान है। जैसे—अ कवर्ग ह और विसर्ग का स्थान कण्ठ है।

(१६०) स्पर्श—(कादयो मावसानाः स्पर्शाः) क से लेकर म तक (कवर्ग से पवर्ग तक) के वर्णों को स्पर्श वर्ण कहते हैं। इनके उच्चारण में जीभ कण्ठ तालु आदि को स्पर्श करती है।

(१६१) स्वर—(अचः स्वराः) अचों (अ आ, इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ, ऌ, ए ऐ, ओ औ) को स्वर कहते हैं।

(१६२) **स्वरित**—(समाहार: स्वरित:, १।२।३१) उदात्त और अनुदात्त के मध्यगत स्थान से उत्पन्न स्वर को स्वरित कहते हैं। यह मध्यगत स्थान से बोला जाता है। (उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित:, ८।४।६६) वेद में उदात्त स्वर के बादवाला अनुदात्त स्वरित हो जाता है। साधारण नियम यह है कि उदात्त से पहले अनुदात्त अवश्य रहेगा, अन्यत्र उदात्त के बाद अनुदात्त स्वरित होगा।

(१६३) **हल्**—क से ह तक के वर्णों को हल् कहते हैं। इन्हें व्यंजन भी कहते हैं।

(१६४) **हलन्त**—हल् अर्थात् व्यंजन जिनके अन्त में होते हैं, ऐसे शब्दों या धातुओं आदि को हलन्त कहते हैं।

(१६५) **ह्रस्व**—(ह्रस्वं लघु, १।४।१०) अ इ उ ऋ लृ को ह्रस्व कहते हैं।

(१४) हिन्दी-संस्कृत-शब्दकोष

आवश्यक-निर्देश

(१) इस पुस्तक में प्रयुक्त शब्दों का ही इस शब्दकोश में संग्रह है।

(२) जो शब्द राम:, रमा, गृहम् के तुल्य हैं, उनके रूप राम आदि के तुल्य चलावें। : (विसर्ग) से पुं०, आ से स्त्री०, अम् से नपुं० समझें। शेष शब्दों के आगे पुं० आदि का निर्देश किया गया है। उनके रूप 'शब्दरूप-संग्रह' में दिए तत्सदृश शब्दों के तुल्य चलावें। संक्षेप के लिए ये संकेत अपनाए गए हैं—पुं०=पुंलिंग, स्त्री०=स्त्रीलिंग, न०=नपुंसक लिंग।

(३) धातुओं के आगे संकेत किया गया है कि वे किस गण की हैं और उनका किस पद में प्रयोग होता है। धातुओं के रूप चलाने के लिए 'धातुरूप-संग्रह' में दी गयी प्रत्येक गण की विशेषताओं को देखें तथा उस गण की विशिष्ट धातु को देखें। तदनुसार रूप चलावें। 'धातुरूप-कोश' में सभी धातुओं के १० लकारों के रूप दिये हैं। धातुएँ अकारादिक्रम से दी गयी हैं। उसी प्रकार रूप चलावें। संक्षेप के लिए ये संकेत अपनाए गए हैं—१ = भ्वादिगण। २ = अदादिगण। ३ = जुहोत्यादिगण। ४ = दिवादिगण। ५ = स्वादिगण। ६ = तुदादिगण। ७ = रुधादिगण। ८ = तनादिगण। ९ = क्र्यादिगण। १० = चुरादिगण। प० = परस्मैपद, आ० = आत्मनेपद, उ० = उभयपद।

(४) अव्ययों के रूप नहीं चलते हैं। उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता। अ०= अव्यय।

(५) विशेषणों के रूप तीनों लिंगों में चलते हैं। जो विशेष्य का लिंग होगा, वही विशेषण का लिंग होगा। वि०=विशेषण।

(६) जहाँ एक शब्द के लिए एक से अधिक शब्द दिए हैं, वहाँ कोई-सा एक शब्द चुन लें।

अ

अँगीठी—हसन्ती (स्त्री०)
अँगूठी—अङ्गुलीयकम्
अँगूठी, नामांकित—मुद्रिका
अंगूर—द्राक्षा, मृद्वीका
अंजीर—अञ्जीरम्
अखरोट—अक्षोटम्
अग्नि—कृशानुः (पुं०), जातवेदस् (पुं०)
अचार—सन्धितम्
अच्छा लगना—रुच् (१ आ०), स्वद् (१ आ०)
अच्छा है—न कि—वरं—न (अ०)
अटारी—अट्टः
अण्डर-वीयर (जाँघिया)—अर्धोरुकम्
अतिथि—प्राघुणः, अतिथिः, अभ्यागतः
अतिथि-सत्कर्ता—आतिथेयः
अदरक—आर्द्रकम्
अदल-बदल—विनिमयः
अधिकार होना—प्र+भू (१ प०)
अधीन—आयत्तः (वि०)
अध्यापक—अध्यापकः, उपाध्यायः
अनर्थ—अब्रह्मण्यम्
अनार—दाडिमम्
अनुभव करना—अनु + भू (१ प०)
अनुसन्धान करना—अनु + सं + धा (३ उ०)
अन्दर—अन्तः (अ०), अन्तरे (अ०)
अन्न—अन्नम्
अन्न, खेत में—शस्यम्
अपनाना—स्वी + कृ (८ उ०)
अपमान करना—अव + ज्ञा (९ उ०)
अप्राप्ति—अनुपलब्धिः (स्त्री०)
अफवाह—लोकापवादः, वार्ता
अभिनय करना—अभि + नी (१ उ०)
अभ्रक—अभ्रकम्
अमचूर—आम्रचूर्णम्
अमरूद—आम्रलम्, दृढबीजम्, अमृतफलम्
अमावट—आम्रातकम्
अमावस्या—दर्शः, अमावास्या
अमृत—पीयूषम्, सुधा
अरहर (दाल)—आढकी (स्त्री०)
अर्गला—अर्गलम्
अलग होना—वि + युज् (४ आ०)
अलमारी—काष्ठमञ्जूषा, लौहमञ्जूषा
अवश्य—ननु, नूनम्, न—न (अ०)
असमर्थ—अक्षमः (वि०)
असेम्बली हॉल—आस्थानम्

आ

आँख—चक्षुष् (न०), नेत्रम्, लोचनम्
आँगन—अजिरम्, अङ्गनम्, प्राङ्गणम्
आँत—अन्त्रम्
आँधी—प्रवातः
आँवड़ा—आम्रातकम्
आँवला—आमलकी (स्त्री०)
आँसू—अश्रु (न०), अस्रम्
आक—अर्कः
आकाश—व्योमन् (न०), वियत् (न०)
आग—हुतवहः, कृशानुः (पुं०), वह्निः
आगन्तुक—आगन्तुः (पुं०), आगन्तुकः
आगे—अग्रे (अ०), ततः (अ०)
आग्रह—निर्बन्धः
आजकल—अद्यत्वे (अ०)
आज्ञा—शासनम्, नियोगः, आदेशः
आज्ञा देना—अनु+ज्ञा (९ उ०)
आटा—चूर्णम्
आटे का हलुवा—यवागूः (स्त्री०)
आड़ू—आर्द्रालुः (पुं०)
आढ़त—अभिकरणम्
आढ़ती—अभिकर्तृ (पुं०)
आदर पाना—आ+दृ (६ आ०)
आधी रात—निशीथः
आना—आगम् (१ प०), अभ्यागम् (१ प०)
आ+या (२ प०)
आ पड़ना—आ+पत् (१ प०)
आपत्तिग्रस्त—आपन्नः (वि०)
आबनूस—तमालः
आभूषण—आभरणम्, आभूषणम्
आम का वृक्ष—रसालः, सहकारः, आम्रः
आम का फल—आम्रम्

आम, कलमी—राजाम्रम्
आमदनी—आय:, आयमध्ये (सप्तमी)
आम रास्ता—जनमार्ग:, जनपथ:
आयरन (लोहा)—अयस् (न०)
आयात पर चुंगी—आयातशुल्कम्
आयु—आयुष् (न०), वयस् (न०)
आराम कुर्सी—सुखासन्दिका
आरी—करपत्रम्
आलस्य करना—तन्द्रय (णिच्)
आलू—आलु: (पुं०)
आलू की टिकिया—पक्वालु: (पुं०)
आलू बुखारा—आलुकम्
आशंका करना—आ+शङ्क् (१ आ०)
आशा करना—आ+शंस् (१ आ०)

इ

इकट्ठा करना—सं+चि (५ उ०), अर्ज् (१० उ०)
इच्छुक—स्पृहयालु: (वि०), इच्छुक:
इत्र—गन्धतैलम्
इंक पेन्सिल, डॉट पेन—मसितूलिका
इन्कम टैक्स—आयकर:
इन्द्र—शतक्रतु: (पुं०), मघवन् (पुं०), वृत्रहन् (पुं०)
इन्द्र-धनुष—इन्द्रायुधम्, इन्द्रधनु: (न०)
इन्द्राणी—पौलोमी (स्त्री०), शची (स्त्री०)
इन्धन—इन्धनम्
इन्फ्लुएन्ज़ा, फ्लु—शीतज्वर:
इमरती—अमृती (स्त्री०)
इमली—तिन्तिडीकम्
इम्पोर्ट—आयात:
इलायची—एला
इसलिए—अत:, अतएव, तत: (अ०)

ई

ईंट—इष्टका
ईंट, पक्की—पक्वेष्टका

उ

उगलना—उद्+गॄ (६ प०)
उगला हुआ—उद्वान्तम् (वि०)
उग्र—तीक्ष्णम्
उचित-अनुचित—सदसत् (न०)
उचित है—स्थाने (अ०)
उठना—उत्था (१ प०), उच्चर् (१ प०), उत्+नम् (१ प०)
उठाना—उन्नी (उद्+नी, १ उ०)
उड़द—माष:
उड़ना—उत्पत् (१ प०), उद्गम् (१ प०)
उतरना—अव+तॄ (१ प०)
उतार—अवरोह:
उत्कंठित—उत्क:, उत्कण्ठित:
उत्तर, दिशा—उदीची (स्त्री०)
उत्तर की ओर—उदक् (उद्+अञ्च्) (पुं०)
उत्तरायण—उत्तरायणम्
उत्तीर्ण होना—उत्तॄ (उद्+तॄ, १ प०)
उत्थान-पतन—पातोत्पात:
उत्पन्न होना—सं+भू (१ प०)
उधार—ऋणम्, ऋणरूपेण (तृतीया)
उधार खाते—नाम्नि (नामन्, स०)
उपजाऊ—उर्वरा
उपभोग करना—उप+भुज् (७ आ०)
उपयोग—विनियोग:, उपयोग:
उपवास करना—उप+वस् (१ प०)
उपेक्षा करना—उपेक्ष् (उप+ईक्ष्, १ आ०)
उबटन—उद्वर्तनम्
उबालना—क्वथ् (१ प०)
उल्लंघन करना—उच्चर् (१ आ०), लङ्घ् (१० उ०), अति+वृत् (१ आ०)
उल्लू—कौशिक:, उलूक:
उस्तरा—क्षुरम्

ऊ

ऊँचा—प्रांशु: (वि०)
ऊँट—क्रमेलक:, उष्ट्र:
ऊखल—उलूखलम्
ऊनी—राङ्कवम्
ऊपर फेंकना—उत्+क्षिप् (६ उ०)
ऊसर—ऊषर:

ए

एक-एक करके—एकैकश: (अ०)
एक ओर से—एकत: (अ०)

एक प्रकार से—एकधा (अ०)
एक बात—एकवाक्यम्
एक रायवाले—एकमतिः (स्त्री०)
एक वेष—एकपरिधानम्
एकान्त में—रहसि (रहस्, स०)
एक्सपोर्ट—निर्यातः
एजुकेशन सेक्रेटरी—शिक्षासचिवः
एजेण्ट—अभिकर्ता (-कर्तृ, पुं०)
एजेन्सी—अभिकरणम्
एटम बम—परमाण्वस्त्रम्
एडिशनल डाइरेक्टर—अतिरिक्त-शिक्षासंचालकः
एरंड—एरण्डः

ओ

ओढ़नी—प्रच्छदपटः
ओवरकोट—बृहतिका
ओम्—उद्गीथः, प्रणवः, ओंकारः
ओले—करकाः

क

कंगन—कङ्कणम्
कंघी—प्रसाधनी (स्त्री०)
कंठा—कंठाभरणम्
कंडाल—वारिधिः (पुं०)
कंधा—स्कन्धः
कंधे की हड्डी—जत्रु (न०)
ककड़ी—कर्कटिका, कर्कटी (स्त्री०)
कक्षा का साथी—सतीर्थ्यः
कचालू—पक्वालुः (पुं०)
कचौड़ी—पिष्टिका
कछुआ—कच्छपः
कटहल का पेड़—पनसः
कटहल का फल—पनसम्
कटा हुआ—लूनम् (वि०)
कटोरा—कटोरम्
कटोरी—कटोरा
कठफोड़ा—दार्वाघातः
कड़ा, सोने आदि का—कटकः
कड़ाह—कटाहः
कड़ाही—स्वदेनी (स्त्री०)
कदम्ब—नीपः
कद्दू—कूष्माण्डः
कनफूल—कर्णपूरः
कनेर—कर्णिकारः
कप—चषकः
कबाबी—मांसाशिन् (पुं०)
कबूतर—पारावतः, कपोतः
कब्ज—अजीर्णः
कमर—श्रोणिः (स्त्री०), कटिः (स्त्री०)
कमरख—कर्मरक्षम्
कमरा—कक्षः
कमल, नीला—इन्दीवरम्, कुवलयम्
कमल, लाल—कोकनदम्
कमल, श्वेत—कुमुदम्, पुण्डरीकम्, कह्लारम्
कमीशन—शुल्कम्
कमीशन एजेण्ट—शुल्काजीवः
कम्बल—कम्बलः, कम्बलम्
करधन—मेखला
करना—वि+धा (३ उ०), चर् (१ प०), अनु+ष्ठा (१ प०)
करील—करीलः
करेला—कारवेल्लः
करौंदा—करमर्दकः
कर्जा—ऋणम्
कर्जा देनेवाला—उत्तमर्णः
कर्जा लेनेवाला—अधमर्णः
कलई, पुताई की—सुधा
कलफ करना—मण्डा+कृ (८ उ०)
कलम—कलमः
कलमी आम—राजाम्रम्
कलश—कलशः
कलाई—मणिबन्धः
कलाई से कानी अँगुली तक—करभः
कलाकन्द—कलाकन्दः
कली—कलिका
कल्याण का इच्छुक—कल्याणाभिनिवेशिन् (वि०)
कवच—वर्मन् (न०)
कष्ट करना—आयासः

कसकूट—कांस्यकूटः
कस्बा—नगरी (स्त्री०)
कहना—अभि+धा (३ उ०), भाष् (१ आ०), उद्+गृ (६ प०), उद्+ईर् (१० उ०)
कहाँ—क्व, कुत्र (अ०)
काँच—काचः
काँच का गिलास—काचकंसः
काँपना—कम्प् (१ आ०), वेप् (१ आ०)
काँसा—कांस्यम्
कागज—कागदः
कागज की रीम—कागदरीमकः
काजल—कज्जलम्
काजू—काजवम्
काटना—कृत् (६ प०), छिद् (७ उ०), लू (९ उ०)
कान—श्रोत्रम्, श्रवणम्, कर्णः
कान की बाली—कुण्डलम्
कानखजूरा—कर्णजलौका
कापी—संचिका
काफल—श्रीपर्णिका
कॉफी—कफघ्नी (स्त्री०)
काम—कर्मन् (न०), कार्यम्
काम आना—उप+युज् (४ आ०)
कामदेव—पुष्पधन्वन् (पुं०), मनसिजः
कार्टून—उपहासचित्रम्
कार्तिकेय—सेनानीः (पुं०)
कार्पोरेशन—निगमः
कालेज—महाविद्यालयः
कितने—कति (वि०)
किनारा—वेला
किरण—मयूखः, गभस्तिः (पुं०), दीधितिः (स्त्री०)
किवाड़—कपाटम्
किवाड़ के पीछे का डंडा—अर्गलम्
किशमिश—शुष्कद्राक्षा
किसान—कृषीवलः, कीनाशः, कृषकः
कील—कीलः
कीचड़—पङ्कः, कर्दमः
कुँदरु—कुन्दरुः (पुं०)
कुटिया—कुटी (स्त्री०), कुटीरः
कुतिया—सरमा, शुनी (स्त्री०)
कुत्ता—श्वन् (पुं०), कौलेयकः सारमेयः
कुदाल—खनित्रम्
कुन्द—कुन्दम्
कुप्पी—कुतूः (स्त्री०)
कुबड़ा—कुब्जः
कुबेर—कुबेरः, मनुष्यधर्मन् (पुं०)
कुमुद की लता—कुमुदिनी (स्त्री०)
कुम्हार—कुलालः, कम्भकारः
कुर्ता—कञ्चुकः
कुर्सी—आसन्दिका
कुलपरम्परा—कुलक्रमम्
कुलफी—कुलपी (स्त्री०)
कुली—भारवाहः
कुलीन—अभिजनः, कुलीनः
कूटना—अवहननम्, ताडनम्
कूड़ा—अवकरः
कूदना—कूर्द् (१ आ०)
कृपाण—कौक्षेयकः
केकड़ा—कुलीरः
केतली—कन्दुः (पुं०, स्त्री०)
केबिनेट—मन्त्रिपरिषद् (स्त्री०)
केन्सर—विद्रधिः (पुं०), विषव्रणम्
केला—कदलीफलम्
केवड़ा—केतकी (स्त्री०)
कैंची—कर्तरी (स्त्री०)
कै—वमथुः (पुं०)
कोंपल—किसलयम्
कोट—प्रावारः
कोठरी—लघुकक्षः
कोतवाल—कोटपालः
कोतवाली—कोटपालिका
कोमल स्वर—मन्द्रस्वरः
कोयल—परभृतः, कोकिलः
कोल्हू—रसयन्त्रम्
कोहनी—कफोणिः (स्त्री०)
कौवा—ध्वाङ्क्षः, वायसः, काकः
क्या—किम्, किंनु, ननु (अ०)
क्या लाभ—किम्, को लाभः किं प्रयोजनम्

क्योंकि—यतो हि, खलु (अ०)
क्रीडा करना—क्रीड् (१ प०), रम् (१ आ०)
क्रीम—शर:
क्रोध करना—क्रुध् (४ प०), कुप् (४ प०)
क्रोधी—अमर्षण:
क्लर्क—करणिक:, लिपिकार:
क्षत्रिय—क्षत्रिय:, द्विजाति:, द्विजन्मन् (पुं०)
क्षमा करना—मृष् (१० उ०), क्षम् (पुं०)
(१ आ०, ४ प०)

ख

खंजन—खञ्जन:
खजूर—खर्जूरम्
खड्ग—खड्ग:, निस्त्रिंश:
खपड़ा—खर्पर:
खपड़ैल का—खर्परावृतम् (वि०)
खम्बा—स्तम्भ:
खरबूजा—खर्बुजम्
खरीद—क्रय:
खरीदना—पण् (१ आ०), क्री (९ उ०)
खर्च करना—विनियोग:, व्यय:
खलिहान—खलम्
खस्ता पूरी—शष्कुली (स्त्री०)
खाँसी—कास:
खाजा—मधुशीर्ष:
खाद—खाद्यम्
खान—खनि: (स्त्री०)
खाना—भक्ष् (१० उ०), खाद् (१ प०),
भुज् (७ आ०)
खाया हुआ—जग्धम्, भुक्तम्
खिचड़ी—कृशर:
खिड़की—गवाक्ष:, वातायनम्
खिन्न होना—सद् (१ प०)
खिरनी—क्षीरिका
खींचना—कृष् (१ प०)
खीर—पायसम्
खील—लाजा: (लाज, बहु०)
खुमानी—क्षुमानी (स्त्री०)
खूँटी—नागदन्तक:
खून—रुधिरम्, असृज् (न०)
खेत—क्षेत्रम्
खेती—कृषि: (स्त्री०)
खेती के औजार—कृषियन्त्रम्
खेल का मैदान—क्रीडाक्षेत्रम्
खैर—खदिर:
खोजना—गवेष् (१० उ०)
खोदना—टङ्क् (१० उ०), खन् (१ उ०)
खोवा—किलाट:

ग

गँड़ासा—तोमर:
गगरा—गर्गर:
गगरी—गर्गरी (स्त्री०)
गजक—गजक:
गञ्जा—खल्वाट:
गडरिया—अजाजीव:
गदा—गदा
गद्दा—तूलसंस्तर:
गधा—खर:, गर्दभ:
गन्धक—गन्धक:
गम बूट—अनुपदीना
गरजना—स्तनितम्, गर्जनम्
गर्दन—ग्रीवा, कण्ठ:
गर्मी (सूजाक)—उपदंश:
गला—कण्ठ:, ग्रीवा
गली—वीथिका
गवेषणा करना—गवेष् (१० उ०)
गाँव—ग्राम:
गाजर—गृञ्जनम्
गाय—गौ: (स्त्री०), धेनु: (स्त्री०)
गाल—कपोल:
गाहक—ग्राहक:
गिद्ध—गृध्र:
गिनना—गण् (१० उ०)
गिना हुआ—संख्यातम् (वि०)
गिरना—पत् (१ प०), निपत् (१ प०),
भ्रंश् (१ आ०)
गिरहकट—ग्रन्थिभेदक:

गिलास—कंसः, काचकंसः
गिलोय—अमृतवल्लरी (स्त्री०)
गीदड़—गोमायुः (पु०)
गुझिया—संयावः
गुणगान करना—कृत् (१० उ०)
गुप्त—निभृतम् (वि०), गुप्तम्
गुप्ती (कटारी)—करवालिका
गुफा—गह्वरम्, गुहा
गुलदस्ता—स्तबकः, पुष्पगुच्छः
गुलाब—स्थलपद्मम्
गुस्सा करना—क्रुध् (४ प०), कुप् (४ प०)
गूगल—गुग्गुलः
गूलर—उदुम्बरम्
गेंद—कन्दुकः, गेन्दुकम्
गेंदा—गन्धपुष्पम्
गेलरी—वीथिका
गेहूँ—गोधूमः
गोबर—गोमयम्
गोभी—गोजिह्वा
गोली—गोलिका, गुलिका
गोह—गोधा
ग्रीष्म ऋतु—निदाघः, ग्रीष्मर्तुः (पुं०)
ग्लेशियर—हिमसरित् (स्त्री०), हिमानी (स्त्री)

घ

घंटा (समय)—होरा
घटना (होना)—घट् (१ आ०)
घटना (कम होना)—अप+चि (५ उ०)
घटिया—अनु (अ०), उप (अ०)
घड़ा—घटः, कुम्भः
घड़ी—घटिका
घर—सदनम्, गृहम्, भवनम्
घरेलू फर्नीचर—गृहोपस्करः
घाटी—अद्रिद्रोणी (स्त्री०)
घायल—आहतः (वि०)
घी—आज्यम्, सर्पिष् (न०)
घुँघरू—किंकिणी (स्त्री०)
घुघनी (आलू-मटर)—कुल्माषः
घुटना—जानुः (पुं०, न०)
घुड़सवार—सादिन् (पुं०), अश्वारोहिन् (पुं०)
घूँघट काढ़ना—अवगुण्ठय (णिच्)
घूमना—भ्रम् (४ प०), चर् (१ प०), संचर् (१ प०)
घेरा—वृतिः (स्त्री०)
घेवर (मिठाई)—घृतपूरः
घोंसला—कुलायः
घोड़ा—अश्वः, सप्तिः (पुं०), रथ्यः, वाजिन् (पुं०), हयः
घोषणा करना—घुष् (१० उ०)

च

चकवा—चक्रवाकः
चकोतरा (फल)—मधुकर्कटी (स्त्री०)
चक्कर खाना—परि+वृत् (१ आ०)
चचेरा भाई—पितृव्यपुत्रः
चटकनी—कीलः
चटनी—अवलेहः
चट्टान—शिला
चढ़ाव—आरोहः
चतुःशाला—चतुःशालम्
चतुर—विदग्धः (वि०), दक्षः
चना—चणकः
चन्द्रमा—सुधांशु (पुं०), विधुः (पुं०), सोमः
चपत—चपेटः
चपरासी—लेखहारकः, प्रेष्यः
चप्पल—पादुका, पादुः (स्त्री०)
चबूतरा—स्थण्डिलम्, चत्वरम्
चबूतरा, घर से बाहर का—अलिन्दः
चमकना—भास् (१ आ०), द्युत् (१ आ०), दिव् (४ प०)
चमचम (मिठाई)—चमनम्
चमचा—दर्वी (स्त्री०)
चमार—चर्मकारः
चमेली—मालती (स्त्री०)
चम्पा—चम्पकः
चम्मच—चमसः
चरना—चर् (१ प०)
चर्बी—वसा

चर्बी, हड्डी की—मज्जा
चलना—चल् (१ प०), प्र+वृत् (१ आ०), प्र+स्था (१ आ०)
चलाना—संचालय (णिच्)
चाँदनी—कौमुदी (स्त्री०), ज्योत्स्ना
चॉक, लिखने की—कठिनी (स्त्री०)
चाकू—छुरिका, लवित्रम्
चाचा—पितृव्यः
चाची—पितृव्या
चाट—अवदंशः
चातक—चातकः
चादर—प्रच्छदः
चान्सलर—कुलपतिः (पुं०)
चापलूसी—स्नेहभणितम्
चाबुक—तोत्त्रम्
चाय—चायम्
चारों ओर मुड़नेवाली कुर्सी—पर्पः
चारों वर्ण—चातुर्वर्ण्यम्
चावल—व्रीहिः (पुं०)
चावल, भूसी-रहित—तण्डुलः
चाहना—ईह् (१ आ०), वाञ्छ् (१ प०), काङ्क्ष् (१ प०)
चिड़िया—पत्रिन् (पुं०), चटका
चित्त—चेतस् (न०), चित्तम्, स्वान्तम्
चित्रकार—चित्रकारः
चिमटा—संदंशः
चिरचिटा (ओषधि)—अपामार्गः
चिरौंजी—प्रियालम्
चिलमची—हस्तधावनी (स्त्री०) पतद्ग्रहा
चिह्न—अङ्कः, लक्ष्मन् (न०)
चीड़ (वृक्ष)—भद्रदारुः (पुं०), सरलः
चीनी—सिता
चीफ मिनिस्टर—मुख्यमन्त्रिन् (पुं०)
चीरना—छिद् (७ उ०)
चील—चिल्लः
चुङ्गी—शुल्कः, शुल्कशाला
चुङ्गी का अध्यक्ष—शौल्किकः
चुगना—चि (५ उ०)
चुगलखोर—द्विजिह्वः
चुनना—चि (५ उ०), अव+चि (५ उ०)
चुन्नी (ओढ़नी)—प्रच्छदपटः
चुन्नी (रत्न)—माणिक्यम्
चुप (चुप्पी)—जोषम् (अ०)
चुराना—मुष् (९ प०), चुर् (१० उ०)
चूँकि—ननु (अ०), यतोहि (अ०)
चूड़ी—काचवलयम्
चूल्हा—चुल्लिः (स्त्री०), चुल्ली (स्त्री०)
चेचक—शीतला
चेष्टा करना—चेष्ट् (१ आ०)
चोंच—चञ्चुः (स्त्री०), चञ्चूः (स्त्री०)
चोट—क्षतम्
चोट मारना—तड् (१० उ०)
चोटी—शिखा, सानुः (पुं०, न०), शृङ्गम्
चोर—तस्करः, चौरः, स्तेनः, पाटच्चरः
चौक—चतुष्पथः, शृङ्गाटकम्
चौकन्ना—प्रत्युत्पन्नमतिः (वि०)
चौमंजिला—चतुर्भूमिकः
चौराहा—चतुष्पथः, शृङ्गाटकम्

छ

छज्जा—वलभिः (स्त्री०), वलभी (स्त्री०)
छत—छदिः (स्त्री०)
छाता (छत्र)—आतपत्रम्
छाती—वक्षस् (न०), उरस् (न०)
छात्र—छात्रः, अध्येतृ (पुं०), विद्यार्थिन् (पुं०)
छात्रा—अध्येत्री (स्त्री०), छात्रा
छानना—स्रावय (णिच्)
छिपकली—गृहगोधिका
छिप जाना—तिरो+भू (१ प०)
छिपना—ली (४ आ०), नि+ली (४ आ०), अन्तर्+धा (३ उ०)
छीलना—शो (४ प०), त्वक्ष् (१ प०)
छीला हुआ—त्वष्टम् (वि०)
छुट्टी—विसृष्टिः (स्त्री०), अवकाशः
छुहारा—क्षुधाहरम्
छेद करना—छिद्र् (१० उ०)
छेनी—वृश्चनः
छोटा भाई—अनुजः

छोड़ना—त्यज् (१ प०), मुच् (६ उ०), हा (३ प०), अस् (४ प०), अप+अस् (४ प०), उज्झ् (६ प०)
छोड़ा हुआ—प्रत्याख्यातः, परित्यक्तः (वि०)

ज

जंगली चावल—श्यामाकः (सावाँ)
जंघा—ऊरुः (पुं०)
जंजीर—शृङ्खला
जंवाई—जामातृ (पुं०)
जड़—मूलम्
जड़ से—मूलतः
जन्म लेना—प्रादुर्+भू (१ प०)
जबतक""तबतक—यावत्""तावत् (अ०)
जरा—तावत् (अ०)
जर्मन सिल्वर—चन्द्रलौहम्
जल—तोयम्, अम्बु (न०), वारि (न०), नीरम्
जलकण—शीकरः
जलतरंग (बाजा)—जलतरङ्गः
जलना—ज्वल् (१ प०), इन्ध् (७ आ०)
जलपान—जलपानम्
जल-सेनापति—नौसेनाध्यक्षः
जलाना—दह् (१ प०)
जलेबी—कुण्डली (स्त्री०)
जवाकुसुम (फूल)—जवाकुसुमम्, जवापुष्पम्
जस्त—यशदम्
जहाज, पानी का—पोतः
जहाज (विमान)—व्योमयानम्, विमानम्
जागना—जागृ (२ प०)
जादूगर—मायाकारः, ऐन्द्रजालिकः, मायाविन् (पुं०)
जानना—ज्ञा (९ उ०), अव+गम् (१ प०), अधि+गम् (१ प०)
जाननेवाला—अभिज्ञः
जाना—गम् (१ प०), इ (२ प०), या (२ प०)
जामुन—जम्बुः (स्त्री०), जम्बूः (स्त्री०)
जार, काँच का—काचघटी (स्त्री०)
जाल—वागुरा, जालम्
जिगर—यकृत्
जितेन्द्रिय—दान्तः
जिद—निर्बन्धः
जिल्द—प्रावरणम्
जीजा (बहनोई)—आवुत्तः भगिनीपतिः (पुं०)
जीतना—जि (१ प०), वि+जि (१ आ०)
जीभ—रसना, जिह्वा
जीरा—जीरकः
जीविका—वृत्तिः (स्त्री०), जीविका
जुकाम—प्रतिश्यायः
जुती हुई भूमि—सीता
जुलाहा—तन्तुवायः
जुलूस—जनयात्रा, जनौघः
जुवारी—द्यूतकारः
जूड़े की जाली—वेणीजालम्
जूता (बूट)—उपानह् (स्त्री०)
जूता सीने की सूई—चर्मप्रभेदिका
जूही (फूल)—यूथिका
जेब काटना—ग्रन्थि+भिद् (७ उ०)
जेल—कारा, कारागारम्, बन्दिगृहम्
जैसा""वैसा—यथा""तथा (अ०)
जोड़ना—सं+योजय (णिच्)
जोतना—कृष् (१ प०, ६ उ०)
जौ—यवः
ज्ञात—अवगतम्
ज्योंही""त्योंही—यावत्""तावत् (अ०)
ज्योति—ज्योतिष् (न०), रोचिष् (न०)
ज्वार—यवनालः

झ

झगड़ा—कलहः
झगड़ालू—कलहप्रियः, कलहकामः
झरना—प्रपातः
झाड़ी—कुञ्जः, निकुञ्जः
झाड़ू—मार्जनी (स्त्री०)
झील—सरसी (स्त्री०)
झील, बड़ी—ह्रदः
झुकना—नम् (१ प०), अवनम्, प्रणम्
झुकाना—अवनमय (णिच्)
झोपड़ी—उटजः, पर्णशाला, कुटीरः

ट

टकसाल—टङ्कशाल:
टकसाल का अध्यक्ष—टङ्कशालाध्यक्ष:
टखना (पैर की हड्डी)—गुल्फ:
टमाटर—रक्ताङ्ग:
टब (पानी का)—द्रोणि: (स्त्री०) द्रोणी (स्त्री०)
टाइप करना—टङ्क् (१० उ०)
टाइप-राइटर—टङ्कनयन्त्रम्
टाइफाइड—संनिपातज्वर:
टाइम-टेबुल—समय-सारणी (स्त्री०)
टॉफी—गुल्य:
टिण्डा—टिण्डिश:
टिकुली (बेंदी)—ललाटाभरणम्
टिड्डी—शलभ:
टीयर गैस—धूमास्त्रम्, अश्रुधूम:
टी (चाय)—चायम्
टी०बी० (तपैदिक)—राजयक्ष्मन् (पुं०) राजयक्ष्म:
टीका (मंगलार्थ)—ललाटिका
टीन—त्रपु (न०)
टीन की चद्दर—त्रपुफलकम्
टी पॉट—चायपात्रम्
टी पार्टी (चाय-पानी)—सपीति: (स्त्री०)
टूटा हुआ—भुग्नम् (वि०)
टूथ पाउडर—दन्तचूर्णम्
टूथपेस्ट—दन्तपिष्टकम्
टेनिस का खेल—प्रक्षिप्तकन्दुकक्रीडा
टेलर (दर्जी)—सौचिक:
टेलर-चॉक—सौचिकवर्तिका
टैंक (हौज)—आहाव:
टैक्स—कर:
टोस्ट—भृष्टापूप:
ट्रैक्टर—खनियन्त्रम्

ठ

ठगना—वञ्च् (१० आ०), अभि+सं+धा (३ उ०)
ठीक (सत्य)—परमार्थत:, परमार्थेन, तत्त्वत: (अ०)
ठीक घटना—सम्+पद् (४ आ०)
ठुकराना—वि+हन् (२ प०)
ठोकना (कील आदि)—कील् (१ प०)

ड

डंठल—वृन्तम्
डँसना—दंश् (१ प०)
डंडी मारना—कूटमानं+कृ (८ उ०)
डबल रोटी—अभ्यूप:
डस्टर—मार्जक:
डाँटना—भर्त्स् (१० आ०)
डाइनिंग टेबुल—भोजनफलकम्
डाइनिंग रूम—भोजनगृहम्
डाइरेक्टर (एजुकेशन)—शिक्षासंचालक:
डाएबिटीज़—मधुमेह:, मधुप्रमेह:
डाक गाड़ी—द्राक्यानम्
डाकू—पाटच्चर: लुण्टाक:, परिपन्थिन् (पुं०)
डाक्टर—भिषग्वर:
डालना—नि+क्षिप् (६ उ०), पातय (णिच्)
डिनर पार्टी—सहभोज:, सग्धि: (स्त्री०)
डिप्टी डाइरेक्टर (शिक्षा)—उपशिक्षासंचालक:
डूबना—मस्ज् (६ प०)
डेस्क—लेखनपीठम्
ड्राइंग रूम—उपवेशगृहम्
ड्राईक्लीनर—निर्णेजक:

ढ

ढकना—सं+वृ (५ उ०)
ढका हुआ—प्रच्छन्न: (वि०)
ढाक—पलाश:
ढाल—पटह:
ढिंढोरा—डिण्डिम:
ढीठ—धृष्ट:
ढूँढना—अन्विष् (अनु+इष् ४ प०), गवेष् (१० उ०)
ढेला—लोष्ठम्
ढोलक—ढौलक:

त

तई (जलेबी आदि पकाने की)—पिष्टपचनम्
तकिया—उपधानम्, उपबर्ह:

तट—तटः, कूलम्
ततैया (भिरड़)—वरटा
तन्दूर (रोटी पकाने का)—कन्दुः (स्त्री०)
तपाना—तप् (१ प०)
तपेदिक—राजयक्ष्मः, राजयक्ष्मन् (पुं०)
तब तक—तावत् (अ०)
तबला—मुरजः
तरंग—वीचिः (स्त्री०) ऊर्मिः (स्त्री०), तरङ्गः
तरबूज—कालिन्दम्, तर्बुजम्
तराई—उपत्यका
तराजू—तुला
तवा—ऋजीषम्
तसला—धिपणा (स्त्री०)
तहमद (लुंगी)—प्रावृतम्
तश्तरी—शरावः
ताँबा—ताम्रकम्
ताँबे के बर्तन बनानेवाला—शौल्विकः
ताड़—तालः
तानपूरा (बाजा)—तानपूरः
तारा—तारा, ज्योतिष् (न०)
तालाब—सरस् (न०), तडागः
ताहरी (पुलाव)—पुलाकः
तिजोरी—लौहमञ्जूषा
तिपाई—त्रिपादिका
तिमंजिला (मकान)—त्रिभूमिकः
तिरस्कार—अवज्ञा
तिरस्कार होना—तिरस्+कृ (कर्म०)
तिरस्कृत—विप्रकृतः, तिरस्कृतः
तिरस्कृत करना—परि+भू (१ प०), तिरस्+कृ (८ उ०)
तिल—तिलः
तिलक—तिलकम्
तिल्ली—प्लीहा
तीव्र—तीक्ष्णम् (वि०)
तीव्र स्वर—तारः
तीसरा पहर—अपराह्णः
तुच्छता—अकिंचित्करत्वम्
तुरही (बाजा)—तूर्यम्
तूणीर—तूणीरः
तूतिया—तुत्थाञ्जनम्
तृप्त करना—तर्पय (णिच्)
तृप्त होना—तृप् (४ प०, १० उ०)
तेंदुआ—तरक्षुः (पुं०)
तेज—तीव्रम्, शातम् (तीक्ष्ण)
तेज (ओज)—तेजस् (न०)
तेज (तीक्ष्ण) करना—तिज् (१ आ०)
तेली—तैलकारः
तैरना—तॄ (१ प०), सं+तॄ (१ प०)
तैयार—निष्पन्नम्, संपन्नम्, सज्जः
तैयार होना—सं+पद् (४ आ०), सं+नह् (४ उ०)
तो—तु, तावत्, ततः (आ०)
तोड़ना—त्रुट् (१० आ०), भिद् (७ उ०), भञ्ज् (७ प०), खण्ड् (१० उ०)
तोता—शुकः, कीरः
तोप—शतघ्नी (स्त्री०)
तोरई—जालिनी (स्त्री०)
तोल—तोलः
तोलना—तोलनम्
तोलना—तुल् (१० उ०)
त्यक्त—उज्झितम्, त्यक्तम्, उत्सृष्टम्
त्वचा—त्वच् (स्त्री०), त्वचा

थ

थाना—रक्षिस्थानम्
थाली—थालिका, स्थालिका
थूकना—ष्ठीव् (१ प०, ४ प०)
थोड़ी देर—मुहूर्तम् (अ०)

द

दक्षिण, दिशा—दक्षिणा
दक्षिण की ओर—दक्षिणा, दक्षिणतः
दक्षिणायन—दक्षिणायनम्
दग्ध (जला हुआ)—प्लुष्टम् (वि०)
दण्ड देना—दण्ड् (१० उ०)
दबाना—अभि+भू (१ प०), दम् (४ प०), धृष् (१० उ०)
दया—अनुक्रोशः, दया
दया करना—दय् (१ आ०)
दराँती—दात्रम्

दरी—आस्तरणम्
दर्जी—सौचिकः
दर्रा—दरी (स्त्री०)
दलाल—शुल्काजीवः
दलाली—शुल्कम्
दस्त—अतिसारः
दस्त, आँवयुक्त—आमातिसारः
दस्त, खून-युक्त—रक्तातिसारः
दस्ता (कागज का)—दस्तकः
दही-बड़ा—दधिवटकः
दाँत—रदनः, दन्तः, रदः, दशनः
दाढ़ी—कूर्चम्
दातून—दन्तधावनम्
दादी—पितामही (स्त्री०)
दाना—कणः
दानी—वदान्यः, दानिन् (पुं०)
दाल—द्विदलम्, सूपः
दालमोठ—दालमुद्गः
दिन—अहन् (न०), दिनम्, दिवसः
दिन में—दिवा (अ०)
दिन-रात—नक्तन्दिवम्, अहोरात्रम्, रात्रिन्दिवम्
दिशा—काष्ठा, दिश् (स्त्री०), कुकुभ् (स्त्री०), आशा, दिशा
दीक्षा देना—दीक्ष् (१ आ०)
दीन—दुर्गतः, दीनः (वि०)
दीवार—भित्तिः (स्त्री०)
दुःख देना—पीड् (१० उ०), तुद् (६ उ०)
दुःखित हृदय—विमनस् (पुं०), विषण्णः
दुःखित होना—विषद् (वि+सद् १ प०), व्यथ् (१ आ०)
दुःखी होना—वि+पद् (४ आ०)
दुतई (दुहरी चादर)—द्वितयी (स्त्री०)
दुपहरिया (फूल)—बन्धूकः
दुमंजिला (मकान)—द्विभूमिकः (वि०)
दुराचारी—दुराचारः, दुर्वृत्तः (वि०)
दुलारा—दुर्ललितः (वि०)
दुहराना—आवृत्तिः (स्त्री०), पुनरावृत्तिः (स्त्री०)
दूकान—आपणः

दूकानदार—आपणिकः
दूत—चरः, दूतः
दूध—पयस् (न०), क्षीरम्, दुग्धम्
दूर—दूरम्, आरात् (आ०)
दूषित होना—दुष् (४ प०)
देखना—दृश् (१ प०), ईक्ष् (१ आ०), अवेक्ष्, प्रेक्ष्, समीक्ष् (१ आ०), अव+लोक् (१० उ०)
देना—दानम्, वितरणम्, विश्राणनम्
देना—दा (३ उ०), वि+तॄ (१ प०), उप+नी (१ उ०)
देर करना—कालहरणम्, विलम्बः
देवता—सुरः, निर्जरः, देवः, त्रिदशः, अमरः
देवदार—देवदारुः (पुं०)
देवर—देवरः
देवरानी—यातृ (स्त्री०)
देहली (द्वार की)—देहली (स्त्री०)
दो-तीन—द्वित्राः (वि०)
दोनों प्रकार से—उभयथा (अ०)
दोपहर—मध्याह्नः
दोपहर के बाद का समय (p.m.)—अपराह्णः
दोपहर से पहले का समय (a.m.)—पूर्वाह्णः
दो प्रकार से—द्विधा (अ०)
दोष लगाना—कुत्स् (१० आ०)
द्रोह करना—द्रुह् (४ प०)
द्वार—द्वारम्
द्वारपाल—प्रतीहारः, प्रतीहारी (स्त्री०)

ध

धड़—कबन्धः
धतूरा—धत्तूरः
धन—धनम्, वित्तम्, द्रविणम्, संपद् (स्त्री०)
धनिया—धान्यकम्
धर्मार्थ यज्ञादि—इष्टापूर्तम्
धनुर्धर—धन्विन् (पुं०), धनुर्धरः
धनुष—कार्मुकम्, इष्वासः कोदण्डम
धमकाना—तर्ज् (१० आ०)
धागा—सूत्रम्, तन्तुः (पुं०)
धान (भूसीसहित)—

धार रखनेवाला—शस्त्रमार्जः
धारण करना—धृ (१ उ०, १० उ०)
धार रखना—तीक्ष्णय (णिच्), शान् (१ उ०)
धुर्मुश (कंकड़ आदि कूटने का)—कोटिशः
धूप—आतपः
धूल—रजस् (न०), पांसुः (पुं०), धूलिः (स्त्री०), रेणुः (पुं०)
धोखा—कैतवम्
धोखा देना—वंञ्च् (१० आ०), वि+प्र+लभ् (१ आ०)
धोती—अधोवस्त्रम्, धौतवस्त्रम्
धोना—धाव् (१ उ०), प्र+क्षल् (१० उ०), निज् (३ उ०)
धोबिन—रजकी (स्त्री०)
धोबी—रजकः, निर्णेजकः
धोंकनी—भस्त्रा
ध्यान देना—अव+धा (३ उ०)
ध्यान रखना—अपेक्ष् (अप्+ईक्ष् १ आ०)
ध्यान से देखना—निरीक्ष् (१ आ०)

न

नक्षत्र—नक्षत्रम्
नगद—मूल्येन (तृतीया)
नगर—पत्तनम्, नगरम्, पुरम्
नगाड़ा—दुन्दुभिः (पुं०, स्त्री०)
नदी—आपगा, सरित् (स्त्री०), निम्नगा, स्रवन्ती
ननँद—ननान्दृ (स्त्री०)
नपुंसक—क्लीबम्, नपुंसकम् (-कः)
नफीरी (बीज बाजार)—वीणावाद्यम्
नमक—लवणम्
नमक, साँभर—रोमकम्, रौमकम्
नमक, सेंधा—सैन्धवम्, सैन्धवः
नमकीन (अन्न)—लवणान्नम्
नमकीन सेव—सूत्रक :
नम्र—विनीतः, नम्रः (वि०)
नलाई (खेत की सफाई)—क्षेत्रपरिष्कारः
नवग्रह—नव ग्रहाः
नष्ट होना—नश् (४ प०), ध्वंस् (१ आ०), उत्+सद् (१ प०)
नस—शिरा
नाइट ड्रेस—नक्तकम्
नाइलोन का (वस्त्र)—नवलीनकम्
नाई—नापितः
नाक—घ्राणम्, नासिका, नासा
नाक का फूल—नासापुष्पम्
नाचना—नृत् (४ प०)
नाड़ी—नाडिः (स्त्री०), नाडी (स्त्री०)
नातिन—नप्त्री (स्त्री०)
नाती—नप्तृ (पुं०)
नाना—मातामहः
नानी—मातामही (स्त्री०)
नापना—मा (२ प०, ३ आ०)
नारंगी—नारङ्गम्
नारियल—नारिकेलः (वृक्ष), नारिकेलम् (फल)
नाला (पहाड़ी)—निर्झरः, प्रणालः
नाली—प्रणालिका, नाली (स्त्री०), नालिः (स्त्री०)
नाव—नौः (स्त्री०), नौका
नाविक—कर्णधारः, नाविकः
नाशपाती—अमृतफलम्
नाश्ता—कल्यवर्तः, प्रातराशः
निःसंकोच—विस्रब्धम्, विश्रब्धम्, निःशङ्कम्
निकलना—निः+सृ (१ प०), प्र+भू (१ प०), उद्+भू (१ प०), निर्+गम् (१ प०), उद्+गम् (१ प०)
निकालना—निःसारय (णिच्)
निगलना—नि+गॄ (६ प०)
निचोड़ना—सु (५ उ०)
निन्दा करना—निन्द् (१ प०), अधि+क्षिप् (६ उ०)
निन्दित—अवगीतः, विगीतः, निन्दितः
निब—लेखनीमुखम्
निमोनिया—प्रलापकज्वरः
नियम—नियमः
निरन्तर—अभीक्ष्णम्, अजस्रम्, अनवरतम्
निरपराध—अनागस् (पुं०), निरपराधः
निर्णय करना—निर्+णी (१ उ०)
निर्भय—निर्भयम्, नष्टाशङ्कः
निर्यात (एक्सपोर्ट)—निर्यातः

निर्यात पर शुल्क—निर्यातशुल्कम्
निवाड़—निवार:
निशान लगाना—चिह्न (१० उ०)
निश्चय करना—निश्चि (निस्+चि ५ उ०)
निश्चय से—नूनम्, खलु वै, नाम (अ०)
नीच—निकृष्ट:, अधम:, अपकृष्ट:, अपसद:
नीबू—जम्बीरम्
नीबू, कागजी—जम्बीरकम्
नीबू, विजौरा—बीजपूर:
नीम—निम्ब:
नील—नीली (स्त्री०)
नीलकण्ठ (पक्षी)—चाप:
नीलम (मणि)—इन्द्रनील:
नील लगाना—नीली+कृ (८ उ०)
नेट (जाल)—जालम्
नेत्र—लोचनम्, नेत्रम्, चक्षुष् (न०)
नेल कटर—नखनिकृन्तनम्
नेल पालिश—नखरञ्जनम्
नेवारी (फूल)—नवमालिका
नोट—नाणकम्
नौकर—कर्मकर:, भृत्य:, किंकर:
नौका, छोटी—उडुप:
नौ रस—नव रसा:
न्योता देना—नि+मन्त्र् (१० आ०)

प

पकवान—पक्वान्नम्
पकाना—पच् (१ उ०)
पका हुआ—पक्वम्
पकौड़ी—पक्ववटिका
परवल (साग)—पटोल:
पटरा (खेत बराबर करने का)—लोष्ठभेदन:
पट्टी—पट्टिका
पठार—अधित्यका
पड़ना—पत् (१ प०), नि+पत् (१ प०)
पढ़ाना—पाठय (णिच्), अध्यापय (णिच्)
पतंगा—शलभ:
पतला—अपचित:, तनु: (वि०), कृश:
पताका—वैजयन्ती (स्त्री०), पताका
पतीली—स्थाली (स्त्री०)
पत्ता—पर्णम्, पत्रम्
पत्थर—ग्रावन् (पुं०), अश्मन् (पुं०), उपल:
पत्रलेखा (सजाना)—पत्रलेखा
पद्मसमूह—नलिनी (स्त्री०)
पनडुब्बी—जलान्तरितपोत:
पनवाड़ी (पानवाला)—ताम्बूलिक:
पन्ना (रत्न)—मरकतम्
पपड़ी (मिठाई)—पर्पटी (स्त्री०)
परकोटा—प्राकार:
परवाह करना—ईक्ष् (१ आ०), प्र+ईक्ष् (१ आ०)
पराँठा—पूपिका
पराग—मकरन्द:, पराग:
पराल (फूँस)—पलाल:
परीक्षा करना—परीक्ष् (परि+ईक्ष् १ आ०)
परोसना—परि+वेषय (णिच्)
पर्वत—अद्रि: (पुं०), गिरि: (पुं०), भूभृत् (पुं०)
पलंग—पल्यङ्क:
पलक—पक्ष्मन् (न०)
पवित्र—पूतम्, पवित्रम्, पावनम् (वि०)
पश्चिम—प्रतीची (स्त्री०)
पश्चिम की ओर—प्रत्यक् (अ०)
पहनना—परि+धा (३ उ०)
पहलवान—मल्ल:
पहुँचना—आ+सद् (१ प०), प्र+आप् (५ प०)
पहुँचाना—प्रापय (णिच्)
पहुँची (गहना)—कटक:
पाँच-छ:—पञ्चष:
पाउडर—चूर्णकम्
पाकड़ (वृक्ष)—प्लक्ष:
पाखण्डी—पाषण्डिन् (पुं०)
पाजेब (गहना)—नूपुरम्
पाठशाला—पाठशाला
पाठ्यपुस्तक—पाठ्यपुस्तकम्
पान—ताम्बूलम्
पानदान—ताम्बूलकरङ्क: .०), प्रति+पद्
पाना—आप् (५ प०), प्र+आ०), समधि+गम्
(४ आ०), वि
(१ प०)

पानी का जहाज—पोतः
पापड़—पर्पटः
पायजामा—पादयामः
पार करना—तॄ (१ प०), उत्+तॄ (१ प०), निस्+तॄ (१ प०)
पारा—पारदः
पार्क—पुरोद्यानम्, पुरोपवनम्
पार्वती—शर्वणी (स्त्री०), गौरी (स्त्री०), भवानी (स्त्री०)
पालक (साग)—पालकी (स्त्री०)
पालन करना—भुज् (७ प०), तन्त्र् (१० आ०), पा (२ प०), पालय (णिच्)
पालिश—पादुरञ्जनम्, पादुरञ्जकः
पास जाना—उप+गम् (१ प०), उप+सद् (१ प०)
पासा (जूए का)—अक्षाः (बहु०)
पाहुन (अतिथि)—प्राघुणः, अभ्यागतः
पिघलाना—द्रावय (णिच्)
पिघला हुआ—द्रुतम्, गलितम्, द्रवीभूतम्
पिलाना—पायय (पा+णिच्)
पियानो (बाजा)—तन्त्रीकवाद्यम्
पिस्ता—अङ्कोटम्
पिस्तौल—लघुभुशुण्डिः (स्त्री०), गुलिकास्त्रम्
पीछा करना—अनु+पत् (१ प०)
पीछे चलना—अनु+चर् (१ प०), अनु+वृत् (१ आ०)
पीछे जाना—अनु+गम् (१ प०)
पीछे-पीछे—अनुपदम् (अ०)
पीठ—पृष्ठम्
पीतल—पीतलम्
पीपल—अश्वत्थः
पीपर (ओषधि)—पिप्पली (स्त्री०)
पीलिया (रोग)—पाण्डुः (पुं०)
पीसना—पिष् (७ प०)
पुखराज (रत्न)—पुष्परागः, पुष्पराजः
पुताईवाला—लेपकः
पुत्र—आत्मजः, सूनुः (पुं०), तनयः, अपत्यम्
पुत्रवधू—स्नुषा
पुलाव—पुलाकः
पुष्ट करना—पुष् (४ प०)

पुष्पमाला—स्रज् (स्त्री०)
पूँजी—मूलधनम्
पूआ—पूपः
पूजा—सपर्या, अर्चा, अर्हणा, अपचितिः (स्त्री०)
पूजा करना—अर्च् (१ प०), पूज् (१० उ०)
पूज्य—प्रतीक्ष्यः, पूज्यः
पूरा करना—पृ (३ प०, १० उ०)
पूरी—पूलिका
पूर्णिमा—राका, पूर्णिमा
पूर्व—प्राची (स्त्री०)
पूर्व की ओर—प्राक् (अ०)
पृथिवी—वसुधा, अवनिः (स्त्री०), भूः (स्त्री०)
पेचिश—प्रवाहिका, आमातिसारः
पेट—कुक्षिः (पुं०), उदरम्, जठरः
पेटीकोट—अन्तरीयम्
पेटू—औदरिकः, कुक्षिंभरिः (पुं०)
पेठे की मिठाई—कौष्माण्डम्
पेड़ा (मिठाई)—पिण्डः
पेन्टर—चित्रकारः
पेन्सिल—तूलिका
पेस्ट्री—पिष्टान्नम्
पैदल चलनेवाला—पदातिः (पुं०)
पैदल सेना—पदातिः (पुं०)
पैदा होना—उद्+भू (१ प०), उत्+पद् (४ आ०)
पैन्ट—आप्रपदीनम्
पैर—पादः
पैरेलिसिस (लकवा०)—पक्षाघातः
पोंछना—मार्जय (णिच्)
पोतना—लिप् (६ उ०)
पोता—पौत्रः
पोती—पौत्री (स्त्री०)
पोर्टिको (बरामदा)—प्रकोष्ठः
पोस्ता—पौष्टिकम्
प्याऊ—प्रपा
प्याज—पलाण्डुः (पुं०, न०)
प्याल (फल)—प्रियालम्
प्याला—चषकः

प्रकट होना—आविर् + भू (१ प०)
प्रचार होना—प्र+चर् (१ प०)
प्रणाम करना—प्र+णम् (१ प०), वन्द् (१ आ०)
प्रतिज्ञा करना—प्रति+ज्ञा (९ आ०)
प्रतीत होना—आ+पत् (१ प०)
प्रतीक्षा करना—प्रतीक्ष् (१ आ०), अपेक्ष् (१ आ०)
प्रमेह—प्रमेहः
प्रसन्न चित्त—प्रसन्नः, हृष्टमानसः
प्रसन्न होना—प्र+सद् (१ प०), मुद् (१ आ०)
प्रसिद्ध—प्रसिद्धः, प्रथितः विश्रुतः
प्रस्तुत करना—प्र+स्तु (२ उ०)
प्रस्थान करना—प्र+स्था (१ आ०)
प्राइम मिनिस्टर—प्रधानमन्त्रिन् (पुं०)
प्राण—प्राणाः, असवः (असु, बहु०)
प्रातः—प्रातः (अ०), प्रत्यूषः
प्राप्त किया—आसादितम्, प्राप्तम्, लब्धम्
प्राप्त करना—प्राप् (५ प०), लभ् (१ आ०)
प्रारम्भ करना—आ+रभ् (१ आ०)
प्रार्थना करना—प्र+अर्थ् (१० आ०)
प्रिन्सिपल—आचार्यः, आचार्या (स्त्री०)
प्रेम करना—स्निह् (४ प०)
प्रेरणा देना—प्र+ईर् (१० उ०)
प्रेरित—ईरितम्, प्रेरितम्
प्रोफेसर—प्राध्यापकः
प्रौढ—प्रौढः, पौढम् (वि०)
प्लास्टर—प्रलेपः
प्लेट—शरावः

फ

फड़कना—स्पन्द् (१ आ०), स्फुर् (६ प०)
फर्नीचर—उपस्करः
फर्श—कुट्टिमम्
फल मिलना—वि+पच् (१ उ०)
फहराना—उत्+तुल् (१० उ०)
फाइल—पत्रसंचयिनी (स्त्री०)
फाउन्टेन पेन—धारालेखनी (स्त्री०)
फालसा (फल)—पुंनागम्
फावड़ा—खनित्रम्
फासफोरस—भास्वरम्
फिटकरी—स्फटिका
फीस—शुल्कः
फुंसी—पिटिका
फुटबॉल—पादकन्दुकः,—कम्
फुफेरा भाई—पैतृष्वस्रीयः
फुलका (रोटी)—पूपला
फूँकना—ध्मा (१ प०)
फूँस—तृणम्
फूआ—पितृष्वसृ (स्त्री०)
फूल (धातु)—कांस्यम्
फूल—प्रसूनम्, कुसुमम्, पुष्पम्, सुमनस् (न०)
फेंकना—अस् (४ प०), क्षिप् (६ उ०)
फेफड़ा—फुप्फुसम्
फेरना—आवर्ति (णिच्)
फैक्टरी—शिल्पशाला
फैलना—प्रथ् (१ आ०)
फैलाना—कॄ (६ प०), तन् (८ उ०)
फोड़ा—पिटकः
फौजी आदमी—सैनिकः
फ्लु (इन्फ्लुएंजा)—शीतज्वरः

ब

बँटखरा (बाट)—तुलामानम्
बकरा—अजः
बकवाद करना—प्र+लप् (१ प०)
बगुला—बकः
बच्चों का पार्क—बालोद्यानम्
बछड़ा—वत्सः
बजे—वादनम्
बड़ (वृक्ष)—न्यग्रोधः
बड़हल (फल)—लकुचम्
बड़ा भाई—अग्रजः
बढ़ई—त्वष्टृ (पुं०)
बढ़कर—अति (अ०)
बढ़ना—एध् (१ आ०), उप+चि (५ उ०)
बतख—वर्तकः
बताशा—वाताशः
बथुआ (साग)—वास्तुकम्, वास्तूकम्
बदमाश—जाल्मः, पापः, रेफः

बदलना—परि+णम् (१ उ०)
बधाई देना—दिष्ट्या वृध् (१ आ०)
बना-ठना—स्वलंकृतः, सुभूषितः
बनाना—सृज् (६ प०), रच् (१० उ०)
बनावटी—कृत्रिमम्, कृतकम् (वि०)
बन्द करना—अपि (पि)+धा (३ उ०)
बन्दर—शाखामृगः, कपिः (पुं०)
बन्दूक—भुशुण्डिः (स्त्री०), भुशुण्डी(स्त्री०)
बबूल (वृक्ष)—करीरः
वम—आग्नेयास्त्रम्
वम फेंकना—आग्नेयास्त्रम्+क्षिप् (६ उ०)
बराबर करना—समी+कृ (८ उ०)
बराबरी करना—प्र+भू (१ प०)
बरामदा—वरण्डः
बर्छी—शल्यम्
बर्ताव करना—वृत् (१ आ०)
बर्फ—अवश्यायः, हिमम्, तुषारः
बर्फी (मिठाई)—हैमी (स्त्री०)
बर्मा (औजार)—प्राविधः
बवासीर—अर्शस् (न०)
बस—अलम् (अ०), कृतम् (अ०), खलु (अ०)
बसूला—तक्षणी (स्त्री०)
बस्ता—वेष्टनम्, प्रसेवः
वस्ती—आवासस्थानम्
बहना—वह् (१ उ०), स्यन्द् (१ आ०)
बहाना—अपदेशः, व्यपदेशः
बहाना करना—अप+दिश् (६ उ०)
बहिन—स्वसृ (स्त्री०), भगिनी (स्त्री०)
वही—वणिक्पत्रिका
वहुमूत्र—मधुमेहः
बहेड़ा (ओषधि)—विभीतकः
बहेलिया—शाकुनिकः, व्याधः
बाँझ (वृक्ष)—सिन्दूरः
बाँधना—बन्ध् (९ प०), पश् (१० उ०)
बाँसुरी—मुरली (स्त्री०), वंशी (स्त्री०)
बाँह—वाहुः (पुं०), भुजः
बाज (पक्षी)—श्येनः

बाजरा (अन्न)—प्रियङ्गुः (पुं०)
बाजार—विपणिः (स्त्री०), विपणी (स्त्री०)
वाजूबन्द (गहना)—केयूरम्
वाट (तोलने के)—तुलामानम्
बाड़—वृतिः (स्त्री०)
बाण—विशिखः, शरः, बाणः
बाथरूम—स्नानागारम्
बाद में—पश्चात् (अ०), अनु (अ०)
बादाम—वातादम्
बार-बार—मुहुः (अ०), अभीक्ष्णम् (अ०)
बारी से (बारी-बारी से)—पर्यायशः (अ०)
बारूद—अग्निचूर्णम्
बारे में—अन्तरेण, अधिकृत्य (अ०)
बाल—शिरोरुहः, केशः
बाल (अन्न की)—कणिशः, कणिशम्
बाल काटने की मशीन—कर्तनी (स्त्री०)
बालटी (बर्तन)—उदञ्चनम्
बालूशाही (मिठाई)—मधुमण्ठः
बालों का काँटा—केशशूकः
बासमती चावल—अणुः (पुं०)
बाहर जाना (एक्सपोर्ट)—निर्यातः
बाहर से आना (इम्पोर्ट)—आयातः
बिकवाना—विक्रापय (णिच्, पर०)
बिक्री—विक्रयः
बिगड़ना—दुष् (४ प०)
बिगुल (बाजा)—संज्ञाशंखः
बिच्छू—वृश्चिकः
बिजली—विद्युत् (स्त्री०), सौदामिनी (स्त्री०)
बिजलीघर—विद्युद्गृहम्
बिताना—नी (१ उ०), यापय (णिच्, उ०)
बिदाई लेना—आ+मन्त्र् (१० आ०), आ+प्रच्छ् (६ आ०)
बिना—अन्तरेण (अ०), विना (अ०), ऋते (अ०)
बिन्दी—बिन्दुः (पुं०)
बिल्ली—मार्जारी (स्त्री०)
बिसकुट—पिष्टकः
बिस्तर—शय्या
बींधना—व्यध् (४ प०)

बीच में—अन्तरा, अन्तरे (अ०)
बीड़ी—तमाखुवीटिका
बीतना (समय)—गम् (१ प०), अति+वृत् (१ आ०)
बीन बाजा—वीणावाद्यम्
बुकरैक—पुस्तकाधानम्
बुखार—ज्वरः
बुनना—वे (१ उ०)
बुरका—निचोलः
बुर्जी (अटारी)—अट्टः
बुलाक (गहना)—नासाभरणम्
बुलाना—आ+मन्त्र् (१० आ०), आ+ह्वे (१ उ०)
बूरा (चीनी)—शर्करा, सिता
बेंत—वेतसः
बेचना—वि+क्री (९ आ०)
बेचनेवाला—विक्रेतृ (पुं०)
बेणी (गहना)—मूर्धाभरणम्
बेन्चं—काष्ठासनम्
बेर—बदरीफलम्, कर्कन्धुः (स्त्री०)
बेल (फल)—विल्वम्, श्रीफलम्
बेला (फूल)—मल्लिका
बेसन—चणकचूर्णम्
बैंकिंग—कुसीदवृत्तिः (स्त्री०)
बैंड—वादित्रगणः
बैंगन—भण्टाकी (स्त्री०)
बैठना—सद् (१ प०), नि+सद् (१ प०), आस् (२ आ०)
बैडमिन्टन—पत्रिक्रीडा
बैना (वायन)—वायनम्
बैल—उक्षन् (पुं०), अनड्वह् (पुं०), गो (पुं०)
बोना—वप् (१ उ०)
बौर—वल्लरी (स्त्री०)
ब्रह्म—उद्गीथः, ब्रह्मन् (पुं०, न०)
ब्रह्मा—वेधस् (पुं०), ब्रह्मन् (पुं०)
ब्राह्मण—द्विजः, द्विजातिः (पुं०), अग्रजन्मन् (पुं०)
ब्रश—वर्तिका, रोममार्जनी (स्त्री०)
ब्रश दाँत का—दन्तधावनम्
ब्रैसलेट (बाजूबन्द)—केयूरम्

ब्लड-प्रेसर (रोग)—रक्तचापः
ब्लाउज—कञ्चुलिका
ब्लाटिंग पेपर—मसीशोपः
ब्लेड (बाल बनाने का)—क्षुरकम्
ब्लैक बोर्ड—श्यामफलकम्

भ

भंगी—संमार्जकः
भँवर—आवर्तः
भड़भूजा—भृष्टकारः, भ्राष्ट्रमिन्धः
भतीजा—भ्रात्रीयः, भ्रातृव्यः, भ्रातृपुत्रः
भरना—पूर् (१० उ०)
भले ही—कामम् (अ०)
भाँटा—भण्टाकी (स्त्री०)
भाग्यवान्—सुकृतिन् (पुं०)
भाग्य से—दिष्ट्या (अ०)
भाड़—भ्राष्ट्रम्
भान्जा (भानजा)—स्वस्रीयः, भागिनेयः
भाप—वाष्पम्
भाभी (भाई की स्त्री)—भ्रातृजाया
भारी—गुरुः (वि०)
भाला—प्रासः
भालू—भल्लूकः
भाव (बाजार भाव)—अर्घः
भाव गिरना—अर्घापचितिः (स्त्री०)
भाव चढ़ना—अर्घोपचितिः (स्त्री०)
भावर (तराई)—उपत्यका
भिण्डी (साग)—भिण्डकः
भूस—बुसम्
भूख—बुभुक्षा, अशनाया
भूखा—बुभुक्षितः, अशनायितः (वि०)
भूनना—भ्रस्ज् (६ उ०)
भूलना—वि+स्मृ (१ प०)
भूसी—तुषः
भू-सेनापति—भूसेनाध्यक्षः
भेजना—प्रेषय (णिच्, उ०), प्र+हि (५ प०)
भेड़—मेषः

भेड़िया—वृकः
भैंस—महिषी (स्त्री०)
भैंसा—महिषः
भोली-भाली—मुग्धा
भौं—भ्रूः (स्त्री०)
भौंरा—षट्पदः, भ्रमर, द्विरेफः, अलिः (पुं०)

म

मँगाना—आनायय (आनी+णिच्)
मंजन—दन्तचूर्णम्
मँजीरा—मंजीरम्
मंडप—मण्डपः
मंडी—महाहट्टः
मकड़ी—तन्तुनाभः, लूता, ऊर्णनाभः
मकान—भवनम्, सौधः प्रासादः, निलयः
मकोय (फल)—स्वर्णक्षीरी (स्त्री०)
मक्खन—नवनीतम्, हैयंगवीनम्
मगर—मकरः नक्रः
मछली—मीनः, मत्स्यः, झषः
मजदूर—श्रमिकः
मटर—कलायः
मट्ठा—तक्रम्
मथना—मन्थ् (९ उ०)
मधुमक्खी—सरघा, मधुमक्षिका
मध्यम स्वर—मध्यः, मध्यस्वरः
मन—स्वान्तम्, हृद् (न०), मनस् (न०), मानसम्
मन लगना—रम् (१ आ०)
मनाना—अनु+नी (१ उ०)
मनुष्य—नरः, द्विपाद् (पुं०), मर्त्यः
मनोहर—मनोज्ञम्, मञ्जुलम्, हृद्यम्, अभीष्टम्
मन्त्रणा करना—मन्त्र् (१० आ०)
मन्त्री—अमात्यः, सचिवः, मन्त्रिन् (पुं०)
मन्दी (भाव की)—मन्दायनम्
मरना—मृ (६ आ०), उप+रम् (१ आ०)
मरम्मत करना—सं०+धा (३ उ०)
मर्म—मर्मन् (न०)
मलाई—सन्तानिका
मलेरिया—विषमज्वरः
मशीन—यन्त्रम्
मसाला—व्यञ्जनम्, उपस्करः
मसाला डालना—उपस्कृ (८ उ०)
मसालेदार वस्तु—व्यञ्जनम्
मसूर—मसूरः
महँगा—महार्घम्
महल—प्रासादः, सौधः, हर्म्यम्
महावर—अलक्तकः
महुआ (वृक्ष)—मधूकः
माँजना—मृज् (२ प०, १० उ०)
मांस—आमिषम्, मांसम्
माथा—ललाटम्
मानना—मन् (४ आ०, ८ आ०), आ+स्था (१ आ०)
मानसून—जलदागमः, प्रावृष् (द्)
मामा—मातुलः
मामी—मातुलानी (स्त्री०)
मारना—हन् (२ प०), तड् (१० उ०), सो (४ प०)
मार्ग—वर्त्मन् (न०), पथिन् (पुं०), मार्गः, सरणिः (स्त्री०)
मालपूआ—अपूपः
माली—मालाकारः
मिजराब (सितार बजाने का)—कोणः
मिट्टी—मृत्तिका, मृद् (स्त्री०), मृत्स्ना
मिठाई—मिष्टान्नम्
मित्रता—सख्यम्, सौहृदम्, सौहार्दम्, संगतम्
मिनट—कला
मिर्च—मरीचम्
मिल (फैक्टरी)—मिलः
मिलना—मिल् (६ उ०), सं०+गम् (१ आ०)
मिलाना—योजय (युज्+णिच्), सं०+मिश्रय (णिच्)
मिस्त्री (कारीगर)—यान्त्रिकः
मिस्सा आटा—मिश्रचूर्णम्
मीठा—मधुरम् (वि०)
मीठी गोली (टॉफी)—गुल्यः
मुँह—आननम्, वदनम्, मुखम्, आस्यम्
मुकरना—अप+ज्ञा (९ आ०)
मुकुट—मुकुटम्

मुख्य द्वार—गोपुरम्
मुख्य सड़क—राजमार्गः
मुट्ठी—मुष्टिः (पुं०, स्त्री०), मुष्टिका
मुनि—मुनिः (पुं०), वाचंयमः, दान्तः
मुनीम—लेखकः
मुरब्बा—मिष्टपाकः
मुसम्मी (फल)—मातुलुङ्गः
मुसाफिरखाना—पथिकालयः
मूँग—मुद्गः
मूँगरी (मिट्टी तोड़ने की)—लोष्ठभेदनः
मूँगा (रत्न)—प्रवालम्
मूँछ—श्मश्रु (न०)
मूर्ख—वैधेयः बालिशः, मूढः
मूर्खता—जाड्यम्
मूली—मूलकम्
मूल्य—मूल्यम्
मूसलाधार वर्षा—आसारः
मृग—कुरङ्गः, हरिणः, मृगः
मृत—हतः, मृतः, उपरतः
मृत्यु—मृत्युः (पुं०), निधनम्
मेकेनिक (कारीगर)—यान्त्रिकः
मेघ—जीमूतः, वारिदः, बलाहकः
मेज—फलकम्
मेढक—भेकः, दर्दुरः, मण्डूकः
मेज, पढाई की—लेखनफलकम्
मेयर—निगमाध्यक्षः
मेवा—शुष्कफलम्
मेहँदी—मेन्धिका
मैंडा (खेत बराबर करने का)—लोष्ठभेदनः
मैच—क्रीडाप्रतियोगिता
मैना—सारिका
मोटा—उपचितः, पृथुः, गुरुः (वि०)
मोती—मुक्ता, मौक्तिकम्
मोती की माला—मुक्तावली (स्त्री०)
मोतीझरा (रोग)—मन्थरज्वरः
मोर—बर्हिन् (पुं०), शिखिन् (पुं०), मयूरः
मोर्चाबन्दी करना—परिखया+वेष्टय (णिच्)
मोहनभोग (मिठाई)—मोहनभोगः
मौका—कार्यकालम्
मौन—वाचंयमः, जोषम् (अ०)
मौलसरी (वृक्ष)—बकुलः
मौसी—मातृष्वसृ (स्त्री०)
मौसेरा भाई—मातृष्वस्रेयः
म्युनिसिपल चेयरमैन—नगराध्यक्षः
म्युनिसिपलिटी—नगरपालिका

य

यज्ञ—अध्वरः, यज्ञः, क्रतुः (पुं०)
यज्ञ-कर्ता—यज्वन् (पुं०)
यत्न करना—यत् (१ आ०), व्यव+सो (४ प०)
यम—कृतान्तः
यश—यशस् (न०), कीर्तिः (स्त्री०)
याद करना—स्मृ (१ प०), सं+स्मृ (१ प०), अधि+इ (२ प०)
युद्ध—आहवः, आजिः (पुं०, स्त्री०), जन्यम्
यूनानी लिपि—यवनानी (स्त्री०)
यूनिफार्म—एकपरिधानम्, एकवेषः
यूनिवर्सिटी—विश्वविद्यालयः
योग्य होना—अर्ह् (१ प०)
योद्धा—योधः

र

रँगना—रञ्जय (णिच्)
रंगबिरंगे—नानावर्णानि (बहु०, वि०)
रँगरेज—रञ्जकः
रकम—राशिः, धनराशिः (पुं०)
रक्षा करना—रक्ष् (१ प०), पाल् (१० उ०), त्रै (१आ०), पा (२ प०)
रखना—नि+धा (३ उ०)
रज—रजस् (न०)
रजाई—नीशारः
रजिस्टर—पञ्जिका
रजिस्ट्रार—प्रस्तोतृ (पुं०)
रणकुशल—सांयुगीनः
रथ—स्यन्दनम्

रबड़—घर्षकः

रबड़ी (मिठाई)—कूर्चिका

रसोई—रसवती (स्त्री०), पाकशाला, महानसम्

रहना—स्था (१ प०), वस् (१ प०), अधि+वस्, उप+वस् (१ प०)

राँगा—त्रपु (न०)

राक्षस—असुरः, दैत्यः, दानवः

राज (मिस्त्री)—स्थपतिः (पुं०)

राजदूत—राजदूतः

राजा—अवनिपतिः, भूपतिः, भूभृत् (तीनों पुं०)

रात—विभावरी (स्त्री०), क्षपा, रात्रिः (स्त्री०)

रात में—नक्तम् (अ०)

रायता—राज्यक्तम्

रिवाज—प्रचलनम्, संप्रचलनम्

रीठा—फेनिलः

रीढ़ की हड्डी—पृष्ठास्थि (न०)

रुकना—स्था (१ प०), वि+रम् (१ प०), अव+स्था (१ आ०)

रूई—तूलः, तूलम्

रूज (गालों की लाली)—कपोलरञ्जनम्

रेगिस्तान—मरुः (पुं०), धन्वन् (पुं०, न०)

रेट (भाव)—अर्घः

रेतीला किनारा—सैकतम्

रेफरी—निर्णायकः

रेशमी—कौशेयम्

रैकेट (खेलने का)—काष्ठपरिष्करः

रोकना—रुध् (७ उ०)

रोग—रुज् (स्त्री०), रोगः, आमयः

रोजनामचा (कैशबुक, रोकड़ बही)—दैनिक-पञ्जिका

रोटी—रोटिका

रोना—रुद् (२ प०), वि+लप् (१ प०)

ल

लंच (मध्याह्न भोजन)—सहभोजः, सग्धिः (स्त्री०)

लकवा मारना—पक्षाघातः

लकीर—रेखा

लक्ष्मी—लक्ष्मीः (स्त्री०), श्रीः (स्त्री०), पद्मा, कमला

लक्ष्य—लक्ष्यम्, शरव्यम्

लगना—प्र+वृत् (१ आ०)

लगाना—नि+युज् (१० उ०), सं+धा (३ उ०)

लच्छे (गहना)—पादाभरणम्

लज्जित—ह्रीणः (वि०)

लज्जित होना—त्रप् (१ आ०), लज्ज् (६ आ०), ह्री (३ प०)

लड़ने का इच्छुक—योद्धुकामः, कलहकामः

लड़ाई का जहाज (पानी का)—युद्धपोतः

लड़ाई का विमान—युद्धविमानम्

लड्डू—मोदकः, मोदकम्

लता—व्रततिः (स्त्री०), वीरुध् (स्त्री०), लता

लपसी (जौ का हलुआ)—यवागूः (स्त्री०)

लस्सी (दही की)—दाधिकम्

लहसुन—लशुनम्

लहसुनिया (रत्न)—वैदूर्यम्

लाक्षारस—अलक्तकः, लाक्षारसः

लाख (धातु)—जतु (न०)

लाना—आ+नी (१ उ०), हृ (१ उ०), आ+हृ (१ उ०)

लिए—कृते (अ०)

लिपस्टिक—ओष्ठरञ्जनम्

लिफ्ट (मशीन)—उत्थापनयन्त्रम्

लिसोड़ा (वृक्ष)—श्लेष्मातकः

लीची (फल)—लीचिका

लीपना—लिप् (६ उ०)

लेखा बही—नामानुक्रमपञ्जिका

ले जाना—नी (१ उ०), हृ (१ उ०), वह् (१ उ०)

लेना—ग्रह् (९ उ०), आ+दा (३ आ०)

लेनेवाला—ग्राहकः

लोई (ऊनी)—रल्लकः

लोकसभा—लोकसभा, संसद् (स्त्री०)

लोटा—करकः, कमण्डलुः (पुं०)

लोबिया—वनमुद्गः

लोभी—लुब्धः, गृध्नुः (पुं०)

लोमड़ी—लोमशा

लोहा करना (वस्त्रों पर)—अयस्+कृ (८ उ०)
लोहार—लौहकार:
लोहे का टोप—शिरस्त्रम्
लोहे की चादर—लौहफलकम्
लौंग—लवङ्गम्
लौकी—अलाबू: (स्त्री०)
लौटकर आना—आ+वृत् (१ आ०), प्रत्या+गम् (१ प०)
लौटना—नि+वृत् (१ आ०), परा+गम् (१ प०)

व

वंचित—विप्रलब्ध:
वंश—अन्वय:, अन्ववाय:, वंश:
वकील—प्राड्विवाक:
वचन—वचस् (न०), वचनम्
वज्र—पवि: (पुं०), वज्रम्, कुलिशम्, अशनि: (पुं०)
वन—काननम्, विपिनम्, वनम्, अरण्यम्
वरुण—प्रचेतस् (पुं०), पाशिन् (पुं०), वरुण:
वर्दी—सैन्यवेष:
वर्षा—वृष्टि: (स्त्री०), वर्षा
वर्षाकाल—प्रावृष् (स्त्री०)
वस्तुत:—नूनम्, किल, खलु, वै, तावत् (अ०)
वहाँ से—तत: (अ०)
वाइस चान्सलर—उपकुलपति: (पुं०)
वाटर वर्क्स—उदयन्त्रम्
वाणी—सरस्वती, वाच् (स्त्री०), वाणी (स्त्री०)
वायु—मातरिश्वन् (पुं०), पवन:, अनिल:
वायुसेनापति—वायुसेनाध्यक्ष:
वायोलिन (बाजा)—सारङ्गी (स्त्री०)
वाली-बॉल—क्षेपकन्दुक:
विचरण करना—वि+चर् (१ प०)
विजयी—जिष्णु: (पु०), विजयिन् (पुं०)
विद्युत्—सौदामिनी (स्त्री०), विद्युत् (स्त्री०)
विद्वान्—विद्वस् (पुं०) विपश्चित् (पुं०) सुधी (पुं०), कोविद:, बुध:, मनीषिन् (पुं०) सूरि: (पुं०), निष्णात:
विपत्ति—विपत्ति: (स्त्री०), विपद् (स्त्री०) व्यसनम्
विमान—विमानम्
विवाह करना—परि+णी (१ उ०), उप+यम् (१ आ०)
विश्राम करना—विश्रम:, विश्राम:
विश्वास करना—वि+श्वस् (२ प०)
विष्णु—हरि:, अच्युत:
विस्तृत—ततम्, विततम्, प्रसृतम्
वीर्य—शुक्रम्
वृक्ष—विटपिन् (पुं०), पादप:, अनोकह:, शाखिन् (पुं०)
वृद्ध—प्रवयस् (पुं०), वृद्ध:
वेतन—वेतनम्
वेतन पर नियुक्त नौकर—नैतनिक:
वेदपाठी—श्रोत्रिय:, वेदपाठिन् (पुं०)
वेदी—वेदिका, वेदी (स्त्री०)
वैश्य—वणिज् (पुं०), द्विजाति: (पुं०) अर्य:, वैश्य:
व्यक्त करना—वि+अञ्ज् (७ प०)
व्याघ्र—द्वीपिन् (पुं०), व्याघ्र:
व्यर्थ ही—वृथा (अ०), मुधा (अ०)
व्यवहार करना—आ+चर् (१ प०) व्यव+हृ (१ उ०)
व्यापार—वाणिज्यम्, व्यापार:
व्याप्त होना—व्याप् (वि+आप् ५ प०), अश् (५ आ०)

श

शक्कर—शर्करा
शपथ लेना—शप् (१ उ०)
शराबी—मद्यप:
शरीफा (फल)—सीताफलम्
शरीर—वपुष् (न०) गात्रम्, तनु: (स्त्री०), काय:, विग्रह:
शर्त—समय:
शलगम—श्वेतकन्द:
शस्त्र—प्रहरणम्, शस्त्रम्
शस्त्रागार—शस्त्रागारम्, आयुधागारम्
शस्य-श्यामल—शाद्वल:
शहतूत (फल)—तूतम्
शहद—मधु (न०)

शहनाई (बाजा)—तूर्यम्
शहर—नगरम्, पुरम्
शान्त—शान्तः (वि०)
शामियाना—चन्द्रातपः
शासन करना—शास् (२ प०), तन्त्र् (१० आ०)
शिकार खेलना—मृगया
शिकारी—मृगयुः (पुं०), आखेटकः शाकुनिकः
शिक्षा देना—शास् (२ प०), शिक्ष् (१ आ०)
शिर—शिरस् (न०), मूर्धन् (पुं०)
शिला—शिला, शिलापट्टः
शिल्पी—कारुः (पुं०), शिल्पिन् (पुं०)
शिल्पी-संघ—श्रेणिः (पुं०, स्त्री०)
शिल्पी-संघ का अध्यक्ष—कुलकः
शिव—त्र्यम्बकः, त्रिपुरारिः (पुं०), ईशानः
शिष्य—अन्तेवासिन्(पुं०), छात्रः, शिष्यः, वटुः (पुं०)
शीघ्र—सद्यः (अ०), सपदि (अ०), द्रुतम्, शीघ्रम्
शीशम (वृक्ष)—शिंशपा
शीशा—दर्पणः, मुकुरः, आदर्शः
शुद्ध करना—शोधय (णिच्)
शूद्र—अन्त्यजः
शेर—केसरिन् (पुं०) सिंहः, मृगेन्द्रः, हरिः (पुं०)
शेरवानी—प्रावारकम्
शोभित होना—शुभ् (१ आ०), भा (२ प०)
श्रद्धा करना—श्रद्+धा (३ उ०)

स

संग्रहणी (पेचिश)—प्रवाहिका
संतरा—नारङ्गम्
संवाद करना—सं+वद् (१ आ०)
संशय करना—सं०+शी (२ आ०)
सज्जन—साधुः (पुं०), सुमनस् (पुं०), सचेतस् (पुं०)
सड़क—मार्गः, पथिन् (पुं०), सरणिः (स्त्री०)
सड़क, कच्ची—मृन्मार्गः
सड़क, चौड़ी—रथ्या
सड़क, पक्की—दृढमार्गः
सड़क, मुख्य—राजमार्गः
सत्य रूप में—परमार्थतः, परमार्थेन, यथार्थतः (अ०)
सदस्य—सभासद् (पुं०), सभ्यः, पारिषदः
सदाचारी—सद्वृत्तः सदाचारः
सदृश होना—सं+वद् (१ प०), अनु+हृ (१ आ०)
सधवा स्त्री—पुरन्ध्रिः (स्त्री०)
सन्तुष्ट होना—तुष् (४ प०)
सन्दूक—मञ्जूषा
संन्यासी—मस्करिन् (पुं०), परिव्राजकः, यतिः (पुं०)
सप्ताह—सप्ताहः
सफेद बाल—पलितम्
सभा—सभा, समितिः (स्त्री०), परिषद् (स्त्री०)
सभागृह—आस्थानम्
समधिन—सम्बन्धिनी (स्त्री०)
समधी—सम्बन्धिन् (पुं०)
समर्थ—प्रभविष्णुः (पुं०), प्रभुः (पुं०), समर्थः, शक्तः
समर्थ होना—प्र+भू (१ प०)
समय—वेला, कालः, समयः
समाचार—वार्ता, प्रवृत्तिः (स्त्री०), उदन्तः
समाप्त—अवसितः
समाप्त होना—सम्+आप् (५ प०), अव+सो (४ प०)
समीक्षा करना—सम्+ईक्ष् (१ आ०)
समीप—उप, अनु, अभि, आरात् (अ०)
समीप आना—प्रत्या+सद् (१ प०), उप+या (२ प०)
समीपता—संनिधानम्, सामीप्यम्
समुद्र—अर्णवः, अब्धिः (पुं०), रत्नाकरः
समुद्री व्यापारी—सांयात्रिकः
समूह—संहतिः (स्त्री०), संघः
समोसा—समोषः
सम्बन्धी—ज्ञातिः (स्त्री०), बन्धुः, बान्धवः
सरकार—सर्वकारः, शासनम्, प्रशासनम्
सरसों—सर्षपः

सर्ज (वृक्ष)—सर्जः
सर्वथा—एकान्ततः, सर्वथा, नित्यम् (अ०)
सलवार—स्यूतवरः
सलाद—शदः
सस्ता—अल्पार्घम्
सहना—सह् (१ आ०)
सहपाठी—सतीर्थ्यः, सहाध्येतृ (पुं०), सहपाठिन् (पुं०)
सहभोज—सग्धिः (स्त्री०), सहभोजः
सहाध्यायी—सतीर्थ्यः
सहारा देना—अव+लम्ब् (१ आ०)
सहृदय—सहृदयः, सचेतस् (पुं०)
सांग वेदज्ञ—अनूचानः
साँप—द्विजिह्वः, उरगः, भुजंगः
साँभर नमक—रौमकम्
साक्षी—साक्षिन् (पुं०)
साग—शाकः, शाकम्
साड़ी—शाटिका
सात स्वर—सप्त स्वराः
साथ—सह, साकम्, सार्धम्, सांनिध्यम्
साथी—सहाध्यायिन् (पुं०)
साफ करना—मृज् (२ प०, १० उ०), प्र+क्षल् (१० उ०)
साबुन—फेनिलम्
सामग्री—हविष् (न०), संभारः, उपकरणम्
सामान—पण्यः
सारंगी (बाजा)—सारङ्गी (स्त्री०)
सारस—सारसः
साल का पेड़—सालः
साँवाँ (जंगली धान)—श्यामाकः
सास पेन (डेगची)—उखा
साहूकार—कुसीदिकः, कुसीदिन् (पुं०)
साहूकारा—कुसीदवृत्तिः (स्त्री०), कुसीदम्
सिंगारदान—शृङ्गारधानम्, शृङ्गारपिटकम्
सिंघाड़ा—शृङ्गाटकम्
सिक्का—मुद्रा
सिक्का ढालना—टङ्कनम्, टङ्क् (१० उ०)
सिगरेट—तमाखुवर्तिका
सितार—वीणा
सिद्ध होना—सिध् (४ प०)
सिन्दूर—सिन्दूरम्
सिपाही—रक्षिन् (पुं०)
सिफलिस (गर्मी, रोग)—उपदंशः
सिलाई—स्यूतिः (स्त्री०)
सिलाई की मशीन—स्यूतियन्त्रम्
सिला हुआ—स्यूतम्
सींचना—सिच् (६ उ०)
सीखना—शिक्ष् (१ आ०)
सीखनेवाला—गृहीतिन् (पुं०), अधीतिन् (पुं०)
सीढ़ी (लकड़ी की)—निःश्रेणी (स्त्री०)
सीना—सिव् (४ प०)
सीमेन्ट—अश्मचूर्णम्
सीसा (धातु)—सीसम्
सुख—शर्मन् (न०), सुखम्
सुनार—पश्यतोहरः, स्वर्णकारः
सुन्दर—रुचिरम्, मनोज्ञम्, मञ्जुलम्
सुपारी—पूगम्, पूगीफलम्
सुराविक्रेता—शौण्डिकः
सुराही—भृङ्गारः
सूअर—शूकरः, वराहः
सूई—सूचिका
सूखना—शुष् (४ प०)
सूत—सूत्रम्
सूती—कार्पासम्
सूद—कुसीदम्
सूर्य—सप्तसप्तिः (पुं०), हरिदश्वः
सूर्यास्त समय—प्रदोषः, गोधूलिवेला, सायम्
सेंधा नमक—सैन्धवम्
सेंह (पशु)—शल्यः
सेकण्ड—विकला
सेक्रेटरी—सचिवः
सेना—चमूः (स्त्री०), पृतना, वाहिनी (स्त्री०)
सेनापति—सेनापतिः (पुं०), सेनानीः (पुं०)
सेफ (तिजोरी)—लौहमञ्जूषा
सेफ्टी रेज़र—उपक्षुरम्
सेम—सिम्बा
सेमर (वृक्ष)—शाल्मलिः (पुं०)
सेल्स टैक्स—विक्रयकरः
सेव (फल)—सेवम्
सेवई—सूत्रिका

सेवा करना—सेव् (१ आ०), उप+चर् (१ प०)
सोंठ—शुण्ठी (स्त्री०)
सोचना—चिन्त् (१० उ०), विचारय (णिच्)
सोता (स्रोत)—उत्स:
सोना—कार्तस्वरम्, जातरूपम्, चामीकरम्
सोना—स्वप् (२ प०), शी (२ आ०)
सोफा—पर्यङ्क:
सौंफ—मधुरा
सौदा (सामान)—पण्य:
सौ रुपये—शतम्
स्कूल—विद्यालय:
स्कूल इन्सपेक्टर—विद्यालयनिरीक्षक:
स्टूल—संवेश:
स्टेनलेस स्टील—निष्कलङ्कायसम्
स्टेशन—यानावतार:
स्टोव—उद्ध्मानम्
स्त्री—योषित् (स्त्री०), कलत्रम् (न०), दारा (पुं०)
स्थान—धामन् (न०)
स्नातक—समावृत्त:, स्नातक:
स्नो—हैमम्
स्पर्धा करना—स्पर्ध् (१ आ०)
स्मरण करना—स्मृ (१ प०), अधि+इ (२ प०)
स्लेट—अश्मपट्टिका
स्वच्छ होना—प्र+सद् (१ प०)
स्वभाव—सर्ग:, निसर्ग:, प्रकृति: (स्त्री०)
स्वभाव से सुन्दर—अव्याजमनोहरम्
स्वर्ग—नाक:, त्रिदिव:, त्रिविष्टपम्
स्वर्ण—कार्तस्वरम्, जातरूपम्, हिरण्यम्
स्वागतार्थ जाना—प्रत्युद्+गम् (१ प०)
स्वामी—प्रभविष्णु: (पुं०), प्रभु:, स्वामिन् (पुं०)
स्वीकार करना—ऊरी+कृ (८ उ०), उररी+कृ (८ उ०)
स्वेच्छाचारी—स्वैर:, स्वैरिन् (पुं०), कामवृत्ति: (स्त्री०)
स्वेटर—ऊर्णावरकम्

ह

हंस—मराल:
हंसी—वरटा
हंसी करना—परि+हस् (१ प०)
हँसुली (गहना)—ग्रैवेयकम्
हटना—अप+सृ (१ प०), या (२ प०), वि०+रम् (१ प०)
हटाना—व्यप+नी (१ उ०), अप+सारय (णिच्)
हथौड़ी—अयोधन:
हरताल—पीतकम्
हराना—परा+भू (१ प०), परा+जि (१ आ०)
हर्र—हरीतकी (स्त्री०)
हल—लाङ्गलम्, हलम्, सीर:
हल करना (प्रश्नादि)—साधय (णिच्)
हलवाई—कान्दविक:
हलुआ—लप्सिका
हलका—लघु: (वि०)
हल्दी—हरिद्रा
हवन करना—हु (३ प०)
हाँ—आम्, तथा, अथ किम् (अ०)
हाइड्रोजन बम—जलपरमाण्वस्त्रम्
हॉकी का खेल—यष्टिक्रीडा
हाथ का तोड़ा (गहना)—त्रोटकम्
हाथीवान—हस्तिपक:
हार, मोती का—हार:
हार, एक लड़ का—एकावली (स्त्री०)
हारना—परा+जि (१ आ०)
हारमोनियम (बाजा)—मनोहारिवाद्यम्
हारसिंगार (फूल)—शेफालिका
हॉल—महाकक्ष:
हिंसा करना—हिंस् (७ प०), हन् (२ प०)
हिम—आवश्याय:, हिमम्
हिसाब—संख्यानम्
हींग—हिङ्गु: (पुं०, न०)
हीरा—हीरक:
हृदय—हृदयम्, स्वान्तम्, मानसम्
हुक्का—धूम्रनलिका
हैजा—विषूचिका
होठ—ओष्ठ:
होठ, नीचे का—अधर:, अधरोष्ठ:
होना—भू (१ प०), अस् (२ प०), विद् (४ आ०), वृत् (१ आ०)
होज—आहाव:

(१५) विषयानुक्रमणिका

सूचना— १. शब्दों, धातुओं और निबन्धों के विवरण के लिए प्रारम्भिक विषय-सूची देखिए।
२. विषयानुक्रमण्किा में दी गयी संख्याएँ पृष्ठ-बोधक हैं।

अनुवादार्थ गद्य-संग्रह ३५१-३७०
अभ्यास १-१२१
आत्मनेपद ५८, ६०
इच्छार्थक प्रत्यय, सन् ७०
कर्तृवाच्य ५६
कर्मवाच्य ६२, ६४
कारक—प्रथमा २, द्वितीया २, ४, तृतीया ६, ८, चतुर्थी १०, १२, पंचमी १४, १६, षष्ठी १८, २०, सप्तमी २२, २४
कृत् प्रत्यय—अच् ९६, अण् १०२, अथु १०४, अप् ९६, इष्णु १०४, क १००, क्त ७४, ७६, क्तवतु ७८, क्तिन् १०२, क्त्वा ८६, क्विप् १०२, खल् १००, खश् १०४, घञ् ९४, ट ९८, णमुल् ८८, णिनि १००, ण्वुल् ९८, तुमुन् ८४, तृच् ९६, ल्यप् ८८, ल्युट् ९८, शतृ ८०, शानच् ८२, अन्य कृत् प्रत्यय १०४
कृत्य प्रत्यय—अनीय ९०, क्यप् ९२, ण्यत् ९२, तव्य ९०, यत् ९२
णिच् प्रत्यय— ६६, ६८
तद्धित प्रत्यय—अपत्यार्थक १०६, इष्ठन् ११८, ईयसुन् ११८, चातुरर्थिक १०८, च्वि १२०, तमप् ११८, तरप् ११८, तुलनार्थक ११८, द्विरुक्त १२०, भावार्थक ११६, मत्वर्थक ११२, विभक्त्यर्थ ११४, शैषिक ११०, सात् १२०, अन्य तद्धित प्रत्यय १२०
धातुरूपकोश २२१-२५४
धातुरूपसंग्रह १४३-२२०
नामधातु-प्रत्यय ७२
निबन्धमाला २९६-३५०
पत्रादि-लेखन-प्रकार २९१-२९५
पदक्रम ५६
परस्मैपद ६०
पारिभाषिक शब्दकोश ४०३-४१४
प्रत्यय-परिचय २७९-२८५
प्रत्यय-विचार २५५-२६८
प्रेरणार्थक णिच् ६६, ६८
भाववाच्य ६२, ६४
यङ् प्रत्यय ७२
लकार—आशीर्लिङ् ३६, लिट् २६, लुङ् ३०, ३२, लुट् ३४, लृङ् ३६
वाक्यार्थक शब्द २८६-२९०
विभक्ति—देखो कारक
शब्दरूप संग्रह—१२३-१४०
शब्दवर्ग—अन्नवर्ग ५२, अव्ययवर्ग ११२, आभूषणवर्ग १०२, आयुधवर्ग ४४, कृषिवर्ग ७२, क्रियावर्ग ११४, क्रीडासनवर्ग ३८, क्षत्रियवर्ग ४२, गृहवर्ग ११०, दिक्कालवर्ग ३२, देववर्ग २६, धातुवर्ग ११६, नाट्यवर्ग ११८, पक्षिवर्ग ९२, पशुवर्ग ९०, पात्रवर्ग ६०, पानादिवर्ग ५८, पुरवर्ग १०६, १०८, पुष्पवर्ग ८४, प्रसाधनवर्ग १०४, फलवर्ग ८६, ८८, ब्राह्मणवर्ग ४०, भक्ष्यवर्ग ५४, मिष्टान्नवर्ग ५६, रोगवर्ग १२०, लेखनसामग्रीवर्ग ३०, वनवर्ग ८०, वस्त्रादिवर्ग १००, वारिवर्ग ९४, विद्यालयवर्ग २८, विशेषणवर्ग ७४, ७६, वृक्षवर्ग ८२, वैश्यवर्ग ४८, व्यापारवर्ग ४०, व्योमवर्ग ३४, शरीरवर्ग ९६, ९८, शाकादिवर्ग ६८, ७०, शिल्पिवर्ग ६४, ६६, शूद्रवर्ग ६२, शैलवर्ग ७८, सम्बन्धिवर्ग ३६, सैन्यवर्ग ४६
संख्याएँ १४१-१४२
सन् प्रत्यय ७०
सन्धि—स्वर (अच्) सन्धि २६, २८, व्यंजन (हल्) सन्धि ३०, ३२, विसर्ग-सन्धि ३४, ३६
सन्धि-विचार—२६९-२७८

स्वर सन्धि २६९-२७१
व्यंजन (हल्) सन्धि २७२-२७५
विसर्ग (स्वादि) सन्धि २७६-२७८
समास—अलुक् समास ५०,
अव्ययीभाव ३८, एकशेष ५०, कर्मधारय ४२, तत्पुरुष ४०, द्वन्द्व ४८, द्विगु ४२, बहुव्रीहि ४४, ४६
समासान्तप्रत्यय ५२
सुभाषित-मुक्तावली— ३७१-४०२
अध्यात्म ३७२-३७५
अर्थ ३७५-३७६
आचार ३८१-३८९
आरोग्य ३७९
कवि, काव्य, कविता ४०१
काम (भोगनिन्दा) ३७६
चातुर्वर्ण्य ३७८
जगत्स्वरूप ३७७
जीवन ३७८-३७९
पुरुष-स्त्री-स्वभावादि ३९८-४०१
भारत-प्रशंसा ३७१
मनोभाव ३९४-३९५
राजधर्मादि ३७९-३८०
विचारात्मक ३९१-३९४
विद्या ३८९-३९१
विविध ४०१-४०२
व्यवहार ३९६-३९८
स्त्रीप्रत्यय ५४
हिन्दी-संस्कृत-शब्दकोश ४१४-४३८

डॉ० कपिलदेव द्विवेदी व्याकरणाचार्यकृत

संस्कृत व्याकरण की अनुपम पुस्तकें

संस्कृत शिक्षा भाग 1-2-3-4-5 (कक्षा 6, 7, 8, 9 तथा 10 के लिए)
प्रारम्भिक रचनानुवादकौमुदी (प्रारम्भिक कक्षाओं के लिए)
रचनानुवादकौमुदी (उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के लिए)
प्रौढ-रचनानुवादकौमुदी (बी०ए० तथा एम०ए० कक्षाओं के लिए)
संस्कृत व्याकरण तथा लघु सिद्धान्तकौमुदी (विस्तृत हिन्दी व्याख्या सहित)
अर्थ विज्ञान और व्याकरण दर्शन (प्राचीन भारतीय वैयाकरणों के विचारों का संकलन)
पिंगल कृत छन्दःसूत्रम् वैदिक गणितीय अनुप्रयोगों सहित, हिन्दी/अंग्रेजी अनुवाद सहित
वैदिक साहित्य एवं संस्कृति (बी०ए०, एम०ए०, आई०ए०एस०, पी०सी०एस०, आचार्य के लिए)
द्विवेदीजी की एक विशिष्ट पुस्तक : **योग और आरोग्य** (साधना और सिद्धि)

संस्कृत-निबन्धशतकम्

(एम०ए०, आई०ए०एस०, पी०सी०एस०, आचार्य आदि के लिए)

इसमें वैदिक एवं शास्त्रीय (10), दार्शनिक (6), काव्यशास्त्रीय (11), साहित्यिक (15), भाषावैज्ञानिक (5), सांस्कृतिक (9), सामाजिक (5), आर्थिक (3), राष्ट्रीय (8), शैक्षिक (8), विविध (20+10), विषयों पर सुललित संस्कृत में 110 निबन्ध दिये गये हैं। पुस्तक सभी प्रतियोगिता परीक्षाओं के लिए उपयुक्त है।

पृष्ठ-संख्या 368

भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र

(संस्कृत तथा हिन्दी एम०ए० के लिए)

इसमें भाषाशास्त्रीय नवीनतम अनुसन्धानों का समन्वय करते हुए भाषाविज्ञान और भाषाशास्त्र का प्रामाणिक एवं सारगर्भित विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसमें भाषा, ध्वनि-विज्ञान, पद-विज्ञान, वाक्य-विज्ञान, विश्वभाषाओं का आकृतिमूलक एवं ऐतिहासिक वर्गीकरण, भारतीय परिवार, भारतीय आर्यभाषाएँ, स्वनिम, रूपिम, पदिम, आर्थिक, स्वनिमविज्ञान आदि विषयों का प्रामाणिक विवेचन हुआ है। पुस्तक सभी विश्वविद्यालयों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए लिखी गयी है।

पृष्ठ-संख्या 528

₹ 220.00
ISBN : 978-93-5146-108-1
9 789351 461081

विश्वविद्यालय प्रकाशन
पो०बॉ० 1149, विशालाक्षी भवन,
चौक, वाराणसी - 221001
***Phone & Fax :* (0542) 2413741, 2413082**
***e-mail :* sales@vvpbooks.com**
www.vvpbooks.com